

भजनवाद्य ठेका

Published by

श्री अखिल भारत स. स.  
जैन शास्त्रोद्धार समिति,  
गरेडिया कुवा रोड, श्रीन हौज  
जसे राजकोट (सौराष्ट्र)

Shri Akhil Bharat S. S.  
Jain Shastrodhdhara Samiti  
Garedia Kuva Road RAJKOT  
(Saurashtra) W Ry India



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवस्थां,  
आनन्ति ते किमपि तान् प्रति नैव यत्नः ।  
उत्पत्त्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानपर्मा,  
कालोऽयं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतछन्द

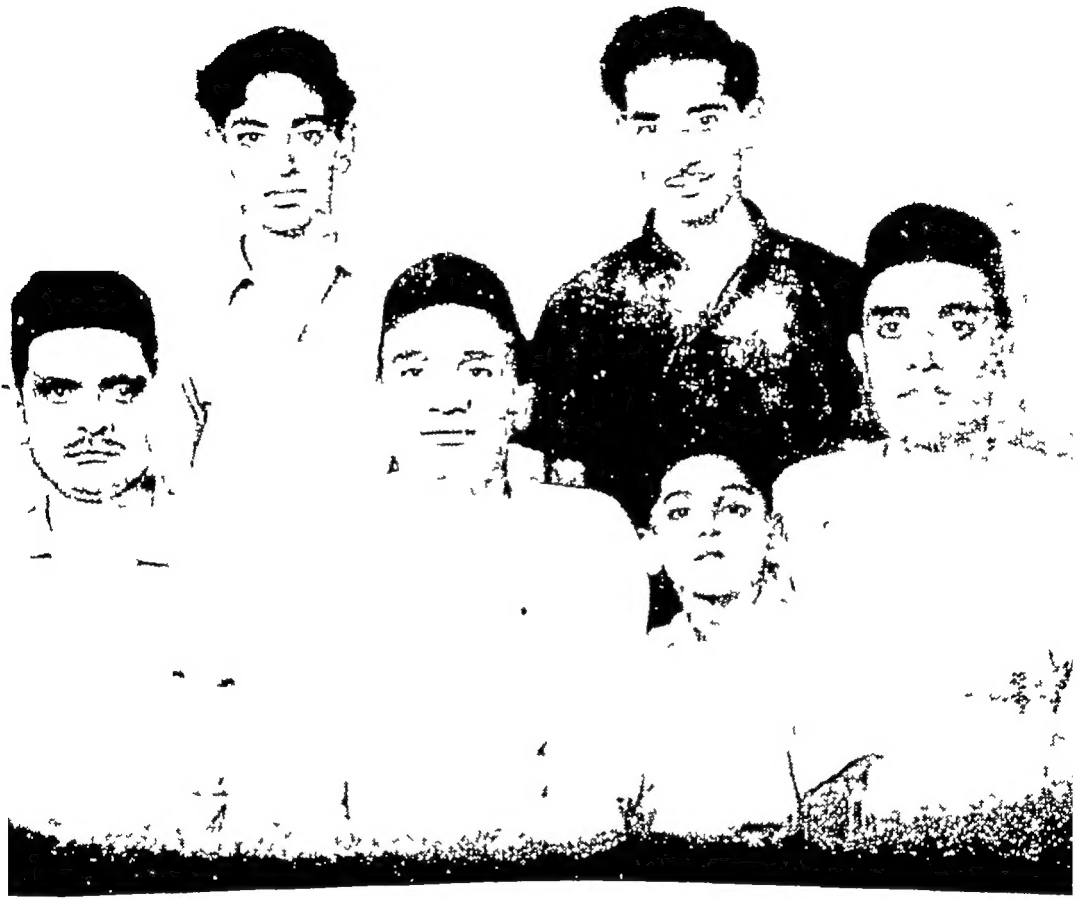


करते अक्का ... बा ... हमारी यत्न ना, उनके लिये ।  
जो जानते हैं तब कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥  
जनमेगा सुससा ... कि कोई तब हसते पायगा ।  
हे काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यान में यह सायगा ॥ १ ॥

मूल्य रु. १०-००

प्रथम आवृत्ति : अत १२००  
वीर सप्त : २४६२  
द्वितीय सप्त २०२२  
अखिल १९६६

श्री अखिल भारत  
जैन शास्त्रोद्धार समिति  
गरेडिया कुवा रोड, श्रीन हौज  
जसे राजकोट (सौराष्ट्र)



श्रीमान मेठ मा चीमनलालजी सा. ऋषभचंदजी सा. अजीतवाले ( सपरिवार )



# આધમુરખીશ્રીઓ



શેઠશ્રી શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ  
અમદાવાદ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી શામજીભાઈ વેલજીભાઈ  
વીરાણી-રાજકોટ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી છગનલાલ શામજીદાસ ભાવમાર-અમદાવાદ.



શેઠશ્રી રામજીભાઈ શામજીભાઈ  
વીરાણી-રાજકોટ.



વચ્ચે બેઠેલા  
લાલાજી કિશનચંદ્ર સા. જોડરી  
ઉભેલા સુપુત્ર ચિ. મહેતાખચંદ્ર સા. જૈન  
નાના-અનિલકુમાર જૈન (દીપતા)





ଶ୍ରୀ ପ୍ରଦ୍ୟୁମ୍ନ ଦୁର୍ଗାଚାର୍ଯ୍ୟ  
ରାମକୋଟ



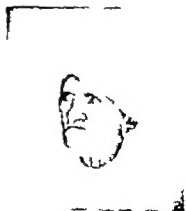
ଶ୍ରୀ ଗୁରୁଚରଣ ଚନ୍ଦ୍ର  
ରାମକୋଟ



ଶ୍ରୀ ଗୁରୁଚରଣ ଚନ୍ଦ୍ର ଓ ଶ୍ରୀ  
ରାମକୋଟ



(ସ୍ବ) ଶ୍ରୀ ଶ୍ରୀ ଶ୍ରୀ ଶ୍ରୀ ଶ୍ରୀ  
ରାମକୋଟ



ଶ୍ରୀ ଶ୍ରୀ ଶ୍ରୀ ଶ୍ରୀ ଶ୍ରୀ  
ରାମକୋଟ

# આચમુરુ બીશ્રીઓ



(સ્વ.) શ્રી દુરખય દ કાલીદાસ વારિયા  
ભાણવડ.



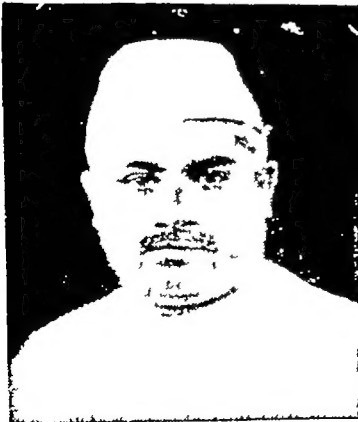
(સ્વ.) શ્રી રાજભાઈ મોહનલાલ શાહ  
અમદાવાદ.



શ્રી વિનાદકુમાર વીરાણી  
રાજકોટ.



(સ્વ.) શ્રી નિશભાઈ કાંતિલાલ શાહ  
અમદાવાદ.



શ્રી નેસિગભાઈ પોચાલાલભાઈ  
અમદાવાદ.



સ્વ. શ્રી આત્મારામ ભાણેકલાલ  
અમદાવાદ.



શ્રીમતી સુરિયાસ અનાયમદ શાહ  
મલાલ

શ્રી તારાજી માદવ ગલ્ડા  
મદ્રાસ



૧ શ્રીમતી પ્રભાબાઈ શીમાન મુલચરજી  
૨ શ્રીમતી વાસુદેવ અરડિયા  
૩ શ્રીમતી બાલકૃષ્ણાલાલ અરડિયા  
૪ શ્રીમતી નાનાબાઈ દુનમચર અરડિયા

શીમાન ગરધી  
શ્રીમતી મા પારડિયા

## राजप्रश्नीय सूत्र भाग दूसरे की विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
१	सूर्याभदेव के देवद्वि के संवन्ध में गौतमस्वामी का ग्रन्थ ... .. १-४	१-४
२	सूर्याभदेव के ऋद्धि के संवन्ध में भगवान् का उत्तररूप कथनमें सूर्याभदेव के पूर्वभवजीव प्रदेशी राजा का वर्णन... .. ५-३८३	५-३८३
३	सूर्याभदेव का आगामिभवका वर्णन... .. ३८३-४४९	३८३-४४९

॥ समाप्त ॥



# शुद्धि पत्र

सुद्ध पाठकगण,

सविनय निवेदन है कि आक्षेपों में कुछ और प्रिटिंग सम्बन्धी कई गलतीयाँ होना समविष्ट है, जो सुद्ध वाचकजन्म नीरसीरन्याय से समझ कर पढ़लेगे, पर जो क्षालीय गलती रह गई है जो देखने में अगर सुद्ध वाचकजन द्वारा दृष्टिगोचर हुई है, इनका शुद्धिपत्र देने में आता है।

ग्रन्थ का नाम	पृष्ठ	पङ्क्ति - अशुद्ध	शुद्ध
समवायज्ञ ग्रन्थ	१६४	५। रामः सत्सु बलदेवो द्वादशवर्ष सहस्रा- णि सर्वायुषं	रामः सत्सु बलदेवो द्वादशवर्षपञ्चतानि सर्वायुषं
" "	"	१६ बारह हजार वर्ष	बार सौ वर्ष
" "	"	२८ बारह हजार वर्ष	आश्लेष वर्ष
क्षाताधर्मकथाज्ञ-२६१	१	पहली पङ्क्ति	'त्रैमासिकी' पद छूट गया है
ग्रन्थ भा २ "	"	पूरी होने पर	सो 'त्रैमासिकी' यह पद बहाके पढ़ें
" "	"	११	आठवीं मिथु प्रतिमा के अन्तर 'प्रथम सात दिनरात प्रमाणवाली नववीं मिथु प्र- तिमा' यह पाठ छूटा है सो 'नववीं मिथु पटिमा' वहाँ इतना छोड़ के पढ़ें
क्षाताधर्मकथाज्ञग्रन्थमा ३,	३९७ १७	प्रवचनसिद्ध	प्रवचनविच्छेद
" "	" २१	प्रवचनसिद्ध	प्रवचन विच्छेद
क्षाताधर्मकथाज्ञग्रन्थमा २	१७७ १७	मध्यपान में आसक्त-	निद्राजनक द्रव्य में आसक्त
" "	" २६	मध्यपानभा आसक्त	निद्राजनक द्रव्य भा आसक्त
क्षाताधर्मकथाज्ञग्रन्थमा ३	३३४ ३	मगधताऽऽपश्यक-	मगधताऽनुयोगद्वार
" "	" १७	आवश्यक सूत्रमें-	अनुयोगद्वारसूत्रमें
" "	" १६	आवश्यक सूत्रभा-	अनुयोगद्वार सूत्रभा

अन्तकृदशाङ्गसूत्र	२९५	१० दसदस	दसअष्ट
"		११	'सत्तमवग्गे तेरसउडेसगा'
			इतना पाठ छूट गया है
			सो वहां समझ लेवे
आचारङ्गसूत्रभा. २ १२२	८	नेत्तपरिण्णाणा अपरिहीणा फरस परिण्णाणा अपरि-हीणा	नेत्तपरिण्णाणा अपरि-हीणा जीहपरिण्णाणा अपरिहीणा फरिस परिण्णाणा अपरिहीणा
आचाराङ्गसूत्रभा-२ २८१	१४	नित्यानवे	अद्धानवे
"	२६	न० पाण्डु	अक्षाण्डु
दशाश्रुतस्कथ ४३०	२०	कालकर के ग्रैवेयक-आदि	कालकरके देवलोकमें से
"	२६	कालकरीने ग्रैवेयक आदि-	कालकरीने देवलोकमाना
शाताधर्मकथाङ्गसूत्रभा. २ ७३०	२१	गुणशिलक येत्य (नैन देरासर)	गुणशिलक येत्य (उद्यान भगीये)
उत्तराध्ययनसूत्रभा. ३ १८० १-२	१-२	..तृतीय देवलोक-गतः ततश्चुतो महाविदेहे केवलिभूत्वा सिद्धिगतिं गमिष्यति	मोक्ष गतः
"	१२, १४, १५	वे चक्रवर्ती तृतीयदेव लोकमें गये वहांसे चक्रर महाविदेहमें केवलीहोकर सिद्धि पदको प्राप्त करेंगे	वे चक्रवर्ती मोक्ष मये
"	२३-२४	ते चक्रवर्ती भरीने त्रीण देवलोकमा गया अने त्यांतु आयुष्य पुत्र करी त्यानी अवी ने मछावि देहमा देवलो थधने सिद्धि पद प्राप्त कर्युं	ते चक्रवर्ती मोक्षमा गया
उत्तराध्ययनसूत्रभा. ४ ९२	१४	संयमयोगोंका उल्लंघन होता है-	संयम योगों का उल्लंघन नहीं होता है
"	२४	संयम योगोंनु उल्लंघन थाय छे	संयम योगोंनु उल्लंघन थतु नथी

मगवर्तीधर्ममा ३	८००	३	त्रिमागोन	त्रिमागोन
"	"	३ २	पन्थोपम	पन्थोपमद्वय
"	"	१३	वर्तमानमागक्रम एक	वर्तमानमाग क्रम दो
"	"		पन्थोपम की	पन्थोपम की
"	"	२८	ये पन्थोपम ३२५	वृत्तीय भाग ४३५
"	"		त्रिमाग - २५५ से	पन्थोपमनी से
मगवर्तीधर्ममा ३	८००	५६	ये पन्थोपम ३२५	वृत्तीय भाग अधिक
			त्रिमाग अधिक	ये पन्थोपम
दत्तगाधपन	४४८	१	तप' कृत्वा वर्तमान	तप' कृत्वा तस्मिन्नेव
			मधे मुक्ति गत	मधे मुक्ति गत ।
"	"	१३	वर्तमान मध में मुक्ति	उसी मध में मुक्ति
			लाम किया	लाम किया
"	"	२५	त्रीमा लाममा मुक्ति	तेव लाममा मुक्ति
			ने लाम ३२५ से	ने लाम ३२५ से
दद्यामुनस्कन्ध	१७४	२	यास्तं लक्ष्मण	यतस्तेल्लक्ष्मणदेवो-
			पुद्गल	नार्थपुद्गल
,	१७४	१२	देशजन पुद्गल	देशजन अर्थ पुद्गल
,	१७४	१२	देशजन पुद्गल	देशजन अर्थ पुद्गल

दत्तामृत स्वरूप क दसवें अध्यायनमें हिंदी एवं गुजराती में दसों निदानों के प्रकरण में वहाँ जहाँ प्रत्येक शब्द है वहाँ वहाँ 'सौधर्म' ऐसा पाठ सुधारकर पढ़ना चाहिए.

# श्रीमान् सेठ साहब चिमनलालजी-रिखबचन्दजी 'जीरावलाका' परिचय

भारतीय संस्कृति के निर्माण में ओसवाल जाति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इस जाति की बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, शूरवीरता और आत्मबलिदान के कारण भारत के उज्ज्वल इतिहास का निर्माण हुआ है। भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम में भी इस जाती ने असाधारण योग प्रदान किया है। उदयपुर, जोधपुर बीकानेर सिरोंही, किसनगढ़ आदि रियासतों के इतिहास इस जाति द्वारा प्रदर्शित दूरदर्शिता, राजनीतिज्ञता और वीरता से भरी हुई गाथाओं से ओतप्रोत है। इस जाति के वीरोंने अपने देश समाज और धर्म के प्रति जिस भक्ति का परिचय दिया है वह इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षर से अंकित है। अपने देश और स्वामी के प्रति वफादार रहनेवाले और उनके लिए सर्वस्व अर्पण करनेवाले व्यक्तियों की नामावली में सर्व प्रथम नाम भामाशाह का आता है। इस जैनमंत्री की विपुल सम्पत्ति की सहायताने महारोणा प्रताप को नया जीवन प्रदान किया था, और मेवाड़ के गौरव की रक्षा की थी।

इसी गौरव पूर्ण जाति में श्रीमान् चिमनलालजी एवं रिखबचन्दजी का जन्म हुआ। आप प्रसिद्ध दोसी परिवार के हैं। दोसी यह ओसवाल जाति का एक गोत्र है। कहा जाता है कि वि. संवत् ११९७ में विक्रमपुर में सोनागरा राजपूत हरिसेन रहता था। आचार्य श्री जिनदत्तस्वरिने इसे जैन-धर्म का प्रतिबोध देकर ओसवाल जाति में मिलाया और दोसी गोत्र की स्थापना की। इस गोत्र के नाम को समुज्ज्वल करने वाले अनेक नररत्न हो गये हैं। दोसी परिवार में श्रीमान् भिवखुजी बड़े प्रसिद्ध हुए। आपने महाराणा राजसिंहजी (प्रथम) का प्रधानपद सम्भाला था। आपकी निगरानी में उदयपुर का मशहूर राजसमुद्र नामक तालाब का काम जारी हुआ एवं पूर्ण हुआ। इस तालाब के बनवाने में १०५०७६०८ रुपये खर्च हुए। इस तालाब का पूर्ण होने पर महाराणाराजसिंहजी ने राजसमुद्र के उद्घाटन उत्सव के अवसर पर दोसी भिवखुजी को एक हाथी और सिरोंपाव प्रदान कर उनका सम्मान बढ़ाया था। दोसी पद्मोजी ने धर्मस्थानों का उद्धार किया था। बादशाह के फरमान



में ज्जेन हैं। करने का साधन यह है कि दोली परिवार पहले से ही चार्मिक सामाजिक एवं गृहस्थ कार्यों में उदात्तार्थक तन मन धन से सेवा करता आ रहा है। श्रीमान् सेठ विमलतालजी एवं रत्नचन्दजी सा को उनी गौबघाली गोत्र में जन्म लेने का सौमन्य प्राप्त हुआ है। इन सीधे माठ गेनों माइयो को देखकर यह कभी अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि य-एक बड़े धीमन्त होंगे। तथा धीमन्ताइ के साथ बड़े दानवीर भी होंगे। नागवाह के इस दानी परिवार की प्रतिष्ठा अन्य धीमन्ता की तरह चाहे न हो पाई हो पर सेठ साहब विमलतालजी एवं रत्नचन्दजी जैन समाज के गुहरी में छिपताए हैं। अपनी सम्पत्ति का उपयोग परोपकारी कार्यों के कर्त्तव्य में पन्म उन्ग हैं।

श्रीमान् विमलतालजी का० क पूर्वजा का राजघराने के साथ अच्छा सम्बन्ध रहा है। आप के दादा श्रीमान् गुलाबचन्दजी बोधपुर के हर्मिप दिवाना तहसील के कोटही नामक गांव में रहते थे। आप ठिकाने के कोठार के काम को सम्भालते थे, गृहस्थीय जिम्मेदारी के दद पर रहते हुए भी चार्मिक व सामाजिक जनसवा के कार्यों में भी पूर्ण सहयोग प्रदान करने रहते थे। आपकी राजघरान में एक समाज में अच्छी प्रतिष्ठा थी। आप 'जतिवला के उपनाम से प्रसिद्ध थे। आप बड़े मधुरभाषी एवं मिलनसार प्रकृति के उदात्तचेता सज्जन थे। आपको एक पुत्र हुआ जिसका नाम प्रमचन्द रखा। प्रेमचन्दजी की उम्र अभी कोई ज्यादा नहीं हुई थी कि पिताजी की मृत्यु हो गई। पिताजी के अन्धकार स्वर्गवास से इनपर मार परिवार के निर्वाह की जिम्मेदारी आ गई। ये सब बहादुर थे। पिता के परपरानुसार चलने वाले कुशल व्यापारी थे। इन्होंने अन्य समय में ही पिता की जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त करली और कोठार का काम भी सम्भाल लिया कि म १९६४ में उनका शुभलग्न ज्ञातवा निवासी श्रीमान् सायब लालजी की सुपुत्री खेतुबाई के साथ सम्पन्न हुआ। खेतुबाई एक आदर्श महिला एवं रती साध्वी स्त्री हैं। खेतुबाई जैसी आदर्श पत्नी का पाकर श्रीमान् प्रमचन्दजी बड़े सुखी म। इनके दो पुत्र हुए भी विमलतालजी और रत्नचन्दजी। किन्तु इस सुख को पिताता नहीं जय तथा अब विमलतालजी पांच वर्ष के थे एवं भी रत्नचन्दजी १॥ इन्होंने के प लप प्रदान की प्रमचन्दजी माइय का स्वर्गवास हो गया। इनके स्वर्गवास ॥

सारा परिवार शोक निमग्न हो गया। बालक और परिवार के सदस्य विलाप विलाप कर रोने लगे। श्रीमती खेतुवाई पर पति वियोग का वज्रपात हुआ। ऐसे भयंकर संकट के समय खेतुवाईने असाधारण धैर्य का परिचय दिया। रोने देने में अपना बहुमूल्य समय नष्ट न कर दोनों बालकों के मन्त्रिण्य को उज्ज्वल बनाने का विचार करने लगी। इधर पति के मृत्यु से आर्थिक स्थिति अत्यन्त गौचनीय हो गई। कोठार के काम से जो थोड़ी बहुत आमदनी होती थी वह भी अब समाप्त हो गई। कर्म की गति बड़ी गहन है। एक आपत्ति का अन्त नहीं हुआ था कि यह दूसरी आपत्ति का आरंभ हो गया। ऐसी विकट स्थिति में भी खेतुवाईने हिम्मत न छोड़ी किन्तु बड़े लाड प्यार से बच्चों का बालनपालन करने लगी। अपने चन्द्र जैसे आनंदप्रद बच्चों को देख कर अपना सारा दुःख भूल जाती थी। यह अपने का अपने बच्चों के सुनहरे स्वप्न में खोजाती थी।

ये दोनों बालक बड़े होते जा रहे थे। माता की ये ही आशा थी। बच्चों का पढ़ना लिखना भी परिस्थिति के अनुकूलतानुरूप होता था। जब श्रीमान चिमनलालजी दस वर्ष के हुए तब इन्होंने अपने पारिवारिक जीवन का भान हो आया। इन्होंने माता के इस बोझ को हलका करने का विचार किया। कोठडी एक छोटा गांव है इसलिये इसमें व्यापार की कोई गुंजाइश नहीं थी। अतः बालक चिमनलालने बाहर जा कर अर्थ उपार्जन का निश्चय किया। माता की आज्ञा प्राप्त कर दस वर्ष के चिमनलाल जी अपने सम्बन्धियों के साथ व्यापार करने के लिए चल पड़े। ये कर्णाटक के 'हिराकेरी' गांव में पहुंचे। इतनी छोटी उम्र में माता का वात्सल्य को छोड़कर अकेले ही अनजाने प्रदेश में पहुंच जाना उस हिम्मत का काम नहीं है। ये वहां की कन्नड़ी भाषा से अनभिज्ञ थे। बात बात पर मुश्किलें आती थीं किन्तु इन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी अल्प समय में ही इन्होंने स्थानीय कन्नड़ी भाषा सीख ली। नोकरी से व्यापार में लगे खूब श्रम किया किन्तु भाग्यदेवताने इनका साथ नहीं दिया अन्ततः निराश होकर अपने गांव कोठडी चले आये। यहाँ भी आपने कम परिश्रम नहीं किया। कई तरह के व्यापार करने पर भी आप फल्ले असफलता ही पड़ी। अशुभ कर्म का अभी उदय था। अन्त में हार थक कर पुनः कर्णाटक के हलगेरी नामक गांव में जाकर कपड़े की दुकान करली। इस दुकान से आपको लाभ नहीं मिला। कमाने के स्थान में आपको लाभ में

नुकसान ही उठाना पड़ा यहाँ तक कि आप कर्जदार हो गये। घन चला गया किन्तु आप में नीति कायम थी। घन से भी आपने नीति को चिन्नेप महत्ता दी। आप को साहुकारों का कर्ज खूब की तरह बूमने लगा। आपने हर परिस्थिति में कर्ज से मुक्त होने का निश्चय किया। कर्ज चुकाने के लिए आपने वहाँ नोकरी करली। कर्जा चुका देने पर आप फिर से अपने गाँव कोठड़ी चले आये।

वि स १९८४ में श्री चिमनलालजी का शुभविवाह स्वप्ननिवासी हिममतलालजी सुराणा की सुपुत्री श्री प्यारबाई के साथ सम्पन्न हुआ। विवाह के बाद वि स १९८८ में आप ब्रह्मान के लिए अहमदाबाद प्यार गये। आप क साव, आप के छोटे भ्राता रत्नचन्दजी साहब भी चले आये ये प्रारम्भ में दोनों भाइयों ने दस रुपये प्रतिमास पर नौबरी रखी। धीरे धीरे अपनी योग्यता व अपनी प्रतिभा के बल से दोनों भाइयों ने साधारण पूँजी से कपड़े की दुकान खोली। आप इस व्यवसाय में साहसपूर्वक अग्रसर हुए, थोड़े ही वर्षों में आप की गणना नगर के प्रतिष्ठित लघुव्यापारियों में एवं प्रमुख व्यक्तियों में होने लगी।

आप के लघु भ्राता भीमान् रत्नचन्दजी का शुभविवाह 'अजित' निवासी श्री अन्नराजजी साहब की सुपुत्री पानबाई के साथ सम्पन्न हुआ। आप दोनों का पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी है। आपके घर में सम्पन्नता का एकता आदर है। आप दोनों भाइयों का अमिती प्रेम राम लक्ष्मण के प्रेम का स्मरण दिलाता है। परिवार के इस सुखमय जीवन का दखकर भीमती खेतुबाई फूली नहीं समाती। ऐसा आनन्द का अवसर ससार की कम माताओं को ही प्राप्त होता है। इस समय खेतुबाई करीब स (७) वर्ष की बच्ची है, किन्तु हृदय से युवा है। अब भी समय समयपर अपने परिपार को अपने जीवन के सुख अनुभवों से माया दधनकराती होती है। सामाजिक प्रतिश्रमण सुनिवर्धन आपके दैनिक जीवन के अंग हैं। आपका प्रायः समय धार्मिक कार्यों में ही व्यतीत होता है। आपका परिवार इस प्रकार है—

आप के दो पुत्र हैं भीमान् चिमनलालजी साहब रत्नचन्दजी साहब भीमान् चिमनलालजी साहब की पाँच पुत्रियाँ हैं जिनके नाम ये हैं—१ यदामराई २ स्वमाया ३ जम्भुबाई ४ माधवतीबाई ५ गङ्गाबाई। भीमान्

रिखचन्दजी साहव के श्री दीपचन्दजी, शंकरलालजी सुगनराजजी एवं महेन्द्रकुमारजी ये चार पुत्र एवं सौभाग्यवाई तथा पुष्पावाई ये दो पुत्रियां हैं।

इस परिवार का वंश वृक्ष इस प्रकार है—

गुलाबचन्दजी सा० (दादा)

प्रेमचन्दजी सा० (पिता)

चिमनलालजी सा०

रिखचन्दजी सा.

(पुत्र)

(पुत्रिया)

दीपचन्दजी

शंकरलालजी

सुगनराजजी

महेन्द्रकुमार

सौभाग्यवाई—

पांच पुत्रियां

वदामवाई खमावाई

जम्मुवाई

सरस्वतीवाई

धापुवाई

धार्मिकजीवन—

व्यापारिक जीवन के अतिरिक्त आप भातृद्वय-दोनों भाइयों का सार्वजनिक एवं धार्मिक जीवन विशेष सराहनीय है। आपने सार्वजनिक कार्यों के लिये बहुत अधिक दान दिया है। आपने सर्वसाधारण के लिये समय समय पर अकाल रोग बाढ़ आदि के अवसरो पर भी काफी सहायताएं दी हैं। आपने कई व्यक्तियों को आर्थिक सहायता देकर धंधे में लगाया है। विद्यार्थियों को आर्थिक सहयोग देकर अपनी विद्याप्रियता का परिचय दिया है। पर्युपणपर्व आदि धार्मिक उत्सव के अवसर पर आसन, पूजनियां माला आदि धर्मोपकरण के साथ साथ अन्य कई उपयोगी वस्तुओं की भी प्रभावना करते रहते हैं। आपने निजी खर्च से वि.सं. २००४ में दीक्षा भी दिलवाई है।

साहित्यप्रेम—

जैनसाहित्य प्रकाशन कार्य में आपकी बड़ी दिलचस्पी है। कई ग्रन्थों के प्रकाशनों में आपका आर्थिक सहयोग रहा है। आप ने अभी अभी अखिल भारतीय श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धारसमिति राजकोट को दानार्थ ५०००) पांच हजार रुपये प्रदान कर समिति के सन्माननीय सदस्य बने हैं। आपका यह साहित्य प्रेम सराहनीय है। साहित्यशिक्षा के प्रति आप उदार चेताओं का कितना ध्यान है यह लपकेतु ज्ञान दान बता रहा है।

आपकी दैनिक जीवनचर्या में साप्ताहिक प्रतिक्रमण ग्रह, पञ्चक्त्वाण मुनिदर्शन आदि आवश्यक अंग हैं। इन कामों में आप कभी प्रमाद नहीं करते। प्रतिवर्ष पाइए जाकर मुनिदर्शन का भी समय समय पर लाम लेते रहते हैं। आप की ठदारता मर्मतोमुखी है। आप अपनी जन्मभूमि कोठड़ी में निजी खर्च से अस्पताल बनाकर सरकार को अर्पण करने की भी उत्कट इच्छा रखते हैं। आपका इस समय निवास मारवाड में अजित गाँव जि जोषपुरा में है। आपने विस २०१३ की साठ में कोठड़ी छोड़ दिया था। आपकी धार्मिक भावना इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती रहे यही छुम कामना है।

# राजप्रश्नीयसूत्र भा. २ दूसरेका शुद्धि पत्रक

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पंक्ति
मडंवंसि	मडंवंसि	१	१२
कर्वटे	कर्वटे	२	२
नेने	नेनी	२	२७
वस्तीभ	वस्तीभां	२	२८
देवजई	देवजुई	३	१३
भग्यतामृपगता	भोग्यतामृपगता	४	३
कवट	कर्वटे	४	९
मवन्धिकं	मंस्यन्धिकं	४	१७
अमंतेत्ता	आमंतेत्ता	४	२२
जणयाण	जणवाण	५	१
नयरा	मयरी	५	१
सेयावयाण	सेयवियाण	५	२
दृप्पयचउप्पय मियपपमु	दृप्पयचउप्पयमियपपमु	५	१२
भगवतम्	भगवंनम्	५	१५
केशिवामी	केशिस्वामी	६	७
निवास्थानभूत	निवामस्थानभूत	६	११
चंडे	चंडे	८	२४
अपडु	आ	८	२६
उत्कोच-लांन	उत्कोचन	९	४
उत्केअ लाअ	उत्केअन	९	१६
पटं जड	पउंजड	१०	१९
बहुत्वेन	बहुत्वेन	११	२
व्यापारतेन	व्यापारस्तेन	१२	३
इष्टान्	इष्टान्	१२	२५
तस्म ण	तस्म णं	१२	२९
अनुरद्धा	अनुरक्ता	१३	७
प्रमयुक्ता	प्रेमयुक्ता	१३	७
पुत्त	पुत्ते	१३	११
यावत् शब्द प्रकट	यावत् शब्द यह प्रकट	१४	१३

अ. त. पु. २८	अ. त. पु. २८	१५	२६
धास्वामति	धास्वामति	१०	१
हमम्	हमम्	१०	२६
निश्चयेभ	निश्चयेभ	१७	३१
कार्या में	कार्या में	१८	१०
कथा	कथा	१८	१७
निश्चयेभ	निश्चयेभ	१८	२५
सकलाने	सकलाने	१६	२५
आरायप्रयोगः	आरायप्रयोगः	२०	२
सप्रयुक्त	सप्रयुक्तः	२०	४
मोजनान्निष्ट	मोजनान्निष्ट	६०	५
भूभूपादि	भूभूपादि	२१	१७
अ. ६३	अ. ६३	२१	२५
तेण	तेण	२२	१
समृद्ध	समृद्ध	२२	१८
जितधनुर्नाम	जितधनुर्नाम	२३	२
उपरपोरस्त्ये	उपरपोरस्त्ये	२३	१०
त्रियसत्	त्रियसत्	२३	१७
जितधनु	जितधनु	२३	१९
जसा	जसा	२३	२१
अन्तेवासीव	अन्तेवासीव	२४	१
त्रियसत्	त्रियसत्	२४	८
सुत्रार्थ-	सुत्रार्थ	२४	१८
जितधनु	जितधनु	२५	२
रायकआणिय	रायकआणिय	२५	२०
वयासी	वयासी	२६	८
पञ्चपिण्ड	पञ्चपिण्ड	२६	१०
महत्त्व आप	महत्त्व आप	२७	८
अग्निमतरिया	अग्निमतरिया	२७	८
त महत्त्व	त महत्त्व	२७	११
पाउण्ड	पाउण्ड	२८	१६
अनेह	अनेह	३०	२५
५१३ सौमनस्विन	५१३ सौमनस्विन	३२	२५

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पं
कादुम्बक पुरुषान्	कौदुम्बिकपुरुषान्	३३	२
सकङ्कटावतंसकं	सकङ्कटावतंसकं	३३	८
शरशतद्वात्रिंशत्तूण	शरशतद्वात्रिंशत्तण	३३	२०
दोनो और	दोनों ओर	३४	३०
स तारणवर युक्त	स तोरणवरयुक्त	३४	१
सा है	ऐसा है	३५	२
थादे	नथादे	३५	१४
दूध्यक्षत दर्वाङ्कुरादीनि	दूध्यक्षतदुर्वाङ्कुरादीनि	३५	२४
आरापण किया	आरोपण किया	३६	२
आयुध दसे	आयुध पदसे	३६	११
यत्रैव	यत्रैव	३७	१३
केकयाढ	केकयाढ	३८	३
जितश	जितशत्रू	३८	१३
जियसत्तस्स	जियसत्तस्स	३८	२१
मावत्थाए	जावत्थीए	३९	४
० १०६	विहरड सू०	३९	६
स्य	तस्य	३९	१४
श्रावत्स्या	श्रवस्त्या	४०	१
उपाग ति	उपागच्छति	४०	४
आद	आदि	४०	५
कुशल प्रश्नादि	कुशलप्रश्नादि	४०	६
सारहि	सारहिं	४०	८
चउगंधंट	चाउगंधंट	४०	२१
जिमितभुक्तात्तराग	जिमितभुक्तात्तराग	४०	२९
प्रतोच्छति	प्रतीच्छति	४१	२
एवं	एव	४२	२२
टीकार्थ	टीकार्थ	४२	२२
पञ्चविधन्	पञ्चविधान्	४२	३१
जियम	जियमाए	४३	३
जेणव	जेणव	४३	९
		४३	१७



ओपसी	ओपसी	४४	१२
विद्या पानो	विद्याप्रधानो	४५	२
भावस्ती गरी	भावस्तीनगरी	४५	५
यप्रव	यप्रैव	४५	६
धान्तिप्रधान	धान्तिप्रधान	४५	९
सत्यप्रधान	सत्यप्रधान	४	१३
सुहण	सुहण	४५	१४०
वृको	वैवृको	४६	८
भावती	भावस्ती	४६	१२
तथ	तथा	४७	७
निरूपटः	निरूपटः	४८	१
वय	वय	४९	८
लेपरहित्य	लेपरहित्य	५१	७
व्य	द्रव्य	५१	३१
शोथ छ	शोथ छ	५१	३२
सिचाहग	सिचाहग	५४	६
उपमावस्था	उपमावस्था	५४	२१
आदिहेने	आदिहेने	५४	२३
महापपपपु	महापपपपु	५५	१२
अनात्कलिकेति वा	अनात्कलिकेति वा	५५	१३
अनोर्मिरितवा	अनोर्मिरितवा	५५	१४
सारधि त	सारधिस्त	५६	१
सर्गा क	सर्गा के	५६	७
निभि	निमित्त	५७	२८
महर्म्ममहर्म्मि	महर्म्ममहर्म्मि	५८	१
चतुपय	चतुपय	५९	११
मनुयां	मनुष्यो	५९	२०
वाधे	वाधे	५९	२०
इत्यारम्भ	इत्यारम्भ	६०	१
पञ्चलि	पञ्चलि	६०	१२
गतोप्रेप्रपु	गतोप्रेप्रपु	६१	४

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पार्क
वदाविदएहिं	वंदावंदएहिं	६४	४
करतलपरिगृहीतं	करतलपरिगृहीतं	६४	१०
श्रावत्यां	श्रावरत्यां	६४	११
देवनुप्रिय !	देवानुप्रिय !	६५	२
व्याख्यातपायमिति	व्याख्यातप्रायमिति	७०	२
सव्व ओ	सव्वाओ	७०	६
दिसि	दिसिं	७०	८
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१८
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१८
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१९
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१९
श्रुत्वा	श्रुत्वा	७२	६
अवितहमेय	अवितहमेयं	७३	३
धन्न	धन्नं	७३	८
चत्त सारही	चित्ते सारही	७३	१७
केशिन	केशिनं	७३	२२
गिहिधम्म	गिहिधम्मं	७३	१६
पाव्वयणं	पावयणं	७४	२९
विच्छर्ध	विच्छर्ध	७६	१
शक्कोमि	शक्कोमि	७६	३
मैं ता	मैं तो	७६	१७
सात्त शिक्षा	सात्त शिक्षा	७६	१८
न्देहरस्तम्	सन्देहसहितम्	७९	१
एव	एवं	७९	१०
अश्वदिको	अश्वादिको	७९	१९
परिस्थिति	परिस्थिति	८०	१८
प देशाशिक	देशावकाशिक	८१	१३
प्राध्यातपातथी	प्राध्यातिपातथी	८१	२२
धंछा परारभाषु	धंछा परिभाषु	८१	२३
अश्वरथस्तै व	अश्वरथस्तत्र	८२	१०

अष्टाद	सुख	पेज	पङ्क्ति
गघष्व	गघष्व	८२	२
अष्टिमिषपेमाशु-	अष्टिमिषपेमाशु-	८२	१०
अय	अयं	८२	११
पुछप्येणं	पुछप्येणं	८२	१५
जियसपणा	जियसपणा	८२	१७
भमनापासको	भमनापासको	८३	१
अधु	अधु	८३	२६
पावयनात्रा	पावयनात्रा	८३	२८
निअत्थ	निअत्थ	८४	२६
परिपुष्णं	परिपुष्णं	८५	१३
फासुएसमिजेण	फासुएसमिजेण	८५	२७
पौपपोपयासैः	पौपपोपयासैः	८६	१
काइस्तरहितः	काइस्तरहितः	८८	६
अतुर्दम्यएमी पौणमाम्यः	अतुर्दम्यएमी पौणमाम्यः	८८	३
पौपच	पौपच	९१	१८
सुइर्दुग्गलोक्यन्	सुइर्दुग्गलोक्यन्	९२	६
विहरत्त	विहरत्ति	९२	६
कयाइ	कयाइ	९२	७
सारहा	सारही	९२	११
छपेण	छपेण	९२	१६
अ मते	अह मते !	९३	१६
पसित्त	पसित्त	९३	१९
पाठग्गएण	पाठग्गएण	९४	२०
पुरिसण्णु	पुरिसण्णु	९५	५
पहिले	पहिले-	९७	१७
महत्त्व	महत्त्व	९९	५
इठा	इठा	९९	१०
अमिगमणिज्ज	अमिगमणिज्जे	९९	१०-११
परिबसति	परिबसति	९९	१२
महाप	महाप	१००	२

अढाई	आढाई	१००	७
षयेसिस्स	पणसिस्स	१००	१२
योग	योग्य	१०१	१३
	हंता	१०१	२६
हे चित्ते	हे चित्र	१०२	१०
रीसृपों	सरीसृपों	१०२	११
सो सग्गे	सोपसग्गे	१०२	१४
अभिभभनाय	अभिभभनीय	१०२	२३
	चहूनां द्विपदचतुष्पद—		
	मृगपशुपक्षिसरीसृपाणाम्	१०४	१
	द्विपदादयः	१०४	१
पक्षसरीसृपाणा	पक्षिसरीसृपाणां	१०४	७
तद्वनप्रवेशरूपाऽर्थः	तद्वनप्रवेशरूपोऽर्थः	१०४	१०
कुमारसमणं	कुमारसमणं	१०४	२०
पज्जुवासिस्सति	पज्जुवासिस्संति	१०४	२३
उधामिष्ठः	अधार्मिष्ठः	१०४	२८
पीठलगसेज्जासंफ	पीठफलकसेज्जासं	१०५	१
युमकं	युष्माकं	१०५	५
नमंसि यण्यंति	नमंसिण्यंति	१०५	७
प्रतिहारिकेण	प्रातिहारिकेण	१०५	८
वुत्तुं	तुत्तुं	१०५	१२
त	तत्र	१०६	१२
सम्मानयियन्ति	सम्मानयिष्यन्ति	१०६	२९
खाद्यं खाद्यं	खाद्यं स्वाद्यं	१०७	३
मज्झ	मज्झ	१०७	१५
यत्रैव	यत्रैव	१०८	६
कुमारमणस्स	कुमारसमणस्स	१०८	२३
डेक्कयाद्धंभा	डेक्कयाद्धंभा	१०८	२६
दुइज्जमाणे	दुइज्जमाणे	११०	६
पडिहारिणं	पाडिहारिणं	११०	२७
इत्यादि	इत्यादि	१११	१

मृगवगम्	मृगवनम्	१११	१३
बिषयेण	बिषयम्	१११	२६
नयति	नयति	११२	१४
यत्रय	यत्रय	११५	१
वरतरणी सपठतेहि	वरतरणी सपठतेहि	११५	१८
गह	गिह	११५	२४
वरतरणी सपठतेहि	वरतरणी सपठतेहि	११५	३०
तत्रय	तत्रय	११६	२
भावस्ती	भावस्ती	११६	३
समापात्	समीपात्	११७	१
समुपदिष्टः	समुपदिष्टः	११७	१२
	कामयोगान्	११७-	१७
	प्रत्यनुमन्	११७-	१७
सावस्याजा	सावस्थीजा	११८	२
केलीकुमार मयः	केलीकुमारधमजः	११८	७
वस्त्या	भावस्त्या	११८	८
श्वेताविका	श्वेतविका	११८	९
कसिकुमारसमये	कसिकुमारसमये	११८	२१
ही	ही	११८	२४
कुमार मयो	कुमार धमयो	११९	४
व्याख्या	व्याख्या	११९	१८
केलीकुमार धमज	केलीकुमारधमज	११९	१८
ही	ही	११९	२२
भक्तानक	भक्तानक	१२०	१४
नाम गाय	नाम गोय	१२१	१४
अवकमति	अवकमति	१२१	१४
पूर्वागुर्णी	पूर्वागुर्णी	१२३	४
अमण	अमण	१२३	१५
बिहर	बिहर	१२३	२९
बिउल	बिउल	१२४	९
मुनमेव	मुनमेव	१२४	११

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पार्श्व
सज्जय	सज्जयं	१२४	१३
प्रा दपीठा	प्रासादपीठा	१२५	२
पण	पग	१२५	१८
हृदयभा	हृदयभां	१२५	२३
हुं	हुं	१२५	२४
पडिविसज्जे	पडिविसज्जेइ	१२६	१८
भृगवनोयधान	भृगवनोदान	१२६	२५
उलं जीवियारिहं	विपुलं जीवियारिहं	१२६	३०
उ सने	उसने	१२७	७
पच्चाप्पिणेह	पच्चप्पिणेह	१२७	१०
घंटोवाले	घंटोवाले	१२७	१४
हियए	हियए	१२७	३०
घंटोवाला	घंटोवाला	१२८	१२
हुं	हुं	१२८	२०
उय	उय	१२८	८
वहुणं	वहुणं	१३०	१३
परमसौमनस्थितः	परमसौमनस्थितः	१३०	१९
वहुगुणतरम्	वहुगुणतरम्	१३१	१०
आरामगय वा	आरामगयं वा	१३२	३
त चेव	तं चेव	१३२	८
ना लभइ	नो लभइ	१३२	१२
केवलिपन्नत धम्म	केवलिपन्नतं धम्मं	१३२	२१
केवलिपन्नत	केवलिपन्नतं	१३२	२३
वाद्यस्वाद्येन	खाद्यस्वाद्येन	१३५	१
छत्तेण	छत्तेण	१३५	१८
महणं	माहणं	१३५	२१
ण	णं	१३५	२९
आरामगत	आरामगतं	१३६	२
उवस्सगयं	उवस्सगयं	१३६	१९
प्रयुतासना	प्रयुतासना	१३६	२५

अशुद्ध	शुद्ध	पेस	पङ्क्ति
अर्था	अर्थी	१३७	२७
विज्ञानादि	विज्ञानीदि	१३८	३
अत्र	तत्र	१३८	५
जीवा जावादि	जीवा जीवादि	१३९	९
पदार्थो	पदार्थो	१३०	१७
अमण	अमण	१४०	१३
दैवत	दैवत	१४१	१
माहानन	माहनेन	१४१	८
उसका	उसकी	१४१	१३
अखणताये	अखणताय	१४२	१
चित्त	चित्ते	१४३	१२
टीकाय	टीकाय-	१४३	२८
आउग्वटे	आउग्वटे	१४४	४५
दिसि	दिसि	१४४	५
मानेप्याम	मानेप्यामि	१४४	१०
अवेष्टी	अवेष्टी	१४५	११
सारहि	सारहि	१४५	१२
अमणाइकस्वमाणा	अममणाइकस्वमाणा	१४५	१९
अवश्य	अवश्य	१४७	१९
नि अस्थाने	निवासस्थाने	१४७	२७
अवमाणत्तिय	अवमाणत्तिय	१४८	१-२
ए होठ	एव होठ	१४८	१२
एत स्तु	एतस्स्तु	१४९	५
त एण	त एण	१४९	१८
त आसे	ते आसे	१४९	१८
त एण	त एण	१४९	३०
त आसे	ते आसे	१४९	३०
रा कि	रात्रिक	१५३	१०
रा	रात्रिक	१५३	१९
दण्य	दण्य	१५३	२०

शुद्धप्रावे । ।	शुद्धप्रावेश्यानि	१५४	१६
चि सारथी	चित्र सारथी	१५४	२०
गथे।	गथे।	१५४	३०
ख स	खलु स	१५५	२
अत्रय	अत्रैव	१५५	१०
अज्ज्ञत्थिए	अज्ज्ञत्थिए	१५७	३१
निविणणाणा	निव्विण्णाणा	१५८	२७
निर्विण्णाणं	निव्विण्णाणं	१५८	२७
चि सारथिमेव	चित्रसारथिमेव	१५९	३
मूर्वा	चित्रसारथिमेव	१६२	४
हाता है	होता है	१६२	८
जा	जो	१६२	१४
भस्त२ वाणा	भस्त३वाणा	१६२	२७
करेति	करोति	१६३	६
जढ	जड्	१६४	१६
पथ	पथे	१६४	२४
पहीसी राया	पएसी राया	१६५	१४
खल	खलु	१६६	२
पुरि	पुरिसं	१६६	१७
अण्ण जवियत्तं	अण्ण जीवियत्तं	१६६	२१
जीत्तिं	जीवितं	१६७	३
अन्नजीवितत्वमू	अन्नजीवितत्वं	१६७	११
पवि चयं	परिचयं	१६७	१५
ज्जडं पुपवासद्धि	जडं पज्जुवासत्ति	१६८	२
केशा	केशी	१६८	५
एसे	एसे	१६८	१४
केसा कुमारसमणे	केसी कुमारसमणे	१६८	१८
प्रासुकैपणीयान्नमात्र विनः	प्रासुकैपणीयान्न मात्र जीविनः	१७०	५
श्रुतज्ञान	श्रुतज्ञान	१७२	१२३
प्ररार	प्रकार	१७४	११
केवलवाणे	केवलणाणे	१७४	१८



त वा	तद्यथा	१७५	११
आमिनिबो ज्ञानम्	आमिनिबोधिकज्ञानम्	१७६	४
अ विष्टम्	अज्ञप्रविष्टम्	१७६	५
भुतज्ञान विषयक	भुतज्ञानविषयक	१७६	५
प्रशस्त	प्रशस्त	१७६	९
मिनिबोधिक ज्ञान	आमिनिबोधिक ज्ञान	१७६	१३
अवधि न	अवधिज्ञान	१७६	१९
क्षयेऽपथभिः	क्षयेऽपथभिः	१७६	२६
भुतज्ञानम्	भुतज्ञानम्	१७७	४
तत्	तत्	१७७	६
एतद्रूप	एतद्रूप	१७७	८
उपविसामि	उपविसामि	१७८	१३
विष्ण	विष्ण	१७८	२७
हेतुः	हेतुः	१७९	२
केसिकुमारभ्रम	केसिकुमारभ्रम	१८०	१५
मनाऽम्	मनाऽम्	१८०	१
करभरवृत्ति	करभरवृत्ति	१८५	५
त	त	१८६	२८
अवधि ण	अवधि ण	१८६	२२
रक्ष्यापि	रक्ष्यापि	१८७	१०
क्षर	क्षर	१८७	२२
सरीर	सरीर	१८७	२९
नो	नो	१८८	१३
मनाऽम्	मनाऽम्	१८८	१७
विशेषणावधिष्टो	विशेषणावधिष्टो	१८९	५
स्तु	स्तु	१८९	६
पणसि	पणसि	१८९	१४
राय	राय	१८९	१४
एव	एव	१८९	१४
सुरियकटा	सुरियकटा	१८९	१५
तुम्	तुम्	१८९	१५

		पेज	पङ्क्ति
अशुद्ध	शुद्ध	१८९	१६
ण्हाय	ण्हायं	१८९	१७
च्छित्त	च्छित्तं	१८९	१७
हंकार भूसिय	सञ्वालंकार भूसियं	१९०	२
	तुमं	१९०	४
यणं	परियणं	१९०	६
	तं	१९०	११
त्तम्	सम्मं	१९०	१२
ण	णं	१९१	५
लागं	लोगं	१९१	१३
पएसि	पएसि	१९१	१५
पएसि	पएसि	१९१	१७
देवि	देवि	१९२	४
प्रदेशन्	प्रदेशिन्	१९२	१०
हंडं	हंडं	१९२	२५
हृत्थविन्नगं	हृत्थ भिन्नगं	१९३	१
व्यपरापय	व्यपरोपयेत्	१९४	६
शक्रोति	शक्रोति	१९५	१
शाघमागन्तुं	शीघ्रमागन्तुं	१९५	१
शक्राति	शक्रोति	१९६	३
शक्राति	शक्रोति	"	५
"	"	१९६	१२
तुम सवात्	तुम इस वात्	१९८	१
मूर्धकाता देवा	सूर्यकान्ता देवी	१९९	४
नि क	निजक	२००	२
मगर्यामधामिको	नगर्या मधार्मिको	२००	३
करभरवृत्ति	करभरवृत्ति	२००	८
ना शक्राति	नो शक्रोति	२०१	१
शरास्या	शरीरयो	२०१	५
वयासा	वयासी	२०१	१३
अह			

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पं
आश्रया	अश्रिया	२०२	४
सरीर	सरीर	२०२	६
भागतु	आगतु	२०२	६
अन्न	अन्न	२०२	८
ना	नो	२०२	१४
वृत्ति	वृत्ति	२०४	१
सा कामवादति	सा कामवदिति	२०६	७
इत्यात्राह	इत्यत्राह	२०८	३
पौत्र	पौत्र	२०८	७
वृत्ति	वृत्ति	२०८	९
"	"	"	१३
त मात्	तस्मात्	२०९	३
दिम्बेहि	दिम्बेहि	२१०	१४
काममोगेहि	काममोगेहि	"	१४
"	"	"	१७
अञ्जोववण्ये	अञ्जोववण्ये	२१०	१७
गधे	गंधे	२११	५
ठण्णेहि	ठण्णेहि	२११	७
भिगार कडुप्पुय	भिगार कडुप्पुय	२११	१९
धार्मिकी	धार्मिकी	२१२	२०
पडिसुण्णोअि	पडिसुण्णोअासि	२१२	२५
क्षीप्रमागन्तम्	क्षीप्रमागन्तुम्	२१३	३
विशेषणोसे	विशेषणोसे	२१३	७
देवलाक	देवलोफ	२१३	११
हुभोवक्कणए	अहुभोववण्णए	२१३	३०
उहे	उन्हे	२१४	१४
दिम्बेहि	दिम्बेहि	२१४	१८
अक्राति	अक्रोति	२१५	२
अणुनापपन्नफ	अणुनोपोपपन्नफ	२१६	२
केअ	केअी	२१७	१४

लामं	लोगं	२१७	१७
संधिवालेहिं	संधिवालेहिं	२१९	१२
जीवित	जीवितं	२१९	१४
णग्गए	णिग्गए	२१९	२२
अन्न	अन्नं	२१९	२३
भते	भंते	२२०	१
अउकुभीए	अउकुंभीए-	२२०	१
अन्न	अन्नं	"	३
अयामयेन	अयामयेन	२२१	३
वैवारिक	दौवारिक	२२०	८
किञ्चित्	किञ्चित्	२२२	२
जओ ण	जओ णं	२२२	१२
अवादीत्	अवादीत्	२२२	५
रोएज्जा	रोएज्जा	२२२	२२
सम्पन्नाः	सम्पन्नाः	२२४	३
माडम्बक	माडम्बिक	२२४	१५
प्रवाव	प्रवाल	२२४	१८
पोयधु	पोयधु	२२४	२७
नाभ्त	नास्ति	२२८	१
किञ्चित्	किञ्चित्	२२८	१
सुण्डु	सुण्डु	२२८	३
मेरिच	मेरि च	२२९	२६
से तेणं	से णूणं	२३०	२८
वहया	वहिया	२३०	२८
चा जाई	जाव राई	२३०	३१
अंकुष्ठितगतिः	अंकुष्ठितगतिः	२३१	१६
सदद्वाहि	सदद्वाहि	२३१	२७
सरीर	सरीरं	२३२	१७
ऐ १	ऐसा	२३३	६
भते	भंते !	२३३	११
जीवयाओ	जावियाओ	२३२	१५

तामयस्कृम्भी	तामयस्कृम्भी	२३४	१
कृमि कृम्भी मिष	कृमि कृम्भी मिष	२३४	१
अण्हाण	अण्हाण	२३४	३०
पश्यामि	पश्यामि	२३६	४
प्रतक्षा	प्रतिक्षा	२३६	१३
सु तिष्ठि	सुप्रतिष्ठिता	२३६	१३
कैसकृ तसमण	कसिकृमारसमण	२३९	०३
सादृश्यम्	सादृश्यम्	२४१	२४१
अचमे ष्टक दुदुचण	अचमे ष्टकदुचण	२४३	१६
हा पभू	हेता पभू	२४४	४
अप जचो	अपज्जतचो	२४४	८
नायमर्थसः मर्थ	नायमर्थः समर्थः	२४५	३
ोरिष्ठयण	कोरिष्ठयण	२४५	२४
जैसे	जैसे	२४६	१३
एग	एग	२४९	९
प्रक्षा	प्रक्षा	२४९	१८
नधी	नधी	२४६	२६
म	मह	,	२७
परिह्वचण	परिवह्विचण	२५०	३२
मण	जहण	२५१	२४
धन	धन	२५१	३०
प्रसू	प्रसूः	२५२	९
जैसा	जैसा	२५२	१७
पपसि	पपसि	२५३	१९
सुष्णा	सुष्णो	२५५	१
क्षिप्वापगतः	क्षिप्वापगतः	२५५	१
ना	नो	२५६	२
रोबामम्	राबानम्	२५७	२
वाहयायामुपस्थानशालाया	वाहयायामुपस्थानशालाया	२६२	१६
वाहयायामुपस्थानशालाया	वाहयायामुपस्थानशालाया	२६२	२८
पपस	पपसि	२६३	१७

		पेज	पङ्क्ति
अशुद्ध	शुद्ध	२६३	२१
जीयस्स	जीवस्स	२६५	२
खल	खलु	२६६	१
पएसा	पएसी	२६६	१
एव	एवं	२६६	१
वयासा	वयासी	२६८	७
पदाना	पदानां	२६९	१०
अम्ह	अम्हं	२७०	४
पा इ	पासइ	"	९
तसि	तंसि	२७०	११
एगत	एगंते	२७०	१३
सकपो	संकप्पे	२७०	१५
संकप्प	संकप्पं	२७१	१
झियायमाण	झियायमाणं	२७१	१
तेसि	तेमिं	२७१	१
उवएलद्धे	उवएसलद्धे	२७१	९
खाइम	खाइमं	२७१	२२
रायं	रायं	२७२	१
कचित्	केचित्	२७२	१
वनापजीविन !	वनोपजीविन !	२७२	२
ज्यातिश्च	ज्योतिश्च	२७२	२
ज्यातिर्भाजनं च	ज्योतिर्भाजनं च	२७२	८
केइ पुरिसो	केइ पुरिसा	२७३	६
विज्झवेत्ता	विज्झवेत्ता	२७५	१२
झियाइ	झियायइ	२७८	१६
वधइ	बंधइ	२७९	१
कराति	करोति	२७९	१
अरणि	अरणिं	२७९	७
आर	और	२७९	१४
तएण	तएणं	२७९	२६

स्वाणच्छसि	त्वमिच्छसि	२८०	५
अग्निपात्र	अग्निपात्रे	२८२	१६
पारकर	परिकर	२८५	१५
परिषेद्यति	परिषेद्यति	२८६	२
परिषो	परिषदो	२८७	४
मज्जे	मज्जे	२८७	१५
कर्तव्याकर्तव्यनिर्णायकानां—	कर्तव्याकर्तव्यनिर्णायकानां	२८८	३
वक्तुम्	वक्तुम्	२८८	९
अवहेलयितुम्	अवहेलयितुम्	२८८	१०
योग्योऽस्मि	योग्योऽस्मि	२८८	१२
भा :	भावः	२८८	१३
आणाम	आणामि	२८८	१९
अवस्ज्ज	अवस्ज्ज	२८८	१९
पट्टलाम	पट्टिलोम	२८९	१०
वामवामेन	वाम वामेन	२९२	१
अनष्ट	अनिष्ट	२९२	९
स्य	यस्य	२९३	४
अप्यपरिषदि	अपि परिषदि	२९३	१९
विरुद्धेनत्यर्थ	विरुद्धेनत्यर्थ	२९३	२९
त	त	२९४	७
अयमेतद्रूप	अयमेतद्रूप	२९४	११
यात्	यावत्	२९५	१
कारणेन	कारणेन	२९५	३—४
यावच्छेद म	यावच्छेदेन	२९६	४
प्रतिलोम प्रतिबोमेन	प्रतिलोम प्रतिबोमेन	२९६	५
मज्जत्रयोक्त	मज्जत्रयोक्त	२९९	१३
किं	किं	३०३	२
पपसा	पपसी	३०३	१६
अप्यजने	अप्यजने	३०४	३
इत्यामल्ल	इत्यामल्ल	३११	२३
मातिनिपुणाः	नीतिनिपुणाः	३०८	३

धुंघू	धुंघू	३१२	२३
हस्ती	हस्ती	३१३	१
णिच्छिड् इ	णिच्छिडाइं	३१४	८
सर	सतर	३१८	१२
कार शालायाः	कार शालायाः	३१९	३
काट शालायाः	कार शालायाः	३१९	७
त	तं	३२१	१
अह	अहं	३२१	१
एव	एवं	३२१	३
मोक्षमामि	मोक्ष्यामि	३२१	७
समासरणं	समोसरणं	३२१	२७
एव	एवं	३२३	४
अइगाढबंधणवद्ध	अइ गाढबंधणवद्धे	३२३	१९
करोत	करेंति	३२४	५
तए ण	तए णं	३२५	७
विस्तारवली	विस्तारवाली	३२६	१३
पासति	पासंति	३२७	२५
जाघ	जाव	३२७	२८
सुवहं	सुवहुं	३२८	८
पडिसुणेति	पडिसुणेति	३२८	१०
तउययारं	तउयभारं	३२८	१३
तत्थण	तत्थणं	३२८	१४
बंध च्चए	बंधित्तए	३२८	१५
बहुह	बहुहिं	३२९	३१
ग्रारंभ	ग्रारंभ	३३०	१०
दासीदासगामहिगवेलकं	दासीदासगोमहिसगवेलकं	३३१	१
प्रायश्चित्ताः	प्रायश्चित्ताः	३३१	२
मानु कान्	मानुष्यकान्	३३१	४
पचविहे	पंचविहे	३३१	३०
लाह	लोह	३३२	५
उ गच्छाह	उवागच्छह	३३२	१९



त्वाणच्छसि	त्वमिच्छसि	२८०	५
अग्निपात्र	अग्निपात्रे	२८२	१६
पारस्कर	परिस्कर	२८५	१५
परिषेधयति	परिषेधयति	२८६	२
परिषो	परिषदो	२८७	४
मन्त्र	मन्त्रो	२८७	१५
वर्तव्यावर्तव्यनिर्णायकानां-	कर्तव्याकर्तव्यनिर्णायकानां	२८८	३
वक्तुम्	वक्तुम्	२८८	९
अवहेलितुम्	अवहेलयितुम्	२८८	१०
योम्याऽग्नि	योम्योऽग्नि	२८८	१२
मा	माचः	२८८	१३
जाणाम	जाणामि	२८८	१९
अवस्त्व	अवस्त्वह	२८८	१९
पडिलोम	पडिलोम	२८९	१०
वामवामेन	वाम वामेन	२९०	१
अनष्ट	अनिष्ट	२९२	९
स्य	यस्य	२९३	४
अपपरिषदि	अपि परिषदि	२९३	१९
विरुद्धेनत्पर्य	विरुद्धेनत्पर्य	२९३	२९
त	त	२९४	७
अयमे द्रुम	अयमेतद्रुम	२९४	११
यात्	यावत्	२९५	१
कायेन	कारणेन	२९५	३-४
यावच्छे न	यावच्छब्देन	२९६	४
प्रतिलोम प्रतिलोमेन	प्रतिलोम प्रतिलोमेन	२९६	५
मङ्गत्रयोक्त	मङ्गत्रयोक्त	२९९	१३
क्त	किं	३०३	२
पणसा	पणसी	३०३	१६
व्यजने	व्यजते	३०४	३
इत्यामल्ल	इत्यामल्ल	३११	२३
नातिनिपुणाः	नीतिनिपुणाः	३०८	३

कीदृशी  
त्वादिमेन  
केसि

ए

कनलं

अंतेउ

परिणतो

म मि

ह थमेव

प्रि लोम

व्याग १

श्रे :

शयन नन्तरं

ि शुरु

सौमभ्यितः

बोध्यमिति

स्वकृत तिकृत

महातिमदानायां

यङ्ग

उपदेय

सुरिकं प मृदाणं

पएसिगाय

पहान्नेय

उवसोमेमाणा

हामज्जट

मदन्त

णट्टमग्गाट्ठा

रमणिज्जे

वनपण्डा

ना

ना कलिण

कीदृशी

स्वादिमेन

केसि

एवं

कलं

अंतेउ

परिणतो

मनमि

द्व्यमेव

प्रतिलोम

व्याग्या

श्रयः

शयनानन्तरं

किशुरुः

सौमनभ्यितः

बोध्यमिति

स्वकृत प्रतिकृत

महाति महालयायां

मद्व

उपदेश

सुरिकंतप्पमुहाणं

पएसिगायं

पहारेत्य

उवसोमेमाणा

हसिज्जट

मदन्त

णट्टमालाड्वा

रमणिज्जे

वनपण्डो

नो

नो कलिण

३४४

३४५

३४५

३४६

३४६

३४६

३४८

३४९

३४९

३४९

३४९

३४९

३४९

३५०

३५०

३५१

३५१

३५१

३५१

३५२

३५२

३५२

३५३

३५३

३५४

३५४

३५५

३५५

३५५

३५६

३५६

३५६

७

३

१३

१

२५

७

१

१

३

६

७

७

४

७

१०

१३

२२

११

१५

२२

२८

२५

२५

४

७

२

२३

२३

१

६

८

पञ्चे।	पाञ्चे।	३३३	२४
अग्रामिकाया	अग्रामिकायाः	३३५	३
समीपे	समीपे	३३६	५
सर्वे हो	सर्वे हो	३३६	११
वर्धन	वर्धन	३३७	५
प्रासादावन्तसदान्	प्रासादावतसकान्	३३७	१२
प्रा भिषा	प्रायभिषा	३३७	१६
घृतदध्यक्षताः	घृतदध्यक्षताः	३३७	१६
विश्रास्यमानाः	विश्रास्यमानाः	३३७	२२
प्रत्यनुमन्ता	प्रत्यनुमन्तो	३३७	२३
अल्पमस्य	अल्पमस्ये	३३७	२६
शान्तिष्ठद्वै	शान्तिष्ठद्वैः	३३७	३०
विस्मयः	विस्मयः	३३८	२
दुष्टा सानम्	दुष्टावसानम्	३३८	५
अहममि	अहममि	३३८	६
तमादेतो	तमादेतो	३३८	११
अन्तरोक्त	अन्तरोक्तः	३३८	१३
त	त	३३८	१७
इच्छाम	इच्छामि	३३८	१७
देवानुमि णामन्तिके	देवानुमियानामन्तिके	३३९	१
णमसेज्जा	णमसेज्जा	३३९	९
सरार	सत्कार	३३९	१२
त्र णामाचार्याणां	त्रयाणामाचार्याणां	३४२	२
अनामि	अनामि	३४२	२
इति	इति कल्पयेत्	३४२	५
मदन	मदन	३४२	१५
अक्षमत्वा	अक्षमयित्वा	३४२	४
णमसेज्जा	णमसेज्जा	३४२	०
सरार	सत्कार	३४२	१२
केशीकुमारभ्रमणः	केशीकुमारभ्रमणः	३४४	१
प्रदेष्टा	प्रदेष्टी	३४४	१

शत्रु योगेन	शस्त्रप्रयोगेन	३७१	५
मारयिवा	मारयित्वा	३७१	७
स्थापयेत्वा	स्थापयित्वा	३७१	८
कार नया	कारयन्त्या	३७१	९
कोष	कोषं	३७१	२३
जनपद	जनपदं	३७२	१
आ मगतो	आत्मगतो	३७२	९
पाल तो	पालयतो	३७२	४
सुरियकं । देवी	सुरियकंता देवी	३७३	९
निद्रा	निद्रा	३७४	६
दाहकं ते	दाहवक्ते	३७४	७
विहइ	विहाइ	३७४	७
दुरघ स	दुरध्यास	३७४	१५
पाउब्भू ।	पाउब्भूया	३७४	१८
वित्तज्जर परिगयसरीरे	पित्तज्जर परिगयसरीरे	३७४	२०
डुया	कडुया	३७४	१९
ि हरइ	विहरइ	३७४	२०
करिंमश्चित्	कस्मिंश्चित्	३७४	२
तस्य	तस्य	३७५	७
नमो थुणं	नमोत्थुणं	३७७	१२
त थ यं	तत्थ गयं	३७७	१४
संपलियंकनिसने	संपलियंक निसन्ने	३७७	२२
अतिण	अंतिण	३७७	३२
त सेव	तस्सेव	३७८	७
प्रा तिपात्त	प्राणातिपात्त	३७८	८
उ६	उष्ण	३७८	१७
परिया	परित्याग	३७८	१९
त इ णिं	तं इयाणिं	३७८	२१
प्र याख्यान	प्रत्याख्यान	३७९	१२
उ हैं	उन्हें	३७९	१२
सतारक	संस्तारक	३७९	२१

णा	णो	३५६	८
उवसोममाषे	उवसोममाषे	३५६	९
तयाण	तयाण	३५६	१६
”	”	”	२८
अपाण	अपाण	३५६	२९
तयाण	तयाण	३५७	२५
तया	तया	३५७	२६
पुष्व	पुष्वि	३५८	२९
कक्षाने	कक्षीने	३५९	९
हरितक । अन्य	हरितकान्य	२५९	२५
अनेक	अनेक	३६१	१६
स्त्रादिम	स्त्रादिम	३६३	१०
अतेउर च	अतेउर च	३६४	८
स्फु	स्फु	३६७	२
विमक्त,नि	विमक्तानि	३६६	१
यरेनारम्य	यरेनारम्य	३६६	८
अतेउर	अतेउर	३६६	१३
रञ्ज	रञ्ज	३६६	१६
राय	राय	३६७	१२
अपमिय	अपमिय	३६७	२४
केजि सत्य	केजिसत्य	३६७	१९
राज्यभिय	राज्यभिय	३६८	२
सेय	सेय	३६९	७
विपय	विपय	३६९	११
पूर्वपुत्रे	पूर्वपुत्रे	३७०	७
न सब	न सब	३७०	१७
पडेबागरमाणी	पडेबागरमाणी	३७०	२२
अन्वस्तिण	अन्वस्तिण	३७०	२९
वसं न्य	वसं=सैन्य	३७१	१
घा य बापनपुहम्	घान्यस्वापनपुहम्	३७१	२
विहरते	विहरति	३७१	४

दृढप्रतिज्ञ	दृढप्रतिज्ञ	४०९	१६
तथाहि	तथाहि	४१२	८
नगरमानम्	नगरमानम्	४१५	२
दृढप्रतिज्ञं	दृढप्रतिज्ञं	४१८	२
सम्मानिस्संति	सम्मानिस्संति	४१९	२२
"	"	"	३०
जोव्वणगमणुपत्ते	जोव्वणगमणुपत्ते	४२०	२
परिपक्क	परिपक्क	४२२	३
उम्मुक्कवालभाव	उम्मुक्कवालभाव	४२४	१४
खइयं	खइयं	४२५	१७
पद्मात्पलमिति	पद्मात्पलमिति	४२६	३
दृढप्रतिज्ञ	दृढप्रतिज्ञ	४२६	९
पउमेइवा	पउमेइवा	४२६	२५
मेत्सयते	मेत्सयते	४२७	१
अगारिता	अगारिता	४२७	२
इय्या मिता	इय्या मिता	४२७	२
तगा १ ओ	अगाराओ	४२७	९
आजवसे	आजवसे	४२७	१७
वद्धित	वद्धित	४२७	१९
मग्गेणं	मग्गेणं	४२७	२९
दृढ कुमार	दृढकुमार	४२८	१०
भणवयण कायजोगे	भणवयण कायजोगे	४२८	३०
वस्त्रभोगेष	वस्त्रभोगेष	४२९	२
मविष्यति	मविष्यति	४२९	४
ना	नो	४२९	४
श सहस्त्र	शतशहस्त्र	४२९	४
ने पलिप्तं	नोपलिप्तं	४३०	१
सच्चआ	सच्चओ	४३१	४
वृती १	वृतीया	४३२	८
सवथा	सर्वथा	४३३	२
	कायोत्सग	४३३	२१

बेल	बे लोग	३९८	१ २१
बगुहाव	बगुहान्	३९९	२
बढमियाह	बढमियाहि	४००	— २ —
पदिमुजमाये	परिमुजेमाये	४००	९
परा गजमाये	परगिजमाये	४००	१२
खीर पाऽ ए	खीरपाऽ ए	४००	२३
बर्बरीम	बर्बरीमिः	४०१	२
बहुशिका मः	बहुशिकामिः	४०१	७
हे-बहलीहि	बहलीहि	४०१	२७
घ कञ्चुकि	घरकञ्चुकि	४०२	२
अवपाहिज्जमाये	अवपासिज्जमाये	४०२	२७
रिधिप्तः	परिधिप्तः	४०३	२ —
बहुप्रकारामिः	बहुप्रकारामि	४०३	८
गिरिकदरमल्लीण	गिरिकदरमल्लीये	४०३	२६
युवति मूहः	युवति समूहः	४०४	८
ह ताव	हत्ताव	४०४	१२
अन्यया	अन्यया	४०४	१४
	गिरिकन्दरास्तीन	४०५	२
पाठचारे	पठिचारं	४०६	१
बृह	बृह	४०६	१
दृढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४०६	८
दृढपइष्ण	दृढपइष्ण	४०६	११
दृढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४०६	१२
तिहिकरणह्स्वत्	तिहिकरणह्स्वत्	४०६	२३
नेः	नेप्यत्	४०७	१
द्वारक	द्वारक	४०७	१
कणतथ	कणतथ	४०७	२
तण	तण	४०७	८
गणि ॥ हायाओ	गणियप्यहायाओ	४०७	९
वयवीहि	वत्पुवीहि	४०७	१०
वपुज्ज	वत्पुज्जिज्जं	४०८	१४

गम्भगयसि	गम्भगयंसि	३८९	३
विहकताणं	विहकंताणं	३८९	६
सुकुमाल पाणपाय	सुकुमालपाणिपाय	३८९	६
पियदंसण	पियदंसणं	३८९	८
दारय	दारयं	३८९	८
भविण त	भविण्यति	३८९	१०
व्यतिक्रातेषु	व्यतिक्रान्तेषु	३८९	११
दरगंगेसि	दारगंसि	३८९	१५
दारगस	दारगस्स	३८९	१८
दिवसे	दिवसे	३९०	६
त	तं	३९१	१
मित्तणाइ	मित्तणाइ	३९१	३
मंगल	मंगल	३९२	२७
भोयणमंडवसि	भोयणमंडवंसि	३९३	९
करेगे	करेंगे	३९३	१२
परिभुंजेमाणा	परिभुंजेमाणा	३९३	२७
परमसुइभू १	परमसुइभूया	३९३	३१
वन्धि परिजनस्य	सम्बन्धिपरिजनस्य	३९४	१
मित्र—ज्ञात	मित्र—ज्ञाति	३९४	११
त सेव	तस्सेव	३९४	१०
घम्मे	घम्मे	३९४	२५
करिस्सति	करिस्संति	३९५	२७
संप्राप्ते	संप्राप्ते	३९६	४
फिरने	फिर वे	३९६	२०
पयश्चित्तौ	प्रायश्चित्तौ	३९७	१
म आस्वादन्तौ	आस्वादयन्तौ	३९७	१०
आद	आदि	३९७	१५
द रेके	दूसरे के	३९७	२०
कथयतः	कथयिष्यतः	३९८	८
जिनप्ररूपिते	जिनप्ररूपिते	३९८	१०
दृढ प्रतिज्ञ	दृढप्रतिज्ञस्य	३९८	२१



सपत्न्यः	सपत्न्यक	८०	१
स न	स्रग्धेन	३८०	३
नमस् ।	नमस्कार	३८०	१६
भवान्	भगवान्	३८०	१६
वे	सर्वे	३८१	३
समत	समस्त	३८१	१२
याव िव	यावज्जीव	३८१	१७
अतिचा ।	अतिचाराः	३८३	२
सामायिकः	सामायिकः	३८३	४
सूर्यामि	सूर्यामि	३८३	४
देव देन	देवत्वेन	३८३	५
माप्सम्	समाप्सम्	३८३	६
अधुनपपेन्मक	अधुनोपपन्नक	३८३	१३
मापानन पर्याप्सा	मापानन पर्याप्सा	३८४	१
सूर्यामदेवेन	सूर्यामदेवेन	३८४	८
उपाञ्चि	उपाञ्चितः	३८४	१०
इ दि पञ्चचीप	इदियपञ्चचीप	३८४	१२
इन्द्रय	इन्द्रिय	३८४	१३
भते	भते	३८५	१
सेण	से ण	३८५	१८
ण	ण	३८५	२१
सूर्याम स	सूर्यामस्त	३८५	२२
भवत्त	भवन्ति	३८६	१
आयोगप्रयोगम् युक्तानि	आयोगप्रयोगसप्रयुक्तानि	३८६	३
िच्छदिंत्	पिच्छदिंत्	३८६	३
अ मस्मिन्	अन्यतमस्मिन्	३८६	४
कुपणि	कुलाणि	३८६	८
महाइ	अर्होइ	३८६	८
दिगाइ	दिगाइ	३८६	१४
आ ोग	आयोग	३८७	१४
या	पार		

दृढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४०९	१६
तथाहि	तथाहि	४१२	८
नगरमानम्	नगरमानम्	४१५	२
दृढं जिज्ञं	द्रढप्रतिज्ञं	४१८	२
संमाणेस्संति	सम्माणिस्संति	४१९	२२
”	”	”	३०
ज्जोव्वणगमणुपत्ते	जोव्वणगमणुपत्ते	४२०	२
परिपक्क	परिपक्कं	४२२	३
उम्मुक्कवालभाव	उम्मुक्कवालभावं	४२४	१४
खाइयं	खाइयं	४२५	१७
पद्मात्पलमिति	पद्मोत्पलमिति	४२६	३
दृढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४२६	९
पउमेइवा	पउमेइवा	४२६	२५
भेत्स्यते	भोत्स्यते	४२७	१
अ गारितां	अनगारितां	४२७	२
ईय्यां मिता	इय्यां समितो	४२७	२
तगा । ओ	अगाराओ	४२७	९
आर्जवसे	आर्जवसे	४२७	१७
वद्धित	वर्द्धित	४२७	१९
भग्गेणं	भग्गेणं	४२७	२९
दृढ कुमार	द्रढकुमार	४२८	१०
भणवयण कायजोगे	मणवयण कायजोगे	४२८	३०
वस्त्रभोगेष	वस्त्रभोगेषु	४२९	२
भविष्यति	भविष्यति	४२९	४
ना	नो	४२९	४
श सहस्त्र	शतशहस्त्र	४२९	४
ने पलिप्तं	नोपलिप्तं	४३०	१
सच्चआ	सच्चओ	४३१	४
तृती ।	तृतीया	४३२	८
सवथा	सर्वथा	४३३	२
कायात्सर्ग	कायोत्सर्ग	४३३	२१

बेल	बे लोग ।	३९८	२१
बगुहात्	स्वगुहान्	३९९	२
बहमियाह	बहमियाहि	४००	२
पदिमुज्जमाणे	परिमुज्जमाणे	४००	९
परा गज्जमाणे	परगिज्जमाणे	४००	१२
खीति धाए ए	खीरिपाए ए	४००	२३
वर्षरीम	वर्षरीमिः	४०१	२
बहुशिका मः	बहुशिकामिः	४०१	७
हे-बहलीहि	बहलीहि	४०१	२७
घ कम्पुकि	घरकम्पुकि	४०२	२
अवपाहिज्जमाणे	अवपासिज्जमाणे	४०२	२७
रिखित्त	परिखित्तः	४०३	२
बहुप्रकारामिः	बहुप्रकारामिः	४०३	८
गिरिकदरमल्लीण	गिरिकदरमल्लीणे	४०३	२६
युवति मूहः	युवति समूह	४०४	८
इ ताह	इम्हात्	४०४	१२
अन्यया	अपस्या	४०४	१४
	गिरिकन्दरालीनः	४०५	२
पाठचारे	पठिचार	४०६	१
बूह	बूहं	४०६	१
दहप्रतिज्ञ	दहप्रतिज्ञ	४०६	८
दहपइण्ण	दहपइण्ण	४०६	११
दहप्रतिज्ञ	दहप्रतिज्ञ	४०६	१२
तिहिक्करणकुसल	तिहिक्करणकुसल	४०६	२३
नेह	नेप्पतः	४०७	१
दारक	दारकं	४०७	१
करणतथ	करणतथ	४०७	२
तएण	तएण	४०७	८
गणि ९ हाणाओ	गणियण्णहाणाओ	४०७	९
वयवीहि	वत्तुवीहि	४०७	१०
वपुज्ज	वत्तुविज्ज	४०८	१४

दृढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४०९	१६
तथाहि	तथाहि	४१२	८
नगरमानम्	नगरमानम्	४१५	२
दृढ िज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४१८	२
संमाणेस्संति	सम्माणिस्संति	४१९	२२
"	"	"	३०
ज्जोव्वणगमणुपत्ते	जोव्वणगमणुपत्ते	४२०	२
परिपक्क	परिपक्कं	४२२	३
उम्मुक्कवालभाव	उम्मुक्कवालभावं	४२४	१४
खाइयं	खाइयं	४२५	१७
पद्मात्पलमिति	पद्मोत्पलमिति	४२६	३
द्रढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४२६	९
पउमेइवा	पउमेइवा	४२६	२५
भोत्सयते	भोत्सयते	४२७	१
अ गारितां	अनगारितां	४२७	२
ईय्यां मिता	इय्यां समितो	४२७	२
तगा । ओ	अगाराओ	४२७	९
आर्जवसे	आर्जवसे	४२७	१७
वद्धित	वर्धित	४२७	१९
भग्गेणं	भग्गेणं	४२७	२९
दृढ कुमार	द्रढकुमार	४२८	१०
भणवयण कायजोगे	भणवयण कायजोगे	४२८	३०
वच्चभोगेष	वच्चभागेषु	४२९	२
भविष्यति	भविष्यति	४२९	४
ना	नो	४२९	४
श सहस्र	शतशहस्र	४२९	४
ने पलिप्तं	नोपलिप्तं	४३०	१
सन्वआ	सन्वओ	४३१	४
तृती ।	तृतीया	४३२	८
सवथा	सर्वथा	४३३	२
कायात्सर्ग	कायोत्सर्ग	४३३	२१

कायशुचिर्निगद्यते	कायशुचिर्निगद्यते	४३३	३३
हां मे	होंगे	४३५	१२
दोर्ना	दोर्ना	४३५	१५
समुपपादक	समुपादके	४३७	२
नहीं	नहीं	४३९	१७
कुम्भर	कुम्भर	४३९	१०
अर्थात् ईय	अर्थात्—कमाय	४३९	१७
निरवसानम्	निरवसानम्	४४०	८
तज्जनाः	तज्जनाः	४४३	३
अस्सद्वाए	अस्सद्वाए	४४३	२१
बंमचेरवासे	बंमचेरवासे	४४३	२२
चरिमेहिं	चरिमेहिं	४४३	३३
आमनः	आत्मनः	४४४	३
कइ मे	करावे मे	४४४	१७
इत्यादिकवचनरूपा	इत्यादि वचनरूपा	४४५	७
यस्य कृते	यस्य कृते	४४६	३
सेव भते !	सेव भते !	४४७	१
माग	मार्य	४४८	१०

॥ समाप्त ॥

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल  
व्रतिविरचितया सुबोधिण्याख्यया व्याख्यया  
समलङ्कृतम्

## श्री राजप्रश्रीयसूत्रम्

( द्वितीयो भागः )

गौतमस्वामी पुनः पृच्छति—

मूलम्—सूरियाभेण भंते ! देवेण सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा देव-  
ज्जुई किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता ? किण्णा अभिसमन्नागया ? , पुव्व-  
भवे के आसी ? किं नामए वा किं गोत्ते वा ? कयरंसि वा गामंसि वा  
नगरंसि वा निगमंसि वा रायहाणीए वा खेडंसि वा कब्बडंसि वा  
मडंबसि वा पट्टणंसि वा दोणमुहसि वा आगरंसि वा आसमंसि वा  
सवाहसि वा संनिवेसंसि वा कि वा, दच्चा, कि वा भोच्चा, कि वा  
किच्चा, कि वा समोयरित्ता कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माह-  
णस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सुच्चा निसम्म  
सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई लद्धा पत्ता  
अभिसमण्णागया ? ॥ सू० ९८ ॥

छाया—सूर्याभेण भदन्त ! देवेन सा दिव्या देविड्ढिः सा दिव्या देव-  
द्युतिः कथं लब्धा कथं प्राप्ता कथम् अभिसमन्नागता ? पूर्वभवे क आसीत् ?

‘सूरियाभेण भंते ! देवेण सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा इत्यादि ।  
अत्रार्थ—(सूरियाभेणं भते ! देवेण सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा  
देवज्जुई किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता, किण्णा अभिसमन्नागया ?) हे भदन्त !

सूरियाभेण भंते ! देवेण सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा इत्यादि

अत्रार्थ—(सूरियाभेण भते ! देवेण सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा  
देवज्जुई किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता, किण्णा अभिसमन्नागया ?) हे भदन्त !

किन्नामको वा ? किं गोत्रो वा ? कनमग्निन वा ग्राम वा नगरे वा निगम  
वा राजपाशा वा खेटे वा कर्षटे वा मडम्ब वा पत्तने वा द्रोणमुखे वा  
आकरे वा आश्रम वा सवाहे वा मखिरदो वा किं वा दृष्ट्वा, किं वा

मूर्धामदेवने वा दिव्यदेवदिं वा दिव्य देवपुति, कैस लब्ध की, कैस प्राप्त  
की, अर्थात् किम प्रकार स आग्निन की ? किम प्रकार से उपार्जित की  
गई वह उमने अपने आधीन को, और कैसे उसने अपने आपोन होने  
क बाद उसे अपने योग के योग्य बनाया ? (पुत्रभवे क आमी ? किना  
मए वा ? किं गोत्रे वा ? कपरसि वा ग्रामसि वा ? नगरसि वा निगमसि वा  
रायहाणीए वा खेटसि वा कर्षटमि वा मडवसि वा पट्टमसि वा द्रोण  
मुखसि वा आगरमि वा आसमसि वा सवाहसि वा) तथा पूव भव में वह  
किम जाति का था ? क्या इसका नाम था ? गोत्र से वह कौन था ?  
तथा किम ग्राम में—वृत्तिवेष्टितस्थान में, किस नगर में—अष्टादशकरवर्मित  
वस्ती में, किसनिगम में—प्रमूननर वभिर्गजननिवासस्थान में किम रामधानी  
में—राजाक निवास से पुक्त स्थान में किस खेट में घूलिप्रकारप-  
रिबन्धितस्थान में किस कर्षट में झुलकप्रकारपरिवेष्टित स्थान में, किस मडम्ब में  
सादृक्कामद्वयातप्रमाण्तररहित स्थान में किम पत्तन में जयमाग पुक्तस्थान में, किस  
द्रोणमुख में—अलस्वसमागोपत जननिग्राम में, किस आकर में—सुवयरत्ना

सूर्यभदेवे ते दिव्य देवदिं ते दिव्य देवपुति केनी शीते कर्षट्वा करीन तेने पोदाने  
अधीन अनावी अने स्थाधीन अनेवी दिव्यदेवदि वगेष्टने तेवे क्षेत्र येअ केवी  
रीवे अनावी ? (पुत्रभवे के आमी ? किं नामए वा ? किं गोत्रे वा ? कपरसि  
ग्रामसि वा नगरसि वा निगमसि वा रायहाणीए वा खेटसि वा कर्षटमि  
वा मडवसि वा पट्टमसि वा द्रोणमुखसि वा आगरसि वा आसमसि वा  
सवाहसि वा) अने पूवभवर्मा ते कथ जातिने कते ? तेह शु नाम क्तु ? तेह  
येअ शु क्तु ? ते कथा ग्रामर्मा—वृत्ति वेष्टित स्थानर्मा, कथा नगरर्मा—अष्टादश  
करर्मा देवार्मा जावे नकि ते वस्तिर्मा, कथा निगमर्मा—वभिर्गजो, केर्मा पद्मारे  
अ अर्मा स्तेत निवासस्थान शकधानीर्मा—राज के नगरर्मा रहेतो  
कोय कोय कोय अयेतर्मा गादीनी दीवाल नेने

भुक्त्वा, किं वा कृत्वा, किं वा समाचर्य कस्य वा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहणस्य वा अन्तिके एकमपि आर्य धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा निशम्य सूर्याभेण देवेन सा दिव्यः देवर्द्धिः दिव्या देवच्युतिः लब्धा प्राप्ता अभिसमन्वागता ? ॥ सू० ९८ ॥

‘सूर्याभेण’ इत्यादि।

टीका—हे भदन्त ! सूर्याभेण देवेन सा दिव्या=देवसम्बन्धिनी देवर्द्धिः=देवसम्बन्धिनी सातिशयविमानादि ऋद्धिः कथ=केन प्रकारेण लब्धा=

दिक की उत्पत्तिवाले स्थान में, किस आश्रम में—तापसनिवास स्थान में, किस संवाह में—रिमानों द्वारा धान्य को रक्षा के निमित्त निर्मित दुर्गभूमिस्थान में, अथवा किस संनिवेश में—समागतसार्थवाहादि के निवासस्थानमें, किं वा दक्षा, किं वा भेक्षा, किं वा विक्षा, किं वा समायरिचा कस्य समणस्स वा तहारूपस्स माहणस्स वा अन्ति ए एगमवि आयरियं धम्मिय सुवयणं सोच्चा निसम्म सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्या देवर्द्धिं दिव्या देवच्युई, लब्धा, पत्ता, अभिसमण्णागया) अभयदान, सुपात्रदान, करुणादानादिकों में से कौन से दान को देकर, आचार्य आदि तपों में अथवा अन्य किसी समय में कौन से अरस विरस आदि आहार को खाकरके, प्रतिक्रमण, प्रमार्जन आदि किस कृत्यको करके अथवा किस प्रकार के शीलादिक का समाचरण करके किस तथारूप श्रमण—निर्ग्रन्थ साधु के, अथवा किस द्वादशव्रतधारी श्रावक के, पास में एक भी तार्थकर प्रतिपादित पापनिवृत्ति—निरवध वचन सुनकरके एवं उन वचनों को आदेयरूप मानकर हृदय में

निवसमा, कथा आकरमा—सुवर्णरत्न—वगेरे ज्याथी नीकणे छे तेवा स्थानमा, कथा आश्रममा—तापस निवास स्थानमा, सवाहुमा—धान्यनी रक्षा भाटे जेरुतोअे जे स्थान विशेष पर दुर्ग स्थाना करी होय ते वस्तीमा, अथवा कथा संनिवेशमा—सार्थवाहो ज्या आवीने रहे ते स्थान विशेषोमा, (किंवा दक्षा, किंवा भेक्षा, किंवा विक्षा किंवा समायरिचा कस्य वा तहारूपस्स समणस्स वा माहणस्स वा अन्ति ए एगमवि आयरियं धम्मिय सुवयणं सोच्चा निसम्म सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्या देवर्द्धिं दिव्या देवच्युई, लब्धा, पत्ता अभिसमण्णागया) अलयदान, सुपात्रदान, करुणादान वगेरेमाथी कथुं दान आणीने आचार्य वगेरे तपोमाथी अथवा जीनत ठाँव वणते कथा अरसविरस वगेरे आहारो ग्रहण करीने, पौषध, प्रतिक्रमण, प्रमार्जन वगेरे कथ विधि करीने अथवा शील वगेरे कथ जतना आयरखोने करीने कथा तथारूप श्रमण—निर्ग्रन्थ साधुनी अथवा कथा द्वादशव्रतधारि श्रावकनी पासोथी ओक पणु तीर्थ कर प्रतिपादित पापनिवृत्ति—निरवध वचन सालणीने अने ते वचनोने



उपार्जिता? कथं=केन प्रकारेण प्राप्ता=उपार्जिता सती स्वायत्ती भूता! कथं=कन हेतुना अभिसमन्वागता अभिमुख्यन सम्=साङ्गत्येन भन्तु=पश्चात्-स्वायत्ती भवनानन्तरम् आगता=योग्यतामुपगता !, तथा-सा दिव्या देवपुत्रिः=देवसम्पन्निनी श्रीरामरणादिकान्ति कथं पृच्छा? कथं प्राप्ता? कथम् अभिसमन्वागता?, तथा-यूष मवे=दूर्वाजमान स क=किञ्चिज्ज्ञानीय आसीत्? किञ्चामको वा स आसीत्? किं गोप्राः=गोत्रेष वा स क आसीत्? तथा--कलमस्मिन् वा ग्रामे-वृत्तिवेष्टिते नगरे-अष्टादशारवर्जिते, निगमे-प्रभूततरवणिगजननिवासस्थाने राजधान्याम्=राज्ञो निवासोपलक्षिते स्थाने वा खेदे-धूमिप्राकारपरिवेष्टिते, कथं ट=छलप्राकारपरिवेष्टिते, मञ्जव-सार्द्धकोशाद्वयान्तर्ग्रामान्तररहिते, पत्तने,=मममार्गंयुक्तं स्थाने, द्वाणमुखे-जलस्यलमार्गोपेतं जननिवासे आकरे=सुवर्णरत्नपुष्पचिह्नस्थाने, आश्रमे तापसनिवासस्थाने, स बाहे-कूपीवलैर्वापरिष्वार्य निर्मिते दुर्गभूमिस्थाने, सन्निवेशे-समागतसार्धवाहादिनिवासस्थाने, किं वा-अमषदानमुपापशानककृणादानादिक इच्छा, किं वा आचामाम्बादितपस्तु अग्रममयेऽपि च अरसविरसादिक सुलभा, किं वा-पौषधप्रतिक्रमणप्रमार्जनादिक कृत्वा, किं वा-शीलादिक समाचय=विषय, कस्य वा तथालुपस्य भ्रमणस्य=निर्जन्यमाचो वा माह्नस्य=डादृष्टव्रतपारिश्रावकस्य वा अन्तिके=ममीपे एकमपि मार्गम्=मार्गसवन्धिक-तीर्थकरप्रतिपादितमित्यर्थः, सुवचन=पापनिवृत्तिरूप निरवधवचन मुक्ता=आकर्ष्य, निष्काम्य=सद्वाक्यमादेयतया इष्टवर्षार्थं सूर्यामेण देवेन सा दिव्या देवर्दि दिव्या देवपुत्रिर्भूत्वा प्राप्ता अभिसमन्वागता? इति ॥ सू ९८

मूलम्—‘गोयमाह’ समणे भगव महावीरे भगव गोयम अमतेत्ता एव वयासी

एव खलु गोयमा । तेणं कालेणं तेणं समणं हहेव जचुहीवे दीवे मारहे वासे केयइअदे नामे जणवण होस्था, रिठस्थिमियसमिद्धे । तत्थ णं

पारण करक इम सुयामदेव ने बह दिव्य देवर्दि दिव्य देवपुत्रि उपार्जित कि हे ? अपने आधीन की है ? और अपने भोग के योग्य बनाई है ? ॥

टीकार्य इसका स्पष्ट है ॥ सू० ९८ ॥

आदेवउपधी स्त्रीधारीने लुब्धभां भास्य धरीने सुयामदेवे ते दिव्य देवर्दि दिव्य देवपुत्रि भेजनीं छ ? पोताने आधीन बनायी छ ? अने पोताना भाटे कोत्र योअ बनायी छ ? टीकायः—अने स्पष्ट छ ॥ ९८ ॥

केय इअच्चे जणयए सेयवियाणोमं नयरा होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिरूवा । तीसे णं सेयवियाए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थणं मिगवणे णाम उज्जाणे होत्था सव्वोउयपुप्फफलसमिद्धे रस्से नदणंवणणप्पगासे सायलाए सुभसुरभिसीयलाए छायाए सव्वओचेव समणुवद्धे पासाईए जाव पडिरूवे । तत्थ णं सेयवियाए णगरीए पएसी णामं राया होत्था, महया हिमवंत जाव विहरइ । [अधम्मिए अधम्मिट्ठे अधम्मक्खाई अधम्माणुए अधम्मपलोई अधम्मपजणणे अधम्मसीलसमुयायारे अधम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणे 'हणछिदभिंद'-पवत्तए लोहियपाणी पावे चंडे रुद्धे खुद्धे साहसिए उक्कंचण-वंचण-माया-नियडि-कूड-कवड-साड सपओगवहूले निस्सीले निव्वए निग्गुणे निम्मेरे निपच्चक्खाणपोसहोववासे बहूणं दुप्पयचउप्पयमियपसुपपक्खीसिरिसवाणघायाए वहाए उच्छेयणयाए अधम्मकेऊ समट्टिए, गुरूणं णो अब्भुट्ठेइ,] णो विणय पउंजइ, सयस्स वि यणं जणवयस्स णो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेइ । सू९९

छाया—गौतम ! इति श्रमणो भगवान् महावीरो भगवत्तं गौतमम् आमन्त्रय एवमवादीत्—

'गोयमाइ' समणे भगव महावीरे भगव गोयम' आम तेत्ता' इत्यादि ।  
सूत्रार्थ—(गोयमाइ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयम' आमतेत्ता एवं वयासी) हे गौतम ! इस प्रकार से श्रमण भगवान् महावीरने भगवान् गौतम को संबोधित करके इस प्रकार कहा—(एवं खलु गोयमा !

'गोयमाइ' समणे भगवं महावीरे भगव गोयम आम तेत्ता' इत्यादि ।  
सूत्रार्थ—(गोयमाइ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमतेत्ता एवं वयासी) हे गौतम ! आ प्रमाणे गौतमने संबोधित करीने भगवान् तेने आ

एव खलु गीतम् ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव जम्बूद्वीपे-क्षीपे पारते  
 वर्षं ककयादं नाम जनपदं आसीत् श्रद्धस्तिमितसमृद्धः । तत्र खलु केरुपादे  
 जनपदे स्वतंत्रिका नाम नगरी आसीत्, श्रद्धस्तिमितसमृद्धा यावत् प्रतिरूपा ।

तत्र कालेन तेन समयेन इहैव जम्बूद्वीपे दीवे भारते वासे केरुभदे नामे  
 जणवण इत्यादि) ह गीतम् ! मैं इस विषय में तुम से कहता हूँ कि तुम  
 उस मुनो-पात्र ऐसा है-इस अवसरिणीकाल के चतुर्थ भारतरूपकाल में और  
 कश्चि वामी के विहरण के समय में इस जम्बूद्वीप नामके मध्यजम्बूद्वीप  
 में भारतक्षेत्र में ककयादं नामका जनपद-देश था तत्पश्चात् कहने का यह  
 कि केरुपद का भाषाभाषा भाषाजनों का निवासस्थानरूप था और  
 या रामाग अनार्यजनों का निवासस्थानरूप था इस तरह भाषा बनाये के  
 निवासस्थानभूत होने से केरुपदेश को यहाँ आये आनेरूप में पूर्व पृथक्  
 जनपद कहा गया है (रिद्धिस्थिमियममिद्धा जाय पडिरुया) यह केरुपादं श्रद्ध-  
 तपस्तसस्पर्शी अनेक भवनाविका से युक्त था, एवं बहुजनमकुल था,  
 स्तिमित-स्वचक्र परचक्र के मग से रहित था, एवं समृद्ध-धनधान्यादि  
 से परिपूर्ण था यावत् प्रतिरूप था (तत्रैव कयभद जणवण सेपविया नाम  
 नगरी इत्यादि) उस केरुपादं जनपद में स्वतंत्रिका नामकी नगरी थी  
 (रिद्धिस्थिमियममिद्धा जाय पडिरुया) यह नगरी भी श्रद्ध स्तिमित और  
 समृद्ध थी एवं प्रतिरूप-सर्वोत्तम थी (तोसे ण सेपवियाए नगरीए वदिया

प्रभावे कलु-एव खलु गोपमा । तेन कालेन तेन समयेन इहैव जम्बूद्वीपे क्षीपे  
 भारते वासे अद्वे नामे जणवण इत्यादि) के गीतम् ! मैं (विषये के) कहूँ तुमने  
 कहूँ ते तुमने स भवित्वा नाम प्रभावे के-आ अवसरिणीकालना विधा आरु-  
 रूप कालना अने केरुपादना विद्वत्तना समकालना आ जम्बूद्वीप नामना भूमि  
 जम्बूद्वीपमा परतमेतमा केरुपादं नामे जनपद-देश-इतो तत्पश्चात् को के केरुपाद  
 इत्यना अर्थ काजमा भाषाजनों निवास इत्यादि अने अर्थ काजमा अनाय अने  
 रहित अर्थात् केसी ज भाषी अनायना निवासस्थानरूप ते केरुपाददेशने अर्थात् अर्थात्  
 रूपमा अथवा अथवा जनपदना नामे सजाधित इत्यादि आन्यो के (रिद्धिस्थिमिय  
 ममिद्धा जाय पडिरुया) आ केरुपादं देश कद नभस्वस्पर्शी, अर्थात् जनपद  
 भी श्रद्ध इतो, अने बहुजन समृद्ध इतो स्तिमित-स्वचक्र परचक्रनी नीतिनीति  
 इतो अने समृद्ध धनधान्य नगरीष्वी परिपूर्ण इतो यावत् प्रतिरूप इतो (तत्रैव  
 कयभद जणवण सेपविया नाम नगरी इत्यादि) केरुपादं जनपदमा स्वतंत्रिका  
 नामे नगरी इती (रिद्धिस्थिमियममिद्धा जाय पडिरुया) आ नगरी यत्त अद्व  
 स्तिमित अने समृद्ध इती अने प्रतिरूप-सर्वोत्तम इती (तोसे ण सेपवियाए

तस्या खलु श्वेतविकाया नगर्या बहिः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे अत्र खलु  
मृगवनं नाम उद्यानम् आसीत्-सर्वतुल्यं पुष्पफलसमृद्धं रम्यं नन्दनवनप्रमाण-  
शुभसुरभिणीतलया छायाया मन्त्र एव समनुबद्ध प्रासादीय यावत् प्रति-  
रूपम् । तत्र खलु श्वेतविकाया नगर्या प्रदेशी नाम राजा आसीत्-महाहि-  
मवद-यावद् विहरति । धार्मिकः अधर्मिष्ठः अधर्मरूपाणिः अधर्मानुभः

उत्तरपुरस्थिते दिग्भागे एतत् नं मृगवने नाम उद्याने होत्वा) उस श्वेत  
विका नगरा के ईशान कोने में मृगवन नामका उद्यान था (सर्वोत्तमपुष्प-  
फलसमिद्धे रम्ये, नन्दनवणप्रमाणसे सुभ सुरभिणीयया छायाए मन्त्रो चेव  
समनुबद्धे प्रासादिए जाव पहिरुवे) यह उद्यान इहाँ कृतुओं के पुष्पो एवं  
फलों से युक्त था अतः मनोरम था नन्दनवन के जैसा था, शुभ-सुभावह  
होने से अच्छी, एवं सुरभि-मनोज एवं जीतस्पर्शगली ऐसी छाया से  
सर्वत्र यह समनुबद्ध-युक्त था, प्रासादीय था यावत् प्रतिरूप था (तत्त्र ए  
सेववियाए नगरीए पएसी नाम राया होत्वा) उस श्वेतविका नगरी  
में प्रदेशी नामका राजा था, (महया हिमवन जाव विहरव) इसमें  
महाहिमवान्, महामलय, मन्दर-(मेरुपर्वत) एवं महेन्द्र के जैसा था  
(अधम्मिए, अधम्मिह्ने, अधम्मसन्वाई, अधम्मणुए अधम्मपलोई, अधम्म  
पजणणे अधम्मसीलसमुयायारे, अधम्मणे चैव वित्ति कप्पेमाणे) परन्तु वह  
धार्मिक नहीं था अधर्माचारी था, अतिशयरूप स अधर्माचरणशील था,  
अनएव अर्माद्वारा ही यह जगत् में प्रसिद्ध हुआ था अधर्मानुयायी

नयरीए बहिया उत्तरपुरस्थिते दिग्भागे एतत् नं मृगवने नाम उद्याने  
होत्वा) ते श्वेतनगरीना उद्यान डोणुमा मृगवन नामे उद्यान डतुं. (सर्वोत्तम  
पुष्पफलसमिद्धे रम्ये, नन्दनवणप्रमाणसे सुभसुरभिस्सीयलाए छायाए मन्त्रो  
चेव समनुबद्धे प्रासादिए जाव पहिरुवे) आ उद्यान बहुकृतुओंना पुष्पो तेभ  
इणोथी समृद्ध डतु. ओथी नन्दनवन जेवुं मनोरम डतुं. शुभ-सुभावह होवा पहिर  
सारी, अने सुरभि-मनोज-अने शीतरूपशर्वाणी छायाथी ते सर्वत्र समनुबद्ध-युक्त  
डतुं. प्रासादीय डतु. यावत् प्रतिरूप डतु (तत्त्र एनं सेववियाए नगरीए पएसी  
नाम राया होत्वा) ते श्वेतविका नगरीमा प्रदेशी नामे राजा डतो. (महया-हिमवन  
जाव विहरइ) ओमा महाहिमवान्, महामलय, मंदर (मेरुपर्वत) अने महेन्द्र जेटु  
णण डतु (अधम्मिए, अधम्मिह्ने, अधम्मसन्वाई, अधम्मणुए, अधम्मपलोई  
अधम्मपजणणे, अधम्मसीलसमुयायारे, अधम्मणे चैव वित्ति कप्पेमाणे,  
पण ते धार्मिक डतो नहि अधर्माचारी डतो, पूर्ण ज अधर्माचरणमा प्रवृत्त रहेनार

પવ સ્વલ્પ ગૌતમ ! તસ્મિન્ કાલે તસ્મિન્ સમયે હૈવ જમ્બૂદ્વીપે-દ્વીપે મારહે વર્ષ કકયાદે નામ જનપદ આવીત્ત્વ ક્ષુદ્રસ્તિમિતસમૃદ્ધઃ । તત્ર સ્વલ્પ કેરુપાર્દે જનપદે સ્વેતવિકા નામ મગરી આવીત્ત્વ, ક્ષુદ્રસ્તિમિતસમૃદ્ધા યાવત્ પ્રતિસપા ।

તત્ર કાલેન તત્ર સમયેન હૈવ જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મારહે વર્ષે કેવદ્ધમદે નામે જનપદે (કાલ્યાણ) હ 'ગૌતમ' મૈં હસ વિષય મૈં તુમ સં કહતા જ સા તુમ ૩૫ મુનો-વાત એમા હૈ-હમ અવસર્ણીકાલ કે પતુર્ય આરુપકાલ મૈં ખૌર કામિ આમી કે વિરણ કે સમય મૈં હમ જમ્બૂદ્વીપ નામકે મર્યજમ્બૂદ્વીપ મ અગ્રસ્તેષ મૈં કકયાદે નામકા જનપદ-દેશ યા તાત્પર્ય કહને કા પદ હૈ । કેરુપાર્દે કા આધીમાગ આર્યજનો કા નિવાસસ્થાનરૂપ યા ઔર યા ગામાગ અનાર્યજનો કા નિવાસસ્થાનરૂપ યા હમ તરહ આર્ય મનાય ક નિવાસસ્થાનમૂત હોને સે કેકપદેશ કો યહાં આધે આધેરૂપ મૈં પૂવઃ પૂવઃ જનપદ કા ગયો । (રિદ્ધિમિત્તમિદ્ધા જાઘ પઠિક્કયા) યહ કેકયાદે ક્ષુદ્ર-નવમ્ભલપર્ણી અનેક અવનાવિકા સે યુક્ત યા, એ યદુજનમકુલ યા, સ્તિમિત-સ્વચક્ર પરચક્ર કે મય સં રહિત યા, એ સમૃદ્ધ-વનવાન્યાદિ સં પરિપૂર્ણ યા યાવત્ પ્રતિક્ષ યા (નચગ કવદ્ધમદે જનપદ સેવવિયા યામ યાગરી હોત્વા) હમ કેવદ્ધ જનપદ મૈં સ્વેતવિકા નામકી નગરી યી (રિદ્ધિમિત્તમિદ્ધા જાઘ પઠિક્કયા) યહ નગરી મૈં ક્ષુદ્ર સ્તિમિત ઔર સમૃદ્ધ યા એ પ્રતિક્ષ-સર્વોત્તમ યી (તીસે જ સેવવિયા નગરીય કહિયા

પ્રમાણે ૪૬-(૧૪ સ્વલ્પ ગૌતમ ! તત્ર કાલેન તત્ર સમયેન હૈવ જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મારહે વર્ષે કેવદ્ધમદે નામે જનપદે (કાલ્યાણ) હ 'ગૌતમ' મૈં હસ વિષય મૈં તુમ સં કહતા જ સા તુમ ૩૫ મુનો-વાત એમા હૈ-હમ અવસર્ણીકાલ કે પતુર્ય આરુપકાલ મૈં ખૌર કામિ આમી કે વિરણ કે સમય મૈં હમ જમ્બૂદ્વીપ નામકે મર્યજમ્બૂદ્વીપ મ અગ્રસ્તેષ મૈં કકયાદે નામકા જનપદ-દેશ યા તાત્પર્ય કહને કા પદ હૈ । કેરુપાર્દે કા આધીમાગ આર્યજનો કા નિવાસસ્થાનરૂપ યા ઔર યા ગામાગ અનાર્યજનો કા નિવાસસ્થાનરૂપ યા હમ તરહ આર્ય મનાય ક નિવાસસ્થાનમૂત હોને સે કેકપદેશ કો યહાં આધે આધેરૂપ મૈં પૂવઃ પૂવઃ જનપદ કા ગયો । (રિદ્ધિમિત્તમિદ્ધા જાઘ પઠિક્કયા) યહ કેકયાદે ક્ષુદ્ર-નવમ્ભલપર્ણી અનેક અવનાવિકા સે યુક્ત યા, એ યદુજનમકુલ યા, સ્તિમિત-સ્વચક્ર પરચક્ર કે મય સં રહિત યા, એ સમૃદ્ધ-વનવાન્યાદિ સં પરિપૂર્ણ યા યાવત્ પ્રતિક્ષ યા (નચગ કવદ્ધમદે જનપદ સેવવિયા યામ યાગરી હોત્વા) હમ કેવદ્ધ જનપદ મૈં સ્વેતવિકા નામકી નગરી યી (રિદ્ધિમિત્તમિદ્ધા જાઘ પઠિક્કયા) યહ નગરી મૈં ક્ષુદ્ર સ્તિમિત ઔર સમૃદ્ધ યા એ પ્રતિક્ષ-સર્વોત્તમ યી (તીસે જ સેવવિયા નગરીય કહિયા

तस्या खलु श्वेतविकाया नगर्या बहिः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे अत्र खलु  
मृगवनं नाम उद्यानम् आसीत्-सर्वतु क पुष्पफलममृद्धं रम्यं नन्दनवनप्रकाश-  
शुभसुरभिशीतलया छायाया क्वचन एव समनुवृद्ध प्रासादीय यावत् प्रति-  
रूपम् । तत्र खलु श्वेतविकाया नगर्या प्रदेशी नाम राजा आसीत्-महाहि-  
मवद-यावद् विहरति । अधार्मिकः अधर्मिष्ठः अधर्मरुघातिः अधर्मानुगः

उत्तरपुरस्थिते दिग्भागे एतत् नं मृगवने नाम उद्याने होत्था) उस श्वेत  
विका नगरा के ईशान कोने में मृगवन नामका उद्यान था (सर्वोऽयपुष्प-  
फलसमिद्धे रम्ये, नन्दनवणप्पगासे शुभ सुरभिपीयशाण छायाए मन्वओ चैव  
समणुवृद्धे प्रासाईए जाव पडिहवे) यह उद्यान छहों ऋतुओं के पुष्पों एवं  
फलों से युक्त था अतः मनोरम था नन्दनवन के जैसा था, शुभ-सुगन्ध  
होने से अच्छी, एवं सुरभि-मनोज्ञ एवं शीतस्पर्शवाली ऐसी छाया से  
सर्वत्र यह समनुवृद्ध-युक्त था, प्रासादीय था यावत् प्रतिरूप था (तत्थ ण  
सेयवियाए णगरीए पएसी णाम राया होत्था) उस श्वेतविका नगरी  
में प्रदेशी नामका राजा था, (महया हिमवन जाव विहरइ) इसमें  
महाहिमवान्, महामलय, मन्दर-(मेरुपर्वत) एवं महेन्द्र के जैसा था  
(अधम्मिए, अधम्मिद्धे, अधम्मक्खाई, अधम्माणुए अधम्मपलोई, अधम्म  
पजणणे अधम्मसीलसमुयायारे, अधम्मेण चैव वित्ति कप्पेमाणे) परन्तु वह  
धार्मिक नहीं था अधर्माचारी था, अतिशयरूप में अधर्माचरणशील था,  
अतएव अधर्माद्वारा ही यह जगत् में प्रसिद्ध हुआ था अधर्मानुयायी

नयरीए बहिया उत्तरपुरस्थिते दिग्भागे एतत् नं सिगरणे नाम उद्याने  
होत्था) ते श्वेतनगरीना उद्यानं केषुमा मृगवनं नाम उद्यानं इत्तुं. (सर्वोऽय  
पुष्प, फलसमिद्धे रम्ये, नन्दनवणप्पगासे शुभसुरभिपीयशाण छायाए मन्वओ  
चैव समणुवृद्धे प्रासाईए जाव पडिहवे) आ उद्यानं षड्ऋतुयोगानां पुष्पां तेभ्य  
इणोथी समृद्धं इत्तुं. ओथी नन्दनवनं जेषुं मनोरमं इत्तुं शुभ-सुगन्धं होवा णदल  
सारी, अने सुरभि-मनोज्ञ-अने शीतस्पर्शवाणी छायाथी ते सर्वत्र समणुवृद्ध-युक्त  
इत्तुं. प्रासादीय इत्तुं. यावत् प्रतिरूप इत्तुं (तत्थ णं सेयवियाए णगरीए पएसी  
णाम राया होत्था) ते श्वेतविका नगरीमा प्रदेशी नामे राजा इत्तो (महया हिमवन त  
जाव विहरइ) ओमा महाहिमवान्, महामलय, मन्दर (मेरुपर्वत) अने महेन्द्र जेट्ठु  
णंण इत्तुं (अधम्मिए, अधम्मिद्धे, अधम्मक्खाई, अधम्माणुए, अधम्मपलोई  
अधम्मपजणणे, अधम्मसीलसमुयायारे, अधम्मेण चैव वित्ति कप्पेमाणे।  
येषु ते धार्मिक इत्तो नहि अधर्माचारी इत्तो, णूण न अधर्माचरणमा प्रवृत्तं रहितं

अधर्ममयोकी अधर्मप्रजननः अधर्मशीलसमुदाचारः अधर्मेणैव धृष्टिकल्पयन्  
 'महि छिन्धि मिन्धि' प्रवर्त्तक छेदितपाणि पापः चण्डो रौद्र सुदः साहसिकः  
 उत्कठचन-घठचन-माया-निकृति-कूटकपटसतिसम्प्रयोगबहुभो निदृशीभो  
 निर्वृत्तो निर्वृभो निर्मर्यादो निष्प्रत्यास्पानपीपपोपवासो बहूनां विपदचतु

था, अधर्म का ही निरन्तर चिन्तन किया करता था, मजामनों में भी वह  
 केवल धरुपर्करूप से अपने उपदेशों द्वारा अधर्म को ही भरा करता था  
 उसे ही प्रोत्साहित किया करता था, कुरुर कर इसके स्वभाव में अधर्म  
 मात्र भरा हुआ था, और काय भी यह इसी प्रकार के कियो करता था—  
 यहाँतक कि यह अपनी जीविका भी अधर्म से ही खमाया करता था तथा  
 ('इण छिंद मिंद'—पञ्चनख साहियपाणी पावे चडे, रुई, खुरे, साहसिए उकचन,  
 वृचण माया-नियहि-कूड-कचडे माह सपओगयहुले, निरसीले, निम्बए,  
 निग्गुणे, निम्मेरे, निष्पक्वस्वाजपासहोवयासे बहूण) मारो, कागे, दो डुकडे  
 करदो इत्यादि बाक्यों द्वारा जोषों के हिमादिक कार्यों में अपने आभित  
 मनो को प्रवृत्तिशील बनाया करता था, इसके साथ सदा रक्त से भरे  
 रहते थे, यह साक्षात् पापका अवतार था क्यों कि पापकर्म में यह सदा  
 पराग्रत बना रहता था, यह बहुत अधिक कोपी था, रौद्र-रूप होने  
 से मयानक था, तुच्छ बुद्धिवाला होने से सुद्र या सहसाकर्मकरजशील

होता जोभी ते अधर्मीना अधर्म व जगतमा प्रसिद्ध धर्म जये होता ते अधर्म-  
 मुखाभी होता ते शतद्विगुण अधर्मतु व जितन धर्म करतो होता प्रजानी साथे पक्ष  
 ते अधर्मावरण तरह अवृत्त बवाना उपदेशो आपतो रहेतो होता ते अधर्मेन व  
 प्रोत्साहित करतो रहेतो होता तेना जलु जलुभा अधर्म व व्यापक धर्म शब्दी  
 होता तेना जभा धर्मो पक्ष अधर्मथी प्रेराधने बदां दुतां ते पीतायु भरख  
 पीपक्ष पक्ष अधर्मीना आधारि व करतो होता तेभए ( इणछिंद मिंद  
 पञ्चनख साहियपाणी पावे चडे, रुई, खुरे साहसिए, उत्कठचण, वचण,  
 मायाभयहि कूड-कचडे माह सपओगयहुले निरसीले, निम्बए, निग्गुणे, निम्मेरे  
 निष्पक्वस्वाजपासहोवयासे बहूण ) भारे, कागे, दो/डुकडा/की नाये वजेरे वाक्यो  
 वडे ते लुपेना दिसा वजेरे धर्मेना पीताना आभितोने प्रवृत्तिशील पायतो  
 होता तेना धर्मो सदा रक्तभी भरकायेवा रहेता होता ते साक्षात् पापको अवतार  
 होता हेमके, ते सदा पाप पक्षपक्ष व रहेतो होता अपक्ष जलुज जोभी होता रौद्र-  
 रूप होनाभी बवानक होता तुच्छबुद्धिवालो होनाभी सुद्र होता, सहसाकर्मकरजशील

पदमृगपशुपक्षिसरीसृपाणां घाताय वधाय उच्छेदनाय अधर्मकेतुः समुत्थितः,  
गुरूणां नो अभ्युत्तिष्ठति नो विनय प्रयुङ्क्ते, स्वकृम्यापि च जनपदस्य नो  
सम्यक् करभरवृत्तिं प्रवर्त्तयति ॥ सू० ९९ ॥

होने से अर्थात् विना विचारे कार्य करनेवाला होने से माहत्त्विक था, उत्कोच-  
लांच, वंचन-परप्रतारण, माया-परवंचनबुद्धि, निकृतिगूढमाया, कूट-गूढमाया  
को ढंक्ने के लिये अन्यमाया करना, कपट-वेष भाषा आदिको बदलना-  
विपरीत बना लेना, इन सब का जो सातिसंप्रयोग-प्रकर्षरूप से व्यापार  
उस व्यापार से यह व्याप्त था, तथा, निश्शील-शीलवर्जित था, निर्द्वैत-  
हिंसादिकुकृत्यरूप पापों से विगति का अभाववाला होने से व्रतरहित था,  
निर्गुण-क्षान्त्यादिक गुणों के अभाव से युक्त होने के कारण निर्गुण था,  
निर्मर्यादः-मर्यादा रहित था, परस्त्री वर्जनादिरूप मर्यादा से रहित होने के  
कारण निर्मर्याद था, प्रत्याख्यान, पौषध और उपवास इनसे रहित था,  
तथा अनेक (दुष्पयचउष्पयमियपसुपवस्त्री सिरिसवाणघायाए घहाए उच्छेय-  
णयाए, अधम्मकेऊ समट्टिए) द्विपद-मनुष्य वगैरह, चतुष्पद-मृगादि वगैरह  
पशु-ग्राम की गाय वगैरह, सरीसृप-भुजपरिसर्प एवं उरःपरिसर्प-नकुल  
सर्प आदि इन सब की हत्या करने, इन्हें मारने में-चोट पकड़वाने  
में और प्राण रहित करने के लिये अधर्मरूप केतुग्रह के जैसा उत्पन्न  
हुआ था, अर्थात् केतुग्रह के उदित होने पर लोक में जिस प्रकार से

होवाथी ओठवे के वजर विचार्युं कार्य करनार होवाथी-ते साहसिक हतो. उठोव-  
साथ, वंचन-पर प्रतारण, माया-परवंचन बुद्धि निकृति-गूढ माया, कूट-गूढमायाने  
छुपाववा भाटे भील माया करवी, कपट वेष भाषा वगेरे गढली नाभवा, आ भधा  
हुशुण्णिनी प्रवर्त्तता तेमा विधमान हती. तथा ते निश्शील-शील वर्जित हतो, निर्द्वैत-  
हिंसा वगेरे कुकृत्यरूपपापो तरक्ष प्रवृत्ति राखनार होवाथी ते व्रत वगरनो हतो,  
निर्गुण-क्षान्ति वगेरे गुणो तेमां नहोता तेथी ते निर्गुण हतो, निर्मर्याद-मर्यादा  
रहित हतो परस्त्री वर्जनादिरूप मर्यादाथी रहित होवा गढल निर्मर्याद हतो. ते  
प्रत्याख्यात, पौषध अने उपवास वगर हतो. धणा (दुष्पय चउष्पय मियपसुपवस्त्री  
सिरिसवाणघायाए घहाए उच्छेयणयाए, अधम्मकेऊ समट्टिए) द्विपद-  
माणुस वगेरे चतुष्पद-मृग वगेरे, पशु-गाय वगेरे, पक्षी-चकलीओ वगेरे, सरीसृप-  
भुजपरिसर्प अने उर परिसर्प-नकुल सर्प वगेरे आ भधाने छुवाभा, भारवाभा.



‘गोयमा’—इति—

टीका—गौतमस्वामिनः प्रथमं भुत्वा यमणो मगधान् महावीरो भगवन्  
गौतमस्वामिन ‘गौतम’ इति आत्मन्त्र्य=सम्बोध्य एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण  
अथादीत्=उक्तवान्-हे गौतम ! एवं स्वसु स्वयं जानीहि-तस्मिन् काले=तस्या  
अथसर्पिण्याभृत्यारकक्षणे काले, तस्मिन् समयं केचित्स्वामि विहरणोपलक्षिते  
समयं इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे=मध्यजम्बूद्वीपे भारते कथं=भारतदेशे केकयादं  
नाम जनपदो=देश आसीत् । अत्रेदं बोध्यम्-केकयदेशस्य अर्द्धम् आयेक-  
ननिवासस्थानम्, अयं च अनायंजननिवासस्थानम् । आयोनार्ययो निवास-  
भूतत्वात् केकयस्य अर्द्धद्वयं पृथक्पृथग्जनपदत्वेन विवक्षितमिति । स केक  
अर्द्धजनपदकृद्दस्तिमितसमुद्रः-तत्र-कृद्दःनमःसर्द्धिबहुलप्रासादयुक्तो बहु-  
जनसङ्कुलश्च, स्तिमितः स्वचक्रपङ्क्तमपरहितः, समुद्रः=घनपान्यादिपरिपूर्णः,  
पद्मयस्य कर्मधारयः । तत्र स्वसु केकयादं=जनपदे श्वेतविका नाम नगरी  
आसीत् । सा नगरी कृद्दस्तिमितसमुद्रा यावत्-अनिकृपा । पानत्वदेन-यैव  
पपातिकसूक्ष्मोक्तवम्पानगरीवर्णनपरः पद्मसमूहोऽप्यापि बोध्यः । मतिरूपम्  
सर्वोत्तमा च आसीत् । तस्याः तसु श्वेतविकायाः नगर्या बहिः बाह्यप्रदेशे, उवा  
पौरस्त्ये दिग्भागे=ईशानकोणे अथ स्वसु हगवन नाम कथानम् आसीत् । तत्र  
उपान सर्वशुक्लपुष्पककसमुद्रम्=पद्मसमुद्रसम्बन्धिपुष्पककसमन्वितं रम्यम्

मनेक विष्णव (उपद्रव) होते हैं, उसीप्रकार से इस राजा के शासन होने  
पर देशभर में आस था, (शुरूवां जो भम्सुद्देर, जो विषय पउजह,  
सयस्त वि य न जणवयस्त जो सम्मं करभरविस्ति पवसेह) आते हुए  
मातापितादिरूप शुकनो को दलकर यह उनका आदर करने के लिये  
सुझा नहीं होता था, उनके विषय में वह विनययुक्त नहीं होता था,  
तथा अपने जनपद केकयादं जनपद के प्रजाजनों की कर लेकर भी  
पावनरूपवृत्ति यथायथ से नहीं करता था ।

विष्णवे (उपद्रवे) आस छ, तेमन्त्र आ राजन्ना शासनकाजमां समस्त देशमां त्रय  
अने अथावित्त वातावरण प्रसरी रह्युं छत (शुरूवां जो भम्सुद्देर, जो विषय  
पउजह, मयस वि य न जणवयस्त जो सम्मं करभरविस्ति पवसेह) आतापित्त  
वगेर शुकनोने आवत न्नेधने पण ते तेमने आदर करवा आटे उणे यतो न  
हते। तेमनी साथे ते विनयशील यधने श्देते न हते। तेमन्त्र पावाना जनपद  
हस्यादं जनपदनी प्रथम पासेथी देखे यधने पण ते सरस शीते तेमन्त्र पावन छे  
रम्य अतो न हते।

मनोरमं नन्दनवनप्रकाश=नन्दनवनसदृशं, शुभसुरमिश्रीतलया शुभा=सुखा  
 बहत्वेन शुभासुरभिः=मनोज्ञा शीतला=शीतस्पर्शयुक्ता, पदत्रयस्य कर्मधारयः  
 तथाभूतया छायाया सर्वत एव=सर्वप्रदेशावच्छेदेनैव समनुचक्षां=युक्तां प्रासा-  
 दीया यावत् प्रतिरूपां चासीत् । तत्र खलु श्वेतविकार्या नगर्यां प्रदेशी  
 नाम राजा आसीत् । स प्रदेशी राजा महाहिमवन्महामलयमन्दरमहेन्द्रसारो  
 यावद् विहरति । प्रदेशिराजस्य सकलं वर्णनमौपपातिकसूत्रोक्तकूणिक-  
 राजवद् बोध्यम् । स प्रदेशी राजा तु-अधार्मिकः-धर्मेण चरति धार्मिकः, न  
 धार्मिकोऽधार्मिकः-अधर्माचारी, अधार्मिकस्तु सामान्यधर्माचरणेनापि भवति,  
 अत आह-अधर्मिष्ठ इति । अधर्मिष्ठः=सातिशयाधर्माचरणशीलः,  
 अधर्मरूपातिः-अधर्मेण रूपातिर्यस्य स तथा अधर्मद्वारैव जगति  
 प्रसिद्धिं गतः, अधर्मानुगः-अधर्मम् अनुगच्छतीति-अधर्मानुगः-अधर्मानु-  
 यायी, अधर्मप्रलोकी-अधर्ममेव प्रलोकते=निरन्तर विचारयति यः सः-अधर्म-  
 विषयकविचारपरायणः, अधर्मप्रजननः-अधर्ममेव प्रकर्षेण जनयति=उत्पा-  
 दयति लोकेषु यः सः प्रजास्वपि अधर्मभावोत्पादक इत्यर्थः, तथा अधर्मशील  
 समुदाचारः- अधर्म एव शील=स्वभावः समुदाचारः=अनुष्ठानं च यस्य  
 स तथा अधर्ममयस्वभाययुक्तः अधर्मानुष्ठानपरायणश्चेत्यर्थः, तथा-अधर्मे-  
 णैव वृत्तिः=जीविका कल्पयन्=कुर्वन्, तथा-जीवान् प्रति जहि=मारय, छिन्धि=  
 विदारय भिन्धि=द्विधाकुरु' इत्यादि वाक्यैः प्रवर्त्तकः=स्वाश्रितान् जनान् प्रवर्त्त-  
 यिता, अतएव-लोहितपाणिः=रक्तखरण्डितहस्तः, पापः=पापस्वरूपः-सर्वदा  
 पापपरायणत्वात्, चण्डः=चण्डस्वरूपः-तीव्रतरकोपावेशात् रौद्रः=भयानकः=क्रूररूप  
 त्वात्, क्षुद्रः=तुच्छबुद्धित्वात् साहसिकः=सहसा कर्मकरणशीलः-असमीक्षित  
 कारित्वात्, तथा-उत्कञ्चन-वञ्चन-माया-निकृति-कूट-कपट-सातिसम्प्रयोग  
 बहुलः-तत्र-उत्कञ्चनम्=उत्कोचग्रहणम्, 'उत्कोचः'- 'लाञ्छ' इति भाषा

टीकार्थ—इसका, मूलार्थ - जैसा ही है-श्वेतविका नगरी का  
 वर्णन औपपातिकसूत्र में वर्णित चंपानगरी जैसा ही जानना चाहिये-  
 यही बात यहा यावत्पद से प्रकट की गई है तथा प्रदेशी राजा का भी वर्णन  
 औपपातिकसूत्र में वर्णित हुए कूणिक राजा के जैसा ही समझना ॥ सू. ९९ ॥

टीकार्थ—मूलार्थ प्रमाणे ४ छ श्वेतविका नगरीतु वर्णुन औपपातिक सूत्रमां  
 वर्णित चंपानगरी जेवुं ४ समञ्जु जेधये यावत् पदथी जेव वात अर्ही स्थ  
 करवाभा आवी छ तेमञ् प्रदेशी राजातु वर्णुन पणु औपपातिक सूत्रमा वर्णित  
 कूणिक राजा जेवु ४ समञ्जु जेधये ॥ सू० ९९ ॥

प्रसिद्ध । वञ्चन=परप्रतापण माया=परवञ्चनपुद्गि, निकृति=गूढमाया,  
 फूटम्=गूढमायान्छादनायम् यमायाकरणम्, वषट=वेपमायापिपयचकरयम् एषा  
 यः सातिसम्प्रयोगः=प्रवर्षेण व्यापारत्वेन वष्टुल=व्याप्तः, तथा=निश्चीन-  
 श्रीसर्जितो द्रष्टव्यवर्गहितम्वात्, निवृत्त=वृत्तरहितो हिंसादिबिरत्यभावात्,  
 निवृणः=गुणरहितः=सान्त्व्यादिगुणाभावात्, निमर्षादः=मर्षादारहित=परस्त्री  
 परिषर्जनादिरूप मर्षादारहितत्वात्, निष्प्रत्यासृपानपौषधोपवासः=प्रत्यासृपान-  
 पौषधोपवास वर्जितः, तथा=यहूना द्विपद=चतुष्पदमृगपक्षपक्षिसरीसृपाणां,  
 द्विपदाः=मनुष्या-दासीदासादयः, चतुष्पदाः ये मृगाः=आरभ्याः,  
 गवादयश्चेत्यतुष्पदमृगपक्षवा, पक्षिणाः=प्रसिद्धाः, सरीसृपाः=सुमोकृष्णां सर्प-  
 शीलां गोघादयः, एषां पदानामितरेतरयोगवृन्धः, तेषां यः ।  
 वषाप=ताडनाय उच्छेदनाय=निमलनाय अधर्मकेतुः=अधर्मरूपकेतुम्  
 समुत्थित=समुद्गतः । केतुपदे समुत्थिते सति लोके विप्लवो=भवति,  
 स्मिन् वृषतो वासके सति जनपदे वासो वर्तते । तथा=स गुह्यो  
 अभ्युषिष्ठति=आगच्छतो गुह्य=मातापित्रादीन् दृष्ट्वा तेषामादरं कर्तुं  
 अभ्युत्थाता भवति, तेषु=पित्रादिगुरुजन्येषु विनयं नो प्रयुक्ते=विनयपुको  
 भवति तथा=स प्रदेक्षी राजा स्वकस्यापि च जनपदस्य=केकयाद  
 स्वच्छ करभरवर्धि=करात्=करगृहीत्वा यो भरः मजानां पालनं तद्वत्  
 वृत्तिस्तं सम्यक्=यावात्तस्येन न प्रवृत्तयति=न विदधाति । स्व  
 रक्षणकर्मणि समुद्युक्तो न भवतीत्यर्थः ॥ सू० ९९ ॥

सूत्रम्—तस्स ण पपसिस्स रन्नो सुरियकता नाम  
 होत्था, सुकुमालपाणिपाया धारिणी वण्णओ । पपसिणा रन्ना  
 भणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सहे रूवे जोष विहरइ ॥ सू० १०० ॥

छाया—तस्य माल प्रदक्षिनो राज्ञः यस्य कान्ता नाम देवी मामीति  
 सुकुमालपाणिपाया धारिणीवर्णाः । प्रदेक्षिना राज्ञा सार्वभौमं  
 अविरत्ता इष्टान् शब्दान् रूपाणि यावद् विहरति ॥ सू० १०० ॥

‘तस्स ण पपसिस्स रन्नो’ इत्यादि ।

छाया—(तस्स ण पपसिस्स रन्नो) एत प्रदेक्षी रामा की (धरि  
 कता नाम देवी होत्था) सूर्यकांता नामकी रानी थी (सुकुम - ) ।

तस्स ण पपसिस्स रन्नो’ इत्यादि ।

छाया—(तस्स ण पपसिस्स रन्नो) ते प्रदेक्षी राज्ञी (सुरियकता  
 देवी होत्था) सूर्यकांता नामकी राज्ञी थी. (सुकुमालपाणिपाया धारिणीवर्णाः)

टीका—‘तस्स णं’ इत्यादि—

तस्य=पूर्वोक्तस्य खलु प्रदेशिनो राज्ञ सूर्यकान्ता नाम देवी=राज्ञी आसीत् । सा सूर्यकान्ता देवी सुकुमालपाणिपादा-सुकुमाल=सातिशयकोमल पाणिपाद=हस्तौ पादौ च यस्याः सा तथाभूताऽसीत् । सूर्यकान्तायाः सर्व वर्णनं धारिणीवद् बोध्यम् । एतदेव सूचयितुमाह=धारिणीवर्णनो’ इति औपपातिकमुत्रोक्तधारिणीवद् बोध्यम् । सा सूर्यकान्ता देवी प्रदेशिना राज्ञा साद्धं=सह अनुरद्धा=सातिशयप्रेमयुक्ता अविरक्ता=प्रातिकूल्यं गतेऽपि पत्यो-स्वयं सदा प्रसन्नवदना सती इष्यन्=अभिलषितान्, शब्दान् रूपाणि यावद्=गन्धान् रसान् स्पर्शाश्चेति पञ्चविधान् मनुष्यान्=मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान् प्रत्यनुभवन्ती=उपभुञ्जाना विहरति ॥सू० १००॥

मूलम्—तस्स णं पएसिस्स रण्णो जेट्ठे पुत्त सूरियकंताए देवीए अत्तए सूरियकंते नामं कुमारे होत्था, सुकुमालपाणिपाए जाव पडि-रूवे । मे णं सूरियकंते कुमारे जुवराया वि होत्था, पएसिस्स रन्नो

धारिणीवर्णनो) इसके हाथ पैर आदि अवयव वड़े ही सुकुमार थे. इसका पूर्णवर्णन धारिणी रानी के जैसा ही है. धारिणी का वर्णन औपपातिक सूत्र में दिया गया है। (पएसिणा रन्नो सद्धि अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सद्धे रूवे जाव विहरइ) प्रदेशी राजा के साथ यह सातिशय प्रेम युक्त बने होकर अभिलषित मनुष्य संबंधि कामभोगों को भोगती थी, यदि राजा कभी प्रतिकूल भी हो जाता तो उस समय यह उससे प्रतिकूल नहीं बनती, प्रत्युत सदा प्रसन्नवदन ही रहती, वहां ‘शब्दरूप’ से रूप गंध, रस और स्पर्श ये पांच प्रकार के कामभोग गृहीत हुए हैं।

टीकार्थ स्पष्ट है ॥ सू० १०० ॥

तेना हाथपग वगेरे अवयवो अतीव सुकुमार हुता राणीनु वरुण धारिणी राणी जेवु न छि औपपातिक सूत्रमा धारिणीनु वरुण करवासां आब्यु छि (पएसिणा रन्नो सद्धि अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सद्धे रूवे जाव विहरइ) प्रदेशी राजान्नी साथे ते सातिशय प्रेमयुक्त व्यवहार राणीने अभिलषित मनुष्य संबंधि काम भोगो भोगवती हुती जे कदाच राजा कोछ दिवस प्रतिकूल थछ नतो तो ते तेनी सामे अनुकूल थछने न रहेती हुती ते सदा प्रसन्न वदन न रहेती हुती अर्ही “शब्दरूप”थी रूप, गंध, रस अने स्पर्श ये पांच प्रकारना कामभोगोनु अलख थयु छि. टीकार्थ स्पष्ट छि ॥१००॥

रज्ज च रट्ट च बल च वाहनं च कोस च कोट्टागार च पुर च अते  
उर च सयमेव पचुवेक्खमाणे पचुवेक्खमाणे विहरइ ॥ सू० १०१ ॥

छाया—तस्य सल्ल प्रदक्षिणो राज्ञो ज्येष्ठः पुत्रः सूर्यकान्ताया देव्याः  
भात्मजः। सूर्यकान्तो नाम कुमार आसीत्, सुकुमारपाणिपादो यावत् प्रति-  
रूपः। स सल्ल सूर्यकान्तः कुमारो युवराजोऽप्यासीत्, प्रदक्षिणो राज्ञो राज्यं  
च राष्ट्रं च वाहनं च बलं च कोसं च कोट्टागारं च पुरं च अन्तःपुरं च  
स्वयमेव प्रत्युत्प्रेषमाणः प्रत्युत्प्रेषमाणो विहरति ॥ १०१ ॥

‘त एष पपसिस्स रण्णो’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(त एष पपसिस्स रण्णो जेहे पुणे सूरियकटाए देवीए अत्तए  
सूरियकते नाम कुमारे होत्या) उस प्रदेशी राजा के पुत्र था, जिसका नाम  
सूर्यकान्त था यह सूर्यकान्तादेवी से उत्पन्न हुआ था (सुकुमारपाणिपाद  
भाव पड़िस्के) इसके हाथ-पग बदेरी सुकुमार थे यावत् यह प्रतिरूप-सर्वोत्तम  
था—यहां यावत् सम्यक् प्रकट करने के लिये प्रयुक्त हुआ है कि औपपातिक  
सुत्रोक्त चारिणी के वर्णन में आगत पदसमूह में शुद्धि की विभक्तियां  
लगाने पर सूर्यकान्त का वर्णन करना चाहिये (से ण सूरियकते कुमारे  
वि होत्या) यह सूर्यकान्त कुमार युवराज भी था अतः वह पपसिस्स रण्णो  
रज्ज च रट्ट च बल च वाहनं च कोट्टागार च पुर च अतेउर च सयमेव पचु-  
वेक्खमाणे २ विहरइ) प्रदेशी राजा के राष्ट्रादिसमुदायरूप राज्यका, जनप-  
दरूप (देश राष्ट्रका, सैन्यरूप बल का, इत्यादि एवं शिविकादिकरूप वाहन

‘त एष पपसिस्स रण्णो’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(त एष पपसिस्स रण्णो जेहे पुणे सूरियकटाए देवीए  
अत्तए सूरियकते नाम कुमारे होत्या) (उ प्रदेशी राजाने पुत्र होतो सुवर्ण-  
नाम होतो ते सुवर्णवा डेवीना अर्चणी उत्पन्न भयो होतो। (सुकुमारपाणिपाद  
भाव पड़िस्के) तेनां काळ पण बहुत सुकामण होतं। यावत् ते प्रतिरूप-सर्वोत्तम  
होते। जहाँ यावत् राजाने प्रभोज जेठवा भाटे कखायां आये। ३ है औपपातिक  
सुत्रना चारिणीना वर्णनमां से परो आयां ३ तेमां शुद्धि जनी विभक्तियों लगायीने  
सुवर्णवाट वर्णन समझपु ओझ्ये (से ण सूरियकते कुमारे युवराया वि होत्या)  
जे सुवर्णवा कुमार युवराज पण होतो जेथी (पपसिस्स रण्णो रज्ज च रट्ट च  
बलं च वाहनं च कोसं च कोट्टागार च पुर च अतेउर च सयमेव पचु-  
वेक्खमाणे २ विहरइ) प्रदेशी राजाना राष्ट्रादि समुदायरूप राज्यवाट, जनपदरूप  
राष्ट्रवाट, सैन्यरूप जणवाट, इति वगैरे जने शिविका वगैरे विह्वनवाट, आवागाररूप

टीका—‘तस्स णं इत्यादि—

तस्य खलु पूर्वोक्तस्य प्रदेशिनो राज्ञो ज्येष्ठः पुत्रः सूर्यकान्तायाः देव्या आत्मजः=अङ्गजातः सूर्यकान्तो नामकुमार आसीत्, स कुमारः सुकु-  
मालपाणिपादो यावत्पतिरूपश्च आसीत् । यावत्पदेन-औपपातिकसूत्रोक्त-  
धारिणीवर्णकग्रन्थः पुंलिङ्गत्वेन विपरिणमय्यात्र ग्राह्य इति । स खलु सूर्य-  
कान्तकुमारो युवराजोऽपि आसीत् । स सूर्यकान्तो युवराजः प्रदेशिनो  
राज्ञो राज्यं=राष्ट्रादिसमुदायात्मकं च, राष्ट्रं=जनपदं, वलं=सैन्यं, वाहनं=  
हस्त्यादिक शिविकादिकं च, कोशं=भाण्डागारं कोष्ठागारं=धान्यगृहं पुरं=  
नगरं, अन्तःपुरं च स्वयमेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणः प्रत्युत्प्रेक्षमाणः निरीक्षमाणो  
विहरति-राज्यराष्ट्रादि सर्वव्यवस्थां पश्यतीत्यर्थः ॥ सू० १०१ ॥

(मूलम्—तस्स णं पएसिस्स रन्नो जेट्ठ भाउयवयंसए चित्ते णामं  
सारही होत्था अह्णे जाव बहुजणस्स अपरिभूए साम-दंड भेय उव-  
प्पयाणअत्थसत्थ ईहामइविसारए उप्पत्तियाए वेणइयाए कम्मयाए  
पारिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेए, पएसिस्स रण्णो बहुसु-  
कज्जेसु य कारणेसु य कुडुंवेसु य मंतेसु य गुज्जेसु य रहस्सेसु य  
निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे मेढीपमाणं  
आहारे आलंबणभूए चक्खुभूए सव्वट्ठाण सव्वभूमियासु लद्धयच्चए  
विइण्णवियारे रज्जधुराचिंतए यावि होत्था ॥ सू० १०२ ॥

छाया—तस्य खलु प्रदेशिनो राज्ञो ज्येष्ठ भ्रातृ वयस्यऋश्चित्रो नाम सारथि  
रासीत् । आढयो यावद् बहुजनस्य अपरिभूतः साम-दण्डभेदोपपदानार्थं  
का, भाण्डागाररूप कोश का, धान्यगृहरूप कोष्ठागार का, एवं अन्तःपुर का  
अपने आप ही समयर पर निरीक्षण अवलोकन करता था.

टीकार्थ स्पष्ट है ॥ सू १०१ ॥

‘तस्स णं पएसिस्स रन्नो जेट्ठ भाउयवयंसए’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तस्स ण पएसिस्स रन्नो जेट्ठ भाउयवयंसए) इस प्रदेशी

कैशचुं, धान्यगृहइय कोष्ठागारचु, नगरचु अने अतपुरचु पीतानी भेजे न यथा  
समय निरीक्षण करोता हुतो अटले के ते राज्य राष्ट्र वगैरेनी सर्व व्यवस्थाचु  
अवलोकन करोता हुतो. टीकार्थ स्पष्ट छ ॥ १०१ ॥

‘तस्स णं पएसिस्स रन्नो जेट्ठ भाउयवयंसए’ इत्यादि.

सुत्रार्थ—(तस्स ण पएसिस्स रन्नो जेट्ठ भा उय वयंसए) ते प्रदेशी राज्यने



શાસ્ત્રોપત્તિવિશારદઃ ઔત્પત્તિકયા વૈનયિકયા કર્મજયા પારિણામિકયા ચતુ  
વિધયા બુદ્ધયા ઉપપેતઃ, પ્રદેશિનાં રાજાં વહુપુ કાર્યેષુ ચ કારણેષુ ચ કુટુ  
મ્બેષુ ચ મંત્રેષુ ચ ગુહ્યેષુ ચ રહસ્યેષુ ચ નિશ્ચયેષુ ચ વ્યવહારેષુ ચ આપચ્છ-  
નીયઃપ્રતિપન્છનીયો યેદિઃ પ્રમાણમ્ આધારઆલમ્બનભૂતશ્ચક્રુર્ભૂતઃ સર્વ  
શ્રમિકાસુ લબ્ધપ્રત્યયો વિત્તીર્ણવિચારો રાજ્યધુરાચિન્તકશ્ચાપિ આસીત ॥૧૦૨॥

પાર્જનરૂપ ક્રિયા મેં પ્રવૃત્ત થા. તથા-ત્રિપુલ માત્રા મેં હમકે યહાં ખોજન  
પાન ત્વાલેને પર ખી ચચા રહતા થા. દામ્ની, દામ, ગો, મદિપ એવં ગવેલક-  
મેષ એ સર્વ હમકે યહાં પ્રચુરસંખ્યા મેં એ. તથા યહ ચિત્ર સારથિ સામ,  
દંડ, મેદ ઓર દાન હન ચાર રાજનીતિયોં મેં અર્થપ્રાપ્તિ કે સાધનોં વા  
પ્રતિપાદન કરને વાલે શાસ્ત્ર મેં એવ ઈદાપ્રધાન બુદ્ધિ મેં, વિશારદ નિપુણ  
થા (ઉપ્પત્તિયાણ, વેણડયાણ, પારિણામિયાણ, ચતુરવિદ્યાણ બુદ્ધિણ ઉત્તરેણ)  
ઔત્પત્તિકી-સ્વાભાવિક, વૈનયિકી, કર્મજા તથા પારિણામિકી અવસ્થા હન ચાર  
પ્રકાર કી બુદ્ધિયોં સે યુક્ત થા (પણસિસ્મ રણો વહુસુ કજ્જેસુ ય કારણેસુ ય,  
કુટુબેસુ ય, મંત્રેસુ ય, ગુજ્જેસુ ય, રહસ્યેસુ ય, નિચ્છેસુ ય, વ્યવહારેસુ ય  
આપુચ્છણિજ્જે, પહિપુચ્છણિજ્જે) પ્રદેશી રાજા કે અનેક કાર્યોં મેં, કાર્ય  
સંપાદક હેતુઓં મેં, કુટુમ્બ કે વિષય મેં, કર્તવ્યનિશ્ચયાર્થ ગુપ્તમંત્રણાઓં  
મેં, ગુહ્યોં મેં-લજ્જા સે ગોપનીય કામોં મેં, રહસ્યોં મેં પ્રચ્છન્નવ્યવહારોં મેં,  
એવં નિશ્ચયોં મેં-પૂર્ણનિર્ણયોં મેં, એવ વ્યવહારોં મેં-વાન્ધવાદિકોં દ્વારા સમા-  
ચરિત લોકવિપરીત આદિક્રિયાઓં કે પ્રાયશ્ચિત્તોં મેં અચ્છી તરહ સે યહ

પ્રવૃત્ત હોતો તેમજ એને ત્યાં પુષ્કળ માણુમા લોકો લોજન-પાન કરતા હતા છતાંએ  
લોજન સામગ્રી ખૂબ પડી રહેતી હતી. દાસી, દાસ, ગાય મહિપ અને ગવેલક-મેષ  
આ બધા એનેત્યા પ્રચુર સંખ્યામાં હતા એ ચિત્ર સારથિ સામ. દંડ, મેદ  
અને દાનઆ ચારે ચાર રાજનીતિ-એમાં, અર્થ પ્રાપ્તિના સાધનોતું પ્રતિપાદન કર-  
નારાં શાસ્ત્રોમા અને ઇડા પ્રધાન બુદ્ધિમા વિશારદ-નિપુણ હોતો. (ઉપ્પત્તિયાણ, વેણ  
ઈયાણ. પારિણામિયાણ, ચતુરવિદ્યાણ બુદ્ધિણ ઉત્તરેણ) ઔત્પત્તિકી-સ્વાભાવિક, વૈન-  
યિકી, કર્મજ અને પારિણામિકી આ ચાર પ્રકારની બુદ્ધિઓથી તે યુક્ત હોતો (પણ-  
સિસ્મ રણો વહુસુ કજ્જેસુ ય કારણેસુ ય, કુટુબેસુ ય, મંત્રેસુ ય. ગુજ્જેસુ ય,  
રહસ્યેસુ ય, નિચ્છેસુ ય, વ્યવહારેસુ ય, આપુચ્છણિજ્જે, પહિપુચ્છણિજ્જે)  
પ્રદેશી રાજાના અનેક કાર્યોમા, કાર્ય સંપાદક હેતુઓમા, કુટુમ્બની ગાળતમા, કર્તવ્ય  
નિશ્ચયાર્થ ગુપ્ત મંત્રણાઓમા, ગુહ્યોમા અંશરમને લીધે ગોપનીય કામોમાં, રહસ્યોમા—  
પ્રચ્છન્ન વ્યવહારોમા અને નિશ્ચયોમા પૂર્ણ નિષ્ણંથોમા અને વ્યવહારોમા. બાધવો  
વગેરે વડે લોક વિપરીત આચરણ કરવા બદલ તેમને પ્રાયશ્ચિત્ત કરાવવામા. વારે ઘડીએ



टीका—‘स्वस्व ण’ इत्यादि—

तस्य स्वस्य मदेक्षिनो राज्ञा ज्येष्ठभ्रातृवयम्यक = ज्येष्ठभ्रातृवयो यस्य  
 म्यकः स्वस्य परमादरणीयत्वात् चिधो माम=विघ्ननामा सारयि मामीम । स  
 चिप्रसारयि आङ्गपः=समुद्भूत ‘जाव-यावत्-यावत्पदेन-द्विते विधिष्य  
 चिउल-सयणामण-भाण-धाव्याहणे बहुभ्रम-बहुजायस्वरयप् आभोग  
 सपभोगमपउतो विच्छिद्य चिउलमत्तपाणे बहुदासीनामगोमहिसगवेमय

बार बार पूछा जाता था—‘शेषरूप से पूछा जाता था (मेहीपमाण आहारे  
 आनवणभूए, वक्खुभूए, सम्बद्धानमवमूमिपासु मद्धपच्चण विहणविचारे  
 रज्जपुरावित्तए यासि होत्था) निम्न प्रकार मेघि का आश्रित करके वैश्व  
 घूमते हैं उसी प्रकार उसे आश्रित करके मन्त्रिमण्डल मन्त्रकरनेरूप कार्या  
 में प्रवृत्त होता था अतः वह मैत्रीरूप था, तथा परगणादिक प्रमाणों की  
 तरह वह इयोपादेय पदार्थों में प्रवृत्तिनिवृत्तिशाली होने के कारण संशय  
 रहित होकर पदार्थों का परिच्छिद्यक था ईर्माभय वह प्रमाणरूप या आधार  
 भूतपदार्थों की तरह वह सब का आश्रयदाता था रज्जु स्तम्भादिका की  
 तरह वह विपत्तिरूप रूप में पतित जनों का उद्धारक होने के कारण  
 भवमन्त्ररूप था यहाँ यह उका हो सकती है आधार और भव  
 सम्बन्ध में क्या भेद है ! इस का उत्तर कि निम्नके सहारे से  
 मनुष्य अपनी उन्नति करता है या स्वरूपावस्थ होता है उसका नाम आधार  
 है तथा जिसके अन्तर्मन्त्र से विपत्तियाँ दूर होती हैं उसका नाम भवस-

ज्येष्ठी आये भद्राक्ष केशवभां आवती हती अने सन्निधे रूपभां ज्येष्ठी पूछवामां  
 आवतु हतु (मेहीपमाण आहारे आनवणभूए सम्बद्धानमवमूमिपासु  
 मद्धपच्चण विहणविचारे रज्जपुरावित्तए यासि होत्था) मेहिना आधार जेभ  
 जगद हरे छ तेभ ज्येष्ठी आधार आनीने भद्रिमण भद्राक्ष वज्रे भयोभां प्रवृत्त  
 यतु हतु ज्येष्ठी ते मेहीरूप हतो. प्रत्यक्षदिक प्रमाणोनी जेभ ते देवोपादेय पद-  
 र्थोभां प्रवृत्ति निवृत्तिशाली होवा जल पदार्थोनी ते निराक्षणे परिच्छिद्य हतो.  
 ज्येष्ठी ते प्रमाणरूप हतो. आधारभूत पदार्थोनी जेभ ते सो ईर्षनी आश्रयदाता हतो.  
 रज्जु स्तम्भादिकोनी जेभ विपत्तिरूप रूपभां चटोलाजोतु पक्ष्म केशविर होवाधी ते  
 अवतलनरूप हतो. अही आधार अने अवतलनना अथ विरे शक्त उत्पन्न भई  
 शके छ छ ज्येष्ठी जन्नेभां श्रेय तत्त्वत छ ? तो रूपीकक्ष्म आ प्रमाण छ छ जेना  
 सहारे-आश्रये भावस उन्नति करे छ छ स्वरूपावस्थ होव छ रतु नाम आधार  
 छ तेभ जेना अवतलनधी विपत्ति दूर भाव छ

‘व्यभू’ छाया—दीप्तो विस्तीर्णाविपुलशयनासनयानवाहनाकीर्णो बहुधन-  
बहुजातरूप-रजतआयोगसंप्रयोगसंप्रयुक्तो विच्छर्दितविपुलभक्तपानो बहु  
दासीदास गोमहिष गवेलकप्रभृतः इतिसंग्राह्यम्, तत्र-दीप्तः=तेजस्वी विस्तीर्णं  
विपुलभवनशयनासनयानवाहनाकीर्णः—विस्तीर्णानि=विस्तृतानि विपुलानि  
बहूनि भवनानि=गृहाः, शयनानि=तल्पानि आसनानि=पीठकादीनि, यानानि=  
शकटप्रभृतीनि, वाहनानि=हयादयस्तैराकीर्णं=व्याप्तः समुपेतो वा, बहुधन बहु-  
जानरूपरजत.—बहु=विपुलं धनं=गणिमप्रभृति यस्य स बहुधनः, बहु=विपुलं  
जानरूपं=सुवर्णं रजतं=रूप्यं च यस्य स बहु जातरूपरजतः बहुधनश्चासौ  
बहुजातरूप-रजतश्चेत-बहुधनबहुजातरूपरजतः, तथा आयोगसंप्रयोग-  
संप्रयुक्तः आसमन्ताद् योजनं=द्विगुणादिलाभार्थं रूप्यादीनामधमर्णा-

म्बन है। नेत्र जैसे अपने विषयभूत होने योग्य पदार्थों का प्रदर्शक होता है उसी प्रकार से यह सब सबके लिये सकलार्थ का प्रदर्शक था यदुक्तम्—  
“मेधिः प्रमाणं आधारः, आलम्बनं चक्षुः”

इस बात की स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिये उपमावाचक भूतशब्द इनके साथ जोड़ कर सूत्रकार ने पुनः इनकी इस प्रकार से आवृत्ति की है—यह मेधि भूत, प्रमाणभूत, आधारभूत एवं चक्षुभूत था अतः सर्वस्थानों में—सन्धि, विग्रह आदिरूप सब जगहों में एवं मन्त्रि—आमात्यादि स्थानरूप सर्वभूमिकाओं में यह यथार्थवादीरूप से माना जाता था और राजा ने भी इसी कारण अन्त पुरादि जैसे स्थानों में आने जाने को इसे छूट देरखी थी। इसतरह राजा का अतिविश्वास पात्र बना हुआ यह चित्रसारथि सकल राज्यकार्य का प्रेक्षक भी बन गया था।

तेष्ट नाम अवलोकन छि नेत्र जेभ पोताने विषयभूत थावा येअ्य पदार्थोना प्रदर्शक होय छि तेमज ते पणु सौ भाटे सकलार्थोना प्रदर्शक हुतो।

जेभके —“मेधिः प्रमाण आधारः, आलम्बन चक्षुः”

जे ज वातने वधारे स्पष्ट करवा भाटे सूत्रकारे उपमावाचक ‘भूत’ शब्द जेभने लगाडीने इरी आ शब्दोनी आ प्रमाणे आवृत्ति करी छि—जे मेढिभूत, प्रमाणभूत आधारभूत, अने चक्षुभूत हुतो जेथी गधे—संधि, विग्रह वगेरे इप गधी जग्याजे अने मन्त्रि आमात्यादि स्थानइपे सर्वभूमिकाओमा ते सोअी सदाहु आवनार गणुतो हुतो। जेथी राजाजो पणु अत पुर जेवा स्थानोमा पणु तेने प्रवेशवानी छूट आपी दीधी हुती राजाजो अतिविश्वासपात्र भनेलो जे चित्र सारथि आभे समस्त राज्य-कार्योना प्रेक्षक पणु जनी गयो हुतो।

विभ्या नियोजनमायोगः, मस्य प्रयोग -प्र=प्रकर्षेण योजनम्=उपायचिन्तनम्  
 आयागप्रयोगः, यद्वा आयागेन=द्विगुणादिभिर्यथा प्रयोग=अथमर्थानां सविधे  
 द्रव्यस्य वितरणम् आयोगप्रयोगः, स समयुक्त=प्रवर्तितो येन, तस्मिन् वा  
 समयुक्त=सम्पन्नो यः स आयोगप्रयोगसंयुक्त=द्रव्योपार्जनप्रवृत्त इत्यर्थः,  
 तथा विच्छदि वधिपुलभकपानः विच्छदि'त वि=विशेषेण छदि'ते=भोज्यनावशिष्टे  
 भक्षपाने=भक्त व पान च यस्य सः तथा=बहुवासीदसगोमहिषगवेषक  
 प्रभृतः=दास्यश्च दासाश्च गावश्च महिषाश्च गवेषकाः=उरध्वामेति-दासीदाम-  
 गोमहिषगवेषका, बहवः=प्रचुरा दापीदासगोमहिषगवेषका यस्य सः, तथा-  
 यदुज्जनस्य=जातिविवक्षयैकवचन संबन्धसामांश पण्डी, तेन बहुजनैरित्यर्थो  
 बोध्यः, अथ अपीत्यप्याहाराद् बहुजनैरपि अपरिभृतः=पराभक्ष रहितवासीत्।  
 तथा-स विभ्रन्सारयिः-सामवण्ण भेदोपमदानाथ शास्त्रेहामविशिष्टारदः-तत्र-साम  
 =सान्त्व, दण्डो=दमः, मेदो=वैपीकरणम् उपमदान=दानम्-इत्येतास्तु चतस्र्यु  
 रामनीतिषु तथा-अर्थशास्त्र=अर्थमासिसाधनप्रतिपादक शास्त्रे, ईहा मतौ ईहा=  
 विमर्शस्तत्प्रधाना मतिः=बुद्धिस्तस्यां च विष्टारदः=निपुणः, तथा भौतपि  
 कया=स्वामाविकया-अदृष्टाभुताननुभूतविषयया स्वतः समुत्पन्नया, धेनविकया=  
 गुरुसमाराधनसंभासशास्त्राय सैननिनया : कमया=कृषिवाणिज्यादिकर्मसंप्रा-  
 प्त्या, पारिणामिकया=वयःपरिणामजनितया चेति चतुर्विधया=चतुष्कारया  
 बुद्ध्या उपपन्नो=युक्तश्च आसीत्। तथा-स विभ्र सारयिःप्रदेशिनो राज्ञो बहुषु  
 कार्येषु=कर्मक्षेत्रेषु प्रयोजनेष्विति यावत् कारणेषु=कार्यमातसम्पादकहेतुषु  
 कृदुभ्येषु=कृदुभ्यावपये मन्त्रेषु=कर्तव्यनिश्चयाय गुप्तविचारेषु गुह्येषु=मन्त्रया  
 गोपनीयषु व्यवहारेषु रहस्येषु=रासि=एकादे भवा रहस्याग्रेषु प्रच्छन्न  
 व्यवहारेष्विति यावत् निश्चयेषु=पूर्णनिर्णयेषु, व्यवहारेषु=व्यवहारप्रणयेषु,  
 यद्वा-यान्धवादि समाधरितलोकविपगोतादिक्रिया प्रायश्चित्तषु च आपच्छनीया-  
 आ=ईषत् सकृत् मच्छनीयाः=प्रष्टव्या, परिप्रच्छनीयाः-परि-सर्वतोभावेन असकृद्  
 प्रच्छनीयाः=प्रष्टव्या, तथा स विभ्रसारयिः-मेधिः=यथा मेधिमांसस्य गोमष्टल  
 भूमति, तत्रैव तमाभित्य सकृत् मन्त्रिमष्टल मन्त्रकायषु प्रवर्त्तते, अतः स  
 मेधिः, तथा-प्रमाणम्=प्रत्यक्षादिप्रमाणपदैयोपादेयमवृत्तिनिवृत्तिरूपतया सद्य  
 यराहित्येन पदार्थ परिच्छेदकः, आधारः=आधारवत्सर्वेषामाभयभूतः,  
 आसम्भन=रज्जुस्तम्भादिषु विपस्कृतेषु तज्जनोद्धारकतयाऽवसम्भनम्। ननु-  
 आधारालम्भनयोः को भेदः? इति चेत् यमपिष्टाय जन उन्नतिं गच्छति  
 स्वस्वपादस्थो वा मर्षति स आधारः, यदवसम्भनेन च विपक्षो विनिवर्त्तते

તદાલમ્બનમ્—ઈતિ મેદ ગૃહાણ । ચક્ષુઃ=ચક્ષતે=પદ્યન્ત્યનેનેતિ ચક્ષુઃ=નેત્રં, તદ્વત  
સર્વેષાં સકલાર્થપ્રદર્શકઃ । યદુક્તમ્—

“મેધિઃ પ્રમાણમ્ આધારઃ આલમ્બનં ચક્ષુઃ” ઇતિ, તદેવ સ્પષ્ટપ્રતિપત્તયે  
ઔપમ્યવાચિ-ભૂતશબ્દસમ્મેલનેન પુનરાવર્તયતિ—‘મેધિભૂતઃ પ્રમાણભૂતઃ  
આધારભૂતઃ આલમ્બનભૂતઃ ચક્ષુર્ભૂતશ્રાન્તિઃ તથા—સ ચિત્રમારથિઃ સર્વ  
સ્થાનસર્વભૂમિકાસુ—સર્વસ્થાનાનિ=સન્ધિવિગ્રહાદિરૂપાણિ સકલકાર્યાણિ ચ  
સર્વભૂમિકાઃ=મન્વમાત્યાદિસ્થાનરૂપાશ્ચ તાસુ લબ્ધઃ ઉપલબ્ધઃ પ્રત્યયઃ=પ્રતીતિ  
યથાર્થવાદિતયા યેન સ તથાભૂતઃ, તથા—ત્રિતીર્ણવિચારઃ—ત્રિતીર્ણઃ=રાજ્ઞા  
પદત્તઃ વિચારઃ=વિચરણમ્ અન્તઃપુરાદિષુ સર્વંત્ર યમ્મૈ સ તથા રાજ્ઞોડાંત  
વિશ્વાસપાત્રમિત્યર્થઃ, તથા—રાજ્યધુરાચિન્તકઃ=સકલરાજ્યકાર્યપ્રેક્ષકશ્રાપિ  
આસીત્ ॥સૂ૦ ૧૦૨॥

इसकी टीका का अर्थ इसी मूलार्थ के साथ कर दिया गया है,  
फिर भी जिन पदों का अर्थ मूलार्थ में नहीं किया गया है—उनका अर्थ  
इस प्रकार से है—विमर्शप्रधान मति का नाम ईदामति है. स्वाभाविकबुद्धि  
का नाम कि—जो अदृष्ट अननुभूत, अश्रुत आदि पदार्थों को विषय करती  
है और उनमें स्वयं ही उत्पन्न हो जाती है वह औत्पत्तिकी बुद्धि है । इसका  
नाम “हाजिर जवाबी” भी है. गुरुजनों की सेवा शुश्रूषादि करने से  
प्राप्त शास्त्रार्थ के चिन्तन से जो बुद्धि प्राप्त होती है उसका नाम वैतयिकी  
बुद्धि है । कृषिवाणिज्य आदिकर्म करते-र जो बुद्धि प्राप्त होती है उसका  
नाम कर्मजा बुद्धि है । जैसे उमर बढ़ती जाती है वैसे-र जो बुद्धि प्राप्त  
होती है उसका नाम पारिणामिकी बुद्धि है । अर्थात् वयः परिणाम जनित  
बुद्धि का नाम ही पारिणामिकी बुद्धि है ॥सू० १०२॥

આનો ટીકાર્થ મૂલાર્થમાં જ સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે. છતાં એ કેટલાક પદોનો  
અર્થ મૂલાર્થમાં સ્પષ્ટ થયો નથી તેમનો અર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે વિમર્શ  
પ્રધાનમતિનું નામ ઈદામતિ છે. અદૃષ્ટ, અનનુભૂત, અશ્રુત વગેરે પદાર્થોને વિષયભૂત  
બનાવનારી અને તેમાં પોતાની મેળે જ ઉત્પન્ન થનારી સ્વાભાવિક બુદ્ધિનું નામ  
ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિ છે. આને ‘હાજિર જવાબી’ પણ કહે છે ગુરુજનોની સેવા શુશ્રૂષા  
વગેરેથી પ્રાપ્ત થયેલી અને શાસ્ત્રાર્થ ચિંતનથી પ્રાપ્ત થયેલી વૈતયિકી કહેવાય  
છે કૃષિ વાણિજ્ય વગેરે કર્મો કરતા કરતા જે બુદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે તેનું નામ કર્મજા  
બુદ્ધિ છે આયુષ્યની વૃદ્ધિ સાથે સાથે જે બુદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે તે પારિણામિકી બુદ્ધિ  
છે. એટલે કે વય પરિણામ જનિત બુદ્ધિનું નામ જ પારિણામિકી બુદ્ધિ છે ॥સૂ૦ ૧૦૨॥

मृत्प—तण कालेण तेण समएण कुणाला नाम जणवए होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धं । तत्थ ण कुणालाए जणवए सावत्थी नाम नगरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिक्खा । तिसे ण सावत्थीए जणरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीमाए कोट्टए नाम चेइए होत्था, पुराणे जाव पासाईए ४ । तत्थ ण सावत्थीए नगरीए पए सिस्स रन्नो अतेवासी जियसत्तु नाम राया होत्था, महया हिम वत जाव विहरइ ॥ सु० १०३ ॥

छाया—अस्मिन् काले तस्मिन् समयं कुणाला नाम जनपद आसीत्, अद्वितीयमवस्था । तत्र खलु कुणालायां जनपद आवस्ती नाम नगरी आसीत् अद्वितीयमवस्था यावत् प्रतिष्ठा । तस्याः खलु आवस्थानगरीः बह्वि-

‘तेण कालेण तेण समएण’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तेण कालेण तेण समएण) उस काल में—अवस्थिति के चौथे आरे में और कैशिकासी के विहार से उपलब्ध उस समय में (कुणालानाम जणवए होत्था) कुणाला इस नामका देश था (रिद्धत्थिमियसमिद्धे) यह देश अद्वि, स्तिमित एवं समृद्ध या यावत् प्रतिष्ठा—सर्वोत्तम या (तत्थ ण कुणालाए जणवए सावत्थी नाम नगरी होत्था) उस कुणालादेश में आवस्ती नामकी नगरी थी (रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिक्खा) यह नगरी भी अद्वि स्तिमित एवं समृद्ध थी और यावत् प्रतिष्ठा थी (तीसे ण सावत्थीए जणरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीमाए कोट्टए नाम चेइए होत्था) उसआवस्ती नगरी के बाहिर में ईशानकोने में

“तेण कालेण तेण समएण” इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तेण कालेण तेण समएण) ते अणे—अवस्थिति की आशय से अने कैशिकासीनी विहारना संगी (कुणाला नाम जणवए होत्था) कुणाला नाम देश होता है (रिद्धत्थिमियसमिद्धे) आ देश अद्वि स्तिमित अने समृद्ध होता यावत् प्रतिष्ठा—सर्वोत्तम होता है तत्थ ण कुणालाए जणवए सावत्थी नाम नगरी होत्था) ने कुणालादेश में आवस्ती नामकी नगरी होती है (रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिक्खा) आ नगरी पण अद्वि स्तिमित अने समृद्ध होती अने यावत् प्रतिष्ठा होती है (तीसे ण सावत्थीए जणरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीमाए कोट्टए नाम चेइए होत्था) ते आवस्ती नगरीनी बाह्य ईशान कोण में

उत्तरपौरस्थे दिग्भागे कोष्ठको नाम चैत्यमासीत्, पुराणं यावत् प्रासादीयम्  
४। तत्र खलु आवस्त्यां नगर्यां प्रदेशिनो राज्ञोऽन्तेवासी जितशत्रुं नाम  
राजा आसीत् महाहिमवद् विहरति ॥ सू० १०३ ॥

टीका—‘तेणं कालेण’ इत्यादि—

तस्मिन् काले=अस्या अवसर्पिण्याश्चतुर्थारकलक्षणे काले तस्मिन् समये=  
केशिस्वामिविहरणोपलक्षिते समये कुणाला नाम जनपदः=कुणालाभिधो  
आसीत्। स जनपदः ऋद्धस्तिमितसमृद्धः आसीत्। तत्र खलु कुणालायां जन  
पदे आवस्ती नाम नगरी आसीत्। सा नगरी ऋद्धस्तिमितसमृद्धा यावत्  
प्रतिरूपा चासीत्। यावत्पदेनात्र-औपपातिकसूत्रोक्तचम्पानगरीवर्णनं सर्वं  
संग्राह्यम्। तस्याः खलु आवस्त्या नगर्याः बहिः=प्रदेशे उत्तरपौरस्थे उत्तर-  
पूर्वयोरन्तराले दिग्भागे=ईशानकोणे कोष्ठको नाम चैत्यमासीत्, तच्चैत्य  
पुराणं यावत् प्रासादीयं दर्शनोपयुक्तं अभिरूपं प्रतिरूपं चासीत्। यावत्प-  
देनात्र-औपपातिकसूत्रोक्तं सर्वमनुसन्धेयम्। तत्र खलु आवस्त्यां नगर्यां  
प्रदेशिनो राज्ञः अन्तेवासी अन्ते=समीपे वसतीत्येव शीलोऽन्तेवासी=

कोष्ठक नामका चैत्यं था (पुराणे जाव प्रासाईए४) यह चैत्य प्राचीन था  
यावत् प्रासादीय था, दर्शनीय था, अभिरूप था और प्रतिरूप था (तत्थ णं  
सावत्थीए नगरीए पएसिस्स रन्नो अ तेवासी जियसत्तु नाम राया होत्था, महया  
हिमवत् जाव विहरइ) उस आवस्ती नगरी में प्रदेशी राजा का अन्तेवासी  
जितशत्रु नाम का राजा था, जो महाहिमवान् आदि के जैसा बलवाला था।

टीकार्थ इसका स्पष्ट है—आवस्ती नामकी नगरी का वर्णन औप-  
पातिक सूत्र में कथित चम्पानगरी के वर्णन जसा है। चैत्य—उद्यान के वर्णन में  
भी औपपातिक सूत्रोक्त वर्णन यहां पर ग्रहण करना चाहिये। अन्तेवासी

कोष्ठक नामे चैत्यं इत्तुं. (पुराणे जाव प्रासाईए४) आ चैत्य प्राचीन इत्तुं यावत्  
प्रासादीय इत्तु दर्शनीय इत्तु, अलिङ्ग इत्तु अने प्रतिङ्ग इत्तु। (तत्थ णं सावत्थीए  
नगरीए पएसिस्स रन्नो अ तेवासी जियसत्तु नाम राया होत्था, महया  
हिमवत् जाव विहरइ) ते आवस्ती नगरीमा प्रदेशी राजानो अन्तेवासी जितशत्रु  
नामे राजा इत्तो. ते महाहिमवान् वगेरे जेवो भणवान् इत्तो.

टीकार्थ—आ सूत्रेण टीकार्थं स्पष्टं न छे औपपातिक-सूत्रेण चम्पानगरीतुं जे  
प्रमाणे वर्णनं कस्वामां आण्युं छे तेभज आवस्ती नगरीतुं वर्णनं पण्युं समञ्जसुं  
नेधये. चैत्यतुं वर्णनं पण्युं औपपातिक सूत्रेण वर्णननी, जेम् समञ्जसुं नेधये

शिष्य भन्तवामाश्र-भन्तेवासी सम्पगाहापालक इति भाषा, तथा पूती  
 त्रितशत्रु राजा आसीत्। म जितशत्रु राजा महाहिमवद्-यावद्  
 विहरति। 'जितशत्रु राजा मर्ष' यण नमोपपातिकसूत्रोक्तकृणिकराजवद्  
 पाप्यमिति ॥ सू० १०३॥

(मूलम्—तएण से पप्सी राया अन्नया कयाइ महत्थ महग्ग  
 महरिह विउल रायारिह पाहुड सज्जावेइ सज्जावित्ता चित्त सारहि  
 महावेइ, सहावित्ता एव वयासी गच्छ ण चित्ता। तुमं सावन्धि नगरिं  
 जियसत्तस्स रणो इम महत्थं जाव पाहुड उवणेहि जाइ तत्थ  
 रायकज्जागि य रायकिञ्चाणि य रायनिर्हो य रायववहारा य ताइ  
 नियसत्तुणा तद्धि मयमेव पच्चुवेक्खमाणो विहराहित्ति कहु विस  
 ज्जए ॥ सू० १०४ ॥)

छाया—ततः स्वशुभं म प्रवेशी राजा अन्यदा कदाचित् महार्घं महार्घं  
 महाई विपुल राजार्घं प्राप्तुं सज्जयति, सज्जयित्वा चित्तं सारणिं गच्छ  
 शत्रु क अर्थ शिष्य है बह भन्तेवासी के समान भन्तेवासी वा अर्थात्  
 उसकी भाषा का अच्छी तरह से पालक या त्रितशत्रु राजा का सर्ववर्धन  
 औरपानिक सूत्रोक्त कृणिक राजाकी तरह से है ऐसा मानना चाहिये ॥ सू० १०३॥

‘तएण से पप्सी राया’ इत्यादि।

सूची—(तएण से पप्सी राया अन्नया कयाइ महत्थं महग्ग मह  
 रिह विउल रायारिह पाहुड सज्जावेइ) एक दिन की बात है कि प्रवेशी  
 राजा ने महार्घ विपुल प्रयोजनवाला—सातिशयप्रयोजनयुक्त, महार्घ बहुमूल्य  
 महाइ—अतिशोभायुक्त विपुल—बहुत बड़ा ऐसा राजा के योग्य प्राप्त—मेट

भन्तेवासी शब्दों का अर्थ शिष्य ॥ ते भन्तेवासीनी जेम भन्तेवासी कहते कहते हैं  
 ते सरस रीते तेनी आश्रय प्राप्त करेते कहते। जितशत्रु राजा शत्रु यण वयन जोप-  
 पत्ति सूत्रोक्त कृणिक राजा की जेम समस्त ज्येष्ठ ॥ सू १०३ ॥

‘त एण से पप्सी राया’ इत्यादि।

अर्थ—(त एण से पप्सी राया अन्नया कयाइ महत्थं महग्ग म  
 हरिह विउल रायारिह पाहुड सज्जावेइ) ते प्रवेशी राजा के कुछ दिनों में महार्घ  
 विपुल प्रयोजनवाली—सातिशय प्रयोजन युक्त महार्घ—बहुमूल्यवाणी, महार्घ अति-  
 शोभायुक्त, विपुल—पुष्कल प्रमाणां राजा के ज्येष्ठ भ्राता (भ्राता) के रूप में है।

यति, शब्दयित्वा एवमवादीत-गच्छ खलु चित्र ! त्वं श्रावस्तीं नगरीं जित-  
शत्रोः राज्ञ इदं महार्थं यावत् प्राभृतम् उपनय, यानि तत्र राजकार्याणि च  
राजकृत्यानि च राजनीतयश्च राजव्यवहाराश्च तानि जितशत्रुणा साद्धं स्वय-  
मेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणो विहरेति कृत्वा विसर्जितः ॥मू० १०४॥

टीका—‘तएणं इत्यादि—

ततः खलु स प्रदेशो राजा अन्यदा कदाचित्=अन्यस्मिन्=कस्मि-  
श्चित् समये महार्थं-महान्=विपुलः अर्थः=प्रयोजनं यस्य स तथा तत्-  
सान्निध्यप्रयोजनयुक्तम् महार्थं=बहुमूल्यं महार्हम्=अतिशोभनं विपुलं=  
बृहत् राजर्हं=नृपयोग्यं प्राभृतम्=उपहारम् सज्जयति=कल्पयति, सज्जयित्वा  
चित्रं सारथिं शब्दयति=आह्वयति, शब्दयित्वा एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण  
अवादीत-हे चित्र ! त्वं खलु श्रावस्तीं नगरीं गच्छ, तत्र-जितशत्रोः राज्ञः  
कृते इदं महार्थं यावत् प्राभृतम् उपनय=प्रापय यानि तत्र=श्रावत्यां राज-  
कार्याणि=राज्ञो राज्य सम्बन्धीनि कर्त्तव्यानि राजकृत्यानि=राज्ञःस्वविषयाणि  
प्रतिदिवससम्बन्धिकर्त्तव्यानि, राजनीतयः=साम-दण्ड-भेदोपप्रदानरूपाः राज-

सजाया (सज्जावित्ता चित्तं सारहिं सदावेइ) सजाकर फिर उसने चित्र  
सारथि को बुलाया (सदावित्ता एवं वयासी) बुलाकर उससे ऐसा कहा  
(गच्छणं चित्ता ! तुम सावर्त्थि नयरिं जियसत्तुस्स रण्णो इमं महत्थं जाव  
पाहुडं उवणेहि) हे चित्र ! तुम श्रावस्तीनगरी में जाओ वहां जितशत्रु के  
लिये यह महाप्रयोजन साधक यावत् भेट दे आओ तथा (जाइं तत्थ राय-  
कज्जाण य रायकिच्चाणि य रायनीईओ य रायववहारा य ताईं जियसत्तुणा  
सद्धिं समयमेव पच्चुवेक्खमाणे विहराहि त्ति कहुं विसज्जिए) जो वहां पर  
राजा के राजसंबन्धी कर्त्तव्य हैं राजा के अपने प्रतिदिवस के कर्त्तव्य  
हो, राजनीति साम, दण्ड, भेद एव उपप्रदानरूप हों एवं राजव्यवहार हों

(सज्जावित्ता चित्तं सारहिं सदावेइ) तैयार करीने तेले चित्र सारथीने भोलाव्यो  
(सदावित्ता एवं वयासी) भोलावीन तेने आ प्रभाए कथुं, (गच्छ णं चित्ता !  
तुमं सावर्त्थि नयरिं जियसत्तुस्स रण्णो इमं महत्थं जाव पाहुडं उवणेहि)  
हे चित्र ! तमि श्रावस्तीनगरीमा लवो अने जितशत्रुने आ महाप्रयोजन साधक  
यावत् लेट आपी आवो, तथा (जाइं तत्थ रायकज्जाणि य रायकिच्चाणि य  
रायनीईओ य रायववहारा य ताइ जियसत्तुणा सद्धिं समयमेव पच्चुवेक्ख-  
माणे विहराहि त्ति कहुं विसज्जिए) त्या राजना राज सम्बन्धि ने कंठ कर्त्तव्यो  
होय, राजनीतिने लगती साम, दंड, लेट अने उपप्रदान रूप-भाषतो होय, राजकृत



स्वयहाराः=राजकृतन्यायाद्य भवन्ति, तानि सर्वाणि भित्तुशुभा वृत्तेण सार्दे स्वयमेव, प्रत्युत्प्रेतमाणो=निरीक्षमाणो विचर=विच्छ इति कृत्वा=इत्युक्त्वा स विचरमारपिस्तेन विमर्जितः ॥ सू० १०४ ॥

मूलम्—तएण से चित्त सारही पएसिणा रण्णा एव बुत्ते समाणे हट्ट—जाव पडिसुणेत्ता त महत्थ जाव पाहुड गेण्हइ, पए सिस्स रण्णो अ तियाओ पडिणिक्खमइ, सेयविया नयणीए मज्झ मज्झेण जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता त महत्थ जाव, पाहुड ठवेइ, कोट्टवियपुरिसे सहावेइ, सहावित्ता एव वयासी खिप्पामेय भो वेवाणुप्पियां सच्छत्त जाव जुद्धसज्ज चाउग्घट आसरह जुत्तामेव उवट्टवेइ जाव पच्चप्पिणहा तएण ते कोट्टविय पुरिसा तहेव पडिसुणिच्चा खिप्पामेव सच्छत्त जाव जुद्धसज्ज चाउग्घट आसरह जुत्तामेव उवट्टवे ति, तामाणत्तियं पच्चप्पिणति । तएण से चित्ते सारही कोट्टविय पुरिसाण असिए, पयमइ जाव हियए ण्हाए । कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सन्नद्धवद्धवम्मिय कवए उप्पालियसरासणपट्टिए पिणवगेविज्जविमलवरचिघपट्टे गहिया उहप्पहरणे त महत्थ जाव पाहुड गेण्हइ, जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घट आसरह दुक्खेइ, वट्टहि पुरिसेहि सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणेहि सदि सपरिवुडे सकोरिटमत्तदामेण छत्तेण

राजकृत न्याय हों, उन सब का जिनको राजा के साथ निरीक्षण करते रहो इस प्रकार कहकर विचरारपि को उभने विमर्जित कर दिया । टीकाय स्पष्ट है ॥ सू० १०४ ॥

न्याय होय आ अभाव जित्तुशुभा सर्वांगी भासे बढिने वसे निरीक्षण करते रहे आ प्रभावे बढिने तेसे विचरारपिने कथानी कथिनी बढी, ॥ सू० १०४ ॥

रेज्जमाणेणं- महया-भडचडगररहपहकरविदपरिक्खित्ते साओ  
गेहाओ णिग्गच्छइ, [सेयवियाए नयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ,  
मुहेहिं वासेहिं पायरासेहिं नाइविकिठ्ठहिं अतरावासेहिं वसमाणे  
वसमाणे केइयइस्स जणवयस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव कुणाला जण-  
वए जेणेव सावत्थी नयरी तेणेव उवागच्छइ, सावत्थीए नयरीए  
मज्झं मज्झेणं अणुपविसइ, जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो गिहे जेणेव  
बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तुरए णिगिण्हइ, रहं  
ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तं महत्थ जाव पाहुंडं गिण्हइ, जेणेव अन्भि-  
तरिया उवट्ठाणसाला जेणेव जियसत्तु राया तेणेव उवागच्छइ, जिय-  
सत्तु राय करयलपरिगहिय जाव कट्ठु जएणं विजएणं वद्धावेइ,  
त महत्थ जाव पाहुंडं उवणेइ ॥ सू० १०५ ॥

छाया--ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा एवमुक्तः सन्  
हृष्ट यावत् प्रतिश्रुत्य तत् महार्थं यावत् प्राभृतं गृह्णाति, प्रदेशिनो राज्ञो  
ऽन्तिकात् प्रतिनिष्कामति, श्वेतविकाया नगर्या मध्यमधमेन यत्रैव स्वक

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चित्ते सारही) उस चित्र सारथिने  
जब (पएसिणा रण्णा) प्रदेशी राजाने एवं बुत्ते समाणे) उसने ऐसा कहा-  
तब वह (हट्ट जाव) बहुत प्रसन्न हुआ यावत्—(पडिसुणेत्ता त महत्थं जाव  
पाहुंड गेण्हइ) उसकी आज्ञा के वचनों को स्वीकार करके उस महार्थ-  
साधक यावत्—प्राभृतको लिया (पएसिस्स रण्णो अतियाओ पडिनिक्खमइ)  
और लेकर—वह प्रदेशी राजा के पास से निकला (सेयविया नयरीए मज्झं म-  
ज्झेण जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) और श्वेतविका- नगरी के

सुत्रार्थ—(तएण) त्थार पछी (से चित्ते सारही) ते चित्र सारथिने न्थारे  
(पएसिणा रण्णा) प्रदेशी राजाने (एवं बुत्ते समाणे) आग्रमाळे आज्ञा करी त्थारे  
ते (हट्ट जाव) अत्यंत प्रसन्न थये यावत्—(पडिसुणेत्ता त महत्थं जाव पाहुंडं  
गेण्हइ) तेनी आज्ञाना वचनाने स्वीकारी ने तेणे ते महार्थसाधक यावत् लेटने लध  
वीधी, (पएसिस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ) अने लधने ते प्रदेशी राजाने  
पासेथी लेलो थधने जहार नीटल्यो, (सेयविया नयरीए मज्झं मज्झेणं जेणेव सए

युद्ध तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तु महाय-यावत् प्राप्तुं स्थापयति,  
 कौटुम्बिकपुरुषान् शान्दयति, - सन्धयित्वा एतन्वादिषु क्षिपमेव भी देवानु-  
 मिया । सङ्घम यावत् युद्धमञ्जं चातुर्यं अश्वरथ-युक्तमथ - उपस्था-  
 पयत यावत् मत्पर्ययत । ततः सङ्घं ते कौटुम्बिकपुरुषाः तथैव प्रतिष्ठस्यु-  
 र्क्षिपमेव सङ्घम यावत् युद्धमञ्जं चातुर्यम् अश्वरथयुक्तमेव उपस्थापयन्ति

बीचों बीच से होता हुआ जहाँ अपना गृह या जहाँ पर आया (उपाग-  
 च्छता व महस्य जाव पाहुण ठवेह) जहाँ आकर के डमने उम मार्य  
 महाप्रयोजनसाधक यावत् प्राप्तु को एक तरफ रख दिया (कौटुम्बिक  
 पुरिसे सहावेह) और अपने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया (सहाविता एव  
 वपासी) उनसे ऐसा कहा (खिप्पामेव भी देवाणुप्पिया ! सङ्घत जाव  
 जुद्धमञ्जं चाउगघट आसरह जुत्तामेव उवहुवेह, जाव पक्खप्पिणह) हे देवा-  
 नुमियो ! तुम लोग बीच ही रथ को घोड़ा जोतकर तैयार करके यहाँ से  
 आओ, उसे चार घटाओं से सज्जित करमा यावत् फिर । हमारी इस  
 आज्ञा को, हमें वापिस करना-उस पर छत्र भी लगाना यावत् उसे युद्ध  
 के योग्य सज्जित करना (तएण ते कौटुम्बिकपुरिस्ता तथैव पडिसुमिया  
 खिप्पामेव सङ्घत जाव जुद्धमञ्जं चाउगघट आसरह जुत्तामेव उवहुवेति)  
 विप्र सारवि के इस प्रकार बचन सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुत  
 ही जल्दी छत्रयुक्त करके यावत् चार घटोंवाले उस अश्वरथ को तैयार

गिहे तेणोव उपागच्छ) अने श्वेतविमानगरीनी वस्से जमने जम्यां पेटानुं वर हत्तुं त्वां जमे  
 (उपागच्छता व महस्य जाव पाहुण ठवेह) त्वां जमने तेहे ते महाप्रयोजन  
 महाप्रयोजन साधक यावत् प्राप्तुं तेहे ते महाप्रयोजन साधक  
 महाप्रयोजन साधक यावत् प्राप्तुं तेहे ते महाप्रयोजन साधक  
 अने पेटानुं कौटुम्बिक पुरुषोने बुलाया (सहाविता एव वपासी) बुलायीने तेभने  
 हत्तुं, (खिप्पामेव भी देवाणुप्पिया ! सङ्घत जाव जुद्धमञ्जं चाउगघट आसरह  
 जुत्तामेव उवहुवेह जाव पक्खप्पिणह) हे देवानुमियो ! तथे पेश जेतरीने  
 शीघ्र रथ तैयार हो, अने जहाँ लावो, रथने चार घटाओंकी सज्जित हो  
 यावत् आज्ञा प्रभावे काम पुर करीने जमने जमर जापि रथनी छत्र छत्र दोनु  
 लेहमे यावत् जमी सेते बुद्धिमान् भाटे श्रेष्ठ दोन तेम सज्जित हो, (तएण  
 कौटुम्बिकपुरिस्ता तथैव पडिसुमिया खिप्पामेव सङ्घत जाव जुद्धमञ्जं  
 चाउगघट आसरह जुत्तामेव उवहुवेति) विप्र सारविना आ प्रभावे नयन  
 सांभलीने ते कौटुम्बिक पुरुषोने जेकरम तपाधी छत्रयुक्त यावत् चार घटोंकी मुस

तामांशसिकां प्रत्यर्पयन्ति । ततः बलु स चित्रः सारथिः कौटुम्बिकपुरुषाणाम्  
अन्तिके एतमर्थं यावत् हृदयः स्नातः कृतबलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः  
सन्नद्धबद्धवर्मितकवचः उत्पीडितशमनपट्टिकः निन्द्यग्रैव्यविमलवरचिह्नपट्टो  
गृहीतायुधप्रहरणस्तन्महार्थं यावत् प्राभृतं गृह्णाति, यत्रैव चातुर्घण्टः अश्व  
रथस्तत्रैव उपागच्छति, चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति, बहुभिः पुरुषैः सन्नद्ध-  
कर उपस्थित कर दिया (तमांशसिकां पञ्चपिण्ति) और चित्र सारथि के  
पास रथ को तैयार हो जाने को खबर भेज दी. (तएणं से चित्ते सारही  
कोडुबियपुरिसाणं अंतिए एयमड् सोच्चा जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्मे  
कयकोउयम गलपायच्छित्ते सन्नद्धबद्धवर्मियकवए, उत्पीलियसरासणपट्टिए,  
पिणद्धगेविज्ज, विमलवरचिधपट्टे गहियाउहप्पहरणे त महत्थं जाव पाहुडं गेह्हः)  
कौटुम्बिक पुरुषों से की गई खबर को सुनकर वह चित्र सारथि बहुत ही  
अधिक आनंदित एवं संतुष्ट चित हुआ-उसने उसी समय उठकर स्नान किया.  
बलिकर्म (काकआदि को अन्नभाग देनेरूप) किया, कौतुक मंगल एवं प्रायश्चित्त  
किये, अच्छी तरह से बाधकर कवच पहिरा, प्रत्यचा चढाकर धनुष को नग्रीभूत  
किया, घोड़ा में हार पहिरा, तथा सुन्दर चित्रों से चिह्नित निर्मल वस्त्र धारण  
किये और खड्गआदिक आयुधों को साथ में लिए. उस प्रकार से अच्छी  
तरह से सज्जित होकर उसने उस महार्थसाधक यावत् प्राभृत को हाथ  
में लिया और (जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ

सज्जित करीने अश्वरथने उपस्थित कर्यो. (तमांशसियंपञ्चपिण्ति) अने रथ तैयार  
थइ जवानी अणर चित्र सारथिनी पास पडोआडी. (तएणं से चित्ते सारही  
कोडुबियपुरिसाणं अंतिए एयमड् सोच्चा जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्मे  
कयकोउयम गलपायच्छित्ते सन्नद्धबद्धवर्मियकवए उत्पीलियसरासणपट्टिए,  
पिणद्धगेविज्जविमलवरचिधपट्टे गहियाउहप्पहरणे त महत्थं जाव  
पाहुडं गेह्हः) कौटुम्बिक पुरुषोनी काम पूर्ण थइ जवानी अणर सालणीने ते चित्र  
सारथि भूअण आनंदित अने संतुष्ट चित् थये. तेखे तरतज स्नान कर्युं, अदि  
कर्म कर्युं, कौतुक मंगल अने प्रायश्चित्त कर्यो. सरस रीते कसीने कवच पडेर्युं, प्रत्यचा  
थढावीने धनुषने नअ अनाअयुं गणामा डार पडेर्यो, सुद्ध सुद्ध चित्रोथी चिन्हित  
निर्मल वस्त्रो धारण कर्यो. अने अड्ग वगेरे आयुधो अने प्रहरणो साथे लीधा आ. प्रभाखे  
सरस रीते सज्जित थइने तेखे ते महार्थसाधक यावत् लेटने हाथमां लीधी अने  
(जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घटे आसरहं दुरुहेह)  
लइने ते जया चातुर्घट अश्वरथ तैयार डतो त्या गये त्या जइने ते रथ उपर

पाद-गृहीतायुधपरिहरणं सादृ, सम्परिवृतः सकोरिष्टमोक्षदात्मना, उभेण  
त्रियमाणेन महामन्त्रकाररथपरिहरणं स्थाव गृहाद् निर्गच्छति,  
श्वेतविकाया नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, सुसैः वासैः प्रातराशैः नाति  
विकृष्टैः अन्तरावासैः वसन् वसन् केकयादस्य जनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव  
कुणाला जनपदो यत्रैव आवासी नगरी तत्रैव उपागच्छति, आचस्त्यां

आगच्छत आसत् इहैव) लेकर जहाँ वह वासुपट  
अम्बरध तैयार स्वहा था वहाँ पर आया-वहाँ आकरके फिर  
वह रथ पर चढ़ा (वहुहि पुरिसेहि सनद जाव गहियाउहपरिहरणेहि सद्धि  
संपरिपुडे सकोरिष्टमल्लदामेण छेणेण परिक्खमाणेण महया भववहगररूपग  
करदिदपरिक्खो साओ गिहाओ णिगच्छइ) तब मन्द यावत् गृहीत आयुध  
परिहरणवाले ऐसे अनेक पुरुषों से घिर गया, छत्रधारी द्वारा ध्रियमान  
एव काष्ठपुष्पमाला से विभूषित ऐसा छत्र उसके ऊपर तान दिया गया,  
महामन्त्रों के विस्तृत समूह के वृन्दने उसे आकर घेर लिया इस प्रकार  
की परिस्थिति से युक्त हुआ वह अपने घर से निकला (सेयवियाए नगरीए  
महामन्त्रेण णिगच्छइ) और निकलकर वह श्वेतविका नगरी के बीचों  
बीच से होकर चला (सुहेहि वासेहि पपरामहि नाइ विक्खिहेहि अतरावासेहि  
घसमाणे २ केइयदस्स जणवयस्स मज्झमज्जेण जेणेव कुणाला जणवए जेणेव  
सावत्थी नगरी तेणेव उवागच्छइ) इस प्रकार घर से निकला हुआ वह  
सुन्दर रात्रिनिवासी स, मात कामिककपु। भोजनों से-कछेवाओं से, तथा  
अतिकूर के नहीं ऐसे अन्तरावासी से पढाओं से-मर्यादकाधिक विभोम  
स्वानी से जगह २ गहरता २ केकयादजनपद के मध्य मध्य में होता हुआ

सवार भये। (बहुहि पुरिसेहि सनद जाव गहियाउहपरिहरणेहि सद्धि संपरिपुडे  
सकोरिष्टमल्लदामेण छेणेण परिक्खमाणेण महया-भववहगररूपगकरदिद  
परिक्खो साओ गिहाओ णिगच्छइ) आगे सनद यावत् जेभन्ना हाथों  
आयुधों से अनेक पुरुषों की परिवेष्टित करने तथा केरट उपभोगाधी विभू  
षित अने छत्रधारी वटे धारण इहैव छत्र तेनी ऊपर धावुवाओं आन्नु त्वाए तेने  
महालोगेन विद्यात अभूद व हे आनीने अविष्ट करी सीपि। आभ ते पोताना घरभी  
रवाना भये। (सुहेहि वासेहि पपरामहि नाइ विक्खिहेहि अतरावासेहि घसमाणे २  
केइयदस्स जणवयस्स मज्झमज्जेण जेणेव कुणाला जणवए जेणेव सावत्थी नगरी  
तेणेव उवागच्छइ) आ प्रभावे घेरभी रवाना करने ते सुणकर रात्रिनिवासे, आत  
इति वपुणेज्जे, अति इए नद्धि ओइसे के नलउनलउन्ना अ-वसन्नासे, (मुहामे)  
अन्नाच्छिन्न विभोमि अने स्थान स्थान पर भुज्जम इहो ते केकयाद रत्नचान्नी

नगर्यां मध्यमध्येन अनुप्रविशति, यत्रैव जितशत्रो राज्ञोगृहं यत्रैव बाह्या  
उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथात्  
प्रत्यचरोहति, तत् महार्थं यावत् प्राभूत् गृह्णाति यत्रैव आभ्यन्तरिकी उप-  
स्थानशाला यत्रैव जितशत्रु राजा तत्रैव उपागच्छति, जितशत्रुं राजानं  
करतलपरिगृहीतं यावत् कृत्वा जयेन विजयेन बद्धयति, तन्महार्थं यावत्  
प्राभूतम् उपनयति ॥ सू० १०५ ॥

जहां कुणाला जनपद-(देस) था, और जहां उसमें श्रावस्ती नगरी थी, वहां  
पर आ पहुँचा, (सावत्थीए नगरीए मज्झमज्झेणं अणुपविसइ, जेणेव जिय  
सत्तुस्स रण्णो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ) वहां  
आकर वह ठीक बीचोंबीच से होकर उस श्रावस्ती नगरी में प्राविष्ट हुआ  
और जहां जितशत्रु राजा का प्रासाद था, जहां बाह्य उपस्थानशाला थी  
वहां आया (तुरए णिगिण्हइ, रहं ठवेइ, रह ओ पच्चोरुहइ, तं महत्थं जाव  
पाहुड गिण्हइ) वहां आकर उसने घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया और  
फिर उस रथ में से वह नीचे उतरा और उसमें से उसने महार्थ साधक  
उस प्राभूत को लिया (जेणेव अविमतरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव जियसत्तु-  
राया, तेणेव उवागच्छइ, जियसत्तु राय करयलपरिगहिय जाव कट्टु  
जएणं विजएणं बद्धावेइ तं महत्थं जाव पाहुड उवणेइ) और उठाकर  
जहां आभ्यन्तरिकी उपस्थानशाला थी, जहां जितशत्रु राजा था वहां पर  
आया, वहां आकर के उसने जितशत्रु राजा को दोनों हाथों की अजलि  
बनाकर एवं उसे मस्तक पर रखकर जयाविजय शब्दों का उच्चारण करते

मध्यमां यधने ज्या कुणाला देश હતો અને તેમાં પણ ज्या શ્રાવસ્તી નગરી હતી  
ત્યા પહોંચ્યો. (સાવત્થીએ નગરીએ મજ્ઝમજ્ઝેણં અણુપવિસइ, જેણેવ જિયસત્તુ-  
સ્સ રણ્ણો ગિહે જેણેવ બાહિરિયા ઉવટ્ઠાણસાલા તેણેવ ઉવાગચ્છइ) ત્યા પહોંચીને  
તે ઠીક મધ્યમાર્ગથી પસાર થઈને તે શ્રાવસ્તી નગરીમાં પ્રવિષ્ટ થયો અને ज्या  
જિતશત્રુ રાજાનો પ્રાસાદ (મહેલ) હતો, ज्या બાહ્ય ઉપસ્થાન શાળા હતી ત્યાં ગયો.  
(તુરए णिगिण्हइ रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तं महत्थं जाव पाहुड गिण्हइ)  
ત્યા પહોંચીને તેણે ઘોડાઓને રોક્યા, રથને ઉભો રાખ્યો અને રથમાંથી નીચે ઉતરીને  
તેણે તે મહાર્થ સાધક ભેટ લીધી (જેણેવ અવિમતરિયા ઉવટ્ઠાણસાલા, જેણેવ  
જિયસત્તુ રાયા, તેણેવ ઉવાગચ્છइ, જિયસત્તુ રાય કરયલપરિગહિય જાવ  
કટ્ટુ જएणं विजएणं बद्धावेइ तं महत्थं जाव पाहुड उवणेइ) અને લઈને તે  
જ્યા આભ્યંતરિકી ઉપસ્થાનશાળા હતી ज्या જિતશત્રુ રાજા હતો ત્યાં ગયો  
ત્યા જઈને તેણે જિતશત્રુ-રાજાને અને હાથેની અજલિ બનાવીને અને તેને

टीका—‘तपण से’ इत्यत्र—

तपः स्वच्छ म चित्तः सारथिं प्रदेक्षिना राजा एव—पूर्वोक्तप्रकारेण उक्तः सन् हृष्ट पावत्-पावत्स्पर्शेन—हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यतो इव वज्रविमपे दैव्यं करतलपरिगृहीत दक्षनस्त पिर आवत्तं मस्तकं अञ्जलिं कृत्वा एव देवस्तपति आश्वाया विनयेन वचनं प्रसिद्ध्योति—इति संग्राहम् । अस्य वाक्यस्यार्थाऽस्यैव सुप्रस्य पञ्चमसूत्र टीकातोऽवगम्य इति प्रतिश्रुय तत् महाश्वं पावत् प्रापत् गृह्णाति—उपादत्ते, गृहीत्वा प्रदेक्षिनो राजा अश्विकात्—समोपात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्काम्य श्वेतविकाया नगर्या मध्य-  
द्वय वषाया, और पचाकर उस महाप्रयोजनसाधक पावत् प्रापत् को उगदिया, अर्थात् राजा को भेट किया ।

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने जब अपने चित्त सारथि से ऐसा कहा तब हृष्ट हुआ, तुष्ट हुआ एवं चित्त में आनन्दित हुआ प्रीतिपुक्त मनवाला हुआ, परमसौमनस्यत हुआ इयं क वज्र से उसको हृष्टवर्णित होने का गया उसी समय उसने करतलपरिगृहीत, दक्षनस्तयुक्त एव पिर पर आवत्तवामी ऐसी अञ्जलि करके “हे देव ! आप जैसे कहते हैं सो मुझे प्रमाण है” इस प्रकार कह कर उनकी आज्ञा को पूरे विनय के साथ स्वीकार किया हृष्ट तुष्ट भावि पर्वों का अर्थ इस सूत्र के पाँचवें सूत्र की टीका से जानना चाहिये । इस प्रकार अपने स्वामी की आज्ञा स्वीकार करके उसने उस महाप्रयोजन साधक पावत् प्रापत् (भठ) को अपने हाथ में ले लिया और लेकर वह प्रदेशी राजा के पास से बसा आया और श्वेतविका नगरी के मध्यभाग से होकर अपने घर पर आ गया वहाँ आकरके भस्वर्क भूमी ते अश्वविषय शब्दोत्तु उज्ज्वलरश्मि कस्तो वषाभक्षी आयी अने त्वापपञ्जी ते मङ्गाप्रयोगजन साधक पावत् सेटने राजानी साथे भूमी-राजने ते सेट अर्पित करी-

टीकाय—प्रदेशी राजाने आधारे पीतान्ना मित्र सारथिने आ प्रभाक्षे कसु त्वाप, हृष्ट तुष्ट, चित्तमा आनन्दित अने प्रीतिपुक्त मनवाला धमेक्षे तथा परमसौमनस्यत धमेक्षे ते हृष्टवर्णित अतीव वर्णित मध्य अथो तेजे तस्व व करतल परिगृहीत दक्षनस्तयुक्त अने भस्वर्क पर अञ्जलि देरनीने कसु—“हे देव ! ने आप आज्ञा कहे छ ते आरा भाटे प्रभाक्षय छ आ प्रभाक्षे कहीने तेजे राजानी आशने स्वी-  
कारी लीधी हृष्ट तुष्ट वमिरे पड़ोन्थे अथ आ सुन्नी पायमा सुन्नी टीप्रभां कष्ट कस्यामा आन्थे छ, आ बीते पीतान्ना स्वामीनी आशने स्वीकारी तेजे मङ्गाप्रयोगजन साधक पावत् सेटने दाधमां लीधी अने लहने ते प्रदेशी राजा पडसेवी आवतो रथो अने श्वेतविकानगर्या मध्यभागमा आने पीताने घर अथो त्वा पड़ोन्थीने तेजे ते

मध्येन व्यतिव्रजन् यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत् महार्थं  
यावत् प्राभृतं स्थापयति, स्थापयित्वा कौटुम्बिकपुरुषान्=भृत्यपुरुषान् शब्द-  
यति, शब्दयित्वा एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत=उक्तवान्-सो देवानुप्रियाः!  
यूयं क्षिप्रमेव=शीघ्रमेव सच्छत्र यावत्-यावत्पदेन-मध्वज सघण्टं सपताकं  
सतोरणवरं सनन्दिघोषं सकिङ्किणीहेमजालपरिक्षिप्त हैमवनचित्रतिनिशक-  
नकनिर्युक्तदारुकं सुसंपिनिद्धचक्रमण्डलधुराकं कालायससुकृतनेमियन्त्रकर्मणम्  
आकीर्णवरतुरगसुसंप्रयुक्तं कुशलनरच्छेकसारथिसुसंपरिशृहीतं शरशतद्वान्नि-  
शतूणपरिमण्डितं सकङ्कटावतंसकं सचापप्रहरणावरणभृतयोधयुद्धसज्जम्  
इति संग्राह्यम्, अर्थस्त्वेषां पदानां त्रिपष्टितमग्रततो द्वितीयाविभक्तिव्यत्ययेना-

उमने उस महाप्रयोजन साधक यावत् प्राभृत को रख दिया, रखकर क फिर  
उसने नौकरचाकररूप कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उमने उस प्रकार  
कहा-हे देवानुप्रियों ! आपलोग शीघ्र ही छत्रसहित यावत्-ध्वजासहित,  
घण्टासहित, पताकासहित, उत्तमतोरणमहित, नन्दिघोषसहित, किङ्किणीसहित,  
इत्यादि ६२वें सूत्रोक्त विशेषणों से सहित रथको उपस्थित करो-६२वें  
सूत्र में उक्त पाठ जो यहां यावत् शब्द से गृहीत हुआ है द्वितीयाविभक्ति  
का व्यत्यय करके लिया गया है सो इस प्रकार से है—

“सध्वज, सघण्ट, सपताक, सतोरणवरं, सनन्दिघोषं, सकिङ्किणी  
हेमजालपरिक्षिप्त, हैमवनचित्रतिनिशकनकनिर्युक्तदारुकं, सुसंपिनिद्धचक्र-  
मण्डलधुराकं, कालायससुकृतनेमियन्त्रकर्मणम्, आकीर्णवरतुरगसुसंप्रयुक्तं  
कुशलनरच्छेकसारथिसुसंपरिशृहीतं, शरशतद्वान्निशतूणपरिमण्डितं, सकङ्कटा-  
वतंसक, सचापप्रहरणावरणभृतयोधयुद्धसज्ज” इस समस्त पाठका अर्थ

महाप्रयोजन साधक यावत् लेटने भूझी दीधी भूझीने तेले नोकर-चाकर वगेरे कौटु-  
म्बिक पुरुषोंने बोलाव्या. अने बोलावीने तेमने आ प्रभाणे कछु-“हे देवानुप्रियो ! तमे  
सौ सत्त्वरे छत्रयुक्त यावत् ध्वज सहित, घंटा सहित वगेरे ६२ भा सूत्रोक्त विशे-  
षणोत्थी युक्त रथने उपस्थित करे ६२ भा सूत्रोक्त पाठ के अर्धी यावत् शब्द वडे  
गृहीत थेओ छे ते भील विलकितने व्यत्यय (व्यतिक्रम) करीने अडणु कराये छे ते  
आ प्रभाणे छे—

“सध्वज सघण्टं, सपताक, सतोरणवरं, सनन्दिघोषं, सकिङ्किणीहेम-  
जालपरिक्षिप्त, हैमवनचित्रतिनिशकनकनिर्युक्तदारुकं, सुसंपिनिद्धचक्रम-  
ण्डलधुराकं, कालायससुकृतनेमियन्त्रकर्मणम् आकीर्णवरतुरगसुसंप्रयुक्तं,  
कुशलनरच्छेकसारथिसुसंपरिशृहीत. शरशतद्वान्निशतूणपरिमण्डितं, सकङ्कटा-  
वतंसकं, सचापप्रहरणावरणभृतयोधयुद्धसज्ज” आ पाठनो अर्थ आ प्रभाणे छे—



ઇસપ્રકાર સં-સંવન ધ્વજા સં યુક્ત છે સઘટ-દોનોં ઓર ઘટ્ટાસહિત  
 છે, સપતાક પતાકા સહિત છે, સતારણરયુક્ત-પ્રધાનતોરણ સહિત છે, સનન્દિ  
 પોપ-દાદશપ્રકાર કં વાજોં સે યુક્ત છે. સન્કિર્ણી હેમખાલપરિશિત-હુદ્ર  
 પંટિકાવાળે હેમખાલ સે પરિવેષિત છે હેમવત્તચિત્રતિનિશ્ચનકનિયુક્ત શરૂક  
 હિમાલય પર્વત પર ઉત્પન્ન હુઈ તથા વિસ્મયકારક પેસી તિનિશ્ચક્ષાવિશેષની  
 સુર્ય ઇન્દ્રિય લક્ષ્મી સે જો બનાન મેં આયા છે, સુસન્ધિદ્વચક્રમજ્જલધુરાક-  
 અઘ્ણી તરફ સે જિસમેં ચક્રમજ્જલ પદ ધુગા બાંધે ગયે છે, કાલાયસ  
 સુકૃતનેમિય-પ્રકર્મ-ઉત્તમજાતિ કે કૃષ્ણ લોહ સે જિસમેં નેમિય પ્ર કર્મની  
 રચના કરી ગઈ છે-અર્થાત્ ચક્રાન્તયુસ્પર્શિમાગની સઘળ સે રસા કરને  
 કે લિયે અરજોં કે ઉપર કલ્પ કમજ્જલરૂપ આધારણ જિસમેં મગાયા ગયા  
 છે, આકીર્ણ વચ્ચુરગદ્ધસંમયુક્ત આકીર્ણજાતિકે ઉત્તમ પોઢે જિસમેં જુતે છે,  
 કુચ્છનરચ્છકસારધિસુસપરિગૃહીટનિયુક્તપુરુષોં મેંમી ચતુરમારથીદારા ઝઘ્ણી  
 તરફ સે જો પરિગૃહીત હો રહ્યા છે, ચરમ્મલદ્વાત્રિચતુરણપરિમહિત-શ્વતસન્નયક  
 શરોં કે ૩૨ સંલયક વામકોપોં સે જો પરિમહિત છે, સંવાપશરમદરખાડડવરમ  
 સુતપોષયુદ્ધસજ્જ શ્વપસાહિત વામોં સે, કુન્ત, તોમર, પરશુ આદિ શાસ્ત્રોં સે પદ  
 કદશ આદિ ઉપકરણોં સે જો પરિપૂર્ણ છે, યુદ્ધકારી યોદ્ધાઓં કે સઘામ કે લિય

સંવન-ધ્વજા સહિત છે સઘટ-બંને તરફ થાયલો છે સપતાક-પતાકાસહિત છે,  
 સતોરણવર ચક્ર-પ્રધાન તોરણ સહિત છે સનન્દિયોગ-વાજુ પ્રકારના વાજોંથી  
 યુક્ત છે સન્કિર્ણી હેમખાલ પરિશિત-હુદ્ર (નાની) પંટિકાવાળા હેમખાલથી પરિવેષિત  
 છે હેમવત્ત ચિત્રતિનિશ્ચનકનિયુક્ત શરૂક-હિમાલય પર્વત પર ઉત્પન્ન થયેલી વિસ્મય  
 કારક તિનિશ્ચક્ષા વિશેષની સુવચ્છ મહિત લાક્ષ્મીની જે તોચાર કરવામાં આવ્યો છે  
 સુસન્ધિદ્વચક્રમજ્જલ ધુરાક જેમાં ચક્રમજ્જલ અને ધુરાકો સુસન્ધિ છે મદ્યાક્ષ સુકૃત  
 નેમિય-પ્રકર્મ-ઉત્તમ જાતિના કૃષ્ણ લોહથી જેના નેમિય-પ્રકર્મની રચના કરવામાં આવી  
 છે એટલે કે એકનો જે બાજુ જણાય છે તેને સઘળથી રજવા માટે કૃષ્ણ લોહની  
 પાટી જેના પર લગાડવામાં આવી છે આકીર્ણવર ચતુરગદ્ધસંમયુક્ત-આકીર્ણ જાતિના  
 ઉત્તમ યોદ્ધાઓ જેમાં એવરેલા છે કુચ્છનરચ્છક સારથિ સુસપરિગૃહીત-નિયુક્તપુરુ  
 શોમાં પદ્ય જાતિનિયુક્ત સારથિ વટે જે સાચી રીતે હાકવામાં આવી રહ્યો છે-ચરમલ  
 દ્વાત્રિચતુરણપરિમહિત-સો શરૂ અને બગીચા જેટલા તુલિયેથી જે પરિમહિત છે  
 સંવાપશરમદરખાડડવરમજળતયોધ સુદ સંવન-ધ્વજા સહિત શરૂથી, કુવ તોમર,  
 પરશુ વગેરે શાસ્ત્રોં, અને કવચ વગેરે ઉપકરણોંથી જે પરિપૂર્ણ છે, સુદ બેરનાશ્મો

उपसेय इति । एवंविधं चातुर्घण्ट=चतसृभिर्घण्टाभिः शोभितम् अश्वरथं युक्तमेव=योजितं कृत्वैव उपस्थापयत, यावत् प्रत्यर्पयत=मदीय निर्देशानुसारेण सर्वं प्रकल्प्य मां सूचयत । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः तथैव=यथा चित्रसारथिना समाज्ञप्तं तथैव तदीयवचनं प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य क्षिप्रमेव सच्छत्रं यावत् युद्धसज्जं चातुर्घण्टम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयन्ति, ताम् आज्ञाप्तिकाम् प्रत्यर्पयन्ति=भवन्निदेशानुसारेण सर्वमस्माभिः सम्पादित'-मिति चित्रसारथये निवेदयन्ति । ततः खलु स चित्रसारथिः कौटुम्बिकपुरुषाणाम् अन्तिके=समीपे एतमर्थं='रथोऽस्माभिः सज्जीकृतः' इत्येतद्रूपम् अर्थं यावद् हृदयः अत्रेवं सगृह्यते, तथाहि-'श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो हर्षवशविसर्पहृदयः' इति । अर्थस्त्वेवामुक्त एव, एतादृशः सन् स्नातः=विहितस्नानः कृतवलिकर्म=स्नाने कृते पशुपक्ष्याद्यर्थं कृतान्नभागः, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव

जो सज्ज-उद्यतोक्त है, चातुर्घट का अर्थ "चार घंटाओं से शोभित" ऐसा है तथा युक्त शब्द का अर्थ "घोड़ों ऐसे जुता हुआ" सा है । जब तुम लोग मेरी आज्ञा के अनुसार सब काम कर लो तो हमे इसकी पोछे शीघ्र ही सूचना दो, इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषों ने जैसा कि चित्रसारथि ने उन्हें कार्य करने के लिये आज्ञापित किया था वैसा काम यथा शीघ्र करके उसे सूचना दे दो. "आपकी आज्ञा के अनुसार हमने सब काम कर लिया है", इस प्रकार से दी गई सूचना को सुनकर चित्रसारथि "हृष्ट तुष्ट चित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यितः, हर्षवशविसर्पहृदयः" इन यावत् पदगृहीत विशेषणों वाला हो गया, इन पदों का अर्थ कहा जा चुका है । उसने स्नान किया, वलिकर्म किया-पशु पक्षी

भाटे ने सज्जित छि, आतुर्घट-ओटले के चार घंटीथी ने सुशोभित छि तेमज्ज युक्त ओटले के जेमा घोडाओ नेतरेला छि तमे न्यारे भारी आशा मुज्ज क़ाम पुइ करी वो त्यारे मने क़ाम संपूर्ण थछि न्वानी अणर आपो. त्यार पछी कौटुम्बिक पुइषोओ चित्र सारथिनी आशा प्रमाणे ज शीघ्र क़ाम पुइ करी दीधुं. अन तेने अणर आपी के-छे देवानुप्रिय ! तभारी आशा मुज्ज नधुं क़ाम पुइं थछि गथुं छि. आ प्रमाणेनी अणर सालणीने चित्रसारथि "हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पहृदयः" यावत् पदथी गृहीत उक्त विशेषणोथी ते युक्त थछि गथे आ पढेनो अर्थ पढेला स्पष्ट करवामां आओ छि. तेले स्नान कथुं अलिकर्म कथुं-पशुपक्षि वगेरेने अन्नभाग अर्चित कथे दु.स्वप्न वगेरेने नष्ट

પ્રાપ્યશિસાનિ દુઃસ્વપ્નાદિવિષાઠાયમનશ્ચકરણીયસ્વાદુ યેન સ તથા, સત્ કૌતુ-  
કાનિ-મપીતિલ્કાદીનિ, મજ્જમાનિ ॥ સિદ્ધાપદૃષ્યસતત્વર્ષાકુરાદીનિ । તથા-  
સન્નદ્વદ્વર્મિતકવચ-સન્નદ્વ શરીરે આરોપણાત્ વદ્-ગાઢતરબન્ધનેન  
વન્ધનાત્, વર્મિતમ્ અશ્વરસાથં સુદૃઢતયા પરિરિત કવચં યેન સઃ, તથા-  
ઉત્પીઢિતશરાસનપટ્ટિકા-ઉત્પીઢિતા=મત્યજ્ઞારોપણેન નમ્નીકૃતા શરાસનપટ્ટિકા  
વનુદંઘો યેન સઃ, અથવા-ઉત્પાદિતા=સ્કષ્ઠે સ્થાપિતા શરાસનપટ્ટિકા=વનુ

આદિકોં કે છિયે અન્ન કા માગ ક્રિયા, દુઃસ્વપ્ન આદિકોં કા નટ કાને  
ક મિયે અવશ્યકરખીય હોને સે કૌતુક મજ્જસ્વ પ્રાપ્યશિસ ક્રિય મપી તિલક  
આદિકોં કા નામ કૌતુક, સિદ્ધાપદ સરસો, રહી અક્ષત દુર્બાકુર આદિકોં  
કા નામ મગલ હૈ । વાદ મેં ઇસને સન્નદ, વદ, વર્મિત કવચ કો પહિરા,  
પહિછે ઇસે શરીર પર આરોપણ ક્રિયા હસમિયે વહ કવચ સન્નદ, કુઆ,  
વાદ મેં ૧૬ ગાઢતર વધન સે અકઠકર કસ દિયા ગયા હસસે વદ્ કુઆ,  
તથા અશ્વરસા કે નિમિત્ત હી વહ ધારણ ક્રિયા ગયા વા મતઃવર્મિત કુઆ  
“ઉત્પીઢિતશરાસનપટ્ટિકા” સે વહ મકટ ક્રિયા ગયા હૈ કિ વહ શરાસન  
પટ્ટિકા-વનુદંઘ જલ્પ મત્યજ્ઞા પર આરોપિત ક્રિયા ગયા તલ જુક ગયા  
અથવા ઉત્પીઢિત શાસ્ત્ર વા અથ ‘કષ્ઠે પર રમ્બના મી હૈ । તથાચ પ્રત્યંવા  
આરોપિત કી જાને સે જુકા દિયા હૈ, વનુપ વંઘ નિસને અથવા સ્કષ્ઠ પર  
આરોપિત ક્રિયા હૈ વનુદંઘ નિસને, જેસા ૧૬ ચિત્રસારથી હી ગયા તાત્પર્ય  
કહનકોં યહી હૈ કિ ઇસ ચિત્રસારથીને અપને વનુપ પર મત્યજ્ઞા આરોપિત  
કરખી, અથવા ઇસે હાથ મેં ન હેકર કષ્ઠે પર ટાંગ મિયા અપને કંઠ

કરવા માટે અવશ્યકરખીય મગલરૂપ પ્રાપ્યશિસો ક્યાં. મપીતિલક વગેરેને કૌતુક,  
સિદ્ધાપદ-અર્પણ, રહી અક્ષત દુર્બાકુર વગેરેને મગલ કહે છે ત્યારપછી તેણે સન્નદ,  
વર્મિત કવચ પહેલું પહેલાં તે કવચત તેણે શરીર પર અપીયજ્ઞ કયું. એથી  
તે કવચ સન્નદ થયું ત્યારપછી ગાઢતર બંધનવડે કસવામાં આવ્યું. એથી તે બદ  
થયું અને અવશ્યક માટે તેને ખાસજ્ઞ કસવામાં આવ્યું હતું. એથી તે વર્મિત થયું.  
“ઉત્પીઢિતશરાસનપટ્ટિકા” એથી જા સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે કે તે શરાસનપટ્ટિકા  
(પટ્ટપદ ૪) પર જ્યારે પ્રત્યંવા બદાવવામાં આવી તે શરાસન પટ્ટિકા નથી બઈ હતી.  
અથવા ઉત્પીઢિત શબ્દનો અર્થ “અભાપર મુકુ” પણ થાય છે. પ્રત્યંવા બદાવવાથી  
તેણે પટ્ટપદ ૬ને નમાવી દીધી છે. અથવા અભાપર એણે પટ્ટપદ ૬ ખાસજ્ઞ ક્યોં છે એવો  
તે ચિત્રસારથી ચોક્કસ કાઝ્યો. મતલબ જા છે કે તે ચિત્રસારથીને પાતાના પટ્ટપ  
પર પ્રત્યંવા બદાવી લીધી હતી. અથવા તે પટ્ટપને હાથમાંથી અભાપર હેરવી દીધું

दर्ण्डो येन सः, तथा-पिनद्धग्रैवेयत्रिमलवरचिह्नपटः-पिनद्धं=परिहितं ग्रैवेयं= ग्रीवाभूषण त्रिमलवरचिह्नपटं, येन सः, तथा-गृहीतायुधप्रहरणः-गृहीतानि आयुधानि=धनुषादीनि प्रहरणानि=खड्गादीनि च येन स तथा-धृतशस्त्रास्त्र इत्यर्थः, एवम्भूतः सन् तत् महार्थं यावत् प्राभृत गृह्णाति. गृहीत्वा यत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथस्तत्रैव उपागच्छति उपागत्य चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरो हति=आरोहति । ततः सः मन्मद् यावद् गृहीतायुधप्रहरणैः बहुभिः पुरुषैः माद्धे=सह संपरिवृतः=संवेष्टितः सकोरण्टमाल्यदाम्ना=कोरण्टपुष्पमालाविभूषितेन- छत्रेण ध्रियमाणेन सह महाभटचटकरप्रकरवृन्दप रक्षितः-महाभटानां ये चटकर प्रकराः=विस्तृतसमूहास्तेषां यद् वृन्दं तेन परि क्षप्तः=परिवेष्टितः मन स्वात्=स्वकीयाद् गृहाद् निर्गच्छति=निस्सरति, निगच्छ्य श्वेतविक्रान्तं नगरं मध्य- मध्येन निर्गच्छति । इत्थं निर्गतः समुखैः=मुखकरवासाः=रात्रिनिवासैः पात

में उसने ग्रीवा का आभूषणरूप ग्रैवेय हार पहिरा और सुन्दर २ चित्रों से सुशोभित सुन्दर वस्त्र भी पहिरे. धनुष आदिकों को यहाँ आयुध द से और तलवार आदिकों को प्रहरण पद से गृहीत किया गया है. इस तरह उसने आयुध और प्रहरणों को अपने साथ ले लिया. इस प्रकार सब तरह से तैयार होकर वह प्राभृत को साथ में लेकर के जहाँ चातुर्घण्ट अश्वरथ था वहाँ पर आया, वहाँ आकर वह उस रथ पर बैठ गया. रथ में बैठने ही वह सन्नद्ध हुए यावत् गृहीतायुधप्रहरणवाले अनेक पुरुषों से संपरिवृत हो गया. छत्रधारी पुरुषने उसके ऊपर कोरण्टपुष्पों की मालाओं से सुशोभित छत्र तान दिया. इस तरह महासुभटों के विस्तृत समूह के वृन्द से परिवेष्टित होकर वह अपने घर से चला. एवं श्वेतविक्रान्तनगरी के ठीक मध्यभाग से होता हुआ निकला. कितनेक 'सुखकरवासों' से

हटुं गणामा तेष्ते अ,भूषणरूप ग्रैवेयक-हार पहिरेयां हतो अने सुन्दर चित्राधी सुशो- लित सुन्दर वस्त्रों, पणु पहिरेयां हता. धनुष वगेरेने अर्द्धां आयुधपद अने तलवार वगेरेने प्रहरण पदधी अर्द्धां समजवा. आ रीते तेष्ते पोताना आयुधा अने प्रहरणाने पोताना हथमा लीधा. आ प्रमाणे अधी रीते तैयार थधने ते लेटने लधने जथा चातुर्घण्ट अश्वरथ हतो त्या गयो. त्या जधने ते रथ पर सवार थयो रथ पर सवार थतान् ते सन्नद्ध थयेला यावत् गृहीतायुध प्रहरणवाणा अनेक पुरुषाधी ते संपरिवृत्त थध गयो. छत्रधारी पुरुषाणे तेना उपर डारट पुष्पानी भाणाधी सुशोभित छत्र ताणी दीधुं. आ प्रमाणे ते महासुभटाना विस्तृत समूहना वृन्दधी परिवेष्टित थधने ते पोताना घेरथी रवाना थयो अने श्वेतविक्रान्तनगरीना ठीक मध्यभागमा थधने ते डेट- 18 सुखकरवासो, रात्रे सुखकरवासीने सवार ते त्याधी रवाना थती वधते करेला प्रात

राशै = पाठ कालिकलघुभोजनै , तथा-ना तयिकुरै = अतिदूरे अन्तरावासे।  
 मध्याह्नकालिकविभामस्थाने भसन् भग्न कक्षपादस्य जनपदस्य मध्यमध्वेन  
 यत्रैव कुणाला जनपदो यत्रैव आनस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, आधस्त्या  
 नगर्या मध्यमध्वेन अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव त्रिमश्वो राज्ञो एव  
 यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, सुरगान्=मश्वान् विनिष्ट  
 ह्वाति=नरुणादि, रथ स्थापयति रथान् प्रत्यवगाहति=प्रवतरति तत् महार्थे  
 यावत् प्राप्नुत यदीत्या यैव भाग्यन्तरिको उपस्थानशाला, यत्रैव त्रितश्वा  
 राजा तत्रैव उपागच्छति जितशत्रु राजा=कातकर्षिणहीन यावत् कृता  
 मरण विजयन बद्धयति तद् महार्थ यावत् प्राप्नुत् उपनयति=तस्मै  
 प्रच्छति ॥ सू० १०५ ॥

रात्रियों में ठहरने से मातराशों से-पाठ कालिक लघुभोजनरूप कछवा  
 से तथा बहुत अधिक दूर के नहीं ऐसे मध्याह्नकालिक विभामों से युक्त  
 हुआ वह जगह २ ठहरता-कक्षपाद जनपद के पास आगया उसके  
 मध्य मध्य से होकर वह निकला और जहाँ कुणाला जनपद-देश था,  
 और उसमें भी जहाँ आनस्ती नगरी थी वहाँ आकर वह उसके ठीक  
 बीचों बीच से होकर उसमें प्रविष्ट हुआ प्रविष्ट होकर फिर वह वहाँ  
 गया जहाँ त्रिमश्व राजा का राजमहल था, और उसमें भी जहाँ बाह्य  
 उपस्थानशाला थी वहाँ पहुँचने ही उसने घोड़ों को खड़ा कर दिया  
 और रथ का चढ़ने से रोक दिया यहाँ वह उस रथ से नीचे उतरा  
 और प्राश्व को साथ लेकर वह भाग्यन्तरिको उपस्थानशाला में जहाँ  
 जितश्व राजा थे वहाँ पर पहुँचा, वहाँ पहुँचते ही उसने जितश्व राजा  
 को दोनों हाथ जोड़कर बड़े विमन प्रणाम किया और जय चिन्तय

कालिक मध्यमध्वेन (मध्याह्नके) वहाँ यत्रैव २ नदि पशु नल्लु नल्लु ७ मध्या  
 ह्नकालिक विभामो हरतो हरतो स्थान स्थान भस् पक्षव नाजतो ते कक्षपाद जनपदानी नल्लु  
 पक्षोय्यो, अने त्वाश्वी ते जनपदानी मध्यामां यधने कथां कुणाला देश हतो अने  
 कथा आनस्तीनगरी हती त्वां अने ते ही नगरीना मध्यामां यधने कथां जितशत्रु  
 राजानो राजमहल हतो अने तेमां पशु कथां बाह्य उपस्थानशाला हती त्वां  
 पक्षोय्यो अने पक्षोय्यतां ७ तेहि धोक्ष्योने उवा शम्भ्य अने रथने आगज कथां  
 शक्यो त्वाश्वी ते रथमां यधने नीधे कतयो अने सेरने लपने आग्य वरिधि उपस्थान  
 शालांमां कथां जितशत्रु राजा हतो त्वां यथो, त्वां पक्षोय्योने तेहि जितशत्रु  
 राजाने जन्ने हाथ ओझीने प्रक्षाम कथां अने कथविजय शम्भोत उवाश्व ३रीने

मूलम्—तएणं से जियसत्तू राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं  
जाव पाहुडं पडिच्छइ, चित्तं सारहिं सक्कारेइ सम्माणेइ पडिविस-  
ज्जेइ, रायमग्गमोगाढ च संवासं दलयइ । तए णं से चित्त सारही  
विसज्जिए समाणे जियसत्तूस्म अतियाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव  
बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवाग-  
च्छइ, चाउग्घट आसरहं दुरुहइ, सावत्थाए णयरीए मज्झं मज्झेणं  
जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ, तुरए निगिण्हइ,  
रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, णहाए कयवलिकम्मे कयकोउयमंगल  
पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइ मंगल्लोइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्प-  
महग्घाभरणालंक्रियसरीरे जिमियभुत्तुत्तरागए वियणं समाणे  
पुव्वावरण्हकालसमयंसि गंधवेहि य णाडगेहि य उवनच्चिज्जमाणे  
उवनचिज्जमाणे उवगाइज्जमाणे २ उवलालिज्जमाणे २ इट्ठे सद-  
फरिस-रस-रूव-गंधे-पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे  
विहरइ ॥ सू० १०६

छाया—ततः खलु स जितशत्रू राजा चित्रस्य सारथेस्तन्महार्थं यावत्  
प्राभृतं प्रतीच्छति चित्रं सारथिं सत्कारयति सम्मानयति प्रतिविसर्जयति,

शब्दों का उच्चारण करते हुए उन्हें वधाई दी, बाद में लाये हुए उस  
महार्थ आदि विशेषणों वाले प्राभृत को उनके लिये अर्पण किया । सू. १०५।

‘तए णं से जियसत्तू राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से जियसत्तू राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव  
पाहुडं पडिच्छइ) तव जितशत्रु राजाने चित्र सारथि से दिये गये महार्थ  
तेमझे वधाभण्णी आपी. त्थारपणी तेझे भडार्थ वगेरे विशेषणुवाणी लेट सन्नने  
समर्पित करी. ॥१०५॥

‘त एणं से जियसत्तू राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से जियसत्तू राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव  
पाहुडं पडिच्छइ) जितशत्रु राजाने चित्रसारथि वडे अर्पित करायेली भडार्थ वगेरे

राजमार्गावगाह च ।स्य आचामं ददाति । तत खलु म चित्रः सारयिः विम  
जितामन जितरात्रोः अन्तिवात् प्रतिनिष्कामति यत्रैव वाद्या उपस्थान  
छाली यत्रैव वास्तुयम् । अथरथस्त्रैव उवागच्छति चातुयम् अथरथ दुरोदिति  
यावन्त्या नगर्या मध्यमप्येन यत्रैव राजमार्गावगाह आवासरत्तत्रैव उवाग  
च्छति दुरगान निष्कृष्टाति, रथ स्थापयति रथात् प्रत्यक्षोदति, स्नात

भाद विषयणां चाले प्राप्त को जो कि मदेशी राजाने प्रेषित किया  
था छे किया (चित सारहिं सकारह, सम्माणेह, पट्टिविमर्जेह) फिर  
कुशलपञ्चादि पूछकर उसका सम्कार किया, आसन आदि दकर उसका  
समान किया और बाद में उसे विसर्जित कर दिया अर्थात् विधाम  
करने क निमित्त भोज दिया (रायमगमोगाह च संवास दम्पह) उसे  
राजमार्ग के पास स्थित छह में ठहराया गया (तए च से चिते सागही  
विसर्जिण सम्माणे जियसकुस्स अनियाओ पट्टिविमर्जह-जेणेव पादिरिया  
उपह्वाणसाया जेणेव चाउगघटे आसरहे तेणेव उवागच्छह) अतः वह चित्र  
मारयि जितरात्रु राजा द्वारा विसर्जित किया गया होकर उनके पास से  
चला आया और जहाँ वाद्य उपस्थानवासा थी, जहाँ चातुर्घट अथरथ  
था वहाँ आकर वह (चाउगघट आसरहं दुरूह) उम चातुर्घट रथ पर  
सवार हो गया (सावस्थीण मग्गीण मग्ग मग्गेण जेणेव रायमगमोगाह  
आवासे तेणेव उवागच्छह) और आवासी नगरी के बीचो बीच से होता  
हुआ जहाँ राजमार्ग पर स्थित वाहन-पूह या वहाँ पर आया (तुरा

विशेषध्वजणी जेने-हे जेने प्रदेसी राजाके आछही दली-स्वीकारी लोधी (चित  
सारहिं सकारेह, सम्माणेह, पट्टिविमर्जेह) त्यारपही कुशलता विरे अभावाये।  
पूछीने तेना अकार हथे आसन वजेर आधीने तेनु स-मान कहु" अने त्यारपही  
तेने विसर्जित करी दीपे। जेटहे के विधाम करवा आगे आछही दीपे। (रायमग  
मोगाह च संवास दम्पह) तेने राजभार्जनी पासेना घरभां उताये आये। (तए च  
स चिते सारही विमर्जिण सम्माणे जियसकुस्स अनियाओ पट्टिविमर्जह-  
जेणेव पादिरिया उपह्वाणसाया जेणेव चाउगघटे आसरहे तेणेव उवागच्छह)  
त्यारपही जितरात्रु राजा पासेयी (विसर्जित करमेसे) ते चित्रसारथी त्यांही स्थाना  
थये अने जहाँ जाइ उपस्थानवासा दली जहाँ चातुष ट अथरथ दते त्यां आये।  
त्यां आधीने ते (चाउर्घट आसरहं दुरूह) चातुष ट रथ पर सवार थये। (सावस्थीण  
मग्गीण मग्ग मग्गेण जेणेव रायमगमोगाह आवासे तेणेव उवागच्छह)  
अने आवासीनगरीना मध्यभां यत्रने जहाँ राजभार्ज पर स्थित आवास-भूद-दु

कृतवलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः शुद्धप्रवेश्यानि मङ्गल्यानि वस्त्राणि  
प्रवरपरिहितः 'अल्पमहग्धाभरणालङ्कितशरीरो जिमितमुक्तात्तरागतोऽपि च  
खलु सन् पूर्वापराह्णकालसमये गन्धर्वैश्च नाटकैश्च उपनर्त्यमानः २ उपगीयमान  
उपगीयमान उपलाल्यमानः २ इष्टान् शब्द-स्पर्श-रस-रूपगन्धान् .पञ्च-  
विधान् म्नानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरति ॥ सू० १०६ ॥

निगिण्हिइ, रह ठवेइ, रहाओ पञ्चोरुहइ) वहां आकरके उसने घोड़ोंको  
रोका रथ को खड़ा किया और फिर रथ से नीचे उतरा (पहाए कय-  
वलिकम्मे, कयकोउपमंगलपायन्त्रित्तो सुद्धप्पावेसाइ मंगलाइ वत्थाइ  
पवरपरिहिण्) बाद में उसने स्नान किया. वलिकर्म-वायसादिकों के लिये  
अन्न का भाग दिया, दुःखस्वप्नों को नाश करने के लिये कौतुक,  
मंगलरूप प्रायश्चित्त किये, बाद में शुद्ध राजसभा में प्रवेश योग्य ऐसे  
माङ्गलिक वस्त्रों को रीति के अनुसार पहिरा (अल्पमहग्धाभरणालङ्किय-  
सरीरे) फिर उसने अल्प भारवाले बहुमूल्य आभरणों से अपने शरीर  
को आलङ्कृत किया और (जिमियमुत्तरागए विषणं समाणे) जीमने  
के बाद अर्थात् भोजन करके-फिर वह उपवेशनस्थान में आ गया  
(पुव्वावरण्हकालसमयंसि) वहां दिवस के तृतीय प्रहर में (गंधर्वेहिं य  
णाडगेहिं य उवणच्चिज्जमाणे, उवणच्चिज्जमाणे उवगाइज्जमाणे २ उवलालि-  
ज्जमाणे २) गीतों द्वारा और नाटकों द्वारा चार २ अपना २ विषय सिखा-  
कर, अपना २ विषय सुनाकर बारबार सिखाया गया, बारबार बिलास-

त्या गथे (तुरए निगिण्हिइ, रहं ठवेइ, रहाओ पञ्चोरुहइ) त्या पडोअने तेज  
थोलाअने उला राअ्या रथ थोलाअ्ये. अने त्यारपछी ते रथमाथी नीचे उतर्यो—  
(पहाए कयवलिकम्मे, कयकोउपमंगलपायन्त्रित्तो सुद्धप्पावेसाइ मंगलाइ  
वत्थाइ पवरपरिहिण्) त्यारणाह तेणे स्नान कर्तुं—अलिकभं कर्तुं—आगडा वगेरेने  
अन्नभाग आर्थे दु स्वप्नेने नष्ट करवा भाटे कौतुक-मंगलरूप प्रायश्चित्तो कर्था.  
त्यारपछी राजसभाभा शोले अेवा स्वच्छ भागलिक वस्त्रो तेणे धारण्य कर्था. (अल्प-  
महग्धाभरणालङ्कियसरीरे) त्यारणाह तेणे अल्पभारवाणा बहुमूढ्य आल लुथी  
पोताना शरीरने शृङ्गायुं अने (जिमियमुत्तरागए विषणं समाणे) अन्था  
पछी ओटले के खोजन करीने ते उपवेशन स्थान तरक गथे (पुव्वावरण्हकाल-  
समयंसि) त्या दिवसना त्रीण पडारभा (गंधर्वेहिं य णाडगेहिं य उवणच्चिज्ज-  
माणे, उवणच्चिज्जमाणे उवागाइज्जमाणे—२ उवलाज्जिज्जमाणे २) त्या गीतो वडे,  
नाटके वडे बारवार पोतानो विषय सिखावेला पोतानो विषय सलणावीने प्रसन्न



‘तएव स’ इत्यादि ।

टीका-तत् खलु स जितशत्रू राजा विप्रस्य सारथे सकाशात् पदेति  
गमप्रेषितं तद् महार्थं यावत् प्राप्तं प्रतीच्छति=प्राप्ति, विप्र सारथि मरुतार  
यति-कुशलप्रभादिना, सम्मानयति आमनप्रदानेन, ततस्तं प्रतिविजर्जयति=  
विभ्रामायं संप्रेषयति, तथाच=रानमार्गावगाह=राममार्गसमीपस्थितम् आवास=  
एह तस्य=तस्मै ददाति । अत्र सम्प्रत्यसामाय पठ्यते । तत् खलु स विप्रः  
सारथिः मितशत्रू राजा विसर्जितं सन् तस्य मितशत्रू राज्ञः अन्तिके  
=प्रतिनिष्क्रमति=निर्गच्छति, यत्रैव यात्रा उपस्थानशाला, यत्रैव  
चातुर्घटः अश्वरथः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य चातुर्घटम् अश्वरथ  
दूरोहति=अरोहति, आश्रयस्थानं नगरं मध्यमध्येन यत्रैव राममार्गावगाह-आवासः,  
तत्रैव उपागच्छति, दुरगान् निष्कृति=निरुणद्धि, निष्कृति इयं स्थापयति,  
स्थापयित्वा रथात् प्रत्यपरोहति=अवतरति । तत् स्नातः=कृतस्नानः कृतश्च  
स्निग्धर्मा=स्नानेकृते पशुपक्ष्याद्यर्थं कृतान्नमागः, कृतकौतुकमङ्गलप्राप्तयिः-  
कृतानि कौतुकमङ्गलायेव मायश्चित्तानि=दुःस्वप्नादि विघातार्थमवश्यकरणी  
यत्वाद् येन स तथा, तत्र-कौतुकानि=मपीतिलकानि, मङ्गलानि तु=सिद्धार्थ  
सप पदपक्षतद्वर्त्तकुरादीनि । तथा=धृष्टमावेष्टयानि=रामस्य मापयशादीनि मङ्ग-  
ल्यानि=माङ्गलिकानि यस्मात्प्रति प्रवरपरिहितः=पथारोतिपरिधूत अल्पमहर्घा  
भरभालैश्च शरीर-मल्पानि=स्त्रोकमाराणि यानि महाघाति=वह्नुमूल्यानि काम  
रत्नानि तैः अभर्त्त=सुशोभितं शरीर यस्य सः, तथा=जिमितसुललातरा  
गतः मिमितः=कृतमोहनः, सचासौ युक्तोत्तरागतः=मोहनोत्तरागमम् उपवे  
शनस्याने समागतयति त्वामृतोऽपि च खलु सन् पूर्वपराङ्मालसमय  
पूर्वभासौ अपराहयति एवंपराहः, स एव कालममयः=कालोपमसितः  
समयस्तस्मिन्-द्विषसस्य तृतीये पररे गात्रपेक्षणीते नान्तेषु उपनत्ये

पुनः बनाया गया यह विप्र सारथि (इह स-करि-रस=स्व-गत्रे पंचविह  
माणुस्सय कामभोगे पशुपक्षमाणे विहरइ) इष्ट-अभिलषित-युद्ध, स्पर्ध  
रस रूप ग च इन पांच प्रकार के मनुष्यमय मधघी कामभोगों को  
अनुभवित करम लगा । टीकाय इमका स्पष्ट है ॥ १०६ ॥

इत्येते, बारबार विद्यासमुक्त जनायेते ते मित्र सारथि (इह स-करि-रस-  
स्व-गत्रे पंचविह माणुस्सय कामभोगे पशुपक्षमाणे विहरइ) इष्ट-अभिल  
षित-युद्ध, स्पर्ध इयं इयं, ग च पांच जना मनुष्यमय स मधघी काम  
भोगेने अनुभवित लाये। टीकायः-आ सुत्रेण स्पष्ट ॥ १०६ ॥

मानः उपनर्त्यमानः=नृत्तं दृश्यमानो दृश्यमानः उपगीयमानः उपगीयमानः—  
गानं श्राव्यमाणः श्राव्यमाणः, अतएव—उपलुल्यमानः २ विलास्यमानः २  
इष्टान्=अभिलषितान् शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् पञ्चविधान् मानुष्यकान्=  
मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरति ॥सू० १०६॥

(मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिजे केसी नाम

कुमारसमणे जाइसंपणो कुलसपणो बलसंपणो रूवसंपणो विणय-  
संपणो नाणसंपणो दंसणसंपणो चरित्तसंपणो लज्जासंपणो ला-  
घवसंपणो लज्जालाघवसंपणो ओयंसी तेयसी वच्चंसी जससी  
जियकोहे जियमाणे जियमाणे जियलोहे जियणिदे जिइंदिए जिय-  
परीसहे जीवियासमरणभयविप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे करण-  
प्पहाणे चरणप्पहाणे निग्गहप्पहाणे निच्छयप्पहाणे अज्जवप्पहाणे  
मद्वप्पहाणे लाघवप्पहाणे खंतिप्पहाणे गुत्तिप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे  
विज्जप्पहाणे मंतप्पहाणे बंभप्पहाणे वेयप्पहाणे नयप्पहाणे नियम-  
प्पहाणे सच्चप्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दंसणप्पहाणे चरित्त-  
प्पहाणे ओराले चउइसपुव्वी चउणाणोवगए पचहि अणगारसएहि  
सद्धि सपरिवुडे पुव्वानुपुठ्व चरमाणे गामाणुगोमं दूइज्जमाणे सुइ-  
सुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव कोट्टए चेइए तेणेव  
उवांगच्छइ, सावत्थी नयरीए बहिया कोट्टए चेइए अहापडिरूव  
उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ सू०१०७॥)

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वपत्तीयः केशोनामकुमार-  
श्रमणो जातिसम्पन्नः कुलसम्पन्नो बलसम्पन्नो रूपसम्पन्नो विनयसम्पन्नो

‘तेणं कालेणं तेणं समएणं’ इत्यादि ।

(सुत्रार्थ—(तेणं कालेण तेणं समएणं) उस काल और उम समय

‘तेणं कालेणं तेणं समएणं’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते क्षणे अने ते समये (पाठा-

ज्ञानसम्पन्नो दर्शनसम्पन्नः चारित्र्यसम्पन्नो लज्जासम्पन्नो लाघवसम्पन्नो लज्जा  
साधनसम्पन्न भोजस्वी तेजस्वी वर्चस्वी यशस्वी मितक्रोधा नितमानो जित  
मायो मितसोमो मितनिद्रो मितेन्द्रियो जितपरीपटो जीविताशामरभयविममुक्तः  
तपामभानो गुणप्रधानः करणप्रधानः चरणप्रधानो निग्रहप्रधानो निभयप्रधानः

में (पासावधिष्णे) पार्श्वपत्नीय-भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा में  
स्थित (केसी नाम कुमारसमणे) कैशी नामके कुमार भ्रमण-जो कि  
कुमार अवस्था में ही दीक्षित हुए थे और जो (जाइस पने) जातिम पन  
थे (कुलस पण्णे) कुलस पन्न थे, (यलस पण्णे) यल स पन्न थे (कसस पने)  
कस स पन्न थे, (विजयस पने) विजयस पन्न थे (नाणस पण्णे) ज्ञान  
स पन्न थे, (वसस पने) वसस पन्न थे (वरिस पने) चारित्र्य  
स पन्न थे, (लज्जास पने) लज्जा स पन्न थे (लाघवस पने) लाघव  
स पन्न थे (लज्जा लाघवस पने) लज्जा एव लाघव से संपन्न थे (भोजस्वी,  
तेजस्वी, वर्चस्वी भयस्वी) भोजस्वी थे, तेजस्वी थे वर्चस्वी थे, यशस्वी थे,  
(जियमाणे) मितमान थे (मियमाण) जितमाय थे (जियसोहे, जियणिहे निइ दिण)  
जित सोम थे, जितनिद्र थे, मित इन्द्रिय थे (जियपरीसहे, जीवितासम  
रणभयविममुक्के) जीने की आशा से और मरण के भय से विममुक्त थे  
(तपप्पहाणे) गुणप्रधान थे, गुणप्रधान थे (करणप्पहाणे) चरणप्रधान थे  
निग्रहप्रधान थे, निभयप्रधान थे, भयप्रधान थे, लाघवप्रधान थे

वर्चस्वी) पार्श्वपत्नीय-भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा में स्थित (केसी नाम  
कुमारसमणे) कैशी नामके कुमार भगवान् के ही कुमार अवस्थामें ही दीक्षित हुए  
हवा-जने ने (जाइस पने) जातिम पन्न हवा (कुलस पण्णे) कुल स पन्न हवा  
(यलस पण्णे) यल स पन्न हवा (कसस पण्णे) कसस पन्न हवा (विजयस पण्णे)  
विजय स पन्न हवा (नाणस पण्णे) ज्ञान स पन्न हवा (वसस पने) वसस -  
स पन्न हवा (वरिस पण्णे) चारित्र्य स पन्न हवा (लज्जास पण्णे) लज्जा  
स पन्न हवा (लाघवस पण्णे) लाघव स पन्न हवा (लज्जालाघवस पने)  
लज्जा जने लाघव स पन्न हवा (भोजस्वी तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी) भोज  
स्वी हवा, तेजस्वी हवा वर्चस्वी हवा यशस्वी हवा (मियक्रोहे) मित क्रोधी हवा  
(मियमाणे) मितमान हवा (जियमाण) जितमाय हवा (जियसोहे जियणिहे निइ दिण)  
जित सोम हवा जितनिद्र हवा जितेन्द्रिय हवा (जियपरीसहे, जीवितासमरण-  
भयविममुक्के) जीवना की आशा जने भयवन्त लाघवी विममुक्त हवा (तप  
प्पहाणे) गुणप्रधान हवा, गुणप्रधान हवा (करणप्पहाणे, चरणप्प

आर्जवप्रधानो मार्दवप्रधानो लाघवप्रधानः क्षान्तिप्रधानो गुप्तप्रधानो मुक्ति-  
प्रधानो विद्या प्रधानो मन्त्रप्रधानो ब्रह्मप्रधानो वेदप्रधानो नयप्रधानो नियम-  
प्रधानः सत्यप्रधानः शौचप्रधानो ज्ञानप्रधानो दर्शनप्रधानः चारित्रप्रधानः  
उदारः चतुर्दशपूर्वीचतुर्ज्ञानोपगतः पञ्चभिः अनगारशतैः साष्टं संपरिवृतः  
पूर्वांशपूर्व्या चरन् ग्रामानुग्रामं द्रव्यं सुवसुखेन विहरन् श्रैव श्रावस्ती गरी  
यत्रव कोष्ठकं चैत्यं तत्रैव उपागच्छति, श्रावस्तीनगर्या वह्निः कोष्ठके

स्वतिप्पहाणे, मुक्तिप्पहाणे, गुक्तिप्पहाणे विज्ञप्पहाणे, मन्त्रप्पहाणे, वेद्य-  
प्पहाणे) करणप्रधान थे, चरण प्रधान थे, निग्रह प्रधान थे, निश्चयप्रधान  
थे आर्जवप्रधान थे, मार्दव प्रधान थे, लाघवप्रधान थे, क्षान्तिप्रधान थे  
मुक्तिप्रधान थे, गुक्तिप्रधान थे, विद्या प्रधान थे, मन्त्रप्रधान थे, ब्रह्मप्रधान  
थे, वेद प्रधान थे, (नयप्पहाणे नियमप्पहाणे, सच्चप्पहाणे, सोयप्पहाणे,  
नाणप्पहाणे, दंसणप्पहाणे चरित्तप्पहाणे, ओराले चउदसपुन्वी चउणाणो-  
वगए) नयप्रधान थे, नियमप्रधान थे, सत्यप्रधान थे, शौचप्रधान थे, ज्ञान  
प्रधान थे, दर्शन प्रधान थे, चारित्र प्रधान थे, उदार थे. चौदह पूर्वके  
धारी थे, और भतिज्ञान आदि चार ज्ञानवाले, थे ( पचहिं अणगासएहिं  
संपरिवुडे) पांचसौ अनगारों के साथ (पुन्वाणुपुन्वि चरमाणे गामाणुगामं  
दूइज्जमाणे/सुह सुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थी गयरी, जेणेव कोट्टए  
चेइए, तेणेव उवागच्छइ) तीर्थंकर परम्परा के अनुसार विहार करते हुए,

हणें, निग्गहप्पहाणें, निच्छयप्पहाणें, अज्जवप्पहाणे, मदवप्पहाणे, लाघवप्प-  
हाणे, स्वतिप्पहाणे, मुक्तिप्पहाणे, गुक्तिप्पहाणे, विज्ञप्पहाणे, मन्त्रप्पहाणे  
वेद्यप्पहाणे) करण प्रधान होता, चरण प्रधान होता, निग्रह प्रधान होता, निश्चय  
प्रधान होता, आर्जव प्रधान होता, मार्दव प्रधान होता, लाघव प्रधान होता, क्षान्ति-  
प्रधान होता, मुक्ति प्रधान होता, गुक्ति प्रधान होता, विद्या प्रधान होता, मन्त्र प्रधान  
होता, ब्रह्म प्रधान होता, वेद प्रधान होता (नयप्पहाणे, नियमप्पहाणे, सच्चप्पहाणे  
सोयप्पहाणे, नाणप्पहाणे, दंसणप्पहाणे, चरित्तप्पहाणे, ओराले चउदसपुन्वी  
चउणाणोवगए) नय प्रधान होता, नियम प्रधान होता, सत्य प्रधान होता, शौच  
प्रधान ज्ञान प्रधान होता, दर्शन प्रधान होता, चारित्र प्रधान होता, उदार होता,  
चौदपूर्वना धारी होता अने भतिज्ञान वगेरे चार ज्ञानवाला होता (पचहिं अण-  
गासएहिं, सद्धिं संपरिवुडे) पांचसौ अनगारों के साथ (पुन्वाणुपुन्वि चर  
माणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुह सुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थी गयरी  
जेणेव कोट्टए चेइए, तेणेव उवागच्छइ) तीर्थंकर पर परा मुख्य विहार करता करता

चैत्ये यथापतिरूपम् अवग्रहम् अवग्रहं गद्यमेव तपसा आत्मानं भावयन्  
विहरति ॥ सू० १०७ ॥

टीका—‘तेज कालेण’ इत्यादि—

तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वार्पणीयः=मगधतः पार्श्वनाथस्य  
शिष्यपरम्परायां स्थित केशीनामकुमारभ्रमणः—कुमारवासी भ्रमणश्चेति,  
कौमार्यविरूपायां प्रवृत्तिरित्यर्थः, स कीदृशः ? इत्याह—जातिरसम्पन्नः—जातिः=मातृ  
पक्षः—तेन सम्पन्नो=युक्तः—उत्तममातृपक्ष सम्पन्न इत्यर्थः, तथा कुलसम्पन्नः—  
कुल=पैतृको वंशः, तेन सम्पन्न—उत्तमपितृपक्षसम्पन्न इत्यर्थः, तथा—बल

एक ग्राम से दूसरे ग्राम में हाते हुए आनन्द के साथ जहाँ भावस्ती  
नगरी थी और जहाँ कोष्ठक चैत्य था, वहाँ पर आये (सावत्थीनप  
रीए बहिया कोट्टए वेइए अहापडिसर्ध उगगहं उग्गिण्डिता स जमेण तवसा  
अप्पाणं भावमाणे विहरइ) जहाँ आकर वे भावस्ती नगरी के बाहर  
प्रदेश में स्थित कोष्ठक चैत्य में यथापतिरूप अवग्रह प्राप्तकर समय  
और तपसे आत्मा को भावित करते हुए ठहर गये ।)

टीकार्थ—उस काल और उस समय में पार्श्वार्पणीय भगवान् पार्श्व  
नाथकी शिष्य परंपरा में स्थित केशीकुमार भ्रमण निहोने कौमार्य-वारण  
भवस्था में प्रवृत्त्या धारण करनी थी तीर्थकर परम्परा के अनुसार विहार  
करते हुए कोष्ठक चैत्य में आकर ठहरे, ये जाति सम्पन्न ये मातृपक्षका  
नाम जाति है, उससे ये युक्त ये अर्थात् उत्तम मातृपक्षवाले ये, पैतृक  
पक्षका नाम कुल है, उस से मो य युक्त ये अर्थात् उत्तम पितृपक्षवाले ये विशिष्ट

कोई आश्रमी जी ? आश्रम विहृत करता करता आनन्दनी साथे जहाँ भावस्ती नगरी होती  
जाने जहाँ के कोष्ठक चैत्य (उत्थान) होता था आन्ध्रा. (सावत्थी नगरीएबहिया  
कोट्टए वेइए अहापडिसर्ध उगगहं उग्गिण्डिता स जमेण तवसा अप्पाणं  
भावमाणे विहरइ) तहाँ जहने तेजो भावस्ती नगरीणी गड्ढा—उपलब्ध चैत्यमां बल-  
प्रतिष्ठा अवग्रह प्राप्त करीने सबल जाने तपसी आत्माने भावित करता शिष्या

टीकार्थ—ते जने जने ते समये पार्श्वार्पणीय भगवान् पार्श्वनाथनी शिष्य  
परंपरायां स्थित केशीकुमार भ्रमण—के भ्रमणे कौमार्य अवस्थायां भ्रमण्या भाव्य  
करी होती तीर्थकर परंपरा मुख्य विहृत करता करता कोष्ठक चैत्यमां जानीने  
शिक्षणा जेजो जाति सम्पन्न होता मातृपक्षनु नाम जाति छ जेनाथी जेजो युक्त  
हता जेटले के उत्तममातृपक्षवाणा होता पैतृकपक्षनु नाम कुल छ जेनाथी जेजो  
युक्त होता जेटले के जेजो उत्तमपितृपक्षवाणा होता विशिष्ट सकलनभी समुत्थ-

સમ્પન્ન:-વલ=વિશિષ્ટસદ્ગુણસમુત્થા શક્તિ:, તેન સમ્પન્ન:, રૂપસમ્પન્ન:-  
રૂપમ્=સર્વોત્કૃષ્ટ શારીરં સૌંદર્ય તેન સમ્પન્ન:, વિનયસમ્પન્ન:-વિનય:પ્રસિદ્ધ:,  
તેન સમ્પન્ન:, તથા જ્ઞાનસમ્પન્ન:=મત્યાદિજ્ઞાનયુક્ત:, દર્શનસમ્પન્ન:=સમ્યક્ત્વ-  
યુક્ત:, ચારિત્રસમ્પન્ન:=ચારિત્રં=સંયમ: તેન સંપન્નો=યુક્ત:, લજ્જાસમ્પન્ન:-  
લજ્જા=અનુચિતાનુષ્ઠાનસંવરણાત્મિકરૂપા:, તથા સમ્પન્ન:=યુક્ત:, લાઘવ-  
સમ્પન્ન=લાઘવં=દ્રવ્યતોડલપોષધિત્વં, ભાવતો ગૌરવત્યાગ:, તામ્યાં સમ્પન્ન:,  
લજ્જાલાઘવસમ્પન્ન:=લજ્જયા લાઘવેન ચ સ સતનમેવ સમ્પન્ન: । તથા-  
ઓજસ્વી--ઓજ:=આત્મિકતેજ:, તદસ્તિ યસ્ય સ તથા, આત્મિકતજ-  
સમ્પન્ન હત્યર્થ:, તેજસ્વી-તેજ:શરીરપ્રમા, તદગ્તિ યસ્ય તથા અનુપમશરીર-  
પ્રમાવિશિષ્ટ હત્યર્થ:, તથા વર્ચસ્વી=પ્રભાવવાન, 'વચસ્વી'-હતિચ્છાયાપદ્ધે-  
પ્રશસ્તવચનયુક્ત હત્યર્થ:, તથા-જિતક્રોધ:=ક્રોધજેતા, જિતમાન:માનજેતા-

સદ્ગુણ સે સમુત્થ શક્તિ કા નામ વલ હૈ, ઇસ વલ સે યે યુક્ત થે, સર્વો-  
ત્કૃષ્ટ શારીરિક સૌંદર્ય કા નામ રૂપ હૈ. ઇમ રૂપ સે યે સંપન્ન થે, વિનય  
સંપન્ન થે, મત્યાદિ જ્ઞાનો સે સંપન્ન થે, સમ્યક્ત્વ સે યુક્ત થે, સંયમરૂપ  
ચારિત્ર સે યુક્ત થે, લજ્જા સે યુક્ત થે અર્થાન્-અનુચિત કામ કરને સે સદા દૂર રહતે  
થે. લાઘવ સે યુક્ત થે, લાઘવ દ્રવ્ય ત્રૌર ભાવ કી અપેક્ષા સે દો પ્રકાર કા કહા ગયા  
હૈ અલ્પ ઉપધિ રાખના યહ દ્રવ્ય કી અપેક્ષા લાઘવ હૈ તથા ગૌરવ કા ત્યાગ કરના  
યહ ભાવ કી અપેક્ષા લાઘવ હૈ. લજ્જા ઔર લાઘવ ઇન દોનો સે યે યુક્ત થે. ઇનમેં  
આત્મિક તેજ પૂર્ણરૂપ સે ભરાં હુઆ થા અતઃ ઓજસ્વી થે. શરીર  
પ્રમા કા નામ તેજ હૈ. યહ ચારિરિક તેજ ઇનકા અનુપમ થા. ઇસ-  
લિયે યે તેજસ્વી થે. પ્રભાવવાન્ થે ઇસલિયે વર્ચસ્વી થે અથવા પ્રશસ્તવચન  
સે યુક્ત થે. ઇસલિયે વચસ્વી થે. ક્રોધ કે વિજેતા થે અતઃ જિત ક્રોધ થે.

શક્તિનું નામ બળ છે, આ બળથી એઓ યુક્ત હતા સર્વોત્કૃષ્ટ શારીરિક સૌંદર્યનું  
નામ રૂપ છે, આ રૂપથી એઓ સંપન્ન હતા, વિનયયુક્ત હતા, મતિ વગેરે જ્ઞાનોથી  
સંપન્ન હતા સમ્યક્ત્વથી યુક્ત હતા, સંયમરૂપ ચારિત્રથી યુક્ત હતા. લજ્જાથી યુક્ત  
હતા એટલે કે-સાવધ કામના લજ્જા રાખતા હતા દ્રવ્ય અને ભોવની અપેક્ષાએ  
લાઘવના બે પ્રકારો છે અલ્પ ઉપધિ રાખવી એ બ્યની અપેક્ષાએ લાઘવ છે તેમજ  
ગૌરવ ત્યાગ એ ભોવની અપેક્ષાએ લાઘવ છે લજ્જા અને લાઘવ આ બન્નેથી  
એઓ સંપન્ન હતા, આત્મિક તેજ એમનામાં પ્રચુર પ્રમાણમાં હતું એથી એઓ  
ઓજસ્વી હતા શરીરપ્રભાવ નામ તેજ છે. એમનું આ શારીરિક તેજ અનુપમ હતું  
એથી જ એઓ તેજસ્વી હતા, પ્રભાવાન્ હતા એથી જ એઓ વર્ચસ્વી હતા રોધને  
છેતનાર હતા એથી એઓ જિત-ક્રોધી હતા, માનના વિજેતા હતા એથી જિત

निग्रहः, तत्प्रधान यस्य स तथा, मार्दवप्रधानः-मार्दव=मृदुता-नम्रता तत्  
 प्रधान यस्य स तथा लाघवप्रधानः-लाघव=लघुता-द्रव्यमात्रमधुता तत्प्र  
 धान यस्य स तथा, क्षान्तिप्रधान-क्षान्तिः=कोपनिग्रह, सा प्रधान यस्य  
 स तथा, गुप्तिप्रधान-गुप्तिः=मनोगुप्त्यादिषा, सा प्रधान यस्य स तथा,  
 मुक्तिप्रधान-मुक्तिः=निर्मोमता, सा प्रधान यस्य स तथा, सर्वथा निर्लोभ इत्यर्थः  
 विद्याप्रधान-विद्याः=रोहिणीप्रज्ञाद्यादिवदेवताधिष्ठिताः वर्णानुपूर्वीरूपा ता  
 प्रधानानि यस्य स तथा मन्त्रप्रधानः-मन्त्राः-हरिणैगमैत्यादिदेवताधिष्ठिताः  
 ते प्रधानानि यस्य स तथा, ब्रह्मप्रधानः-ब्रह्म=ब्रह्मचर्य मैथुनविरमणलक्षप्र

स्वीकार करनारूप निश्चय इनमें था, इसलिये ये निश्चयप्रधान थे।  
 मार्जव नाम ऋजुता (सरलता) का है और यह माया निग्रहरूप  
 होती है। यह इनकी प्रधान थी अतः ये मार्जवप्रधान थे, मार्दव  
 प्रधान इसलिये ये कि इनमें मृदुता-नम्रता प्रधानरूप से थी  
 लाघवप्रधान थे इसलिये य कि इनमें द्रव्यमात्ररूप लघुता (इयत्तापन) प्रधा  
 नरूप से थी क्षान्तिप्रधान थे इसलिये य कि इनमें कोप की निग्रह कर  
 नेरूप परिमति प्रधान थी गुप्तिप्रधान य इसलिये ये कि इनमें मनोगुप्ति  
 बन्धनगुप्ति एवं कायगुप्ति ये तीन गुप्तियां प्रधान थी मुक्तिप्रधान थे इस  
 लिये ये कि इनमें निर्मोमता प्रधानरूप में थी, विद्याप्रधान, ये इसलिये  
 ये कि रोहिणी प्रज्ञाद्यादिक देवताधिष्ठित वर्णानुपूर्वीरूप विद्याएं इनमें  
 प्रधान थी मन्त्रप्रधान य इसलिये य कि इनमें हरिणैगमपी आदि देवताधिष्ठित  
 मन्त्रप्रधान थे मैथुनविरमणरूप ब्रह्मचर्य का नाम ब्रह्म है मथवा सर्व ही

भाव होय ॐ जे पञ्च जेभनाभा हतो जेभीजेजे निश्चयप्रधान हव्य आच व ऋजुता  
 (सरलता) नाम छे जेने भावनिमज्जप्रवृत्ति होय छे जे पञ्च जेभनाभा प्रधानरूपे  
 हवी जेभी जेजे आर्जव प्रधान हव्य मार्दव प्रधान जेजे कोटका भागे हव्य है  
 जेभनाभा मृदुता-विनम्रता-प्रधानरूपे हवी जेभनाभा लाघवाव लघुता प्रधानरूपे  
 हवी जेभी ल जेजे लाघवप्रधान हव्य क्षोभने निग्रह करवाइय परिश्रुति जेभनाभा  
 प्रधान हवी जेभी जेजे क्षान्ति प्रधान हव्य जेभनाभा मनोगुप्ति, बन्धनगुप्ति जेने  
 कायगुप्ति जे त्रजे गुप्तिजे प्रधान हवी जेभी जेजे गुप्तिप्रधान हव्य जेभनाभा  
 निर्वोमता प्रधानरूपे हवी जेभी जेजे मुक्तिप्रधान हव्य जेभनाभा रोहिणी भज  
 प्सादिक देवताधिष्ठित वर्णानुपूर्वीरूप विद्याजे प्रधान हवी जेभी ल जेजे विद्याप्रधान  
 हव्य जेभनाभा हरिणैगमपी वगेरे देवताधिष्ठित मन्त्रप्रधान हव्य जेभी जेजे मन्त्र  
 प्रधान हव्य मैथुन विरमणरूप ब्रह्मचर्य नाम ब्रह्म छे जेववा सब कुरण भव्य  
 प्रधान हव्य मैथुन विरमणरूप ब्रह्मचर्य नाम ब्रह्म छे जेववा सब कुरण भव्य

મિતિ સર્વમેવ વા કુશલાતુઠાનં, તત્પ્રધાનં યસ્ય સ તથા, વેદપ્રધાનઃ-વેદઃ= આગમઃ-લૌકિક-લોકોત્તરકુપ્રાવચનિકભેદેન ત્રિવિધઃ, સ પ્રધાન યસ્ય સ તથા, સ્વસમયપરસમયજ્ઞાનસંપન્ન ઇત્યર્થઃ, નયપ્રધાનઃ-નયાઃ=નૈગ- માદયઃસસ ત એવ ભેદપ્રભેદતઃ સપ્તશતત્રિવિધાઃ, તે પ્રધાનાનિ યસ્ય સ તથા ત્રિચિત્રાભિગ્રહધારીત્યર્થઃ, સત્યપ્રધાનઃ-સત્યં=સકલપ્રાણિનામત્યન્તહિતકરં વચનમ્, તત્ પ્રધાનં યસ્ય સ તથા-હિતમિત્પ્રિયવચનયુક્ત ઇત્યર્થઃ, શૌચ- પ્રધાનઃ-શૌચ=દ્રવ્યતો લેપરહિત્યં ભાવતો નિરવધાચરણં, તત્ પ્રધાન યસ્ય સ તથા, જ્ઞાનપ્રધાનઃ-જ્ઞાન=મત્યાદિકં તત્ પ્રધાનં યસ્ય સ તથા, દર્શનપ્રધાનઃ

કુશલ અતુઠાનોં કા નામ બ્રહ્મ છે ઇન બ્રહ્મપ્રધાનતા વાલે વે થે. ઇમલિયે ઇન્હેં બ્રહ્મપ્રધાન કહા ગયા છે. આગમ કા નામ વેદ છે. યદ લૌકિક, લોકો- ત્તર, ઔર કુપ્રાવચનિક કે ભેદ સે ત્રીન પ્રકાર કા છે. યદ વેદ ઇનમેં પ્રધાન થા. અતઃ ઇન્હે વેદપ્રધાન કહા ગયા છે. તાત્પર્ય યદ કિ ચે સ્વ- સમય કે ઔર પરસમય કે જ્ઞાન સે સંપન્ન થે નૈગમ, સગ્રહ આદિ જો સાત નય છે ચે નય હી ભેદપ્રભેદ કો અપેક્ષા ૭૦૦ હો જાતે છે ચે નય ઇનમેં પ્રધાન થે અર્થાત્ ચે વહુત હી મુક્ષમ્ભવ સે નયોં કે વિશેષજ્ઞાતા થે ઇસ- લિયે ઇન્હેં નયપ્રધાન કહા ગયા છે. અભિગ્રહવિશેષોં કા નામ નિયમ છે અર્થાત્ ચે ત્રિચિત્ર અભિગ્રહોં કે ધારી થે સકલપ્રાણિયોં કે એકાન્તરૂપ સે હિતકર્તા જો વચન હોતે છે ઊનકા નામ સત્ય છે ઇસ સત્યપ્રધાન ચે થે અર્થાત્ ચે હિત, મિત, પ્રિય વચન ચોલતે થે. દ્રવ્ય ઔર ભાવ કી અપેક્ષા સે શૌચ દો પ્રકાર કા છે-લેપરહિત હોના યદ દ્રવ્ય કી અપેક્ષા શૌચ છે

કુશલાતુ નામ બ્રહ્મ છે એઓ આ બ્રહ્મ પ્રધાનતાથી યુક્ત હતા એથી જ એઓ બ્રહ્મ પ્રધાન કહેવાતા હતા, આગમતુ નામ વેદ લૌકિક, લોકોત્તર અને કુપ્રાવચનિક આમ ત્રણ પ્રકારનો છે, આ વેદ એમનામા પ્રધાન હતો એથી એઓ વેદપ્રધાન કહેવાતા મતલબ આ છે કે એઓ સ્વસમયના અને પરસમયના જ્ઞાનથી સંપન્ન હતા, નૈગમ, સગ્રહ વગેરે જે સાત નયો છે તે નયો લેદ પ્રલેહની અપેક્ષાએ ૭૦૦ થઈ જાય છે, એ નય પણ એમનામા પ્રધાન હતા એટલે કે એઓ ખૂબ જ નયના સૂક્ષ્મજ્ઞાતા હતા, એથી જ એઓ નયપ્રધાન કહેવાય છે, અભિગ્રહ વિશેષતુ નામ નિયમ છે, એટલે કે એઓ વિચિત્ર અભિગ્રહોને ધારણ કરનારા હતા, એકનિષ્ઠ થઈને જે સકલ પ્રાણીઓના હિત માટે વચનો કહેવાય છે તે સત્ય છે, એઓ સત્યપ્રધાન હતા, એટલે કે એઓ હિત, મિત અને પ્રિય વચન બોલનારા હતા વ્ય અને ભાવની અપેક્ષાએ શૌચના બે પ્રકારો છે, લેપરહિત થવું એ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ શૌચ છે, અને નિરવધ આચરણ કરવું એ ભાવની અપે-



मानापमानयोस्तुर्य इत्यर्थः, जितमाय = यथा नि कृत्वा, जित मोमा = यो मजेता, जितनिद्र = वस्रो कृतामत्र, जितन्द्रियः = निद्राहोतसकच्छेन्द्रियः, जितपरीपद = परीपदजेता, तथा-जीविताशमरणभयविप्रमुक्तः-जीवितस्य = जीवितस्य या आशा मरणा, तथा-मरणस्य = प्राणयियोगस्य यद् भयं ततश्च विप्रमुक्तः = रहितः जीवनमरणयोः समभावयुक्त इत्यर्थः तथा तपः प्रधानः = तपसा प्रधानः = सकलपुनाना मध्ये प्राधान्यं प्राप्नोति, अथवा-तपः = तपस्या प्रधान यस्य स महातपस्वीत्यर्थः शुभप्रधान-शुभं = सात्यादिगुणैः प्रधानः = भोष्ठः । 'तपः प्रधानगुणप्रधाने' ति विषेणद्वयं पक्षः पक्षपदद्वयं निजराहेतुत्वेन स यमस्य आमिनयकर्मणोऽनुपादेयत्वेन मोक्षोपायस्या-मोक्षार्थिभिस्तावद्वय

मान के विजेता ये अतः जितमान य, 'तारपय मान अपमान में सम ये सर्वेषा निष्कपट य अत्र जितमाय ये, मोमं क जेता ये अत जितमाम य निद्रा को यत्र में कर लिया था इसलिये जितनिद्र ये समस्त इन्द्रियो क निद्राकर्मणि-इसलिये जितेन्द्रिय ये-परीपदों पर विजय पा लिया था इसलिये जित परीपद ये, जीने की आशा से एव मरण क भय से विलङ्घ्य विप्रमुक्त य-इसलिये जीवन मरण में समभाव वाली ये तपसे सकल पुनिजनों में प्रधानता प्राप्तकर देने के कारण ये तपःप्रधान ये अथवा तपस्या प्रधान य महातपस्वी ये इसलिये तपः प्रधान ये ज्ञान्यादिक गुणों से भेष्ट होने क कारण प्राधान ये "तपः प्रधान एव शुभप्रधान" इन दो विशेषणों से यह सूचित किया गया है कि तप पूर्ववद्-कर्मों की निर्जरा का हेतु होता है एव स यम नवीन कर्मों की अनुपादेयता का हेतु होता है अर्थात् नवीन कर्मों के आगमन

हेतु। अर्थात् मान अपमान करने कोमाना भागे सर्वथा हटा कोको अपेक्षित निष्कपट हटा कोको जितमान हटा दोबाने एतन्नाह हटा कोको निद्राहोती हटा कोको निद्रावश करी हटा कोको जितानिद्र हटा अधी इन्द्रियोने कोमले भयभी करी शशी हटा कोको कोको जितन्द्रिय हटा, परीपदों पर कोमले विजय मिलेको हटा कोको जित परीपद हटा एवानी आशाभी अने भयभी कोको कोको विप्रमुक्त हटा कोको एवम मरणमा कोको समभावशील हटा सकल पुनिकोमा तपनी अपेक्षाको प्रधान होवाकी कोको तपप्रधान हटा अर्थात् महातपस्वी हटा सात्यादिक भेष्ट गुणोकी पुठत होवा जहल कोको शुभ प्रधान हटा तपप्रधान अने शुभप्रधान आ नि विशेषोकी को वात सूचित करवा आवा की छ के तप पूजककोनी निश्चयना हेतु होय छ अने स यम

મેવોપાનવ્યાવિતિ સૂચિતમ્ । સામાન્યનો ગુણપ્રધાન્યમુત્તરો સમ્પ્રતિ વિશેષત  
સ્તદાહ-તથાદિ-કરણપ્રધાન:-કરણં=પિણ્ડવિશુદ્ધ્યાદિ સપ્તતિવિધમ્, તદુક્તમ્  
'પિંડવિમોહી' (૭) સમિર્દ (૫) ભાવણ (૧૨) પહિમા (૧૨) યદ્દિયનિરોહો (૫) ।  
પહિલેહણ (૨૫) ગુત્તોઓ (૩) અભિગ્મહો (૧) ચેવ કરણં તુ ॥૧॥  
છાયા—પિણ્ડવિશેષિઃ સમિતિ ભાવના-પ્રતિમા ચ દિન્દિયનિરોધઃ ।  
પતિલેખના ગુપ્તયઃ અભિગ્રહાથૈવ કરણં તુ ॥હતિ॥ .

તત્પ્રધાનં યસ્ય સ તથા. ચરણપ્રધાન:-ચરણં=મહાવ્રતાદિ સપ્તતિવિધમ્,  
તદુક્તમ્-- વય (૫) સમણધર્મ (૧૦) સંજમ (૧૭) વૈયાવચ્ચં (૧૦) ચ વંમ-  
ગુત્તીઓ (૫) ણાણાહતિ (૩) તવં (૧૨) કોદ નિગ્મહાર્દ (૪) ચરણમેય  
છાયા--દ્રવ્ય શ્રમણધર્મઃ સંયમો વૈયાવૃત્ત્યં ચ વ્રહ્મગુપ્તયઃ ।  
જાનાદિવિક્રં તપઃ ક્રોધ નિગ્રહાદિઃ ચરણમેતત્ ॥હતિ॥

તત્પ્રધાન યસ્ય સ તથા, નિગ્રહપ્રધાનઃ નિગ્રહઃ=અસદાચારપ્રવૃત્તિનિષેધઃ સ પ્રધાનં  
યસ્ય સ તથા, નિશ્ચયપ્રધાનઃ=નિશ્ચયઃ=તત્ત્વાના નિર્ણયો વિહિતાનુષ્ઠાનાનામવ-  
શ્યમભ્યુપગમો વા, સ પ્રધાનં યસ્ય સ તથાં આર્જવપ્રધાનઃ=આર્જવં=કુજુતા માયા-

કો રોકતેવાળા હોતા હૈ- હમલિયે યે દોનોં મોક્ષ કે ઉપાયભૂત હોતે હૈ  
અત મોક્ષાર્થિયોં કો ઇન્હેં અવશ્ય પ્રાપ્ત કરનાં ચાહિયે ।

અવ સામાન્યરૂપ સે ગુણપ્રધાનતા કહકર વિશેષરૂપ સે ઉસકા પ્રતિ-  
પાદન કરને કે લિયે કહા ગયા હૈ—કરણ પ્રધાન હત્યાદિ પિણ્ડવિશુ-  
દ્ધ્યાદિ સાત પ્રકારકા હૈ—કહાં મીઠે 'પિંડવિમોહી' હત્યાદિ, ઇન ગુણો સે યે  
યુક્ત થે અતઃ યે કરણ પ્રધાન વહે ગયે હૈ । મહાવ્રતાદિ રૂપ ચરણ ૭૦  
પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ—જૈસે 'વય' હત્યાદિ યદ્દિ ચરણ ઇનમેં પ્રધાન થા,  
અતઃ યે ચરણ પ્રધાન થે. અસદાચારપ્રવૃત્તિ કે નિષેધ કા નામ નિગ્રહ હૈ  
યદ્દિ નિગ્રહ ઇનમેં પ્રધાન થા. અતઃ ઇન્હેં નિગ્રહ પ્રધાન કહા ગયા હૈ ।  
તત્ત્વોં કા નિર્ણય કરનેરૂપ નિશ્ચય અથવા વિહિત અનુષ્ઠાનોં કા અવશ્ય

કમોની અનુપાદેયતાને હેતુ હોય છે એટલે કે નવીન કમોને રોકનાર હોય છે.  
એથી જ એઓ બન્ને મોક્ષ માટે ઉપાયભૂત કહેવાય છે એથી મુક્તિલોકોને માટે  
એ બન્ને અવશ્ય આદરણીય છે.

હવે સામાન્યરૂપથી ગુણપ્રધાનતાને કરીને વિશેષરૂપથી તેનું પ્રતિપાદન કરવા  
માટે કહે છે કે-કરણપ્રધાન હત્યાદિ પિંડવિશુદ્ધ વગેરે રૂપ જે કરણ છે તેના આત  
પ્રકારો છે. કહ્યું છે—'પિંડ વિમોહી' વગેરે આ કરણ એમનામા પ્રધાનરૂપે. હેતુ  
એથી એઓ કરણપ્રધાન કહેવાય છે મહાવ્રતાદિરૂપ ચરણના ૭૦ પ્રકારો કહેવાય છે.  
જેમકે વય હત્યાદિ આ ચરણ પણ એમનામા પ્રધાનરૂપે, હેતુ એથી એઓ ચરણ  
પ્રધાન હતા અસદાચારની પ્રવૃત્તિના નિષેધનું નામ, નિગ્રહ છે. આ નિગ્રહ એમનામા  
પ્રધાનરૂપે હતા એથી જ એમને નિગ્રહ પ્રધાન કહેવામા આવ્યા છે. તત્ત્વોના નિર્ણય  
માટે જે નિશ્ચયાત્મક દૃઢ વૃત્તિ અથવા વિહિત અનુષ્ઠાનોને સ્વીકારવારૂપ જે નિશ્ચય-અ-

માનાપમાનયોસ્તુર્ય ઇત્યર્થઃ, જિતમાપ = મય યા નિઃકપટઃ, જિતમોમા = મોમજેતા,  
 જિતનિદ્ર = વશોકૃતાનિદ્ર, જિતત્રિયા = નિદ્રાસકલેન્દ્રિયા, જિતપરીપદ =  
 પરીપદજેતા, મથા-મોચિતાશ્ચામરમયવિપ્રમુક્તઃ-મોચિતસ્ય = મોચનસ્ય ચા  
 આશ્રા તસ્યા, તથા-મરણસ્ય = માણવિયોગસ્ય યદ્ મયતત્તથ વિપ્રમુક્તઃ =  
 રહિત શ્રીવનમરણયોઃ સમમાપયુક્ત ઇત્યર્થઃ તથા તપઃપ્રધાનઃ = તપસ્યા પ્રધાનઃ  
 સક્રમણનોનાં મધ્યે પ્રાધાનત્વ પ્રાપ્તઃ, અપચા-તપઃ = તપસ્યા પ્રધાન યસ્ય સ  
 મદાતપસ્વીત્યર્થઃ, ગુણપ્રધાન-ગુણ = જ્ઞાત્યાદિકગુણઃ પ્રધાન = ભેદઃ । 'તપઃ  
 પ્રધાનગુણપ્રધાને' તિ વિષેષણરૂપન પસઃ પૂર્વવદ્કર્મણો નિર્ગરાદેતુલ્યેન  
 તાવમસ્ય આમિનચકર્મણોઽનુપાદેયતુલ્યેન મોક્ષોપાયસ્વાન્મોક્ષાર્થિમિસ્તાવચસ્ય

માન કે રિજેતા થે અતઃ જિતમાન થે, 'તાત્પર્ય માન અપમાન મૈ સમ વૈ  
 તર્થેષા નિઃકપટ ય મત્ત જિતમાઃ થે, મોમ ક્ક જેતા થે અતઃ જિતચામ  
 ય નિદ્રા કો વશ મૈ કર લિયા થા ઇસલિયે જિતનિદ્ર થે સમસ્ત  
 ઇન્દ્રિયો ક્ક નિમ્મહકર્તાયે-ઇસલિયે મિતેન્દ્રિય થે-પરીપદો પર વિમય  
 પાંચિયા થા ઇસલિયે જિત પરીપદ થે, જીને કી આજ્ઞા સે એવ મરણ  
 ક મય સે ચિલ્લુક વિપ્રમુક્ત થ-ઇસલિયે શ્રીવન મરણ મૈ સમમાપ  
 શોભી થે તપસે સક્રમ મુનિજનો મૈ પ્રધાનતા પ્રાપ્તકરેને કે કારણ ય  
 તપઃપ્રધાન થે અથવા તપસ્યા પ્રધાન થે મહાતપસ્વી થે ઇસલિયે તપઃ  
 પ્રધાન થે જ્ઞાનવાદિક ગુણો સે ભેષ્ટ હોને ક્ક કારણ ગુણપ્રધાન થે 'તપઃ  
 પ્રધાન એવ ગુણપ્રધાન' ઇતિ દ્વો વિશેષણો સે યદ્ મુચિત કિયા ગયા હૈ  
 કિ તપ પૂર્વવદ્-કર્મો કી નિર્ગરા કા હેતુ હોતા હૈ એવ સમય નશીન  
 કર્મો કી અનુપાદેયતા કા હેતુ હોતા હૈ અર્થાત્ નશાન કર્મો ક્ક આગમન

હત્તુ અર્થાત્ માન અપમાન બન્ને એમના આદે સરજા હતા એઓ સખલ  
 નિઃકપટ હતા એથી જિતમાન હતા હોમને છતાના હતા એથી જિતચોખી હતા,  
 એમણે નિદ્રાવશ કરી હતી એથી એઓ જિતનિદ્ર હતા બધી ઇન્દ્રિયાને એમણે  
 વશમાં કરી રાખી હતી એથી એઓ જિતન્દ્રિય હતા પરીપદો પર એમણે વિજય  
 પ્રેર્યો હતો એથી એઓ જિત પરીપદ હતા છવનાની આશાથી અને 'મરણના  
 ભયથી એઓ એકમ વિપ્રમુક્ત હતા એથી છવન મરણમાં એઓ સમમાપચાલ  
 હતા સક્રમ મુનિઓમા તપની અપેક્ષાએ પ્રધાન હોવાથી એઓ તપપ્રધાન હતા,  
 અર્થાત્ મહાતપસ્વી હતા જ્ઞાનવાદિક ભેષ્ટ ગુણોથી પુરત હોના બદલ એઓ ગુણ  
 પ્રધાન હતા 'તપપ્રધાન એવ ગુણપ્રધાન' આ બે વિશેષણોથી એ વાત સૂચિત  
 કરવામાં આવી છે કે તપ પૂર્વવદ્કર્મોની નિર્ગરાનો હેતુ હોય છે અને સમય

मिति सर्वमेव वा कुशलानुष्ठानं, तत्प्रधानं यस्य स तथा, वेदप्रधानः—वेदः=आगमः—लौकिक—लोकोत्तरकुप्रावचनिकभेदेन त्रिविधः, स प्रधानं यस्य स तथा, स्वसमयपरसमयज्ञानसम्पन्न इत्यर्थः, नयप्रधानः—नयाः=नैगमादयःसप्त त एव भेदप्रभेदतः सप्तशतविधाः, ते प्रधानानि यस्य स तथा विचित्राभिग्रहधारीत्यर्थः, सत्यप्रधानः—सत्यं=सकलप्राणिनामत्यन्तहितकरं वचनम्, तत् प्रधानं यस्य स तथा—हितमितप्रियवचनयुक्त इत्यर्थः, शौचप्रधानः—शौच=द्रव्यतो लेपरहित्यं भावतो निरवधाचरणं, तत् प्रधानं यस्य स तथा, ज्ञानप्रधानः—ज्ञान=मत्यादिक तत् प्रधानं यस्य स तथा, दर्शनप्रधानः

कुशल अनुष्ठानों का नाम ब्रह्म है इस ब्रह्मप्रधानता वाले वे थे. इसलिये इन्हे ब्रह्मप्रधान कहा गया है। आगम का नाम वेद है, यह लौकिक, लोकोत्तर, और कुप्रावचनिक के भेद से तीन प्रकार का है, यह वेद इनमें प्रधान था अतः इन्हे वेदप्रधान कहा गया है। तात्पर्य यह कि ये स्वसमय के और परसमय के ज्ञान से सम्पन्न थे नैगम, संग्रह आदि जो सात नय हैं ये नय ही भेदप्रभेद की अपेक्षा ७०० हो जाते हैं ये नय इनमें प्रधान थे अर्थात् ये बहुत ही सूक्ष्मरूप से नयों के विशेषज्ञाता थे इसलिये इन्हे नयप्रधान कहा गया है। अभिग्रहविशेषों का नाम नियम है अर्थात् ये विचित्र अभिग्रहों के धारी थे सकलप्राणियों के एकान्तरूप से हितकर्ता जो वचन होते हैं उनका नाम सत्य है इस सत्यप्रधान ये थे अर्थात् ये हित, मित, प्रिय वचन बोलते थे। द्रव्य और भाव की अपेक्षा से शौच दो प्रकार का है—लेपरहित होना यह द्रव्य की अपेक्षा शौच है

धानोनु नाम ब्रह्म छ ओओ आ ब्रह्म प्रधानताथी युक्त हुता ओथी न ओओ ब्रह्म प्रधान कहेवाता हुता, आगमनु नाम वेद लौकिक, लोकोत्तर अने कुप्रावचनिक आगम त्रय प्रकारनो छ, आ वेद ओमनामा प्रधान हुता ओथी ओओ वेदप्रधान कहेवाता मतलब आ छ छे ओओ स्वसमयना अने परसमयना ज्ञानथी सम्पन्न हुता, नैगम, सग्रह वगेरे के सात नयो छ ते नयो वेद प्रलेहनी, अपेक्षाओ ७०० थछ नय छ, ओ नय पण ओमनामा प्रधान हुता ओटवे छे ओओ भूष न नयना सूक्ष्मज्ञाता हुता, ओथी न ओओ नयप्रधान कहेवाथ छ, अलिग्रह विशेषनु नाम नियम छ, ओटवे छे ओओ विचित्र अलिग्रहोने धारण करनारा हुता, ओकनिष्ठ थछने के सकल प्राणीओना हित माटे वचनो कहेवाथ छ ते सत्य छ, ओओ सत्यप्रधान हुता, ओटवे छे ओओ हित, मित अने प्रिय वचन बोलनारा हुता व्य अने भावनी अपेक्षाओ शौचना के प्रकारे छ, लेपरहित थछ ओ द्रव्यनी अपेक्षाओ शौच छ, अने निरवधा आचरण करु ओ भावनी अपे-

निग्रहः, तत्प्रधान यस्य स तथा, मार्दवप्रधानः-मार्दव=मृदुता-नम्रता तत्  
 प्रधान यस्य स तथा लाघवप्रधानः-लाघव=लघुता-द्रव्यमावलम्बिता तत्प्र  
 धान यस्य स तथा, क्षान्तिप्रधानः-क्षान्ति=कोषनिग्रह, सा प्रधान यस्य  
 स तथा, गुप्तिप्रधानः-गुप्तिः=मनोगुप्त्यादिका, सा प्रधान यस्य स तथा,  
 मुक्तिप्रधान-मुक्तिः=निर्मोभता, सा प्रधान यस्य स तथा, सर्वथा निर्लोभ इत्यर्थः  
 विद्याप्रधान-विद्याः=राहिणोपद्रव्यादिदेवताविष्टिताः वर्णानुपूर्वीरूपाः सा  
 प्रधानानि यस्य स तथा मन्त्रप्रधानः-मन्त्राः-हरिणैगमेत्यादिदेवताविष्टिताः  
 ते प्रधानानि यस्य स तथा, ब्रह्मप्रधानः-ब्रह्म=ब्रह्मचर्य मैथुनविरमणलक्षण

स्वीकार करनेरूप निश्चय इनमें था, इसलिये ये निश्चयप्रधान थे।  
 मार्जव नाम ऋजुता (सरलता) का है और यह माया निग्रहरूप  
 होती है। यह इनकी प्रधान थी अतः ये मार्जवप्रधान थे मार्दव  
 प्रधान इसलिये ये कि इनमें मृदुता-नम्रता प्रधानरूप से थी  
 लाघवप्रधान थे इसलिये ये कि इनमें द्रव्यमावरूप लघुता (इम्कापन) प्रधा  
 नरूप से थी क्षान्तिप्रधान थे इसलिये ये कि इनमें कोष को निग्रह कर  
 नेरूप परिणति प्रधान थी गुप्तिप्रधान थे इसलिये ये कि इनमें मनोगुप्ति  
 वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति ये तीन गुप्तिया प्रधान थीं मुक्तिप्रधान थे इस  
 लिये ये कि इनमें निर्मोभता प्रधानरूप में थी, विद्याप्रधान थे इसलिये  
 ये कि रोहिणी प्रज्ञप्त्यादिक देवताविष्टित वर्णानुपूर्वीरूप विद्याएं इनमें  
 प्रधान थीं मन्त्रप्रधान थे इसलिये ये कि इनमें हरिणैगमेपी आदि देवताविष्टित  
 मन्त्रप्रधान थे मैथुनविरमणरूप ब्रह्मचर्य का नाम ब्रह्म है मथवा सर्व ही

भाव होय छे जे पञ्च ज्येभनभा दत्त। जेथी ज्येको निश्चयप्रधान दत्त। मार्जव ऋजुता  
 (सरलता) नाम छे। जने भाषानिग्रहरूप प्रवृत्ति होय छे जे पञ्च ज्येभनभा प्रधानरूपे  
 दत्त। जेथी ज्येको मार्दव प्रधान दत्त। लाघव प्रधान ज्येको जेटला भा? दत्त। छे  
 ज्येभनभा मृदुता-विनम्रता-प्रधानरूपे दत्त। ज्येभनभा द्रव्यमाव लघुता प्रधानरूपे  
 दत्त। जेथी ज्येको लाघवप्रधान दत्त। कोषने निग्रह करवाइय परिणति ज्येभनभा  
 प्रधान दत्त। जेथी ज्येको क्षान्ति प्रधान दत्त। ज्येभनभा मनोगुप्ति वचनगुप्ति जने  
 कायगुप्ति जे त्रजे गुप्तिज्ये प्रधान दत्त। जेथी ज्येको शक्तिप्रधान दत्त। ज्येभनभा  
 निर्मोभता प्रधानरूपे दत्त। जेथी ज्येको मुक्तिप्रधान दत्त। ज्येभनभा रोहिणी प्रज्ञ-  
 प्त्यादिक देवताविष्टित वर्णानुपूर्वीरूप विद्याज्ये प्रधान दत्त। जेथी ज्येको विद्याप्रधान  
 दत्त। ज्येभनभा हरिणैगमेपी नमैरे देवताविष्टित मन्त्रप्रधान दत्त। जेथी ज्येको मन्त्र-  
 प्रधान दत्त। मैथुन विरमणरूप ब्रह्मचर्य नाम ब्रह्म छे। ज्येका सब दुयग अत-

મિતિ સર્વમેવ વા કુશલાનુષ્ઠાનં, તત્પ્રધાનં યસ્ય સ તથા, વેદપ્રધાનઃ-વેદઃ= આગમઃ-લૌકિક-લોકોત્તરકુપ્રાવચનિકભેદેન ત્રિવિધઃ, સ પ્રધાનં યસ્ય સ તથા, સ્વસમયપરસમયજ્ઞાનસંપન્ન इत्यर्थः, નયપ્રધાનઃ-નયાઃ=નૈગ-માદયઃસસ ત એવ ભેદપ્રભેદતઃ સપ્તશતવિધાઃ, તે પ્રધાનાનિ યસ્ય સ તથા વિચિત્રાભિગ્રહધારીત્યર્થઃ, સત્યપ્રધાનઃ-સત્યં=સકલપ્રાણિનામત્યન્તહિતકરં વચનમ્, તત્ પ્રધાનં યસ્ય સ તથા-હિતમિત્પ્રિયવચનયુક્ત इत्यर्थः, શૌચ-પ્રધાનઃ-શૌચ=દ્રવ્યતો લેપરહિત્યં ભાવતો નિરવધાચરણં, તત્ પ્રધાનં યસ્ય સ તથા, જ્ઞાનપ્રધાનઃ-જ્ઞાનં=મત્યાદિકં તત્ પ્રધાનં યસ્ય સ તથા, દર્શનપ્રધાનઃ

કુશલ અનુષ્ઠાનોં કા નામ બ્રહ્મ છે ઇન બ્રહ્મપ્રધાનતા વાલે વે થે. ઇમલિયે 'ઇન્હે' બ્રહ્મપ્રધાન કહા ગયા છે. આગમ કા નામ વેદ છે, યહ લૌકિક, લોકો-ત્તર, ઔર કુપ્રાવચનિક કે ભેદ સે ત્રીન પ્રકાર કા છે, યહ વેદ ઇનમેં પ્રધાન થા. અતઃ 'ઇન્હે' વેદપ્રધાન કહા ગયા છે. તાત્પર્ય યહ કિ ચે સ્વ-સમય કે ઔર પરસમય કે જ્ઞાન સે સંપન્ન થે નૈગમ, સંગ્રહ આદિ જો સાત નય છે ચે નય હી ભેદપ્રભેદ કી અપેક્ષા ૭૦૦ હો જાતે છે ચે નય ઇનમેં પ્રધાન થે અર્થાત્ ચે વહુત હી સૂક્ષ્મરૂપ સે નયોં કે વિશેષજ્ઞાતા થે ઇસ-લિયે 'ઇન્હે' નયપ્રધાન કહા ગયા છે. અભિગ્રહવિશેષોં કા નામ નિયમ છે અર્થાત્ ચે વિચિત્ર અભિગ્રહોં કે ધારી થે સકલપ્રાણિયોં કે એકાન્તરૂપ સે હિતકર્તા જો વચન હોતે હૈં ઉનકા નામ સત્ય છે ઇસ સત્યપ્રધાન ચે થે અર્થાત્ ચે હિત, મિત, પ્રિય વચન ચોલતે થે. દ્રવ્ય ઔર ભાવ કી અપેક્ષા સે શૌચ દો પ્રકાર કા છે-લેપરહિત હોના યહ દ્રવ્ય કી અપેક્ષા શૌચ છે

જ્ઞાનોત્તુ નામ બ્રહ્મ છે એઓ આ બ્રહ્મ પ્રધાનતાથી યુક્ત હતા એથી જ એઓ બ્રહ્મ પ્રધાન કહેવાતા હતા, આગમનુ નામ વેદ લૌકિક, લોકોત્તર અને કુપ્રાવચનિક આમ ત્રણ પ્રકારનો છે, આ વેદ એમનામા પ્રધાન હતો એથી એઓ વેદપ્રધાન કહેવાતા મતલબ આ છે કે એઓ સ્વસમયના અને પરસમયના જ્ઞાનથી સંપન્ન હતા, નૈગમ, સંગ્રહ વગેરે જે સાત નયો છે તે નયો ભેદ પ્રભેદની અપેક્ષાએ ૭૦૦ થઈ જાય છે, એ નય પણ એમનામા પ્રધાન હતા એટલે કે એઓ ખૂબ જ નયના સૂક્ષ્મજ્ઞાતા હતા, એથી જ એઓ નયપ્રધાન કહેવાય છે, અભિગ્રહ વિશેષનુ નામ નિયમ છે, એટલે કે એઓ વિચિત્ર અભિગ્રહોને ધારણ કરનારા હતા, એકનિષ્ઠ થઈને જે સકલ પ્રાણીઓના હિત માટે વચનો કહેવાય છે તે સત્ય છે, એઓ સત્યપ્રધાન હતા, એટલે કે એઓ હિત, મિત અને પ્રિય વચન બોલનારા હતા વ્ય અને ભાવની અપેક્ષાએ શૌચના બે પ્રકાર છે, લેપરહિત થવું એ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ શૌચ છે, અને નિરવધ આચરણ કરવું એ ભાવની અપે-

दृश्यं=सम्यक्त्व, तत्प्रधान यस्य स तथा, चारित्र्यप्रधान-चारित्र्य=मिया, तत्प्रधान यस्य स तथा, उदारः=मुज्जाश्रया, तथा=‘घारे घोरगुणे घोर त्वस्ती’ घोरमन्वेष्टरामी उच्छृङ्खलीर’ छाया-घोरो घोरगुणो घोरतपस्वी ‘घोरस्यमन्वेष्टरामी उच्छृङ्खलीर’ इति समासम्  
 ‘तत्र-घोरः=साविश्रयदीप्तियुक्तः, घोरगुणः=सर्वोत्कृष्टगुणयुक्त’ घोरतपस्वी=कौतुकजनमुष्णरतपाकारका, ‘घोरस्यमन्वेष्टरामी उच्छृङ्खलीर’ इति समासम्  
 युक्तः, उच्छृङ्खलीर-उच्छृङ्खलम्=उज्ज्वलतमिष सस्कारपरिस्थागात् शरीर यन सः, सर्वेषां शरीरसस्कारपरिर्मित इत्यर्थः । ‘तथा-चतुर्वर्गपूर्वी-चतुर्दशपूर्वभारका-तथा-चतुर्वर्गानोपगतः=मति-धुतावधिमनःपर्व’ इति ज्ञान

और निरवयव आवरण करना यह भाष की अपेक्षा शीव ६, १५ प्रकारके शीव प्रधान ये थ, । मत्प्रादिक ज्ञानों से प्रधान होने के कारण ये ज्ञानप्रधान थे, सम्यक्स्वरूप दर्शन से प्रधान होने के कारण दर्शनप्रधान थे, कृपाका चारित्र्य से प्रधान होने के कारण चारित्र्यप्रधान थे, मुज्जाश्रयक उदारभाव से प्रधान होने के कारण ये उदार थे, यहाँ घोरे’ इत्यादि । साविश्रयदीप्ति से युक्त होने के कारण ये घोरगुण वाले थे, कौतुक-कापर जन जिन तपों को नहीं कर सकते थे-ऐसे कठिन तपों को करने के कारण ये घोरतपस्वी थे, हीन प्राक्किपाछे जीव जिस ब्रह्मचर्य का पाप्मन नहीं कर सकते थ, उस ब्रह्मचर्यव्रत को ये धारण करते थ, इसलिये घोर ब्रह्मचारी थे, अपने शरीर का सस्कार करना इन्हीने छोड़ रखा था इसलिये ये उच्छृङ्खलीर थे, चौदह पूर्व के पूर्वरूप से पाठी थे, इसलिये ये चतुर्वर्गपूर्व भारकथे, मतिज्ञान, सुप्रज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपययज्ञान इन चार ज्ञानों से सहित थे इस

ज्ञाने शीव ६ ज्ञाने शीवप्रधान होता, मति वगैरे ज्ञानप्रधान होवाही ज्ञाने ज्ञानप्रधान होता, सम्यक्स्वरूप प्रधान होवाही ज्ञाने दर्शनप्रधान होता, कृपा रूप चारित्र्य प्रधान होवाही ज्ञाने चारित्र्य प्रधान होता, मुज्जाश्रयक उदारभावप्रधान होवाही ज्ञाने उदार होता, यहाँ घोरे वगैरे साविश्रय दीप्ति युक्त होवा जाइ ज्ञाने घोरगुणवाला होता कौतुक होके के तपों आवारी शकें नहि ते कठिन तपों ज्ञाने जावारी करता होता, ज्ञाने ज्ञाने घोर तपस्वी होता, दुर्लभ लोको के भवना ब्रह्मचर्य पालन करी शकें नहि ते ब्रह्मचर्य मतने ज्ञाने धारण करता होता ज्ञाने घोर ब्रह्मचारी होता पीतान्ता शरीरको सस्कारनी ज्ञाने कृपाज्जाने अभिष्टे सहित त्वाज ज्ञाने होता ज्ञाने ज्ञाने उच्छृङ्खलीर होता, चौदह पूर्वना पूर्वपाठी होता ज्ञाने ज्ञाने चतुर्वर्गपूर्वभारक होता मतिज्ञान, सुप्रज्ञान, अवधिज्ञान ज्ञाने भवतः

चतुष्टययुक्तः। एवविधः मन पञ्चभिरनगारगतैः पञ्चगतसंख्यकैरनगारैः।  
साद्धं=सह सपरिवृतः=संवेष्टितः पूर्वानुपूर्वी चरन=तीर्थकरपरम्परया विहर-  
माणः ग्रामानुग्रामम्=एकस्माद् ग्रामाद् ग्रामान्तरं द्रवन=गच्छन् सुखमुखेन  
विहरन्, यत्रैव-श्रावस्ती नगरी, यत्रैव कोष्ठक चैत्य, तत्रैव उपागच्छति,  
श्रावस्ती-नगर्या वहिः=श्रावस्ती नगरी वहिःप्रदेशे स्थिते कोष्ठके चैत्ये  
यथाप्रतिरूपं=साधुकल्पानुसारम् अवग्रहम्=वनपालाज्ञाम् अवगृह्य=गृहीत्वा  
संयमेन=सप्तदशविधेन तपसा=द्वादशविधेन च आत्मानं भावयन्=वामयन्  
विहरतीति। इदमत्र बोध्यम्-आर्जवादीनां चरणकरणान्तर्गतत्वेऽपि यत्पुन-  
रुपादानं तत् आर्जवादीनां प्राधान्यख्यापनार्थमिति। जितक्रोधत्वादीनाम्  
आर्जवादीनां चायं विशेषो बोध्यः-जितक्रोधादिपदैः उदयावधामाप्तानां

लिये चतुर्ज्ञानोपगत थे, इनके साथ पाँच सौ अनगार थे, अकेले नहीं थे,  
तीर्थकरपरंपरा के अनुसार ये विहार करने में रत थे-अनः उसी परंपरा  
के अनुसार ये विहार करते, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में बड़े यत्न से  
धर्मोपदेश की चरमा करते जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, और उनमें सी  
जहाँ वह कोष्ठक चैत्य था वहाँ पर आये, वहाँ आकर वे उन नगरों  
के बाहर बने हुए उस कोष्ठक चैत्य में साधुकल्प के अनुसार वनपाल की  
आज्ञा लेकर १७ प्रकार के संयम से और १२ प्रकार के तप से आत्मा  
को वासित करते हुए ठहर गये। यहाँ ऐसा समझना चाहिये-आर्जव  
आदि यद्यपि चरण और करण के अन्तर्गत है-फिर भी यहाँ जो स्वतन्त्र  
रूप से उनका उपादान किया गया है-वह उनमें प्रधानता प्रदर्शित करने  
के लिये किया गया है। जितक्रोधत्व आदि में और आर्जव आदि में

पर्यायज्ञान से आदेशान्तर ज्ञानार्थी से। युक्त होता है। चतुर्ज्ञानोपगत होता है।  
साथ पाँच सौ अनगार होता है, से। अकेला होता नहीं तीर्थकर परंपरा 'मुञ्ज  
विहार करवाना से। रत होता आम से। तीर्थकर परंपरा मुञ्ज विहार करता  
करता से। ग्रामार्थी भी ग्राम भूषण निष्ठाधी धर्मोपदेशनी वर्षा करता करता न्या  
श्रावस्ती नगरी होती अने तेमा पशु न्या ते कोष्ठक चैत्य होता त्या आन्या। त्या  
आवीने ते नगरीनी गृह्यते ते कोष्ठक चैत्यमा साधु कल्प मुञ्जवनपालनी आशा  
भेजवीने १७ प्रकारना संयमार्थी अने १२ प्रकारना तपार्थी पोताना आत्माने वासित  
करता ते। त्या रोकायेला आर्जव वगेरेना से के यरषु अने करषुमा समावेश  
थाय छे छता से अर्द्धी से स्वतन्त्रार्थी से। अहं करायुं छे ते तेमनामा  
प्रधानता प्रदर्शित करवा भाटे से छे तेम 'समन्वय' जितक्रोधत्व वगेरेमा 'अने



क्रोधादीनां विफलीकरणं सूचितं, 'मार्दवप्रधानादिपदैस्तेषामुदयनिरोधः सूचितः। अथवा-यत्त-एष मितक्रोधादिः, अत एष-क्षमादिप्रधान इति हेतु हेतुमद्भावाद् विशेषो बोध्य इति। अथा-'ज्ञानसम्पन्नः' इत्यादिपदैः ज्ञानादिमन्त्रमात्रं सूचितम्। 'ज्ञानप्रधानः' इत्यादिपदैस्तु ज्ञानादिप्रधानं सूचितं मिति ॥ सू० १०७ ॥

एष-तएण सावस्थीए नयरीए सिघाढग-सिय-चउक-

चध्वर-चउम्मुह-महापहपहेसु महया जणसहेइ वा जणबुहेइ वा जणबोलइ वा जणुम्मीइ वा जणुकलियाइ वा जणसनिवापइ वा जाव परिता पञ्चवासइ।

तएण तस्स चित्तस्स सारहिस्स त महया जणसहे च जाव जणसनिवाय च सुणेत्ता य पासिन्ता य इमेयारुखे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्झिन्ता किंण अज्झ सावस्थीए नयरीए इदमहेइ वा

यह अन्तर है कि जो जितक्रोधादि होता है वह उदयावस्थाप्राप्त क्रोधादिकों का विफल बना देता है, और जो 'मार्दवप्रधानादि' पदों वाला होता है वह क्रोधादिकों के उदय का निरोध कर देता है। यही बात सूचित करने के लिये इन पदों को भिन्न रूप में रखा गया है। जिस कारण यह मितक्रोधादि होता है, उभी से वह क्षमादिप्रधान होता है-इस तरह हेतुहेतुमद्भाव को लेकर इनमें विशेषता जाननी चाहिये, तथा 'ज्ञानसम्पन्न' इत्यादि पदों द्वारा सिर्फ ज्ञानादियुक्तता सूचित की गई है और 'ज्ञानप्रधान' इत्यादि पदों द्वारा उनमें प्रधानता प्रकट की गई है ॥ सू० १०७ ॥

आर्य वजेश आ वहावत उ के ने जितक्रोधी वजेश होय उ ते उदयावस्था प्राप्त क्रोधादिकोने अङ्ग जनावा भूके छे अने ने मादन प्रधानादिप्रधाना होय छे ते क्रोधादिकोने उदयने निरोध करे छे ने जातने सूचित कत्था भाटे व आ पद्येतु सिन्न सि न रूपमा अङ्ग करायु छे अने अने ते जितक्रोधादि होय छे तेने अने व ते क्षमादिप्रधान होय छे आ भाव्ये हेतु हेतुमद्भावने अने अने नामां विशेषता लखवी अने तेमए 'ज्ञानसम्पन्न' वजेश पद्ये वदे इहए ज्ञानादि युक्तता सूचित कत्थाभा आवी छे अने 'ज्ञानप्रधान' वजेश पद्ये वदे तेमनामां प्रधानता प्रकट कत्थाभा आवी छे ॥ सू० १०७ ॥

खंदमहेइ वा एवं रुदमहेइ मउंदमहेइ वा वेसमणमहेइ वा नाग-  
महेइ वा भूयमहेइ वा जक्खमहेइ वा थूममहेइ वा चेइयमहेइ वा  
रुक्खमहेइ वा गिरिमहेइ वा दरिमहेइ वा अगडमहेइ वा नईमहेइ  
वा सरमहेइ वा सागरमहेइ वा, जं णं इमे बहवे उग्गा उग्गपुत्ता  
भोगा भोगपुत्ता राइन्ना इक्खगा णाया कोरव्वा जहा उववाडए  
तहेव अप्पेगइया हयगया जाव अप्पेगइया पायचारविहारेणं महया  
महया वंदावंदएहिं निग्गच्छंति ? । एवं सपेहेइ संपेहिता कंचुइज्ज-  
पुरिसं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी किं णं देवाणुप्पिया ! अज्ज  
सावत्थीए नयरीए इंदमहेइ वा जाव सागरमहेइ वा जेणं इमे बहवे  
उग्गा जाव निग्गच्छंति ॥ सू० १०८ ॥

छाया—ततः खलु आवस्थ्या नगर्याः श्रृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-  
चतुर्मुख-महापथपथेषु महान् जनशब्द इति वा जनव्यूह इति वा जनबोळ  
इति वा जनकल कल इति वा जनोर्मिरित वा जनात्कलिकेति वा जनसन्निपात  
इति वा यावत् परिपत् पयुपास्ते ।

‘तए णं सावत्थीए नयरीए’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए ण) इसके बाद (सावत्थीए नयरीए) आवस्ती नगरी के  
(सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापट्टपट्टेसु महया जणसहेइ वा  
जणवूहेइ वा, जणबोलेइ वा जणकलकलेइ वा जणुम्मीइ वा जणुकलि-  
याइ वा, जणसंनिवाएइ वा, जाव परिसा पज्जुवासइ) श्रृङ्गाटक में त्रिक में,  
चतुष्क में, चत्वर में, चतुर्मुख में, महापथ में एव पथ में मिलित मनुष्यों का प्र-

‘तए ण सावत्थीए नयरीए’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए ण) त्थारपथी (सावत्थीए नयरीए) आवस्ती नगरीना (सिं-  
घाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापट्टपट्टेसु महया जणसहेइ वा जण  
वूहेइ वा, जणबोलेइ वा जणकलकलेइ वा जणुम्मीइ वा जणुकलियाइ वा  
जणसंनिवाएइ वा जाव परिसा पज्जुवासइ) श्रृङ्गाटोमा, त्रिकोणमा, चतुष्को  
मा, चत्वरमा, चतुर्भुजा, महापथमा-अने पथमा ओक्कथ थयेला अने-आवन्त

नतः स्वच्छ तस्य चित्तस्य सारधित्वात् महात्त जनसङ्घश्च यावत् जन  
मनिर्यात च भुक्त्वा च दृष्ट्वा च अयमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् समुद्रपयः  
हि स्वच्छ भव आरम्भ्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा स्कन्दमह इति वा पर-  
स्त्रमह इति वा सुकुन्दमह इति वा वैष्णवमह इति वा नागमह इति वा  
भूतमह इति वा यक्षमह इति वा स्तूपमह इति वा चैत्यमह इति वा वृक्षमह

स्वर्ग आकाश प्रचुररूप से होने लगा और लोक भी इकट्ठे हुये। ये परस्पर  
में अभ्यस्तर्षण घापी ध्वनि भी, वर्गों के, मुख से निकलने लगी, कोबाहट  
नैला भव गया लोगों में अगर भीड़ होने से एक दूसरे का संघर्ष भी  
हाने लग गया, कहीं मनुष्यों को थोड़ी भीड़ छुटकर खड़ा हो गई,  
अप्य अप्य स्थानों से आ २ घर वसमें मिलने लगे यावत् परिपरा  
उनकी पर्युपासना करने लगी ।

(त एण तस्म चित्तस्स सारहिस्स त महया जनसहं च जाव जण  
सनिषाय च सुणेत्ता य पासित्ता य इमेयाकवे भज्जस्सिण जाव समुप्प  
ज्जित्था) इसके बाद उस महान् जनसङ्घ को यावत् जनसानिपात का  
सुनकर एवं देखकर उस चित्त सारधि को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक  
यावत् मनोगत विचार उत्पन्न हुआ, (किं ण भज्ज सावत्थीए णरीए इदमहेइ  
वा स्वदमहेइ वा एव रुदमहेइ वा-मठदमहेइ वा वेसमणमहेइ वा, नाग  
महेइ वा, भूयमहेइ वा, जग्गमहेइ वा) क्या आम आध्यात्मी नगरी में

हरनाश होके भा परस्पर प्रचुररूपमा आकाश भवा भादयो-वार्ताकाय प्रारब्ध भयो-  
लेहे वधारे सज्जामां ज्येष्ठ तथा ताभ्या परस्पर कस्तुभ ध्वनिमां पक्षु लोकेभां  
यावत्पीत भवा लाजी पस्सिमां धिधाट जेपु वातावरणु भधं जसु त्थां जभार बीड  
भव मांही जने तेही ज्येष्ठ जीवन्ती अधिपित यस्मिं च लोके जवरज्जवर करीशकत्ता  
हत्ता ज्येष्ठी परिरिचित उत्पन्न भधं भधं हेटलाइ स्थानो पराभावा भावुसे ठोणाना  
आकारमां ज्येष्ठ भधं जया जने जीवलोके पक्षु तेभनी पासे इक्षववा लाभ्या, यावत्  
परिपरा तेभनी पक्षु पाठना करवा लागी।

(त एण तस्म चित्तस्स सारहिस्स त महया जनसहं च जाव जण  
सनिषाय च सुणेत्ता य पासित्ता य इमेयाकवे भज्जस्सिण जाव समुप्पज्जित्था)  
तथाभावात् ते महान् जनसङ्घने यावत् जनसानिपातने संसृज्जित्ते जने ज्येष्ठी ते  
चित्तसारधीने आ जतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत विचार उत्पन्न भयो हे  
(किं ण भज्ज सावत्थीए णरीए इदमहेइ वा स्वदमहेइ वा एव रुदमहेइ वा  
मठदमहेइ वा वेसमणमहेइ वा नागमहेइ वा, भूयमहेइ वा जग्गमहेइ वा)

इन्द्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या रुद्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या रुद्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या मृकुन्द को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या वैश्रवण को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या नाग को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या भूतको निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या यक्ष को निमित्त करके उत्सव हो रहा है (धूममहेइ वा, चेह्यमहेइ वा, न्कखमहेइ वा, गिरिमहेइ वा, दरिमहेइ वा, अगडगहेइ वा, नईमहेइ वा, न्गरमहेइ वा, सागरमहेइ वा,) या किसी स्तूप को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी चैत्य-उद्यान को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी वृक्ष को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी पर्वत को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी गुफा को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी--अवट-कूप को लेसर के उत्सव हो रहा है, या किसी नदी को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी तालाब को निर्मान करके उत्सव हो रहा है, या किसी ससुद्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है? (जे णं इमे बहवे उग्गा उग्गपुत्ता, ओग्गा ओग्गपुत्ता, राइन्ना, रक्खणा, पाया, कोरवा.

શું આજે શ્રાવસ્તી નગરીમા ધન્દ્રના નિમિત્તે કોઈ ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, રક્ષંદના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે રુદ્રના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે મુકુન્દના નિમિત્તે કોઈ ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે વૈશ્રવણના નિમિત્તે કોઈ ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે નાગ નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે ભૂતના નિમિત્તે કોઈ ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે કે યક્ષના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે. (થૂમમ-હેં વા, વૈહયમહેં વા. રુક્ષમહેં વા, ગિરિમહેં વા, દરિમહેં વા, અગડ-મહેં વા, નર્મમહેં વા, સ્પર્મહેં વા, સાગરમહેં વા) કે કોઈ સ્તૂપના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે ગૈત્યના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, વૃક્ષના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે પર્વતના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે કે શુક્ષ્મા નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે કોઈ-શ્વાટકૃપના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે કોઈ નદીના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે તળાવના નિમિત્તે ઉત્સવ ઉજવાઈ રહ્યો છે, કે કોઈ સમુદ્રના નિમિત્તે ઉજવાઈ રહ્યો છે ? (જે જાણે એ બધાંને જગ્ગા રગ્ગપુત્તા, મોગા મોગપુત્તા, રાઈન્ના, રક્ષગા, જાયા, કોરન્વા, જહા

अप्येकक इयगता यावत् अप्येकक पापचार विहारेण महर्हिर्महद्विद्वन्  
 इत्यैर्निर्गच्छन्ति !, एव सपेक्षते सपेक्ष्य कञ्चुकीयपुरुष शब्दयति, शब्दयित्वा  
 एवमवादीत्-किं त्वल देवानुप्रिया ! अथ आपस्त्वां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा  
 यावत् सागरमह इति वा, यस्त्वस्तु इमे यद्वे उगा यावत् निर्गच्छन्ति ? १०८।  
 'तपण' इत्यादि—

टीका--उसः खलु अथस्त्या नगर्यां शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-सत्वर चतुर्दश  
 -महापयपथेषु-सप्त-शृङ्गाटक-चतुर्दशकाकतिकस्त्रिषोणो मार्गः, त्रिक=त्रिपथ  
 जहा उववाइए तद्वेव अप्येगइया इयगता) जो ये बहुत से उमयश के मनुष्य,  
 उमयश के पुत्र, भोगवश के मनुष्य, भोगवश के पुत्र, राजन्यवश के  
 मनुष्य, इक्ष्वाकुवश के मनुष्य, क्षातवश के मनुष्य, कुशवश के मनुष्य,  
 जैसा कि इसके आगे औपपातिक सूत्र में कहा गया है उसके अनुसार  
 कितनेक घोड़ों पर चढ़ कर (जब अप्येगइया पापचारविहारेण महयार  
 वदावदएहिं निगच्छति) यावत् कितनेक पैदल ही मित्र सन्मूह में  
 होकर निकल रहे हैं। (एव सपेक्षेइ) ऐसा उसने विचार किया-(सपे  
 क्षिता कञ्चुइज्जपुरिस सदावइ) ऐसा विचार करके उसने कञ्चुकीयपुरुष को  
 बुलाया (सदाविचा एव वयासी) बुलाकर उससे कहा-(किं ण देवानुप्रिया !  
 अज सापत्पीए नयरीए इदमइइ वा, जाव सागरमइइ वा जे ण इमे बइवे  
 उगा, जाव निगच्छति) हे देवानुप्रिय ! क्या जब आपस्ती नगरी में इन्द्र महो-  
 त्सव है या यावत् सागर महोत्सव है कि जिससे ये उमयश के मनुष्य यावत् जा रहे हैं !

उववाइए तद्वेव अप्येगइया इयगता) के जेथी भक्ता उमयशना पुत्रो भोज  
 वशना भाबुसे, भोजवशना पुत्रो, राजन्यवशना भाबुसे, इक्ष्वाकुवशना भाबुसे,  
 क्षातवशना भाबुसे, कुशवशना भाबुसे-पदेका औपपातिक सूत्रों में जे भग्नाले नज्जिन  
 इयगता भाबुसे छे ते भुज्ज ठेटका भाबुसे। पर सवार यधने (जब अप्येगइया  
 पापचारविहारेण महयार वदावदएहिं निगच्छति) यावत् ठेटका वज्रपाणं  
 ५ जुहा जुध समुद्धिमां ओइव यधने जठ रक्ता छे (एव सपेक्षेइ) आ जातने  
 तेले विचार करे। (सपेक्षिता कञ्चुइज्जपुरिस सदावइ) आ भग्नाले विचार करीने  
 तेले कञ्चुकीय पुरुषन जाताये (सदाविचा) एव वयासी) जावावीने तेने भइं।  
 किं ण देवानुप्रिया ! अज सापत्पीए नयरीए इदमइइ वा, जाव सागर  
 महो वा जेण इमे बइवे उगा जाव निगच्छति) के देवानुप्रिय ! शु आले  
 आपस्ती नगरीमां इन्द्रमहोत्सव छे के यावत् सागर महोत्सव छे के जेथी उमयशना  
 भाबुसे यावत् जठ रक्ता छे ?

યત્ર ત્રયો માર્ગાઃ સ્મિલન્તિ તત્ ચતુષ્કમ્=ચતુષ્પથં યત્ર ચત્વારો માર્ગા  
મિલિતાસ્તત્. ચત્વરમ્=અનેકમાર્ગસંગમસ્થાનમ્. ચતુર્ભુજં=યતશ્ચતસૃષ્ઠ્વપિ  
દિક્ષુ પન્થાનો નિસ્સરન્તિ તત્. મહાપથઃ=રાજમાર્ગઃ, પન્થાઃ=સામાન્યમાર્ગઃ,  
પતેપામિતરેતરયોગદ્વન્ધઃ, તેષુ તથોક્તેષુ, મહાન્=પ્રચુરઃ જનશબ્દ इति वा=  
जनानां परस्परालापादिरूपः. जनव्यूहः=जनबोलः=जनानामव्यक्तवर्णा ध्वनिः,  
जनकलकलः=जनानां, कोलाहलध्वनिः, तत्र-बोलकलकलयोरयं विशेषः =बोल=  
अविभाव्यमानवचनविभागः कलकलस्तु विभाव्यमानवचनविभाग इति,  
जनोर्मिः=जनसम्बाधः, जनोत्कलिका=जनानां लघुतरः संघातः, जनसन्निपातः=  
जनानाम् अन्योन्यस्थानेभ्य एकत्र मीलनम्. यावत्-पर्यन्त=उग्रो<sup>१</sup> पुत्रादिरूपा

टीકાર્થ—તથા શ્રાવસ્તી નગરી કે શ્રુ ગાટક-સિંધાડે કી આકૃતિ જૈસે  
ત્રિકોણવાલે માર્ગ મેં, ત્રિક-ત્રીનમાર્ગ સે મિલે હુઈ માર્ગ મેં, ચતુર્પથમે  
ચાર માર્ગોં સે મિલે હુઈ માર્ગ મેં, ચત્વર મે-અનેક માર્ગોં કે સગમવાલે  
સ્થાન મેં, ચતુર્મુખ-જહાંસે ચારોં દિશાઓં મેં માર્ગ નિકળતે હૈ, પેરો રાસ્તે મેં, મહા  
પથ રાજમાર્ગ મેં, ઔર પથ-સામાન્ય માર્ગ મેં પ્રચુર માત્રા મેં જનશબ્દ હુઆ,  
આપસ મેં વોતચીત કરને કી અવાજ નિકલી, જનવ્યૂહ-જગમમુદાય-આકર  
ફકટ્ટા હોને લગા, જનબોલ-મનુષ્યોં કી અવ્યક્ત વર્ણવાલી ધ્વનિ હોને લગી  
જનકલકલ-જનોં કી કોલાહલ રૂપ ધ્વનિ હોને લગી। બોલ મેં ઔર કલ-  
કલ મેં અન્તર ઇતના હી હૈ. કિ બોલ મેં વચનવિભાગ અવિભાવ્યમાન (અલગર) હોતા  
હૈ ઔર કલકલ મેં વચનવિભાગ વિભાવ્યમાન (અવ્યક્ત ધ્વનિ) હોતા હૈ, જનસમ્વા-  
ધજનોં કે જમઘટ મેં હોને વાલે પારસ્પરિકવિમર્દ કા નામ જનોર્મિ હૈ તથા મનુષ્યોં  
કા જો લઘુતર સંઘાત હૈ વહ જનોત્કલિકા હૈ. અન્યોન્યસ્થાનોં સે આગત

टीकान — त्याहे श्रावस्ती नगरीना श्रु गाटक-शि गोडानी आकृति जेवा त्रिकोण-  
वाणा मार्गमा, त्रिक-त्रणु मार्गो ज्या ओकत्र थाय ते मार्गमा, यतुपथमा-चार  
रस्ताज्या ज्या जेगा भणे ते मार्गमा, चत्वरमा-धण्णा मार्गो ज्या ओकत्र थाय ते  
स्थानमा, चतुर्भुज-ज्याथी चोभेर रस्ताज्या जाता छाय जेवा मार्गमा, महापथ-  
राजमार्गमा अने पथ-सामान्य मार्गमा-साहे जनशब्द थये भाषुसोना घोंघाट थये  
परस्पर वार्तालाप करवाथी शोडण्डेर थये जनव्यूह-जनसमुदाय-ओकत्र थवा लाज्यो,  
जनबोल-भाषुसोनी अव्यक्त ध्वनि थवा लाज्यो, जनकलकल-भाषुसोना डोलाहलश्य  
ध्वनि थवा भाज्यो गोलमा अने कलरवमा तक्षवत आटवो ज छे डे गोलमा वचन  
विलाग अविभाव्यमान छाय छे अने कलकलमा वचनविलाग विलाव्यमान छाय छे  
जनसम्बाधजनेना जमघटमा यनार पारस्परिक विमर्दस्तु नाम छे तेभज भाषुसोना  
जे लघुतर संघात छे ते जनोत्कलिका छे जीणत धण्णा स्थानोथी आवेत भाषुसो

अप्येकके इयगता यावत् अप्येकके पापघार विहारेण महर्द्धिर्महर्द्धिर्नन्द  
 वृन्दैर्निगच्छन्ति?, एव सपेक्षते सपेक्ष्य कठुकीयपुरुष शब्दयति, शब्दयित्वा  
 एवमवादीत्-किं खलु देवानुप्रियाः। अथ आश्रयस्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा  
 यावत् सागरमह इति वा, यस्तल्लु इमे बहव उग्रा यावत् निगच्छन्ति? १०८।

‘सपण’ इत्यादि—

टीका—उक्तं खलु अवस्था नगर्यां शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर चतुर्मुख  
 -महापथपथेषु-तत्र-शृङ्गाटक-शृङ्गाटकाकृतिकसिद्धीनां मार्गः, त्रिकं=त्रिपथ  
 जटा उववाहए उहेय अप्पेगइया इयगता) जो ये बहुत से उग्रवश के मनुष्य,  
 उग्रवश के पुत्र, भोगवश के मनुष्य, भोगवश के पुत्र, राजपथ के  
 मनुष्य, इक्ष्वाकुवश के मनुष्य, शातवश के मनुष्य, कुरुवश के मनुष्य,  
 जैसा कि इसके आगे औपपातिक सूत्र में कहा गया है उसके अनुसार  
 कितनेक घोड़ों पर चढ़ कर (जब अप्पेगइया पापघारविहारेण महयार  
 वदावदएहिं निगच्छति) यावत् कितनेक पैदल ही मिलकर समूह में  
 होकर निकल रहे हैं। (एव सपेक्षते) ऐसा उसने विचार किया—(सपे  
 क्षिता कठुईकपुत्ति सहावेइ) ऐसा विचार करके उसने कठुकीयपुरुष को  
 बुलाया (सहाविता एव वयासी) बुलाकर उससे कहा—(किं न देवानुप्रिया!  
 अथ सायत्थीय नयरीए इवमहेइ वा, जाव सागरमहेइ वा जे न इमे बहवे  
 उग्रा, जाव निगच्छन्ति) हे देवानुप्रिय! क्या मान आश्रय की नगरी में इन्द्र महो-  
 त्सव है या यावत् सागर महोत्सव है कि जिससे ये उग्रवश के मनुष्य यावत् जा रहे हैं?

उपपात्त तद्देव अप्पेगइया इयगता) के लक्ष्य यथा उग्रवशना पुत्री भ्रातृ  
 वशना भावसे, भोगवशना पुत्री, शत्रुवशना भावसे, इक्ष्वाकुवशना भावसे,  
 शातवशना भावसे, कुरुवशना भावसे-पदेला औपपातिक सूत्रमा के प्रमाणे वर्णन  
 इत्यादि आत्मा है ते भुज्ज १८६६ बोलो। परन्तु यद्यपि (जाव अप्पेगइया  
 पापघारविहारेण महयार वदावदएहिं निगच्छति) यावत् देवता १८६६ पथपाथ  
 न नुय नुय अभुतां जेकर यद्यपि नथ रक्षा है (एव सपेक्षते) आ वातने  
 तेने विचार इमे (सपक्षिता कठुईकपुत्ति सहावेइ) आ प्रमाणे विचार करीने  
 तेने कठुकीय पुरुषन जोता ये। (सहाविता) एव वयासी) जोतापीने तेने हनु  
 किं न देवानुप्रिया! अथ सायत्थीय नयरीए इवमहेइ वा, जाव सागर  
 महो वा जे न इमे बहव उग्रा जाव निगच्छन्ति) हे देवानुप्रिय! १) आने  
 शावन्ती नगरीमा इन्द्रमहोत्सव है के यावत् सागर महा उत्सव है के लक्ष्य उग्रवशना  
 भावसे यावत् नथ रक्षा है।

જનસમુદાય' દૃષ્ટા ચ અપમેતદ્વૈપઃ આધ્યાત્મિકો યાવત્ સસુદપથત્વન=સમુ-  
ત્પન્નઃ। યાવન્નચ્છવ્દેન 'ચિન્તિતઃ, કલ્પિતઃ, પ્રાર્થિતઃ, મનોગતઃ સંકલ્પઃ'  
ઇતિ પદસમૂહઃ ઇષ્ટીતિતમચ્છવદ્ બોધ્યઃ। અર્થોડ્વયેપાં તત્ત્વ એવ ગમ્ય  
ઇતિ। સમ્પ્રતિ મનોગતસંકલ્પસ્વરૂપમાહ—'કિં ણ' ઇત્યાદિ। કિં 'સ્વલુ' 'કિમ્'  
ઇતિ વિતર્કે, 'સ્વલુ' ઇતિ વાક્યાલક્ષણે, અથ શ્રાવસ્ત્યાનગર્યામ્ ઇન્દ્રમહઃ—  
ઇન્દ્રઃ=શકઃ તન્નિમિત્તો મહઃ=ઉત્સવઃ= ઇતિ વા, એવં 'સ્કન્દમહઃ' ઇત્યારમ્ભ  
'સાગરમહઃ' ઇત્યન્તાનાં પદાનામપિ અર્થોડ્વયસન્ધેયઃ। નવરમ્-સ્કન્દઃ=કાર્તિકેય

મહાન્ જનશબ્દ કો યાવત્ જનસંપાતકો સુન કરકે ઔર દેશ્વ કરકે ડસ  
પ્રકાર કા યહ આધ્યાત્મિક યાવત્ સકલ્પ ઉત્પન્ન હુઆ. યહાં યાવત્ શબ્દ  
સે 'ચિન્તિત, કલ્પિત, પ્રાર્થિત, મનોગત' યે વિશેષણ સંકલ્પ કે ગ્રહણ  
કિયે ગયે હૈ. ઇનકા અર્થ '૮૩વે' સૂત્ર મેં સ્પષ્ટ કિયા ગયા હૈ. અતઃ વહીં  
સે વહ જાનના યાહિયે. 'કિં ણ' ઇત્યાદિ 'કિં' શબ્દ વિતર્ક મેં ઔર  
'સ્વલુ' શબ્દ વાક્યાલકાર મેં યાયા હૈ. ચિત્ર સારથી કો જો સંકલ્પ ઉત્પન્ન  
હુઆ હૈ વહી ઇન શબ્દોં દ્વારા પ્રકટ કિયા ગયા હૈ—કયા આજ શ્રાવસ્તી  
નગરી મેં ઇન્દ્રમહ હૈ? ઇન્દ્ર નામ શક કા હૈ. ડસ શક કો નિમિત્ત કરકે  
કિયા ગયા મહ-ઉત્સવ વહ ઇન્દ્રમહ હૈ. 'સ્કન્દમહ' સે લેકર 'સાગરમહ'  
તરુ કે પદોં કા અર્થ ઔ ડસી પ્રકાર સે જાનના યાહિયે. સ્કન્દ નામ કાર્તિકેય

જનશબ્દને યાવત્ જનસંપાતને સાણીને અને જોધને આ જાતનો આધ્યાત્મિક યાવત્  
સંકલ્પ ઉત્પન્ન થયો. અહીં યાવત્ શબ્દથી "ચિન્તિત, કલ્પિત, પ્રાર્થિત, મનોગત"  
સંકલ્પ માટે આ વિશેષણોનું ગ્રહણ સમજવું. આ બધાનો અર્થ '૮૩ માં સૂત્રમાં  
સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે તેથી જિજ્ઞાસુજનોએ ત્યાંથી બાણી લેવું જોઈએ. "કિં ણ"  
ઇત્યાદિ "કિં" શબ્દ વિતર્ક માટે અને "સ્વલુ" શબ્દ વાક્યાલકાર માટે પ્રયુક્ત  
થયેલ છે ચિત્રસારથીને જે સંકલ્પ ઉત્પન્ન થયો તેજ આ નિમ્ન શબ્દો વડે પ્રકટ  
કરવામાં આવ્યો છે કે શું આજે શ્રાવસ્તી નગરીમાં ઇન્દ્રમહ છે? ઇન્દ્ર શકનું નામ  
છે. આ શકના નિમિત્તે ઉજવાયેલ ઉત્સવ, ઇન્દ્રમહ છે. "સ્કન્દમહ" થી માડીને  
'સાગરમહ' સુધીના બધા પદોનો અર્થ આ પ્રમાણે જ બાણીને જોઈએ. સ્કન્દ



पयु'पास्ते । अथ 'पारवज्जदेव'-, 'पट्टजगो भद्रमस्तस्म' २ पारवज्ज 'अमिमुहावि-  
णण्ण पजल्लिउडा' इत्येवमसर्वोऽपि पाठ औपपातिकसूत्रोक्तचम्पानगरीगत  
श्री महावीरस्यामिमहावगमनपरिणामः सार्वोऽप्यत्र याच्यः, नवरम्-अथ छप्पा-  
दयस्तीर्थ'कराविशेषाः न याच्या । तथा-'समणे भगव महावीरे' इत्यादि  
मगध'नाम स्थाने 'पासावधिज्जे केसी नाम कुमारसमणे जाईतपणे  
इत्यादि वाच्यम् । अथ 'जन शब्द इति वा' इत्यादी इति शब्दो वाच्यः  
लङ्कारे' 'वा' शब्दः सगुणये इति ।

'तप न तस्म चित्तास्म' इत्यादि-उक्तं ग्यलु तस्य चित्तास्य सारथेः  
त महाव जनशब्दः च यावत् जनमनिपातः य शुक्ला=माधव्यः त महान्तः

मनुष्यो का जो एक जगह मिलान होता है उसका नाम जनमनिपात है।  
पाषाण उग्र उग्रपुत्र आदि का की परिपदाने पयु'पागना की यहाँ यावत् शब्द  
से पट्टजगो अण्णमण्यस्म' यहाँ से छेहर अमिमुहा विणण्ण पजल्लि  
उडा' यहाँ तक का सय पाठ जो कि औपपातिक सूत्र में ३८ वे सूत्र में  
चम्पानगरीगत श्रीमहावीर स्वामी के आगमन के पाठ में लिखा जा चुका  
है, ग्रहण किया गया है। उस पाठ मत छात्राधिक मा कि तीर्थ'कर प्रकृति  
के अतिशय रूप हैं यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिए-तथा 'समणे भगव  
महावीरे' इत्यादि मगध'नाम के स्थान में 'पासावधिज्जे केसी नाम  
कुमारसमणे जाइतपणे' ऐसा पाठ कहना चाहिये, 'जनशब्द इति वा'  
इत्यादिपाठ में जागत इति शब्द वाक्यालंकार में और 'वा' शब्द  
समुच्चय में आया है ।

'तप न तस्म चित्तास्म' इत्यादि इसके पाठ उक्त चित्र सारथि को उक्त  
को स्थाने कथां अत्रैव थाय छे तेन नाम जनमनिपात छे यावत् उक्त, उग्रपुत्र  
वजेरनी परिपद्यको पयु पासना करी लही यावत् शब्द 'पट्टजगो अण्णमण्यस्म'  
लही भी लहीने "अमिमुहा विणण्ण पजल्लिउडा" सुधीना औपपातिक सूत्र  
३८ मा सूत्र मुञ्ज य चानगरी जत श्री महावीर स्वामीना आजमनपाठमां के  
वपुन करवाभां आ पु छे-ने लपु लही शब्द सभलपु ते पाठमां के छात्रादि-  
के ने तीर्थ'कर प्रकृतिना अतिशय रूप छे- तेमत शब्द लही करपु नहि तेम  
'समणे भगव महावीरे' वजेर भजवानना नामोनी लयाको "पासावधिज्जे केसी  
नाम कुमारसमणे जाइतपणे" आ जाना पाठनु शब्द सभलपु "जन  
शब्द इति वा" वजेर पाठमा आवेल छति शब्द वाक्यालंकारमां अने 'वा' शब्द  
समुच्चयना इयमां छे

'तप न तस्म चित्तास्म' इत्यादि, त्यास्य छे ते त्यात्र सारथीने ते महान्त

जनसमुदायं दृष्ट्वा च अपमेतद्रूपः आध्यात्मिको यावत् समुदपद्यत=समु-  
त्पन्नः। यावच्छब्देन 'चिन्तितः, कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः'  
इति पदसमूहः व्यञ्जीवितममृतावद् बोध्यः। अर्थोऽप्येषां तत एव गम्य  
इति। सम्प्रति मनोगतसंकल्पस्वरूपमाह—'किं णं' इत्यादि। किं खलु 'किम्'  
इति वितर्के, 'खलु' इति वाक्यालङ्कारे, अथ श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमहः—  
इन्द्रः=शक्रः तन्निमित्तो महः=उत्सवः= इति वा, एवं, स्कन्दमहः' इत्यारभ्य  
'सागरमहः' इत्यन्तानां पदानामपि अर्थोऽनुसन्धेयः। नवरम्-स्कन्दः=कार्ति-

महान् जनशब्द को यावत् जनसपातको सुन करके और देख करके इस  
प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ। यहाँ यावत् शब्द  
से 'चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत' ये विशेषण संकल्प के ग्रहण  
किये गये हैं। इनका अर्थ ८३वें सूत्र में स्पष्ट किया गया है। अतः वहीं  
से वह जानना चाहिये। 'किं णं' इत्यादि 'किं' शब्द वितर्क में और  
'खलु' शब्द वाक्यालंकार में आया है। चित्र सारथी को जो संकल्प उत्पन्न  
हुआ है वही इन शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है—क्या आज श्रावस्ती  
नगरी में इन्द्रमह है? इन्द्र नाम शक्र का है। इस शक्र को निमित्त करके  
किया गया मह-उत्सव वह इन्द्रमह है। 'स्कन्दमह' से लेकर 'सागरमह'  
तक के पदों का अर्थ भी इसी प्रकार से जानना चाहिये। स्कन्द नाम कार्तिकेय

जनशब्दने यावत् जनसपातने सालणीने अने लेधने आ नतने आध्यात्मिक यावत्  
संकल्प उत्पन्न थये। अही यावत् शब्दथी "चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत"  
संकल्प भाटे आ विशेषणोनु अङ्गु समञ्जु। आ अधानो अर्थ ८३ भा सूत्रमां  
स्पष्ट करवामा आये। छे तेथी निरासुनोने त्याथी नाली, देवु लेधये। "किं णं"  
इत्यादि "किं" शब्द वितर्क भाटे अने "खलु" शब्द वाक्यालंकार भाटे प्रयुक्त  
थये। छे चित्रसारथिने जे संकल्प उत्पन्न थये तेज आ निम्न शब्दो वडे प्रकट  
करवामा आये। छे छे शु आने श्रावस्ती नगरीमा इन्द्रमह छे? इन्द्र शक्रु नाम  
छे। आ शक्रना निमित्तो उत्सव, इन्द्रमह छे। "स्कन्दमह" थी भाडीने  
"सागरमह" सुधीना अधा पहानो अर्थ आ प्रमाणे ज नालये लेधये? स्कन्द

केयः, रुद्रः=शिख मुकुन्द=नारायणः, वैभषणः=कुबेरः, नागः=मदनपतिविशेषः, भूतयज्ञो व्यन्तरविशेषः, स्तूपः चैत्यस्तूप शिखरवा, चैत्य=चितास्थित स्मारकचिह्नम्, वृक्षः=अश्वत्थादि, दरी=गुहा, गिरिः=पर्वतः, अषटः=गर्भः, नदी, सरः=सागराः=समुद्राः । 'इति' शब्दः सर्वत्र स्वरूपनिर्देशपरः, 'वा' शब्दः समुच्चये । तस्य इन्द्रमहादिषु कश्चिन्माहोऽस्ति, यत्स्वच्छ इमे बहवः उग्राः=मगवान् आदिनाथेन आरक्षकपदस्यापिष्ठानां वक्षजाताः, उग्रपुत्राः=कुमाराश्च स्योपेता उग्राएव उग्रपुत्राः, भोगा=आदिनाथेन गुरुपदे स्थापितानां वक्षजाताः, भोगपुत्राः=तेषां पुत्रा एव, राजन्याः=मगवताऽऽदिनाथेन वयस्यपदे स्थापिता

का है, रुद्र नाम महादेव का है मुकुन्द नाम नारायण का है, वैभषण नाम कुबेर का है मदनपतिविशेष का नाम नाग है, भूत और यज्ञ ये व्यन्तर विशेष हैं। स्तूप का नाम चैत्य स्तूप अथवा शिखर है चितास्थित स्मारक चिह्न का नाम चैत्य है, पीपल वगैरह के छाड़ का नाम वृक्ष है, गिरि नाम पर्वत का है, गुफा का नाम दरी है, अषट का नाम गर्भ, नदी, सर-तासाय और सागर ये सब अर्थतः प्रतीत की है। इति शब्द यहाँ सब जगह स्वरूप निर्देशपरक है 'वा' शब्द समुच्चय में है। इस तरह से उसने विचार किया कि क्या इन्द्रमहादिकों में से आज कोई मह-उत्सव है कि जिसमें ये अनेक उग्र-मगवान् आदिनाथ लोग जिन्हें आ रक्षक के पद पर स्थापित किया गया है, उनके वक्ष के लोग-जा रहे हैं ये अनेक उग्रपुत्र कुमाराश्चस्योपेत उग्ररूप उग्रपुत्र जा रहे हैं, ये भोग आदिनाथ मगवान् जिन्हें गुरु के पद पर स्थापित किया उनके वक्षके लोग जा रहे हैं, भोगपुत्र-उनके कुमाराश्चापन्न सक्षक जा रहे हैं, ये राजन्य-आदिनाथ

कालिकेश्वर नाम है रुद्र महादेव नाम है मुकुन्द नाम है नारायण वैभषण कुबेर नाम है मदनपति विशेष नाम नाम है भूत जननेयस्य व्यन्तरविशेष है स्तूप नाम चैत्यस्तूप अथवा शिखर है चितास्थित स्मारकचिह्न नाम चैत्य है पीपल वगैरह वृक्ष नाम है गुहा नाम दरी है गिरि पर्वत नाम अषट गर्भ है, नदी सर-तासाय अने सागर आ जमाना जमी स्थल व है इति शब्द जहाँ स्वरूप निर्देशपरक है 'वा' शब्द समुच्चय भागे उपलभ्य है आ प्रभवे विचार क्यो है शु आने इन्द्र महादिकोंमें कोई उत्सव है ? है क्यो क्यो यज्ञ उग्र-मगवान् आदिनाथ वटे नेमने आरक्षक पर प्रतिष्ठित करवाया ज व है तेमना व यन्ता होके वर रक्षा है क्यो यज्ञ उग्रपुत्र-कुमाराश्च स्योपेत उग्ररूप उग्रपुत्र वर रक्षक है, जे भोग आदिनाथ मगवान् नेमने गुरुपदे प्रतिष्ठित कया है तेमना व यन्ता होके वर रक्षा है जे भोगपुत्र तेमना कुमाराश्चापन्न पुत्र वर रक्षा है, जे

तानां व शजाताः, इक्ष्वाकुवः=इक्ष्वाकुवंशोद्भवाः, ज्ञाताः=ज्ञातवशीयाः, कौर-  
व्याः=कुरुवंशोद्भवाः, 'जहा उववाइए तहेव' इतोऽग्रे 'खत्तिया माहणा' इत्या-  
रभ्य 'चंदणोलित्तगायसरीरा' इतिपर्यन्तः सर्वोऽपि पाठ औपपातिकसूत्रोक्त-  
श्री महावीरस्वामि वन्दनार्थगतोग्रोग्रपु दिवद् विज्ञेयः । अप्येकके दयगताः=  
अश्वारूढाः, यावत् अप्येकके गजगताः=गजारूढाः, अप्येकके पादचारविहारेण  
महद्भिः=अतिविशालैः वृन्दवृन्दैः=पृथक् पृथक् समूहभूतैर्निर्गच्छन्ति=निस्स-  
रन्ति-इति । एवम्=अनेन प्रकारेण संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कञ्चुकीयपुरुषं शब्द-  
यति, शब्दयित्वा एवम् अवादीत=उक्तवान्-किं खलु देवानुप्रियाः । अथ  
श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा यावत् सागरमह इति वा वर्तते यत्  
खलु इमे बहव उग्रा यावद् निर्गच्छन्ति ? इति ॥ सु० १०८॥

ने जिन्हे मित्रपद पर स्थापित किया उनके वशके लोग जा रहे हैं, ये  
इक्ष्वाकुवंश के लोग जा रहे हैं, ज्ञातवशीयजन जा रहे हैं, ये कुरुवं-  
शीय जन जा रहे हैं, 'जहा उववाइए तहेव' यहां से आगे 'खत्तिया  
माहणा' से लेकर 'चंदणोलित्तगायसरीरा' यहां तकका समस्त पाठ जो  
कि औपपातिक सूत्र में कहा गया है उस समय, जब कि श्रीमहावीर  
स्वामी की वन्दना के क्रिये उग्र-उग्रपुत्रादि कहे गये हैं यहां ग्रहण करना  
चाहिये. इनमें से कितनेक अश्वपर चढ़ कर, कितनेक हाथीपर चढ़ कर और  
कितनेक पैदल ही चलकर तथा कितनेक अपना २ विशाल समुदाय बना  
कर पृथक् २ रूप से निकल रहे हैं ।

इस प्रकार विचार कर फिर उसने कञ्चुकीयपुरुष द्वारपाल को बुलाया और  
बुलाकर उससे ऐसा कहा-हे देवानुप्रिय ! आज क्या श्रावस्ती नगरी में

राजन्धो आदिनाथे नेमने मित्रपदे प्रतिष्ठित कथा छ तेमना वंशना बोडो ज्छ रह्या  
छे, इक्ष्वाकुवंशना बोडो ज्छ रह्या छे, ज्ञे ज्ञातवशीय बोडो ज्छ रह्या छे, ज्ञे कुरु-  
वंशीय बोडो ज्छ रह्या छे, 'जहा उववाइए तहेव' अडीथी आगण 'खत्तिया  
माहणा' थी माडीने "चंदणोलित्तगायसरीरा" अडी सुधीना समस्त पाठनुं-  
डे जे औपपातिकसूत्रमा श्री महावीर स्वामीनी वन्दना भाटे उग्र-उग्र पुत्रादि गया  
हुता-अडी "ग्रहणु समज्जपु" तेनाथी डेटलाक अन्ध पर सवार थधने, डेटलाक हाथी  
पर सवार थधने अने डेटलाक पगपाणा ज आदीने तेमज्ज डेटलाक पोतानो विशाण  
समुदाय बनावीने जुद्ध जुद्ध आकारमा त्या जवा नीकणी रह्या छे

आ प्रमाणे विचार करीने पछी तेणे कञ्चुकीय पुरुषने बोलाव्यो अने बोलावीने  
तेने आस कहुं डे-डे देवानुप्रिय ! शु आने श्रावस्ती नगरीमा धन्धमड यावत्

मूलम्—तपणं से कञ्चुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स आ  
 गमणगहियविणिच्छप् चित्त सारहि करयलपरिगहिय जाव वद्धावेत्ता  
 एव वयासी-णो खल्ल देवाणुप्पिया। अज्ज सावत्थिए णयरीए इदम  
 हेइ वा जाव सागरमहेइ वा जे णं इमे वहवे जाव वद्धावदएहिं  
 निग्गच्छति, एव खल्ल भो देवाणुप्पिया। पासावसिज्ज केसी नाम  
 कुमारसमणे जाइसपन्ने जाव बुइज्जमाणे इहमागए जाव विहरइ।  
 ते णं अज्ज सावत्थीए नयरीए वहवे उग्गा जाव अप्पेगइया वदण-  
 वत्तियाए जाव महया महया वद्धावदएहिं निग्गच्छति ॥सू० १०९॥

छाया—ततःखलु स कञ्चुकिपुरुष केसिन कुमारसमणस्य आग  
 मनस्यीतविनिमयः चित्र सारधिं करतलपरिगृहीतं यावत् वद्धं यित्वा पद्ममवादीव  
 नो खल्ल देवानुप्रिया। अथ भाव स्यां नगर्याइ इदमह इति वा यावत्सा-

इन्द्रमह यावत् सागरमह है ? जो ये बहुत से उग्र, उग्रपुत्र आदि सबके  
 सब अपने २ घर से निकल कर जा रहे हैं ? ॥ १०८ ॥

‘तपणं से कञ्चुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स’ इत्यादि।

सुभार्य—(तप ण) इसके बाद उस कञ्चुकी पुरुषने (केसिस्स कुमार  
 समण०) केशी कुमारसमण के आगमन का सुहीन निधयवाला होकर चित्त  
 सारहिं करयलपरिगहिय जाव वद्धावत्ता एव वयासी) चित्रमारपी से बड़े  
 चिनय से दोनों हाथों की अजलि बनाकर और उसे मस्तक पर घुमाकर एवं  
 जयविजय शब्दों द्वारा उसे पधारि दकर ईम प्रकार कहा—(भो खल्ल देवा

आमश्मद् उ ? हे केशी जे जभा उग्र, उग्रपुत्र वगैरे सो पितपिताना धेस्सी  
 नीउणीने कर्ह रक्ख उ ? ॥ १०८ ॥

“तपणं से कञ्चुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स” इत्यादि

सुभार्य—(तप ण) त्वां पत्नी ते कञ्चुकी पुत्र्ये (केसिस्स कुमारसमण०)  
 केशीपुत्राश्च भ्रातृवन्तौ अगमनं नी वात भनभा विचार्यते (चित्त सारहिं करयल  
 परिगहिय जाव वद्धावत्ता एव वयासी) चित्र सारधिनी आभे विनम्रतापूर्वक  
 जन्ने हाथीनी अजलि जनावने अने तेने मस्तक पर धरने अने जयविजय  
 शब्दोंबटे तेभने पधारणी आधीने आ प्रभावे कथं—(भो खल्ल देवाणुप्पिया।

ग्रामह इति वा यत् खलु इमे बहवो यावद् वृन्दवृन्दैर्निर्गच्छन्ति, एवं खलु भो देव नुपिय ! पार्श्वपत्नीयः केशी नाम कुमारश्रमणो जातिसंपन्नो यावत् द्रवन्द्वागतो यावत् विहरति । तत्खलु अथ श्रावस्त्यां नगर्यां बहव उग्रा यावत् अप्येकके वन्दनवृत्तितयै यावत् महद्भिर्महद्भिर्वृन्दवृन्दैर्निर्गच्छन्ति ॥१०९॥

टीका-‘तएण से इत्यादि ततःखलु स कञ्चुकिपुरुषः केशिनः कुमारश्रमणस्य आगमनगृहीतविनिश्चयः--आगमनस्य गृहीतः निश्चयो येन स तथा-ज्ञात केशिकुमारागमनवृत्तान्तः सन् चित्रं सारथिं करतलपरिगृहीतं यावद् बद्धयित्वा एवम्-भवादीत् हे देवानुपिय ! अथ खलु श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमहादि सागरमहान्तेषु कश्चिद् महो=उत्सवो नास्ति, यत् खलु इमे उग्रादयो यावद् वृन्दवृन्दैर्निर्गच्छन्ति । एवं खलु भो देवानुपिय ! भवान् जानातु यदथ खलु पार्श्वपत्नीयः केशीनाम कुमारश्रमणो जातिसम्पन्नो यावत् द्रवन्द्वा=श्राव-

णुपिया ! अज्ज सावत्थीए नयरीए इंदमहेइ वा, जाव सागरमहेइ वा “हे देवा नुपिय ! आज श्रावस्ती नगरी में न इन्द्र उत्सव है अथवा यावत् न सागर उत्सव है (जेणं इमे बहवे जाव विंदाविंदएहिं निर्गच्छन्ति, एवं खलु भो देवानुपिया ! पामावच्चिज्जकेसी नामं कुमारसमणे जाइसंपन्ने जाव दुइज्जमाणे इहमागए जाव विहरइ) परन्तु जो ये बहुत से उग्र उग्रपुत्रादिक अनेक विशाल समुदायरूप में होकर निकल रहे हैं-सो उसका कारण यह है कि पार्श्वपत्नीयः केशी नाम के कुमारश्रमण जो कि जातिसंपन्न आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाले हैं तीर्थंकर परम्परा के अनुसार विहार करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में धर्मोपदेश करते हुए यहाँ पधारे हैं यावत्-कोष्ठक चैत्य में विराजते हैं। (तेणं अज्ज सावत्थीए नयरीए बहवे उग्रा, जाव अप्पेगइया वदणवत्तियाए जाव महया महया वदावदएहिं निर्गच्छन्ति)

अज्ज सावत्थीए नयरीए इंदमहेइ वा, जाव सागरमहेइ वा) हे देवानुपिय ! आज श्रावस्ती नगरीमा न इन्द्र उत्सव छे छे यावत् न सागर उत्सव छे. (जेणं इमे बहवे जाव विंदाविंदएहिं निर्गच्छन्ति, एवं खलु भो-देवानुपिया ! पामावच्चिज्जकेसीनामं कुमारसमणे जाइसंपन्ने जाव दुइज्जमाणे इहमागए जाव विहरइ) यणु जे आ यथा उथ उथपुत्रादिक धणा विशाल समुदायना आकारमा अेकत्र थधने जध रह्या छि तेतु धारणु अे छि छे पार्श्वपत्नीय केशी नामे कुमार श्रमणु छे जे जातिसंपन्न वगेरे पूर्वोक्त विशेषणोवाणा छे, तीर्थंकर परंपरा मुज्जं विहार करतां करता अेक गाभथी जीजे गाभधर्मोपदेश करता अही पधार्या छे. अने यावत् कोष्ठक चैत्यमा तेओश्री विराजे छे. (तेणं अज्ज सावत्थीए नयरीए बहवे उग्रा, जाव अप्पेगइया वदणवत्तियाए जाव महया महया वदा-

सया मगर्याः कोष्ठके दैत्ये यागतो यावत् तत् स्वस्त्यु भव्य भावस्स्यां नययां  
पश्य उग्रा यावत् इभ्यपुत्रा अप्येकके मन्दनवृत्तितायै मन्दननिमित्त यावत् म  
द्विमं हृद्विन्द्वन्द्वन्द्वै निर्गच्छन्तीति । सू० १०९ ॥

मूलम्—तपणं से चित्ते सारही कचुइपुरिसस्त अतिए एय  
मट्ट सोध्वा निसम्म हट्टुट्टु—जाव—हियए कोट्टुवियपुरिसे सदावेइ  
सदावित्ता एव वयासी—स्विप्पामेव भो देवाणुप्पिया । चाउग्घट आस  
रहं जुत्तामेव उवट्टवेह जाव सच्छत्त उवट्टवेति । तपणं से चित्ते सा  
रही पहाए कयवलिकम्मे कयकोउयमगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइ  
मगलाइ वंत्थाइ पवरपरिहिणं अप्पमहग्घामरणाळकियसरीरे जेणेव  
चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घट आस  
रह वुरुहइ, सकोरिटमह्मदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भव्वड  
गरविंदपरिक्खित्ते सावरथी नयरीए मज्झ मज्जेणं निग्गच्छइ, निग्ग  
च्छित्ता जेणेव कोट्टुए चेइए जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवा  
गच्छइ, उवागच्छित्तो केसिकुमारसमणस्स अदूरसामत्ते तुरए णिगि  
ण्हइ रहं ठवेइ य, ठवित्ता पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव केसिकुमार  
समणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता केसिकुमारसमणं तिकवुत्तो  
आयाहिण—पयाहिणं करेइ, करित्ता वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता  
णश्चासण्णे णाइदूरे सुस्सुसमाणे णमंसमाणे अभिसुहे पजलिउडे  
विणएणं पज्जुवासइ ॥ सू० ११० ॥

इस कारण आज भावस्ती नगरी में अनेक उग्र यावत् इभ्यपुत्रवन्दना  
करने के निमित्त यावत् विश्राममधुयाय के रूप में होकर निकल रहे हैं । १०९।

पश्यति (णिगच्छति) ज्येष्ठी आने भावस्ती नगरीभाषी वया उग्र यावत् इभ्य-  
पुत्रा व दना इत्या भावे यावत् विश्राम मधुयायना इत्या ज्येष्ठ यदने अर्थ ११०। ॥ १०९॥

छाया—तत खलु स चित्रः सारथिः कञ्चुकिपुरुषस्य अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृदय-यावद् हृदयः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा, एवमयादीत-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! चातुर्घण्टम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयत यावत्स-च्छत्रम् उपस्थापयति । ततः खलु स चित्रः सारथिः स्नातः कृतवलि-कर्मा कृतकौतुकमङ्गलपायश्चित्तः शुद्धप्रवेश्यानि मङ्गल्यानि वस्त्राणि प्रवरप-

‘त एण से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अति ए एयमट्ट’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(न एणं से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अति ए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टतुट्ट जाव हिय ए कोट्टुं विय पुरिमे सदावेइ) हमके बाद जब कि कञ्चुकी के मुख से इस अर्थ को सुना और उसका हृदय में विचार किया तब हट्ट यावत् हृदय वाले होकर उस चित्रसारथिने कौटुम्बिकपुरुषों—आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाया, (सदावित्ता एवं वयासी) बुलाकर उसने ऐसा कहा (खिप्पामेव भो देवानुप्रिया ! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह) हे देवानुप्रियो ! आप लोग चातुर्घट-(चारघंटोवाले) अश्वरथ को घोड़ों से युक्त करके शीघ्र ही उपस्थित करो (जाव सच्छत्तं उवट्टवेति) अपने स्वामी की इस प्रकार आज्ञा के वचन सुनकर यावत् उत्तम छत्र सहित अश्वरथ को उन्होंने लाकर उपस्थित कर दिया. (न एणं से चित्ते सारही ण्हाए कयवलिकम्मे, कयकोउयमंगलपायच्छित्ते) रथ को उपस्थित हुआ जानकर चित्र सारथिने स्नान किया, वलिकर्म किया अर्थात् काक

‘त एणं से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अति ए एयमट्ट’ इत्यादि.

सूत्रार्थ—(त एण से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अति ए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टतुट्ट जाव हिय ए कोट्टुं विय पुरिमे सदावेइ) न्याये कञ्चुकीना सुभथी आ भधी विगत सालणी त्यारे तेण्णे मनभा विचार क्थे अने हट्ट यावत् हृदयवाणो थधने ते चित्रसारथीये कौटुम्बिक पुरुषोने—आज्ञाकारी पुरुषोने बोलाया. (सदावित्ता एव वयासी) बोलावीने तेभने आ प्रभाण्णे क्खं. (खिप्पामेव भो देवानुप्रिया ! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह) हे देवानुप्रिय ! आप सो सत्तरे चातुर्घट (चार घंटोवाणा) अश्वरथने सन्नित्त करीने लावो. (जाव सच्छत्तं उवट्टवेति) पोताना स्वाभीनी आ प्रभाण्णे आज्ञा सालणीने यावत् तेभण्णे उत्तम छत्रसहित अश्वरथ लावीने उपस्थित क्थे

(त एण से चित्ते सारही ण्हाए कयवलिकम्मे, कयकोउयमंगल-पायच्छित्ते) रथने आवेवो नेधने चित्रसारथीये स्नान क्थुं, वलिकर्म क्थुं अने उ स्वप्नना निवारणार्थं कौतुक, मंगलद्वय प्रायश्चित्तनी विधिओ सपन्न करी. मृद्ध-



रिहितः, मत्पमहापांमरणाल्लूठक्षरीरो यत्रैव चातुर्यंष्टा अश्वरयस्तत्रैव उपा-  
गच्छति, उपागत्य चातुर्यंष्टम अश्वरये दूरोहति, सकीर्यमाणपदान्ता छत्रं  
घ्नियमाणेन महाभट-घटकरवन्दपरिसिप्त आवस्तीनगर्याः, मध्यमघ्नन  
निगच्छति, निगच्छ्य यद्येष कोटुकं चेत्य यत्रैव केचिकुमारभ्रमणस्तत्रैव  
उपागच्छति, उपागत्य केचिकुमारभ्रमण त्रिकूटस्थ आश्रितिपदसिन्न परोति,

आदि को मन्त्र का भाग दिया एवं दुःस्थान का विनाश  
करने के लिये कौतुक, मगलरूपः प्रापयित किया, (सुदृष्ट्या  
साह मगसाह बत्याह पवरपरिहिए अप्पमह्मयाभरणाल्लूठियसरीरे जेणेव  
आउम्यटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) बाद में उसने छुट्ट, परिपदा, में  
प्रवेशयोग्य, मार्गसिक्त, वस्त्रों को अच्छी तरह से पहिरा एवं विशिष्ट क्षीप्त  
तथाछे तथा मत्पमजनबाछे, पेसं आयूपणों से, अपमै। शरीरे, को अलंकृत  
किया (जेणेव आउम्यटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता आउम्यटे  
आसरहे दूरोहइ) बाद में वह वहाँ चारपटों वाला अश्वरय लडा वा वहाँ  
पर आया-वहाँ आकर वह उस चातुर्यट अश्वरय पर बैठ गया (सको  
रिटमल्लदामेण छत्रेण घरिज्जमाणेण मइया मउचङ्गरविहपरिविस्वको सां-  
त्पीए मज्झमज्जेण निगच्छइ) छत्रपारण करने वालेने उसके ऊपर कोरट  
पुष्पों की मालामाल से सुशोभित छत्र तान दिया, "विशाल मटों का समूह  
उसके आसपास आकर खडा हो गया इस प्रकार दोसर फिर वह भावस्ती  
नगरी के बीचों बीच से होता हुआ निकला (निगच्छिता जेणेव कोट्टए

प्रावेसाह मगसाह बत्याह पवरपरिहिए, अप्पमह्मयाभरणाल्लूठियसरीरे वा  
उम्यटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) त्यास्ताह तेव्हे सारी रीते शुद्ध, अनुपारि  
कामा, प्रवेश योग्य, मार्गसिक्त वस्त्रों धारण कर्त्ता तथा अहु, क्षीमयी अने अश्व-  
भारवाण आकूपव्हे। पडेशीने पाताना शरीरने अलंकृत कइ (जेणेव आउम्यटे  
आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता आउम्यटे आसरहे दूरोहइ)  
त्यार वाह अया आर बटोवाणि अधिष्ठ कतो त्यां गये। त्यां गयेने ते चातुर्यं  
रथ पर सवार कये (सकारिटमल्लदामेण छत्रेण घरिज्जमाणेण मइया, मउ  
चङ्गरविहपरिविस्वको सांत्पीए मयरीए मज्झमज्जेण निगच्छइ) छत्र  
धारण करनाराखे तेभना ऊपर डारट पुष्पानी आणाव्याधी सुशोभित छत्र वापु  
विशाल बटोना समूह आवीने तेनी आसपास आश्रित निटणाव जया. आ यमाव्हे  
ते भावस्तीनी नजरीनी नये गयेने नीकये। (निगच्छिता जेणेव कोट्टए

कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा नात्यामन्ने नातिदूरे शुश्रूषमाणो नमस्यन् अभिसुखे प्राञ्जलिपुटो विनयेन पर्युपासने ॥११०॥

चेइए केसिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ) निकलकर वह जहां कोठक चैत्य था और उसमें भी जहां केशीकुमारश्रमण थे वहां पहुँचा (उवागच्छित्ता केमिकुमारसमणस्स अदूरसाम ते तुरए णिगिण्हइ) वहा पहुँच कर उसने केशिकुमारश्रमण के स्थान से कुछ थोड़ी दूर पर घोड़ा को ग्वडा कर दिया (रह ठवेइ) रथको खडा कर दिया (ठवित्ता पच्चोरुइ) खडा करके फिर वह उससे नीचे उतरा (पच्चोरुहित्ता जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ) नीचे उतर कर वह जहां केशीकुमार श्रमण थे वहा पर गया (उवागच्छित्ता केसिकुमारसमणं तिकखुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ) वहाँ जाकर उसने केशीकुमार श्रमण को तीनवार प्रदक्षिणा की (करित्ता वदइ, नमंसइ) प्रदक्षिणा करके फिर उसने उनको वन्दना की, नमस्कार किया (वन्दित्ता नमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्ससमाणे णमसमाणे अभिसुहे पंजलिउडे विणएण पज्जुवासइ) वन्दना नमस्कार करके फिर वह न अधिक दूर और न अधिक पास ऐसे उचित स्थान पर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से बैठ गया, वहा बैठे ही उसने उनके समक्ष विनय से दोनों हाथ जोड़ कर उनकी पर्युपासना की।

टीकार्थ इसका स्पष्ट है ॥११०॥

जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ) नीकणीने ते ज्थां डोण्डक चैत्य डुत्तं अने तेमा पणु ज्थां केशीकुमार श्रमणु डुत्ता त्या गथे, (उवागच्छित्ता केसिकुमारसमणस्स अदूरसाम ते तुरए णिगिण्हइ) त्या पडोथीने तेणु केशिकुमार श्रमणुना स्थानथी थोरा अंतरे घोडाओने उलो राख्था (रह ठवेइ) रथने थोलाओथे। (ठवित्ता पच्चोरुइ) उलो राखीने पछी ते रथ परथी नीचे उतर्यो (पच्चोरुहित्ता जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ) नीचे उतरीने ते ज्थां केशीकुमार श्रमणु डुत्ता त्यां गथे। (उवागच्छित्ता केसिकुमारसमणं तिकखुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ) त्या जधने तेणु केशीकुमार श्रमणुनी त्रणुवार प्रदक्षिणा करी (करित्ता वदइ, नमंसइ) प्रदक्षिणा करीने तेणु तेमने वदन कर्था, नमस्कार कर्था। (वन्दित्ता नमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्ससमाणे णमसमाणे अभिसुहे पंजलिउडे विणएण पज्जुवासइ) वंदना तेमज नमस्कार करीने ते दूर पणु नहि अने वधारे नल्लक पणु नहि जेवा योग्य स्थान पर ते धर्मश्रवणुनी धर्याथी जेसीने ज तेणु तेमनी सामे विनयपूर्वक हाथ जोडीने तेज्याश्रीनी पर्युपासना करी

टीकार्थ—आ सत्रनो स्पष्ट ज छे ॥११०॥

'तएण से' इत्यादि—

मीका—एतस्मिन्स्यपदानां व्याख्या पूर्व गता, अत इदं व्याख्यातमापमिति। सू ११०।

(सूत्रम्—तएण से केसिकुमारसमणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे महइमहालयाए परिसाए चाउज्जाम धम्म परिकहेइ, स जहा—सब्बाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सब्बाओ मुसावायाओ वेरमण, सब्बाओ आदिन्नादाणाओ वेरमणं, सब्बाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं तएणं सा महइमहालिया परिसा केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म जामेव दिस्स पाउब्बया तामेव दिस्सि पडिगया। सू १११।)

छाया—ततः सद्य म केसिकुमारभ्रमणः विषय सारथये तस्यां महा विमहालयायां परिषदि चातुर्याम धर्मं परिचरयति, तद्यथा—सर्वस्मात् प्राजातिपा ताद् विरमणम्?, सर्वस्मात् शृपावादाद् विरमणम्, सर्वस्मात् अदसादानाद् विरमणम्, सर्वस्माद्वहिरादानाद् विरमणम्। ततः सद्य सा महाविम

'तएण से केसिकुमारसमणे' इत्यादि।

सुमार्थ—(तएण से केसिकुमारसमणे) इसके बाद (केसिकुमारसमणे) केसिकुमार भ्रमणने (चित्तस्स सारहिस्स) विज्र मारवि के विषे (तीसे महइमहालयाए) उस मति विज्ञाम (परिसाए) परिषदा में (चाउ ज्जाम धम्म परिकहेइ) चातुर्याम धर्म का (परिकहेइ) परूपण किया—उपदेश दिया (स महा—सब्बाओ पाणाइवायाओ वेरमण, सब्बाओ मुसावायाओ वेरमण, सब्बाओ आदिन्नादाणाओ वेरमणं सब्बाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं) वे चातुर्याम ये हैं—१ समस्त प्राजातिपात से विरक्त (निवृत्त) होना, २

'तएण से केसिकुमारसमणे' इत्यादि।

सुमार्थ—(तएण से केसिकुमारसमणे) त्थाए पडी केसिकुमार भ्रमणे (चित्तस्स सारहिस्स) विज्र मारवि भाटे (तीसे महइमहालयाए) ते मति विज्ञाम (परिसाए) परिषदायां (चाउज्जाम धम्म परिकहेइ) चातुर्याम धर्म नी (परिकहेइ) प्रश्रव्या करी ओटकी के उपदेश करी। (त जहा सब्बाओ पाणाइवायाओ वेरमण, सब्बाओ मुसावायाओ वेरमण, सब्बाओ आदिन्नादाणाओ वेरमण, सब्बाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं) ते चातुर्याम धर्म नी विशेष विज्रत म् प्रभावे छे—(१) समस्त प्राजातिपातशी विरक्त (निवृत्त) श्यु (२) समस्त शृपावादी विर-

હાલયા પરિપત્ કેશિનઃ કુમારશ્રમણસ્યાન્તિકે ધર્મં શ્રુત્વા નિશમ્ય યસ્યા એવ  
દિશઃ પ્રાદુર્ભૂતા તામેવ દિશં પ્રતિગતા ॥ સૂ. ૧૧૧ ॥

ટીકા—‘તણ’ સે હત્યાદિ—તતઃ સ્વલુ સ કેશીકુમારશ્રમણઃ ચિત્રાય  
મારથયે=ચિત્રં સારથિમુદ્દિશ્ય તસ્યાં મહાતિમહાલયાયામ્=અતિવિશાલાયાં  
પરિષદિ ચાતુર્યામં ચતુર્ણામ્=ચતુઃસંખ્યકોનાં યામાનાં=યમા એવ યામાસ્તેપાં  
સમાહારશ્ચતુર્યામં, તદેવ ચાતુર્યામં, તદસ્તિ યસ્મિન્ સ ચાતુર્યામસ્તં  
ધર્મં પરિકથયતિ=વ્યાખ્યાતિ, તથા—સર્વસ્માત્ પ્રાણાતિપાતાદ્ વિરમણં=  
સકલપ્રાણિપ્રાણવિયોજનાનુકૂલવ્યાપારતો વિનિવૃત્તિઃ, સર્વસ્માદ્ મૃષા-  
ત્રાદાદ્ વિરમણમ્=સર્વવિધાસત્યભાષણાદ્ વિનિવૃત્તિઃ, તથા—સર્વસ્માત્

સમસ્ત મૃષાત્રાદ સે વિરક્ત હોના, ૨ સમસ્ત અદત્તાદાન સે વિરક્ત હોના ઔર  
સમસ્ત બહિરાદાન સે વિરક્ત હોના (તણં સા મહામહાલિયા પરિમા  
કેમિસ્સ કુમારશ્રમણસ્સ અંતિણ ધર્મં મોચ્છા નિસમ્મ હટ્ટતુટ્ટં જામેવ દિસિં  
પાઞ્ઞમ્ભૂયા તામેવ દિસિં પહિગયા) ઇસ તરહ કેશિકુમાર શ્રમણ સે ચાતુ-  
ર્યામ ધર્મકા ઉપદેશ સુનકર ઔર હૃદયમેં ઉસે ધારણ કર વહ અતિવિશાલ પરિ-  
ષદા હૃષ્ટ તુષ્ટ યાવત્ હૃદયવાલી હોતી હુઈ જહાં સે આઈ થી વહાં પર પીઝી ચલી ગઈ.

ટીકાર્થ મૂલાર્થ કે હી અનુરૂપ હૈ. ચાતુર્યામ ધર્મકા ઉપદેશ ક્રિયા—જો  
ઇસકા તાત્પર્ય એસા હૈ કિ ચાતુર્યામ વાલે ધર્મ કા ઉપદેશ દિયા. સકલ પ્રાણિયોં  
કે પ્રાણોં કો વિયોજન (અલગ) કરને કે અનુકૂલ વ્યાપાર સે રહિત હોના  
ઇસકા નામ પ્રાણાતિપાત વિરમણ હૈ. ઇસી તરહ સમસ્ત પ્રકાર કે અસ-  
ત્યભાષણ કરને સે દૂર રહના—ઉસકા ત્યાગ કરના ઇસકા નામ મૃષાત્રાદ-

કત થવું. (૩) સમસ્ત અદત્તાદાનથી વિરક્ત થવું અને સમસ્ત બહિરાદાનથી વિરક્ત  
થવું. (તણં સા મહામહાલિયા પરિમા કેમિસ્સ કુમારશ્રમણસ્સ અંતિણ  
ધર્મં મોચ્છા નિસમ્મ હટ્ટતુટ્ટં જામેવ દિસિં પાઞ્ઞમ્ભૂયા તામેવ દિસિં પહિગયા)  
આ પ્રમાણે કેશિકુમાર શ્રમણથી ચાતુર્યામ ધર્મનો ઉપદેશ સાંભળીને અને હૃદયમા  
તેને ધારણ કરીને તે અતિ વિશાળ પરિષદા હૃષ્ટતુષ્ટ યાવત્ હૃદયવાળી થઈને ન્યાથી  
આવી હતી ત્યાં ફરી જતી રહી

ટીકાર્થ —મૂલાર્થ પ્રમાણે જ છે ચાતુર્યામ ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો એટલે કે ચાતુ-  
ર્યામવાળા ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો સકળ પ્રાણીઓનાં પ્રાણોને વિયુક્ત કરનાર જે વ્યાપાર  
(કાર્ય) હોય છે તેનાથી રહિત થવું એટલે કે કોઈ પણ પ્રાણીને કોઈ પણ રીતે પ્રાણ  
વિયુક્ત ન કરવું તે પ્રાણાતિપાત વિરમણ છે આ પ્રમાણે જ સમસ્ત પ્રકારના  
અસત્યાચરણથી દૂર રહેવું—અસત્યનો સર્વથા ત્યાગ કરવો તે મૃષાવાદ વિરમણ છે

‘तएष से’ इत्यादि—

टीका—एतत्त्वपस्थानानां व्याख्याय ‘गता, महद्देहं व्याख्यातपायमिति वा ११०।

(मृ०—तएषं से केसिकुमारसमणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे महद्देहमहालयाए परिसाए चाउज्जाम धम्म परिकहेइ, त जहा—  
सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं,  
सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं  
तएषं सा महद्देहमहालया परिसा केसिस्स कुमारसमणस्स अतिथ धम्म  
सोच्चा निसम्म जामेव दिंस पाउवन्थ्या तामेव दिंस पडिगया। सु १११।

छाया—ततः सख म केशिकुमारसमणः विप्राय सारधये तस्यां महा  
दिमहालयायां परिपदि वातुर्णम धर्मं परिगृह्यति, तत्राप्या—सर्वस्मात् प्राणातिपा  
ताद् विरमणम् १, सर्वस्मात् पृषावादाद् विरमणम् २, सर्वस्मात् भदचादानाद्  
विरमणम् ३, सर्वस्माद्बहिर्गादनाद् विरमणम् ४। ततः सख सा महापिम

‘तएषं से केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएषं से केसिकुमारसमणे) इसके बाद (केसिकुमारसमणे)  
केसिकुमार समणने (चित्तस्स सारहिस्स) बिन्न सारयि के किये  
(तीसे महद्देहमहालयाए) उस भवि विशास (परिसाए) परिपदा में (चाउ  
ज्जाम धम्म परिकहेइ) वातुर्णम धर्म का (परिकहेइ) पर्यण किया—उपदेश  
दिया (त जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण, सव्वाओमुसावायाओ वेरमण,  
सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमण सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमण)  
के वातुर्णम ये हैं—१ समस्त प्राणातिपात से चिरक (निवृत्त) होना, २

‘तएषं से केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएषं से केसिकुमारसमणे) त्पश्च ५५ केसिकुमार समणे  
(चित्तस्स सारहिस्स) बिन्न सारयि भाटे (तीसे महद्देहमहालयाए) ते भवि विशास  
(परिसाए) चत्विधाभां (चाउज्जाम धम्म परिकहेइ) वातुर्णम धर्मनी (परिकहेइ)  
प्रत्यक्षा करी ओटो के उपदेश को। (त जहा सव्वाओ पाणाइवायाओ  
वेरमण, सव्वाओ, मुसावायाओ वेरमण, सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमण,  
मव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमण) ते वातुर्णम धर्मनी विशेष विगत आ प्रमाणे  
छे—(१) समस्त प्राणातिपातकी विवृत्त (निवृत्त) भव (२) समस्त भूषावादी वि-

रोयामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्टेमि णं भंते । निग्गंथं  
पावयण, एवमेयं भंते ! निग्गंथे पावयणे, तहमेयं भंते ! निग्गंथे  
पावयणे अवितहमेयं निग्गंथे पावयणे, असदिद्धमेयं भंते ! निग्गंथे  
पावयणं, इच्छियमेयं भंते ! निग्गंथे पावयणे, पडिच्छियमेयं भंते !  
निग्गंथे, पावयणे, इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! निग्गंथे पावयणे, ज  
णं तुब्भे वदहत्तिकहुं वदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी  
—जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतए ब्रह्मे उग्गा भोगा जाव इब्भा  
इब्भपुत्ता चिच्चा हिरण्णं चिच्चा सुवण्णं, एवं धणं धन्नं बलवाहणं  
कोसं कोट्टागारं पुरं अंतेउरं, चिच्चा विउलं धणकणगरयणमणि-  
मोत्तियसंखसिलप्पवालसंतसारसावएज्जं, विच्छड्डित्ता विगोवइत्ता  
दाणं दाइत्ता परिभाइत्ता मुंडा भवित्ता अगारोओ अणगारियं पव्व-  
यंति, णो खलु अहं ता सचाएमि चिच्चा हिरण्णं तं चेव जाव पव्व-  
इत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खा-  
वइयं दुवालसविहं गिहिधम्म पडिवज्जित्तए । अहासुहं देवाणुप्पिया!  
मा पडिबंघं करेहि । तएणं मे चित्तं सारही केसिकुमारसमणस्स  
अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्म उवसंपज्जित्ता णं विहरइ । तएणं  
से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं वंदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता  
जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव पहारेत्थं गमणाए, चाउग्घंटे आसरहं  
दुहरइ, जामेव दिस्सि पाउब्भूए तामेव दिस्सि पडिगए ॥ सू० ११२ ॥

छाया—ततः खलु म चित्रः सारथिः केशिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिके  
धर्मं श्रुत्वा निशम्य दृष्ट्वा यावद्—हृदयः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिनं

अदत्तादानात्=सकसविषाभौर्याद् विरमण=विनिवृत्तिः, तथा-सर्वस्माद् बहि  
रादानाद्=भर्मोपकरणतिरिक्तपरिग्रहोपादानाद् विरमणम् । मैथुनविरमणस्य  
परिग्रहे पश्यान्तर्भावः, नाह अपरिगृहीता स्त्री परिमुच्यतेऽनो मैथुन-विर  
मणस्य महाव्रत न पृथगुपासमिति । उपपन्नत्वाद् अंगारधर्ममपि परिक  
रयति । ततः स्वस्त्य सा महाविमलालया परिपत कोशितः कुमारभमणस्य  
अन्तिके=समीपे धर्म भूत्वा सामान्यतः, निश्चय=विशेषतो ह्यवधारयत् । यस्या  
एव दिग्गः प्रादुर्भूता, तामेव दिग्ग प्रतिगता ॥ सू० १११ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारणी केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए  
धम्म सोद्धा निसम्म हट्ट जाव-हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता केसि-  
कुमारसमण तिक्कुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ वदइ, नमैसइ,  
वदित्ता नमसित्ता एव वयासी-सहामिणं भंसे । णिग्गथ पावयणं,

विमण है समस्तप्रकार के अदत्तादान से-भौर्बर्कमे से दूर रहना उसका  
ग्राह करना इनका नाम अदत्तादानविरमण है, तथा भर्मोपकरण से अतिरिक्त  
परिग्रह का त्याग क ना इसका नाम बहिरादान विरमण है । मैथुन विर  
मण की यहाँ स्वतंत्ररूप से धर्म नहीं माना गया है क्योंकि उसका  
अन्तर्भाव परिग्रह में ही हो जाता है । क्यों कि जो स्त्री भोग के काम  
आती है वह अपरिगृहीत हुई नहीं जाती है किन्तु परिगृहीत हुई ही जाती  
है । उपपन्नत्व से उन्होंने आंगारधर्म का भी कथन किया है । इस तरह केसि  
कुमार भमण के पास धर्म का उपदेश सामान्यरूप से सुनकर और उसे  
विशेषरूप से हृदयमें धारण करके वह अतिविमलाल परिपदा जहाँ से आई थी  
वहाँ पर पीछी चली गई ॥ १११ ॥

समस्त प्रकारका अदत्तादानभी-भौर्बर्कभी, दूर रहने-ते कर्मने त्याग करने-ते अद  
त्तादान विरमण है तमज भर्मोपकरणतिरिक्त परिग्रहने त्याग ते बहिरादान विरमण  
है मैथुन विरमणने अन्तर्गत स्वतंत्ररूपसे धर्मने निर्देश क्यो नभो केमके तेने परि  
ग्रहमा व अन्तर्भाव करवाया आये ॥ केमके त् स्त्री भोग भाटे आवे है ते  
अपरिगृहीत बर्धने नाह, पण परिगृहीतना इत्थं व आवे है, उपपन्नत्वात् तेने  
स्त्रीने आंगार धर्म त् पण कथन क्यु है आ प्रभावे सामान्यरूपसे केसिकुमार भमण  
पात्तये धर्मोपदेश आकथाने आने तेने अनिषिद्धपणा तुल्यमा प्रारब्ध करीने ते अनि  
षिद्ध प परिग्रह करवायी आये कती त्या पायी गती रही ॥ १११ ॥

रोयामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं, अब्भुट्टेमि णं भंते । निग्गंथं  
पावयणं, एवमेयं भंते ! निग्गंथे पावयणे, तहमेयं भंते ! निग्गंथे  
पावयणे अवित्तहमेयं निग्गंथे पावयणे, असंदिद्धमेयं भंते ! निग्गंथे  
पावयणं, इच्छियमेयं भंते ! निग्गंथे पावयणे, पडिच्छियमेयं भंते !  
निग्गंथे, पावयणे, इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! निग्गंथे पावयणे, ज  
णं तुब्भे वदहत्तिकहुं वदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी  
—जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए वहवे उग्गा भोगा जाव इब्भा  
इब्भपुत्ता चिच्चा हिरण्णं चिच्चा सुवण्णं, एवं धणं धन्नं बलवाहणं  
कोसं कोट्टागारं पुरं अंतिएउरं, चिच्चा विउलं धणकणगरयणमणि-  
मोत्तियसंखसिलप्पवालसंतसारसावएज्जं, विच्छड्डित्ता विगोवइत्ता  
दाणं दाइत्ता परिभाइत्ता मुंडा भवित्ता अगारोओ अणगारियं पव्व-  
यंति, णो खलु अहं ता सचाएमि चिच्चा हिरण्णं तं चेव जाव पव्व-  
इत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खा-  
वइयं दुवालसविहं गिहिधम्म पडिञ्जित्तए । अहासुहं देवाणुप्पिया!  
मा पडिबंध्यं करेहि । तएणं मे चित्तं सारही केसिकुमारसमणस्स  
अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्म उवसंपजित्ता णं विहरइ । तएणं  
से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता  
जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, चाउग्घंटे आसरहं  
दुहरुइ, जामेव दिसिं पाउव्भूए तामेव दिसिं पडिगए ॥ सू० ११२ ॥

छाया—ततः खलु म चित्रः सारथिः केशिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिके  
धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्ट यावद्—हृदयः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिन



कुमारसमण त्रिकुत्वा आदक्षिण प्रदक्षिण करोति, वन्दते नमस्यति, यदि  
 त्वा नमस्यित्वा एवमवादीत-अहमि धं लु भवत ! नैर्ग्रन्थ 'प्रवचनम्,  
 प्रत्येमि' म्वल्लु, भवन्त ! नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, रोषयामि म्वल्लु भवन्त ! नैर्ग्रन्थ  
 प्रवचनम्, अभ्युत्तिष्ठे म्वल्लु भवन्त ! नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, एवमतद् भवन्त !  
 नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, तथेयैतद् भवन्त ! नैर्ग्रन्थ प्रवचनम् अविशयमेतद् भवन्त !  
 नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, असदिग्धमेतद् भवन्त ! नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, इष्टमेतद्

‘त एव से चित्ते सारही इत्यादि।

सुत्रार्थ—(त एव) इसके बाद (से चित्ते सारही) वह चित्र सारथि  
 (केसिस्स कुमारसमणस्स अति ए वम्मं सोळा निसम्म) केशीकुमारभमण  
 के पास धर्म को छुनकर और उसे हृदय में अवबुधकर (इह जाय हिमए) इति  
 केशि कुमारसमण त्रिकुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ और उठकर उसने  
 केशिकुमारभमण की तीन आदक्षिणप्रदक्षिणा की (बंदइ नमसइ) वन्दना की  
 नमस्कार किया (ब दिता नमसिता एव वयासी) वन्दना नमस्कार कर फिर  
 वह इस प्रकार बोला—(सहामि धं भते ! निग्गय पावययं रोयामि णं  
 भते ! निग्गय पावयण अग्गुहेमि ण भते ! निग्गय पावयण एवमेय  
 भते ! निग्गय पावयण अस दिदमेय भते ! निग्गय पावयणं हे भवत !  
 मैं निर्ग्रन्थप्रवचन की भद्रा करता हूँ हे भवन्त ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन की  
 प्रतीति करता हूँ, हे भवन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अपनी रुचि का

‘त एव से चित्ते सारही’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(त एव) त्वा एव (से चित्ते सारही) वे चित्र सारथि (केसिस्स  
 कुमारसमणस्स अति ए वम्मं सोळा निसम्म) केशीकुमार भमण की आयेथी  
 धर्म आक्षिणने जाने, तेने इहमभां पावय करीने (इह जाय हिमए) इति  
 सत्तुष्ट भये भवत (उद्वाए उद्देइ) भवतानी भये उले भये (उद्दिता केशि कुमार  
 समण त्रिकुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ) जाने उले भवने तेले केशीकुमार  
 भमण की त्रय पाव आदक्षिण प्रदक्षिणा करी (बंदइ नमसइ) वन्दना करी नमस्कार  
 क्यो (ब दिता, नमसिता एव वयासी) वन्दना करीने ते आ प्रभाये कहेबा लाओ—  
 (सहामि ण भते ! निग्गय पावयण रोयामि ण भते ! निग्गय पावयण  
 अग्गुहेमि णं भते ! निग्गय पावयण एवमेय भते ! निग्गय पावयण  
 अस दिदमेय भते ! निग्गय पावयणं हे भवत ! हे निर्ग्रन्थ प्रवचनभां भद्रा राखु  
 हे भवत ! हे निर्ग्रन्थ प्रवचनभां प्रतीति राखु हे भवत ! हे निर्ग्रन्थ प्रवचनने

भदन्त ! नेग्रन्थं प्रवचनम्, प्रतीष्टमेतद् भदन्त ! नैग्रन्थं प्रवचनम् इष्ट-  
प्रतीष्टमेतद् भदन्त ! नैग्रन्थं प्रवचनम् यत् खलु यूयं वदथेति कृत्वा वन्दते  
नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—यथा खलु देवानुप्रियाणाम्  
अन्तिके वहव उग्रा भोगा यावत् इभ्या इभ्यपुत्रात्यक्त्वा हिरण्यं त्यक्त्या सुवर्णम्  
एवं धनं धान्यं बलं वाहनं कोठां कोष्ठागारं पुरम् अन्तःपुर, त्यक्त्वा

विषय बनाता हूं. हे भदन्त ! मैं इस निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार करता  
हूं. हे भदन्त ! आप जैसा इस निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रतिपादन करते हैं,  
वह वैसाही है. हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है. हे भदन्त !  
यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सन्देह रहित है। (इच्छियमेय भंते ! निगंथे पावयणे,  
पडिच्छियमेयं भंते निगंथे पावयणे) हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्ट है,—  
हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन प्रतीष्ट है। (इच्छियपाडिच्छियमेयं भंते !  
निगंथे पावयणे) हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्टप्रतीष्ट दोनोंरूप है.  
(जं णं तुव्मे वदह, त्ति कट्ठे वदह, नमसह) जैसा कि आप कहते हैं इस  
प्रकार कहकर उसने उसको वन्दना की नमस्कार किया. (वदिता नमंसित्ता  
एवं वयासी) वन्दना नमस्कार कर फिर उसने ऐसा कहा (जहाणं देवानु-  
प्रियाणं अतिए वहवे उग्रा, भोगा जाव इव्भा इव्भपुत्ता चिच्चा हिरण्यं,  
चिच्चा सुवर्णं, एवं धण धन्नं बलं वाहनं कोसं कोष्ठागारं पुरं अन्ते  
उरं) आप देवानुप्रिय के पास जिस प्रकार अनेक उग्र भोग यावत् इभ्य

पोतानी रुचिने विषय बनाछुं हे भदन्त ! आ निर्ग्रन्थप्रवचनने स्वीकाइ छु.  
हे भदन्त ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचननुं आप श्री ने प्रमाणे प्रतिपादन करी रह्या छः  
अक्षरथ यथावत् छे हे भदन्त ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य छे, हे भदन्त ! आ  
निर्ग्रन्थ प्रवचन सन्देह रहित छे. (इच्छियमेयं भंते ! निगंथे पावयणे, पडि-  
च्छियमेयं भंते निगंथे पावयणे) हे भदन्त ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्ट छे, हे  
भदन्त ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन प्रतीष्ट छे (इच्छियपाडिच्छियमेयं भंते ! निगंथे  
पावयणे) हे भदन्त ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्ट अने प्रतीष्ट यन्ने छे. (जं णं  
तुव्मे वदह, त्ति कट्ठे वदह नमसह) ने प्रमाणे आप श्री कही रह्या छे ते प्रमाणे  
न छे आभ कहीने तेणे वदना तेभज नमस्कार कर्या. (वदिता नमंसित्ता एवं-  
वयासी) वदना तेभज नमस्कार करीने तेणे तेयोश्रीने आ प्रमाणे कट्ठुं—(जहाणं  
देवानुप्रियाणं अतिए वहवे उग्रा, भोगा जाव इव्भा इव्भपुत्ता चिच्चा  
हिरण्यं. चिच्चा सुवर्णं. एवं धण धन्नं बलं वाहनं कोसं कोष्ठागारं पुरं  
अन्ते उरं) आप देवानुप्रियनी पासे नेभ जेथ, भोग यावत् इभ्य अने इभ्यपुत्रो

विपुल घनकनकरत्नमणिमौक्तिकशृङ्गशिलाप्रवालसंसारस्थापतेषु विच्छिन्नं  
विंगोप्य दान दत्त्वा, परिमाज्य सुण्या भूत्वा अगारात् अनगारितां 'प्र  
मन्ति, नो म्लु अह तासु शक्नोमि त्यक्त्वा हिरण्य तदेव यावत् प्रमन्तिवुम् अह  
सल्लु देवानुप्पियाणम् अन्तिक्के पञ्चाणुमतिकं सप्तशिलाप्रतिकं द्वादशविपं  
पृथिघमं प्रतिपणुम् । यथासुख देवानुप्पिय । मा प्रतिमन्थ कुरु । ततः

और इन्में पुन हिरण्य को छोड़कर, सुवर्णको छोड़कर एव घन घान्य  
मल, घादन, कोष्ठ, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर को (बिस्सा) छोड़कर  
(विच्छन्न वज्रकणगरयणमणिमोक्षियमन्त्रिलप्पवालसंसारसावपणं, विच्छ  
द्विज्मा, विंगोवह्वा, दाण दाइसा) तथा विपुल, घन, कनक, रत्न मौक्तिक  
संल सिल्लाप्रवाल एवं संसारस्थापतेय को छोड़कर तथा उन सबको  
विच्छाद्य प्रमाण में दीन द्रवि आदिकों के लिये विनरित कर (परिमाइसा)  
पुत्रादिकोंमें विमक्त (विमाण) कर (मु डा मविष्ठा अगाराओ अगगारिय पन्वय ति)  
बाद में मुद्रित होकर के अगार अवस्था को पारण करते हैं (नो म्लु अह  
ता स वाएमि, विष्वा हिरण्यं त येव जाव पम्वरत्तए) बैसा मैं  
हिरण्य आदि को छोड़कर दीक्षा पारण करने के लिये समर्थ नहीं हूँ,  
(अहं न देवानुप्पियाण अतिप पञ्चाणुम्वइय सप्तसिक्खवालइय बुबाससविह  
गिहिघम्म पडिबज्जितए) मैं तो आप देवानुप्पिय के पास पाँच अनुमत  
बाजे एव साततशिला वतवाजे इस तरह १२ प्रकार के पृथ्व्य धर्म को  
पारण कर सकता हूँ । (अहामुह देवानुप्पिया । मा पडिबय करेहि) आप

द्विपथने त्याग करीने अने घन, घान्य, जण वाहन, भेधे भेधगाइ, पुर अने  
अन्तःपुर-स्ववास (बिस्वा) ने त्याग करीने ( विच्छन्नवज्रकणगरयणमणिमोक्षिय-  
संलसिल्लप्पवालसंसारसावपणं, विच्छद्विज्मा, विंगोवह्वा, दाण दाइसा  
तेमए विपुल घन, कनक, रत्न, मौक्तिक शृङ्ग शिला प्रवाल अने संसार स्थापतेय  
ने त्याग करीने तेम ए पुञ्ज मञ्जुमां दीनद्रवि नजेरे वेओने आपीने  
(परिमाइसा) पुत्रादिकोंमें नदेयीने (मु डा मविष्ठा अगाराओ अगगारिय  
पन्वयति) त्वाए जाइ मुद्रित अर्धने अगार अवस्थाभांथी अनगार अवस्थाने पारण  
करे छे (नो म्लु अह ता स वाएमि, विष्वा हिरण्यं त येव जाव पम्वरत्तए)  
तेम हूँ द्विपथ नजेरेने त्याग करीने दीक्षा पारण करेयां असमर्थ हूँ (अहं न  
देवानुप्पियाण अतिप पञ्चाणुम्वइय सप्तसिक्खवालइय बुबाससविह गिहि  
घम्म पडिबज्जितए) आपथी पासेथी हूँ तेम इअ पाँच अनुमतवाण्य अने  
अने सात शिवामतवाण्य काम १२ प्रकारना पृथ्व्य धर्मने स्वीकारी शत्रु हूँ  
(अहामुह देवानुप्पिया । मा पडिबय करेहि) आप देवानुप्पियने न-आथंभा

खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके पञ्चाणुव्रतिकं यावद्  
गृहिधर्मम् उपसम्पद्य खलु विहरति । ततः खलु स चित्रः सारथिः केशि-  
कुमारश्रमणं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव चातुर्घटः अश्व-  
रथस्तत्रैव प्राधारयद् गमनाय, चातुर्घटम् अश्वरथं दूरोहति, यस्या एव  
दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ सू० ११२ ॥

टीका—‘त एणं से’ इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिके=

देवानुप्रिय को जिस प्रकार से' सुख हो वैसा करो—परन्तु त्रिलम्ब मत  
करो (तएण से चित्ते सारही केसिकुमारसमणस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं  
जाव गिहिधम्मं उवसपज्जित्ताणं विहरइ) इसके बाद उस चित्र सारथि  
ने केशिकुमार श्रमण के पास पांच अणुव्रतों वाले एवं सात शिक्षाव्रतां  
वाले गृहस्थ धर्मको अंगीकार कर लिया (तएणं से चित्ते सारही केसि-  
कुमार समणं वंदइ, नमसइ वंदित्ता नमसित्ता जेणेव चाउग्घटं आसरहे  
तेणेव पहारेत्थ गमणाए, चाउग्घटं आसरहं दुरुहइ) इसके बाद उस  
चित्र सारथिने केशिकुमार श्रमण को वन्दना की नमस्कार किया, वंदना  
नमस्कार कर उसने जहां चातुर्घट अश्वरथ रखा था उस ओर जाने का  
निश्चय किया. वहां जाकर वह उस पर चढ़ गया. (जामेव दिस्सिं पाउ  
व्वभूए, तामेव दिस्सिं पडिगए) और जिस दिशा से होकर आया था  
उसी दिशा तरफ चला गया।

टीकार्थ—इसके बाद चित्र सारथी केशीकुमार श्रमण के पास

सुप्त थाय ते क्खे पणु विलण न क्खे. (त एणं से चित्ते सारही केसिकुमार-  
समणस्स अतिए पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं उवसपज्जित्ताणं विहरइ)  
त्यार पछी ते चित्र सारथिणे केशिकुमार श्रमणु पासेथी पांच अणुव्रतोवाणा अने  
सात शिक्षाव्रतोवाणा गृहस्थधर्मने स्वीकारी लीधे. (त एणं से चित्ते सारही  
केसिकुमारसमणं वंदइ, नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता जेणेव चाउग्घटं आस-  
रहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, चाउग्घटं आसरहं दुरुहइ) त्यार बाद ते चित्र  
सारथिणे केशिकुमार श्रमणुने वंदना करी, नमस्कार कर्था, वंदना तेभज नमस्कार करीने  
तेणु न्यां चातुर्घट अश्वरथ डतो ते तरइ जवानो निश्चय कर्था त्या जधने ते रथ  
पर सवार थध गयो. (जामेव दिस्सिं पाउव्वभूए. तामेव दिस्सिं पडिगए) अने  
जे दिशा तरइ थधने ते आव्यो डतो ते ज दिशा तरइ पाछे जतो रह्यो.

टीकार्थ—त्यार बाद चित्रसारथि केशिकुमार श्रमणुनी पासे धर्म सालणीने

ममीषं यम धुन्वां सामां यत्, निशम्य=विशेषतो हृद्यभाष्यं दृष्ट्यावदहृद्यः= हृष्टपुष्पविमानदिताः प्रीतिमना परममौमनस्यिताः हर्षवशाद्विषयवृद्धदयः उत्पन्ना=उत्पन्नान्नानया उत्पिष्टति उत्पन्न केचिन कुमारभ्रमण श्रिकृत्स्न= चारत्रयम् आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, पदमे नमस्यति, यदित्या नमस्यत्या एवम्=रहस्यमात्रप्रकारेण प्रयादीत=उक्तवान्-हे भदन्त ! स्वप्न=निग्रन्थन भव धामि=इवमेवनेवास्मीति भ्रदानविषयीकरोमि नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, हे भदन्त ! प्रयमि=प्रतीतिविषयीकरोमि न्वल्लु नैर्ग्रन्थ प्रवचनम् हे भदन्त ! रीषयामि=रुचिविषयीकरोमि स्वल्लु नैर्ग्रन्थ प्रवचनम् हे भदन्त ! अभ्युचिष्ठे=अभ्युपगच्छामि न्वल्लु नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, हे भदन्त ! यथा स्वल्लु मयङ्गिः प्रति पादितम्, एतद् नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, एवमेष, हे भदन्त ! यथा भवन्तः प्रति पादयन्ति, एतद् नैर्ग्रन्थ प्रवचन तथैव=तत्पमेवास्ति, हे भदन्त ! एतद् नैर्ग्रन्थ प्रवचनम् अवितथ=सत्यम् अत एव हे भदन्त ! एतद् नैर्ग्रन्थ प्र

यम सुनकर और उसे विशेषरूप से मपने हृद्य में पारण कर हृष्ट सुष्ट और विष में मान द सपन्न हुआ उसके मनमें गाढ़ प्रीति जग गई, वह परम सौमनस्यित हो गया हृद्य प्रपार हर्ष के कारण उसका हर्षित होने लगा वह उसी समय न्हा हुआ, और केशिकुमार भ्रमण को उसने तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण पूषक वन्दना की नमस्कार किया वन्दना नमस्कार कर फिर उसने ऐसा कहा-हे भदन्त मैं इस निग्रन्थ प्रवचनको यह ऐसा हो है, इस रूपसे अपनी भद्रा का विषय बनाता हूं, हे भदन्त ! मैं इस निग्रन्थप्रवचन को अपनी प्रतीति में लाता हूँ हे भदन्त ! मैं इस निग्रन्थ प्रवचनको अपनी रुचि में आकृष्ट करता हूँ और मैं हे भदन्त ! इसे स्वीकार भी करता हूँ हे भदन्त ! जैसा आपने कहा है यह निग्रन्थ प्रवचन ऐसा ही है। यह निग्रन्थ प्रवचन अवितथ-सत्यया सत्यरूप है,

जने तेने विशेषरूपकी ब्रह्मभा अवधारित करीने हृष्टसुष्ट कथे जने तेने विष जलीय मानाइन यमु तेना मनमा लीप्र प्रीति उत्पन्न यध ते परमसौमनस्यित यध जये, तेने हृद्य अपर हृद्यकी वरजोग यध जय ते उत्तम उये कथे जने केशिकुमार भ्रमणकी तेने आदक्षिण प्रदक्षिणापूषक वन्दना करी नमस्कार किया वन्दना तेमय नमस्कार करीने पछी तेने आ प्रभावे हर्ष-दे लावत। हूँ आ निग्रन्थ प्रवचन पर ये केपु न हूँ आ प्रभावा ब्रह्मादीत यध उ दे लावत। आ निग्रन्थ प्रवचन पर न अपेक्षयते प्रतीति यतउ उ दे लावत। आ निग्रन्थ प्रवचनने हूँ पोतानी रुचि वरक यकज जने आकृष्ट कर उ जने दे लावत। आने हूँ स्वीकृष्ट पव उ दे लावत। आपकीजे के प्रभावे हर्ष उ ते प्रभावे न आ निग्रन्थ प्रवचन उ आ निग्रन्थ प्रवचन अवितथ-सत्यया-सत्यरूप छे, जेधी न जे



टित चेति द्विविधं सुवर्णम्, रत्नकर्केतनादिकम्, मणिः=पद्मरागादिरूपः, मौक्तिक=मुक्ताफलः, शङ्ख-रत्नविशेषः, शिलाप्रवालः=चिद्रुमः सत्सारं स्वापतेयं सद्=पितृपितामहादिपरम्परास्वरूपेण विद्यमानं सारं=प्रधानं यत्, स्वापतेयं=मणिरत्नादिकं द्रव्यं यत् एतेषां समाहारस्तत्,=घनभायादि सत्सारं स्वापतेयान्तं सर्वं विषयं=भावतः परित्यज्य, विगोप्य=तानि सर्वाणि प्रकटीकृत्य दानं दश=दीनदरिद्रादिभ्यो वितीर्य, परिभाज्य=पुत्रादिषु विभज्य, मुष्ट्या भूत्वा अगारात् अन्तगारितां प्रवर्जित=दीप्तां वृद्धन्ति, नो सद्य मदन्तः । अहं यावत् शक्नोमि=समर्थोऽस्मि त्यक्त्वा हिरण्यं, तदेष यावत्=सुवर्णं दिकं सर्वं त्यक्त्वा-इत्यर्थः, प्रवर्जितुम्=दीप्तां वृद्धितुम् । अहं सद्य देवानुमिषाणाम् अन्तिक=ममोपे पठबाणुप्रतिकं पञ्च=पञ्चसंख्यकानि अनुव्रतानि=स्थूलात् माणातिपाठात् विरमणम् १, स्थूलात् सुपाषाडात् विरमणम् २, स्थूलात्

दोनो प्रकार के सुवर्ण को, कर्केतनादिक रत्नका, पद्मरागादिकरूप मणियों को, मुक्ताफलों को, रत्नविशेषरूप शङ्खको, शिलाप्रवालचिद्रुम को, सत्-पिता पितामह आदिकों की परम्परा रूप से विद्यमान सारप्रधान मणिरत्नादिकरूप स्वापतेय को, भावतः छोड़ करके, तथा प्रत्यक्षरूप में इन सबको दीन दरिद्रादिकों को दान देकर, एवं पुत्रादिकों में इ-ह विभक्त करके अर्थात् पुत्रादिकों को घन मादिका भाग देकर वृद्धित होकर अगारावस्था से परे हो दीप्ता प्रारण करते हैं, मैं इस प्रकार की परिस्थिति से युक्त हो कर-अर्थात् सुवर्णादिक सब का परित्याग कर भागवती, दोहा प्रारण करने में अपने आपको क्षति संपन्न नहीं मान रहा हूँ-असमर्थमान रहा हूँ भल भाग दशानुमिष के पास मैं आशंक व्रतों को पारण करना चाहता हूँ-बल्क ऐसी ही इस समय वृद्ध में क्षति है अर्थात्-स्थूल माणातिपाठ

एतन्ने पद्मराज वनेरे इय मज्झिमोने, मुक्ताहोने रत्न विशेष यत्नने, शिलाप्रवाल चिद्रुमने सत्-पिता पितामह वनेरेनी परपलायी विद्यमान सार प्रधान-मणिरत्न वनेरे इय स्वापतेयने भावात्ता (अन्तरनी धम्मपली ७) त्यल्लने तेमज्झ प्रथमपक्षमां दीन इदिह वनेरेने दानमां आपनिं अने पुत्रादिहोमां विभाजित करिने जेट्ठे के पुत्रादिहोने धन वनेरेना आज आपिने सुदित भवने-अजगलवरेयाधी पर जेनी कामवती दीक्षा धारण करे छे. हुं येतानी जतने आनी परिस्थितिधी मुक्त वाने जेट्ठे के संपूर्ण वनेरे जधी वस्तुजोना तोज करिने अजगली दीक्षा धारण करवाभां हुं असमर्थता अतुलनी रह्यो छे जेधी आप देवानुमिष भसिधी हुं आशंक व्रतोने धारण करवा धम्म १३ छे सभवा भाषाभां आटली ७ शक्ति छे जेट्ठे के जेभां (१) रत्न

अदत्तादानाद् विमगम् ३, स्वदारसन्तोषः ४, ईच्छापरिमाणः ५, इति पञ्चा-  
णुव्रतानि तानि सन्ति यस्मिंस्तम्, तथा-सप्तशिक्षाव्रतिक-स-  
प्तशिक्षाव्रतानि यस्मिन् दिग्व्रतम्, १ उपभोगपरिभोगपरिमाणम् २, अनर्थदण्डविर-  
मणम् ३, सामायिकम् ४, देशावकाशिकम् ५, पौषधोषवासः ६,  
अतिथिसंविभागः, ७ इति सप्तशिक्षाव्रतानि तानि सन्ति यस्मिंस्तम्,  
इत्येव द्वादशविधं गृहिधर्मं प्रतिपत्तुं=स्वीकृतुं शक्नोमि । इत्थं  
चित्रसारथेर्वचनं श्रुत्वा केशिकुमारश्रमणः प्राह-हे देवानुप्रिय !  
यथा ते सुखं भवेत्तथा कुरु, अत्र अवश्यकर्तव्यं कार्यं प्रतिबन्ध=विलम्ब-  
मा कुरु-इति ! ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके  
पञ्चाणुव्रतिकं यावद् गृहिधर्मम् उपगम्य=स्वीकृत्य विहरति । ततः खलु

से विरमण, २ स्थूलमृपावाद से विरमण, ३ स्थूलअदत्तादान से विरमण,  
४ स्वदारसन्तोष, और ५ ईच्छापरिमाण ये पांच अणुव्रत हैं जिसमें ऐसे तथा  
१ दिग्व्रत, २ उपभोगपरिभोगपरिमाण, ३ अनर्थदण्डविरमण, ४ सामायिक, ५ देशा-  
शिक, ६ पौषधोषकापवास, ७ अतिथि संविभाग, एवं ये सात शिक्षाव्रत हैं जिसमें  
ऐसे गृहिधर्म को स्वीकार करने की मुझ में शक्ति है इसलिये इसे ही मैं  
धारण करना चाहता हूँ-इसका विशेष वर्णन औपपातिक-सूत्र में आनन्द  
श्रावक के प्रकरण में देखना चाहिये । इस प्रकार चित्र सारथि के वचन-  
कथन को सुनकर के केशिश्रमणने उससे कहा-हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें  
सुख हो-वैसा करो परन्तु इस अवश्यकर्तव्य कार्य में ढील मत करो इस  
प्रकार केशिकुमारश्रमण का हितविधायक वचन सुनकर चित्र सारथिने  
उनके पास पांच अणुव्रतोंवाले एवं सात शिक्षा व्रतों वाले गृहिधर्म को स्वीकार

प्राणायामपातथी विरमण, (२) स्थूल भृषावाहथी विरमण (३) स्थूल अदत्तादानथी विरमण  
(४) ईच्छा परारमण आ पाये आणुव्रतो तेभ्य (५) दिग्व्रत, (६) उपभोग परि-  
भोगपरिमाण, (७) सामायिक (८) देशावकाशिक (९) पौषधोषवास, (१०) अतिथि-  
संविभाग अने (११) अनर्थ दण्ड विरमण आ सात शिक्षाव्रतो छियेवा गृहिधर्मने  
स्वीकारवा भाटे हु तैयार छुं. आतुं विशेष वर्णन औपपातिक सूत्रना आनन्द  
श्रावक प्रकरणमां करवामां आण्युं छि. आ प्रमाणे चित्रसारथीतुं कथन सांख्यीने  
केशिकुमार श्रमणु तेने उछुं-‘हे देवानुप्रिय ! तमने जेभा सुण थाय तेम करे पणु  
आ आवश्यक कर्तव्यमां उये वार करे नछि’ आ प्रमाणे केशिकुमार श्रमणुतुं छित  
विधायक वचन सांख्यीने चित्र सारथिजे तेज्योश्री पासेथी पाय आणुव्रतोवाणा तेभ्य  
सात शिक्षा व्रतवाणा गृहिधर्मने स्वीकारी दीधो त्याग्याद चित्रसारथिजे ते केशिकुमार



स चित्र सारणिः कश्चिन्मार्गमण वदते नमस्त्यति, वन्दित्वा नमस्त्यत्वा  
यत्रैव चावृष्टम् अन्वयः स्तैव प्राधारयदन्निधयमकरोद्गमनायन्गत्तुमिति ।  
अगत्वा चावृष्टम् अन्वयः वृत्तवृत्ति, वृत्तवृत्ति यस्यादिपः प्रादुर्भूतः, तामेव  
दिशः प्रतिगत इति ॥ सू० ११२ ॥

। मूलम्—तएणं से चित्ते सारही समणोवासए जाए अहिगय  
जीवाजीवे उवल्लुधपुण्णपावे आसवसवरनिज्जरकिरियाहिगरणधध  
मोक्खकुसले असहिज्जे देवासुरणागजक्खरक्खमकिन्नरक्किपुरिसगल्ल  
गधव्वमहोरगाईहिं देवगहेहिं निग्गथाओ पावयणाओ अणइक्कमणि  
ज्जे, निग्गथे पावयणे णिस्सकिए णिक्कखिए णिव्वित्तिगिच्छे लद्धट्ठे  
गहियट्ठे पुच्छियट्ठे अहिगयट्ठे विणिच्छियट्ठे अट्ठिंमज्जेमाणुरागरत्ते  
'अयमाउसो । णिग्गथे पावयणे अट्ठे, अय परमट्ठे, सेसे अणट्ठे'  
कसियफलिहे अश्रययवुवारे चियततेउरप्पवेसे चाउवसट्ठमुद्धिपुण्ण  
मोत्तिणासु पडिपुण्णं पोसहं सम्म अणुपालेमाणे समणे णिग्गथे, फासु  
एसणिज्जेणं असणपाणत्ताइमसाइमेणं पीठफलगसेज्जासधारणं वत्थ  
पडिग्गहक्कवल्लपायपुल्लणेणं ओसहभेसज्जेणं पडिल्लामेमाणे, वट्ठहिं-  
सीलव्वययुणवेरमणपोसहोववासेहिय अप्पाणं भावेमाणे जाइ  
त्तत्थ रायकज्जाणि य जाव राजवधद्वाराणि य ताइ जियसत्तेणा  
रण्णा सद्धि सयमेव पच्चियेक्खमाणे पच्चियेक्खमाणे विहरइ ॥ सू० ११३ ॥

कर लिपा इसके बाद चित्रसारथिने उन कश्चिन्मार्गमण को वन्दना की-  
नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके फिर वह जहाँ चावृष्टम् अन्वय  
रहता हुआ था वहाँ पर आया वहाँ आकर वह उसपर बैठ गया और इस  
प्रकार यह वहाँ से आया था वहाँ से होकर पापिम चला गया ॥ सू० ११२ ॥

अभयनी पदव्य करी नमस्कार करी, वन्दना नमस्कार करीने पड़ी ते वहाँ चावृष्टम् अ  
अन्वय वदते तहाँ गये तहाँ पहुँचीने ते तेमाँ जेसी श्रेयो अने आ प्रभावे ते  
अन्वयमी आये। वदते तहाँ जहाँ आये वदते ॥ सू० ११२ ॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः श्रमणोपासको जातः अभिगत जीवाजीव उलब्धपुण्यपाप आस्रवमंचरनिर्जराक्रियाऽधिकरणबन्धमोक्षकुशलः, असाहाय्यो देवासुरनागयक्षराक्षसकिन्नरकिंपुरूपगच्छगन्धर्वमहोरगादिभिः देवगणैः निर्ग्रन्थात् प्रवचनात् अनतिक्रमणीयः, निर्ग्रन्थे प्रवचने निश्शङ्कितो निष्कारिणीतो निर्विचिकित्सो लब्धार्थो गृहीतार्थः पृष्टार्थः अर्षि-

‘तएणं से चित्ते सारहो’ इत्यादि।

सूत्रार्थ—(तएणं से चित्ते सारही समणोवाप्तए जाए) अथ वह चित्र सारथि श्रमणोपासक हो गया. (अहिगय जीवाजीवे, उल्लब्धपुण्यपापे, आस्रवसंचरनिज्जरकिरियाहिगरणबंधमोक्षकुसले) जीव और अजीव तत्त्व के वह ज्ञाता बन गये, पुण्य एवं पाप के स्वरूप को जानने लगे, आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध और मोक्ष इनमें कुशल हो गये. अर्थात् इनके स्वरूप का उसे बोध हो गया. (असहिज्जे) कुतीर्थियों के कुतर्क के खण्डन में पर की सहायता की अपेक्षा वाला नहीं रहा (देवासुरनागजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधवमहोरगाईहि देवगहेहि निग्गयाओ पावयणाओ अणइक्कगणिज्जे, निग्गये पावयणे निस्स किए) देवों से असुरों से नागों से, यक्षों से राक्षसों से, किंपुरुषों से, गरुडों से, गंधर्वों से, महोरगों से—इन सब देवगणों से—वह निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा आदि से, अनतिक्रमणीय हो गया अर्थात् ये सब देवगण भी उसे निर्ग्रन्थप्रवचन से थोड़ा सा भी विचलित करने के लिये समर्थ नहीं हो सके. वह (निग्गये पाव-

‘तए ण से चित्ते सारहो’ इत्यादि।

सूत्रार्थ—(तए ण से चित्ते सारही समणोवाप्तए जाए) इसे चित्र सारथि श्रमणोपासक थोड़ा गये। (अहिगयजीवाजीवे, उल्लब्धपुण्यपापे, आस्रवसंचरनिज्जरकिरियाहिगरणबंधमोक्षकुसले) एवं अने अने। तत्त्वों के ज्ञाता थोड़ा गये। पुण्य अने पापना स्वरूपने के जानना लाये, आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकारण, बंध अने मोक्षमा के कुशल थोड़ा गये। ओट्टे के आ अधाना स्वरूपतु ज्ञान तेने थोड़ा गये (असहिज्जे) कुतीर्थियों के कुतर्कना भंडनमा तेने जीवनी महनी अपेक्षा न रही. (देवासुरनागजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधवमहोरगाईहि देवगहेहि निग्गयाओ पावयणाओ अणइक्कगणिज्जे, निग्गये पावयणे निस्स किए) देवाथी, असुरेथी, नागेथी, यक्षेथी राक्षसेथी किन्नरेथी किंपुक्षेथी गरुडेथी गंधवेथी महोरगेथी—आ अधा देवगणेथी ते निग्रन्थ प्रवचन पर अतीव श्रद्धा के लीये अनति भण्णिय थोड़ा गये। ओट्टे के आ अधा देवगणे पणु तेने निग्रन्थ प्रवचन परथी जराये विचलित करी

गनार्थो विनिश्चितार्थः अस्थिमज्जामेमानुरागरस्त - 'इदम् आयुष्मन् ! नैत्रं न्य  
प्रवचनम् अर्थ', अथ परमार्थः, 'शेषम् अनर्थ' उच्छिष्ट-स्फाटिकाः इमा  
इत्युद्धारः। प्रीतिफरान्त पुरसृष्टप्रवेशा चतुर्दश्यष्टस्युद्दिष्टपौणमासीषु प्रतिपूर्णे

यणे विस्सकिण) ऐसा निर्ग्रन्थप्रवचन में निश्चितगुण से युक्त हो गया (जिह्वा  
स्त्रिण) अन्यमत की कांसा उसके विष में घोड़ी सी मो नहीं रही-ऐसा निश्चितगुण  
वाला वह हो गया (जिह्विगिच्छे, लब्धहे, गहियहे, पुच्छियहे,  
अहिगयहे, विणिच्छियहे, अहिमिजपेमापुरागरचे) फलके प्रति सदेह उसका  
भाता रहा ऐसा वह निश्चितिस्सि गुण-सपन्न हो गया इसी कारण  
उसने शुर्वादिकों से यथार्थ निर्ग्रन्थप्रवचन का अर्थ प्राप्त कर लिया, और  
इसी कारण वह परामिमाय के ग्रहण से अवपारित (निश्चित) अर्थतत्त्ववाचा बन  
गया पृष्टार्थ हो गया निर्णीतार्थ हो गया, अभिगतार्थ हो गया, विनि  
श्चितार्थ हो गया, तथा उसकी अस्थि और मज्जा ये दोनों निर्ग्रन्थ प्र  
वचनविषयक प्रेमरूपी रत्नन द्रव्य से खूब रंग गये अर्थात् रंग रंग में  
उसके निर्ग्रन्थप्रवचन का अनुराग भर गया (अयमावसो ! निमा ये पावयणे  
महे अथ परमहे, सस भणहे, ऊत्तिपफसिहे, अवगुपदुवार, विगच तेठ  
रपरत्पवेसे) हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन ही वास्तविक अर्थ से युक्त  
है क्योंकि कि यह मोक्ष का हेतु है यही परमार्थ है क्योंकि कि जीवों का

शब्द नहि ते (निमा ये पावयणे विस्सकिण) आ प्रभावे निश्चय प्रवचनमा  
निश्चित शुद्धयुक्त अर्थ अथ (जिह्वस्त्रिण) तेना मनमां पीत्वा भव भाटे लब्धिरे  
लब्धा शेष न रही. आ प्रभावे ते निश्चित शुद्धयुक्त अर्थ अथ ( जिह्विगिच्छे  
लब्धहे, गहियहे, पुच्छियहे, अहिगयहे, विणिच्छियहे, अहिमिजपेमा  
पुरागरचे) इन प्रत्ये तेना मनमां सदेह शब्दो नहि आ प्रभावे ते निश्चितिस्सि  
सुख सपन्न अर्थ अथ अर्थो न तेने शुद्ध वयेधे चासेथी यथाथं निश्चय प्रवचनते  
अर्थ लब्धी लीपी हते। अर्थो न ते पराविभायना लब्धयुधी अवधारित अर्थ तत्त्व  
वाची अर्थ अथ पुटाय अर्थ अथ निश्चितार्थ अर्थ अथ अभिगताय अर्थ अथ,  
विनिश्चिताय अर्थ अथ अन तेना अस्थि अने मज्जा अने निश्चय प्रवचन विषय  
प्रेमरूपी रत्नन द्रव्यथी पूज / रन्ति अर्थ अथ अर्थो हे तेना शरीरना अर्थो  
अर्थो निश्चय प्रवचन प्रत्येनी प्रीति आस अर्थ अर्थ (अयमावसो ! निमा ये  
पावयणे महे अथ परमहे, सस भणहे, ऊत्तिपफसिहे, अवगुपदुवार,  
विगच तेठरपरत्पवेसे) हे आयुष्मन् ! आ निश्चय प्रवचन न वास्तविक अर्थ  
युक्त है केमके अर्थो अर्थ महे हेतुत्वं अर्थो अर्थ परमार्थ है केमके अर्थो

पौषधं सम्भक् अनुपालयन् अमणान् निर्ग्रन्थान् प्रासुकषणीयेन अशनपान-  
खादिम-स्वादामेन पीठ--फलक शय्या-संस्तारेण दम्ब--प्रतिग्रह-कम्बलपाद-  
मोठछनेन औषधभैषज्येन प्रतिलाभयन् बहुभिः शीघ्रव्रतगुणविमणपौष-

प्रयोजन इसीसे सिद्ध होता है. इसके अतिरिक्त अन्यतीर्थिक कुप्रवचनादिक  
कुगतिप्रापक होने से अनर्थरूप है, इस तरह से वह अपने पुत्रादिकों को  
शिक्षा देने लगा. निर्ग्रन्थप्रवचन को प्रतिपत्ति से उसका अन्तःकरण  
असद्विचारों से रहित हो जाने के कारण स्फटिक की तरह निर्मल हो  
गया, भिक्षुक आदिकों का भिक्षाके निमित्त गृह में प्रवेश सरलता से हो  
जावे इस ख्याल से वह अपने गृहप्रवेश द्वार को मृदा अर्गल से रहित  
रखने लगा अर्थात् दानादि के लिये खुले दरवाजे रखे। राजा के अन्तः  
पुर में भी उसका प्रवेश शंका रहित होने से प्रीति का जनक बन गया.  
अर्थात् अतिधार्मिक होने से वह परस्त्री सहोदर (भाई) बन कर रहने लग गया.  
(चाउदमद्व, मुद्दिष्टपुण्यमामिणीसु पडिपुणं पोसहं सम्म अणुपालेमाणे समणे  
निगंथे फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइम-साइमेणं पीढफलगसेज्जासंथारेणं  
वत्थपडिगहकंबलपायपुंछणेण ओसहमेसज्जेणं पडिलाभेमाणे) चतुर्दशी,  
अष्टमी, उद्दिष्ट-अभावस्था. एव पूर्णिमा इन चार तिथियों में अहोरात्र  
पौषध का पालन करता हुआ, तथा प्रासुक एपणीय-अचित्त और साधुजन  
को करपनीय ऐसे अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चतुर्विध आहार से,

प्रयोजन ऐसा बड़े न सिद्ध थाय छ आझीना भधा-अन्यतीर्थिक कुप्रवचन वगेरे  
कुगति प्रापक होवा भदल अनर्थ रूप छ आ प्रमाणे ते पोताना पुत्रो वगेरेने  
उपदेश आपवा लाग्यो, निर्ग्रंथ प्रवचननी प्रतिपत्तिथी तेनुं हृदय असद्व विचारोधी  
रहित थयं गयुं छतुं ओटला भाटे स्फटिकनी जेम निर्मल थयं गयुं छतुं. भिक्षुक  
वगेरे भिक्षा भाटे आवे त्यारे सरलतापूर्वक धरमा तेजो प्रवेश मेणवी शके ते भाटे  
ते पोताना धरनु आरखुं भुदहुं न राखवा लाग्यो राजना राजमहेलमा पण तेना  
प्रवेश निशंकपणु थवा लाग्यो ओटले के ते अतिधार्मिक थयं गयो छतो ओधी ते  
परस्त्री सहोदर गनीने रहेवा लाग्यो ( चाउदमद्व, मुद्दिष्टपुण्यमामिणीसु पडि-  
पुणं पोसहं सम्म अणुपालेमाणे समणे निगंथे , फासुएसणिज्जेणं  
असणपाणखाइमसाइमेणं पीढफलगसेज्जासंथारेण वत्थपरिगह  
कंबलपायपु छणेण ओसहमेसज्जेणं पडिलाभेमाणे)

चतुर्दशी अष्टमी, उद्दिष्ट अभावस्था अने पूर्णिमा ये आरेथार तिथियोना द्विसे  
अहोरात्र सुधी पौषधनु पालन करतो छतो तेमन प्रासुक ओषणीय अचित्त अने  
साधुजन भाटे करपनीय ओवा अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चतुर्विध आहारथी

पापयासै आम्मानं भावयन् यानि तत्र राजकार्याणि च यापत् राजव्यवहारासु  
तानि क्षितिशुद्ध्या राज्ञा सादं स्वयमेव प्रत्युरपेक्षमाणः प्रत्युरपेक्षमाणो  
विरहति ॥ सू० ११३ ॥

टीका—'तएण से' इत्यादि—

तत्र म्वल्लु स चित्रः सारयिः भ्रमणोपासको जातः सन् अभिगत-जीवा  
जीवः—अभिगतौ=सम्पत् अथगतौ=ज्ञातौ जीवामीवी=जीवतस्वम् अजीवतस्व  
च येन स तथा—जीवतस्वामीवतस्वविषयकसकलज्ञानसम्पत्ता, उपलब्धपुण्य

पीठ, फलक, शय्या सस्तारक से, पञ्च पात्र कम्बल, पादमौञ्चन, से,  
(भ्रमण को साफ करने का वस्त्रविशेष) एवं औषध भेषज्य से भ्रमण  
निमित्तों को प्रतिष्ठापित करता हुआ ( यहूहिं सीलव्यपशुणवरमणपोसहोय  
पासेहिं य अप्पाणं भावेमाणे जाइ तत्थ राजकज्जाणि य जाव  
रामववहा(णि य ताइ जियसणुणा रणा सद्धिं सयमेय पन्थुरे  
कस्वमाणेर चिहरइ) एवं अनेक शीलव्रतों, शुणव्रतों, मिथ्यात्व से निर्वर्तन,  
मत्स्यासुधान और औषधों से आत्मा को भावित करता हुआ वह जितने  
भी उस भावस्ती नगरी में राजकार्य के यापत् जितने वहाँ राज-व्यवहार के  
उन सप का जितवन्तु राजा के साथ-से वारवार भ्रमणजन करता हुआ रहने लगा ।

टीकाप—युद्धिम के पावन करने से वह पिछ सारपि भ्रमणोपासक  
एत गया जीव-अज्ञात तत्र विषय सकलज्ञान से वह सम्पत् हो गया

पीठ इति शय्या सस्तारकयो वस्त्रपात्र, कम्बल, पादमौञ्चनयो अने औषध भेषज्ययो  
अभय निमित्ताने प्रतिष्ठापित करोत ( यहूहिं सीलव्यपशुणवरमणपोसहोय  
पासेहिं य अप्पाणं भावेमाणे जाइ तत्थ राजकज्जाणि य जाव रामवव  
हाराणि य ताइ जियसणुणा रणा सद्धिं सयमेय पन्थुरेकस्वमाणेर चिहरइ)  
अने अनेक शीलव्रतो, शुणव्रतो, मिथ्यात्वयो निर्वर्तन आत्माभ्यास अने पोषणोप  
पादाना आत्माने भावित करोत ते भावस्ती नगरीना सब राजकार्योत्तु सत्तावन  
करोत जितवन्तु राजनी साथे रहने वारवार राजकार्योत्तु अवरोधन करोत पादाना  
द्विसे पासार करोत ताभ्ये

टीकाप—द्विधर्मना पावनयो ते जिनस रवि भ्रमणोपासक यः गये लव,  
अलव तत्त विषय सकल ज्ञानयो ते अपन्न यः गये पुण्य अने पापना समा

पापः-उपलब्धे=याथातथ्येन विज्ञानं पुण्यपापे=पुण्यलक्षणं पापलक्षणं च येन स तथा-पुण्यपापयोः यथावस्थितस्वरूपज्ञायकाः, तथा-आस्रवसंवर-निर्जरा क्रियाऽधिकरणबन्धसोक्ष्णकुशलः-तत्र-आस्रवः=प्राणानिपातादिः, संवरः=प्राणानिपातविरमणादिः, निर्जरा=कर्मणां देशतो निर्मरणं, क्रिया=कायि-व्यादिरूपा, अधिकरणम्, स्वज्ञादिरूप, बन्धः=कर्मपुद्गलजीवप्रदेशयोः दुग्ध-जलवत् एकीभावाः, मोक्षः=जीवप्रदेशोऽयः सर्वात्मना कर्मणा अपगमनम्, एते-पामितरेतरयोगद्वन्द्वः, तेषु कुशलः=चतुरः-आस्रवादिस्वरूपाभिन्न-इत्यर्थः, तथा-असाहाय्यः=नास्ति साहाय्यं=महायता यस्य स तथा-कुतीर्थिककृतक-खण्डने परमाद्यायानपेक्ष इति भावः, तथा-देवाद्युनागयक्षराक्षसकिन्नर-किम्पुरुषगणद्वन्द्वबन्धवर्गमहोरगादिभिः=तत्र-देवाः=वैमानिकाः, असुराः=असुर-कुमाराः, नागाः=नागकुवाराः असुरा नागाः, इमे उभये सवनपतयः, यक्षाः,

पुण्य और पाप के यथावस्थित स्वरूप का वह ज्ञान हो गया, तथा प्राणानि-पातादिरूप आस्रव, प्राणानिपातादिविरमणरूप संवर, कर्मों का एकदेश से क्षय होनेरूप निर्जरा, कायिकी आदिरूप क्रिया स्वज्ञादिरूप अधिकरण, दुग्धजल की तरह कर्मपुद्गलों का और जीवप्रदेशों का एक क्षेत्रावगारूप बन्ध, जीवप्रदेशों से सर्वात्मना कर्मों का अपगमरूप मोक्ष इन सब में वह चतुर बन गया, अर्थात् जीव आदि के स्वरूप का वह अभिज्ञ हो गया, कुतीर्थिकजनों के कृतक खण्डन में वह किसी की भी महायता नहीं लेता ऐसा समझदार हो गया, तथा जिनप्रवचन के प्रति उत्तरी ऐसी अगाध श्रद्धा बढ़ गई कि जिससे वह देव, असुर, नाग, यक्ष राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष आदिकों द्वारा भी उससे कठिञ्च भी चलायमान नहीं किया जा सका। वैमानिक देव यहाँ देवपद से असुरकुमार जाति के भवनपति असुरकुमारपद

वास्थित स्वरूपने ते नानुवा लाञ्छ्ये तेमन् प्रष्टातिपात वगेरे आस्रव, प्राणानि-पातादि विरमणरूप संवर, कर्मोना ओद्देश्यी क्षय यवा इय निर्जरा, कायिकी वगेरे इय क्रिया पदुग वगेरे इय अधिकरण, दुग्धजलानी जेम कर्मपुद्गलोत्तु अने एव प्रदेशोत्तु ओद्देश्यावगाहनरूप बन्ध, एव प्रदेशोत्तु सर्वात्मना कर्मोत्तु अपगमनरूप मोक्ष आ णवामां ते अतुर हतो ओटले के आस्रव वगेरेना स्वरूपने ते नानुकार यथ गयो हतो ते ओवो अतुर यथ गयो हतो के कुतीर्थिटीना कुतर्कधरनमा ते दैधनी पणु भदह लेतो नहतो तेमन् जिनप्रवचन प्रत्ये तेना सनमा ओवी अगाध श्रद्धा नामी गथ हती के जेथी ते देव, असुर, नाग, यक्ष, राक्षस किन्नर, कि-पुरुष वगेरे वडे ते जराओ विवक्षित करी शक्य तेम नहोतो वैमानिक देव अही देवपदथी, असुरकुमार अतिना सवनपति असुरकुमार पदथी, नागकुमार अतिना सवन-

राक्षसाः, किन्नराः विष्णुरूपः, एत चत्वारोऽप्यन्तरविशेषाः, गरुडा = गरुड  
ध्वजा सुपर्णकुमारः भगवत्पतिविशेषः, गचर्वा महोरगाश्च व्यन्तरविशेषाः  
तत्पशुतिमिरपि दशगणैः मन्त्रेणात्प्रवचनानां अनतिप्रमणीय = अचालनीय  
निर्ग्रन्थप्रवचनात् प्राप्तमित्युक्ते देवादयोऽसमर्था इति भावः । तथा-निर्ग्रन्थे  
प्रवचने निःशब्दित = अशब्ददर्शनापक्षया श्रेष्ठमिदं न वेति शङ्कारहितः, अत  
एव-निष्कारित = निष्कारित - परमतकाङ्क्षारहित निर्विचिकित्स - फल  
प्रति सन्तुष्टरहित अत एव-लब्धायाः-लब्ध = प्राप्त अर्थो गुणादीनां सका  
शाद् या स तथा-जगत्प्रवचनार्थ इत्यर्थः, गुरीतार्थः-गुरीतः=स्वीकृतोऽर्थो  
येन स तथा-पराभिप्रायप्रवणतोऽवधारितायतन इत्यर्थः, पृष्टार्थः-पृष्टोऽर्थो

से, नागकुमार जाति के भगवन्पति देव नाग शब्द से, तथा यज्ञ, राक्षस,  
किन्नर, एव विष्णुरूप इन पदों से व्यन्तर जाति के इस २ नामके देव  
गृहीत हुए हैं। गरुड शब्द से गरुडध्वजवाले सुपर्णकुमार को कि भगवन्  
पति जाति के देव विशेष हैं। गुरीत हुए हैं। गचर्वा और महोरग ये  
व्यन्तरविशेष हैं। उनके मनमें ऐसी प्रका कि यह निर्ग्रन्थप्रवचन भग्य  
वर्तनों की अपेक्षा श्रेष्ठ है की नहीं है ककी नहीं उत्पन्न हुई इसलिये  
यह उसके प्रति निराश्रित था परमत की वांक्षा का अभाव इसके विष  
में सर्वथा हो गया था-इसलिये यह निष्कारित था, फल के प्रति सन्वेद  
से यह रहित था इसलिये निर्विचिकित्स था इसी कारण हमने गुणादिका  
क पास से प्रवचनगदित अर्थ को अच्छी तरह से जान लिया था इसलिये  
यह लब्धाया था, उसे अच्छी तरह से स्वीकार कर लिया था इसलिये  
ये गुरीतार्थ या संद्वहयुक्त स्थल में परस्पर प्रश्न करने से यह अर्थ

पतिदेव नाम शब्दों में भगवन्पति, राक्षस, किन्नर आने विष्णुरूप नाम पदों में व्यन्तर  
जातिना देवात् शब्दों यमु ३ अर्थ शब्दों जगत्प्रवचनार्थ सुपर्णकुमार-के लक्षणे  
भगवन्पति जातिना देव विशेष ३ तेषु शब्दों यमु ३ गचर्वा आने महोरग के लक्षणे  
व्यन्तरविशेष ३ चित्रसारविना भगवन्पति निर्ग्रन्थ प्रवचनने लक्षणे को ही ३ अर्थ  
विषये शब्द ३ अर्थ शब्द नदोती के आ निर्ग्रन्थ प्रवचन लक्षणे इत्यने ३ अर्थों में  
३ के अर्थ को ही ते ते प्रति निराश्रित दतो। परमत अर्थे तेना भगवन्पति लक्षणे  
काक्ष उत्पन्न शब्द नदोती को ही ते निर्वाहित दतो इति अर्थे ते अर्थ रहित दतो।  
को ही ते निर्विचिकित्स दतो। तेने शुरु वगेरे पासेषी प्रवचन वगेरे अर्थने सारी  
पदे लक्षणी लीपां दतां को ही ते लक्षणा दतो ते अर्थने तेने सारी पदे स्वीकार  
करी लीपां दतां को ही ते गुरीतार्थ दतो आशयिक स्थान निचे परस्पर प्रश्नो ३ अ-

येन स तथा-सांशयिकस्थल परस्पर प्रश्नकरणेन निर्णीतार्थः, अधिगतार्थः-  
अधिगतः=सर्वथा उपलब्धः अर्थो येन स तथा-सर्वप्रकारेणोपलब्धार्थः, अत  
एव-विनिश्चितार्थः-वि=विशेषेण, निश्चितः=निर्णीतोऽर्थो येन स तथा-ज्ञात-  
वास्तविकार्थ इत्यर्थः, तथा-अस्थिमज्जाप्रेमानुरागरक्तः-अस्थिमज्जे मसिद्धे  
ते प्रेमानुरागेण-निर्ग्रन्थप्रवचनविषयकं यत् प्रेम तद्रूपो योऽनुरागो=रञ्जन-  
द्रव्यं तेन रक्ते इव रक्ते यस्य स तथाभूतः सन् "हे आयुष्मन् ! इदं  
नैर्ग्रन्थं प्रवचनमेव अर्थः=वास्तविकार्थयुक्तः-मोक्षहेतुत्वात्, शेषम्=इतो  
भिन्नम् अन्यतीर्थिरुक्तप्रवचनादिरुम् अनर्थः-कुणतिप्रापकत्वात्"-इत्येव  
पुत्रादिरुमनुशासत्, तथा उच्छ्रितस्फटिकः-स्फटिकमिव स्फटिकम् अन्तः  
करणम्, उच्छ्रितम्=उद्गतस्फटिक यस्य स तथा-निर्ग्रन्थप्रवचन  
प्रतिपत्त्या, असद्विचारशून्यत्वात्स्फटिकवन्निर्मलान्तःकरण इत्यर्थः, अथवा-  
'उच्छ्रितपरिघः' इति छाया, एतत्पक्षेः उच्छ्रितः=तत्स्थानादपनीय ऊर्ध्वी

का निर्णेता बन गया था, इसलिये पृष्ठार्थ था, सर्वप्रकार से अर्थ का  
ग्रहण करने वाला बन गया था, इसलिये ये लब्धार्थ था, वास्तविक अर्थ का  
ज्ञाता बन गया था, इसलिये ये विनिश्चितार्थ था, निर्ग्रन्थप्रवचनविषयक प्रेम-  
उसकी रोमर में समा गया था, इसलिये ये अस्थिमज्जाप्रेमानुराग रक्त था, वह  
अपने पुत्र पौत्रादिकों से यही कहता था कि हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ  
प्रवचन ही मोक्ष हेतु होने से वास्तविक अर्थ से युक्त है अन्य कुवादियों के  
प्रवचन ऐसे नहीं हैं क्योंकि वे दुर्गति के प्राप्त कराने वाले हैं निर्ग्रन्थप्रवचन  
की प्रतिपत्ति से उसका हृदय स्फटिकमणि के जैसा निर्मल हो गया था  
'उसियफलिहे' की छाया जब 'उच्छ्रितपरिघः' ऐसी की जाती है तब  
इसका अर्थ ऐसा होता है कि इसने घरके द्वार के किवाड़ों में,

बाथी ते अर्थने निर्णेता बनी गये हतो अर्थी ते पृष्ठार्थ हतो, ते सर्व रीते  
अर्थने ग्रहण करनार बनी गये हतो, अर्थी ते लब्धार्थ हतो ते वास्तविक अर्थने  
ज्ञाता भूथ गये हतो अर्थी ते विनिश्चितार्थ हतो, निर्ग्रन्थप्रवचन विषयक प्रेम  
तेना आयुष्ये आयुषां रमी गये हतो, अर्थी ते अस्थिमज्जाप्रेमानुरागी हतो, ते  
पोताना पुत्र पौत्र वगेरेने आ प्रभावे न दहेतो हतो हे हे आयुष्मन् ! आ  
निर्ग्रन्थ प्रवचन न मोक्षना हेतु होवा भद्व वास्तविक अर्थथी युक्त छे, पीन कुवादि-  
ओना प्रवचने आवा नथी, कारणके ते कुणति तरङ्ग होरनारा छे, निर्ग्रन्थ प्रवचननी  
प्रतिपत्तिथी तेह हृदय स्फटिकमणि जेम निर्मल थछे गथुं हतुं, 'उसीयफलिहे'  
नी छाया न्यारे 'उच्छ्रितपरिघः', आ प्रभावे करवाभां आवे छे त्यारे तेना अर्थ  
आ प्रभावे होय छे हे तेले गृहप्रवेशद्वारना कमाठोभां अर्गला भूकवाना स्थाननी



कृता न तु तिरश्चीनः कृता परिषाः अगमा यन स तस्या  
 'मिष्टुकादीनां सौकर्येण' मिताप' इह' मवेष्टो मवतु इति हेतो कपाट  
 पश्चाद्वागादपनीतागच्छ इत्यर्थः । अथवा-उच्छिन्नः अगमो न परिषाः अगला  
 श्रेष्ठारे पर्ययोसौ सेवा-जीगर्यापिवयादतिशयदानदातृत्वाद् मिष्टुकं मवेष्टाथ  
 मनगं लिख्येष्टार इत्यर्थः । एतावदेवं न किन्तु अपावृत्तद्वारः मिष्टुका  
 मवेष्टाय कपाटानामपि पश्चात्करणात् सर्वेषां समुदाटितद्वार इत्यर्थः । पश्चा-  
 त्सम्पददर्शनलाभे सति कृतशिशुपि प्राप्तिश्चकार, मयाभावेन, सोऽमुममाग परि-  
 ग्रहेण च सर्वका संवदादिनिमित्तानिष्ठोति मां, तान् मोक्षिताः । ॥ ५ ॥

अगमों की वस्तुके रखने के स्थान से ऊपर कर दिया था, तिरछा नहीं किया  
 या अर्थात् प्रवेशद्वार के किवाड़ों से इसने अगमों को नहीं लगाई किन्तु वर  
 केपी डी रही सो प्रसन्न कारण यह था किन्तु यदि जनों की प्रवेश-  
 पर में निष्ठा के निमित्त सरलता पूर्वक होता इति अथवा उच्छिन्न द्वार  
 का अर्थ 'इसने अगमों को लिख्येष्टा ही लगाई' एतां की इति है क्योंकि  
 कि परवृत्तात्वात्, तथा अतिशये दान देने वाला था इसलिये मिष्टुका  
 दिकों के प्रवेश के लिये इसने अपने घर के द्वार को अगमों से  
 रहित ही कर दिया था उतना ही नहीं किन्तु इसने यह द्वार के  
 कपाटों को खुलाकर दिया इसीसे वह 'मयावृत्तद्वारः' ऐसा कहा है  
 अर्थात् वह सबका समुदाटित द्वार था प्रकट किया है। अर्थात् दान पूर्ण  
 के लिये, उनक घर के द्वार खुला खुले थे पश्चात्-सम्पददर्शन के  
 लाभ होने पर किसी भी प्राप्तिश्चकार से इसे भय नहीं था सो इससे

उपरज शशी. त्रांसी मूही न दती जेठे के प्रविशदास्या अभयभां तेरो  
 सज्जन ब्रह्मादी न दती पक्ष तेने उंची न शशी दती जेठे पाछा आ देतु छे  
 के निष्ठुक "वजेश निष्ठा भाटे भावे त्यारे सहैतापथी धरमां प्रवेशी यह  
 अथवा उच्छिन्न शशीने अर्थ आ भभावे पक्ष भाव छे के तेजे  
 अगला लगानी न नदेसी ते उधर तेभज अतिशय दानदाता दती जेथे निष्ठुक  
 वजेशना प्रवेश भाटे पीताना धरने तेजे अगला वजेश न शशी दती आ  
 भभावे अर्थ इत्या आपते जेम इही शशीने के तेजे अगलाने तेना  
 'स्थान परथी जेथी पक्ष नदेती करो जेठका भाटे अपावृत्तद्वार' पक्षी  
 सुत्रार्थ तेने अर्थमा समुदाटितद्वारत्वात्वा प्रकट कयो छे अने अर्थमा स्थानना लाभ  
 को दये छे पक्ष पाछा शशी ते कथनीन नदेतो यते. जेथी अने शोधनभाजन

गृहप्रवेशः=पीतिकरः प्रीत्युत्पादकः अन्तःपुरगृहे=राज्ञोऽन्तःपुरे प्रवेशो=यस्य  
 स तथा, प्रीतिकरोऽतिधार्मिकतया सर्वत्रानाशङ्कनीय इति भावः, तथा-  
 चतुर्दश्यष्टम्युद्दिष्टपौर्णमासीषु तत्र-चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमास्यः प्रसिद्धाः, 'उद्दिष्टम्  
 इत्यमावास्या, एतासु चतसृष्वपि तिथिषु प्रतिपूर्णं=सकलम्-अहोरात्रं पौषधं  
 सम्यक् अनुपालयन्, तथा-प्रासुक्यैषणीयेन=अचित्तेन साधुजनकल्पनीयेन च  
 अशनपानखादिसंस्कारादिमेन=अशनादिचतुर्विधेनाचारेण पीठफलकशय्यासंस्तार-  
 केण, वस्त्रप्रतिग्रहकम्बलप्रादप्रोच्छन्नेन-तत्र-वस्त्रं=वसनं, प्रतिग्रहः=भक्त-  
 पानादिपात्रं, कम्बलः-पसिद्धः, प्रादप्रोच्छन्नं=प्रादप्रोच्छन्नार्थं वस्त्रम्, एतेषां  
 समाहारः, तेन, तथा-औषधभेषज्येन=औषधम्=एकद्रव्यनिष्पादितं, भेषज्यम्=  
 अनेकद्रव्यनिष्पादितम्, उभयोः समाहारस्तेन च भ्रमणान् निर्ग्रन्थान्  
 प्रतिष्ठापयन् प्रतिष्ठापयन्, तथा-बहुभिः=अनेकसंख्यकैः शीलव्रतगुण-  
 विरमणप्रत्यागमनसोपधोपवर्तैः तत्र-शीलव्रतानि=स्थूलप्राणातिपातविरमणा-

और शोभनमार्ग के परिग्रह से वह सर्वदा समुद्रादित शिरवाला बना रहता  
 था अर्थात् स्वधर्माभिमान वाला है-व्या वह प्रीतिकराऽन्तःपुरगृहप्रवेश वाला था,  
 अर्थात् राजा के अन्तःपुररूप घर में इसका प्रवेश प्रीत्युत्पादक था अर्थात्  
 यह अतिधार्मिक था इसलिये प्रीतिकर सर्वत्र अनाशङ्कनीय था तथा  
 चतुर्दशी अष्टमी अमावास्या और पूर्णिमा इन चारों पर्वतिथियों  
 में यह अहोरात्र का औषध करता था प्रासुक्यैषणीय-  
 अचित्त एवं साधुजन कल्पनीय ऐसे अशनपान आदिरूप चार प्रकार के  
 आहार से, पीठ, फलक, शय्या एवं संस्तारक से, वस्त्र, प्रतिग्रह-  
 भक्तपानादिपात्र, कम्बल, एवं प्रादप्रोच्छन्नार्थ वस्त्र से, एकद्रव्यनिष्पादित  
 औषध से तथा अनेक द्रव्य निष्पादित भेषज्य से यह भ्रमणजिग्रन्थों को  
 प्रतिष्ठापित करता था, इस तरह अनेकसंख्यक शीलव्रतों से-स्थूलप्राणा-  
 तिपातविरमण आदिकों से, दिग्व्रत आदिरूप गुणव्रतों से, मिथ्यास्व-

परिग्रहणी ने सर्वदा समुद्रादित शिरवाला रहने रहता होता। ते प्रीतिकरऽन्तः  
 पुरगृहप्रवेशवाला होता ओटवे के राजना रणवासमां तेना प्रवेश प्रीत्युत्पादक  
 होता ओटवे के ते अतिधार्मिक होता ओथी प्रीतिकर अने सर्वत्र अनाशङ्कनीय होता।  
 चतुर्दशी वगेरे चार चार पर्वतिथियोंमां ते अहोरात्र औषध करता होता प्रासुक्य  
 औषणीय अचित्त अने साधुजन कल्पनीय ओवा अशनपान वगेरे रूप चार प्रकारता  
 आहारथी पीठ, फलक, शय्या, अने संस्तारकथी वस्त्र, प्रतिग्रह-भक्तपान वगेरे पात्र,  
 कम्बल अने प्रादप्रोच्छन्नार्थ वस्त्रथी ओक द्रव्य निष्पादित औषधथी ते भ्रमण  
 निर्ग्रन्थाने प्रतिष्ठापित करता होता था प्रमाणे धणां शीलव्रतार्थ-स्थूल प्राणातिपात  
 विरमण वगेरेथी, दिग्विरति वगेरे गुणव्रतार्थी, मिथ्यास्व

कृता, न तु तिरस्कीनः। कृतः परिपः=अगला यन-स-प्रापा  
 'मिष्टुकादीनां सौकर्येण, मिस्तार्थं इहैः प्रवेशो मभवत् इति हेतोः कपाट  
 पश्चाद्वागादपनीतागच्छ इत्यर्थः। अथवा-उच्छिन्नः=अपगतः। परिपः=अगला  
 ग्रेहद्वारे पर्याप्तो तेषां-मौन्याधिक्यादतिशयवानदातृत्वात् मिष्टुक् प्रवेशाय  
 मेवार्थं इहैः द्वार इत्यर्थः। एतावदेव न किन्तु अपातद्वारः=मिष्टुका  
 मेवार्थं कपाटानामपि पश्चात्करणत्वं सर्वेषां समुदाटितद्वार इत्यर्थः। यथा-  
 सम्परादसनस्थाने इति कृतमपि पाण्डित्यकात्, यथाभावेन शोभनमागं परि  
 ग्रहेण च सर्वेषां समुदाटितमिष्टुकादिनिष्ठानि भावः, ता-मीतिहाः। ५

अंगका को उसके रखने के स्थान से ऊपर कर दिया था, तिरुई नहीं किया  
 या अर्थात् प्रवेशद्वार के किरीटों से इसने अंग को नहीं लगाई किन्तु वही  
 ऊँची डी रही सो अंगका कारण यह था कि एक यदि जनों की प्रवेश-  
 पर में मिष्टा के निमित्त सरलता पूर्वक होता है कि अथवा उच्छिन्न अंग  
 का अर्थ 'इसने अंगका बिल्कुल उसे लगाई'। एसा ही होता है यथा  
 कि यह द्वारता बाला था, तथा अतिशय शून्य होने वाला था। इसलिये मिष्टुका  
 दिनों के प्रवेश के लिये इसने अपने घर के द्वार की अंगका से  
 रहित ही कर दिया था। उतना ही नहीं किन्तु इसने वही द्वार के  
 कपाटों को खोलाकर दिया। इसीसे वह 'अपातद्वारः' ऐसा कहा है  
 अर्थात् वह सर्वेषां समुदाटित द्वार बाधा प्रकट किया है। अर्थात् दान पुण्य  
 के लिये उन्नत घर के द्वार सदा खुले थे यथा-सम्परादसन के  
 स्थान होने पर किसी भी पाण्डित्य से इसे संय नही था सो इससे

अथवा सभी। किसी भी न होती कोठे के प्रवेशद्वारों के अंगका से  
 सोलन बनायी न होती अथ तेने वही व सभी होती कोठी माछन को हेतु छे  
 के सिद्ध 'अथै किछा माटे आवे तथा सहेबायसी घरभ प्रवेशी, यके  
 अथवा अंगका से अथवा मा प्रमाये अथ माय छे के, तेसे  
 अंगका लगगी व नहोती, ते वहाय तेमव अतिशय दानदाता कतो कोषे मिष्टुक्  
 अथैना प्रवेश माटे पीताना करने तेसे अंगका घर व शम्भु कतु मा  
 प्रमाये अर्थ इत्या आपये कोषे कही शक्ति के तेसे अंगकाने तेना  
 'अथवा परथी सि'नी अथ नहोती इति, कोठला मा' अपातद्वारः' परथी  
 अथवा तेने सवथा समुदाटितद्वारमाय प्रकट कथे छे अने-सम्परादसनना लाभ  
 भी छे छे छे अथ पाण्डित्य ते कवणीय नहोती अतो कोषी अने दाननभाजन

गृहप्रवेशः=मीतिकरः मीत्युत्पादकः अन्तःपुरगृहे=राज्ञोऽन्तःपुरे प्रवेशो=यस्य  
 स तथा, मीतिकरोऽतिधार्मिकतया सर्वानाशङ्कनीय इति भावः, तथा-  
 चतुर्दश्यष्टम्युद्दिष्टपौर्णमासीषु तत्र-चतुर्दश्यष्टम्युद्दिष्टपौर्णमास्यः प्रसिद्धाः, उद्दिष्टम्  
 इत्यमावास्या, एतासु चतसृष्वपि तिथिषु प्रतिपूर्णे=सकलम्-अहोरात्रं पौषधं  
 सम्यक् अनुपालयन्, तथा-प्रासुकैपणीयेन=अचित्तेन साधुजनकल्पनीयेन च  
 अशनपानखादिमस्त्रादिभ्येन=अशनादिविधेनादारेण पीठफलकशय्यासंस्तार-  
 केण, वस्त्रप्रतिग्रहकम्बलप्रादमोळ्छनेन-तत्र-वस्त्रं=वसनं, प्रतिग्रहः=भक्त-  
 पानादिपानं, कम्बलः=प्रसिद्धः, पादमोळ्छनं=पादमोळ्छनार्थं वस्त्रम्, एतेषां  
 समाहारः, तेन, तथा-औषधभेषज्येन=औषधम्=एकद्रव्यनिष्पादितं, भेषज्यम्=  
 अनेकद्रव्यनिष्पादितम्, उभयोः-समाहारस्तेन च श्रमणान् निर्ग्रन्थान्  
 प्रतिलम्भयन् प्रतिलम्भयन्, तथा-बहुभिः=अनेकसंख्यकैः शीलव्रतगुण-  
 विरम्भप्रत्याख्यानसोपधोमन्त्रिणैः तत्र-शीलव्रतानि=स्थूलप्राणातिपातविरमणा-

और शोधनमार्ग के परिग्रह से वह सर्वज्ञा समुद्रादित शिरवाला बना रहता  
 था अर्थात् स्वधर्माभिमान वाला हो-कर वह मीतिकरान्तःपुरगृहप्रवेश वाला था,  
 अर्थात् राजा के अन्तःपुररूप घर में इसका प्रवेश मीत्युत्पादक था अर्थात्  
 यह अतिधार्मिक था इसलिये मीतिकर सर्वत्र अनाशङ्कनीय था तथा  
 चतुर्दशी अष्टमी अमावास्या और पूर्णिमा इन चारों पर्वतिथियों  
 में यह अहोरात्र का औषध करता था प्रासुकैपणीय-  
 अचित्त एवं साधुजन कल्पनीय ऐसे अशनपान आदिरूप चार प्रकार के  
 आहार से, पीठ, फलक, शय्या एवं संस्तारक से, वस्त्र, प्रतिग्रह-  
 भक्तपानादिपात्र, कम्बल, एवं पादमोळ्छनार्थ वस्त्र से, एकद्रव्यनिष्पादित  
 औषध से तथा अनेक द्रव्य निष्पादित भेषज्य से यह श्रमणजिग्रन्थों को  
 प्रतिलाभित करता था, इस तरह अनेकसंख्यक शीलव्रतों से-स्थूलप्राणा-  
 तिपातविरमण आदिकों से, दिग्व्रत आदिरूप गुणव्रतों से, मिथ्यास्व-

परिग्रहथी ने सर्वज्ञा समुद्रादित शिरवाला शोधने रहता होता। वे मीतिश्रान्तः  
 पुरगृहप्रवेशवाला होता ओटवे के राजाना रघुवंशमें तेना प्रवेश मीत्युत्पादक  
 होता ओटवे के ते अतिधार्मिक होता ओथी मीतिकर अने सर्वत्र अनाशङ्कनीय होता।  
 चतुर्दशी वगेरे आरे आर पर्वतिथियोंमें ते ओटोरात्र औषध करता होता। प्रासुक  
 औषधीय अचित्त अने साधुजन कल्पनीय ओवा अशनपान वगेरे रूप और प्रकारता  
 आहारथी पीठ, फलक, शय्या, अने संस्तारकथी वस्त्र, प्रतिग्रह-भक्तपान वगेरे पात्र,  
 कम्बल अने पादमोळ्छनार्थ वस्त्रथी ओक द्रव्य निष्पादित औषधथी ते श्रमण  
 निर्ग्रन्थ अने प्रतिलाभित करता होता था प्रमाणे धर्मां शीलव्रतार्थ-स्थूल प्राणुतिपात  
 विरम्भ वगेरेथी, दिग्विरति वगेरे गुणव्रतार्थी, मिथ्यास्व-

दीनि पञ्च, शुभाः=शुभप्रदानि-विश्रुतादीनि विरमण=विश्रुतास्तानि नवसंनम्  
प्रत्याम्पान=पर्वदिनेषु हरितकायादीनां परिष्ठागः, पौषधोपवासः=पर्व  
श्यादिपर्व तिथिषु आहारस्यागः, एवमितरेतरयोगद्वन्द्वः, तम् आत्मानं  
माषयन्=माषयन्, यानि-तम्=माषयत्यां, नगर्या- रामकायौषधि, यावद्  
राजम्पवद्वाराभ्यानि सर्वाणि जितशत्रुणा राजा-मातु स्वयमेव प्रत्युपेय  
माषः प्रत्युपेयमाणः=शत्रुद्वन्द्वदुरवलाक्यन विहरति ॥सू० ११३॥

मूलम्—सएण से जियसेतु राया अपणया कयाइ महत्थ जिय  
पाहुड सज्जेइ, सज्जित्ता चित्त सारहि सदावेइ, सदावित्ता यवं वयासी  
गच्छहि णं तुम चित्ता। सेयवियानयहि, पणसिस्स रन्तो इम महत्थं  
जाव पाहुड उवणेहि, मम पाउग्गहणं जहा भणिय अवित्तइमस  
दिअ वयणं विन्नवेहिषिकहु विसज्जिए। सएणं से चित्ते सारहा  
जियसज्जुणा रन्ता विसज्जिए समाणे तं महत्थ जाव गिण्हइ, जिय  
सज्जुस्स रण्णो अतियाओ पडिणिक्खमइ, सावत्थीए नयरीए मज्झं  
मज्जेणं निगच्छइ, जेणेव रायमग्गमोगाढं आवासे, तेणेव उवाग  
च्छइ, तं महत्थ जाव ठवेइ, ण्हाए जाव सरीरे सकोरिटमच्छदामेणं  
छत्तण धरिज्जमाणेणं महया भट्ठवद्वगरविदपरिक्खित्ते पायचारविहारेण  
महया पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ते रायमग्गमोगाढाओ आवासाओ निग  
च्छइ, सावत्थीए नयरीए मज्झं मज्जे णं निगच्छइ, जेणेव कोट्टिए

निरवस्य विरमण से, पर्वदिनों में हरितकायादिकों के परिष्ठाग से, पर्व  
श्यादिपर्वतिथियों में आहारस्याग से आत्मा को वासित करता हुआ पर्व  
आवस्थी नगरी में जितने भी राजकायों से यावद्-राजम्पवद्वार से उन सब का  
जितशत्रु राजा के साथ स्वयं बार बार निरीक्षण करता हुआ रहने लगा । सू ११३।

पर्वन्त दिवसोभां हरितकाय एवेणा चित्तामधी, अतुदशी नजेर तिथिओभां आहार  
स्यामधी आत्माने वासित करोते ते अवस्थी नगरीमां कोट्टा सज्जकार्यो इत्ये यावत्  
राजम्पवद्वार इत्ये ते सपत्त जितशत्रु राजन्नी सामे पाते बार बार निरीक्षण  
करोते स्वयं वाग्मे। ॥सू० ११३॥

चेइए जेणेव केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, केसिकुमारसमणस्स  
 ओंतए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ट जाव उट्टाए जाव एवं वयासी—  
 एवं खल्ल अहं भंते ! जियसत्तुणा पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव  
 उवणेहि त्ति कटु विसज्जिए, तं गच्छामि णं अहं भंते ! सेयंवियं  
 नयरि ! पासादीया णं भंते ! सेयंविया णयरी, एवं दरिसणिज्जा  
 णं भंते ! सेयंविया णयरी, अभिरूवा णं भंते ! सेयंविया णयरी  
 पडिरूवा णं भंते ! सेयंविया णयरी, समोसरह णं भंते ! तुब्भे  
 सेयंवियं णयरिं ॥सू० ११४॥

छाया—ततः खलु स जिनशत्रु राजा अन्यदा कदाचित् महार्थं यावत्  
 प्राभृतं सज्जयति, चित्र सारथिं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत् गच्छ  
 खलु त्वं चित्र ! श्वेतविकां नगरीम्, प्रदेशिनो राज्ञ इदं महार्थं यावत्  
 प्राभृतम् उपनय, मम पादग्रहणं यथा भणितम् अवितथम् असन्दिग्धम् वचन

‘तएणं से जियसत्तू राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से) इसके बाद उस (जियसत्तू राया) जितेशत्रु राजाने  
 (अन्नया कयाइ) किसी एक समय (महत्थं जाव पाहुडं सज्जेइ) महाप्र-  
 योजनसाधक यावत् प्राभृत को सजाया, (सज्जित्ता चित्तं सारहिं सदावेइ)  
 सजाकर फिर उसने चित्र सारथि को बुलाया, (सदावित्ता एव वयासी)  
 बुलाकर उससे ऐसा कहा—(गच्छहि णं तुमंचित्ता) सेयंवियानयरिं पए  
 पसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव पाहुडं उवणेहि) हे चित्र ! तुम जाओ और  
 श्वेतांबिका नगरी में प्रदेशी राजा के पास इस महाप्रयोजन साधक यावत्

‘त एणं से जियसत्तूरिया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एण से) तब पछी ते (जियसत्तू राया) जितेशत्रुराजाने (अन्नया  
 कयाइ) कुछ कुछ वधते (महत्थं जाव पाहुडं सज्जेइ) महाप्रयोजन साधक  
 यावत् लेट (प्राभृत) तैयार करी (सज्जित्ता चित्तं सारहिं सदावेइ) तैयार करीने  
 तेले चित्र सारथीने बोलाव्यो (सदावित्ता एव वयासी) बोलावनी तेले आ प्रमाणे कुछ  
 (गच्छहि णं तुम चित्ता) सेयं विया नयरिं पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव  
 पाहुड उवणेहि) हे चित्र ! तबे श्वेतविका नगरीमें, प्रदेशी राजा की पास आ

विज्ञापयेति कृत्वा विसर्जितः । तत्र खलु स विप्रः सार्वभौमिजितशत्रुणां  
 राज्ञा विमर्जितः सन् तत्र महाभयं यावद् दृष्ट्वाति, मितशत्रो राज्ञोऽन्तिकार  
 मविनिष्कामति, आशस्त्या नगर्या मध्यमधमेन निर्गच्छति, यत्रैव राजमाग  
 मगगाड् भावामः, तत्रैव उवागच्छति, तन्महाभयं यावत् स्यात्पनि, स्नातो  
 गादृष्टरीड सकोरिष्टमाल्यदास्ना छत्रेण धियमाणेन महामत्तचटकरद्वन्दपरि  
 भित्तः प्रादक्षारविहारेण महापुरुषशङ्करापरिभित्तो राजमागमगगाडान् भाव

प्राप्तुं क्रो छे जाओ (मम पाउमगण जहा मणिय अभित्तमसदिद वयण  
 विन्नवेदि चिकहु विसजिए) और उनसे मेरा प्रणाम कहो, तथा मेरी ओर  
 से योक्त भविष्य असदिग्य वचन करो, इस प्रकार कह  
 कर उसे विसर्जित कर दिया (तबसे से चितो सारही मियसतुषा रण्यो  
 विसजिए समाने त मरत्य जाव गिण्ड-मियसतुस्त रण्यो भविष्यो  
 पडिनिवत्तमइ) इसके बाद मितछत्र राजा द्वारा विसर्जित किये गये विप्र  
 सारवि ने उस महाप्रयोगन सामक यावत् प्राप्तु को उठा लिया और  
 मितछत्र राजा के पास से भला भावा (सानस्थीए नयरीए मङ्गल मङ्गल  
 निगच्छइ) एवं भावस्ती नगरी के ठीक बीचों बीच के मार्ग से होकर  
 निकला (जेणेव रायमगमोगाडे आवासे सेणेव उवागच्छइ) निकलकर  
 वह जहां राजमाग पर स्थित आशस्त्यस्थान था, वहां पर भावा (तमहस्य जाव  
 ठवेइ) वहां जाकरके, उसमें उस प्राप्तु को एक ओर दन्व दिया (गहाए  
 जाव सरीरे सकोरिष्टमाल्यदास्ने छत्रेण परित्यमाणेन महया महचटकरविद

महाप्रयोगन सामक यावत् छेटे छट् छट् छट्) (मम पाउमगण जहा मणिय अभि  
 त्तमसदिद वयण विन्नवेदिचिकहु विसजिए) अने तेभने प्रथाः प्रथम  
 छट्टेय अने भावावती धरौत अन्वित्य अशक्ति वयन छट्टेय। (चिकहु विसजिए)  
 आ प्रभावे छट्टेने तेने त्वांभी ज्ञानी ज्ञान छट्टे (तबसे से चितो सारही मिय  
 सतुषा रण्यो विसजिए समाने त मरत्य जाव गिण्ड मियसतुस्त रण्यो  
 भविष्यो पडिनिवत्तमइ) त्वावस्थी निवत्तु शब्द प्रसेभी आशस्त्य अने ते  
 विप्र सारवीने ते महाप्रयोगन सामक यावत् छेटने छट् छट्टे अने निवत्तु शब्द  
 प्रसेभी ज्ञावती रहो (सानस्थीए नयरीए मङ्गल मङ्गल निगच्छइ) अने भावस्ती  
 नगरीना भवभर अभिभाज भी अने (जेणेव रायमगमोगाडे आवासे सेणेव  
 उवागच्छइ) ते ज्ञानी राजमाग पर प्राप्तु निवासस्थान छट्टे त्वां ज्ञानी  
 (तमहस्य जाव ठवेइ) त्वां ज्ञानीने देखि ते छेटने जेव वरु भूमी छट्टे  
 (गहाए जाव सरीरे सकोरिष्टमाल्यदास्ने छत्रेण परित्यमाणेन महया महया

सान् निर्गच्छति, श्रावस्त्या नगरी मध्य मध्येन निर्गच्छति  
यत्रैव कीटक, चैत्यं यत्रैव केशी कुमारश्रमणः, तत्रैव  
उपागच्छति, केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा हृष्ट यावत् उत्थया  
यावदेवमवादीत-एव खलु अहं भदन्त ! नितगुणा राज्ञा प्रदेशिने राजे

परिक्लिप्ते पायचारविहारेण महया पुरमवंगुरापरिक्लिप्ते रायमगमागाढाओ  
आवासाओ निर्गच्छइ) स्नान क्रिया यावत् बहुमूल्यवेश एवं अलम्भावाले  
आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत किया, पश्चात् छत्रधारी द्वारा ताने  
गये एवं कोरंटपुष्पों की माला से विभूषित ऐसे छत्र से युक्त हुआ- वह  
चित्र सारथि विशाल भटों के विस्तृत समूह से युक्त होकर उसे राजमार्ग  
स्थित आवास से पैदल ही निकला साथ में विशाल जनमेदिनी भी थी  
(सावस्थीए नगरीए मज्झमज्झेण निर्गच्छइ) इन सब से धीरा वह चित्र  
सारथि श्रावस्ती नगरीके बीचों बीच मार्ग से होकर चला (जेणेव कोट्टए  
चेइए जेणेव केशिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ) चलते-चलते वह वहां पहुंचा जहां  
कोष्ठक चैत्य और उसमें भी जहां केशिकुमारश्रमण थे (केशिकुमार-  
समणस्स अंतिए धम्म सोच्चा णिसम्म हट्टुट्ट जाव उट्टाए एवं वयासी  
वहां पहुंचकर उसने केशिकुमार श्रमण से धर्मको उपदेश सुना और उसे  
हृदय में धारण किया सुनकर और हृदय में धारण कर वह आनंद से  
प्रफुल्लित बन गया, और संतुष्ट चित्त हो गया यावत् उसका हृदय प्रमोद से

भटवडगरविदपरिक्लिप्ते पायचारविहारेण महया पुरिस वंगुरायरिक्लिप्ते  
रायमगमागाढाओ आवासाओ निर्गच्छइ) स्नान कर्तुं यावत् बहु किंभतवाणा अने  
अर्धभारवाणा आलूषणो वडे तेणु पोताना शरीरने अलंकृत कर्तुं, त्यारपछी और  
पुष्पवडे शोभतुं छत्र छत्रधारीणे वडे तेना उपर ताणुवाभां आण्यु, आ प्रमाणे-ते-  
चित्र सारथि विशाल लटोना समुदायथी परिवेष्टित, थाने ने राजमार्गपर, स्थित  
आवास स्थानथी पणपाणां न रवाना थियो, तेनी साथे विशाल मानवसमूह, पण्डितो,  
(सावस्थीए नगरीए मज्झमज्झेण निर्गच्छइ) आ सर्वथी वीटणायेवे, ते  
सारथि श्रावस्ती नगरीना मध्यभाग पर थाने नीकल्यो, (जेणेव कोट्टए, चेइए  
जेणेव केशिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ) नीकलाने ते न्यां डोण्डा, होत्य  
हुतुं अने तेमा पणुं न्या केशिकुमार श्रमण हुता त्या पडोथ्यो (केशिकुमार-  
समणस्स अंतिए धम्म सोच्चा णिसम्म हट्टुट्ट जाव उट्टाए जाव एवं, वयासी)  
त्या पडोथ्योने तेणु केशिकुमार श्रमण पासेथी धर्मोपदेश साल्लयो अने तेन-हृदयमा  
धारणु कर्त्यों, धर्मोपदेश सालणीने अने हृदयमा धारणु करीने ते आनंदवित्तार, थुं  
गयो अने सतुष्ट चित्तगणे थड गयो, यावत् तेन-हृदय-प्रसन्नताथी उल्लास, गुण



૧૬ મહાય યાવત્ ઉપનય ઇતિ કૃત્યા વિસર્જિતઃ તદ્ ગચ્છામિ સ્વલુ મદન્ત ! શ્વેતવિકા નગરીમ્ । પામાદીયા સ્વલુ મદન્ત ! શ્વેતવિકા નગરી  
 ૧૭ દર્શનીયા સ્વલુ મદન્ત ! શ્વેતવિકા નગરી, અમિરુપા સ્વલુ મદન્ત !  
 શ્વેતવિકા નગરી, પતિરુપા સ્વલુ મદન્ત ! શ્વેતવિકા નગરી, મમ્મમાત સ્વલુ  
 મદન્ત ! યુવ શ્વેતવિકા નગરીમ્ ॥૫૦ ॥૧૪॥

ટીકા—‘તપ્ત સે’ રૂપાદિ—

તત સ્વલુ મ મિતજા<sup>૧</sup> રામા અપદા કદાવિહ મહાર્થ યાવત્-યાવ  
 રાદ્ય ‘મહાય’ મહાદેવ વિપુલ રામાદેવ’ ઇતિ સમગ્રતે અર્પસ્ત્રેષા પુરવદ્

મત હોર ઉછલન મગા યાવત્ ગદ સ્વતઃ ઠઠા મૈર ઠઠકર યાવત્ ઉમન  
 હમ પ્રકાર કદા—(૧૪) સ્વલુ અદ મતે ! જિયસ<sup>૨</sup>વા ૧૫મિમ્મ રનો હમ  
 મહર્થ માર ઠવળાદિ તિ કદુ વિસર્જિત ત ગચ્છામિ ન મદ મતે ! સેવ  
 વિપ નયરિ) દે મદન્ત ! મુદ્ધે નિતગ્રમુ રામાને ‘પ્રદેવી રામા કે પામ દે  
 વિપ ! હમ હમ મહાવપાજન માપક યાવત્ મામૃત કી લે જામો’ પેમા  
 કદ વર વિસર્જિત વિપા દે સો દ મદન્ત ! મૈ શ્વેતવિકા નગરી કો જા  
 રદા હો (પામાદીયા ન મતે ! સર્વવિયા નયરી, ૧૭ દરિમણિજાગ મતે !  
 શવ વિપા નયરી, અમિરુપાગ મતે ! મર્મવિયા નયરી, પદિરુપાગ મતે !  
 સર્વવિયા નયરી, મમોસમદ ન મતે ! મુદ્ધે સર્વ વિપ નયરિ) દે મદન્ત ! શ્વેતવિકા  
 નગરી પામાદીયા દે—દ મદન્ત ! શ્વેતવિકા નગરી દર્શનીયા દે, દે મદન્ત !  
 શ્વેતવિકા નગરી અમિરુપા દે, દ મદન્ત ! શ્વેતવિકા નગરી પ્રતિક્ષા દે  
 મતઃ દે મદન્ત ! માપ ઉગ શ્વેતવિકા નગરી મૈ વપાર । ✓

યાવત્ તે બતે ૧૫૫ થયે અને ૧૫૬ થયે યાવત્ તેલે આ પ્રખલે ૧૫૭—(૧૪) સ્વલુ  
 અદ મતે ! જિયમનુના ૧૫મિમ્મ રના હમ મહર્થ જાવ ઉચ્છેદિ તિ કદુ  
 વિસર્જિત ત ગચ્છામિ ન મદ મતે ! સેવ વિપ મયરિ) દે મદન્ત ! મતે ! અપદા  
 મહાર્થ પ્રદેવી રામાની પાપ આપ હોને અપ આપ હો ૭ ૭ દે વિપ તમે આ  
 મહાર્થે અપ સાપ યાવત્ પ્રાગને પ્રદેવીરાજ અને ૧૫૭ અપે તે દે મદન્ત !  
 દ શ્વેતવિકા નયરી નાર એવે ૧૬૦ ૭ (પામાદીયા ન મતે ! સર્વવિયા નયરી  
 ૧૭ દરિમણિજા ન મતે ! સર્વવિયા નયરી, અમિરુપાગ મતે ! મર્મવિયા  
 નયરી, પદિરુપાગ મતે ! મર્મવિયા નયરી મમોસમદ ન મતે ! મુદ્ધે  
 સર્વવિપ મયરિ) દે મદન્ત ! શ્વેતવિકા નયરી અમિરુપા દે, દે મદન્ત ! શ્વેત  
 વિકા નયરી પ્રતિક્ષા દે મદે દે મદન્ત ! તમે શ્વેતવિકા નયરિયા વપારે

बोध्य इति, एतादृशं सज्जयति=कल्पयति, सज्जयित्वा चित्रं सारथिं शब्द-  
यति, शब्दयित्वा एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अत्रादीत=उक्तवान्-त्वं खलु हे  
चित्र ! श्वेतविकां नगरीं गच्छ, प्रदेशिनो राज्ञः समीपे इदं महार्थं यावत्  
प्राभृतम् उपनय=प्रापय, मम=मत्कर्तृक पादग्रहणं=प्रणामं यथा भणित=यथो-  
क्तम्-अवितथम्=यथार्थम् असंदिग्धम्=सुस्पष्टं वचनं च विज्ञापय=निवेदय,  
इति कृत्वा=इत्युक्त्वा विसर्जितः । ततः खलु स चित्रः सारथिः जितशत्रुणा  
राज्ञा विसर्जितः=प्रदेशिराजसमीपे गन्तुम् आज्ञप्तः सन् महार्थं यावत्=महा-  
र्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं गृह्णाति जितशत्रो राज्ञः अन्तिकात्=समीपात्  
प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति,  
निर्गत्य यत्रैव राजमार्गमवगाढः=राजमार्गस्थित आवासः=प्रासादः तत्रैव उपा-  
गच्छति, तत् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं स्थापयति,  
स्थापयित्वा स्नातो यावच्छरीरः-‘यावच्छरीर’-पदेन ‘कृतवलिकर्मा कृतकौतुक-  
मङ्गलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्घाभरणालङ्कृतशरीरः’ इति संगृह्यते, अर्थस्त्वेषां  
पूर्ववद् बोध्यः, तथा-सकोरटमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन युक्तः महा-  
भटचटकरवृन्दपरिक्षिप्तो महापुरुषवागुरापरिक्षिप्तश्च सन् राजमार्गमवगाढात्  
आवासात् निर्गच्छति । ‘सकोरट’-इत्यादि-पदानामर्थः पूर्ववद् बोध्यः ।  
ततः श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं

टीकार्थ--इस सूत्र का मूलार्थ के हो अनुरूप है,—‘नवरं’—‘महत्थं जाव पाहुड’ में जो यावत् पद आया है उससे ‘महग्घं, महार्हं, विपुलं, राजार्हं’ इन पदों का संग्रह हुआ है। इन पदों का अर्थ यथास्थान लिखा जा चुका है—अतः बैसा ही समझना चाहिये, ‘झाए जाव सरीरे’ में जो यावत् पद आया है—उससे ‘कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्घाभरणालङ्कृत’ इन पूर्वोक्त पदों का संग्रह हुआ है, इनका अर्थ पहिले के जैसा ही जानना चाहिये, ‘इदं जाव’ में जो यावत् पद आया है उससे ‘तुष्टचित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौ-

टीकार्थ—आ सूत्रेनो टीकार्थं प्रमाणे न छे, “नवरं महत्थं जाव पाहुड” भा ने यावत् पद छे तेथी ‘महग्घं, महार्हं, विपुलं, राजार्हं’ आ पढेनो संग्रह थये छे आ पढेनो अर्थ यथास्थाने स्पष्ट करवाभा आये छे, ‘झाए जाव सरीरे’ भा ने यावत् पद तेथी ‘कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्घाभरणालङ्कृत’ आ पढेनो संग्रह थये छे आ पढेनो अर्थ पढेनानी जेभ न समजये नेछये ‘इदं जाव’ भा ने यावत् पद छे तेथी “तुष्टचित्तानन्दितः,

इदं महार्थं योषत् उपनय इति कृत्वा विसर्जितः तद् गच्छामि स्मरु 'महं  
मदन्त ! श्वेतविका नगरीम् । मासादीया स्मरु 'मदन्त ! श्वेतविका नगरी  
'एव' दृष्टनीया स्मरु 'मदन्त ! श्वेतविका नगरी, अभिरुपा स्मरु 'मदन्त !  
'श्वेतविका नगरी, प्रतिरुपा स्मरु 'मदन्त ! श्वेतविका नगरी, समोसरत स्मरु  
'मदन्त ! युय श्वेतविका नगरीम् ॥ २१४ ॥

टीका—'तद्यम से' इत्यादि—

उतः स्मरु म नितरां राजा अभ्यदा कदाचित् महार्थं यावत्—बाव  
एवेन 'महार्थं' 'महार्थं' विपुलं राजाहं' इति स प्रपद्यते अर्थस्त्वेतौ पूर्ववत्

मत्त होकर उच्छलमे लगा यावत्। वह स्वतः उठा और उठकर यावत् उसने  
इस प्रकार कहा—(एव) स्मरु अहं मते ! जियसजुणा पयसिस्स रम्मो इमं  
महार्थं माव उचणेहि ति कहुं विसज्जिए त गच्छामि य अहं मते ! सेय  
विप नयरी) हे मदन्त ! तुम्हें नितरां राजाने 'प्रवेष्टी राजा के पास है  
विप ! तुम इस महाप्रयोजन साधक यावत् यावत् को ले जाओ' ऐसा  
कर कर विस्मृत किया है सो हे मदन्त ! मैं श्वेतविका नगरी को जा  
रहा हूँ। (पासादीया ण मते ! सेयविप नयरी, एव दरिसिपिज्जाय मते !  
सेयविप नयरी, अभिरुपाय मते ! सेयविप नयरी, पट्टिरुपाय मते !  
सेयविप नयरी, समोसरत ण मते ! तुम्हें सेय विप नयरी) हे मदन्त ! श्वेतविका  
नगरी मासादीया है—हे मदन्त ! श्वेतविका नगरी दृष्टनीया है, हे मदन्त !  
श्वेतविका नगरी अभिरुप है, हे मदन्त ! श्वेतविका नगरी प्रतिरुपा है  
मतः हे मदन्त ! आप उस श्वेतविका नगरी में पधारे । ✓

यावत् ते भते उच्छे भवे भवे उच्छे भवे यावत् तेहि आ प्रभावे भवे—(एव स्मरु  
अहं मते ! जियसजुणा पयसिस्स रम्मो इमं महार्थं माव उचणेहि ति कहुं  
विसज्जिए त गच्छामि य अहं मते ! सेयविप नयरी) हे मदन्त ! अने (अथयु  
राजाने प्रदेशी राजनी यमि आभ भवति कथा आभ भरी छे छे छे मित तमि आ  
भदाप्रयोजन साधक यावत् प्रपद्यते प्रदेशीराज्य पासे लभ भवे) ते छे छे मदन्त !  
हूँ श्वेतविका नगरी वरह भवे भवे छे (पासादीया ण मते ! सेयविप नयरी  
एव दरिसिपिज्जाय मते ! सेयविप नयरी, अभिरुपाय मते ! सेयविप  
नगरी, पट्टिरुपाय मते ! सेयविप नयरी, समोसरत ण मते ! तुम्हें  
सेयविप नगरी) हे मदन्त ! श्वेतविका नगरी अभिरुपा छे, हे मदन्त ! श्वेत-  
विका नगरी प्रतिरुपा छे, भटे हे मदन्त ! तमि श्वेतविका नगरीमें पधारे

(सूत्रम्—तएणं से केसी कुमारसमणे चित्तेणं सारहिणा एवं  
 बुत्ते समणे चित्तस्स सारहिस्स एयमट्ठं णो आढाइ णो परिजाणाइ  
 तुसिणीए संचिट्ठइ । तएण से चित्तं सारही केसिकुमारसमणं दो-  
 च्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—एवं खलु अहं भंते ! जियसत्तुणा रण्णा  
 पएसिस्स रण्णो इमं महत्थ जाव विसज्जिए, तं चेव जाव समो-  
 सरह णं भंते ! तुब्भे सेयंवियं णयरिं । तएणं से केसीकुमारसमणे  
 चित्तेण सारहिणा दोच्चंपि तच्चंपि एव बुत्ते समणे चित्तं सारहिं  
 एव वयासी—चित्ता । से जहानामए वणसंडए सिया किण्हे किण्हो  
 भासे जाव पडिरूवे । से णूणं चित्ता ! से वणसंडे वडूणं दुपयच-  
 उप्पयमियपसुपक्खीसरीसिवाणं अभिगमणिज्जे ? हता ! अभिग-  
 मणिज्ज । तंति च णं चित्ता ! वणसंडंसि वहवे भिल्लूगा नाम  
 पावसउणा परिवसन्ति, जेणं तेसिं वडूण दुपयचउप्पयमियपसु-  
 पक्खीसरीसिवाणं ठियाणं चेव मससोणियं आहारैति ! से णूणं  
 चित्ता ! से वणसंडे तेसि णं वडूणं दुपय जाव सरीसिवाणं अभि-  
 गमणिज्जे ? णो इणट्ठे समट्ठे ! कम्हा ? भंते ! सोवसग्गे । एवामेव  
 चित्ता ! तुज्झंपि सेयंवियाए णयरीए पएसी नामे राया परिवसइ,  
 अहम्मिए जाव णो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तइ । तं कहंणं अहं  
 चित्ता । सेयंवियाए नयरीए समोसरिस्साभि ? ॥सू० ११५॥ )

छाया—ततःखलु स केशीकुमारश्रमणः चित्रेण सारथिना एवमुक्तः  
 सन् चित्रस्य सारथेरेतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानाति, तूष्णीकः सन्तिष्ठते।  
 ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणं द्वितीयमपि तृतीयमपि

પદ્યૈષ કેશીકુમારધમણસ્તદ્રૈષ ઉપાગચ્છતિ, કેશીકુમારધમણસ્ય અન્તિકે  
 =સમીપે પદ્મં મૃતયા=સામાન્યતઃ આકાશ્ય નિશામ્ય=ધિશોપતો હૃગ્ધર્માયં હૃષ્ટઃ  
 પાતત્ હૃદયતુલ્યચિત્તાનિ, તઃપ્રીતિમનાઃ પરમસૌમનસ્યિતો હૃપંવશ્ચવિષ્ણવંદ્ય અર્થ  
 સ્ત્રેષાં પૂર્વંવદ્ યોગ્યઃ, તત્પથા=તત્પ્રાણજનકયા યાવત્ પાથત્પદેન 'ઉત્તિષ્ઠતિ, ઉત્પાપ  
 કેશિનં કુમારધમણે ત્રિકૃત્વ આદક્ષિણપદક્ષિણ કરોતિ ચન્દ્રતે નમસ્પતિ ચન્દિત્વા  
 નમસ્પિત્વા'—ઈતિ સંધ્યાશ્લોક, એવં=વક્ષ્યમાણપ્રકારેણ અવાદીત્=ઉક્તશાન્-  
 'એવં સત્ત્વ મહા ભવત્ ! જિતશ્ચમુખા રાજ્ઞા' 'પ્રવક્ષિનો રાજ્ઞ સમીપ હૃદ  
 મહાર્થ યાવત્=મહાર્થત્વાદિધિશોષણયિદિદે પ્રાપ્તમ્ ઉપનય' इति કૃત્વા=  
 હૃત્યુત્તરા વિસર્જિતઃ । તત્=તસ્માત્ કારણાત્ સ્વલુ મદન્ત ! ગચ્છામ્યહ  
 શ્વેતવિકાં નગરીમ્ । હે ભવત્ ! શ્વેતવિકા નગરી સત્ત્વ પ્રાસાદીયા=દર્શક  
 જનનાં મન મમોદ્જનિકાઽસ્તિ ! એવમ્=તથા હે મદન્ત ! શ્વેતવિકા નગરી  
 સ્વલુ દક્ષીણીયા=મોક્ષીયાઽસ્તિ । હે ભવત્ ! શ્વેતવિકા નગરી સ્વલુ અમિ  
 રુપા=સર્વકામરમણીયાઽસ્તિ । હે મદન્ત ! શ્વેતવિકા નગરી સ્વલુ પ્રતિ  
 રૂપા=સર્વોત્તમાઽસ્તિ । અતો હે મદન્ત ! ગૃપ્ત શ્વેતવિકાં નગરીં સમવમરત=  
 આગચ્છત-इति ॥ સુ. ૧૧૪ ॥

મનસ્પિતો, હૃપંવશ્ચવિષ્ણવંદ્ય' એ પદોં કા સગ્રહ હુઆ છે એનકા અર્થ  
 પહિછે જૈસા હી જ્ઞાનના ચાહિયે, 'ઉઠાવ જાવ' મેં આગત યાવત્પદ સે ઉત્તિ  
 ષ્ઠતિ, ઉત્પાપ કેશિન કુમારધમણ ત્રિકૃત્વ આદક્ષિણપદક્ષિણ—કરોતિ,  
 ચન્દ્રતે, નમસ્પતિ, ચન્દિત્વા, નમસ્પિત્વા' એ પાઠ કા સગ્રહ હુમા છે  
 દક્ષીણીયાં કે મન મેં મમોદ્જનક છે યહ પ્રાસાદીય શબ્દ કા અર્થ છે  
 દક્ષિણે યોગ્ય છે યહ દક્ષીણીય શબ્દ કા અર્થ છે—મર્મકાલ રમણીય છે યહ  
 અમિરુપ શબ્દ કા અર્થ છે—સર્વોત્તમ છે યહ પ્રતિરૂપ શબ્દ કા અર્થ છે । ૧૧૪।

પ્રીતિમનાઃ, પરમસૌમનસ્યિતો, હૃપંવશ્ચવિષ્ણવંદ્ય' આ પદોનો સમક  
 અર્થ છે આ પદોનો અર્થ પહેલાંની બેગળ સમજવો બેધજો. 'ઉઠાવ જાવ' આ  
 બે બાબત પદ આવેછે છે તેથી 'ઉત્તિષ્ઠતિ, ઉત્પાપ કેશિન કુમારધમણ ત્રિકૃત્વ  
 આદક્ષિણ પદક્ષિણ કરોતિ ચન્દ્રતે નમસ્પતિ ચન્દિત્વા, નમસ્પિત્વા' આ પદોનો  
 સમક અર્થ છે । ૧૧૪। આટલે બે પ્રમાણજનક છે—બેવો પ્રાસાદીય શબ્દનો અર્થ થાય છે  
 દક્ષીણીય શબ્દનો અર્થ છે. બેવો યોગ્ય. અમિરુપ શબ્દનો અર્થ થાય છે બે સર્વ  
 કામ રમણીય છે તે પ્રતિરૂપ શબ્દનો અર્થ સર્વોત્તમ થાય છે ॥ સુ. ૧૧૪ ॥

मू०—तएणं से केसी कुमारसमणे चित्तेणं सारहिणा एवं  
 बुत्ते समाणे चित्तस्स सारहिस्स एयमट्ठं णो आढाइ णो परिजाणाइ  
 तुसिणीए संचिट्ठइ । तएण से चित्तं सारही केसिकुमारसमणं दो-  
 च्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—एवं खलु अहं भंते । जियसत्तुणा रण्णा  
 पएसिस्स रण्णो इमं महत्थं जाव विसज्जिए, तं चेव जाव समो-  
 सरह णं भंते ! तुव्भे सेयंविंयं णयरिं । तएणं से केसीकुमारसमणे  
 चित्तेण सारहिणा दोच्चंपि तच्चंपि एव बुत्ते समाणे चित्तं सारहिं  
 एव वयासी—चित्ता । से जहानामए वणसंडए सिया किण्हे किण्हो  
 भासे जाव पडिरुवे । से णूणं चित्ता ! से वणसंडे वट्ठणं दुपयच-  
 उप्पयमियपसुपक्खीसरीसिवाणं अभिगमणिज्जे ? हता ! अभिग-  
 मणिज्ज । तंसि च णं चित्ता ! वणसंडंसि वहवे भिल्लूगा नाम  
 पावसउणा परिवसति, जेणं तेसिं वट्ठणं दुपयचउप्पयमियपसु-  
 पक्खीसरीसिवाणं ठियाणं चेव ममसोणियं आहारैति ! से णूणं  
 चित्ता ! से वणसंडे तेसिं णं वट्ठणं दुपय जाव सरीसिवाणं अभि-  
 गमणिज्जे ? णो इणट्ठे समट्ठे ! कम्हा ? भंते ! सोवसग्गे । एवामेव  
 चित्ता ! तुज्झंपि सेयंवियाए णयरीए पएसि नामं राया परिवसइ,  
 अहम्मिए जाव णो सम्म करभरवित्तिं पवत्तइ । तं कहंणं अहं  
 चित्ता ! सेयंवियाए नयरीए समोसरिस्साभि ? ॥सू० ११५॥ )

छाया—ततःखलु स केशीकुमारश्रमणः चित्रेण सारथिना एवमुक्तः  
 सन चित्रस्य सारथेरेतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानाति, तूष्णीकः सन्तिष्ठते।  
 ततःखलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणं द्वितीयमपि तृतीयमपि

एवमवादीत्-एव स्वल्प अह भवन्त ! मितशुश्रूणा राज्ञा प्रवेशिनो रात्र  
इदं महाभयं यावद् दिसर्पितं, तदेष यावत् स्मृतसरत स्वल्प भवन्त ! यूयं श्वेत  
विका नगरीम् । ततः स्वल्प केसीकुमारश्रमणः चित्रेण सारथिना तृतीय

तएव से केसी कुमारसमणे' इत्यादि ।

(सुप्रार्थ-तएव) इसके बाद (से केसीकुमारसमणे) उन केसिकुमार  
श्रमणसे जब चित्र सारथी ने ऐसा कहा-जय (चित्रस्त सारहिस्त) चित्र  
सारथी का (एयमहं णो महाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीए स चिट्ठइ) इस  
अर्थको आदर नहीं दिया, उसे बिचार का विषय नहीं बनाया किन्तु  
बुपचाप हो रहे (तएव से चित्रे सारथी केसिकुमारसमण दोषपि तद्यपि  
एव वपासी) इसके बाद चित्र सारथीने पुनः दुबारा भी और विचारा भी  
उन केसिकुमारश्रमण से ऐसा ही कहा कि (एव स्वल्प अह भवे ! जिय-  
सज्जुणा रण्णा पयसिस्स रणो इमं महत्थं जाय विसज्जिए त चेव जाय  
समोसरह ण भत्ते ! तुम्हे सेयविय नपरिं) हे भवन्त ! जितशुश्रू रामा  
के द्वारा मैं ऐसा कहा गया है कि हे चित्र ! तुम इस महाप्रांदि विशेष  
पणों वाले प्रायुत (मेट) को लेकर प्रवेशीरामा के पास जाओ सो मैं वहाँ जा  
रहा हूँ-यह स्वर्तायिका नगरी वल्लभीय आदि विशेषणों वाली है अतः वहाँ  
पकारे (तएव से केसीकुमारसमणे चित्रेण सारथिना दोषपि तद्यपि एव

'त एव से केसीकुमारसमणे' इत्यादि ।

सुत्रार्थः—(त एव) त्वात् ५३ (से केसीकुमारसमणे) ते केसिकुमार  
श्रमणने आदरे चित्रसारथीके आ प्रभावे अहं त्वात् (चित्रस्त सारहिस्त) चित्र  
सारथिना (एयमहं णो महाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीए स चिट्ठइ) आ अर्थने  
आदर आधे नहि तेना अर्थन पर केतं पक्ष अवतने विचार अर्थे नहि तेके आ  
अधु सांक्षणीने भोन न रक्ष्य (तएव से चित्रे सारथी केसिकुमारसमण  
दोषपि तद्यपि एव वपासी) त्वात् आह चित्र सारथीके श्रील वभव अने  
श्रील वभव पक्ष केसिकुमार श्रमणने आ प्रभावे न अहं के (एव स्वल्प अह भवे !  
मियसज्जुणा रण्णा पयसिस्स रणो इमं महत्थं जाय विसज्जिए त चेव जाय  
समोसरह ण भत्ते ! तुम्हे सेयविय नपरिं) हे भवन्त ! जितशुश्रू  
राजाके भने आ प्रभावे अहं के के के चित्र ! तमे आ महाप्रांदि विशेषणों  
केटने लधने प्रवेशी राजनी आसे नये। जेथी हू त्वां अहं रक्षोक्ष ते श्वेतविकी  
नगरी वल्लभीय वजेरे विशेषणोंवाली है तेथी तमे पक्ष त्वां पकारे। (त एव से  
केसिकुमारसमणे चित्रेण सारथिना दोषपि तद्यपि एव युक्ते समाने

मपि तृतीयमपि एवमुक्तः सन चित्रं सारथिम् एवमवादीत्-चित्र ! स यथा-  
नामको वनपण्डः स्यात् कृष्णः कृष्णावभासो यावत्परितरूपः । अथ नूनं चित्र !  
स वनपण्डो बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशुपक्षिसरीसृपाणाम् अभिगमनीय ?  
हन्त ! अभिगमनीयः । तस्मिंश्च खलु चित्र ! वनपण्डे बहवो भिल्ला नाम  
पापजाकुनिकाः परिवसन्ति । ये खलु बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशुपक्षिसरी  
सृपाणां स्थितानामेव मांसशोणितम् आहारयन्ति । अथ नूनं चित्र ! स

युक्तो समाणे चितं सारहिं एवं वयासी) तत्र उस प्रकार दुवारा तिवारा भी चित्र  
सारथी के द्वारा विनन्ति किये जानेपर केतिकुमार श्रमणने उन चित्र सारथी से  
ऐसा कहा (चित्ता ! से जहानामए वणसंडए सिया किण्हे किण्होभासे जाव  
पडिरूवे) हे चित्र ! जैसे कोई एक वनपंड हो और वह कृष्ण-कृष्ण वर्णवाला  
हो, तथा कृष्ण जैसा दिखता हो (से णूणं चित्ता से वणसंडे बहूणं दुप-  
यचउप्पयमियपसुपवस्वीसरीसिवाणं अभिगमणिज्जे) तो हे चित्ते ! कहो वह  
अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु पक्षी ओर सरीसृप सर्प इन सबके गमन के योग्य  
होता है न ? (ह ता अभिगमणिज्जे) हां भदन्त ! वह इनके गमन क  
योग्य होता है. (तं सि च णं चित्ता वणसंडसि बह्वे भिल्ला पावसउणा  
परिवसन्ति) यदि उस वनखंड मे हे चित्र ! अनेक पापिष्ठ सील लोग जो  
कि पारथी होते है रहते हैं (जे णं तेसिं बहूणं दुपयचउप्पयमियप  
सुपविवसरीसिवाणं ठियाणं चेव मंससोणियं आहारति) जो कि वहां रहे हुए  
उन बहुत से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरीसृपों के मांस शोणित

चित्ता सारहिं एवं वयासी) त्थारे ते प्रभाणु णील वणत अने त्रील वणत  
छेदी चित्रसारथिनी वात साळणीने तेने आ प्रभाणु कधु (चित्ता ! से जहानामए  
वणसंडए सिया वण्हे किण्होभासे जाव पडिरूवे) हे चित्र ! जेभे डोय वन-  
अंड डोय अने ते कृष्णवर्णवाणो डोय, तेभज कृष्ण जेवो लागतो डोय (से णूणं  
चित्ता से वणसंडे बहूणं 'दुपयचउप्पयमियपसुपवस्वीसरीसिवाण अभि-  
गमणिज्जे) तो हे चित्र ! छेडो ते वन घण्टा द्विपदो, यत्तुप्पदो, मृगो, पशुओ  
पक्षीओ अने सरीसृपो आ गंधाना भाटे गमन करवा योग्य डोय के नहि ?

अभिगमणिज्जे) हा लहत ! ते तेभना भाटे गमन योग्य गण्ठाय छे (तं सि च  
णं चित्ता वणसंडसि बह्वे भिल्ला पावसउणा परिवसन्ति) अने ते वनअडमा  
हे चित्र ! जे घण्टा पापिष्ठ शिकारी बीडो रहेता डोय (जे णं तेसिं बहूणं दुपय  
चउप्पयमियपसुपविवसरीसिवाणं ठियाणं चेव मंससोणियं आहारति)  
अने तेओ त्या रहनेारा ते घण्टा द्विपदो, यत्तुप्पदो, मृगो पशुओ अने सरीसृपोना



घनपण्डस्तेषां स्वस्तु पहना द्विपद् यावत्-सरोमृपाणां अभिगमनीयः ? नो  
अयमर्थः समथ । कस्मात् ? भदन्त ! सोपमर्गः ? एवमथ चित्र ! युष्मा  
कमपि श्वेतविक्रायां नगरीं प्रवेष्टी नाम राजा परिव्रजति, अर्धार्मिको  
यावत्, नो सम्यक्करभरवृत्तिं प्रवर्त्तयति । तत् कथं स्वस्तु अहं चित्र !  
श्वेतविक्रायां नगरीं समवसरिष्यामि ॥ सू० ११५ ॥

टीका—‘तएव से’ इत्यादि—

ततः स्वस्तु स कञ्चीकुमारभमणः चित्रेण सारथिना एवमन्वक्त  
प्रकारेण उक्तः सन चित्रस्य सारथे पतमर्थः = ‘युष्म श्वेतविक्रायां नगरीं

का आहार करते हों, क्या ऐसा स्थिति में (से जूम चित्ता ! से वण  
सहे तेसि पहण दूपय जाव मरीसिवाण अभिगमणिउजे ? हे चित्रो ! वह  
घनपण्ड उन अनेक द्विपद् यावत् गरीयों के लिये अभिगमनीय हो सकता  
है ? (जो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त ! ऐसी स्थिति में वह उनका लिये अभि  
गमनीय नहीं हो सकता है। (कस्मात्) हे चित्र ! वह उनके लिये अभिग  
मनीय-प्रवेश क यावत्-क्यों नहीं हो सकता है ? (नो समग्ग) क्या कि हे  
भदन्त ! वह घनपण्ड चित्तमहित है। (एवमेव चित्ता ! तुज्ज पि सेय पिपाए  
जयरीये पणसी नाम राजा परिव्रज, अर्धार्मिक जाव जो सम्म क'मरा'रि  
पक्काइ--त वह चित्ता सेय पिपाए जयरीए समोसरिस्तामि) इसी तरह से  
ह चित्र ! तुम्हारे लिये श्वेतविक्रा नगरी में प्रवेशी राजा रहता है वह  
अर्धार्मिक है यावत् प्रजाजनों से कर न्यमलेकर श्री उनका अच्छी तरह से पालन  
पोषण नहीं करता है। तो हे चित्र ! उस श्वेतविक्रा नगरी में हम लोग कैसे जाय )

गांश्च अने शोलित्तो आहार करता होय तो शु अवे चरिस्थितिभां (से जूम  
चित्ता ! से वणसहे तेसि पहण दूपय जाव मरिसिवाण अभिगमणिउजे ?)  
हे चित्र ! ते वनपण्ड ते पण्डित्वा लिये यावत् अस्थिपा भाते अलिभमनाय अर्थो  
विशेष करता येवम-कही शक्य ? (जो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त ! अवे चित्ति-  
भा ते तेभना भाते अलिभमनीय वध शके तम नयां (कस्मात्) हे चित्र ! ते तेभना  
भाते अलिभमनीय-विशेष करता येवम केम नयी ? (सोचसग्ग) केमके हे भदन्त !  
ते वनपण्ड विपि सद्धिं छ (एवमथ चित्ता ! तुज्ज पि सेय पिपाए जयरीए  
पणसीनाम राजा परिव्रज, अर्धार्मिक जाव जो सम्म करभरवृत्तिं पक्काइ  
त वह न अहं चित्ता सेय पिपाए जयरीए समोसरिस्तामि) आ प्रभावे  
ह चित्र ! तभावे भाते श्वेतविक्रा नगरीभां प्रवेशीयान् रहे छ ते अर्धार्मिक  
ह यावत् प्रजा पण्डित्वा कर-7 कर लिये पण्ड तेभनु पालन-व लु आरी रीने करते  
नयी तो अवे चित्तिभा तु श्वेतविक्रा नगरीभां केवी दीते वध शक्य छ ?

समवसरत'—इत्य रूपम् अर्थम् नो आद्विद्यते=नो आदरविषयत्वेन हृदिकरोति।  
अतएव--नो परिजानाति=विचारविषयत्वेन एतमर्थं न स्वीकरोति, तत  
एव तृष्णीकः=अवलम्बितमोक्षभावः मन सन्तिष्ठते। ततः खलु स चित्रः  
सारथिः केशिकुमारश्रमणं द्वितीयमपि तृतीयमपि द्वित्रिवारम् एवम् अवादीत्  
—एवं खलु अहं भदन्त ! जितशत्रूणां राज्ञा—इत्यादि—समवसरत खलु भदन्त !  
युयं श्वेतविकां नगरीम् इत्यन्तम् । वाक्यं पूर्वस्तूत्रे गतम्—अयमर्थस्तत एव  
बोध्यः—इति । ततः खलु केशिकुमारश्रमणः चित्रेण सारथिना द्वितीय-  
मपि तृतीयमपि=द्विकृत्योऽपि त्रिकृत्योऽपि एवमुक्तः सन् चित्रं सारथिम्—  
एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्—स यथानामको वनपण्डः स्यात्,  
कृष्णः=कृष्णवर्णः कृष्णावभासः—कृष्ण इव अवभासते न तु वस्तुतः कृष्ण-  
एव । यावत्—यावत्पदेन—'नीलो नीलावभासो हरितो हरितावभासः शीतः  
शीतावभासः स्निग्धः स्निग्धावभासः तीव्रः तीव्रावभासः कृष्णः कृष्णच्छायो  
नीलो नीलच्छायो हरितो हरितच्छायः शीतः शीतच्छायः स्निग्धः स्निग्धच्छायः  
तीव्रः तीव्रच्छायः घनकटितकटच्छायो रम्यो महामेघनिकुरम्बभूतः प्रासादीयो  
दर्शनीयः अभिरूपः' इति संग्राह्यम् । तथा—प्रतिरूपः। अर्थस्त्वेवामौपपातिक-  
सूत्रस्यास्मत्कृतायां पौयूषवर्षिणीटीकायामवलोकनीयः। अथ नूनं चित्रं वनपण्डो

टीकार्थं इसका इस मूलार्थ के जैसा ही है—नवर—किण्होभासे जाव पडिरूवे)मे आया हुआ यावत् पद से यहां 'नीलो, नीलावभासो, हरितो,  
हरितावभासः, शीतः, शीतावभासः स्निग्ध स्निग्धावभासः, तीव्रः, तीव्राव-  
भासः, कृष्णः, कृष्णच्छायो, नीलो, नीलच्छायो, हरितो, हरितच्छायः,  
शीतः, शीतच्छायः, स्निग्धः स्निग्धच्छायः, तीव्रः, तीव्रच्छायः, घन  
कटितकटच्छायो, रम्यो, महामेघनिकुरम्बभूतः प्रासादीयो, दर्शनीयः अभि-  
रूपः' यह पाठ संगृहीत हुआ है। इन पदों का अर्थ औपपातिकसूत्र की  
पौयूषवर्षिणी टीका में हमने स्पष्ट किया है अतः वहीं से जान लेना

टीकार्थ —आनो, मूलार्थ प्रमाणे ७ छे 'नवर' 'किण्होभासे जाव पडिरूवे'  
भा ७ यावत् पद आवेलु छे तेथी अडि "नीलो, नीलावभासो, हरितो,  
हरितावभासः, शीतः शीतावभासः, स्निग्धः, स्निग्धावभासः, तीव्रः, तीव्राव-  
भासः, कृष्णः, कृष्णच्छायो, नीलो, नीलच्छायो, हरितो, हरितच्छायः, शीतः,  
शीतच्छायः स्निग्धः स्निग्धच्छायः, तीव्रः तीव्रच्छायः, घनकटितकटच्छायो, रम्यो,  
महामेघनिकुरम्बभूतः प्रासादीयो, दर्शनीयः, अभिरूपः"आ पाठनो सअड थयो छे  
आ पाठनो अर्थ अमे 'औपपातिक सूत्र'नी पौयूषवर्षिणी टीकाभा। क्यो छे

ઘનપણ્ડસ્તેષાં સ્વત્વુ યદુનાં ટિપદ યાવત્-સરોમૃવાણાપ્ અભિગમનીયઃ ? નો  
અયમર્થઃ સમઃ । કમ્માત્ ? અદન્તઃ । સોપપગઃ ? પૃથમચ ચિત્રઃ । યુત્ના  
કમપિ શ્વેતચિકાયાં નગર્ષાં પ્રદેશી નામ રાજા પરિવસતિ, અધાર્મિકો  
યાવત્, નો સમ્યક્કરભરવૃત્તિં પ્રવર્ત્યતિ । ઇત્ વથ સ્વત્વુ અદ મિત્ર !  
શ્વેતચિકાયાં નગર્ષાં સમયસરિષ્ઠ્યામિ ॥૨૦ ૧૧૫॥

ત્રીકા—‘તપ્ત સે’ ઇત્યાદિ—

તતઃ સ્વત્વુ સ કક્ષીકુમારભ્રમણ વિપ્રેણ સારથિના પૃથમ-ઉક્ત  
પ્રકારેણ ઉક્તઃ સન્ વિપ્રસ્ય સારથે પતમર્થઃ = ‘યૃથ શ્વેતચિકાયાં નગર્ષાં

કા આહાર કરતે હો, થયા એસા સ્થિતિ મેં (સે જૂમ ચિત્તા ! સે થળ  
સહે તેસિ વહુજ દુપય જાવ મરીસિયાળ અભિગમણિજે ? હે ચિત્ર ! વહ  
ઘનપણ્ડાં ઉન બ્રનક ટિપદ યાવત્ ગરીણોં કે ભિય અભિગમનીય હો મક્તા  
હે ? (જો ફળદે સમદે) હે ભત્ત ! એમી સ્થિતિ મેં વહાં વનકે ભિયે પ્રમિ  
ગમનીય નહીં હો મક્તા હૈ । (કમ્મા) હે ચિત્ર ! વહાં ઉનકે ભિયે અભિગ  
મનીય-પ્રવેશ કે યાગ્ય-થયોં નહીં હો સક્તા હૈ ? (વોત્તમગ) થયાં કિ હે  
અદન્ત ! વહાં ઘનપણ્ડાં વિપ્રનમરિત હૈ । (પથામેવ ચિત્તા ! તુજ્ઞપિ સેય ચિયાપ  
ળયરીયે પપ્મીનામ રાયા પરિવસદ, અદમિત્ જાવ જો મમ્મ કમ્મરવિત્તિ  
પવશદ—ઇ કહ ચિત્તા સેયચિયાપ નયરીય સમોસરિસ્તામિ) હસી તરહ સે  
હ ચિત્ર ! તુમ્હારે સિય શ્વેતચિકા નગરી મેં પ્રદેશી રાજા રહણ હૈ વહાં  
અધાર્મિક હૈ યાવત્ પ્રજાજનોં સે કર ટપ્પમલેકર મીં ઉનકા પ્રવૃત્તી તરહ સે પાલન  
પોપથ નહીં કરતા હૈ । તા હે ચિત્ર ! ઉસ શ્વેતચિકા નગરી મેં હમ મોગ કૈને માવ )

માંત્ર અને શોધિતનો આદાર કરતા હોય તો શુ એવી પરિસ્થિતિમાં (સે જૂમ  
ચિત્તા ! સ થળસહે તેસિ વહુજ દુપય જાવ મરિસિનાર્થ અભિગમણિજે ?)  
હ ચિત્ર ! તે વનખડ તે ધણાં ટિપદો યાવત્ સન્સિપો માટે અભિગમનીય અર્થાત  
વિચારણ કરવા શોખ-કલી ચકાય ? (જો ફળદે સમદે) હે ભદત ! એવી સ્થિતિ  
માં તે તેમના માટે અભિગમનીય થઇ શકે તેમ નથી (કમ્મા) હ ચિત્ર ! તે તેમના  
માટે અભિગમનીય-વિચારણ કરવા શોખ કેમ નથી ? (સોયસમગ) કેમકે હે ભદત !  
તે વનખડ વિપ્ર સદિત છે (પથામેવ ચિત્તા ! તુજ્ઞપિ સેય ચિયાપ ળયરીય  
પપ્મીનામ રાયા પરિવસદ, અદમિત્ જાવ જો મમ્મ કમ્મરવિત્તિ પવશદ  
ત કહ જ અદ ચિત્તા સેયચિયાપ નયરીય સમોસરિસ્તામિ) આ પ્રમાણે  
હ ચિત્ર ! તમારે માટે શ્વેતચિકા નગરીમાં પ્રદેશીયજા થકે છે તે અધાર્મિક  
હ યાવત્ પ્રજા પામેથી કર-કસ લઇને પવ્ત તેમનુ પાલન-ચાલુ સારી રીતે કરતો  
નથી તો એવી સ્થિતિમાં તુ ૫ તાનિકા નગરીમાં કેવી રીતે વધ ચક્ર હ ?

खाइमं साइमं पडिलाभिस्सति, पाडिहारिणं पीठल्लगसेज्जासंफ-  
थारणं उवनिमत्तिस्सन्ति । तएणं से केसीकुमारसमणे चित्तं सारहिं  
एवं वयासी अविआइ चित्ता । जाणिस्सामो ॥ सू० ११६ ॥ )

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनं कुमारश्रमणमेवमवा-  
दीत—किं खलु भदन्त ! युष्माकं प्रदेशिना राजा कर्त्तव्यम् ? सन्ति खलु  
भदन्त ! श्वेतविकायां नगर्याम् अन्ये बहव ईश्वरतलवर-यावत्सार्थवाहप्रभृ-  
तयः, ये खलु देवानुप्रिय वन्दिष्यन्ति नमस्सिष्यन्ति यावत् पथुपासिष्य-  
न्ते, विपुलम् अशनं पानं खाद्य स्वाद्यं प्रतिलम्भयिष्यन्ति, प्रतिहारिकेण पीठ

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

(सूत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (मे चित्ते सारही केमि कुमारसमणं एवं  
वयासी) उस चित्र सारथिने केशिकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(किं णं  
भन्ते ! इत्थं पणसिणा रन्ना कायव्व) हे भदन्त ! आपको प्रदेशी राजा  
से क्या तात्पर्य है (सेयं विद्याए नयरीए अन्ने बहवे ईश्वरतलवर जाव सत्थवाहप-  
भिईओ जे णं देवानुप्पियं वदिस्सति णमंस्सिस्सन्ति जाव पज्जुवात्तिस्सन्ति,  
विउलं असणं पणं खाइमं साइमं पडिलाभिस्सन्ति) श्वेतांशिका नगरी में  
और भी बहुत से ईश्वर तलवर यावत् सार्थवाह आदि हैं जो आप देवानुप्रिय को  
बन्दना करेंगे, नमस्कार करेंगे यावत् पथुपासना करेंगे एवं विपुल, अशन  
से पान से खादिम से और स्वादिम से आप को प्रतिलाभित करेंगे ।  
(पडिहारेणं पीठल्लगसेज्जाम थारणं उवनिमत्तिस्सन्ति) एवं समर्पणीय

‘तए ण से चित्ते सारही’ इत्यादि.

सूत्रार्थ—(तए णं) त्थार पथी (से चित्ते सारही केमि कुमारसमणं एवं  
वयासी) ते चित्र सारथिने केशिकुमार श्रमणने आ प्रभाणु कलु के (किं णं भन्ते !  
इत्थं पणसिणा रन्ना कायव्व) हे भदन्त ! आपश्रीने प्रदेशी राजा साथे शी  
निरुणत छे ? (सेय विद्याए नयरीए अन्ने बहवे ईश्वरतलवरजाव सत्थवा  
हपभिईओ जे णं देवानुप्पियं वदिस्सति णमंस्सिस्सन्ति जाव पज्जुवात्ति-  
स्सन्ति विउलं असणं पणं खाइमं साइमं पडिलाभिस्सन्ति) श्वेतांशिका  
नगरीमां पीठ धण्डा ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाहो वगेरे छे के के आप देवानु-  
प्रियने बंदन करशे नमस्कार करशे यावत् पथुपासना करशे अने विपुल अशनधी,  
पानधी, आदीभधी अने स्वादिमधी आपश्रीने प्रतिलाभित करशे. (पडिहारेणं पीठ  
ल्लगसेज्जाम थारणं उवनिमत्तिस्सन्ति) अं पथुपासना पीठ इलक शय्या

बहूना द्विपदपदुपपत्तयाम् विरहादयः पापघातपानाः, तेषाम्  
 अभिगमनीयः=गन्तु योग्यो भवति?, इत्थं केशिकुमारधमणस्य वचनं भुक्त्वा  
 चित्रः प्राह-ह-न्त। अभिगमनीयः=गन्तु योग्यो भवति वनपण्ड इति। पुनः  
 केशिकुमारधमणः पृच्छति-हे चित्र! तस्मिन्= पूर्वोक्ते च खलु वनपण्डे  
 बहवो मिष्टका=मिष्टमातीयाः 'नाम' इति संभावनार्था पापघातकुनिहाः=  
 पापिष्टा व्याधा परिवसन्ति, ये खलु तेषां बहूना द्विपदपदुपपत्तयाम्  
 पक्षवतोद्युताणां स्थितानामेव मांसशोणित=मांसानि शोषितानि च प्राह-  
 रयन्ति=भुज्यन्ते। अथ नूनं चित्र! स वनपण्डः तेषां खलु बहूना द्विपद-पावत  
 सरोद्युताणाम् सर्पाणाम् अभिगमनीयो भवति? चित्रः प्राह अयमर्थः=द्विपदादीनां  
 तदनवशेषास्पाऽयः नो ममथ =न योग्यः, स वनपण्डस्तेषां प्रवेष्टुं न योग्य  
 इति भावः। कश्चि पृच्छति-कस्मात्=कस्मात् कारणात् स वनपण्डः प्रवेष्टुं न  
 योग्यः? चित्रः प्राह-ह मदन्त। स वनपण्डः=विघ्नसहितः। नन केशीपाह-  
 हे चित्र। यथा स वनपण्डस्तेषां द्विपदादीनां प्रवेष्टुं न योग्यः, एवमेव=  
 अनेन प्रकारेणैव श्वेतविना नगर्पाणि प्रवेष्टुं न योग्याः। तथा श्वेतविकाराणां  
 नगर्पां युत्नाक प्रदेशो नाम राजा परिवसति, अधर्मिको यावत् नो सम्पन्न  
 करमरहति प्रवर्तयति। यावत्पदेन=अधर्मिणः अधर्मानुग इत्यादि पदानि  
 सग्राह्याणि, तानि च-एकशतममृशे विलोकीयानि। अर्घोऽपि तत्रैव विला  
 कनीयः। तत् कथं स्वशु अहं चित्र! श्वेतविकाराणां नगर्पां समवसरि  
 त्यामि=आगमिष्यामि? ॥ सू० ११५ ॥

मूलम्—तएषां ते चित्ते सारही केसि कुमारसमण एव वयासी  
 किं णं भते? तुब्बम एएसिणा गन्ना कायव्व? अत्थि णं भते। सेय  
 विधाए नगरीए अन्ने वहवे ईमरतलवर जाव सस्थवाहप्पमिइयो जे  
 णं देवाणुप्पिय वंविस्सति जाव पज्जुवामिस्सति विउल असणं पाण

आदिषे 'अहमिणं जाव' मं भाषा कृत्वा यावत् पदम् 'अधर्मिणः अधर्मानुग'  
 इत्यादि पदों का संग्रह क्रिया गया है। इन पदोंका अर्थ १०१ सूत्र में  
 लिखा गया है ॥ सू० ११० ॥

वेदी विश्वामित्रोऽपि तृतीयो अथ आशी बसो वेदोऽपि "अहमिणं जाव" भां से  
 भाष्य ५४ ॥ तेषां "उपासितं, अधर्मानुगः" अर्चये चरोने। स मय्य भये उ  
 आचरोने। अर्थ १०१भां सूत्रभां स्पष्ट इत्याभा अर्थ १११५५

આઈમં સાઈમં પડિલાભિસ્સતિ, પાડિહારિણં પીઠફલગસેજાસંક-  
થારણં ઉવનિમતિસ્સંતિ । તણં સે કેસીકુમારસમણે ચિત્તં સારહિં  
एवं वयासी अविआइं चित्ता । जाणिस्सामो ॥ સૂ૦ ૧૧૬ ॥ )

છાયા—તતઃ खलु स चित्रः सारथिः केजिनं कुमारश्रमणमेवमवा-  
दीत्—किं खलु भदन्त ! युष्माकं प्रदेशिना राजा कर्त्तव्यम् ? सन्नि खलु  
भदन्त ! श्वेतविकायां नगर्याम् अन्ये बहव ईश्वरतलवर—यावत्सार्थवाहप्रभु-  
तयः, ये खलु देवानुप्रिय वन्दिष्यन्ति नमस्सिष्यन्ति यावत् पर्युपासिष्य-  
न्ते, विपुलम् अशन पानं स्वाद्य स्वाद्यं प्रतिलम्भयिष्यन्ति, प्रतिहारिकेण पीठ-

‘તણં સે ચિત્તે સારહી’ ઇત્યાદિ ।

( સૂત્રાર્થ—(તણં) इसके बाद (मे चित्ते सारही केजिं कुमारसमणं एवं  
वयासी) उस चित्र सारथिने केशिकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(किं णं  
भंते ! इत्थं परसिणा रन्ना कायव्व) हे भदन्त ! आपको प्रदेशी राजा  
से क्या तात्पर्य है (सेयं विद्याए नयरीए अन्ने बहवे ईश्वरतलवर जाव सत्थवाहप-  
भिईओ जे णं देवानुप्रियं वदिस्सति णमस्सिस्सति जाव पज्जुवात्तिस्सति,  
विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभिस्संति) श्वेतांशिका नगरी में  
और भी बहुत से ईश्वर तलवर यावत् सार्थवाह आदि हैं जो आप देवानुप्रिय को  
वन्दना करेंगे, नमस्कार करेंगे यावत् पर्युपासना करेंगे एव विपुल, अशन  
से पान से खादिम से और स्वादिम से आप को प्रतिलाभित करेंगे ।  
(पडिहारेणं पीठफलगसेजामधारणं उवनिमतिस्सन्ति) एव समर्पणीय

‘તણં સે ચિત્તે સારહી’ ઇત્યાદિ.

સૂત્રાર્થ—(તણં) त्थार पधी (से चित्ते सारही केजिं कुमारसमणं एवं  
वयासी) ते चित्र सारथिणे केशिकुमार श्रमणने आ प्रमाणे कलु के (किं णं भंते !  
इत्थं परसिणा रन्ना कायव्व) हे भदन्त ! आपश्रीने प्रदेशी राजा साथे शी  
निश्चत छै ? (सेय विद्याए नयरीए अन्ने बहवे ईश्वरतलवरजाव सत्थवा  
हपभिईओ जे णं देवानुप्रिय वदिस्सति णमस्सिस्सति जाव पज्जुवात्ति-  
स्संति विउलं असण पाणं खाइमं साइम पडिलाभिस्सति) श्वेतांशिका  
नगरीमां पीठा धण्डा ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाहो वगेरे छै के ने आप देवा-  
नुप्रियने बंदन करशे नमस्कार करशे यावत् पर्युपासना करशे. अने विपुल अशनथी,  
पानथी, आहीभथी अने स्वादिमथी आपश्रीने प्रतिलाभित करशे. (पडिहारेणं पीठ  
फलगसेजामधारणं उवनिमतिस्सति) अने समर्पणीय पीठ इलक शय्या

फलकशस्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयिष्यन्ति । ततः स्वसु स केसीकुमारभमण  
विष सारथिमेवमवासीत्-अपि च विष । शास्यामः ॥ सू० ११६ ॥

टीका—‘तपणं से’ इत्यादि--

टीका— ततः स्वसु स विषः सारथिः केकिनं कुमारभमणम् एवम्  
वक्ष्यमाणप्रकारेण भवासीत्-उक्तवान्-किं स्वसु मन्त्र । युष्माकं मदेशिना राज्ञः  
कर्त्तव्यम्-प्रदेशिनो राज्ञः सभाशालां भवतां भास्ति किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः ॥  
हे मद-त । श्वेतविकार्या नगरीं स्वसु अये वहवः ईश्वरसम्बर यावत्सार्यं  
वाटप्रसृत्यः स्तिति । अथ ‘यावत्’-पदेन-‘माटम्बिककौटुम्बिकेभ्यश्चेष्टि-  
सेनापति-’ इति सम्राट्पुत्रम् । ये ईश्वरादयः स्वसु देवानामपि बन्धित्वन्ते-  
स्त्वोपयन्ति नमस्यन्ति-प्रणता भविष्यन्ति, यावत् यावत्पदेन-‘सत्कारयि-  
ष्यन्ति सम्मानयिष्यन्ति, करुणा मङ्गलं देवतं चैतयम्-इति सम्राट्पुत्रम् ।  
त-सत्कारयिष्यन्ति अभिमुखगमनादिना, सम्मानयिष्यन्ति-उपनिम-  
दानादिना, तथा-‘करुणा-रूपानस्वरूपम्, मङ्गलं-मङ्गलस्वरूपम् देवतम्-

पीठफलकशस्यासंस्तारक ग्रहण करने के लिये आपसे मार्धना करेंगे । (तपण  
स केसीकुमारभमणे विष सारथि एवं वयासी) तब केसीकुमारभमणने विष  
सारथीसे इस प्रकार कहा (अभिमाइ विषा जाविस्सामो) हे विष । विचार करेंगे)

टीकायं स्पष्ट है नगर ‘तसम्बर नार सत्यथाइ’ में आगत यावत् पदसे  
यहां ‘माटम्बिक-कौटुम्बिकेभ्यश्चेष्टिसेनापति’ पाठ का ग्रहण हुआ है ।  
‘अथ सिस्सति भाव पञ्जुवासिति’ में आगत यावत् पद से ‘सत्कारयिष्यन्ति  
सम्मानयिष्यन्ति, करुणा मङ्गलं देवतं चैतयम्’ इस पाठ का संग्रह हुआ है ।  
अभिमुखगमनादि द्वारा जो सम्मान प्रदर्शित किया जाता है उसका नाम  
सत्कार है वसति आदि के देने से जो भक्ति प्रदर्शित हो जाती है उसका  
सत्कारक अर्थ अथवा आपने बिन वी अर्थ (त एण मे केसीकुमारभमणे विष  
सारथि एवं वयासी) तथा केष्टिभार भमणे विष सारथिने अथ भमणे अर्थ  
(अभिमाइ विषा जाविस्सामो) के विष । विचार करीश ।

टीकायं — स्पष्ट है नगर “तसम्बर नार सत्यथाइ” भां के यावत् पद  
आवेष्ट है, तथा अर्थ ‘माटम्बिककौटुम्बिकेभ्यश्चेष्टिसेनापति’ पाठने स अर्थ  
अर्थ है ‘अथ सिस्सति भाव पञ्जुवासिति’ भां आवेष्टा यावत् पदार्थ ‘सत्कार  
यिष्यन्ति, सम्मानयिष्यन्ति, करुणा मङ्गलं देवतं चैतयम्’ अथ आपने  
स अर्थ अर्थ है अभिमुख गमन-पदेश वडे ७ स भाव आपका भां आवे है तेष  
नाम सत्कार है । निवास भां अथ वने आपीने के अर्थ प्रदर्शित करवाभां आवे

धर्मदेवस्वरूपम्, चैत्यं=चित्तिः=विशिष्टज्ञान, तथा युक्त सर्वथा विनिष्टज्ञानवन्त-  
मित्यर्थः, इति बुद्ध्या पयुषामित्यन्ते=सेविष्यन्ते। तथा-त्रिपुलं=पञ्चगुम् अन्नानः  
पानं खाद्यं खाद्यं पतिलम्भयिष्यन्ति=प्रदास्यन्ति। तथा-प्रातिहारिकेण=पुनः  
समर्पणीयेन पीठफलमग्न्यासंस्तारकेण-पीठफलकादयः प्राग्व्याख्याताः, तेषां  
समाहारस्तेन उदनिमन्त्रयिष्यन्ति-प्रातिहारिकं पीठफलमग्न्यासंस्तारकं च  
ग्रहीतुं भवन्तं प्रार्थयिष्यन्ति-इति। ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्र सार-  
यिम् एवम्=भवेन प्रकारेण अवादीतु=उक्तवान्-'अविभाइ'-अपि च चित्र।  
हास्यामः=विचारयिष्यामः इति ॥ सू० ११६ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं वदइ  
नमंसइ, केसिसस कुमारसमणस्स अंतियाओ कोट्टयाओ चेइयाओ  
पडिणिकखनइ, जेणेव सावत्थी णयरी जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे  
तेणेव उवागच्छइ, कोडुवियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-  
खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घंट आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह,  
जहा सेयंवियाए णयरीए णिगच्छइ तहेव जाव वसमाणे  
कुणालाजणवयस्स सज्झ मज्झेणं जेणेव केइयअच्चे जेणेव  
सेयविया णयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ,  
उज्जाणपालए सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी- जया णं  
देवाणुप्पिया! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे पुव्वा-  
णुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागच्छिज्जा तथा णं  
तुव्वे देवाणुप्पिया! केसिकुमारसमणं वदिज्जाह नमंसिज्जाह वदित्ता  
नमसित्ता अहापडि रूवं उग्गहं अणुजाणेज्जाह, पडिहारिणं पीढ-  
फलं जाव उवनिम तिज्जाह, एयमोणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणेज्जाह।

नाम सन्मान है। श्वेतांवरिका नगरी के लोग आप कल्याणस्वरूप हैं, मंगस्वरूप है धर्म-  
देवस्वरूप हैं तथा चैत्य विशिष्ट ज्ञानवान् ऐसा मानकर आपकी सेवा करेंगे। सू. ११६।

छ तेह नाम सन्मान छ श्वेताभिषा नगरीना बोझा आपश्री ते कल्याण स्वरूप,  
मंगलस्वरूप तेमज्ज शैत्यविशिष्ट ज्ञानवान् मानीने आपनी सेवा करथे। ॥सू. ११६॥



फलकशाव्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयिष्यन्ति । ततः स्वस्त्यु स केशीकुमारभ्रमण  
विप्र सारथिमेवमवादीत्—अपि च विप्र । शास्त्रायाम् ॥ सू० ११६ ॥

टीका—‘तएव से’ इत्यादि—

टीका— ततः स्वस्त्यु स विप्रः सारथिः केशिनः कुमारभ्रमणम् परम्  
वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्—उक्तवान्—किं स्वस्त्यु भवन्त । युष्माकं पदेष्टिना राजा  
कर्त्तव्यम्—प्रदेष्टिनो राजाः सकाशात् भवतां नास्ति किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः ॥  
हे भवन्त । श्वेतविकार्या नगर्या स्वस्त्यु अन्ये पश्यतः ईश्वरतमवर यावत्सारथि  
वाहप्रसूतयः सन्ति । अपि ‘यावत्’—पदेन— माह्विककौटुम्बिकेभ्यमेष्टि-  
सेनापति—’ इति सप्राधान्यम् । ये ईश्वरादयः स्वस्त्यु देवानामपि वन्दिष्यन्ते  
स्तोष्यन्ति नमस्सन्ति—प्रयता मयिष्यन्ति, यावत् यावत्पदेन—‘सत्कारयि  
ष्यन्ति सम्मानयिष्यन्ति, कस्यापि मङ्गलं दैवतं चैत्यम्—इति सप्राधान्यम् ।  
त —सत्कारयिष्यन्ति अभिमुखगमनादिना, सम्मानयिष्यन्ति—उत्सव-  
दानादिना, तथा—‘कस्यापि मङ्गलं दैवतं चैत्यम्—इति सप्राधान्यम्—

पीठफलकशाव्यासंस्तारक ग्रहण करने के लिये आपसे पार्थना करेंगे । (तएव  
से केमीकुमारभ्रमणे विप्र सारथि एव पयासी) तव केशीकुमारभ्रमणे विप्र  
सारथीसे इस प्रकार कहा (अभिभाइ विष्णा जागिस्सामो) हे निम । विचार करेंगे)

टीकायं स्पष्ट है नगर ‘तमवर जाव सत्यवाह’ में आगत यावत् पश्ये  
यहां ‘माह्विक-कौटुम्बिकेभ्यमेष्टिसेनापति’ पाठ का ग्रहण हुआ है ।  
‘जम सिस्सति जाव पञ्जुत्तासंति’ में आगत यावत् पश्ये से ‘सत्कारयिष्यन्ति  
सम्मानयिष्यन्ति, कस्यापि मङ्गलं दैवतं चैत्यम्’ इस पाठ का संग्रह हुआ है ।  
अभिमुखगमनादि द्वारा जो सम्मान प्रदर्शित किया जाता है उसका नाम  
सत्कार है वसति आदि के देने से जो भक्ति प्रदर्शित हो जाती है उसका

सं० ११६ अथवा ११७ आपने विनयी करी । (त एव मे केमीकुमारभ्रमणे विप्र  
सारथि एव पयासी) त्वां हे केशिकुमार भ्रमणे विप्र सारथिने आ भ्रमणे अथ  
(अभिभाइ विष्णा जागिस्सामो) हे विप्र । विचार करीय ।

टीकायः—स्पष्ट ० उ नगर “यल्लवर जाव सत्यवाह” भां ने यावत् पश्ये  
आवेत् ०, तथी अदी “ माह्विककौटुम्बिकेभ्यमेष्टिसेनापति ” पाठने स अथ  
यथे ० “जम सिस्सति जाव पञ्जुत्तासंति” भां आवेत् यावत् पश्ये ‘सत्कार  
यिष्यन्ति, सम्मानयिष्यन्ति, कस्यापि मङ्गलं दैवतं चैत्यम्” आ पाठने  
स अथ यथे ० अभिमुख गमन—वगेरे वदे ने स भान आपराभां आवे ० तेत्  
नाम सत्कार ० निवाअ भांटे स्थान वगेरे आपरीने ने भक्ति प्रदर्शित करवाभां आवे

धर्मदेवस्वरूपम्, चैत्य = चित्ति = विशिष्टज्ञान, तथा युक्तं सर्वथा विशिष्टज्ञानवन्त-  
मित्यर्थः, इति बुद्ध्या पर्युपासित्यन्ते = सेविष्यन्ते । तथा-त्रिपुलं = पञ्चगु अशनं-  
पानं खाद्यं खाद्यं प्रतिलम्भयिष्यन्ति = पदाभ्यन्ति । तथा-प्रातिहारिकेण = पुनः  
समर्पणीयेन पीठफलकगद्यासंस्कारकेण-पीठफलकादयः प्राग्व्याख्याताः, तेषां  
समाहारस्तेन उपनिमन्त्रयिष्यन्ति-प्रातिहारिक पीठफलकगद्यामंस्तारकं च  
ग्रहीतुं भवन्तं प्रार्थयिष्यन्ति-इति । ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्र सार-  
यिम् एवम् = अनेन प्रकारेण अवादीत = उक्तवान्-‘अविभाइ’-अपि च चित्र ।  
हास्यामः = विचारयिष्यामः इति ॥ सू० ११६ ॥

मूत्रम्—तएणं से चित्ते सारही केशिकुमारसमणं वदइ  
नमंसइ, केशिस्त कुमारसमणस्त अंतियाओ कोट्टयाओ चेइयाओ  
पडिणिकखनइ, जेणेव सावत्थी णयरी जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे  
तेणेव उवागच्छइ, कोट्टवियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-  
खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्यंट आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह,  
जहा सेयंवियाए णयरीए णिग्गच्छइ तहेव जाव वसमाणे  
कुणालाजणवयस्स सज्झं सज्झेणं जेणेव केइयअद्धे जेणेव  
सेयविया णयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ,  
उज्जाणपालए सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी— जया णं  
देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे पुट्ठा-  
णुपुट्ठि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागच्छिज्जा तथा णं  
तुव्वे देवाणुप्पिया ! केशिकुमारसमणं वदिज्जाह नमंसिज्जाह वदित्ता  
नमसित्ता अहापडि खवं उग्गहं अणुजाणेज्जाह, पडिहारिएणं पीठ-  
फलग जाव उवनिम तिज्जाह, एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणेज्जाह ।

नाम सन्मान है, श्वेतांवि का नगरी के लोग आप कल्याणस्वरूप है, भगस्वरूप है धर्म-  
देवस्वरूप हैं तथा चैत्य विशिष्ट ज्ञानवान् ऐसा मानकर आपकी सेवा करेंगे । सू. ११६ ।

छे तेह नाम सन्मान छे श्वेताणिका नगरीना बोडो आपश्री ते कल्याण स्वरूप,  
भगणस्वरूप तेमज्जे चैत्यविशिष्ट ज्ञानवान् भानीने आपनी सेवा करेथे । सू. ११६ ॥

तण्णं ते उज्जाणपालगा चित्तेण मारहिणा गय वृत्ता समाणा हट्ठ  
 तुट्ठ जाव हिययो करयलपरिगहिय जाव एव वयासी-तहत्ति  
 अणाठ धिणाणो वयणं पडिसुणंति ॥ सू० ११७ ॥

छाया—या गच्छ म विप्रः मारुतिः कमिकुमारभमण वन्दते नम  
 स्पति कनिन कुमारभमणस्य भन्तिवात् कोष्ठकात् चिन्त्यात् प्रनितिष्ठावति,  
 यत्रैव आरुर्त्ता नगरी यत्रैव राजमार्गमवगात् आवासस्तत्रैव उपागच्छति,  
 कौटुम्बिकपुर्यान् कादयति, गच्छयिषा पयमवादीन्-निममय मो देवान्  
 मियाः । दातुं पश्य मन्त्राय युक्तमव उपस्थापय, यथाश्चेत्तविकापा-

(तण्णं) इमं याद (ते चित्त मारुही) उम विप्र मारुहीने (केमि  
 कुमारभमण गट्ठ नम गट्ठ) केशीकुमार भमण को वन्दना की और नमस्कार  
 किया (कनिन कुमारभमणस्य भन्तिवाओ काट्टयाओ चट्टयाओ पडिनिवत्तम)।  
 पक्षात् मं यद कृष्णामार भमण कं नाम स और उम कोष्ठक चिन्त्या स च  
 भाषा (जेणेष मारुही नगरी जेणेष राजमार्गमोगाव आवास तेणेष उपा  
 गच्छ) आकर यत् जहा भावती नगरी थी एव उसमें जिस तरफ राज  
 मार्गपर स्थित आवास था वहाँ पर आया (काट्टु विप्रपुरिस सहावे) वहाँ  
 आकर क उमन गोट्टुम्विह-आज्ञाकारी पुरुषों का बुलाया (महाविष्ठा एव  
 वयासी) बुलाकर उनमें गया कहा-(निष्पामव मो देवान्मिया । पाउग्घट्ट  
 भासरह जुनाम उपट्टवह) इ देवान्मिया । तुम लोग शीघ्र चार घंटों  
 बाद मन्त्र । का तया वरक प आओ (जहा रथयियाण नयरीण निगच्छट्ट,

त गण म विप्रः मारुही' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(म गण) त्याग पछी (म विप्र मारुही) ते विप्रमारुहीने  
 (केमिकुमारभमण गट्ठ नम गट्ठ) केशीकुमार भमणने वन्दन तेमच नमस्कार किया  
 (कनिन कुमारभमणस्य भन्तिवाओ-काट्टयाओ चट्टयाओ पडिनिवत्तम) त्याग  
 पछी ते केशीकुमार भमण पक्षेयी आने ते कोष्ठक चिन्त्याओ पक्षात् अथ  
 (जेणेष मारुही नगरी जेणेष राजमार्गमोगाव आवास तेणेष उपागच्छ)  
 आनेने ते न्या आवासी न गरी दती अन तेमां पञ्च न्यां राजमार्ग पर स्थित  
 निवासस्थान दत्त न्यां आये (काट्टु विप्रपुरिस सहावे) त्यां पट्टाओने तेमे  
 कौटुम्बिक पुरोहित-आज्ञाकारी पुरुषने आवासा (महाविष्ठा एव वयासी) बुला  
 बीने तेमने आ प्रमाण कसुं (निष्पामव मो देवान्मिया । पाउग्घट्ट भासरह  
 जुनाम उपट्टवह) । देवान्मिया । नभे लोक मन्त्रे आर मन्त्राओभी मुन

नगर्यां निर्गच्छति तथैव यावद् वसन् कुणालाजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव  
केकयाद्धं यत्रैव श्वेताविका नगरी यत्रैव मृगवनम् उद्यानं तत्रैव उपाग-  
गच्छति, उद्यानपालकान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-यदा खलु देवा-  
नुप्रियाः । पार्श्वोपत्यीयः केशीनामकुमारश्रमणः पूर्वानुपूर्व्यां चरन् ग्रामा-  
नुग्राममद्रवन् इहोगच्छेत्, तदा खलु यूयं देवानुप्रियाः । केशिकुमारश्रमणं

तदेव जाव वसमाणे कुणाला जनवयस्स मज्झमज्झेणं जेणेव केइयअद्धे  
जेणेव सेयंविद्या णयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) यहाँ  
से आगे चित्र सारथी जिस प्रकार श्वेतांविका नगरी से निकल कर कुणाला  
जनपद (देश) में स्थित श्रावस्ती नगरी आया, उसी प्रकार वह श्रावस्ती नगरी  
से भी निकलकर केकयाद्धं जनपद में स्थित श्वेतांविका नगरी में पहुँचा.  
इसलिये यहाँ पर पूर्वकी तरह से ही समग्र पाठ संगृहीत करना चाहिये.  
इसी बात को सूचित करने के लिये 'जहा सेयंविद्याए णयरीए णिगगच्छइ'  
इत्यादि यह पाठ कहा गया है. अर्थात् वह चित्रसारथि जिस प्रकार से  
श्वेतांविका नगरी से निकलता है, उसी प्रकार से यावत् मार्ग में पड़ाव डालता  
हुआ वह कुणाला जनपद के मध्यमध्य से होता हुआ जहाँ केकयाद्धं था  
और जहाँ श्वेतांविका नगरी थी और उस में भी जहाँ मृगवन नाम का  
उद्यान था वहाँ आया (उज्जाणपालए सदावेइ) वहाँ आकर के उसने उद्या-  
नपालों को बुलाया. (सदावित्ता एव वयासी) वहाँ आकर के उसने ऐसा  
कहा-(जया णं देवाणुप्पिया ! पामावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे पुब्बा-

अर्थ तैयार करीने लावे. (जहा सेयंविद्याए णयरीए णिगगच्छइ, तदेव जाव  
वसमाणे कुणाला जनवयस्स मज्झमज्झेणं जेणेव केइय अद्धे जेणेव  
सेयंविद्या णयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) अर्थात् ते  
चित्रसारथी पहुँचा जेभ ते श्वेतांभिकानगरीथी नीकणीने कुणाला जनपदमा स्थित  
श्रावस्ती नगरीमां आव्यो इतो, तेभज ते श्रावस्ती नगरीथी णहार नीकणीने केकयाद्धं  
जनपदमा स्थित श्वेतांभिका नगरीमा पहुँच्यो. अर्थात् ते प्रमाणे ज वरुणं समल्ल  
लेवुं जेधजे. ओ बातने जनाववा भाटे ज 'जहा सेयंविद्याए णयरीए णिगगच्छइ'  
वगेरे पाठने उल्लेख करवामा आव्यो छ जेट्ठे के ते चित्र सारथि जेभ श्वेतां-  
भिका नगरीथी नीकणे छ, ते प्रमाणे ज यावत् मुकाम करतो ते कुणाला जनपदमा  
जेकडम मध्यमां पसार थधने जया केकयाद्धंमा श्वेतांभिका नगरी इती अने तेमां  
पथु जया मृगवन नामे उद्यान इतु त्या आव्यो (उज्जाणपालए सदावेइ) त्यां  
आवीने तेणे उद्यान पालने जालाव्यो (सदावित्ता एव वयासी) जालावीने आ  
प्रमाणे छहुं. (जया ण देवाणुप्पिया ! पामावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे

तएण ते उज्जाणपोलगा चित्तेण मारहिणा एव बुत्ता समणा हह  
सुट्ट जाव हिययो करयलपरिगहिय जाव एव वयासी-तहसि  
अणाए विणएणं वयणं पढिसुणंति ॥ सु० ११७ ॥

छाया—उत खलु स चित्र सारथिः कश्चिक्कुमारभ्रमणं वन्दते नम  
स्पति केसिनं कुमारभ्रमणस्य भन्तिकात् कोष्ठपात् चैत्यात् प्रतिनिष्ठावति,  
पत्रैव आतरसी नगरी यथैव राजमार्गमवगाह आवासेस्तत्रैव उपागच्छति,  
कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-सिपमेव मो देवानु  
मिया ! चातुघटम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयत, यथा श्वेतविकापा-

(तएण) इससे बाद (से चित्ते सारथी) उस चित्र सारथीने (केसि  
कुमारसमण वदइ नमसइ) केशीकुमार भ्रमण को चन्दना की और नमस्कार  
क्रिया (केसिस्स कुमारसमणस्स अठियाओ कोट्टपाओ वेइयाओ पडिनिक्खमइ)  
पमात् में वह केशीकुमार भ्रमण के पास से और उस कोष्ठक चैत्य से बजा  
आया (जेणेव सावथी नयरी जेणेव रायमग्गमोगाह आवासे तेणेव उवा  
गच्छइ) आकर वह जहाँ भावस्ती नगरी थी एवं उसमें जिस तरफ राज  
मार्गपर स्थित आयाम था वहाँ पर आया (चातु विघपुरिसे सहावइ) वहाँ  
आकर के उसने कौटुम्बिक-आज्ञाकारी पुरुषों का बुलाया (सहाविचा एव  
वयासी) बुलाकर उनसे ऐसा कहा-(खिप्पामेव मो देवानुमिया ! चातुघट  
भासरइ जुतामेव उवट्टवेह) हे देवानुमिया ! तुम लोग शीघ्र चार घड़ों  
बाद अश्वरथ को तैयार करके छे आओ (जहा सेव चियाए नयरीए निगच्छइ,

त एण से वित्ते ! सारथी' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एण) तथा यही (से वित्ते सारथी) ते चित्रसारथीने  
(केसिकुमारसमण वदइ नमसइ) केशीकुमार भ्रमणने वदन तेभन नमस्कार कर्त्त  
(केसिस्स कुमारसमणस्स अठियाओ-कोट्टपाओ वेइयाओ पडिनिक्खमइ) तथा  
यही ते केशीकुमार भ्रमण पसेथी अने ते केष्ठक चैत्यभांसी जहा आसी भये  
(जेणेव सावथी नयरी जेणेव रायमग्गमोगाह आवासे तेणेव उवागच्छइ)  
आसीने ते अमा भावस्ती नगरी छती अने तेमा पण अमा राजमार्ग पर स्थित  
निवासस्थान छतु तथा अमा थे (चातु विघपुरिसे सहावइ) तथा पदांसीने तेदे  
कोट्टुनिक्ख पुरिसे-आज्ञाकारी पुरुषोने आवाण्या (सहाविचा एव वयासी) आवा  
सीने तेभने अमा प्रभावे छतु (निगममेव मो देवानुमिया ! चातुघट भासरइ  
जुतामेव उवट्टवेह) हे देवानुमिया ! तमे दोडा सत्यरे आर पदांसीने पुन

टीका—‘तृणं से’ इत्यादि—ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणं  
 वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा केशिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिकं  
 समीपात्, तदनुकोष्ठं चैत्याच्य प्रतिनिष्कामति=निस्सरति, प्रतिनिष्काम्य  
 यत्रैव श्रावस्ती नगरी यत्रैव च राजमार्गमवगाढः आवासः, तत्रैव उपा-  
 गच्छति, उपागत्य कौटुम्बिकपुरुषान्=भृत्यान् शब्दयति, शब्दयित्वा एव-  
 मवादीत्—भो देवानुमियाः ! चातुर्घण्टं=चतुर्घण्टविभूषितम् अश्वरथं युक्त-  
 मेव=योजिताश्वमेव उपस्थापयत=उपस्थितं कुरुत । इतोऽग्रे यथाश्वे तविकाया  
 नगर्यां निरसृत्य चित्रः सारथिः कुणाला जनपदे श्रावस्त्या नगर्यां गतः,  
 तथैव स श्रावस्त्या नगर्या अपि निरसृत्य केकयाद्वजनपदे श्वेतविकायां  
 नगर्यां च गतः । अतोऽत्र पूर्वदेव समग्रः पाठः संग्राह्यः । अमुमेवार्थमुच्य-  
 यितुमाह—‘यथा श्वेतविनाया नगर्यां निर्गच्छति, तथैव यावत् वसन् कुणा-  
 लाजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव केकयाद्वं यत्रैव श्वेतविका नगरी यत्रैव  
 मृगवगम् उद्यानं तत्रैव उपागच्छतीति । तत्र मृगवने उद्याने उपागत्य स  
 उद्यानपालकान् शब्दयति=आह्वयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—भो देवानु-  
 मियाः ! यदा खलु पार्श्वपृथ्वीयः=पार्श्वनाथतीर्थकरपरम्परायां स जातः  
 केशी नाथ कुमारश्रमणः पूर्वानुपूर्व्या=पूर्वसाधुपरम्परया चरन्=विचरन्  
 ग्रामानुग्रामश्च=एकस्माद् ग्रामादनन्तरस्थितं ग्रामं द्रवन्=क्रमेण गच्छन्  
 हृदं=श्वेतविकायां नगर्याम् आगच्छेत्=आयात्, तदा खलु यूयं देवानुमियाः  
 केशिकुमारश्रमणं वन्दध्व नमस्यत वन्दित्वा नमस्यित्वा, यथापतिरूपं=  
 साधुकल्पानुसारम् अवग्रहं=वसनौ निवासार्थमाज्ञा अनुज्ञापयत=अर्पयत,

आणाए विणएणं वयण पडिसुणे ति) चित्र सारथी के द्वारा इस प्रकार कहे गये वे  
 उद्यानपाल हृदतुष्ट यावत् हृदय हुए और दोनों हाथ जोड़कर बड़े विनय  
 के साथ यावत् इस प्रकार से बोले—हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा हमें प्रमाण  
 है अर्थात् आपने कहा है हम वैसा ही करेंगे इस प्रकार अपनी ओर से स्वीकृति  
 के वचन कहकर उन्होंने चित्र सारथी की आज्ञा के वचनों को स्वीकार कर लिया।

एव वयासी—तर्हात् आणाए विणयेणं वयण पडिसुणे ति) चित्रसारथीवडे आ  
 प्रमाणे आज्ञापित थयेला ते उद्यानपालके हृद-तुष्ट यावत् हृदयवाणा थया अने  
 भन्ने हाथ जोडीने विनयपूर्वक आ प्रमाणे कडेवा लाग्या के हे स्वामिन् ! आप  
 श्रीनी आज्ञा मारा भाटे प्रमाणरूप छे ओटवे के आपश्रीओ ने प्रमाणे आज्ञा करी  
 छे अने यथा समय-समय आचरिशीं आ प्रमाणे पोताना तरक्षी स्वीकृतिना  
 ने कहीने

बन्धुध्वं नमस्त्यक्त, चन्दिशवा नमस्त्यक्त्वा यथाप्रतिरूपम् अथमहम् अनुज्ञा  
पयस, मातिहारिकेण पीठ-फलक-यावत् उपनिमन्त्रयत्, एतामीदृशिका  
क्षिप्रमव मत्पर्वयत्-। ततः स्वच्छ ते उद्यानपालकाः चित्रेण सागपिना  
पशुमुक्ता म-तो दृष्टव्य यावद्दयाः करतलपरिमृदीत यावत् एवमवादीत-  
तथेति, आज्ञाया विनयेन वचन प्रतिश्रुति ॥ सू० ११७ ॥

शुपुष्पि चरमाणे, गामाणुगाम दुःखमाणे इहमाणेच्छिज्जा तयात्तं तुम्हे देया  
शुपुष्पा! कसिङ्गमारमनण वदिज्जह) हे देवानुप्रियो! जय पार्श्वनाथ भगवान्  
परपरा में विचरने वाले केशी नामके कुमारभमण पूर्वसाधु परम्परा के  
अनुसार विचरते हुए तथा एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करते हुए  
यहाँ पर पधारे, तब तुम हे देवानुप्रियो! केशिकुमार भमण को बन्दना करना  
(नमसिज्जाह) नमस्कार करना (वदिता नमसित्ता अहापडिक्कर उगगह  
अणुज्जाणेज्जाह) बन्दना नमस्कार कर फिर तुम उन्हें साधुकरगानुसार वसति में  
नियाम्त करने के लिय आज्ञा द् देना (पाडिहारिणण पीठफलक नाच  
उपनिमत्तिज्जाह) और समपणीय पीठफलक आदि जैसा वे चाहे वैसा  
तुम उन्हें देने की प्रार्थना करना (एयमाणसिय भित्तामेर पयप्पिमेज्जाह)  
बाद में मैं ही इस आज्ञा को जब पीछे छोड़ लौटाना-अर्थात् जब कश्चि  
कुमार भमण आ जायें-तब तुम उनके भागमनादि के उत्तान्त की हमें  
छोड़ ही लपर देना (तएण ते उज्जाणपालका विराण सारणिण एव पुत्ता  
समाणा द्दुत्तुद्ध जाव दिवया करयल्लरिग्गहिण नाव एव वयासी-तद्वि  
पुत्ताणुपुत्ता चरमाण, गामाणुगाम दुःखमाणे इहमाणेच्छिज्जा,  
तयाण तुम्ह देमाणुपुष्पा! कसिङ्गमारमनण वदिज्जह) हे देवानुप्रियो!  
पार्श्वनाथ भगवान् की परपरा में विचरने करनेवाले केशी नामके भमण  
पूर्वसाधु परपरा मुख्य विचरने करनेवाले तेमने के प्राधीनीके भागमा विहार  
करते करते आधी पधारतयारे हे देवानुप्रियो! वमिओ कसिङ्गमार भमणने वदन करने.  
(नमसिज्जाह) नमस्कार करने (वदिता नमसित्ता अहापडिक्कर उगगह  
अणुज्जाणेज्जाह) बन्दना तेमने नमस्कार करीने वमि तेमने साधु स्थानुसार  
वसतीमां निवस करनेवाली आज्ञा आपणे (पाडिहारिणण पीठफलक नाच उ  
निमत्तिज्जाह) अने समपणीय पीठफलक वगैरे ने वस्तुनी तेजोथी  
भमणी करे ते वस्तु नाम तेमने नमस्कारे समचित्त करने. (एयमाणसिय भित्ता  
मेर पयप्पिणेज्जाह) अने ज्यारे आ ज्यु यत्त नाच तयारे वमि भने कसिङ्गमार  
भमणनी जदी पधारती भमण आपणे (तएण ते उज्जाणपालका विराण  
सारणिण एव पुत्ता समाणा द्दुत्तुद्ध जाव दिवया करयल्लरिग्गहिण नाच

जाव वच्चावेत्ता तं सहत्थं जाव उवणेइ । तएणं से पएसी राया  
चित्तस्स सारहिस्स तं सहत्थं जाव पडिच्छइ, चित्तं सारहिं सकारेइ  
सम्माणेइ पडिविसज्जेइ । तएणं से चित्ते सारही पएसिणा रण्णा  
विसज्जिए समाणे हट्टजाव हियए पएसिस्स रन्नो अंतियाओ पडि-  
णिवखमइ, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंटे  
आसरहं दूरुहइ, सेयंविआए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे  
तेणेव उवागच्छइ, तुरगे णिगिण्हइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ,  
ण्हाए जाव उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वत्ती-  
सइवद्धएहिं नाडएहिं वरतरुणीसपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे उवगा-  
इज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सदफरिस्स जाव विहरइ ॥सू० ११८॥

छाया-ततः खलु सचित्रः सारथिः यत्रैव श्वेतांविका नगरी तत्रैव उपागच्छति,  
श्वेताविकां नगरीं मध्यमध्येन अनुप्रविशति, यत्रैव प्रदेशिनः राज्ञः गृहं यत्रैव चाद्या  
उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथात् प्रत्य-

‘तएणं ते चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चित्ते सारही जेणेव सेयंविआ नयरी  
तेणेव उवागच्छइ) वह चित्र सारथि जहां श्वेतांविका नगरी थी—वहां गया  
(सेयंविआ नयरीं मज्झं मज्झेणं अणुपविसइ) वह उस नगरी में बीचों  
बीच के मार्ग से होकर प्रविष्ट हुआ (जेणेव पएसिस्स रण्णो गिहे जेणेव  
वाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ) प्रविष्ट होकर वह  
वहां गया जहां कि प्रदेशी राजा का घरथा और जहां  
प्रदेशी राजा की वाद्य उपस्थानशाला थी (तुरगे निगिण्हइ) वहां पहुँच

‘त एण ते चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एण) त्थार पछी (से चित्ते सारही जेणेव सेयंविआ नयरी तेणेव  
उवागच्छइ) ते चित्र सारथि ज्थां श्वेतांजिनगरी डती त्यां गथे (सेयंविआ नयरीं  
मज्झंमज्झेण अणुपविसइ) ते ते नगरीना मध्यभागथी थधने प्रविष्ट थथे,  
(जेणेव पएसिस्स रण्णो गिहे जेणेव वाहिरिया उवट्ठाण साला तेणेव उवागच्छइ)  
प्रविष्ट थधने ते त्या गथे न्या प्रदेशी राजगृहं घर डतु अने न्या प्रदेशी राजनी आद्य



तथा—प्रतिहारिकेण=पुनः समर्पणीयेन पीठकस्य यावत्=पीठकस्य शय्या  
संस्कारकेण उपनिमन्त्रयत मातिहारिक पीठकस्य यावत् यथा स पृथ्वीयात्  
तथा त कश्चिद्भूमिभ्रमणं मार्थयसेत्यर्थः । एव कृत्वा एताम् आश्रमिकां  
शिमयेष मर्यपयत=वेदिकुमारभ्रमणस्य आगमनादिवृत्तान्तं मन्त्रं शिमयस्य  
वृत्तयति । मन्त्रः स्यात् त उद्यानपाठकाः चित्रेण सारथिना एवमुक्तः ।  
सन्तः इष्टुष्टयावद्दया=इष्टुष्टुष्टितानन्दिताः प्रीतिमनसाः परमसौमनस्यिताः  
इषं वनविमर्षं दूयाः, करतलपरिगृहीतं यावत्=यावत्पदेन—‘द्वयमस्य शिर  
भाषत’ मन्त्रके अश्रमि कृत्वा’ इति सप्रारम्भम्, इष्टुष्टुष्टयादिपदानां कर  
तलेष्टयादिपदानां गार्थः पूर्ववद् वाच्यः, यत्=यद्यप्यप्यकारण भवादीन्=  
उक्तवान्—तथैति=हे दधानुमिय ! यथा युगमाज्ञापयन्ति तथैव ममापरिचयः  
इति । एव श्रीदारभवनमुपवा त उद्यानपाठकास्तस्य विप्रसारवाः आज्ञाया  
वचनं चिनयनं प्रतिशृण्वन्ति=श्रीकृष्ण इति ॥ गृ० ११७ ॥

मूलम्—तद्यथा से चित्ते सारथी जेणेव सैयविया जयरी तेणेव  
उवागच्छइ, सैयविय नयार मज्झमज्झेण अणुपविसइ, जेणेव पाग  
सिस्स रणो गिहे जेणेव याहिरिया उवट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ,  
सुरगे णिगिगइइ, रइ ठवइ, रइओ पओरुइइ, त महत्थ जाव  
गेणइइ, जेणेव पगमी राया तेणेव उवागच्छइ, पएंसि रायं करयल-

टीका—‘मूलाव’ क अनुस्य ही है, मगर ‘इष्टुष्टु जार द्विषा’ में  
जो वाच्य पद आया है उसमें यहाँ ‘इष्टुष्टुष्टितानन्दिताः, प्रीतिमनसाः,  
परमसौमनस्यिताः, इषं वनविमर्षं दूयाः’ यह पाठ पढ़ीत हुआ है, तथा  
‘करतलपरिगृहीतं’ क यावत्पद में ‘द्वयमस्य शिर भाषत’ मन्त्रके अश्रमि  
कृत्वा’ इस पाठ का प्रथम हुआ है इन पाठों के यहाँ का पहिले अर्थ  
कहे हुए अर्थ क अनुसार ही है ॥ ११७ ॥

टीका—आ श्रमना भूताथ प्रभावे च उ मगर “इष्टुष्टु जार द्विषा”  
भा ने यावत् यह आया उ तेषी “इष्टुष्टुष्टितानन्दिताः, प्रीतिमनसाः  
परमसौमनस्यिताः, इषं वनविमर्षं दूयाः” आ आने अर्थ ५५ उ तेष  
“करतलपरिगृहीतं” ना यावत् पक्षी ‘द्वयमस्य शिर भाषत’ मन्त्रके अश्रमि  
कृत्वा” आ पाठ भद्व ५५ उ आ आने पदोने अर्थ भेदा ने प्रभावे  
११८ अंशभा आये उ ते प्रभावे च अर्द्ध मन्त्राभा ने ॥ ११७ ॥

अन्तिकात् पतिनिष्क्रामति, गत्रैव चातुर्घटः अश्वरथस्तत्रैव उपागच्छति,  
चातुर्घटम् अश्वरथं दूरोहति, श्वेतविकाया नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं  
गृहं तत्रैव उपागच्छति, तुरगान निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथात् प्रत्य-  
वरोहति, स्नातो यावत् उपरि प्रामादवरगन्ः स्फुटस्त्रिभुदक्षमस्तकैर्द्वीत्रिंशन्-  
द्वकैर्नाटकैर्वरतरुणीसंपयुक्तैः उपनर्त्यमानः उपगायमानः उपलाट्यमान इष्टान्  
शब्दस्पर्श-यावद् विहरति ॥मू० ११८॥

पण्डिता रणा विसर्जित समाणे हृष्ट जात्र ह्यिष्ट पण्डितस्म रन्नो अति  
यात्रो पडिनिवस्त्रमड जेणेव चातुर्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) इस प्रकार  
प्रदेशी राजा द्वारा विसर्जित किया गया वह चित्र सारथि हृष्ट यावत्  
हृदय वाला होकर प्रदेशी राजा के पाम से चला आया और जहाँ चातुर्घट  
अश्वरथ था वहाँ पर आ गया (चातुर्घट आसरहं दुरुहड, सेय वियाए  
नयरीए मज्जमंज्जणेण जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) वहाँ आकर वह  
उस चार घटेवाले अश्वरथ पर सवार हो गया और श्वेताविका नगरी  
के ठीक मध्यमार्ग से होना हुआ अपने भवन की ओर चल दिया, (तुरगे  
णिगिण्डइ, रह ठवेइ रदाओ पच्चोरुहड, णाए जात्र उप्पि पामायवरगए)  
वहाँ आकर के उसने घोड़ों को गेका, रथ को खड़ा किया, फिर रथ  
से नीचे उतरा, स्नान किया यावत् उत्तम प्रामाद के उपरिभाग में जाकर बैठ  
गया, (फुटमाणेहिं मुड गमत्थएहिं वत्तीसडवद्धएहिं वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्ज  
माणेउ उवगाइज्जमाणेउ उवलाज्जिमाणेउ इडेसडफरिस जात्र विहरइ) वहाँ पर

ह्यिष्ट पण्डितस्म रन्नो अति यात्रो पडिनिवस्त्रमड, जेणेव चातुर्घटे आसरहे  
तेणेव उवागच्छइ) आ प्रमाणे प्रदेशी राजा वडे विसर्जित करायेले। ते चित्र-  
सारथि हृष्ट यावत् हृदयवाणे अधने प्रदेशी राजनी पासैथी आवतो रहो अने अथा  
चातुर्घट अश्वरथ छतो त्या आव्यो। (चातुर्घट आसरहं दुरुहड, सेय वियाए नय-  
रीए मज्जमंज्जणेण जेणेव सए गहे तेणेव उवागच्छइ) त्या आवीने ते चातुर्घटवाणा  
अश्वरथ पर सवार थयो अने श्वेताविका नगरीना ठीक मध्य मार्गमाथी पसार  
थधने पोताना भवन तरङ्ग रवाना थयो। (तुरगे णिगिण्डइ, रह ठवेइ, रदाओ पच्चोरुहड  
णाए जात्र उप्पि पामायवरगए) त्या आवीने तेले घोडाओने उला राध्या, रथ  
थोलाओ अने त्यारपछी रथमाथी नीचे उतर्यो स्नान क्युं यावत् उत्तम प्रामादना  
उपरिभागमा अधने पेसी गयो। (फुटमाणेहिं मुड गमत्थएहिं वत्तीसडवद्धएहिं नाडएहिं  
वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणेउ उवगाइज्जमाणेउ उवलाज्जिमाणेउ इडेसड

यथावति, मद् महाथं पापद् युक्तामि, यत्रैव प्रवृत्ती राजा सर्वत्र उपागच्छति,  
प्रदेशिन राजान करण्य पापद् पञ्चयिम्मा ल-महाथं पापद् उपनयति ।  
तथावत्तु स प्रवृत्ती राजा विद्यम्य मारयस्ममहाथं पापद् मतीच्छति विष  
सारथि सत्कारयति सम्मानयति प्रतिविमजयति । तस्य गल्ल स विषः  
सारथिः प्रदेशिना राजा विगर्जितः सन्न हृष्ट यावद्दृष्ट्या प्रदेशिनो राज्ञः

कर उसने घोड़ा को रोका (रुद्धं ठवेइ) और रथ को लब्धा किया । (गहाभो  
पयोऽगृह) फिर वह उस रथ से नीचे उतरा (न महत्थ जाव गेहइ) नीचे  
उतर कर उगने उस महाथं आदि विशेषणों वाले प्रायुत को हाथ में किया  
(जेणेव पणसी राया तेणेव उवागच्छइ) और जहाँ प्रदेशी राजा का वहाँ  
गया (पणसीराय करयल जाव बद्धावेत्ता तं महत्थ जाव ठवेइ) वहाँ  
जाकर क उसने प्रदेशी राजा को दोनों हाथों की अमलि बनाकर पर  
उस मस्तकपर से घुमाकर मगस्कार किया और सयविजय मुर्दों का उच्चा  
रथ करत हुए उसे पधार्ई दक्षर फिर उगने उसके समस्त हाथे हुए  
पारितोषिक-मंड अर्पण किया (गण से पणसी राया विजयस सारहिस्स  
त महत्थ जाव पट्टिच्छइ) प्रदेशी राजाने विष सारथी के उस महाथं  
आदि विशेषणों वाले प्रायुत को अगीवार कर लिया (विष सारहि गहा-  
रेइ, सम्माणेइ पट्टिविसज्जेइ) और विष सारथी का स्फकार किया एवं  
सम्मान किया बाद में उसे विगर्जित कर दिया (गण से विसे सारही

वचस्मान श्लाघा दत्ती (सुरगे निगिहइ) त्वां प्रदेशीने तेज्जे धाम्मिने उभा सम्भ-  
(रह् नवइ) अने रथने धाम्माब्धे (गहाभो पयोऽगृह) त्वाव भूमी ते रथभं  
नीधे उत्थे (न महत्थ जाव गेहइ) नीधे उत्तरीने तेज्जे ते  
महाथं वगेइ विशेषणवाणी बट धावा ॥ दावभां दीधी (जेणेव राया तेणेव  
उवागच्छइ) अने त्वां प्रदेशी धाम्म दत्ता त्वां भूधे (पणसी राय करयल जाव  
बद्धावेत्ता तं महत्थ जाव उत्तरी) त्वां अने तेज्जे प्रदेशी धाम्मने न ने धाम्मी  
अब्धति न ॥ धीने तेने मारतक पर उत्त ने नभस्कार कर्मा अने वधविजय शब्दोत्त  
हव्यावत्तु करीने तेने अध्यागच्छी आणी त्वाव भूमी तेज्जे धावाणी धाम्म दावेत्ती कोटने  
शब्दने अपिंत करी. (गण ग न पणसी राया विजयस सारहिस्स तं महत्थं  
जाव पट्टिच्छइ) प्रदेशी शब्दने विजयसारथिनी ते महाथं वगेइ विशेषणवाणी  
कोटने स्वीकरी दीधी (विष सारहि गहारेइ, सम्माणेइ पट्टिविसज्जेइ) अने  
विजयसारथीने धत्ता तेभज न भान करीन भूमी तेने त्वांभी विसर्जित करी  
(गण ग विसे सारही पट्टिणा रणा विमज्जिज्ज उमाणे इइ जाव

परमसौमनस्यितो हर्षवशावसर्पद्धयः प्रदेशिनो राज्ञः आन्तकात=ममापात्  
प्रतिनिष्कामति=निर्गच्छति, यत्रैव चातुर्घटः अश्वरथः तत्रैव उपागच्छति,  
उपागत्य चातुर्घटम् अश्वरथं दूरोहति=आरोहति, दूरुह्य श्वेतविकाया नगर्या  
मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं=स्वकीयं गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तुरगान्  
निगृह्णाति, निगृह्य रथं स्थापयति, रथात् प्रत्यवतरति । ततः  
स्नातः=कृतस्नानविधिः यावत् 'यावत्'-पदेन-'कृतवलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गल  
प्रायश्चित्तः सर्वालङ्कारविभूषितः' इति सग्राह्यम् । तत्र-कृतवलिकर्मा=काका-  
दिभ्यो वितीर्णान्नभागः, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः-कृतानि=विहितानि कौतु-  
कानि=मषीतिलकादीनि मङ्गलानि==मङ्गलकराणि दुःस्वप्नादिफलनिवारणार्थं  
दध्यक्षतादीनि तान्येव प्रायश्चित्तानि-अवश्यकरणीयत्वाद् येन सः, तथा-सर्वा  
लङ्कारविभूषितः समस्ताभरणभूषितशरीरः सन् उपरिग्रामादवरगतः=उत्तमप्रा  
सादोपरिभागे समुपविष्टः स्फुटद्विः=अतिरममास्फालनात् स्फुटद्विरिव मृदङ्गम  
स्तकैः=मृदङ्गमुखपुटैः, तथा-वतरुणीसम्प्रयुक्तैः=अतिसुन्दरयुवतीभिरभिनीतैः  
द्वात्रिंशद्वदकैः=द्वात्रिंशत्सख्यकपात्रनिघडैः नाटकैः उपनर्त्यमानः=स्वचरित्राभिनयपूर्व  
मभिनीयमानः, उपगीयमानः=स्वगुणगानपूर्वकं गीयमानः, उपलाट्यमानः=  
ललितकलाभिः प्रमोद्यमानः इष्टान्=अभिलषितान् शब्दस्पर्शयावत्=शब्दस्पर्शरूप-  
रसगन्धान् उच्चरितान् कामभोगान् प्रत्यनुभवान् विहरतीति ॥ सू० ११८ ॥

विसर्पद्धयः' इन पदों का ग्रहण किया गया है। 'पहाए जाव उटिपि' में आगत  
यावत् पद से 'कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः, सर्वालङ्कारविभू-  
षितः' इन पदों का संग्रह हुआ है। 'कृतवलिकर्मादि पदों का तात्पर्य है  
काकादिकों के लिये उसने अन्नभाग वितीर्ण किया तथा दुःस्वप्नादिफलों  
के निवारण के लिये मषीतिलक आदिरूप कौतुक तथा मङ्गलकर दध्यक्ष-  
तादिकरूप प्रायश्चित्त-अवश्य करणीय होने से किये। इससे नीचे के पदों  
का अर्थ मूलार्थ में लिख दिया गया है ॥ सू० ११८ ॥

पीतिमनाः परमसौमनस्यितः, हर्षवशविसर्पद्धयः" आ पढोतु अडलु करवाभां  
आ०थुं छे. "पहाए जाव उटिपि" भा आवेला यावत् पढथी "कृतवलिकर्मा, कृत  
कौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः सर्वालङ्कारविभूषितः" आ पढोना सअड थयो छे. कृत-  
वलिकर्मादि पढोना अर्थ छे डागडा वगेरेने अन्न लाग अर्थयो तेमज दु स्वप्न वगेरे  
ने निवारणु करवा भाटे मषी तिलक वगेरे इप कौतुक तेमज मङ्गलकर ढडी अक्षत  
वगेरे इप प्रायश्चित्त-अवश्यकरणीय होवाथी कथां ओना पछीना पढोना अर्थो भूलाथ  
भा ज लपवाभा आ०था छे. ॥सू० ११८॥

टीका—‘तण’ इत्यादि—

तत न्वलु स चित्र सारथिः यत्रैव श्वेतविकानगरी सत्रव उपागच्छति  
 श्वेतविकां नगरी मध्यमश्च्येन=अभिसयमध्यदेशस्थितमार्गं च आपस्तीं नगरीम्  
 अनुमविशति, यत्र च पादा उपस्थानशाला सत्रैव उपागच्छति, तुरगान्=भ्रमन्  
 निगृह्णाति=निरुणादि रथ स्थापयति रथात् प्रत्यवरोहति=भरतारति, तद्  
 महार्थं यावत्=महार्थं स्वादिविशेषवशिष्टं प्राप्तं गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव  
 मदेशी राजा तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य मदेशिनं राजानं करतलं यावत्=  
 करतलपरिसृहीतं वृक्षमथ शिर आवर्त्तं मस्त्रके अठमं कृत्वा पट्टं यति,  
 पट्टं यित्वा तद् महार्थं यावत्=महार्थं स्वादिविशेषवशिष्टं प्राप्तं उपनयति=  
 मदेशिने राज्ञे समर्पयति। तत न्वलु स मदेशी राजा चित्रस्य सारथेः  
 सत्काशात् तद् महार्थं यावत्=महार्थं स्वादिविशेषवशिष्टं प्राप्तं मन्त्रीच्छति=  
 गृह्णाति, चित्र सारथिं सत्कारयति=आसनप्रदानादिना, सम्मानयति=वस्त्राभूषणा  
 दिप्रदानेन, तत प्रतिविसर्जयति=गन्तुमादिशति। तत न्वलु स चित्रः सारथि  
 मदेशिना राज्ञा विजितं सप्त हृष्ट-यावद् हृष्टतुष्टिचित्तानन्दितः प्रीतिमना

रहते हुए यह वज्रते हुए सुदृढ़ों को अपनीपूबर ३२ पात्रों द्वारा अभिनीत  
 किये नाटक को बारबार देखकर और गानों को सुनकर एवं ललितक  
 छाओं द्वारा हर्षित होकर अभिविषित शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध इन  
 पांच प्रकार के काममोगों को भोगते हुए अपने समय का निहालने लगा।

टीकाय मूलार्थ के ही अनुरूप है परन्तु जहाँ पर विशपता है वह उस  
 प्रकार से है—आसनप्रदान आदि द्वारा मदेशी राजाने उस चित्र सारथि का  
 सत्कार किया, एवं घटाभूषण आदि प्रदान द्वारा उसका सम्मान किया, विज  
 जित किया का तात्पर्य है, जाने क किय आशा दिया ‘हृष्ट जाय हियण’ में आगत  
 इस यावत्पद से हुए सुष्टिचित्तानन्दितः, प्रीतिमना, परममौमनस्यितः, इयं च

करिस जाय विहरइ) त्या रहीन तेजे भूदजोनी भनि साथे ३२ पात्रे द्वारा  
 अभिनीत कश्येता नाटकने बारबार लेधने जाने पीते सांजोने जाने ललितोपदे  
 किये अपने अभिविषित शब्द स्पर्श रूप रसगंध आ पांच प्रकारना काममोगेने  
 भोगते घेतापय अभवने पयाइ करवा लाग्ये।

टीकाय—आ सत्रने मूलार्थ प्रभावे च उ पञ्च न्यां विशेषण उ ते आ  
 प्रभावे उ आसन पदे आधीन प्रवेशी राजाते ते चित्रसारथिने सत्कार कथे जाने  
 वस्त्राभूषण आधीने तेउ सम्मान क्यु विसर्जित शब्दने अथ उ न्या भदे  
 आशा आपी ‘हृष्ट जाय हियण’ भा आवेश यावत् पथी “हृष्टतुष्टिचित्तानन्दितः

नगरी यत्रैव मृगवनमुद्यान तत्रैव उपागच्छांते, यथाप्रतिरूपमवग्रहमवग्रह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति ॥ सू० ११९ ॥

टीका--'तएण' केसी इत्यादि--व्याख्या निगदसिद्धा नवरम्-केशी कुमार मणो मृगवनोद्यानस्थितस्य कस्यचित् पुरुषस्य स्तोककालिकमवग्रहमवग्रह्य तिष्ठति । वनपालावग्रहादीनामग्रे वक्ष्यमाणत्वात् ॥ सू० ११९ ॥

मूलम्--तएणं सेयं वियाणं नयरीणं सिंघाडगं महया जणसवेइ वा० परिसा निगच्छइ । तएणं ते उज्जाणपालगा इमीसे कहाणं लच्छट्ठा समाणा हट्ठुत्तु जाव हियया जेणोव केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छंति केसिं कुमारसमणं वंदंति नमंसंति अहापडिरुवं उग्गह अणुजाणंति, पाडिहारिणं जाव संधारणं उवनिमंतंति णामं गोयं पुच्छंति ओधारेति एगं तं अवक्कमंति अन्नमन्नं एवं वयासी-जस्स णं देवाणु-

विहार करते हुए क्रमशः वहां आये जहां के कयाद्ध जनपद-देश था, उसमें भी जहां वह श्वेतांबिका नगरी थी और उसमें भी जहां वह मृगवन नाम का उद्यान था (अहापडिरुवं उग्गहं उगिणिसा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) वहां आकर वे यथाप्रतिरूप अवग्रह प्राप्त--करके संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

व्याख्या स्पष्ट है-नवरम्-केशीकुमारश्रमण मृगवनोद्यानस्थित किसी पुरुष की कुछ समयतक ठहरने के लिये आत्मा प्राप्त कर ठहर गये, वनपाल एवं अवग्रहादिकों के विषय में सूत्रकार आगे कथन करेंगे ॥ सू० ११९ ॥

मुज्जय विचरणु करता ओक गाभथी जीले गाभ विहार करता अत्तुक्के न्या कैयाद्धं जनपद-देश विशेष हुतो अने तेमां पणु न्यां श्वेतांबिका नगरी हुती अने तेमा पणु न्या मृगवन नामे उद्यान हुत्तुं । त्यां पडोअ्या । (अहापडिरुवं उग्गहं उगिणिसा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) त्या पडोअ्याने तेजोश्रीअे तथा प्रतिइप अवग्रह प्राप्त करीने संधम अने तपथी पोताना आत्माने भावित करता विचरणु करवा लाअ्या ।

आ सूत्रेना टीकार्थं स्पष्ट छे 'नवरम्' केशीकुमार श्रमण मृगवन उद्यान पादकनी पासेथी रडेवानी आत्मा भेजवीने त्यां रोडाछ गया । वनपाल अने अवग्रह वगेरेनी आभतमा सूत्रकार हुवे पछी कहेथे ॥ सू० ११९ ॥

मूलम्—तएणं ते केसीकुमारसमणे अण्णया कयाहं पाडिहारिय पीठफलकसेज्जासंधारण पञ्चप्पिणह । सावस्थाओ नयरीओ कोटुगाओ वेइयाओ पडिनिवत्थमह, पव्हिं अणगारसएहिं जाव विहरमाणे जेणेव केयइअद्धे जणवए, जेणेव सेययिया नयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, अहा पडिरूवं उग्गाह उग्गिण्हत्ता सज मेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ ॥सू० ११९॥

छाया—तल। खलु स दशोकुमार भगवन् अथवा कदाचित् पाटिहारिक पीठफलक सेज्जासंधारण पञ्चप्पिणह । सावस्था नगरी कीटुगात् चैत्याहं प्रतिनिष्क्रामति पठच्चमिरनगारसमैर्यावत् विहरम् यमैव केकयाद्धं जनपदः यमैव श्वेतायिका

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

मुद्राय—(तएणं केसीकुमारसमणे अण्णया कयाहं पाडिहारिय पीठ फलकसज्जासंधारण पञ्चप्पिणह) इसके बाद केशीकुमारभगवन्ने किमी एक समय अर्धशीय पीठफलकज्जासंधारण को बापिस कर दिया अर्थात् जहाँ वे कोष्ठक चैत्य—उद्यान में ठहरे हुए थे—वहाँ के पुनर्वा को उन्होंने समझा दिया (साव स्थीओ नयरीओ कोटुगाओ वेइयाओ पडिनिवत्थमह) इसके बाद वे भावस्ती नगरी से जब कोष्ठकचैत्य से निकले (पव्हिं अणगारसएहिं जाव विहर माणे जेणेव केयइअद्धे जणवए जेणेव सेययिया नयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) पाँच सौ अमगार इनके साथ थे अतः उनके साथ तीर्थंकर परम्परा के अनुसार विचरण करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं केसीकुमारसमणे अण्णया कयाहं पाडिहारिय पीठ फलकसेज्जासंधारण पञ्चप्पिणह) त्थार पणी केशीकुमार भगवन्ने ठाउँ बनते अर्धशीय पीठफलक सज्जासंधारण पञ्चप्पिणह । सावस्था नगरी कीटुगात् चैत्याहं प्रतिनिष्क्रामति पठच्चमिरनगारसमैर्यावत् विहरम् यमैव केकयाद्धं जनपदः यमैव श्वेतायिका

लब्धार्थाः सन्तः हृष्टतुष्ट यावद् हृदया यत्रैव केशीकुमारश्रमणः तत्रैव  
उपागच्छन्ति केशिनं कुमारश्रमण वन्दन्ति नमन्ति यथाप्रतिरूपमवग्रह-  
मनुजानन्ति, प्रातिहारिकेण यावत् संस्तारकेण उपनिमन्त्रयन्ति, नामगोत्रं  
पृच्छन्ति, अवधारयन्ति, एकान्तमपक्रामन्ति, अन्नोन्नयेवमवादिषुः—यस्य  
खलु देवानुप्रियाः? चित्रः सारथिः दर्शनं वाङ्मति, दर्शनं प्रार्थयति, दर्शनं  
स्पृहयति, दर्शनमभिलषति, यस्य खलु नामगोत्रस्यापि श्रवणतया हृष्टतुष्ट-

हृष्टतुष्ट जाव हियया जेणेव केशीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छंति) इसके बाद वे  
उद्यानपाल जब इस बात से निश्चिन्तमतिवाले हो गये. तब हृष्ट तुष्ट यावत्  
हृदयवाले होते हुए वे जहां केशीकुमारश्रमण थे—वहां पर आये. (केशि-  
कुमारसमणं वंदंति, नमसन्ति, अहापडिरुव उगगहं अणुजाणति) वहां आकर  
उन्होंने केशीकुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार- किया एवं यथारूप अवग्रह  
आज्ञा उन्होंने दिया. (पाडिहारिणं जाव संधारण उवनिमतंति) तथा  
समर्पणीय (प्रातिहारिक) यावत् संस्तारक आदि से उन्हें उपनिमन्त्रित  
किया. (नाम गोयं पृच्छंति ओधारंति, एगंतं अवक्कमंति, अन्नमन्न एव वयासी)  
नामगोत्र पृछा। उसे हृदय में धारण किया। फिर वे एकान्त में गये और वहां जाकर  
उन्होंने आपस में इस प्रकार से बातचीत की (जस्स णं देवाणुप्पिया। चित्ते  
सारही दं सणं कखेइ दं सणं पीहेइ, दं सणं अभिलसेइ) हे देवानुप्रियो ! जिनके  
दर्शन चित्र सारथि चाहता है, जिनके दर्शन की वह प्रार्थना करना है,  
जिनके दर्शन की वह स्मृति रखना है, जिनके दर्शन की वह अभेदावावावा

जेणेव केशीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छंति) त्थार पछी ते उद्यानवालो ज्थावे  
आ जाणतमा निश्चित मतिवाणा थया त्थारे तेज्जो हृष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाणा थधने  
ज्था केशीकुमार श्रमणु हुता त्या आव्या (केशिं कुमारसमणं वंदंति, नमंसंति,  
अहापडिरुव उगगह अणुजाणति) त्या आवीने तेमण्णे केशीकुमार श्रमणुने  
पटना करी नमस्कार कर्या अने यथा कट्पनीय वस्तुज्जो तेज्जोश्रीने आव्ही. (पाडिहा  
रिणं जाव संधारण उवनिमतंति) तेमज्ज समर्पणीय यावत् संस्तारक  
वगेरे अप्पीने तेज्जोश्रीने उपनिमन्त्रित कर्या. (नाम गोयं पृच्छंति ओधारंति,  
एगंतं अवक्कमंति, अन्नमन्न एव वयासी) नाम-गोत्र पृछ्या अने तेने  
हृदयमा धारणु कर्या. त्थारपछी ते सर्वे ओकातमा गया त्या जधने तेमण्णे परस्पर  
आ प्रमाणे बातचीत करी के (जस्सण देवाणुप्पिया ! चित्ते सारही दंसणं  
कखेइ, दंसणं पत्थेइ, दंसणं पीहेइ, दंसणं अभिलसेइ) हे देवानुप्रियो !  
चित्रसारथ ओज्जोश्रीना दृश्येनानी धण्छा धरावे छे, ओज्जोश्रीना दृश्येना माटे तेज्जो  
प्रार्थना करे छे, ओज्जोश्रीना दृश्येनानी ते स्मृदा धरावे छे, ओज्जोश्रीना दृश्येनानी



पिया । चित्ते सारही दसणं कय्येइ, दसणं पथेइ, दसणं पीहइ,  
 दसणं अभिलमेइ, जस्स णं णामगोयम्मयि सयणयाग हट्टुट्टु  
 जाय हियण भयइ स णं गस केसीकुमारसमणे पुत्राणुपुट्टिय चरमाणे  
 गामाणुगाम दूइजमाणे इहमागण इहसपत्ते इह समोसठे इहेय सेयवियाण  
 णय रीण ग्रहिया उज्जाणे अणपडिस्व जाय निहरइ, त गच्छामो ण  
 देयाणुपिया । चित्तस्स सारहिस्स गयगट्ट निवदेमा पिय से भयउ ।  
 अणमणस्स अंतिण गयमह पडिसुणति, जेणेय सयत्रिया णयरी,  
 जेणेय चित्तस्स सारहिस्स गिह जेणेय चित्ते सारही तंणेय उवाग  
 छति, चित्तं सारहिं कय्यल जाय वद्धायेति, गय ययामी-जस्स णं  
 देयाणुपिया । दसणं कय्यनि जाय अभिलसति, जस्स णं णामगो  
 यस्सयिमयणयाग हट्टु जाय भयति, से णं अय केसीकुमारसमणे पुत्रा  
 णुपुट्टिय चरमाणे गामाणुगाम दूइजमाणे इहय मियवणे उज्जाणे  
 समोसठ जाय निहरइ ॥ सू० १२० ॥

छाया—ततः श्वलु श्वतविषायां नगरीं गृह्णात्क० महान् जनसंघ  
 इति वा० परिपद निर्गच्छति । ततः श्वलु ते उज्जानपायसा भूमाः कथाया

‘तपणं सयवियाण मयरीय’ इत्यादि ।

मुप्रार्थ—(तपणं सयवियाण मयरीय त्रिपाटन० महत्वा जनसंघं वा०  
 परिभा निगच्छइ) इत्ये वाद् श्वतविषा मयरीं यं गृह्णात्क भादि मार्गे  
 फं ऊपर उतिष्ठत इह भयार जनसंघिनी रं परस्परं पातयित भादि इह  
 परिपदा निकली (तपणं ते उज्जानपायसा इमीत कथाय छट्टहा समाना

‘तपणं’ सयवियाण मयरीय’ इत्यादि ।

सुप्रार्थ—(तपणं सयवियाण मयरीय त्रिपाटन० महत्वा जनसंघं वा०  
 परिभा निगच्छइ) त्वां यत्नी श्वेतानि नगरीमां गच्छात्क नयेइ भादि पर  
 श्वेत धयेत्ता मानवसंघात्मा परस्परं पातयित नयेइ भादवा स्य परिपदा न्दीयती  
 (तपणं ते उज्जानपायसा इमीत कथाय छट्टहा समाना इहदुद जाय हियया

सारथेर्गृहं यत्र चित्रः सारथिस्तत्रैवोपागच्छन्ति चित्र सारथिं करतल-  
यावद् वद्धयन्ति, एवमवादिषुः—यस्य खलु देवानुप्रियाः दर्शनं काङ्क्षन्ति,  
यावत्—अभिलषन्ति, यस्य खलु नामगोत्रस्यापि श्रवणतया हृष्ट यावद् भवन्ति  
स खल्वयं केशीकुमारश्रमणः पूर्वानुपूर्विं चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् इहैव  
उद्याने मृगवने समवसतः यावद् विहरति ॥ सू० १२० ॥

टीका—‘तएणं सेयविद्याणं’ इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा ॥ सू. १२० ॥

इस प्रकार की बातचीत वो वे स्वीकार कर लेते हैं। बाद में (जेणेव सेयंविद्या  
णयरी, जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव उवागच्छन्ति)  
वे जहां श्वेतांगिका नगरी थी और उसमें भी जहां चित्र सारथि का गृह  
था एवं वहां पर भी जहां चित्र सारथी था वहां पर आये (चित्तं सारहिं कर-  
यल जाव वद्धावेति, एवं वयासी) वहां आकर के उन्होंने चित्र सारथि के  
प्रति बड़े विनय के साथ अपने दोनों हाथों की अजलि बनाकर उसे  
मस्तक पर से घुमाते हुए नमस्कार किया। तथा जयविजय शब्दों का  
उच्चारण कर उसे बधाई दी और फिर ऐसा कहा—‘जस्स णं देवाणुप्पिया !  
दंसणं कंखंति, जाव अभिलसंति, जस्स णं नामगोयस्स वि सवणयाए  
हट्ट जाव भवति, से णं अयं केशीकुमारसमणे पुब्बाणुपूर्विं चरमाणे गामा-  
नुग्रामं दूज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे समोसहे जाव विहरइ’ हे देवानुप्रिय!  
आप जिसके दर्शन की चाहना रखते हैं, यावत् अभिलाषा रखते हैं तथा  
जिसके नामगोत्र के भी श्रवण से भी आप हृष्टतुष्ट यावत् हृदय वाले  
हो जाते हैं वे ये केशीकुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वी से विचरते हुए, एक ग्राम से

सेय विद्या णयरी, जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव  
उवागच्छन्ति) तेणो जथा श्वेतांगिका नगरी હતી અને તેમાં પણ જયા ચિત્રસારથી  
હતો ત્યા ગયા (ચિત્તં સારહિં કરયલ જાવ વદ્ધાવેતિ, एवं वयासी) ત્યા પહોચીને  
તેમણે ચિત્રસારથિને બહુજ નમ્રપણે બન્ને હાથોની અજલિ બનાવીને અને તેને  
મસ્તક પર ફેરવીને નમસ્કાર કર્યા તેમજ જયવિજય શબ્દોનું ઉચ્ચારણ કરીને તેને  
વધામણી આપી. અને પછી તેને આ પ્રમાણે કહ્યું. (जस्सणं देवाणुप्पिया ! दंसणं  
कंखंति. जाव अभिलसंति, जस्स णं नामगोयस्स वि सवणयाए हट्ट जाव  
भवति, से णं अयं केशीकुमारसमणे पुब्बाणुपूर्विं चरमाणे गामानुग्राम  
दूज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे समोसहे जाव विहरइ’) हे देवानुप्रिय  
तમે જેઓશ્રીના દર્શનોની ઇચ્છા ધરાવતા હતા, યાવત્ અભિલાષા રાખતા હતા  
તેમજ જેઓશ્રીના નામગોત્રના શ્રવણ માત્રથી જ તમે હૃષ્ટ-તુષ્ટ યાવત્ હૃદયવાળ

यावद्द्वयो भवति स खलु एव केसीकुमारश्चमणः पूर्वापुरीं चरन् ग्रामान्  
ग्राम द्वयम् इहागतः, इहसमाप्तः, इह समवसृतः, उद्वेगं श्वेतविकाया नगर्या  
परिर्गमनं उद्याने यथाप्रतिरूपं यावद् विहरति, तद् गच्छामः। खलु देवा  
नुमिषाः। चित्रस्य सारथेः एतमर्थं मियं नियेयामः, मियं तस्य भवतु।  
अयोपस्यातिकं एतमर्थं प्रतिगच्छन्ति, येष्वेव श्वेतविका नगरी गपैव चित्रस्य

इ (जस्स ण जामगोयस्स पि सणयाए इहवुद्धं भाव दिवए भवइ) तथा  
जिनकं नामगोत्र के भी अचण से ओ एहवुद्धं यावत् इहवत्ता हाता इ  
(स ण एस केसीकुमारसमणे पुब्बाणुपुब्बिं चरमाणे गामाणुगामं इहज्जमाणे  
इहमागए) वे य केसीकुमारश्चमण तीर्थं परम्परा के अनुसार विहरते  
हुए एव एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करते हुए यहाँ आये हैं।  
(इह संपत्ता) यहाँ प्राप्त हुए हैं। (इहसमोसठे) यहाँ समवसृत हुए हैं।  
(इद्वेय सयविवाए जयरीए बहिया उज्जाणे अहापटिस्स जाय विहरइ)  
इसी श्वेतविका नगरी के बाहर उद्यान में यथाप्रतिरूप अवसृष्ट प्राप्तकर  
यावत् विराजते हैं। (त गच्छामो ण देवाणुमिषा। विसस्स तारहिस्स  
एयमइ पिय निबदेमो पिय से भवठ) तो हे देवानुमिषों ! नहे और  
चित्र सारथि के इस मिय अथ का उनसे निबद्वन करें, हमारा यह निबे  
दन उह यहा ही मिय लगेगा (अणमप्पस्स अतिए एयमइ पट्टिमुणेति)

ते अभिवाधा राजे ॐ (जस्मण जामगोयस्स पि सणयाए इहवुद्धं भाव दिवए  
भवइ) तेभए ॥ ज्ञोथीना नाम गोत्रना भवतुभी ॥ ने एह-एह यावत् इहवत्ता  
यध आय ॥ (स ण एस केसीकुमारसमणे पुब्बाणुपुब्बिं चरमाणे गामाणु-  
गामं इहज्जमाणे इहमागए) तेजोथी देसीकुमार जमल तीर्थ ४९ परंभर  
मुज्ज विजय ३६ता अने ज्ञे ज्ञोथी जीने आय विहार करता अही पचाया ॐ  
(इह संपत्ता) अही प्राप्त यथा ॐ (इह समोसठे) अही समवसृत यथा ॐ  
(इद्वेय सयविवाए जयरीए बहिया उज्जाणे अहापटिस्स जाय विहरइ)  
आ श्वेतविका नगरीनी अहासना उद्यनभा यथाप्रतिरूप अवसृष्ट प्राप्त करीने यावत्  
विहा ॐ (त गच्छामो ण देवाणुमिषा। विसस्स तारहिस्स एयमइ पिय  
निबदेमो पिय से भवठ) त्वारे हे देवानुमिषों ! आपने चित्र सारथिनी पास  
अने आ मिय सभाचार विधे तेभने अजर आपीजे. अग्राही आ अजर तेभने  
अजर भवती (अणमप्पस्स अतिए एयमइ पट्टिमुणेति) आ अग्राजे तेजो  
अथा परंपर ज्ञे जीजानी यावने ज्ञेभत यधने स्वीकरी वे ॐ त्वाए अही (जेजेव

सारथेर्गृहं यत्रैव चित्रः सारथिस्तत्रैवोपागच्छन्ति चित्रं सारथिं करतल-  
यावद् वद्धयन्ति, एवमवादिषुः-यस्य खलु देवानुप्रियाः दर्शनं काङ्क्षन्ति,  
यावत्-अभिलषन्ति, यस्य खलु नामगोत्रस्यापि श्रवणतया हृष्ट यावद् भवन्ति  
स खल्वयं केशीकुमारश्रमणः पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् इहैव  
उद्याने मृगवने समवसतः यावद् विहरति ॥ सू० १२० ॥

टीका-‘तएणं सेयविद्याणं’ इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा ॥ सू. १२० ॥

इस प्रकार की बातचीत को वे स्वीकार कर लेते हैं। बाद में (जेणेव सेयविद्या  
णयरी, जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव उवागच्छन्ति)  
वे जहां श्वेतांगिका नगरी थी और उसमें भी जहां चित्र सारथि का गृह  
था एवं वहां पर भी जहां चित्र सारथी था वहां पर आये (चित्तं सारहिं कर-  
यल जाव वद्धावेति, एव वयासी) वहां आकर के उन्होंने चित्र सारथि के  
प्रति बड़े विनय के साथ अपने दोनों हाथों की अजलि बनाकर उसे  
मस्तक पर से घुमाते हुए नमस्कार किया। तथा जयविजय शब्दों का  
उच्चारण कर उसे बधाई दी और फिर ऐसा कहा-‘जस्स णं देवानुप्पिया !  
दसणं कंखन्ति, जाव अभिलसन्ति, जस्स णं नामगोयस्स वि सवणयाए  
हट्ठ जाव भवति, से ण अयं केसीकुमारसमणे पुब्बाणुपुर्व्वि चरमाणे गामा-  
नुग्रामं दूज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे समोसहे जाव विहरइ’ हे देवानुप्रिय!  
आप जिसके दर्शन की चाहना रखते हैं, यावत् अभिलाषा रखते हैं तथा  
जिसके नामगोत्र के भी श्रवण से भी आप हृष्टतुष्ट यावत् हृदय वाले  
हो जाते हैं वे ये केशीकुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वीं से विचरते हुए, एक ग्राम से

सेयविद्या णयरी, जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव  
उवागच्छन्ति) तेज्जो जथा श्वेतांगिका नगरी इती अने तेमा पणु जथा चित्रसारथी  
इती त्या गथा (चित्तं सारहिं करयल जाव वद्धावेति, एव वयासी) त्या पडोळीने  
तेमणे चित्रसारथिने णहुण नअपणे णन्ने हाथेनी अजलि णनावीने अने तेने  
मस्तक पर हेरवीने नमस्कार कया तेमज्ज जयविजय शब्दोत्तु उच्चारण करीने तेने  
वधाभणी आधी. अने पछी तेने आ प्रमाणे कळु. (जस्सणं देवानुप्पिया ! दसणं  
कखन्ति. जाव अभिलसन्ति, जस्स ण नामगोयस्स वि सवणयाए हट्ठ जाव  
भवति, से णं अयं केसीकुमारसमणे पुब्बाणुपुर्व्वि चरमाणे गामानुग्रामं  
दूज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे समोसहे जाव विहरइ) हे देवानुप्रिय !  
तमे जेज्जोश्रीना दर्शनेनी धच्छा धरावता इता, यावत् असिलाषा राभता इता  
तेमज्ज जेज्जोश्रीना नामगोत्रना श्रवणु मात्रथी ज तमे हृष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाणा

मूढ—तएण से चित्ते सारही तेसि उज्जाणपालगाण अतिए णयमट्ट  
 सोच्चा णिसम्म हट्टुट्टु जाव आसणाओ अट्टुट्टु पायपीडाओ पच्चो  
 रुहड, पाउयाओ ओमुयड, णगत्ताडिय उत्तरासग करेड, अजलिम  
 उल्लियगहत्थे—कपिकुमारसमणामिमुहे सत्तट्टपयाड अगुगच्छइ, का  
 यलपरिगहियं सिरसावत्त मत्थण अजलिकहु णव वयासी-नमोऽयुण  
 अरहताण जाव सपत्ताण, नमोऽयु॥ केस्सिस्स कुमारसमणस्स मम  
 धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, वट्ठामि ण भगवत्त तत्थगय इहगए,  
 पासउ मे तत्थगए इहगय तिकहु वदइ नमसइ, ते उज्जागपोरुण विउ  
 लेण वत्थगधमहालकाणेण सक्कारेड सम्माणेड विउल जीवियारिह  
 पीडिदाण टलयइ पडिविसज्जेड । कोटुवियपुरिमे सदावेइ, एव वयासी  
 —ग्रिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घट आसरह जुस मेव उवट्टवेह  
 जाव पच्चप्पिणह । तएण ते कोटुवियपुरिसा जाव म्विप्पामेव मच्छत्तं  
 सज्जय जाव उवट्टवित्ता तमाणत्तिय पच्चप्पिणंति सएणंसे चित्त सारही  
 कोटुवियपुरिसाण अतिए णयमट्ट सोच्चा निसम्म हट्टुट्टु जाव हियण  
 णहाण वयथलिकम्मे जाव सरीरे जेणव चाटग्घंटे जाव दुरुहित्ता  
 सकोऽट० सहया भट्ठचट्ठगर० त चेव जाव पञ्चवासइधम्मकहा । सु, १२१।

इसर ग्राम में विहार करत हुए यहाँ बृगवन नामक उद्यान में भाय हुए  
 है पावन तप और संयम से आत्माको भाषित करत हुए टहर है ।  
 इसकी वषाणवा मूमार्थ के लैयी ही है ॥ १२० ॥

एतं ज्ञेयं । छि तेजोऽग्नी देवीकुमारसमण भूतानुपूर्वाग्नी निश्चरण इत्यां ज्ञेयं आगम्यी  
 न्नी ? आग निहार इत्यां नदी भूतवन नामना उद्यानार्थं यथावेत्ता । भावन तप  
 ज्ञेयं सकमयी पीताना आत्माने भाषित इत्यां निरा ? छि

आ सत्रनी व्याख्या भक्ताय अग्रतो क ॥ ॥ १२० ॥

छाया--ततः खलु स चित्रः सारथिः तेषामुद्यानपालकानामन्तिके एत  
मर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टं तुष्टं यावद् आसनाद् अभ्युत्तिष्ठति प्रागादपीठा  
त्प्रत्यवरोहति पादुके अवमुञ्चति एकशटिकमुत्तरासङ्गं करोति, अञ्जलिमु-  
कुलिताग्रहस्तः केशिकुमारश्रमणाभिमुखः सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति करतल  
परिगृहीतं शिरावत्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्-नमोऽस्तु खलु

‘तएण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं से चित्ते सारही तेसि उज्जाणपालगाणं अंति ए  
एयमट्ठं) इसके बाद वह चित्र सारथि उन उद्यानपालको के पास से इस  
अर्थों—वृत्तान्त को (सोचा निसम्म हट्टुट्ठ जाव आमणाओ अब्भुट्ठेइ)  
गृनका एवं उसे हृदय में धारण कर बहुत अधिक हृष्ट एवं संतुष्ट  
चित्त हुआ यावत् वह आने आमन से उठा. (पायपीठाओ पच्चोरुहइ)  
और पादपीठ—(वरण रखने का आमन) के उपर पग रखकर वह नीचे उतरा  
(पाउयाओ ओमुयइ) पादुकाएं उसने उतार दी (एगसाडिय उत्तरासंगं करेइ)  
एकशटिक उत्तरासंग किया। (अंजलिमउलियग्गहत्थे केशिकुमारममणा  
भिहे मत्तट्ठपयाइ अणुगच्छइ) फिर उसने अपने दोनों हाथों को जांड़कर  
अंजलिहृदय में परिवर्तित किया और केशीकुमारश्रमण के अभिमुख होकर  
अर्थात् जिस ओर केशीकुमार श्रमण विराजमान थे उस ओर सात आठ  
पण तक आगे जाकर (करयलपरिगहियं मिरसावत्त मत्थए अंजलिं कट्ठु  
एवं वयासी) वहा जाकर उसने अपने दोनों हाथों की बडे विनय के साथ

‘तएण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएण) से चित्ते सारही तेसि उज्जाणपालगाण अंति ए  
एयमट्ठं) त्थार पछी ते चित्रसारथि ते उद्यानपालकोना मुण्थी आ अर्थने वृत्तान्तने  
(सोचा निसम्म हट्टुट्ठ जाव आमणाओ अब्भुट्ठेइ) सालणीने अने तेने हृदयमा  
धावणु करीने पृथग्गुह्य अने स तुष्ट चित्तवाणो थयो यावत् ते पोताना आसन परथी उलो थयो।  
(पायपीठाओ पच्चोरुहइ) अने पादपीठ (पग भूकवानुं आसन विशेष) पर पग भूकीने नीचे उतरा  
(पाउयाओ ओमुयइ) अने पगमा पड़ेरली पावडीओ उतारी दीधी (एगसाडिय उत्तर-  
रासंग करेइ) अके शाटिक उत्तरासंग कर्यो (अंजलिमउलियग्गहत्थे केशिकुमार  
समणाभिमुहे सत्तट्ठपयाइ अणुगच्छइ) त्थार पछी तेणु पोताना अन्ने हृथो  
जेडीने अजलि जनावी अने केशीकुमारश्रमणनी सामे मुण करीने अट्ठे के के  
दिशा तरक्क केशीकुमार श्रमणु विराजमान हुता ते तरक्क सात आठ पग सुधी सामे  
गथा. (करयलपरिगहिय मिरसावत्त मत्थए अंजलिं कट्ठु एवं वयासी)

अहङ्गयो यावत्-सम्प्राप्तेभ्यः, नमोऽस्तु श्वस्तु केशिने कुमारसमणाय मम  
धर्मोपायाय धर्मोपदेशकाय, वन्दे श्वस्तु भगवन्त सप्रगतमिहगत पश्यतु म  
नप्रगत इहगतम् इति कृत्वा चन्दनं नमस्यति, तान् उद्यानपाषाणात् विपु  
लान् यस्मिन्पमात्रपाषाणद्वारेण मस्करानि समानयति विपुल जीवितार्थं प्रीति  
दानं ददाति प्रतिविसर्जयति । कौटुम्भिकपुरुषान् शब्दयति, परमवाशीत-

अमलि वनाद् भीर उले यस्मिन् पर म तान् वार पुनाकर हस प्रकार  
पाठ पढ़ने मगा-(नमोऽस्तु भगवताम् जाय तं पाषाण, नमोऽस्तु केमिस्त  
कुमारसमणस्स मम सम्पायरियस्स सम्मोवसेमगस्स, वदामि ण भगवन्त तत्त्व  
गय इहगय) अहङ्ग भगव तों को नमस्कार हा यावत् सिद्धिगति नामक  
स्थान को प्राप्त हुए है मर धर्मोपाय धर्मोपदेशक केशीकुमारसमण को  
नमस्कार हो यहाँ रहा हुआ मैं यहाँ पर भगवतोद्यान में विराजमान  
आपको नमस्कार करता हूँ । (पामठ में सत्यगय इहगय चिकटु वंदे नमं  
मह) वहाँ रहे हुए वे भगवान यहाँ रहे हुए मुझे देखे इस प्रकार कहकर  
उपाने वदना की, नमस्कार किया, (म उद्यानपाषाण चिउलेम चन्दन चमड़ा  
लंकारण सकारण) इस तरह परासविनय करके फिर उसमें उन उद्यान-  
पाषाणों का विपुल यस्मिन्पमात्रा मात्रा अव कारों से मस्कार किया (सम्मा  
णः) म मान किया (चिउल जीवितार्थ पीरदान दमयह) और अन्त में उनके  
भिय विपुल मात्रा में जीविकायोग्य प्रीतिदान दिया (पट्टिविमज्जह) फिर

त्यां अग्नि तेज्ये शेत्तना जन्ने चाग्निनी कुत्र नभस्सत्वे अग्निं जनावी जन्ने तेने  
भस्सत्वे पर तज्ज वणन देवत्तने आ प्रभावे ने चत्त उच्चस्सत्वे इत्थं चाग्नि-  
(नमोऽस्तु भगवताम् जाय सपत्तामं, नमोऽस्तु केमिस्त कुमारसमणस्स मम  
सम्पायरियस्स सम्मोवसेमगस्स वदामि ण भगवन्त सत्यगय इहगय)  
अहङ्ग भगव तान् भारा नभस्कार उ के केमिस्सत्वे यावत् सिद्धिगति नामक स्थानने  
आम ह्यु उ भास धर्मोपाय धर्मोपदेशक केशीकुमारसमणने नभस्कार उ अदीदी  
/ हृ त्यां भगवतोवद्याना विशदभान आपसीने नभस्कार हरे ह (पामठ में  
सत्यगय इहगय चिकटु वंदे नमं मह) त्यां विशदभान ते भगवान अदी  
विदभान भने ज्जे आ प्रभावे हरीने तेज्ये वदना करी नभस्कार हरा (ते उउजा  
तवामग चिउलेम चन्दन चमड़ा लंकारण सकारण) आ प्रभावे पमात्रा विनय  
हरीने तेज्ये ते दयनपाषाणो विपुल यस्मिन्पमात्रा मात्रा आग्निनी जन्ने अग्नि हरी वरे  
पत्ताम हरी (सम्माणह) म मान ह्यु (चिउल जीवितार्थ पीरदान दमयह)  
जन्ने उउजा तेभने विपुल मात्रा में चिकटु चमड़ा प्रीतिदान आग्नि (पट्टिविमज्जह)

क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! चतुर्धण्डमश्वरय युक्तमेव उपस्थापयन् यावत्  
प्रत्यर्पयत् । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषा यावत् क्षिप्रमेव सच्छत्र  
सध्वजं यावत् उपस्थायित्वा तामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति । ततः खलु स  
चित्रः सारथिः कौटुम्बिकपुरुषाणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्ट यावद्  
हृदयः स्नातः कृतबलिकर्मा यावत्-शरीरः यत्रैव चातुर्धण्डो यावद् दूरुह्य सको  
रण्ड० महता भटचटकर० तदेव यावत् पर्युपास्ते धर्मकथा ॥सू० १२१ ॥

विसर्जित कर दिया (कोडु बियपुरिसे सदावेइ) तदनन्दर सने अपने आज्ञा-  
कारी सेवको को बुलाया (सदावित्ता एव वयामी) बुलाकर उनसे ऐसा कहा  
(क्षिप्पामेव भो देवानुप्रिया ! चाउग्वटं आसरह जुत्तामेव उवट्टवेह जाव  
पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही चार घटों वाले अश्वरथ  
को घोडाओं से युक्त करके उपस्थित करो, यावत् फिर-हमें इसकी खबर  
दो (तएणं ते कोडु बियपुरिसा जाव क्षिप्पामेव सच्छत्र सज्झयं जाव उव-  
ट्टवित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणति) इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषोंने यावत्  
बहुत ही शीघ्र छत्र एवं ध्वजा से युक्त करके उस चार घटोंवाले अश्व-  
रथ को घोडाओं से युक्त कर उपस्थित कर दिया और पीछे इस खबर  
को उसके पास दिया. (तएणं से चित्ते सारही कोडु बियपुरिसाण  
अतिए एयमट्ट सोच्चा निसम्म दट्टतुट्ट जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्म जाव  
सरीरे चाउग्वटे आसरहे जाव दुरुहित्ता सकोरट० महया भडचडगर०  
तं चेव जाव पज्जुवासइ धम्मकहा) तब उस चित्र सारथिने कौटुम्बिक

त्यार पछी तेभने (विसर्जित कर्था (कोडु बियपुरिसे सदावेइ) त्यार आह तेणे  
पोताना आसाकारी सेवकोने जोलाव्या (सदावित्ता एव वयामी) जोलावीने तेभने  
आ प्रमाणे कहु (क्षिप्पामेव भो देवानुप्रिया ! चाउग्वट आसरह जुत्तामेव  
उवट्टवेह जाव पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तमे बोको सत्तरे आर घटोवाणा  
अश्वरथने घोडाओथी सज्ज करीने अही उपस्थित करे, यावत् पछी अभने ण्णर  
आपो (तए णं ते कोडु बियपुरिसा जाव क्षिप्पामेव सच्छत्र सज्झयं जाव  
उवट्टवित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणति) त्यार पछी ते कौटुम्बिक पुरुषोंने यावत्  
शीघ्र छत्र अने ध्वजाथी सुसज्जित करीने ते आर घटोवाणा अश्वरथने घोडाओथी  
युक्त करीने उपस्थित कर्था अने तेनी ण्णर पछु तेनी पासे पढोयाडी दीधी  
(तए णं से चित्ते सारही कोडु बियपुरिसाण अतिए एयमट्ट सोच्चा निसम्म  
दट्टतुट्ट जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्म जाव सरीरे चाउग्वटे आसरहे  
जाव दुरुहित्ता सकोरट० महया भडचडगर० तं चेव जाव पज्जुवासइ  
धम्मकहा) ते चित्र सारथिने कौटुम्बिक पुरुषोंने अश्वरथ तयार थड नवानी



तपण से चित्त' इत्यादि।—इत्याम्या निगदमिदा। नवरम्-विष  
सारयिगमनरणनयकादृशारिहजयनममृत्रे, विमोनीयम् ॥ १२१ ॥

( मृत्प—ताणं न चित्ते सारही कसिकुमारसमणस्स अतिग  
धम्म सोद्या निसम्म हट्टुत्तुं तहेव घयासी-गव खलु भत्ते । अम्हं  
पासी गया अधम्मिण जाय सधम्मस्स विण जणवयस्स नो सम्म कर  
भरवित्ति पवत्तेइ, त जइण देवाणुप्पिया ! पणसिस्स रणो धम्ममाइ  
फंरजा वट्टुगुणतर खलु होजा पणसिस्स रणो तेसिग च वट्टुणं दुपप  
चउपयमियपसुपक्खिसारिसावाण, तस्सि च वट्टुण समणमाहण

पुरुषों के मृत्यु से आश्चर्य के तयार हो जान की बात मूमकर और  
उस हृदय में धारण कर हृत्पुत्र गावन इत्ये श्रोत हुए समान किया  
वर्तमान-भारत-काकभारि पौरुषों के गिय धम्म का प्राग दिया पावन  
पट्टमृत्प अम्हमारयात्त आभूणों से अमकन जागै हारर प्रहं बार घडां  
चाया आश्चर्य था वहाँ आया गावन उस पर बह बैठ गया उसके बैठत  
ही इन्द्रपारीने उस पर काकभूतारों की मामा से पुत छत्र तान दिया  
विप्राय मर्ग की मोह आकर उठाक शनों और उपस्थित हो गई वहाँ  
पटिष्ठ वा वपविष्ट और मय वपन करना वाहिय गावन उसने कृति  
कुमारभमण की पशुगातना को कृमिकुमारभमणन चर्मोपदक्ष दिया ।

टीका—इसकी इत्याम्या स्पष्ट है। नवर-विषसारपी के गमन का  
वचन ११११ गम में दखना चाहिये ॥ पृ १२१ ॥

यान आभयाने अन दूरवर्षा धारण करीने दंड-पुत्र बारत दूरवर्षा धारण करीने १११  
अनु अतिवर्षा अतिवर्षा के कारण वज्रेश पक्षीयाने गाते अनन्त आग अपित अथो  
आगत अट्टमृत्प अम्हमारयात्त आभूणों से आताना शरीरने अतिवृत्त कर्षे अने  
त्यार पली ते अथो गावपट्टिवाणे अम्हमारयात्त आभूणों से आताना शरीरने अतिवृत्त कर्षे अने  
ते अथो त्याहे छत्रपारीयाने केरत पुष्पिनी गाणाथी बुद्ध उभ तेनी उपर ताव  
ते वपने विद्याय मोहामोनी थी तेनी आसपास आधीने अहरी वप मध्नी अदी  
पट्टिवाणी नेमअ अनु अथ अम्हमारयात्त आभूणों से आताना शरीरने अतिवृत्त कर्षे अने  
आमना करी केसिकुमारभमणो धर्मोपदक्ष आभ्या

टीका—आ श्रुती १५५५ व नवर-विषसारपीत अमनत्त वचन १११ आ  
श्रुत प्रमाण अम्हमारयात्त आभूणों से ॥ १२१ ॥

भिक्षुयाणं तं जइ णं देवाणुप्पिया! पएसिस्सि बहुगुणत्तरं होज्जा,  
सयस्स वि णं जणवयस्स ॥ सू. १२० ॥)

छाया—ततः खलु भ चित्र. सारथिः केगिनः कुमारश्रमगम्यान्तिके  
धम्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टं तथैव एवमवादीत्—एव खलु भदन्त! अम्माकं  
प्रदेशी राजा अधार्मिकः यावत् स्वकस्यापि खलु जनपदस्य नो सम्मं  
करभरवृत्तिं प्रवर्तयति तद् यदि खलु देवानु प्रिय! प्रदेशिने राजे धर्ममा-  
ख्यायात् (तदा) बहुगुणतरं खलु भवेत्. प्रदेशिनो राजस्तेषां च बहूनां  
द्विपद्वापुषदमृगारगुसिनीमृगाणां, तेषां च बहूनां श्रमगमाहनभिक्षुका-

‘तए णं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

(सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (से चित्ते सारही) उम चित्र सारथिने  
(केमिस्स कुमारसमणस्स) केशीकुमारश्रमण के (अतिण) पास धम्मं सोच्चा  
निसम्म हट्टुट्टं तहेव एवं वयासी) धर्मका उपदेश मुनकर और उसे हृदय में  
धारण कर हृष्टतुष्टचित्त वाला हुआ एवं आनंद से विभोर होकर प्रीतिमनवाला  
हुआ. इस तरह परमसौमनस्यित होकर वह बोला (एव खलु भन्ते! अम्ह  
पएसि राया अहम्मि ए जाव सयस्स वि णं जणवयस्स नो सम्मं करभरवृत्तिं  
पवत्तेइ) हे भदन्त! हमारा प्रदेशी राजा अधार्मिक है यावत् वह अपने  
देशके प्राप्त कर से भरणपोषणरूप व्यवहार को ठीक तरह से नहीं चलता है—  
(त जइ णं देवाणुप्पिया! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं होज्जा,  
पएसिस्स रण्णो तेमिं च बहूणं दुपयचउप्पयभियपसुपक्खिसरीसदाण) तो

‘तए णं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) त्थार पछी (से चित्ते सारही) ते चित्र सारथीअे  
(केमिस्स कुमारसमणस्स) केशीकुमार श्रमणही (अतिण) पासैथी (धम्मं सोच्चा  
निसम्म हट्टुट्टं तहेव एवं वयासी) धर्म विषे उपदेश साधणीने अने तेन  
हृदयमा धारणु करीने (हृष्ट-तुष्ट चित्तवाणे) थये अने आनंदित थईने प्रीतियुक्तमनवाणे  
थये. आ प्रभाणे परमसौमनास्थित थईने ते आइये (एव खलु भन्ते! अम्ह  
पएसि राया अहम्मि ए जाव सयस्स वि णं जणवयस्स नो सम्मं करभर-  
वृत्तिं पवत्तेइ) हे भदन्त! हमारे प्रदेशी राजा अधार्मिक है यावत् ते पोताना  
देशना बोडो पासैथी कर भेणवीने पणु प्रणत्तु लरणु-पोपणु-तेमज्ज रक्षणु करतो नथी.  
(त जइ णं देवाणुप्पिया! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं होज्जा,  
पएसिस्स रण्णो तेमिं च बहूणं दुपयचउप्पयभियपसुपक्खिसरीसदाण)

णाम् । तद् यदि खलु देवानुग्रिय ! प्रदेशिनो बहुगुणतर भवेत् स्वक  
स्यापि च खलु जनपदस्य ॥ सू० १२२ ॥

टीका—‘तय णं से चिधे’ इत्यादि-सतः=तदनन्तर खलु स चिधः  
सारणिः केचिनः कुमारभ्रमणस्य अतिके=समीपे धर्मं जिनोकं सुत्वा=कर्म  
गोचरीकृत्य निश्चयः=ईष्टवार्थं इष्टतुल्यं तथैव=पूर्ववदेव इष्टतुल्यं विदितानन्दितः  
प्रीतिमनाः परमसीमनस्थितः इयं वशाविसर्पदृष्टयः, इति संशयम् ।  
अर्थस्तु पूर्व गतः । एवमवादीत्-किमवादीत् ? इत्याह-एव खलु यत् हे भद्र  
अस्माकं प्रदेशी राजा अधर्मिकः यावत्-यावत्पदेन-अधर्मिष्ठादीनि सर्वाणि  
विशेषानि एकवचनमश्रोक्तानि सद्भाषाणि, एवमर्थोऽपि तत्रैव विभो

यदि आप हे देवानुग्रिय ! उस प्रदेशी राजा को भिनपम्पित धर्म का उप  
देख देवे तो वह उस प्रदेशी राजा के लिये और परमोक में बहुत गुण  
कारी होगा, तथा अनेक द्विपद, चतुष्पद, युग, पशु, पक्षी एवं सरीसृप-  
सर्प आदिकों का हितार्थ होगा (तसि च बहुगुण समणमाहणमिच्छु  
याणं) और उन अनेक भ्रमण भाहण, निष्ठुदां क लियं बहुत ही अधिक  
आमर्त्यक होगा (त जह ण देवानुग्रिया ! परमिस्स बहुगुणतर होजा,  
सयस्स चि य ण जणवयस्स) यदि वह धर्मो देश प्रदेशी राजा का हित  
कारक हो जाता है तो उसका जनपद-देश का इससे बड़ा भवा होगा ।

टीकार्थ इसका स्पष्ट है । ‘इदं तु तद्वै एव वयामी’ में ‘तथैव’ पद  
से ‘इष्टतुल्यविदितानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसीमनस्थितः, इयं वशाविसर्पदृष्टयः’  
इस पाठ का ग्रहण हुआ है इन पदों का अर्थ पहिले लिखा जा चुका है  
‘अहम्मिदं जाय’ में आगत पद से ‘अधर्मिष्ठ’ आदिक विशेषणों का ग्रहण

ने आप देवानुग्रिय ते प्रदेशी राजाने जिन अर्पित धर्मो उपदेश आपो तो ते  
प्रदेशी राजाने आ देहा अने भस्वोऽहं अवीव शुद्धकारी धर्म अने धर्मा द्विपद, चतु  
ष्पद, भुज, पशु, पक्षी अने सरीसृप अने सरीसृप अने सरीसृप अने सरीसृप अने सरीसृप  
(तसि च बहुगुण समणमाहणमिच्छुयाणं) अने ते धर्मा अधर्म आहर्मा निष्ठुदोना भाने  
अहं अवीव हितार्थक धर्म धर्म. (त जह ण देवानुग्रिया ! परमिस्स बहुगुणतर  
होजा सयस्स चि य ण जणवयस्स) ने आपने धर्मोपदेश प्रदेशी राजा पीछेना  
एवमभां उतारे तो तेनु पीछातु अने तेना जनपद-देशतु पक्षु तेनाथी पक्षु इत्याहु धर्म तेम छे

आ सुत्रो धीार्थं स्पष्ट ॥ १२३ “इदं तु तद्वै एव वयामी” भां “तथैव”  
पक्षी “इष्टतुल्यविदितानन्दितः प्रीतिमनाः परमसीमनस्थितः इयं वशा  
विसर्पदृष्टयः” आहर्मा अधर्म धर्मो छे आ सय पदोना अर्थ प्रदेशी स्पष्ट  
इत्याभां आ यो छे “अहम्मिदं जाय” भां आनेस यावत् पक्षी ‘अधर्मिष्ठः

કનોયઃ, મ સ્વકસ્યાપિ જનપદસ્=દેશસ્ય કરમરવૃત્તિ-કરેણ મરઃ-મરણ-  
 પોષણ, તદ્રૂપાં વૃત્તિ=વ્યવહાર નો સમ્યક્ પ્રવર્તયતિ, તદ્ યદિ સ્વલુ હે  
 દેગાનુપ્રિય ! પ્રદેશિને રાજ્ઞે મવાન્ ધર્મ જિનપરૂપિતમ્ આશ્રયાયાત્-કથયેત્  
 તદા પ્રદેશિનો રાજ્ઞઃ બહુગુણતરમ્-દ્વલોરુપરલોકસફલીકરણલક્ષણં દયા-  
 દાનાદિરૂપં વાઽત્યન્તગુણં ભવેત્ ! તથા બહુનાં દ્વિપદચતુષ્પદમૃગપશુપક્ષિ-  
 સરીસૃપાણામ્-તત્ર-દ્વિપદા.=દાસીદાસાદયઃ ચતુષ્પદાઃ ચે મૃગાઃ=આરણ્યાઃ, પશવઃ  
 =ગ્રામ્યા ગોમહિષ્યાદયઃ, સરીસૃપાઃ=ભુજપરિસર્પાઃ-ગોધાદયઃ ઊરઃપરિસર્પાશ્ચ  
 સર્પાદયઃ, તેષાં બહુગુણતર=પાલનરક્ષણરૂપ ભવેત્ તથા-શ્રમણમાહનભિક્ષુ-  
 કાણામ્-તત્ર-શ્રમણાઃ=શાક્યાદયઃ, માહનાઃ=બ્રાહ્મણાઃ, ભિક્ષુકાઃ=ભિક્ષાજીવિનઃ  
 તેષાં ચ બહુગુણતરમ્=ભિક્ષાભરક્ષણાદિરૂપમતિશયગુણં ભવેત્ । તત્ યદિ  
 સ્વલુ મદન્ત । પ્રદેશિનો રાજ્ઞો બહુગુણતર ભવેત્ તદા તસ્ય સ્વકસ્યાપિ જન-  
 પદમ્ય=દેશસ્ય બહુગુણતર યોગક્ષેમલક્ષણ ભવેદિતિ ॥ મુ. ૧૨૨ ॥

હુઆ હૈ। યે સચ વિશેષણ ૧૦૧ મૂત્ર મેં કહે જા ચુકે હૈ। વઢીં પરઉનકા  
 અર્થ મી લિખદિયા હૈ। ‘બહુગુણતરમ્’ કા તાત્પર્ય ઉસ પ્રદેશો રાજા કો  
 હસ લોક એવ પરલોક કો સફલ કરનેરૂપ બહુગુણ વાલા અથવા દયાદા-  
 નાદિરૂપ અત્યન્તગુણવાલા હોગા। દાસીદામ આદિ દ્વિપદ સે, મૃગાદિ ચતુષ્પદ  
 સે, ગ્રામ્ય ગોમહિષ આદિ પશુપદ સે, ભુજપરિસર્પ ગોધાદિક, એવં ઊરઃ  
 પરિસર્પ સર્પાદિક, સરીસૃપ પદ સે ગૃહીત હુએ હૈં। इन द्विपदादिकों का पालन  
 रक्षणरूप बहुतरगुणवाला वह धर्मोपदेश होगा। शाक्यादिक श्रमण शब्द से  
 ब्राह्मण माहन शब्द से, तथा भिक्षाजीवी भिक्षुक पद से लिये गये हैं। इन सबके लिये  
 भिक्षालाभ एव संरक्षणादिरूप अतिशय गुणवाला वह धर्मोपदेश होगा ॥मू. १२२॥

વગેરે વિશેષણોનું ગ્રહણ સમજવું જોઈએ આ બધા વિશેષણો ૧૦૧ મા સૂત્રમા  
 આવેલા છે. એનો અર્થ પણ તે સૂત્રમા જ સ્પષ્ટ કરવામા આવ્યો છે. ‘બહુગુણતરમ્’  
 નો અર્થ આ પ્રમાણે છે કે તે ધર્મોપદેશ તે પ્રદેશી રાજાના માટે આ લોકને તેમજ  
 પરલોકને સફળ બનાવવા રૂપ બહુગુણવાળો થશે અથવા તો દયા દાન વગેરે રૂપ  
 અત્યંત ગુણવાળો થશે. દ્વિપદથી દાસી દાસ વગેરે ચતુષ્પદથી મૃગ વગેરે, પશુપદથી  
 ગ્રામ્ય ગોમહિષ વગેરે, સરીસૃપ પદથી ભુજપરિસર્પ ગોધાદિક અને ઊર પરિસર્પ-  
 સર્પાદિકનું ‘સરીસૃપા પદથી ગ્રહણ થયું છે આ દ્વિપદ વગેરેના માટે પાલન રક્ષણરૂપ બહુતર ગુણ  
 વાળો તે ધર્મોપદેશ થશે શ્રમણ શબ્દથી શાક્ય વગેરે, માહન શબ્દથી બ્રાહ્મણ તેમજ  
 ભિક્ષુકપદથી ભિક્ષાજીવીનું ગ્રહણ કરવામા આવ્યું છે આ સર્વના માટે સંરક્ષણ તેમજ  
 ભિક્ષા લાભ વગેરેથી અધર્મોપદેશ અતિશય ગુણવાળો થશે. ॥સૂ. ૧૨૨॥

णाम् । तद् यदि खलु देवानुग्रिय ! पर्योक्षानो बहुगुणतर भवेत् स्वक  
स्यापि च खलु जनपदस्य ॥ सू० १२२ ॥

टीका—‘तए णं से चित्ते’ इत्यादि—ततः=तदनन्तर खलु स चित्तः  
सारयिः केणिनः कुमारभ्रमणस्य अतिके=समीपे धर्मे जिनोक्तं सुत्वा=अथ  
गोचरीकृत्य निश्चय्य=इष्टवर्षाद्यैः इष्टतुल्य तथैव=पूर्ववदेव इष्टतुल्य चित्तानन्दितः  
प्रीतिमनाः परमसौमनस्यतः इप वशाविसर्पदृश्यः, इति सम्राट् ।  
अर्थस्तु पूर्व गतः । एवमनादीत्—किमनादीत् ? इत्याह—एव खलु यत् हे भ्राता  
अस्माकं प्रदेशी राजा अचर्मिका यावत्—यावत्पदेन—अचर्मिष्ठादीनि सर्वाणि  
विशेषणानि एकवचनमनुक्तानि सम्राट्, एवमर्थोऽपि तथैव विमो

यदि आप हे देवानुग्रिय ! उस प्रदेशी राजा को जिनपरूपित धर्म का उप  
देख देवे तो वह वस्तु प्रदेशी राजा के किये और परमोक्त में बहुत गुण  
कारी होगा, तथा अनेक शिपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी एवं सरीसृप-  
सर्प आदिकों का हितवाह होगा (तस्मिं च बहुल समणमाहमिमिक्खु  
याण) और उन अनेक भ्रमण माहण, निष्ठुरों के लिये बहुत ही अधिक  
सामर्थ्यक होगा (त म्हा ण देवानुग्रिया ! परमिस्स बहुगुणतर होज्जा,  
सयस्स वि य ण जणवयस्स) यदि वह धर्मो देश प्रदेशी राजा का हित  
कारक हो जाता है तो उसका जनपद—देश का इससे बड़ा भवा होगा ।

टीकार्थ इसको स्पष्ट है । ‘इदुह तदेव एव वयासी’ में ‘तथैव’ पद  
स ‘इष्टतुल्यचित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यतः, इप वशाविसर्पदृश्यः’  
इस पाठ का ग्रहण हुआ है इन पदों का अर्थ पहिले लिखा जा चुका है ।  
‘अहम्मि ए जाव’ में आगत पद से ‘अचर्मिष्ठ’ आदिक विशेषणों का ग्रहण

जो आप देवानुग्रिय ते प्रदेशी राजाने जिन प्ररूपित धर्मो उपदेश आपो तो ते  
प्रदेशी राजाने आ लोक जने फलोक्त अतीव अनुग्रही धाय जने भव्वां शिप, चतु  
ष्पद, मृग, पशु, पक्षी जने सरीसृप जेटवे हे आप वजेरना भाटे पशु हितवाह धाय  
(तस्मिं च बहुल समणमाहमिमिक्खुयाण, जने ते भव्वां अभय माहवु विमुक्केना भाटे  
पशु अतीव हितवाह धाय धाय. (त म्हा ण देवानुग्रिया ! परमिस्स बहुगुणतर

होज्जा, सयस्स वि य ण जणवयस्स) जो आपने धर्मोपदेश प्रदेशी राजा पित्तान्ना  
एवमभां उताते ते तेनु पित्तान्ना जने तेना जनपद—देशतु पशु तेनाधी पशु अथवा धाय तेम उ

आ सुत्रो टीकाय स्पष्ट व उ “इह तदेव वयासी ‘मां’ तथैव”  
पक्षी “इष्टतुल्यचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यतः, इप वशा  
विसर्पदृश्यः” आपने समस्त धर्मो उ आ सब पदोना जव फेटेला स्पष्ट  
अर्थभां आ ये उ “अहम्मि ए जाव” भां आवेला याव पक्षी ‘अचर्मिष्ठ’

डिलाभेइ अट्टाई जाव पुच्छइ, एएण वि० (४) जत्थ वि य णं समणेण  
 ॥० अभिसमागच्छइ तत्थवि य णं णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता  
 चेद्वेइ, एएणवि ठाणेणो चित्ता ! जाव केवल्लिपन्नत धम्मं लभइ  
 सवणयाए । तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगयं वा तंचेव  
 संब्व भाणियंवं आइल्लएणं गमएणं जाव अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ  
 तं कहं णं चित्ता ! पएसिस्स रन्नो धम्मममाइविक्खस्सामो ? ॥सू० १२३॥)

छाया-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः चित्र सारथिम् एवमवादीत्-एवं खलु  
 चतुर्भिः स्थानैः चित्र ! जीवः केवल्लिपन्नस धम्मं नो लभते श्रवणतयै, तच्चथा-  
 (१) आरामगत वा उद्यानगत वा श्रमणं वा माह्वन वा नो अभिगच्छति, नो  
 वन्दते, नो नमस्यति, नो सत्क्रोति, नो सम्मानयति, नो कल्याण मङ्गल  
 देवतं चैत्य पर्युपास्ते. अर्थात् हेतूनप्रश्नान् कारणानि व्याकरणानि पृच्छति

‘तए णं से केसीकुमारममणे’ इत्यादि ।

(सूत्रार्थ-(तए णं से) इसके बाद (केसीकुमारममणे) केशीकुमारश्रमणने  
 (चित्तं सारहिं) चित्र सारथि से (एवं वयासी) ऐसा कहा-(एवं खलु चउहिं  
 ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवल्लिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए) हे चित्र !  
 जीव चार कारणों से केवल्लिपन्नत्त धर्म को सुन नहीं सकता है । (त जहा-  
 आरामगय वा उज्जाणगय वा, समणं वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो  
 णमंसइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, कल्लाण मंगल देवय चेइयं पज्जुवासेइ)  
 जैसे-आराम में आये हुए या उद्यान में आये हुए श्रमण के वा माह्वन के

‘तए णं से केसीकुमारममणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ —(तए णं) त्थार पछी (केसीकुमारममणे) केशीकुमारश्रमणे चित्त  
 सारहिं) चित्रसारथिने (एवं वयासी) आ प्रभाणुं क्खुं (एवं खलु चउहिं  
 ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवल्लिपन्नत धम्म नो लभेज्जा सवणयाए) हे चित्र !  
 एव त्थार कारणेने दीधे केवली प्रजस धम्मंनुं श्रमणु करी शकतो नथी (त जहा-  
 आरामगय वा उज्जाणगयं वा, समणं वा माह्वनं वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो  
 णमंसइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो कल्लाण मंगलं देवय चेइयं  
 पज्जुवासेइ) जेभडे आरामभा पधारेला हे उद्यानभा पधारेला श्रमणु हे महुणुनी

(मूल—तएण से केसीकुमारसमणे चित्त सारहि एव वयासी  
एव खलु चउहि ठाणेहि चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्त धम्म नो लभेज्जा,  
सवणयाए, त जहा—आरामगय वा उज्जाणगय वा समण वा  
माहण वा णो अभिगच्छइ णो वदइ णो णमसइ णो सक्कारेइ णो  
सम्माणेइ णो कल्लण मगल देवय चेइय पज्जुवासेइ, नो अट्ठाइ  
हेउइ पसिणाइ कारणाइ वागरणाइ पुच्छेइ, एएणं ठाणेणं चित्ता !  
जीवे केवलपन्नत्त धम्म नो लभइ सवणयाए । (१) उवस्सयगय  
समण वा त चैव जाव एएणवि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्त  
धम्म नो लभइ सवणयाए । (२) गोयरग्गय समण वा माहणं  
वा नो जाव पज्जुवासइ, नो विउलेण असण्णान्वाइमसाइमेणं पढि  
लाभइ० नो अट्ठाइ जाव पुच्छइ, एएणं ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवल  
पन्नत्त धम्म नो लभइ सवणयाए । (३) जत्थ वि णं समणेणं वा  
माहणेण वा सद्धि अभिसमागच्छइ तत्थवि ण हत्थेण वा वत्थेण  
वा छत्तेण वा अप्पाण आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्ठाइ जाव पुच्छइ,  
एएणवि ठाणेण चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्त धम्म णो  
लभइ सवणयाए, (४) एएहि च ण चित्ता ! चउहि  
ठाणेहि जीवे नो लभइ केवलपन्नत्त धम्म सवणयाए ।  
चउहि ठाणेहि चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्त धम्म लभइ सवण  
याए, त जहा—(१) आरामगय वा उज्जाणगय वा समण वा माहण  
वा वदइ नमसइ जाव पज्जुवासइ अट्ठाइ जाव पुच्छइ, एएण ठाणेण  
चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्त धम्म लभइ सवणयाए । एवं [२] उव  
स्सयग० [३] गोयरग्गय समण वा जाव पज्जुवासइ, विउलेण जाव

पडिलाभेइ अट्टाईं जाव पुच्छइ, एएण वि० (४) जत्थ वि य णं समणेण  
 वा० अभिसमागच्छइ तत्थवि य णं णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता  
 चिट्ठेइ, एएणवि ठाणेण चित्ता ! जाव केवलपन्नत धम्मं लभइ  
 सवणयाए । तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगयं वा तंचेव  
 संव्व भाणियवंव आइल्लएणं गमएणं जाव अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ  
 तं कहं णं चित्ता ! पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खिस्सामो ? ॥सू० १२३॥)

छाया-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिम् एवमवादीत्-एवं खलु  
 चतुर्भिः स्थानैः चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञस धर्मं नो लभते श्रवणतयै, तद्यथा-  
 (१) आरामगत वा उद्यानगत वा श्रमणं वा माह्वन वा नो अभिगच्छति, नो  
 वन्दते, नो नमस्यति, नो सत्करोति, नो सम्मानयति, नो कल्याण मङ्गलं  
 दैवत चैत्य पर्युपास्ते. भर्थात् हेतून् प्रश्नान् कारणानि व्याकरणानि पृच्छति

‘तए णं से केशीकुमारमणे’ इत्यादि ।

(सुत्रार्थ- (तए णं से) इसके बाद (केशीकुमारमणे) केशीकुमारश्रमणे  
 (चित्तं सारहिं) चित्र सारथि से (एवं वयासी) ऐसा कहा- (एवं खलु चउहिं  
 ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए) हे चित्र !  
 जीव चार कारणों से केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं सकता है । (त जहा-  
 आरामगय वा उज्जाणगय वा, समण वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो  
 णमंसइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, कल्लण मंगल देवय चेइयं पज्जुगसेइ)  
 जैसे-आगम में आये हुए या उद्यान में आये हुए श्रमण के वा माह्वन के

‘तए ण से केशीकुमारमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ — (तए णं) त्थार पछी (केशीकुमारमणे) केशीकुमारश्रमणे चित्त  
 सारहिं) चित्रसारथिने (एव वयासी) या प्रमाणे क्खुं (एवं खलु चउहिं  
 ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत धम्म नो लभेज्जा सवणयाए) हे चित्र !  
 एव त्थार श्रवणेने लीधे केवली प्रज्ञस धर्मत्तु श्रमणे करी शक्थो नथी । (तं जहा-  
 आरामगय वा उज्जाणगय वा, समणं वा माह्वनं वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो  
 णमंसइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो कल्लणं मंगल देवयं चेइयं  
 पज्जुवासइ) नेमके आशमभा पधारेला हे उद्यानभा पधारेला श्रमणे हे भड्डायनी-



एतेन स्थानेन चित्र । जीव केवलमिदं प्रथमं नो लभते श्रवणसाधै । (२)  
उपाश्रयगत भ्रमण वा तदेव यावत् एतेनापि स्थानेन चित्र । जीव केवलमि  
प्रथमं धर्मं नो लभते श्रवणसाधै । (३) गौचराप्रगतं भ्रमण वा माहर्न वा

समुच्च सत्कार आदि करने के निमित्त जो नहीं जाता है, मधुर ध्वनों  
से जो सुखशातादि प्रत्यक्ष उनकी स्तुति नहीं करता है, उनके समस्त  
अपने मस्तक को जो नहीं झुकाता है, अभ्युत्थानादि द्वारा जो उनका  
सत्कार नहीं करता है, वसति आदि के होने से जो उनका सम्मान नहीं  
करता है, तथा कल्याणस्वरूप, भोग्यस्वरूप धर्मस्वरूप मानकर एवं  
विशिष्टज्ञान वाचा मानकर जो उनकी पशुपासना नहीं करता है, (नो अद्वाइ,  
हेऊ, पसिणाइ, वारणाइ, वागरणाइ, पुच्छेइ) अर्थ को-जीवाजीवार्थिक  
पदार्थों को, हेतुओं को-अभ्युत्थानुपपत्तिरूप साधनों को, प्रक्षों को, कारणों को,  
व्याकरणों को, नहीं पूछता है, (एएण ठाणेण चित्ता । जीवे केवलमिदं प्रथमं  
धर्मं नो लभः श्रवणसाधै) इस कारण से है चित्र । जीव केवलमिदं प्रथमं धर्मं को  
गुन नहीं सकता है। यह प्रथम कारण है । (१) (उपश्रयगतं भ्रमण वा त चेन  
माव एएण ठाणेण चित्ता । जीव केवलमिदं प्रथमं धर्मं नो लभः श्रवणसाधै)  
उपाश्रय में आवे हुए भ्रमण के सत्कार आदि करने के निमित्त जो उनके  
समस्त नहीं जाता है यावत् उनसे व्याकरणों को नहीं पूछता है, ऐसा जीव  
इस द्वितीय कारण से भी केवलमिदं प्रथमं धर्मं को गुन नहीं सकता है । (२)

आमे ने सत्कार वजरे करवा भाटे जेतो नहीं भुइ वधनोथी सुभगात्तादि प्रत्यक्ष  
तेमनी स्तुति करतो नहीं तेमनी आमे पेटातु भस्तक नअ आवे नभावतो नहीं,  
अभ्युत्थान वजरे वटे ने तेमने सत्कारतो नहीं वसति वजरेआधीने तेमनु स भान  
करतो नहीं तेमने अभाण स्वइय भोग्यस्वइय, धर्मस्वइय आनीने अने विशिष्ट  
ज्ञान संपन्न आनीने ने तेमनी पशुपासना करतो नहीं । (नो अद्वाइ, हेऊ, पसि  
णाइ, वारणाइ, वागरणाइ, पुच्छेइ) अर्थ को-एव अएव वजरे प्रक्षीने, हेतु-  
ओंने अभ्युत्थानुपपत्तिरूप साधनोंने, प्रक्षीने शरत्तुने, व्याकरणोंने पूछतो नहीं, (एएण ठाणेण  
चित्ता । जीवे केवलमिदं प्रथमं धर्मं नो लभः श्रवणसाधै) के चित्र । आ शरत्तुने  
क्षीपि अ एव केवलमिदं प्रथमं धर्मं श्रवण करी शकतो नहीं, आ पदेसु शरत्तु (१)  
(उपश्रयगतं भ्रमण वा त चेन माव एएण ठाणेण चित्ता । जीव केवलमिदं  
प्रथमं धर्मं नो लभः श्रवणसाधै) उपाश्रय में पधारेलो भ्रमण के भादुने  
सत्कार वजरे करवा भाटे ने तेमनी आमे जेतो नहीं, यावत् तेमने व्याकरणोंने  
प्रक्ष करतो नहीं आ जेतोने एव आ जीव शरत्तुभी पशु केवलमिदं प्रथमं धर्मं

नो यावत् पयुपास्ते नो विपुलेन अजनपानवाद्यस्त्राद्येन प्रतिलम्भयति०  
नो अर्गन् यावत् पृच्छति, एतेन स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्त  
धर्म नो लभते श्रवणतायै । (४) यत्रापि खलु श्रमणेन  
वा माहनेन वा साद्धिं अभिममागच्छति, तत्रापि खलु हस्तेन वा वस्त्रेण  
वा छत्रेण वा आत्मानमावृत्य तिष्ठति, नो अर्गन् यावत् पृच्छति एतेना-  
पि स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्त धर्म नो लभते श्रवणतायै, एतश्च खलु  
चित्र ! चतुर्भिः स्थानैर्जीवः नो लभते केवलप्रज्ञप्त धर्म श्रवणतायै ॥

(गोयरगगय समणं वा माहणं वा नो जाव पज्जुवासइ, नो विउलेण  
असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभइ० नो अट्ठाइं जाव पुच्छइ  
एए ण ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं ने लभइ सवणयाए)  
गोचरी के लिये-भिक्षा के लिये-गाव में आये हुए श्रमण के या माहण  
का जो सम्कार आदि करने के निमित्त उनके समक्ष नहीं जाता है, यावत्  
उनकी पयुपासना नहीं करता है, तथा विपुत्र अजन, पान, खाद्य, स्वाद्यरूप चार  
प्रकार के आहार द्वारा जो उन्हें यतिकामिन नहीं करता है, और जो  
अर्थ से लेकर व्याकरणक उनसे नहीं पूछता है वह जीव है चित्र ! इस  
तृतीय कारण से भी केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं सकता है (३)  
(जत्थ वि णं समणेणं वा माहणेणं वा सद्धिं अभिममागच्छइ, तत्थ वि ण  
हत्थेण वा वत्थेण वा छतग वा, अप्पाणं आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्ठाइ जाव  
पुच्छइ, एए ण वि० ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए एएहिं  
च णं चित्ता ! चउहिं ठाणेहिं जीवे नो लभइ, केवलपन्नत्तं धम्मं सवणयाए) :सी

श्रवणु करी शक्तो नथी. (२) (गोयरगगयं समणं वा माहणं वा नो जाव पज्जुवा-  
सइ, नो विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभइ० नो अट्ठाइं जाव  
पुच्छइ एए ण ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवल पन्नत्तं धम्मं लभइ  
सवणयाए) गोचरी भाटे-भिक्षा भाटे गाभमा आवेला श्रमणु के माहणु वगेरेने  
सत्कार वगेरे करवा भाटे ने तेमनी सामे जतो नथी, यावत् तेमनी पयुपासना करतो  
नथी, तेमने विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यरूप चार प्रकारना आहारवडे ने तेमने  
प्रतिलासित करतो नथी अने ने अर्थथी भाडीने व्याकरण सुधीना यथा विषयोना  
बाधतामा तेमने प्रश्नो पूछतो नथी हे चित्र ! ते एव आ त्रीण कारणवडे पणु  
केवल प्रज्ञप्त धर्म नु श्रवणु करी शक्तो नथी (३) (जत्थ वि णं समणेणं वा  
माहणेणं वा सद्धिं अभिममागच्छइ, तत्थ वि णं हत्थेण वा वत्थेण वा छत्रेण  
वा, अप्पाणं आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्ठाइ जाव पुच्छइ, एए ण वि ठाणेणं  
चित्ता ! जीवः केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए एएहिं च णं चित्ता !  
चउहिं ठाणेहिं जीवे नो लभइ, केवल पन्नत्तं धम्मं सवणयाए) आ प्रमाणे

एतेन स्थानेन चित्र ! जीव केवलमिष्यन्त धर्म नो लभते अथवायै । (२)  
उपाश्रयगत भ्रमण वा उद्देश यावत् एतेनापि स्थानेन चित्र ! जीवः केवलमि  
ष्यन्त धर्म नो लभते अथवायै । (३) गोचराग्रगत भ्रमण वा माह्न वा

समुच्च सत्कार आदि करने के निमित्त जो नहीं जाता है, मधुर वचनों  
से जो सुखशाठादि मन्त्रपूजक उनकी स्तुति नहीं करता है, उनके समस्त  
भयने मस्तक को जो नहीं झुकाता है, अम्बुस्थानादि द्वारा जो उनका  
सत्कार नहीं करता है, वसति आदि के देने से जो उनका सम्मान नहीं  
करता है, तथा कल्याणस्वरूप, भोगलभ्यस्वरूप धर्म देवस्वरूप मानकर एवं  
विशिष्टज्ञान वाक्य मानकर जो उनकी यथुपासना नहीं करता है, (नो अङ्गाइ,  
हेऊइ पसिणाइ वागणाइ, वागरणाइ पुण्डेइ) अथ को-जीवाजीवादिक  
पदार्थों को, हेतुओं को-अन्वय/नुपपत्तिरूप साधनों को, यक्षों को, कारणों को,  
व्याकरणों को, नहीं पूछता है, (एएणं ठाणेण चित्ता ! जीवे केवलमिष्यन्त  
धम्म नो लभइ सवणयाणं) इम कारण सहे चित्र ! जीव केवलमिष्यन्त धर्म को  
सुन नहीं सकता है। यह प्रथम कारण है। (१) (उबस्सयगं समण वा तं चेव  
जाय एएण विठाणेण चित्ता ! जीव केवलमिष्यन्त धम्म नो लभइ सवणयाणं)  
उपाश्रय में आय हुए भ्रमण के सत्कार आदि करने के निमित्त जो उनके  
समस्त नहीं जाता है यावत् उनसे व्याकरणों को नहीं पूछता है, ऐसा जीव  
इम द्वितीय कारण से भी केवलमिष्यन्त धर्म को सुन नहीं सकता है। (२)

आगे के सत्कार वगैरे करना आगे जेतो नहीं मधुर वचनोंकी मुजश्यावादि मन्त्रपूजक  
तेमनी स्तुति करते नहीं, तेमनी आगे चलातु भस्त्रक नञ् आवे नभयते नञ्,  
अकमुत्थान वगैरे पढे के तेमो सत्कारतो नहीं, वसति वगैरे आधीने तेमनु स मान  
करतो नहीं तेमव लब्धाणु स्वरूप भोगस्वरूप, धर्म देवस्वरूप आनीने अने विशिष्ट  
ज्ञान सफल आनीने के तेमनी यथुपासना करते नहीं, (नो अङ्गाइ, हेऊइ, पसि  
वाइ कारणाइ वागरणाइ, पुण्डेइ) अर्थोने-एव अलव वगैरे आधीने, हेतु  
आने अन्वयानुपपत्तिरूप साधनोने, यक्षोने, व्याकरणोने पूछतो नहीं, (एएणं ठाणेण  
चित्ता ! जीवे केवलमिष्यन्त धम्म नो लभइ सवणयाणं) के चित्र ! आ करणुने  
वीधि व एव देवति प्रशस्त धर्मनु अवश्य करीशकतो नहीं, आ पडेहु करणु छे (१)  
(उबस्सयगं समण वा तं चेव जाय एएण वि ठाणेण चित्ता ! जीवे केवलमिष्य  
न्त धम्म नो लभइ सवणयाणं) उपाश्रय में आयेवा प्रशस्त के आहवने  
सत्कार वगैरे करना आगे के तेमनी आगे जेतो नहीं, यावत् तेमने व्याकरणो बिने  
प्रश्न करते नहीं, आ जेतो एव आ जीव करणुभी यथु देवतिप्रशस्त धर्मनु

यावत् पर्युपास्ते, विपुलेन यावत् प्रतिलम्भयति, अर्थान् यावत् पृच्छति, एतेनापि०, (४) यत्रापि च खलु श्रमणेन वा० अभिसमागच्छति तत्रापि च खलु नो हस्तेन वा यावत् आवृत्य तिष्ठति, एतेनापि स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्त धर्मलभते श्रवणायै, न च खलु चित्र ! प्रदेशो राजा आरामगत वा तदेव सर्वं भणितव्यम् आदिमेन गमकेन यावद् आन्मानमावृत्य तिष्ठति, तत्कथं खलु चित्र ! प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यास्यामः ? ॥मू० १२३॥

से या माहण से उनको वन्दना करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, पर्युपासना करता हुआ अर्थों को यावत् पूछता है, ऐसा जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है. (२) (गोयरगगय समणं वा जाव पञ्जुवासइ, विउलेणं जाव पडिलाभेइ, अट्ठाइ जाव पुच्छइ, एएण वि०), इसी प्रकार जो जीव गोचरीगतश्रमण की या माहण को यावत् पर्युपासना करता है, विपुल आहार से उन्हे प्रतिश्रुति करना है, उनसे अर्थों को यावत् पूछता है—वह जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है, (३) (जत्थ वि य णं समणेण वा० अभिसमागच्छइ, तत्थ वि य ण णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता चिट्ठेइ) जहां पर भी श्रमण या माहण के साथ संगत होता है वहां पर जो जीव अपने आप को हाथ से यावत् आवृत्य छुाता नहीं है ऐसा वह जीव इस चतुर्थ कारण को लेकर केवलप्रज्ञप्त जिनधर्म का श्रवण कर सकता है (४) (तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगय वा तं चेव सव्व भाणियव्वं आइल्लएण गमएणं जाव अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ तं कहं ण चित्ता !

धर्मस्तु श्रवणु करी शके छि. (१) ओए प्रभाणु (उवम्मयगय ०) आ प्रभाणु ने एव उपाश्रयोमा आवेदा श्रमणुने के माडुनेने वन्दन करतो, नमस्कार करतो, पर्युपासना करतो, अर्थेनि यावत् पूछे छि, ओवो एव केवलप्रज्ञप्त धर्मस्तु श्रवणु करी शके छि (२) गोयरगगयं समणं वा जाव पञ्जुवासइ, विउलेण जाव पडिलाभेइ, अट्ठाइ जाव पुच्छइ, एएण वि०) ओ प्रभाणु ने एव गोचरी माटे नीकणेला श्रमणुनी के माडणुनी यावत् प्रयुपासना करे छि विपुल आहारथी तेभने प्रतिश्रुति करे छे. तेभने अर्थो विषे यावत् पूछे छि ते एव केवलप्रज्ञप्त धर्मस्तु श्रवणु करे छे. (३) (जत्थ वि य णं समणेण वा अभिसमागच्छइ तत्थ वि य णं णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता चिट्ठेइ), श्रमणु के माडणु गमे त्या भणे ने एव तेओश्रीने ओधने पोतानी नतने पोताना हाथो वडे यावत् आवृत्य करतो नथी ओवो ते एव आ ओथा करणुने दीधे केवल प्रज्ञप्त जिनधर्मस्तु श्रवणु करी शके छि. (४) (तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगय वा तं चेव सव्व भाणियव्वं आइल्लएण गमएणं जाव

चतुर्विंशतिः स्थितिः चित्रः जीवाः केवललिपिप्रज्ञप्त धर्म समते भरणसायै, तद्यथा

(१) भारामगत वा उद्यानगत वा धर्मण वा माहर्ण वा वन्दने नमस्कृति यास्तु  
पयुपास्ते भर्गोन् यास्तु पुच्छति, एतेन स्थानेन चित्रः जीवाः केवललिपिप्रज्ञप्त  
धर्म समते भरणसायै, एव (२) उपाभयगतम् । (३) गोमराप्रगत आत्मा वा

प्रकार जो भरण भयवा माहर्ण के माय संगत हो जाता है वहाँ पर भी यह भरण  
भयवा माहर्ण सुखे पहिधान न ले इस हेतु से जो अपने आपको हाथसे  
बाँधकर से या छत्र से आवृत कर लेता है एवं उनसे प्रभादि कुछभी  
नहीं पूछता है हे चित्र ! इस चतुर्थ कारण से भी जीव केवललिपिप्रज्ञप्त  
धर्म को सुन नहीं पाता है । (४) इस प्रकार हे चित्र ! ये चार कारण हैं कि  
जिनकी वजह से यह जीव केवलो मगधान् द्वारा कहे गये धर्म को सुन नहीं  
पाता (वउहिं ठाणेहिं विस्ता ! जीवे केवल्लिपिप्रज्ञप्त धर्म समते भरणसायै)  
हे चित्र ! चार कारणों से जीव केवललिपिप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है (५) जहा—  
भारामगत वा उद्यानगत वा समण वा माहर्ण वा वन्द, नम सह भाव  
पञ्जुसाम्) ये चार कारण इस प्रकार से हैं—भारामगत वा उद्यानगत  
भरण को वा माहर्ण को जो पहना करता है नमस्कार करता है, यास्तु  
उनकी पयुपासना करता है (अद्वाहं भाव पुच्छहं) भर्गो को यास्तु पूछता है  
(एएण ठाणेण विस्ता ! जीवे केवल्लिपिप्रज्ञप्त धर्म समते भरणसायै) इस  
कारण को लेकर हे चित्र ! वह जीव केवललिपिप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है (१)  
ह, एवं (उवस्सगग ) इसी प्रकार जो जीव उपाधियों में भाये हुए भरण

ने भरण के माहर्ण की भाँति आवृत्तां तो भरण के माहर्ण तैने कोणभी है नहि  
त भाँते ने पानानी आवृत्ते हाथवटे के वल्ल वटे के छत्रवटे छत्रवटी है ते भने  
तेभने प्रस वगेरे कथं पूछते नथी हे चित्र ! आ आधा कारवुधी पण एव केवलि  
प्रज्ञप्त भर्मतु भवण करी शकते नथी (४) आ प्रभावे हे चित्र ! आ आर कारवुने  
वीपि व एव केवलीभमवान वटे कहेवा भर्मतु भवण करी शकते नथी ( वउहिं  
ठाणेहिं विस्ता ! जीवे केवल्लिपिप्रज्ञप्त धर्म समते भरणसायै) हेचित्र ! आर  
कारवुधी एव केवलि-प्रज्ञप्त धर्मतु भवण करी शकते (५) जहा—भारामगत वा  
उद्यानगत वा समण वा माहर्ण वा, वन्द, नम सह भाव पञ्जुसाम्) ते  
आर कारवुने आ प्रभावे छे—आधममां पधारैवा के उव्वनमां पधारैवा भमवुने के  
माहर्णने ने वदन करे छे नमस्कार करे छे भावत तेमनी पयुपासना करे छे (अद्वाहं  
भाव पुच्छहं) अथेहिं यास्तु पूछे छे (एएण ठाणेण विस्ता ! जीवे केवल्लि  
पिप्रज्ञप्त धर्म समते भरणसायै) आ कारवुने वीपि हे चित्र ! ते एव केवलि प्रज्ञप्त

यावत् पर्युपास्ते, विपुलेन यावत् प्रतिलम्भयति, अर्थान् यावत् पृच्छति, एतेनापि०, (४) यत्रापि च खलु श्रमणेन वा० अभिसमागच्छति तत्रापि च खलु नो हस्तेन वा यावत् आवृत्य तिष्ठति, एतेनापि स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्त धर्मलभते श्रवणनायै, तत्र च खलु चित्र ! प्रदेशो राजा आरामगत वा तदेव सर्वं भणितव्यम् आदिमेन गमकेन यावद् आन्मानमावृत्य तिष्ठति, तत्कथं खलु चित्र ! प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाग्रास्यामः ? ॥ सू० १२३ ॥

से या माहण से उनको वन्दना करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, पर्युपासना करता हुआ अर्थों को यावत् पूछता है, ऐसा जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है, (२) (गोयरगगय समणं वा जाव पज्जुवासइ, विउलेणं जाव पडिलाभेइ, अट्टाई जाव पुच्छइ, एएण वि०) इसी प्रकार जो जीव गोचरीगतश्रमण की या माहण को यावत् पर्युपासना करता है, विपुल आहार से उन्हें प्रतिभामित करना है, उनसे अर्थों को यावत् पूछता है—वह जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है, (३) (जत्थं वि य णं समणेण वा० अभिसमागच्छइ, तत्थं वि य ण णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता चिट्ठेइ) जहां पर भी श्रमण या माहण के साथ संगत होता है वहां पर जो जीव अपने आप को हाथ से यावत् आवृत्य लुगाता नहीं है ऐसा वह जीव इस चतुर्थ कारण को लेकर केवलप्रज्ञप्त जिनधर्म का श्रवण कर सकता है (४) (तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगयं वा तं चेव सब्ब भाणियव्वं आइल्लएण गमएणं जाव अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ तं कहं ण चित्ता !

धर्मस्तु श्रवणु करी शके छे, (१) ऐव प्रभाणु (उत्तम्मयगय ०) आ प्रभाणु ने एव उपाश्रयोभा आवेला श्रमणोने के भाडोने वन्दन करतो, नमस्कार करतो, पर्युपासना करतो, अर्थान् यावत् पूछे छे, ऐवो एव केवलप्रज्ञप्त धर्मस्तु श्रवणु करी शके छे (२) गोयरगगयं समणं वा जाव पज्जुवासइ, विउलेणं जाव पडिलाभेइ, अट्टाई जाव पुच्छइ, एएण वि०) आ प्रभाणु ने एव गोचरी भाटे नीकणेला श्रमणुनी के भाडणुनी यावत् प्रयुपासना करे छे विपुल आहारथी तेमने प्रतिवासित करे छे तेमने अथी विषे यावत् पूछे छे ते एव केवलप्रज्ञप्त धर्मस्तु श्रवणु करे छे (३) (जत्थं वि य णं समणेण वा अभिसमागच्छइ तत्थं वि य णं णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता चिट्ठेइ) श्रमणु के भाडणु गमे त्या मणे ने एव तेमोश्रीने जेधने पोतानी जतने पोतानी साथी वडे यावत् आवृत्य करतो नथी, ऐवो ते एव आ योथा करणुने दीधि केवलि प्रज्ञप्त जिनधर्मस्तु श्रवणु करी शके छे, (४) (तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगयं वा तं चेव सब्ब भाणियव्वं आइल्लएण गमएणं जाव

ટીકા—‘તપ્ત કેસી’ इत्यादि—

ततः स्वसु केशीकुमारभ्रमणः विप्र सारथिम् एव = वक्ष्यमाणमकारेण  
अवादीद=उक्तवान्-हे विप्र ! एव ससु त्वं विमानोक्ति, एव चतुर्मासवान्।  
=कारणैः जीवः केवलमिष्टम् = तीर्थकुपदिष्ट धर्म भणतादै=ओतु नो समते=  
नो मानोति तद्यथा-आरामगतम्-आरामं = विविधपुण्यजायुषश्चोभित, ११  
गत=प्राप्त वा, उद्यानगतम्-उद्यान = पुण्यफलोपेतैस्तेजोपक्षोभित बहुजनसंख्यम्  
उद्यानिकास्थान = तत्र गत=प्राप्त वा भ्रमण साधु वा माइन=११धारित  
-भावक वा नो अभिगच्छति=सत्काराद्यर्थं नो अभिमुखं दाति नो, धन्द्वे=

पपसिस्स रन्तो धम्ममाहविसरसामो ) हे विप्र ! तुम्हारा प्रदेशीराजा  
आराम आदिमत्त भ्रમણ કે વા માહણ કે ન સ-મુદ્ધ આજા છે વાવત ન  
ઠનકી પર્યવાસના કરતા છે, इत्यादि प्रथमः गम से छेकर वह  
बाँचे गम तक युक्त बना हुआ है वो फिर मैं उसके बिये किस प्रकार  
से केवलमिष्टम् धर्म का उपदेश वृ । )

टीका—केशीकुमारभ्रमणने विप्र सारथीसे जो कुछ कहा है, वह  
इस सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है-इसमें यह समझाया गया है कि कौन  
जीव किन २ कारणों से केवलमिष्टम् धर्म सुन सकता है और कौन जीव  
किन २ ही कारणों से उसे नहीं सुन सकता है केवलमिष्टम् धर्म ही मर्यादा  
में प्रथम कारण यह है कि भ्रमण या माहण-१२ व्रतों का पावनकर्ता-  
सहस्र जय किमी उद्यान में-विविध पुण्यों से या फलों से युक्त वृत्तों  
से शोभित ऐसे अनेकजनसेव्य बगीचे में या आराम में-विविध प्रकार की

अप्यार्ण आदरेणा विद्वह त कर्ह ण चित्ता ! पपसिस्स रन्तो धम्ममाह  
विसरसामो) हे विप्र ! तમાથે પ્રદેશી રાજા આરામ કે ઉદ્યાનમાં આવેલા અમલ  
કે અહલુની સામે સતારવા બેતા નથી વાવત તેમની પર્યવાસના ખજા કરેલો નથી  
બને બા પ્રમાણે તે પ્રથમ અમલી માંડીને બોલા અમલી મુકત બનેલો છે તે ખજી  
હુ તેને કેવલમિષ્ટપ્રત્યધમનો ઉપદેશ કેવી રીતે બાધુ ?

ટીકા—કેસીકુમાર ભ્રમણે વિપ્રસારથીને જે કહ્યું હતું છે તે બા સૂત્ર વડે સ્પષ્ટ  
કરવામાં આવ્યું છે બા સૂત્રવડે બા પ્રમાણે સમજાવવામાં આવ્યું છે કે કમી ભવ  
યા યા કારણેને લીધે કેવલમિષ્ટપ્રત્ય ધર્મનું અવળ કરી શકે છે અને કમી ભવ યા  
યા કારણેથી તેનું અવળ કરી શકેલો નથી કેવલમિષ્ટપ્રત્ય ધર્મની અપ્રાપ્તિમાં પહેલું  
કારણ બે જવાબમાં બા મુ છે કે અમલ કે માહણ-૧૨ વ્રતોનું પાલન કરે તે  
મુદ્રા-૧૧-૧૨મારે અમે તે ઉદ્યાનમાં વિવિધ પુણ્યોથી કે ફળોથી મુકત વૃક્ષોથી શોભિત  
|| અનેક જનસેવ્ય અમીયામાં કે આરામમાં-બનેક બેલની પુષ્પ ખાતિઓથી મુકત

मधुरवचनैः सुखशातादिप्रश्नपूर्वकं नो स्तोति, नो नमस्यति=नतमस्तको न भवति, नो सत्कारयति=अभ्युत्थादिना, नो सम्मानयति=वसत्यादिप्रदानेन, 'कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यम्' तत्र-कल्याणं=कल्याणस्वरूपम्, मङ्गलं=मङ्गलस्वरूपम्, दैवतं=धर्मदेवस्वरूपम्, चैत्यं=चितिः=विशिष्टज्ञानं, तथायुक्तं विशिष्टज्ञानवन्तं मत्वा नो पर्युपास्ते=नो सेवते, अर्थान् हेतून् प्रश्नान् कारणानि व्याकरणानि नो पृच्छति । तत्र-अर्थान् जीवाजीवादिपदार्थान्, हेतून्=अन्यथानुपपत्तिरूपान्, जीवा देशादिगतिं कथं प्राप्नुवन्ति-इति स्वरूपान्, आत्मना सह कर्मणः कथं सम्बन्धो जायते? इति रूपान् वा, प्रश्नान्=संग्रहानोदार्थं जीवाजीवादिसरूपमच्छन्नावेषयान्, कारणानि='जीवस्य ज्ञानादि त्रयं' केन कारणेनोत्पद्यते?' इत्यादिरूपाणि, यद्वा-'चतुर्गन्तिलक्षणसंसारभ्रमणं

पुष्पजाति से युक्त स्थान में आया हुआ हो, तब उस समय जो जीव उनकी सत्कृति निमित्त उनके सामने नहीं जाता है, मधुर वचनों से उनकी सुखशाता नहीं पूछता है, उनको स्तुति नहीं करता है, उनके पास नत-मस्तक नहीं होता है, अभ्युत्थान आदि क्रिया से उनका सत्कार नहीं करता है, वसति आदि प्रदान द्वारा कल्याणस्वरूप, मङ्गलस्वरूप, धर्मदेवस्वरूप, एवं विशिष्ट ज्ञानयुक्त उन्हें मानकर जो उनकी सेवा नहीं करता है उनसे अर्थों को-जीवाजीवादि पदार्थों को, अन्यथानुपपत्तिरूप हेतु को, जैसे कि जीव देवादिगति में कैसे जाते हैं अथवा-आत्माके साथ कर्मों का संबंध होता है ऐसे हेतु को, प्रश्नों को-मंशवादिशों को दूर करने के लिये जीव अजीव आदि के स्वरूप को पूछनेरूप प्रश्नों को जीवको ज्ञानादित्रय किस कारण से उत्पन्न होते हैं इत्यादिरूप कारणों को, अथवा चतुर्गन्तिरूप संसारभ्रमण किम कारण से होता है? इत्यादिरूप कारणों को, पृष्ठक-जीवादिक के स्वरूप में

स्थान-भा आवेला होय, त्वारे ते सभये जे एव तेमना सत्कार भाटे तेमनी सामे जेतो नथी, मधुर वचनो वडे तेमनी सुख शाता पूछतो नथी, तेमनी स्तुति करतो नथी, तेमनी सामे नम्रलावे भस्तक नभावतो नथी अभ्युत्थान वगेरे क्रियाथी तेमनो सत्कार करतो नथी, वसति वगेरे आपीने तेमने कल्याण स्वर्ण, मङ्गलस्वर्ण, धर्म-देवस्वर्ण, अने विशिष्ट ज्ञानयुक्त मानीने जे तेमनी सेवा करतो नथी, तेमने अर्थोंने एवाएवादि पदार्थोंने, अन्यथानुपपत्तिस्वर्ण हेतुने, जेभके एव देवादि गति देवी रीते भेजवे छे के आत्मानि साथे कर्मोंने संबंध होय छे एवा हेतुने, प्रश्नने-संशय-वगेरेने दूर करवा भाटे एव अएव वगेरेना स्वर्णने जलुवा आपतना प्रश्नने ज्ञानादित्रय एवने देवी रीते प्राप्त थाय छे वगेरे स्वर्ण करखोने, अथवा तो चतुर्गन्ति



केन कारणेन सवति' इत्यादि रूपाणि, व्याकरणानि=पृष्ठस्थ नीवादिस्वरूपस्य  
 उत्तरतया मभान्तरकरणरूपाणि, तानि नो पृच्छति-एतेन 'स्थानेन=रणेन  
 चिध । जीवः केवलमिन्द्रजप्तं च' अथनतायै=भोक्तु नो ममते-इति प्रथमः वा  
 नम् १। द्वितीयमाह-उपाभ्यगतम्-उपाभयो=सवति, तत्र गत अभ्ये वा, इति  
 ५०- 'माह्न वा' इत्यारभ्य 'व्याकरणानि पृच्छति' इत्यर्थः सकसोऽपि पूर्वोक्तः  
 पाठो ब्राह्मः अमुमेवायं सूचयितुमाह-त एव जाय इति । हे विद्वन् ! एतेनाऽपि  
 स्थानेन=कारणेन । जीवः केवलमिन्द्रजप्तं च' अथनतायै=भोक्तु नो ममते इति  
 द्वितीय स्थानम् १। तृतीयमाह-गोचराग्रगतं=मिसार्थं ग्रामोभ्यन्तरं पविष्ट  
 अभ्ये वा माह्न वा नो 'यावत्' यावत्स्थान-अभिगच्छति नो वन्दनं, नो

प्राप्त किये गये उत्तर में पुनः प्रश्नान्तर करनेकप व्याकरणों को, - नहीं पूछता है, 'इस कारण से' जीव केवलप्रज्ञस्य धर्म को सुन नहीं सकता है - इस प्रकार से यह प्रथम स्थान का निरूपण है। द्वितीयस्थान की कारण निरूपण इस प्रकार है - उपाभय - में जाकर अवयव को, अथवा 'मोहन' को जो जीव प्राप्त करके यावत् व्याकरणों को नहीं पूछता है, हे शिष्य ! इस कारण से भी जीव केवलप्रज्ञस्य धर्म को सुन नहीं पाता है, यहाँ 'त येव यावत्' पद से 'मोहन' या यहाँ से लेकर 'व्याकरणानि पृच्छति' यहाँ तक का सम्पूर्ण पाठ प्रवर्ण किया गया है। इसी अर्थ की ध्वनना 'त येव जाव' पद से दी गई है। तृतीयस्थान इस प्रकार स - प्रमर्ण या मोहन निमित्त के लिये ग्राम के भीतर आया हो, परन्तु जो जो उनके समक्ष नहीं जाता है उनको धम्पना नहीं करता है उन्हें नमस्कार नहीं करता है उनका

રૂપ સ્વસ્થાશ્રમભવ્ય શા કારણથી હોય છે વગેરે રૂપ કારણોને, પૂર્વક લખાવેલના સ્વરૂપ  
 વિષે જે ઉત્તર આપવામાં આવે તે વિષે ફરી સામે પ્રશ્નોત્તર કરવા રૂપ આપેલોને  
 પૂછતો નથી, આ કારણથી હવે કેવલિ પ્રશ્ન ધર્મનું અવજૂ કરી શકતો નથી આ  
 પ્રમાણે આ પ્રથમસ્થાનનું નિરૂપણ છે દ્વિતીયસ્થાનના કારણનું નિરૂપણ આ પ્રમાણે  
 છે ઈષ્ટાશ્રમમાં જાતને અમળુને કે માહળુને પ્રાપ્ત કરીને જે હવે થાવતુ વ્યાકરણોને  
 પૂછતો નથી. હે ચિત્ર । આ કારણથી પણ હવે કેવલિપ્રશ્ન ધર્મનું અવજૂ કરી  
 શકતો નથી. અહીં 'ત વેદ યાચતુ' પદમાં 'માદન વા અહાંથી માંડીને 'દવા-  
 કરણાનિ પૃષ્ઠતિ' અહીં સુધીનો સંપૂર્ણ પાઠ શ્રાવણ કરવામાં આવ્યો છે એજ  
 અર્થને 'ત વેદ જાણ' પદથી સુચિત કરવામાં આવ્યો છે. તૃતીયસ્થાન આ પ્રમાણે  
 છે. -અમળુ કે માહળુ મોથરી માટે-નિશા માટે-આશ્રમમાં આવેલા દોષ એવી પ્રતિ-  
 સ્થિતિમાં જે હવે તેમની માથે જતો નથી તેમને જલન કરતો નથી તેમને નમસ્કાર

नमस्यति, नो सत्कारयति, नो स मानयति, नो कल्याणं मङ्गलं दैत चैन्यम्,  
इति संप्राप्तम्, पर्युपास्ते, तथा-विपुलेन=प्रचुरेण अशनपानखाद्यस्वाधेन=  
अशनादिना चतुर्विधेनाहारेण नो प्रतिलम्बयति-अशनादिकं श्रमणाय माह-  
नाय वा नो ददाति, अर्थान् या त्-यावत्पदेन-हेतून् प्रश्नान् कारणानि  
व्याकरणानि इति स ग्राह्यम् नो पृच्छति । एतेन=उपर्युक्तं कारणेन हे  
चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञः धर्मं श्रवणतयै=श्रोतु नो लभते-इति तृतीयं  
स्थानम् ३। चतुर्थस्थानमाह-प्रयापि=स्मिन् कस्मिंश्चदपि स्थाने खलु श्रम  
णेन=साधुना वा महानेन=द्वादशव्रतधारिणा वा सद्धे=मह अभिसमागच्छति=  
संगतो भवति, तत्रापि खलु 'अयं श्रमणो वा माहनो वा मां न परिचिनुयाद्'  
इति हेतुः आत्मानं=स्व हस्तेन वा चस्त्रेण वा छत्रेण वा आश्रये=आच्छाद्य  
तिष्ठति नो अर्थान् यावत् पृच्छति । एतेनापि स्थानेन=कारणेन चित्र ! जीवः

सत्कार और सम्मान नहीं करता है, तथा कल्याणरूप, मङ्गलरूप, धर्मदेव-  
रूप मानकर तथा विशिष्टज्ञानयुक्त मानकर उनको सेवा नहीं करता है,  
तथा विपुल-प्रचुर-अशन, पान खाद्य, स्वाधरूप चतुर्विध आहार से उन्हें  
प्रतिलम्बित नहीं करता है, अर्थात् श्रमण के लिये माहन के लिये जो  
चतुर्विध आहार नहीं देता है, एवं अर्थों को, हेतु को, प्रश्नों को, कारणों  
को तथा व्याकरणों को उनसे नहीं पूछता है इस उपर्युक्त कारण से हे  
चित्र ! जीव केवलप्रज्ञ धर्म को नहीं सुन सकता है । चतुर्थस्थान  
इस प्रकार से है-वाहे जिस किसी भी स्थान में साधु या  
माहन-१२ व्रतधारी श्रावक के साथ संगत हो जावे-परन्तु वहाँ पर भी  
वह जीव अपने आपको हाथ से, या वस्त्र से, या छत्र से, ढँक लेता है  
इस रूपाल से कि महाराज मुझे पहिचान न ले और न उनसे अर्थोंदिकों

करतो मंथी, तेमनु सन्मान अने सत्कार करतो नथी तेमज तेमनु ण्डव्याणुइय भगण-  
इय, धर्मदेव स्वइय मान ने तथा विशिष्ट ज्ञानयुक्त मानीने तेमनी सेवा करतो नथी  
तेमज विपुलप्रचुर अशन, पान, खाद्य, स्वाधइय चतुर्विध आहार वडे तेमने प्रतिला-  
म्बित करतो नथी ओटवे डे श्रमणने डे माहणने जे चतुर्विध आहार आपतो नथी  
तथा अर्थाने, हेतुअने प्रश्नाने कारणाने तथा व्याकरणाने, तेमने पूछतो नथी आ  
उक्त कारणथी डे चित्र ! एव केवलप्रज्ञ, धर्मं श्रवण करीशकतो नथी चतुर्थ  
स्थान आ प्रमाणे छि-गमे ते स्थाने साधु डे माहन-१२ व्रतधारी श्रावक भणे त्यारे  
जे एव पोतानी जतने महाराज अमने ओणणी वे नहि सेवा विचारथी हाथवडे,  
डे वस्त्रवडे, डे छत्रवडे संताडी डे छे अने अर्थोंदिकों विषे पणु पूछतो नथी

કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મ મળતાયે=ઓતું ન લમતે-इति पूर्व स्थानम् । सम्प्र  
 ત્થપત્તિહરન્નાહ-एतच्चतुर्भिः स्थानैः स्वस्तु चित्र ! जीवः क्वलिपप्रज्ञप्त धर्म  
 भवणतायै=ઓતું ન લમતે-इति ।

इत्य केवलिपप्रज्ञप्तस्य धर्मस्यालामे चतुर्विध कारणमुक्तया मायति तल्लामे  
 चतुर्विध कारणमाह—‘चठहिं’ इत्यादि ।

हे चित्र ! चतुर्भिः स्थानैः=कारणैः जीवः क्वलिपप्रज्ञप्ता धर्म भवण  
 तायै=ઓતું લમતે, તથાવા-‘મારામગર્ગ વા’ इत्यादि । કેવલિપ્રજ્ઞપ્તધર્મલાભ  
 યાનિ ચત્વારિ સ્થાનાનિ યોક્તાનિ, તાન્યેશઞ્ચ નિરૂપરોઘેન વિજ્ઞેયાનીતિ ।

કો પૂછતા હૈ-તો એસા જીવ ઇસ કારણ સે મી કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મ કો સુન  
 નહી પાતા । ધર્મ કેશીકુમારભ્રમણ ઉપસહાર કરતે કુદ કરતે હૈ દિ હૈ  
 ચિત્ર ! જીવકો ધર્મલાભ હોને ઝે યે ચાર કારણ વાપક હૈ । ઇન્કે હોને  
 સે જીવ કો કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મ કી માલિતિ નહી હોતી હૈ ।

इम तरह क्वलिपप्रज्ञप्त धर्म के ज्ञप्ताम में चतुर्विध कारण कहकर  
 भव केसीकुमारभ्रमण उसका नाम होम में चार कारणों का ब्यपन करते  
 हैं ‘चठहिं ठाणेहिं’ हे चित्र ! चार कारणों से जीव केवलिपप्रज्ञप्त धर्म को  
 सुनता है अर्थात् केवलिपप्रज्ञप्त धर्म के ज्ञप्ताम में जो चार कारण प्रदत्त  
 किये गये हैं, वे ही चार कारण विपरीतरूप से आवरित होने पर जीव  
 के लिये धर्मलाभ के कारण हो जाते हैं यही बात ‘१ आरामगय वा उज्जा-  
 नगय वा’ इत्यादि चार मुखपाठ द्वारा प्रकृतिया है ।

તેજ આ જાવનો છવ ખજુ આ કારણથી કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મનું અપજ્ઞ કરી પ્રાપ્તિ  
 નથી હવે કેશીકુમાર અપજ્ઞ ઉપસહાર કરતાં હો છે કે કેવિત્ર ! છવને ધર્મલાભની  
 પ્રાપ્તિમા આ ચાર કારણો વિષયરૂપે નહે છે આ સર્વથી છવને કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મની  
 પ્રાપ્તિ થતી નથી.

આ પ્રમાણે કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મના જ્ઞાતા સર્વથી વધાર કારણોવું વિવેચન  
 કરતિ હવે કેશીકુમાર અપજ્ઞ કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મના લાભ માટે ને ચાર કારણો છે તેમનું  
 બ્યવન કરતાં હો છે : “ચઠહિં ઠાણેહિં” હે ચિત્ર ! ચાર કારણોથી છવ કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત  
 ધર્મનું અપજ્ઞ કરે છે એટલે કે કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મના જ્ઞાતામાં ને ચાર કારણો  
 જ્ઞાતવવામાં આવ્યા છે તેજ આજેવાર કારણો વિપરીત રૂપમાં આવરવામાં આવે તો  
 તેજ ચાર કારણો ધર્મલાભ માટે ઉપયોગી થઇ જાય છે એજ, એટલે “૧ આરામગય  
 વા ઉજ્જાનગય વા” વર્ગે ચાર સુત્રો નહે પ્રગટ કરવામાં આવે છે

ઇત્ય' કેવલિપ્રજ્ઞપ્તધર્માભાલાભયોઃ કારણાન્યુત્તવા સમ્પ્રતિ કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત-  
ધર્માભાભે યાનિ કારણાનિ મન્તિ તદ્વિશિષ્ટ એવ પ્રદેશી રાજાઽસ્તિ સ કથ'   
મયા ધર્મઆરુણ્યેયઃ ? હિતિ કેશિકુમારશ્રમણચિત્ર' સારથિમાહ— તુજ્ઞ' ચ   
નં ચિત્તા ! પાસી રાયા' ઇત્યાદિ । હે ચિત્ર ! તવ=ત્વદીયથ સ્વલુ પ્રદેશી   
રાજા આરામગતાં વા, 'રાં' ચેવ સન્ન ભાણિયન્ન' આહ્લણં ગમણં જાવ અપ્પાણં   
આવરેત્તા ચિટ્ઠહ' હિતિ પાઠેન તદેવ સર્વગમકજાત મણિતવ્યમ્ કેન ગમકેન ?   
ઇત્યાહ—'આહ્લણં' હિતિ આદિમેન ગમકેન=અલાપકેન 'ઉજ્જાણગય' વા'   
ઉચ્ચાનગતાં વા, ઇત્યારમ્ય 'અપ્પાં આવરેત્તા ચિટ્ઠહ' આન્માનમાવૃત્ય તિષ્ઠતિ, હિતિ   
પર્યન્તાં મણિતવ્યમ્ । એવ વિધાત્વદીયઃ પ્રદેશી રાજાઽસ્તિ, તત્કથ=કેન પ્ર-   
કારેણ સ્વલુ ચિત્ર ! એવ વિધાય ત્વદીયાય પ્રદેશિને રાજે વય ધર્મમ્ આરુણ્યા-   
સ્યામઃ=ઉપદેશ્યામ ઇતિ ॥ સુ૦ ૧૨૩ ॥

મૂલમ્—તણં સે ચિત્ત સારહી કેસિકુમારસમણ' એવં વયાસી એવં સ્વલુ-  
મંતે ! અણયા કયાઈ કંવોઈહિં ચત્તારિ આસા ઉવણયં ઉવણીયા, તે   
મણપણસિસ્સ રણ્ણો અન્નયા, ચેવ ઉવણીયા તં ણણં સ્વલુ મંતે ! કાર-  
ણેણં અહં પણસિં રાયં દેવાણુપ્પિયાણં અતિણ હવમાણેસ્સામિ, તં મા ણ   
દેવાણુપ્પિયા ! તુભે પણમિસ્સ રન્નો ધમ્મમાઝ્ઞવમાણા ગિલાણજ્ઞાહ,

ઇસ તરહ ધર્મ અપ્રાપ્તિ ઓર ધર્મ પ્રાપ્તિ કે કારણોં કો કહકર અવ   
કેશીકુમારશ્રમણ ચિત્ર સારથી કે પ્રતિ યહ પ્રકટ કર રહે હૈં' કિ પ્રદેશો   
રાજા કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મ' કે અપ્રાપ્તિ કે-કારણોં સે વિશિષ્ટ હૈ અનઃ મૈં   
ઉસે કિસ પ્રકાર સે ધર્મ-કા ઉપદેશ દૂં. યહી બાત કેશીકુમારશ્રમણ   
ચિત્ર સારથિ સે યંહા સે આગે કહતે હૈ. 'તુજ્ઞ' ચ નં ચિત્તા । પાસી   
રાયા' ઇત્યાદિ મૂલાર્થ મેં ટીકા કેં અનુસાર હી ઇસ સવ પાઠકા અર્થ   
લિખ હી દિયા ગયા હૈ । અતઃપુનઃ યહાં નહીં લિખ્વા હૈ ॥ સુ૦ ૧૨૩ ॥

આ રીતે ધર્મ અપ્રાપ્તિ અને ધર્મ પ્રાપ્તિના કારણોનું સ્પષ્ટીકરણ કરીને હવે   
કેશીકુમાર શ્રમણ ચિત્રસારથીની સામે આ વાત કહે છે કે પ્રદેશી રાજા કેવલિ પ્રજ્ઞપ્ત   
ધર્મના અપ્રાપ્તિના કારણોથી યુક્ત છે. એથી હું તેને કેવી રીતે ધર્મનો ઉપદેશ કરું.   
એજ વાત કેશીકુમારશ્રમણ ચિત્રસારથીને આ પ્રમાણે કહે છે—“તુજ્ઞ' ચ નં ચિત્તા !   
પાસી રાયા” વગેરે મૂલાર્થમાં ટીકાર્થ પ્રમાણે જ આ બધાનું વિશ્લેષણ કરવા-   
માં આનું છે. એથી અહીં ફરી અર્થ લખવામાં આવ્યો નથી. ॥ સુ. ૧૨૩ ॥

केवलप्रज्ञप्त धर्म मणतापै=भोतु न लभते-इति चतुर्थ स्थानम् ॥ सम्प्र  
 वृत्तमहरन्नाह-एतैश्चतुर्भिः स्थानैः खलु विप्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्त धर्म  
 मणतापै=भोतु न लभते-इति ।

इत्य केवलप्रज्ञप्तस्य धर्मस्थालामे चतुर्विध कारणमुक्त्या सा मति उल्लामे  
 चतुर्विध कारणमाह-“चउहिं” इत्यादि ।

हे विप्र ! चतुर्भिः स्थानैः=कारणै जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म भव  
 शः=भोतु न लभते, तथा-“आरामगगं वा” इत्यादि । केवलप्रज्ञप्तधर्मसाम  
 यानि चत्वारि स्थानानि पोक्तानि तावदात्र लक्ष्योपरोयेन विज्ञेयानीति ।

को पूछता है-तो ऐसा जीव इस कारण से भी केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन  
 नहीं पाता है. अब केशीकुमारभमण उपसंहार करते हुए कहते हैं कि  
 विप्र ! जीवको धर्मसाम होने में ये चार कारण बाधक हैं । इनके होने  
 से जीव को केवलप्रज्ञप्त धर्म की प्राप्ति नहीं होती है ।

इस तरह केवलप्रज्ञप्त धर्म के अभाव में चतुर्विध कारण कहकर  
 भव केशीकुमारभमण उसका साम होने में चार कारणों का ब्यथ करते  
 हैं ‘चउहिं ठाणेहिं’ हे विप्र ! चार कारणों से जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को  
 सुनता है अर्थात् केवलप्रज्ञप्त धर्म के अभाव में जो चार कारण प्रकट  
 किय गये हैं, वे ही चार कारण विपरीत रूप से आवरित होने पर जीव  
 के लिये धर्मसाम के कारण हो जाते हैं यही बात ‘१ आरामगग वा उज्जा  
 गग वा’ इत्यादि चार सूत्रपाठ द्वारा प्रकट किया है ।

तो आ जगतो एव भव आ हरणुषी देवप्रज्ञप्त धर्मो न भव्य करी गते  
 नही कवे केशीकुमार भव्य उपसंहार करतां कहे छे हे छे जित । अपने धर्मसामनी  
 प्राप्तिमा आ आर हरणुषी विप्रज्ञप्ति नडे छे आ सर्वधी अपने देवप्रज्ञप्त धर्मनी  
 प्राप्ति करी नही.

आ प्रभासे देवप्रज्ञप्त धर्मना अलास सजधी वार हरणुषी विवेचन  
 करिने कवे केशीकुमार भव्य देवप्रज्ञप्त धर्मना लाल भाटे ने वार हरणुषी छे तेभउ  
 भवन करतां कहे छे-“चउहिं ठाणेहिं” के जित । वार हरणुषी एव देवप्रज्ञप्त  
 धर्मो भव्य करे छे कोऽते हे देवप्रज्ञप्त धर्मना अलासभां ने वार हरणुषी  
 जगजगभां आऽथा छे, तेव वारवार हरणुषी विपरीत रूपमा आवस्थभां आवे तो  
 तेव वार हरणुषी धर्मसाम भाटे उपयोगी बह भव छे जेवद्वय “१ आरामगग  
 वा उज्जागग वा” नजे वार सुत्रो पडे प्रकट करताभां आवे छे

चलु भदन्त ! यूयं प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यात, छन्देन भदन्त ! यूयं प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यात । ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिमेवमवादीत्-अपि च चित्र ! ज्ञाम्यामः । ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनं कुमारश्रमणं वन्दते नमस्यति, यत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथः तत्रैवो

लाङ्गा (त मा ण देवाणुप्पिया ! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाएज्जाह) तो आप हे देवानुप्रिय ! प्रदेशी राजा को जिनोक्त धर्म का उपदेश करते समय ग्लानि मत करना (अगिलाए णं भंते ! तुब्भे पएसिस्स धम्ममाइक्खेज्जाह) प्रत्युत अग्लानिभाव से ही हे भदन्त ! आप प्रदेशी राजा को धर्म का उपदेश काना (छदेणं भंते ! तुब्भे पएसिस्स रणो धम्ममाइक्खेज्जाह) तथा आप अपनी इच्छा के अनुसार ही हे भदन्त ! प्रदेशी राजा को धर्म का उपदेश देना, उसकी इच्छा के अनुसार नहीं (तए ण से केशीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी) तब उन केशीकुमारश्रमणने चित्र सारथि से ऐसा कहा-(अविद्याइं चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र ! अघसर आने पर देखा जावेगा, आप के कथनानुसार उसे धर्मोपदेश देने का मेरा भाव तो है। (तए ण से चित्ते सारही केसिं कुमारसमण वंदइ, नमसइ, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) इसके अनन्तर चित्र सारथिने केशीकुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार किया, और फिर वह जहाँ चार घंटोंवाला अश्वरथ था वहाँ पर आया

(त मा ण देवाणुप्पिया ! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाएज्जाह) तो हे देवानुप्रिय ! आपश्री ते प्रदेशी राजने जिनोक्त धर्मो का उपदेश करता ग्लानि अनुभवशो नहि (अगिलाए ण भंते ! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खेज्जाह) परंतु हे भदन्त ! आपश्री ते प्रदेशी राजने अग्लानिभावशो न धर्मोपदेश करेशो, (छ देण भंते ! तुब्भे पएसिस्स रणो धम्ममाइक्खेज्जाह) तेमन हे भदन्त ! आपश्री पोतानी धग्घा मुज्ज न प्रदेशी राजने धर्मोपदेश करेशो, तेनी धग्घा प्रमाणे नहि, (तए ण से केशीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी) त्थारे ते केशीकुमार श्रमणे ते चित्रसारथिने आ प्रमाणे कहुं, (अविद्याइं चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र ! उचित अवसर आवशे त्थारे लेधं दधंशुं तमे कडे हो ते मुज्ज मारी पणु तेमने उपदेश करवानी लावना छे न, (तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमण वंदइ, नमसइ, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) त्थार पछी चित्रसारथिने केशिकुमारश्रमणने वन्दना करी नमस्कार कर्था अने पछी ते त्थार धटोथी युक्त अश्वरथ हुतो, त्या आये, (चाउग्घंटे

अगिला ५ पां अत्ते । तुच्चे पयसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जाह, छट्ठण भत्ते । तुच्चे पयसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जाह । तएणं से केत्ती कुमारसमणे चित्त सारहिं एव वयासी आशीयाइ चित्ता । जागिह्मामो । तएण से चित्ते सारही केमिं कुमारसमणं वदइ नम सह जेणेव चाउ ग्घटे आसरहे तेणेव ठषागच्छइ, चाउग्घट आसरह तुरूहइ, जामेव दि ॥ पाउडग्घए तामव दिसि पडिगए ॥ सू० १२४ ॥

छाया-ततः खलु स चित्रः सारणि केसिकुमारसमणं वदमवादीत्-एव खलु भद्रत । अन्यथा कदाचित् काम्योजै अस्वारः अस्याः उपनयनपनीता न मया प्रवेशिने राज्ञे अ-पयसि उपनीताः, तद् एतेन खलु भद्रन्त । कारणेन अहं प्रवेशिन-रामान देवानुप्रियाणामन्तिक हव्यमानप्याम । तत मा खलु देवानुप्रियाः । यूयं प्रवेशिन राज्ञे धर्ममाख्याता गतायत, अस्मानाः

‘तएण स चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुप्रार्थ-‘(तएण) इसके बाद (से चित्ते सारही) वह चित्र सारणि (केसिकुमारसमण एव वयासी) केशो कुमारसमण स एव योका (गो) खलु भत्ते । अन्यथा कदाइ कपोटहिं अकारि आमा उपणय उपणीया) हे भद्रन्त ! हिमी एक समय काम्यप्रवेशमिथीन वार थाइ सेठरूप में मेजे प (ले मण पयसिस्स रण्णो अज्जायावेव उपणीया) छत्ते मैंने प्रवेशी राता के समय सेठ मैं तमी दिन दे दिया (न एण व खलु भत्ते ! कारणेण अहं पयसि राय देवानुप्रियाणं अनिण हव्यमाणेप्पामि) अत इम कारण स इ भद्रन्त ! मैं प्रवेशी रामाको आप देवानुप्रिय के वाम पट्टन हो श्रीध

न एव स चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुप्रार्थ-‘(न एण) त्वार भती (से चित्ते सारही) ते चित्र आसिजे

(केसिकुमारसमण एव वयासी) केशीकुमार समणने आ प्रभाजे चित्तो अत्ता २५-(एव खलु भत्ते ! अन्यथा कदाइ कपोटहिं अकारि आमा उपणय उपणीया) हे भद्रन्त ! इह कोट-वजते कविय देवतासीकोले-आर-याज्जे-प्रदेशी रामने नेट शिखर्या दत्त (ले मण पयसिस्स रण्णो अज्जायावेव उपणीया) ते याज्जेने मे प्रदेशी राम सोमे कोटवर्मा अर्पित करी दीया छे । (न एण खलु भत्ते ! कारणेण अहं पयसि राय देवानुप्रियाणं अनिण हव्यमाणेप्पामि) अशी हे भद्रन्त ! प्रदेशी रामने आप देवानुप्रियनी जैसे कवरी व उपस्थित करीया

खलु भदन्त ! यूयं प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यात, छन्देन भदन्त ! यूयं प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यात । ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिमेवमवादीत्-अपि च चित्र ! ज्ञाम्यामः । ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनं कुमारश्रमणं वन्दते नमस्यति, यत्रैव चातुर्यं अश्वरथः तत्रैवो

लाजंगा (त मा ण देवाणुप्पिया ! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाएज्जाह) तो आप हे देवानुप्रिय ! प्रदेशी राजा को जिनोक्त धर्म का उपदेश करते समय ग्लानि मत करना (अगिलाए ण भंते ! तुब्भे पएसिस्स धम्ममाइक्खेज्जाह) प्रत्युत अग्लानिभाव से ही हे भदन्त ! आप प्रदेशी राजा को धर्म का उपदेश करना (छंदेणं भंते ! तुब्भे पएसिस्स रणो धम्ममाइक्खेज्जाह) तथा आप अपनी इच्छा के अनुसार ही हे भदन्त ! प्रदेशी राजा को धर्म का उपदेश देना, उसकी इच्छा के अनुसार नहीं (तए ण से केशीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासीं) तब उन केशीकुमारश्रमणने चित्र सारथि से ऐसा कहा-(अविद्याइ चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र ! अवसर आने पर देखा जावेगा, आप के कथनानुसार उसे धर्मोपदेश देने का मेरा भाव तो है। (तए ण से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं वदइ, नमसइ, जेणेव चाउग्यटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) इसके अनन्तर चित्र सारथिने केशीकुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार किया, और फिर वह जहां चार घंटोंवाला अश्वरथ था वहां पर आया

(त मा ण देवाणुप्पिया ! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाए ज्जाह) तो हे देवानुप्रिय ! आपश्री ते प्रदेशी राजने जिनोक्त धर्मने उपदेश करता ग्लानि अनुभवशो नहि (अगिलाए ण भंते ! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खेज्जाह) परतु हे भदन्त ! आपश्री ते प्रदेशी राजने अग्लानिभावशो न धर्मोपदेश करशो. (छंदेण भंते ! तुब्भे पएसिस्स रणो धम्ममाइक्खेज्जाह) तेभन हे भदन्त ! आपश्री पोतानी धम्म मुज्ज ण प्रदेशी राजने धर्मोपदेश करशो. तेनी धम्म प्रमाणे नहि. (तए ण से केशीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासीं) त्थारे ते केशीकुमार श्रमणे ते चित्रसारथिने आ प्रमाणे कहु. (अविद्याइ चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र ! उचित अवसर आवशे त्थारे जेधं लधंशुं तमे कडे हो। ते मुज्ज भारी पण तेभने उपदेश करवानी लावना छे न. (तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमण वदइ, नमसइ, जेणेव चाउग्यटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) त्थार पछी चित्रसारथिणे केशिकुमारश्रमणने वदना करी नमस्कार कर्या अने पछी ते त्थार धटोथी सुकत अश्वरथ हतो त्था आलो. -----



पागच्छति, चातुर्घष्टमश्वरथ वृरोहति, यामेव दिशं प्रादुभूत यामेव दिशं  
प्रतिगतः ॥ सू० १२४ ॥

टीका—‘तए ण से विसे’ इत्यादि—ततःस्वस्तु स चित्रः सारथिः केशि  
कुमारश्चमणमेषमवादीत—एष खलु हे भवन्त ! अयदा कदाचित्=  
वर्तमानकाले काम्योजे =कर्म्योमवेक्षवास्तिमिः अस्थारः=चतुःमह्यकाः  
अश्वा उपनय=माश्रुतम् उपनीता=प्रापिताः, माश्रुतत्वेन दत्ता इत्यर्थः, ते  
मया अपदेश=तस्मिन्नेव काले प्रवेशिने राज्ञे उपनीता तदन्तेन कारणेन खलु  
हे भवन्त ! अहं प्रवेशिन राजानं देवानुमियाणां=भवताम् अन्तिक्=तस्मीपे  
दृष्ट्य=शीघ्रम् आनेष्यामि, तत्-तदा हे देवानुमियाः । प्रवेशिने राज्ञे धम=  
जिनोक्तम् आख्यात=कथयन्तः सन्तो युय मा उवाचत=स्मानि मा भजत,  
एतावदेव न प्रत्युत छन्देन=स्वकीयमिमायेव यथेच्छमित्यर्थः हे भवन्त !  
युय प्रवेशिने राज्ञे धर्मम् आख्यात=कथयत । तत चित्रसारथेः कथना

(चातुर्घष्ट आसरह दुरुहह, जामेव दिशि पाठम्भूय तामेव दिशि  
पटिगण) तथा आकर चत्वरस चारघटों पाछे अश्वाथपर सवार हो गया  
और जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया ।

टीका—चित्र सारथिने केशीकुमारश्चमण से ऐसा कहा-हे भवन्त !  
किमी एक समय मेरे पास कर्म्योमवेक्षवास्तिमों द्वारा भेजे गये ४ घोड़े  
प्रदक्षी राजा के लिये मेटकप में आय थे मैं मैने उसी दिन वे घोड़े  
प्रदेशी राजाक लिये कसित कर दिये इस तरह हमारी उनकी परस्पर  
में प्रीति है इसलिये मैं चाहता हू कि आप उसे जिनमतिपादित धम  
का उपदेश दवे मैं उसे आपके पास शीघ्र ही ले आऊंगा, उपदेश देने में  
आप किसी भी प्रकार का संकोच न करें अपनी इच्छा के अनुसार धम

आसरह दुरुहह जामेव दिशि पाठम्भूय तामेव दिशि पटिगण) तथा पट्टेस्थीने  
ते पातानां चार घटोवाणां अश्वेषु पर सवार भई जये जाने के दिशा तदक्षी ते  
आनेस हुनो तेव दिशा तश्च पाठो भूतो रह्यो

टीका—चित्रसारथिने केशीकुमारश्चमणसे आ प्रभावे कथ्य-हे भवन्त ! केशि  
कोक अपने भारी पासे कबाल देशवासीकोको राजने बेटर्मा आपवा गाटे बाधको  
आइत्या हुता तेव दिक्से ते पातकोकोने प्रदेशी राजने मे अपित इसी हीमा आभ  
तेमनी आशी साथे मित्रता है कोधी व हु छिउ छ के आपशी तेमने निज  
प्रतिपादित धमनो उपदेश करे। तेमने हु आपशीनी पासे अक्षरी बावीश उपदेश  
आपवाभा आपशी पातानी छिउ। मुज्जय धमनी चातो प्रदेशी राजने सभजावने।

नन्तरं खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिम् एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण  
अवादीत्=अकथयत्—‘अविआइ’ अपि च हे चित्र ! ज्ञास्यासः=अवगमिष्यामः  
यथावसरं करिष्याम इत्यर्थः, त्वत्कथनानुसारेण करणस्य मम भावो वर्तत  
इत्याशयः ! ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनं कुमारश्रमणं वदन्ते नमस्यति  
चातुर्घण्टाश्वरथसमीपे समागत्याश्वरथमारोहति, यामेवदिशं समाश्रित्य प्रादु-  
र्भूतं=समागतः तामेवदिशं प्रतिगतः=प्रस्थितः ॥ मृ० १२४ ॥

मूलम्—[तएणं मे चित्ते सारही कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्ल-  
प्पलकमलकोमलुस्मिलियस्मि अहोपंडुरे पभाए कयनियमावस्सए  
महस्सरस्सिस्मि दिणयरे तेयसा जलंते साओ गिहाओ णिग्गच्छइ,  
जेणेव पएसिस्स रत्तो गिहे जेणेव पएसी राया तेणेव उवागच्छइ,  
पएस रायं करयल—जाव कट्ठु जएणं विजएणं वच्चावेइ, एवंवयासी-  
एवं खलु देवाणुप्पियाणं कंवोएहिं चत्तारि आसो उवणयं उवणीया]  
ते य मए देवाणुप्पियाणं अण्णया चेव विणइया, तं एएणं सामी ।  
ते आसे आइड्डिंए पासइ । तएणं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं  
वयासी—गच्छाहि णं तुमं चित्ता ! तेहिं चेव चउहि आसेहिं आसरहे  
जुत्तामेव उवट्टवेहि जाव पच्चप्पिणाहि । तएणं से चित्ते सारही पए-

की वाते' उसे सुनावे'. चित्र सारथि का इस प्रकार कथन सुनकर केशी-  
कुमारश्रमणने उसमे ऐसा कहा—चित्र ! समय आने पर देखा जावेगा. मेरा  
भाव अयदय गेमा हुआ है कि मैं उसे जिनेन्द्रप्रतिपादित धर्म का उपदेश  
दू । केशीकुमारश्रमण की इस प्रकार की भावना जानकर चित्र सारथिने उनको  
वन्दनादिक्रिये और फिर अपने रथ पर सवार होकर अपने स्थान पर  
वापिस हो गया, ॥ मृ० १२४ ॥

चित्रसारथिनु आ प्रभाणु कथन सासणीने' केशीकुमार श्रमणु तेने आभ कल्लु डे डे  
चित्र । उचित अवसर आवसे त्यारे जेष्ठ वधशु. भारी ओवी छच्छ छे डे डे तेने  
जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्मने उपदेश करे केशीकुमार श्रमणुर्ना आ नतनी लावना  
जाणीने चित्रसारथिओ तेभने वन्दन कर्या अने त्थारपणी पोताना रथ पर सवार थधने  
पोताना नि । सस्थाने पाछा आवतो रह्यो ॥ मृ १२४ ॥

सिणा रन्तो एव बुत्ते समाणे हट्टुत्तु जाव हियण उवट्टवेह एयमाण  
 त्तिय पच्चप्पिणह । तएणं से पएसी राया चित्तस्स मारहिस्म अत्तिण  
 एयमट्ट सोच्चा णिसम्म हट्टुत्तु-जाव अप्पमहग्घाभरणालक्खिसरीरे  
 साओ गिह्वाओ णिग्गच्छह, जेणामेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव  
 उवागच्छह, चाउग्घट आसरह दूरुहह, सेयवियाए नयगीए मज्झ  
 मज्जेणं णिग्गच्छह । तएणं से चित्ते सारही त रह णेगाह जोयणाह  
 उच्चामेह । तएणं से पएसी राया उण्हेण य तण्हाए य रक्खाएण य  
 परिकिल्लते समाणे चित्त सारहि एव वयासी-चित्ता । परिकिल्लते मे  
 सरीरे परावत्तेहि रह । तएणं मे चित्ते सारही रह परावत्तेह जेणेव  
 मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छह, पएसि राय एव वयासी-एत णं  
 सामी । मियवणे उज्जाणे एत्थणं आस्सणं समकिल्लाम सम्म अवणेमो ।  
 तएणं से पएसी राया चित्त सारहि एव वयासी-ए होउचित्ता । १२५।

छाया—ततः श्रुत्वा स चित्रः सारयः कस्य पादुपमायायां रक्षणं  
 कुल्लोःकुल्लकमलकोमलो मीलिते अथाऽऽवापुन प्रभाते कृतं नियमारण्यके मसि

‘तएण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

समर्थ—(तएण) इसके बाद (स चित्ते सारही) वह चित्रसारयि  
 (कल) पादुपमायाए रयणीए) दूसरे दिन जब कि <sup>सोचि</sup> प्रातःकाल के रूप में  
 बदल गई और (कुल्लुप्पमकमल कोमलुम्मियिणम्मि अवापुनुर प्रमाण कयनि  
 यमावस्सए) कमल विकसित हो चुके तथा नियम और आवरणक कृत्य  
 निमित्तें लोग कर चुके थे ऐसा पीतपद्म प्रमाण जय हो गया (सहस्स

तएण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

समर्थ—(तएण) तब पक्षी (से चित्ते सारही) ते । पक्ष  
 पादुपमायाए रयणीए) पीत द्विसे <sup>आरे</sup> शशी प्रातःकाल प्रभातं परिकृत यथ  
 गतं अने (कुल्लुप्पमकमलकोमलुम्मिलिणम्मि अवापुनुरे प्रमाण कयनियमाव  
 स्मए) हमने निमित्त प्रभातं तेमज्ज नियम अने आवरणक कृत्यो नेमां होके गत  
 पू। इत्यादि आम्हा जेव पीतपद्म प्रमाण <sup>आरे</sup> पक्षी (सहस्सस्सिणिमि दिगपरे

૨૪મો દિન કરે તેજસા જ્વલતિ સ્વાદ્ ગૃહાદ્ નિર્ગમ્ન્યતિ, યત્રેવ પ્રદેશિનો રાજો ગૃહં યત્રૈવ પ્રદેશો રાજા તત્રૈવોપાગમ્ન્યતિ પ્રદેશિનં રાજાન કમ્વલ-યાવત્ કૃત્વા જયેન વિજયેન વર્ચયતિ, एवमवादीत्-एव खलु देवानुप्पियाणा कम्बोजेषु चत्वारोऽश्वा उपनयस् उपनीता, ते च मया देवानुप्पियंभ्यः अन्यदा-चैव विनयिताः तद् एत खलु स्वामिन् ! तान् अश्वान् आत्मद्विकान् पश्यत । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रं स्मार्थिम् एवमवादीत्-गच्छ खलु

રસિસ્મિપ દિનયરે તેજસા જલતે સાઓ ગિહાઓ નિર્ગમન્ન્યતિ) એવ મહસકિ-રણો ચાલા સૂર્ય જવ અપને તેજ સે ચમ્પકને લગા-અપને ઘર મે નિકળા (જેણેવ પર્ણમિસ્મ રણો ગિહે જેણેવ પર્ણસી રાજા, તેણેવ ઉવાગમ્ન્યતિ) નિકલ કર વહ વર્ચ ગયા જહાં પ્રદેશી રાજા કા ગૃહ થા ઓર ઉસમેં મી જહા વહ પ્રદેશો રાજા થા (પર્ણિરાય કરચલ જાવ કટ્ટુ જણં વિજણ વદ્ધાવેહ) વહાં જાકર ઉસને પ્રદેશી રાજા કો દોનોં હાય જોડકર વહે વિનય કે સ્માથ પ્રણામ ક્રિયા ઓર જય વિજય શબ્દો કા ઉચ્ચારણ કરતે હુણ ઉસે વધાઈ દી (एव वयासी) વધાઈ દેકર ફિર ઉસને ઉસસે જેવા કહા— (एव खलु देवानुप्पियाण कंबोजिं चत्वारि आपा उवणयं उवणीया) કમ્બો જદેશવાસિયાને ચાર ઘોડે મેંદરુપ મે આપ દેવાનુપિય કે લિયે મેંજે થે (તે ચ મણ દેવાનુપિયાણં અણયા ચેવ વિણડયા) ઉન્હે મેને આપકે લિયે વિનીત ડમો દિન વના દિયા હૈ અર્થાત્ શિક્ષિત કર દિયાઠે (त एह णं सामी त आसे आईङ्गिण पासइ) અતઃ આપ માર્ડયે ઓર સ્વકીયમશ્વત્તગતિ ઓદિ

તેજસા જલતે સાઓ ગિહાઓ નિર્ગમન્ન્યતિ) અને સહુમ્ન કિરણોવાળો સૂર્ય જ્યારે પોતાના તેજથી પ્રકાશિત થવા લાગ્યા, પોતાના ઘરેથી નીકળ્યો. (જેણેવ પર્ણમિસ્મ રણો ગિહે જેણેવ પર્ણસી રાજા, તેણેવ ઉવાગમ્ન્યતિ) નીકળીને તે જ્યા પ્રદેશી રાજાનુ ગૃહ હતુ અને તેમા પણ જ્યા તે પ્રદેશી રાજા હતો ત્યા ગયો. (પર્ણમિ રાયં કરચલ જાવ કટ્ટુ જણં વિજણં વદ્ધાવેહ) ત્યા જઈને તેણે પ્રદેશી રાજાને બાંને હાથ બેડીને નમ્રતાપૂર્વક પ્રણામ ક્યા અને જયવિજયના શબ્દોનુ ઉચ્ચારણ કરીને તેને વધામણી આપી. (एव वयासी) વધામણી આપી તેણે તેને આ પમાણે ક્ધુ' (एव खलु देवानुप्पियाण कंबोजिं चत्वारि आपा उवणयं उवणीया) કબોજ દેશના નાગરિકોએ આપ દેવાનુપિય માટે ચાર ઘોડાઓ ભેટ ઉપમ મોકલ્યાછે (તે ચ મણ દેવાનુપિયાણં અણયા ચેવ વિણડયા) તે ઘોડાઓને મે તેજ દિવસે આપશ્રીના માટે યોગ્ય શિક્ષિત બનાવી દીધા છે (त एह णं सामी त आसे आईङ्गिण पासइ) એથી આપ વધાવો અને સ્વકીય પ્રશસ્ત ગતિ વગેરે શક્તિઓ

त्य विप्र ! तैरेष चतुर्भिश्चै अश्वरथ युक्तमेव उपस्थापयमानत् प्रत्यर्पय ।  
तत्र स्वस्त्यस्त विप्र सारथिः प्रदेशिना राज्ञा एवमुक्त सन् हृष्ट हृष्ट-यावत्  
हृद्य उपस्थापयति, एतामाश्वसिकां प्रत्यर्पयति । ततः स्वस्त्यस्त प्रदेशी राजा  
अश्वरथस्य सागधेरन्तिके एतमर्थं धुत्वा निशाम्य हृष्ट हृष्ट-यावद् अत्य  
मराधाभिगन्तालङ्घयन्तरीरः स्थावृ गृहाद् निर्गच्छति, यमैव वातुर्घण्टः अश्वरथ

शक्ति से युक्त हृष्ट इन्हे धौविये। (तएव से परसी राया विस सारहिं  
एव वयामी) तब उस प्रवेशी राजाने विप्र सारथि स ऐसा कहा—  
(गच्छहि न तुम विप्ता ! तेहिं चैव वडहिं आसहिं आसरह जुतामा  
उवहुवेहि जाव पक्षपिणाहि) हे विप्र ! तुम जाओ और उड़ी कम्वाज  
से प्राप्त हुए शरों घोड़ों से युक्त करके अश्वरथ को तैयार  
कर ले आओ। और उम बात की मुझे पीछे स्मरण दो  
(तएव स विप्रो सारथी परसिणा रन्ना एव युक्तो समाणे हृष्टुद्ध जाव  
हियण उवहुवेह एवमाणसिण पक्षपिणह) इस प्रकार से प्रदेशी राजा  
द्वारा कहा गया वह विप्र सारथि पछा ही हृष्टुष्ट यावत् हृद्यवाला हुआ  
और उसने शर घोड़ों से युक्त करके अश्वरथ को उपस्थित कर दिया, बाद  
में प्रदेशी राजा को इसका निवेदन किया (तएव से परसी राया विसम्म  
सारहिस्स अतिण एवमहु मोक्षा निसम्म हृष्टुद्ध जाव अपमहग्गामरणा  
ल किममरीरे सात्रा गिहाओ विग्गच्छह) इसके बाद प्रदेशी राजा विप्र

धी भुक्त भवेत्ता ते घोडाओनु निरीक्षत्तु क्करो (तएव स परसी राया विस  
सारहिं एव वयामी) तब ते प्रदेशी राजा ने विप्रसारथीने का प्रभावे कथं  
(गच्छहि न तुम विप्ता ! तेहिं चैव वडहिं आसहिं आसरह जुतामेव  
उवहुवेहि जाव पक्षपिणाहि) के विप्र । तब आये जाने ते हृष्टुद्धेयना नाग  
दिहाधी प्राप्त भवेत्ता आरेयार घोडाओने स्वभा ओदीने ते अश्वरथ ओदी उपस्थित  
क्करो जाने ते पछी जाने का वातनी अजर आयो। (तएव से विप्र सारथी  
परसिणा रन्ना एव युक्तो समाणे हृष्टुद्ध जाव हियण उवहुवेह एवमाण  
सिण पक्षपिणह) का प्रभावे प्रदेशी राजा वडे आनापित भवेत्ता ते विप्रसारथि  
पुनश्च हृष्टुष्ट हृद्यवालो भयो जाने तब आरेयार घोडाओधी अजर करीने अश्वरथ  
वां राखनी सेवाभा उपस्थित क्यो। जाने तब पछी तेनी अजर राजनी पसे  
पहोआयी। (तएव से परसी राया विसम्म सारहिस्स अतिण एवमहु  
सोद्या निसम्म हृष्टुद्ध जाव अपमहग्गामरणा ल किममरीरे सात्रो गिहाओ  
विग्गच्छह) तबपछी प्रदेशी राजा विप्र सारथीनी अश्वरथ उपस्थित कथ अजाणी

स्तत्रैकोपागच्छति. चातुर्वर्णमश्वरथं दूरोर्हति, श्वेतविकाया नगर्यां मध्य-  
मध्येन निर्गच्छति । ततः खलुः स चित्रः सारथिस्त रथं नैकानि योजनानि  
उद्भ्रामयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा उष्णेन च तृष्णाया च रथवातेन च  
परिक्षिप्तः सन् चित्रं सारथिमेवमवादीत्-चित्र ! परिक्षिप्तं मे गरीरं, पम्-

सारथि की अश्वरथ के तैयार हो जाने को वात को घुनकर ओर उगे  
हृदय में धारण कर बड़ा ही अधिक दृष्टिंत एवं तुष्ट चित्त हुआ उसने उदा  
समय अपने शरीर पर बहुमूल्य अल्पभार वाले आभूषणों को धारण किया  
शीघ्र ही वह फिर अपने घर से बाहर निकला (जैणामेव चाउग्रघंटे आस-  
रहे तेणेव उवागच्छइ) बाहर निकल कर वह वहां पर आया कि  
जहां पर वह चार घंटों वाला अश्वरथ तैयार किया गया खड़ा था (चाउग्रघंटे  
आमरहं दुल्लहट, सेयवियाए मज्जमज्जेणं गिरगच्छइ) वहां आकर वह  
चार घंटों वाले उम रथ पर बैठ गया. फिर वह श्वेतां वका नगरी के  
ठोठ मध्यमार्ग में होकर निकला (तएण से चित्ते सारही त रह णेगाइ  
जोयणाइ उवामेइ) बाह में उस चित्र सारथिने उम रथको अनेक योजन।  
तक बहुत तेज चाल से चलाया. (तएण से पएमी राया उण्हेण य  
तण्हाए य रहवाएण य परिक्षित्ते समाणे चित्तं सारहि एवं वयामी) हम  
कारण वह प्रदेशी राजा आतप से, प्यास से और रथगन्धुद्धव धातु से  
खिन्न हो गया, अतः उसने चित्र सारथि से ऐसा कहा-(चित्ता ! परिक्षि

वात सालणीने अने तेने हृदयमा धावु करीने पुमज्ज हृषित्तअने तुष्ट चित्तयाणे थये।  
तेथे तेज क्षणे पोताना शरीर पर गहुमूढ्य तेमज्ज अल्पवाग्वाणा आभूषणो धारण  
कियां अने जल्दी ते पोताना भडेलथी गडार नीड्यो (जैणामेव चाउग्रघंटे आस-  
रहे तेणेव उवागच्छइ) गडार नीडणीने ते त्या आव्यो के ज्थां चार घटवाणे।  
अश्वरथ सुसज्ज थईने ठेलो डतो (चाउग्रघंटे आमरहं दुल्लहट, सेयवियाए  
नयरीए मज्जं मज्जेण गिरगच्छइ) त्या पडोथीने ते चार घटोवाणा ते अश्वरथ  
पर भेसी गये। अने त्यारपछी ते श्वेताणिना नगरीना ठीक मध्यवाणा गजमार्ग पर  
थईने नीड्यो (तएण से चित्ते सारही त रह णेगाइ जोयणाइ उवामेइ)  
त्यारपछी ते चित्रसारथियो ते रथने धण्ठा येज्जनो सुधी गहुज तीव्रवेगथी चलाव्यो।  
(तएण से पएमी राया उण्हेण य तण्हाए य रहवाएण य परिक्षित्ते समाणे  
चित्तं सारहि एवं वयामी) तेथी ते प्रदेशी राजा तापथी, तरसथी अने रथनी  
तीव्रगतिने दीधि सामेथी अथडाता पवनथी भिन्न थई गये। येथी तेले चित्र  
सारथिने आ प्रभावे श्लु (चित्ता ! परिक्षित्ते मे सरीरे परावच्छेहि, रहं)

धर्तय रथम् । तत्र स्वस्त्यु स चित्रः सारथिः । रथ परावर्तयति, यमैव मृग  
 वनमुद्यान तत्रैवापागच्छति, प्रवेशिन राजानमेवमवादीत्—एष स्वस्त्यु स्वामिन  
 मृगवनमुद्यान, अत्र स्वस्त्यु शम्भानां श्रम ह्यम सस्यग्र अपनयामः । ततः  
 स्वस्त्यु स प्रवेशी राजा चित्र सारथिमेवमवादीत्—एष भवतु चित्र ! ॥मृ० १२५॥

टीका—‘त एण से चित्ते’ इत्यादि—तमः स्वस्त्यु स चित्रः सारथि  
 वश्य=भागामिनिदिषसे मातृव्यभाषायां=मातुः—प्रकाशित भ्रमात् यस्या,  
 तस्या रज-यां=राशौ सत्याम्, निशापमाने इत्यर्थे, अथ=पुनःकुल्लोत्पन्नकमल

लते मं सरीर परावर्तयति रह) है चित्र ! मरा कारीर थक रहा है, अब तुम  
 रथ को वापिस लौटा लो (तएण से चित्ते सारथी रह परावर्तय, जेणेव  
 मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छ) तब वस चित्र सारथिने रथको लौटा मिया  
 और वहाँ मृगवन नामका उद्यान या उस ओर चल दिया (एवसिं राय एव  
 वयासी) वहाँ पहुँच कर उसने प्रवक्षो राजा से ऐसा कहा (एसण सामी मियवणे  
 उज्जाणे एत्थ ण भासाण मम किलाम सम्म भवणेमो) है स्वामिन !  
 यह मृगवन नामका उद्यान है वहाँ ठहरकर घोड़ों को खम को और खान  
 को मैं अच्छी तरह से दूर बिये देता हूँ । (तएण स पणसी राया  
 चित्त सारहि एव वयासी) अब यह प्रवेशी राजा चित्र सारथि से इस  
 प्रकार बोला (एव होउ चित्ता) है चित्र ! मछे तुम ऐसा करो ।

टीका—इसके बाद दूसरे दिन चित्र सारथि मानः काल होते ही  
 रात्रिकी समाप्ति होते ही—अपने घर से निकला ऐसा सबब वहाँ मगाना  
 बाहिये जब यह घर से निकला उस समयतक कमल विकसित हो चुक

है चित्र ! भाइ शरीर अभयुक्त वधु अथु है जोधो वधे रहने पाछे बाणी दे।  
 (त एण से चित्ते सारथी रह परावर्तय, जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव  
 उवागच्छ) तब ते चित्र सारथिने रहने पाछे बाणी दी। अने जहाँ भ्रमवन  
 नाम उद्यान बहुत ते वरह रहने दाँठये (एवसिं राय एव वयासी) वहाँ पहुँचीने  
 तेजे प्रवेशी राजा ने आम कर्तु (एसण सामी मियवणे—उज्जाणे एत्थ ण  
 भासाण मम किलाम सम्म भवणेमो) है स्वामिन ! आ भ्रमवन नाम उद्यान  
 है वहाँ शिकारने हूँ घोड़कोना थाकने अने जिनताने सारी रीते मटाये दाँठ  
 (त एण स पणसी राया चित्त सारहि एव वयासी) तब प्रवेशी राजा ने  
 चित्र सारथिने आग्रहको कर्तु (एव होउ चित्ता) है चित्र ! साइ वधे बने आम कर्त

टीका—त्यापयो नीला द्विसे शत्रो भरी यथा तेभ्य सचार यथा व चित्र  
 सारथि पातना येवमी नीलवयो। जेवो अर्थ जहाँ जेवो बटे है ते वधारे पातना

कोमलोन्मीलिते-फुल्लोत्पलं=निकसितकमलं, कमलो-हरिणविशेषश्च तयोः  
कोमल=मृदु उन्मीलनम्-कमलदलानां विकसन हरिणनेत्राणामुन्मेषणं च  
यस्मिन्, कमलविकसनसमये हरिणनेत्रोन्मीलनसमये वेत्यर्थः तथाभूते आपा  
ण्डुरे-आ=समन्तात् पाण्डुरे=पीतधवले, तथा-कृतनियमावश्यकै=नियमाः=  
सचित्तादित्यागरूपाश्चतुर्दशमंरूपकाः,

उक्तञ्च-“सच्चित्तं १ द्रव्यं २ विगडे ३-चाण्ड ४ तं बोल ५ वत्स ६ कुसुमे सु ७ ।

वाहन ८ सयण ९ विलेपन १०-बंभ ११ दिसि १२ णाण १३ भक्ते सु १४ ॥ १ ।

छाया--सच्चित्तं १ द्रव्यं २ विकृत्यु ३ पान ४-ताम्बूल ५ वत्स ६ कुसुमे सु ७ । वाहन ८  
शयन ९ विलेपन १० ब्रह्म ११ दिक् १२ स्नान १३ भक्ते पु १४ ॥ इति,

आवश्यक=प्रतिक्रमण तच्चेह रां कं, तयोः समाहारे नियमावश्यकं, कृतं=  
विहित नियमावश्यकं यस्मिन् तत्तस्मिन् तादृशे प्रभाते=मातःकाले तथा-  
सहस्ररश्मौ=सहस्रकिरणसम्पन्ने दिनकरे=सूर्ये तेजसा ज्वलति=दीप्यमाने सति  
स्वात्=स्वकीयाद् गृहाद् निर्गच्छति, यत्रैव प्रदेशिनो राज्ञो गृहं=भवनं  
यत्रैव च प्रदेशी राजा वर्त्तते तत्रैव उपागच्छति=समागच्छति, प्रदेशिनं  
राजानं करतल-यावत्-करतलपरिगृहीत शिरावर्त्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा  
जयेन विजयेन वर्द्धयति, वर्द्धयित्वा एवमवादीत्-एवं खलु देवानुमिषेभ्यः=

ये अथवा कमल और हरिणविशेषों के नेत्र निद्रा विगत हो जाने के कारण  
उघड़ चुके थे, प्रभात का रंग पीत धवल हो चुका था लोगोंने-धार्मिक जनताने  
१४ नियमों ले लिया था. और रात्रि प्रतिक्रमण भी कर  
लिया था. वे १४ नियमों इस प्रकार से हैं—‘सच्चित्तं द्रव्य’ इत्यादि ।

तथा सहस्रकिरण संपन्न सूर्य भी अपने तेज से दीप्यमान हो चुका था. घर से  
निकलकर वह प्रदेशी राजा के पास पहुँचा. वहाँ पहुँच कर उसने प्रदेशी राजा  
को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया, उन्हें वधाई दी और फिर ऐसा  
कहा आप देवानुमिष के लिये जो कम्बोजवासियोंने चार घोड़े भेंटरूप

धरथी नीकथे ते वपते कमलो विकसित यथं श्रूयंतां इति अथवा कमल हरिण (मृग)  
विशेषता नेत्रो निद्रा रहित यथं नवाथी उघड़ी श्रूयंतां इति. प्रभातनो वार्धु पीतधवल  
यथं श्रूयंतां इति. दोड़ोये-धार्मिक माणुसोये-१४ नियमोने धारण करी लीधा इति  
अने रात्रिक प्रतिक्रमण पणु करी लीधुं इति. ते १४ नियमो आ प्रमाणे छे

‘सच्चित्तं द्रव्य’ इत्यादि.

तेमज सहस्रकिरण संपन्न सूर्य पणु पोताना तेजथी देदीप्यमान यथं श्रूयंतां



मवद्वयः। काम्बाजैश्चत्वारोऽन्वा उपनयमुपनीता = प्राभृतत्वेन समानीताः त च  
 मया देवानुप्रियभ्यः = मधर्तां कृते अन्यैव = तदैव विनयिता = विनय प्रापिताः  
 शिक्षिताः। तत् = तस्मात्कारणात् एत आगच्छत तान् आत्मर्द्धिकान् = स्वकीय  
 प्रशस्तगत्यादिशक्तिसम्पन्नान् अन्वान् पश्यत। ततः खलु स प्रदेशी राजा  
 विप्र सारथिमेवमवादीत् - गच्छ खलु त्वं विप्र। तेरेव काम्बोजमाप्सिभृत  
 मिरेभ्यः युक्तमेव = सज्जितमव अभरणम् उपस्थापय यावत् प्रत्यर्पय, यावच्छ-  
 न्देन उपस्थाप्य गतामाश्रित्वा मम प्रत्यर्पय। ततः खलु स विप्रः सारथिः  
 प्रवेक्षिना राजा गच्छम् = अनेन सज्जितरणोपस्थापनरूपेण प्रकारेण उक्तः =  
 कथित इष्टुष्टयावद्द्वय, - यावच्छन्देन - इष्टुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः  
 परमसौमनस्यित इपंश्चाविसर्पद्द्वयः सन् उपस्थापयति = तैश्चतुर्मिरेषाम्भैरुक्त  
 मेवाभरणमुपरित्त करोति एतां = राजोक्ताम् आश्रित्वा = आश्रित्वा प्रत्यर्पयति  
 = 'युक्त एव रथो मयाऽऽनीतः' इति सूचयति। ततः खलु स प्रदेशी राजा  
 विप्रस्य सारथेः अन्तिके = समीपे - युक्तरथोपस्थापनरूपम् अर्थ = वाच्यं  
 भुत्वा - कर्णगोचरीकृत्य, निश्चम्य = इत्यवभाय इष्टुष्ट यावत् - यावच्छन्देन - इष्ट  
 तुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो इपंश्चाविसर्पद्द्वयः सन् ततः  
 कृतचञ्चिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्त शुद्धभावेन १.१ माङ्गल्यानि वस्त्राणि  
 मधरपरिहितः, इति सङ्गीतम्, अत्यमहापांभरणाकृष्टवस्त्रीर एषामर्भस्तु मद्युक्त  
 एव, एतादृश सन् स्वात् = स्वकीयाद् एताद् भवनात् निगच्छति = निस्सरति।

मैं भेजे थे उन्हें मैंने उसी दिन आपके लिये सुशिक्षित कर दिया हैं मतः  
 आप मा करके ठहरे देख लेव इस प्रकार वि सारथी के कपन को  
 सुनकर प्रदेशी राजाने उससे कहा—तुम शीघ्र ही ठहरे रथ में भोगकर यहाँ  
 ले आओ विप्र सारथीने ऐसा ही किया जब रथ तैयार हो जाने का  
 वृत्तान्त प्रदेशी राजा को प्राप्त हुआ तब आकर वह उसमें बैठ गया उसके  
 बैठते ही विप्र सारथीने उस रथ को श्वेताश्विका नगरी के मध्यभाग से

४४ के आप देवानुप्रिय आगे ४४४४४४४४ नाजरीकोले के आर घोषको देवप्रभ  
 भावस्था हवा तेमने तेज दिवस आपसी आगे सुशिक्षित करी दीधा छ कोथी आप  
 पधारीने तेमनु निरीक्षण करी हो आ प्रभावे विप्रसारथिनु कवन सांभलीने प्रदेशी  
 सल्लोके तेने ४४ के तमे सत्यरे ते घोषकोले त्थमां जेतरीने जदी उपस्थित करे।  
 विप्र सारथिके ते प्रभावे ४४ भागपुर् ४४ ल्यारे रथ तैयार भई ज्वानी जत्र राखनी  
 फसे पदोबाइवामां आवी त्यारे ते सज्ज ते रथमां जेरी जई। सल्ल ज्वारे सवार भई

ततः खलु स चित्रः सारथिरत रथ नैकानि=अनेकानि वह्नि योजनानि उद्भ्रा-  
मयति=गीघ्रगत्या धावयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा उष्णेन=आतपेन  
च तृष्णया=पिपासया रथवातेन=रथगत्युद्भवेन वायुना च परिक्लान्तः=खिन्नः  
सन् चित्र सारथिमेवमवादीत्-हे चित्र ! परिक्लान्तः=खिन्नः मे-मम शरीरम्  
अतो रथं परावर्त्तय=निवर्त्तय । ततः खलु स चित्रः सारथिः रथं परावर्त्त-  
यति, यत्रैव भृगवनमुद्यानं तत्रैवोपागच्छति, प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-  
एतत् खलु स्वामिन् ! भृगवनमुद्यानमस्ति, अत्र=अस्मिन्मुद्याने स्थित्वा अश्वानां  
श्रम=खेदं क्लमं=ग्लानिं च सम्यक्=समीचीनतया अपनयामः=दूरीकुर्मः ।  
ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्र सारथिमेवमवादीत्-हे चित्र ! एव भवतु=  
यथा त्वया कथितं तथैव भवतु अत्रय तिष्ठाम इति भावः ॥मृ० १२५॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही जेणेव मियवणे उज्जाणे-जेणेव  
केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसामंते तेणेव उवागच्छइ, तुरए  
णिगिण्हइ रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तुरए मोएइ, पएसि रायं एवं

होकर चलाया, जत्र नगरी से वह रथ बाहर हो गया तब उसने कई  
योजनों तक उस रथको इतने अधिकरूप से चलाया कि प्रदेशी राजा परिक्लान्त  
हो गया, (थक गया) आतप, से तप गया और पिपासा की वेदना से व्या-  
कुल हो उठा। तब सारथि से उसने उसी समय रथको लौटाने केलिये कहा,  
सारथिने आज्ञानुसार रथ को लौटा लिया और भृगवन उद्यान, की ओर  
ले चला। वहां पहुंच कर सारथिने घोड़ों को विश्रान्ति देने के निमित्त  
रथ खड़ा कर लिया और प्रदेशी राजा से वहां ठहर कर घोड़ों को मार्गजन्य प-  
रिश्रमको दूर करने की बात कही प्रदेशी राजाने बातको मानलिया। सू. १२५।

गया त्यारे चित्र सारथिओ ते रथने श्वेतागिका नगरीनी मध्यभागभाथी थधने  
डाडथे आ प्रमाछे ते रथ ज्यारे श्वेतागिका नगरीथी गहार नीडगी गथे त्यारे  
धञ्जाथेओने सुधी ते रथने तीव्र वेगथी थलाव्ये के जेथी ते प्रदेशी राजा परिक्लान्त थध  
गथे, तापथी तपी गथे अने तरसनी वेदनाथी व्याकुण थध गथे राजाओ सार-  
थिने तरत ज रथ पाछे वाणवानो आदेश आथ्ये सारथिओ राजानी आज्ञा प्रमाछे  
रथने पाछे वाणी दीथे अने भृगवन उद्याननी तरक्क ते रथने लध गथे त्या  
पडोथीने सारथिओ घोडाओने विश्रान्त आपवा माटे रथ ने ठेले राख्यो अने  
प्रदेशी राजाने त्या शोकाधने घोडाओना रस्ताना थाकने हर हरवानी बात करी,  
प्रदेशी राजाओ पणु तेनी बात मानी दीधी ॥मृ० १२५॥

वयासी एह णं सामी ! आसाणं सम किलाम सम्म अवणेमो ! तण्णं  
 से पपसी राया ग्हाओ पञ्चोरुहइ, चित्तेण सारहिणा सद्धि आसाण  
 सम किलाम सम्म अवणेमाणे पासइ, जत्थ केसिकुमारसमणं महइ  
 महालियाए परिताए मज्झगय महया सहेणं धम्ममाइक्खमाणं पासि  
 तां इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जइ खलु भो ! जइ  
 पज्जुवासति, मुढा खलु भो ! मुढ पज्जुवासति, मूढा खलु भो ! मूढ  
 पज्जुवासति, अपढिया खलु भो अपढिय पज्जुवासति, निव्विण्णाणा  
 खलु भो ! निव्विण्णाण पज्जुवासति, से-केसणं एस पुरिसे जइ मुढे  
 मुढे अपढिय निव्विण्णाणे सिरीए हिरीए उवगए उत्तप्पसरीदे,  
 एस णं पुरिसे किमाहभ्रमाहारेइ ? कि परिणामेइ ? कि स्वायइ ?  
 कि पियइ ? कि दलइ ? कि पयच्छइ ? ज णं एस एमहालियाए  
 मणुस्तपरिताए मज्झगय महया सहेणं बूयाइ ? एवं सपेहेइ,  
 चित्त सारहि एव वयासी—चित्ता ! जइ खलु भो ! जइ पज्जुवासति  
 जाव बूयाइ, साए वि णो उज्जाणभूमीए नो सचाएमि सम्म  
 पकाम पवियरित्तए ॥ सू० १२६ ॥

छाया-वतः खलु सचिन्तः सारधिः यत्रैव मृगवनमुपान यत्रैव कृन्निनः  
 कुमारभ्रमणस्य भद्रसामन्तं तेणेव उवागच्छति, सुरगान निवृत्ताति, रय

‘तण्णं से चित्ते सारही’ इत्यादि—

सुत्रार्थ—(तण् ण से चित्ते सारही जेणेव मिगवणे उज्जाणे जेणेव केसिस्स  
 कुमारसमणस्स भद्रसामन्ते तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद यह विघ्नसारणि  
 उस मृगवन उद्यान में स्थित केसिकुमारभ्रमण के भद्र सामन्त स्थान पर

‘तण्णं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

अन्वय—(तण्णं से चित्ते सारही जेणेव मिगवणे उज्जाणे, जेणेव  
 केसिस्स कुमारसमणस्स भद्रसामन्ते तेणेव उवागच्छइ) त्वा२ ५७ी ते  
 भिन्न सादृषि ते भुजवन उद्यानभा स्थित केसिकुमारभ्रमण-पी पाने स्थाने तत्र जंघा.

स्थापयति, रथात् प्रत्यक्षोदति, तुरगान् मोचयति, प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत-  
अत्र खलु स्वामिन् ! अश्वानां श्रमं क्लामं सम्यक् अपनयामः । ततः  
खलु स प्रदेशी राजा रथात् प्रत्यक्षोदति, चित्रेण सारथिना सार्धम् अश्वानां  
श्रमं क्लामं सम्यक् अपनयन् पश्यति यत्र केसिकुमारश्रमण महातिमहालयायाः  
परिषदो मध्यगतं महता शब्देन धर्ममाख्यानं दृष्ट्वा अयमेतद्रूपं  
आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत-जडाः खलु भो ! जडं पर्युपासते, मुण्डा-

रथको लेकर गया (तुरण णिगिण्डइ) वहा पहुचते ही उसने घोड़ों को  
'रोक लिया (रहं ठवेइ) और रथको खडा कर दिया (रहाओ पचोरुहइ)  
रथ के खडे हो जाने पर वह रथ से नीचे उतरा (तुरण मोएइ) नीचे  
उतर कर घोड़ों को रथ से खोल दिया (पएसिं राय एव वणासी) फिर  
उसने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा-(एह णं समं क्लामं सम्मं अवणेमो)  
हे स्वामिन् ! रथ खडा हो चुका है आप उतर आइये, मैं यहां पर घोड़ों  
के श्रम को एवं उनकी मानसिक क्लानि को ठीक तरह से दूर करलूं  
(तए णं से पएसिं राया रहाओ पचोरुहइ) सारथि के इस कथन से वह  
प्रदेशी राजारथ से नीचे उतरा (चित्तेण सारहिणा सद्धिं आसाणं समं क्लामं  
सम्मं अवणेमाणे पासइ) नीचे उतर कर उसने चित्र सारथि के साथ वहां  
घोड़ों का श्रम पक्कम (धकाइ) अच्छी तरह से दूर करते हुए, एवं विश्राम  
करते हुए उस ओर देखा (जत्थं केसिकुमारसमणं महइमहालियाए परि-  
साणं मज्झनयं महया सद्देण धम्ममाइक्खमाणं पासित्ता इमेयाह्वे अज्झत्थिए-

(तुरण णिगिण्डइ) त्या पहोच्यता न तेणे घोडाओने उला राभ्या. (रहं ठवेइ)  
अने रथने थोलाओ. (रहाओ पचोरुहइ) रथ न्यारे उलो रडी गयो. त्यारे ते  
रथभाथी नीचे उतरी. (तुरण मोएइ) नीचे उतरने घोडाओने रथभाथी मुक्त क्यो.  
(पएसिं राय एवं वणासी) त्यार पछी तेणे प्रदेशी राजाने आ. प्रमाणे कहु-  
(एह णं सामी ! आसाणं समं क्लामं सम्मं अवणेमो) हे स्वामिन् ! रथ  
उलो थरं झुड्यो छि आप नीचे उतरो हु अडी घोडाओना श्रमने अने तेमनी  
मानसिक क्लानि ने सारी रीते दूर करी दड (तए णं से पएसिं राया रहाओ पचोरुहइ)  
सारथिना आ कथनथी ते प्रदेशी राजा रथभाथी नीचे उतरी (चित्तेण सारहिणा  
सद्धिं आसाणं समं क्लामं सम्मं अवणेमाणे पासइ) नीचे उतरने तेणे चित्रसार-  
थिनी साथे त्या घोडाओनां श्रम अने क्लाम सारी रीते दूर करता तेमन विश्राम  
करता ते तरइ जेथुं (जत्थं केसिकुमारसमणं महइमहालियाए परिसाणं मज्झ-  
नयं महया सद्देण धम्ममाइक्खमाणं पासित्ता इमेयाह्वे अज्झत्थिए) जाव



किं परिणमयति ? किं स्वादति ? किं पिबति ? किं ददाति ? किं प्रयच्छति ?  
यत् खलु एष एतावन्महालयाय मनुष्यपरिपदो मध्यगतो महता शब्देन  
ब्रवीति ? एव संप्रोक्ष्यते, चि सारथिमेवमवादीत-चित्र ! जडाः खलु  
भो ! जडं पर्युपासते यावद् ब्रवीति, स्वात्यामपि खलु उद्यानभूमौ नो  
शक्नोमि सम्यक् प्रकामं पविचरितुम् ॥ सु० १२६ ॥

टीका—'तएणं से चित्ते' इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः सारथिर्यत्रैव मृगवनं=मृगवननामकमुद्यानं यत्रैव  
केशिनं कुमोरश्चमणस्य अदूरसामन्त=नातिदूरनातिसमीपरूप स्थलं तत्रवोप-

(किं परिणामेऽ) किस प्रकार से खाये हुए भोजन को परिणमाता है ?  
(किं खायइ, किं पियइ, किं दलइ, किं पयच्छइ) कैसी रुचिर वस्तु को यह  
खाता है ? किस प्रकार की रुचिर वस्तु का यह पान करता है ? यह  
लोगों के लिये क्या देता है ? क्या विशेषरूप से यह उन्हें वितरित करता  
है ? (जं ण एस ए महालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया सद्देणं  
बूयाइ) जो यह पुरुष इतनी बड़ी विशाल मनुष्य परिषदा के बीच में  
बैठ कर बड़े जोर से बोल रहा है ? (एवं संपेहेइ) ऐसा उसने विचार  
किया (चित्तं सारहिं एवं वयासी) इस प्रकार विचार करके फिर उसने  
चित्र सारथि से ऐसा कहा—(चित्ता ! जड्हा खलु भो जड्हुं पज्जुवासति,  
जाव बूयाइ, साए वि य णं उज्जाणभूमीए नो सम्मं पकामं पवियरित्तए) हे  
चित्र ! जड जड की पर्युपासना करते हैं यावत् यह बड़े जोर से बोल रहा है मैं अपनी  
भी उम उद्यानभूमि में इच्छानुसार अच्छी तरह से घूम नहीं पा रहा हूँ ।

जातने आहार करे छे ? (किं परिणामेऽ) कैसी रीते आधेला लोअनने परिणुभावे छे ?  
(किं खायइ, किं पियइ, किं दलइ, किं पयच्छइ) कछ जातनी इयिनी वस्तुने  
आ आहार करे छे ? कछ जातनी इयिनी वस्तुनं आ पान करे छे ? लोकेने आ  
शुं आपे छे ? विशेषइपथी आ शुं लोकैना भाटे वितरित करे छे ? (जं ण एस  
ए महालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया सद्देणं बूयाइ) ने के आ  
पुश्च आटली मोटी लोक परिषदानी वर्ये जेसीने अहु मोटा साहे भोले छे ? (एवं  
सपेहेइ) आ प्रभाणे तेणे विचार कर्यो (चित्तं सारहिं एवं वयासी) आभ  
विचार करीने पछी तेणे चित्र सारथिने आ प्रभाणे कछु—(चित्ता ! जड्हा खलु भो  
जड्हुं पज्जुवासति, जाव बूयाइ, साए वि य णं उज्जाणभूमीए नो सम्मं  
पकामं पवियरित्तए) हे चित्र ! जडजडने सेवे छे यावत् आ अहु मोटा साहे  
भोली रह्यो छे हु पोते पण आ उद्यानभूमिमा स्वस्थतापूर्वक सारी रीते डरी डरी शकतो नथी,

गच्छति तुरगान्=अश्वान् मोक्षयति=रथात् पृथक्गोति, प्रदेशान् रामान्  
 मेवमवादीत-हे स्वामिन् । एत=आगच्छत अत्र अश्वानां=हयानां अम=मार्गं  
 जन्म शरीरस्वेवं स्निग्ध=मानसिकग्लानिं च सम्यक्=किञ्चित्कालावस्थानेन  
 समीचीनतया अपनयामः=दूरीकृतम् । तत=पूर्वोक्त निबन्धान्तरं स प्रवृत्ती  
 राजा रथात् प्रत्यक्षरोहति=अवतरति, भिजेण सागभिना साद्धं तपाम्भानां स्व  
 स्य च धर्म बलम् च सम्यग् अपनयन्=दूरीकुर्वन् विश्वास्यन् सन् पश्यति यत्र  
 केचिकुमारभमण महासिमहात्म्या=अतिमहत्त्वा, परिपदो मध्यगत=मध्य  
 स्थित महता शब्दे=उच्चस्वरेण धर्म=मिनप्रणीतम् आख्यात=वक्ष्य-तम्  
 दृष्ट्वा च, अयमेतद्वैष=वक्ष्यमाणमकारक आप्यात्मिक=आत्मगतोऽङ्कुरः

टीका—इसके बाद वह चित्र सारथि भूजवन नामके उद्यान में  
 पहुँचकर केशीकुमारभमण से अभिष्टित प्रदेश के पास पहुँचा वह प्रदेश  
 केशीकुमारभमण से न अधिक दूर था, और न अधिक पास ही था  
 पहुँचकर उसने घोड़ों को खड़ा किया। और रथ को रोक दिया तथा  
 प्रदेशी राजा से ऐसा कहा हे स्वामिन्! आइये, यहाँ हमलोग घोड़ों के  
 मार्गनिय शारीरिक स्नेह को एवं मानसिक ग्लानि को कुछ कावतक ठहर  
 कर अच्छी तरह से दूर करके। पूर्वोक्त निबन्ध के अनन्तर प्रदेशी राजा  
 रथ से नीचे उतरा और चित्र सारथि के साथ वहाँ घोड़ों की एवं निमकी  
 प्रकाश को तथा स्निग्ध-मानसिक ग्लानि को-अच्छी तरह से दूर करता,  
 हुआ, तथा विश्राम करता हुआ इधर उधर देखने लगा-देखते-उसकी  
 दृष्टि वहाँ पहुँची जहाँ केचिकुमारभमण अतिमहन्नी-(विशाल) परिपदा के-  
 बीच बैठ हुए उच्चस्व से मिनप्रणीत धर्म की प्रकृति कर रहे थे वहाँ

टीका—सारथी ने चित्र सारथि भूजवन नामके उद्यानमें पहुँचीने केशी-  
 कुमार भमण जहाँ विश्रामान होता तेनी पास पहुँचे। ते स्थल केशीकुमार भम-  
 णधी वधारे दूर पक्ष नहि तेमन् वधारे नलक्ष पक्ष नहि उतु त्वां फलोभीने तेजे  
 घोड़कोने उला साध्या अने रक्तेने मिलाये। तेमन् प्रदेशी राजाने आ प्रभाये भुं  
 ठे हे स्वामिन्! वधाये, जहाँ आपये थे। समस सुधी देखाधने घोड़कोने आभ-  
 न्म शारीरिक भेदने अने मानसिक ग्लानिने सारी रीते दूर करवा बल करीये आ  
 प्रभाये विश्राम करीने ते प्रदेशी राजा रथ परभी नीचे उतर्यो अने चित्र सारथिनी  
 साथे त्वां घोड़कोने अने पत्तन्या बाधने तेम / कलम-मानसिक ग्लानि-ने सारी  
 रीते दूर करता तथा विश्राम करता आगतम बोवा लाये। बोवां भेत तेमनी नधर  
 अति विश्राम भदिष्यनी वधये जेहीने भेटा सारे ते भदिष्यने मिनप्रणीत धर्मनी

जडोऽयमितिरूपः यावच्छब्देन-‘चिन्तितः=कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः’ इति संग्राह्यम्, तत्र-चिन्तितः=पुनः पुनः स्मरणरूपो विचारः ‘मुण्डो-  
य-’मितिलक्षणो द्विपत्रित इव, कल्पितः=स एव विचारः ‘मुण्डोऽय-’मिति रूपः  
पल्वित इव, प्रार्थितः, स एवेष्टरूपेण स्वीकृतः ‘निश्चयेनायमपण्डितः इतिरूपः  
पुष्पित इव मनोगतः संकल्पः मनसि दृढरूपेण निश्चयः ‘सत्प्रय-’निर्विज्ञानः’  
इतिलक्षणः फलित इव समुदपद्यत=समुत्पन्नः। तदेव दर्शयति-‘जडु’ इत्यादि,

देखकर इसके मन में इस प्रकार का संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ, ‘यहां  
यावत् पद से संकल्प के आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, मनोगत ये विशेषण  
गृहीत हुए हैं। इनकी सार्थकता इस प्रकार से है, यह विचार उनकी आत्मा  
में पहिले अङ्कुर के रूप में जमा, अतः वह आध्यात्मिक हुआ बाद में  
वह पुनः पुनः स्मरणरूप होने के कारण चिन्तितरूप हो गया अर्थात् यह  
मुड है यह मूढ है इस तरह बार-बार स्मृति में आने के कारण यह  
विचार द्विपत्रित अङ्कुर की तरह चिन्तितरूप बन गया-पुनः वही विचार  
यह मुण्डित ही है, और कोई नहीं है इसरूप से निश्चयापन्न होने के कारण  
पल्वित हुए अङ्कुर की तरह प्रार्थित हो गया, ‘अयमपण्डित एव निश्च-  
येन’ फिर ऐसा निश्चय हो जाने से कि यह नियमतः अपण्डित ही है (पण्डित  
नहीं है) यह विचार पुष्पित अङ्कुर की तरह इष्टरूप से स्वीकृत हो जाने के  
कारण पुष्पित हो गया, बाद में ‘यह विज्ञान रहित है’ इसरूप से मनमें  
दृढरूप से निश्चित हो जाने के कारण मनोगत हो गया, तात्पर्य कहने का

प्रश्नपूछा करता तो देशिकुमारश्रमण पर पड़ी तेमने जेधने तेमनी मनमा आ जातनो  
संक्षेप-विचार-उद्बलन्यो, अही यावत् पदथी संकल्पना आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित,  
प्रार्थित, मनोगत आ अंधा विशेषणो अहणु करवाभा आव्यां छे आ अंधा विशेषणो  
नी सार्थकता आ प्रमाणे समजवी, आ विचार तेना आत्माभां पड़ेला अङ्कुरना रूपमां  
जन्म्यो, तेथी ते आध्यात्मिक थयो, त्थारपछी ते बार-बार स्मरणरूप होवा पहिल  
चिन्तित रूप थध गयो, ओटले छे आ मुड छे, आ मूढ छे आ प्रमाणे बार-बार  
स्मृतिमा आववाथी आ विचार द्विपत्रित अङ्कुरनी जेम चिन्तितरूप थध गयो, पछी  
तेज विचार आ मुडित ज छे अन्य नहि, आ प्रमाणे निश्चयापन्न होवा पहिल  
पल्वित थयेला अङ्कुरनी जेम प्रार्थित थध गयो, “अयमपण्डित एव निश्चयेन”  
त्थार पछी आ जातनो निश्चय थध जवाथी आ नियमतः अपण्डित ज छे आ विचार  
पुष्पित अङ्कुरनी जेम छे रूपथी स्वीकृत, थध जवा पहिल पुष्पित थध गयो, त्थार  
आह ‘आ विज्ञान रहित छे’ आ प्रमाणे मनमां दृढरूपमां निश्चित थध जवाथी आ



महा=भलसा उद्योगवर्जितत्वात्, यद्वा-महा इति विवेकविकल्पाः कसं  
 व्याहृत्यज्ञानराहित्यात् अहम्=जडपुरुषमेव पयुंपापत=सेवात् । तथा-  
 मूढा=एतादृशा एव अनादृतमस्तका निर्लेजा इत्यर्थः, न एव मूढ=मूढित  
 मस्तकमेव पयुंपासते । तथा-मूढा=पूर्वा इयोपादयज्ञानशून्या एव मूढ=  
 सदसद्विवेकविकलमेव पयुंपासते । अपण्डिता=व्यावहारिकबुद्धिविकल्पात्मक  
 ज्ञानराहित्यात्, त एव अपण्डित=तत्त्वज्ञानशून्यमेव पयुंपासते । निर्विज्ञानाः=

यह है कि यहाँ पर विचार के इन विशेषणों विचार की आगे पुष्टि  
 होती हुई प्रकट की है। जिस प्रकार अकुर पड़िछे नमता है बाढ़ में वह  
 पवित्र होता है, फिर पुष्पित होता है और अंत में कमल होता है इसी  
 प्रकार से यहाँ उसका विचार आगे अधिक पुष्ट होता गया इसी बात  
 को 'जडू' आदिपदों द्वारा प्रकट किया गया है-उद्योगवर्जित होने से जो  
 जड-अवम होते हैं अथवा तो कर्मव्याकर्तव्यरूप विवेक से रहित होने  
 के कारण विवेक विफल है वे ही इस जड पुरुष की उपासना-सेवा करते हैं, तथा  
 जो इन्हीं जैसे मूढ-अनादृत खुले मस्तक वाले-निर्लेज हैं, वे ही इस मूढित  
 मस्तकवाले इसकी सेवा करते हैं, तथा जो इयोपादय ज्ञान से शून्य  
 मूढ जन हैं वे ही इस मूढे पुरे के ज्ञान से विरक्त हुए इसकी सेवा  
 करते हैं। तत्त्वज्ञान रहित होने के कारण जो व्यावहारिक बुद्धि से विरक्त  
 हैं वे ही इस तत्त्वज्ञान शून्य इस अपण्डित की सेवा करते हैं, तथा बुद्धि  
 हीन होने से जो विविष्टज्ञान से रहित हैं वे ही इस सर्वोपररहित को

भोगात् यद्यप्येव तत्त्वज्ञान के छे के जड विज्ञाना आ विशेषज्ञों अतुल्य  
 ते पछीना विद्याशाली बुद्धि व बाध है तेम अकुर पड़ेना जामे छे तत्त्वपछी ते  
 चरित बाध छे पछी बुद्धिपन बाध छे जने छेवटे इक्षित बाध छे तेमज जडू पयु  
 तेना विचार अतुल्य अधिभक्ति पुन व यते जाम छे आ जाने 'जडू'  
 बजेर परे वटे प्रकट करवामा जानी छे उद्योग रहित होना जड के व-आगमु-  
 दोष छे अथवा तो के इत व्याकर्तव्यरूप विवेकही रहित होना जड विवेक विरक्त  
 छे ते व आ वर पुरुषनी उपासना-सेवा करे छे तेमज जेजो जेना जेना व  
 मूढ-अनादृत भक्तबाजा-निकल छे ते व आ मुष्टित भक्तबाजाजोनी सेवा  
 करे छे तेमज जेजो देयोपादय ज्ञानही रहित मूढ जन छे ते व आ विवेक-  
 रहित पुरुषने सेवे छे तत्त्वज्ञानरहित होवाधी के व्यावहारिक बुद्धिही विरक्त छे  
 ते व आ तत्त्वज्ञान शून्य अपण्डितने सेवे छे तेमज बुद्धिहीन होवाधी के विविष्ट-  
 ज्ञानही रहित छे तेजो व सर्वोपर रहित पुरुषनी सेवा करे छे आ इह जानी

विशिष्टज्ञानरहिताः बुद्धिहीनत्वात्, त एव निर्विज्ञान=सद्वोधरहितमेनं पयु-  
पासते। स एष कीदृशः पुरुषः यो जडो मुण्डो मूढोऽपण्डितो निर्विज्ञानोऽपि  
श्रिया==महात्मिमहालयपरिपदादिशोभया, द्विया=लज्जया-कुचेष्टावर्जनरूपया  
उपगतः=संपन्न. तथा-उत्तमशरीर.=शरीरवान्त्या दीप्यमानो वत्तते इति  
किं कारणम् ? कारणं चिन्तयति-एष खलु पुरुषः कं=किम्प्रकारम् आहारं=  
भोजनम् आहारयति=करं नि ? किं=केन प्रकारेण भुक्तं भोजन परिणमयति=  
परिणामं प्रापयति ?, किं=कीदृशं रुचिरं वस्तु खादति ? किं=कोदृशं रुचिर  
प्रपणकादिकं पिबति ?, किं ददाति एभ्यो लोकेभ्यः, किं प्रयच्छति=विशेषेण  
ददाति यतः=यस्मात्कारणात् खलु एष पुरुषः एतावन्महालयायाः=महत्याः  
मनुष्यपरिषदो मध्यगतः=मध्योपविष्टः सन् महता शब्देन=उच्चैः स्वरेण ब्रवीति=  
वदति ? । एव=पूर्वोक्तप्रकारेण संप्रोक्षने=विचारयति, चित्र सारथिमेवमवा-

सेवा करते हैं। यह कैसा पुरुष है ? जो जड, मुण्ड, मूढ, अपण्डित एवं निर्वि-  
ज्ञान हुआ भी महनिमहालय परिपदा-याने विशालसभा में शोभा से  
एवं कुचेष्टावर्जनरूप लज्जा से संपन्न बना हुआ है। एवं शरीरकी कान्ति से  
देदीप्यमान हो रहा है। इसमें कारण क्या है ? क्या यह इस प्रकार के  
आहारको करता है जो इसके शरीर में ऐसी कान्ति प्रदान करता है-  
यही जान वह 'क आहार आहारयति' इत्यादि पदों द्वारा विचार करता  
है यह किस प्रकार के आहारको लेता ? तथा किस प्रकार से भुक्त भोजन को  
यह परिणमात्ता है ? यह कैसी रुचिर वस्तु खाता है ? अगर कैसे रुचिरपान को यह पीता  
है ? यह इन लोकों के लिये क्या दे रहा है ? क्या विशेषरूप से यह इन्हे प्रदान  
कर रहा है ? जो यह इस बड़ी भारी मनुष्य परिषदा के बीच में बैठा  
हुआ बड़े जोर से बोल रहा है। इस प्रकार से उसने विचार-क्रिया-

व्यक्ति छ के ने जड, मुण्ड, मूढ, अपण्डित अने निर्विज्ञान होवा-छता पणु महति-  
महालय परिषदा ओटवे के विशाण सभाभा शोभाथी अने कुचेष्टा वर्जनरूप लज्जन्थी  
भुक्त थयेवे छ तेमज्ज शरीरकात्थी दीप्यमान थछ रह्यो छ आहुं शु कावणु छ ?  
शु ते आ जतने आहार करे छ के ने जेना शरीरभा ओवी कति उत्पन्न करे  
छ ओज् वात ते 'क आहार आहारयति' वजेरे पढे पडे भुतवे छे. अ कछ  
जतने आहार ग्रहणु करे छ ? तेमज्ज कछ जतना भुक्त भोजनने आ परिणुभावे छ ?  
आ कछ जतनी रुचिर वस्तुने आहार करे छ ? केवा रुचिर पानपदार्थने आ पीवे  
छ ? आ पुरुष आ गंधाने शु आपी रह्यो छ ? विशेषरूपथी आ गंधा ओकत्र  
थयेवा होछेने आ शु आपी रह्यो छ ? केने आ गहुं मोटी विशाण परिषदानी  
वच्चे जेसीने गहुं मोटा स्वरथी गौली रह्यो छ आ प्रभावे तेले विचार क्यो तयार-

दीप्त-प्रकटमन्त्र-विष । जडा । ललु अह पयुषामसे, यावत्-यावच्छब्देन  
पूर्वोक्त सर्व प्राक्षम, प्रधीति=उच्चस्वरण पदति येन कारणेनाह स्वस्यामपि=  
स्वकीयायामपि उद्योगयुगौ सम्यक्=सम्यक्प्रकारेण 'प्रक्षामम्-मतिशय ।  
प्रविपरितु=मन्त्रितु नो क्षान्नामिन्न समर्थो मश्रामि ॥ सू० १५६ ॥'

मूत्रम्—तपण से चित्त सारही पणसिराय एवं वयासी-एसणं  
सामी । पासावधिजे केसी नामं कुमारसमणे जाइसपणणे जाव चउ  
नाणोवगए अधोऽवहिण अण्णजीविण । तपण से पयसी राया चित्त  
सारहि एव वयासी-आहोहिय णं वयासि चित्ता । अण्णजीवियत्त  
णं वयासि चित्ता । ? हता । सामी । आहोहिय णं वयामि अण्णजी  
वियत्त णं वयामि । अभिगमणिज्जे णं चित्ता । एस पुरित्ते ? हता ।  
सामी । अभिगमणिज्जे । अभिगच्छामो णं चित्ता । अम्हे एयं पुरित्ते ?  
हता । सामी । अभिगच्छामो । सू० १२७ ॥

छाया—ततः ललु स विषः सारयि प्रक्षिराजमवमवादीह-एव ललु  
स्वामिन् । पाश्चात्पत्तीयः केडोनामकुमारसमणः जानिमपन्नः यावत् चउ  
याद में बह चित्र सारयि से प्रकटरूप में इस तरह से करने मगा-विष ।  
जई जह की उपासना करते हैं इत्यादि यहां यावत् छन्द से पूर्वोक्त सब  
कथन जो यह जीरन् से इस मनुष्य परिपक्व के जीवन में बौद्ध रहा है  
येहां तक की प्रकट हुआ है । इसी कारण मैं अपनी भी इस उपासनायुग्मि  
में ठीक तरह से धूम नहीं पा रही ह ॥ सू० १५६ ॥

'तपण से चित्ते सारही' इत्यादि ।

मूत्रम्—(तपण से चित्ते सारही पणसिराय एवं वयासी) तप  
समी ते अकटसमं चित्त सारयिने, आ प्रभावे उडेवा लायेवा । डे डे जित्ता । बह  
बहानी उपासना करे छे वगैरे अही जान्ना शब्दही पूर्वोक्त ललु अन्न-डे डे, आ  
मोटा साडे मनुष्य परिपक्वनी नय मोही रह छे अही सुधीत मनुष्य अस्तु अस्तु  
कोही बह आ मोही बह उपासनायुग्मिनी खासी सेते करीक्षी शब्दो नयौ । पृष्ठ, १२६ ॥

'तपण से चित्ते सारही' इत्यादि ।

मूत्रम्—(तपण से चित्ते सारही पणसिराय एवं वयासी) तप

ज्ञानोपगतः अधोऽवधिकः आन्नजीवितः । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्र  
सारथिमेवमवादीत्-अधोऽवधिक्य खलु वदमि चित्र ! अन्नजीवितत्वं खलु

उस चित्र सारथिने प्रदेशी राजा से कहा-(एस णं सामो ! पासावच्चिज्जे  
केसी नामं कुमारसमणे जाइसम्पण्णे जाव चउनाणोवगए) हे स्वामिन !  
ये पुरोर्त्ती केशीकुमारश्रमण है । जो कि पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा में  
उत्पन्न हुए हैं । इन्होंने कुमारवस्था में ही समय ग्रहण किया है इस-  
लिये इन्हे कुमारश्रमण कहा गया है। ये जानिसंपन्न हैं, यावत् कुलसंपन्न  
हैं, इत्यादि पूर्व में कहे गये विशेषणों वाले हैं। इन विशेषणों  
का अर्थ वहाँ पर लिखा जा चुका है। अतः यहाँ पर पुनः  
नहीं लिखा है। ये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यवज्ञान  
के अधिपति हैं-चार ज्ञान के धारी हैं (अधोऽवहिण् अणजीविण्) इनका  
जो अवधिज्ञान है वह परमावधि से किञ्चित ही न्यून है। इनका जीवन  
प्रासुक एषणीय अन्नपान से है। अर्थात् ये प्रासुक एषणीय ही आहार लेते  
हैं, उद्गमादि दोष से दूषित आहार नहीं लेते हैं। (तए णं से पहीसी  
राया चित्तं सारहिं एवं वयासी) तब प्रदेशी राजाने चित्र सारथि से  
ऐसा कहा-(आहोहियं णं वयासी चित्ता ! अणजीविग्यत्त णं वयासी चित्ता ?)  
हे चित्र ! जो तुम ऐसा कहते हो कि इनका अवधिज्ञान परमावधि से

चित्र सारथिने प्रदेशी राजाने आ प्रभाण्णे कलु (ए णं सामी ! पासावच्चिज्जे  
केसी नामं कुमारसमणे जाइसम्पण्णे जाव चउनाणोवगए) हे स्वामिन ! आ  
आपणी सामे केशीकुमार श्रमण छे, हे जेओ पार्श्वनाथनी शिष्यपरंपरामा उत्पन्न  
थया छे, जेभण्णे कुमारवस्थामा न समय ग्रहण् कर्यो छे जेथी न जेभने कुमार-  
श्रमण कडेवामा आग्या छि जेओ जितिसंपन्न छि, यावत् कुलसंपन्न छे, वगेरे  
पडेला कडेवायेलां विशेषणोथी युक्त छि आ जधा विशेषणोने अर्थ पडेला स्पष्ट  
करवामा आग्यो छि, तेथी अही इरी कडेवामा आग्यो नथी, जेओ मतिज्ञान, श्रुत-  
ज्ञान, अवधिज्ञान जेने मन पर्यवजानना अधिपति छि, चार ज्ञानधारी छि,  
(अधोऽवहिण् अणजीविण्) जेभन जे अवधिज्ञान छि ते परमावधिथी थोडु न कम  
छि जेभन एवन प्रासुक एषणीय अन्नपानथी छि ओटवे हे जेओ प्रासुक एषणीय  
आहार, ग्रहण् करे छि उद्गम वगेरे दोषोथी दूषित आहार जेओ ग्रहण् करता नथी  
(तए णं से पहीसी राया, चित्तं सारहिं एवं वयासी) तब प्रदेशी राजाने  
चित्र सारथिने आ, प्रभाण्णे कलु (आहोहियं णं वयासी चित्ता ! अणजीवि-  
ग्यत्तं णं वयासी चित्ता ?) हे चित्र ! जे तमे आ प्रभाण्णे कडे छि जेभन अव-  
धिज्ञान परमावधि करता थोडु न कम छि तेभन जेओ प्रासुक एषणीय आहार

पदसि चित्र ! ! । इन्त स्वामिन् ! भाषाऽवधिषय खलु खदामि अन्नमीवि  
तत्त्व खलु खदामि । अभिगमनीयः खलु चित्र ! एष पुरुषः ? इन्त ' स्वामिन् !  
अभिगमनीयः । ३ भिगच्छाम खलु चित्र ! वय एव पुरुषम् ! इन्त ! स्वा  
मिन् ! अभिगच्छाम ॥ म० १ ७ ॥

टीका—'सगण से चित्ते' इत्यादि—ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेभि  
राजमेवमवादीत्—हे स्वामिन् ! एषः=अयं—पुरोवर्ती पार्श्वोपस्थीयः=पार्श्वेस्वामि  
शिव्यपरम्परासनात् केशी नाम कुमारभ्रमणः=कुमारभासौ भ्रमणम् कुमार-  
भ्रमण कुमारवध्यायायेव गृहीतसयम्, कीदृशोऽयमिह जातिसंपन्नः यावत्  
यावच्छब्देन 'कुपसपन्न' इत्यादिनिर्गुणता न स चापि पूर्वसूत्रोक्तानि संप्राप्यापि

किंचित् ही न्यून है तथा ये प्रासुक एषणीय ही आहार छेते हैं तो क्या  
यह जान तुम सत्य कहते हो ? (ह ता सामी ! आहोहिय न खदामि, भ्रमणी  
विषय न बयामी) हाँ, स्वामिन् ! मैं सत्य कहता हूँ कि इनका अवधि  
ज्ञान परमावधि स किंचित् 'यून' है और ये प्रासुक एषणीय ही आहार  
छेते हैं । (अभिगमणिज्जे न चित्ता ! एव पुरिसे) तो हे चित्र ! यह पुरुष  
अभिगमनीय है अर्थात् परिचय करने के योग्य है (ह ता सामी ! 'अभि  
गमणिज्जे) हाँ स्वामिन् ! व आपके लिये अभिगमनीय 'ह अर्थात् परि  
चय करने के योग्य है । (अभिगच्छामो न चित्ता ! अम् एव पुरिसे)  
तो हे चित्र ! मैं इनके साथ परिचय करूँ ? (ह ता सामी ! अभिगच्छामो)  
हाँ स्वामिन् ! आप इनके साथ परिचय करें ।

इसका टीकाय इस मूल्या के जैसा ही है । 'कुपसपिपता भ्रम  
न विषय' पद में है इसका अर्थ जो मूल्या में लिखी जा चुका है—

॥ अक्षु ३२ छे तो शु आ पात आभी छे ? (ह ता सामी ! आहोहिय न वगमि  
भ्रमणीविषय न बयामी) हाँ स्वामिन् ! तु आभी पात ३२ छे, अक्षु  
अवधिसन्न परमावधि करवाँ बौद्ध ३२ छे अने जिल्लो 'प्रासुक' कोपक्षीय आहार  
अक्षु ३२ छे । (अभिगमणिज्जे न चित्ता ! एव पुरिसे) तो हे चित्र ! आ.पुरुष  
अभिगमनीय छे ओटले छे जोजण्य ३२वा योग्य छे (ह ता सामी ! अभिगमणिज्जे)  
हाँ स्वामिन् ! जेल्लो आपना आटे अभिगमनीय छे ओटले छे जोजण्य ३२वा योग्य छे  
(अभिगच्छामो न चित्ता ! अम् एव पुरिसे) तो हे चित्र ! जेल्लो आभी जोजण्य ३२  
(ह ता सामी अभिगच्छामो) हाँ स्वामिन् ! तब जेल्लो आभी जोजण्य ३२ छे

आ सूत्रो टीकार्थ मूल्या प्रमाणे ॥ छे विधेयता इव 'भ्रमणीविषय'  
अर्थ छे जानो जो अर्थ तो मूल्यार्थ ॥ लक्षणा आलो छे अने जिल्लो

अर्थोऽपि तत् एव बोध्यः । चतुर्जानोपगतः=मत्यादिज्ञानचतुष्टयसंपन्नः  
 अधोऽवधिकः=अधः=परमावधेरधोवर्ती अर्वाधर्यस्य स तथा--परमावधेः विश्व  
 द्रव्यनावधियुक्तः अन्नजीवित=अन्नेन=प्रासुकैवणीयान्नमात्रेण जीवितं=जीवनं  
 यस्य स तथा । तथा--'अन्यजीवितः' इति वा छाया तत्र-अन्यस्मै न तु  
 स्वस्मै सर्वविरतिमत्त्वात् जीवनमरणाशंसाविप्रमुक्तत्वाद्वा जीवितं=जीवन  
 यस्य स तथा, तादृशो वर्तते ! ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रं सारथि-  
 मेवमवादीत-हे चित्र ! अग्य मुनेस्त्वम् आधोऽवधिक्यम्=अधोऽवधित्वं वदसि=  
 त्वयं कथयसि ? तथा-अन्नजीवितत्वम् अन्यजीवितत्वं वाऽस्यमुने । हे चित्र !  
 त्वं सत्यं कथयसि ? इति पृच्छानन्तरं चित्र ! सारथिः प्राह-हे स्वामिन् !  
 'हन्त' इति स्वीकारे 'हँ' इति भाषायाम्, अग्य मुनेस्त्वम् आधोऽवधिक्य  
 खलु वदामि सत्यं कथयामि, तथा अन्नजीवितत्वम् अन्यजीवितत्वं वा वदामि=  
 त्वयं कथयामि। पुनः प्रदेशी राजा प्राह-हे चित्र ! एष पुरुषः किम् अस्माकम्  
 अभिगमनीयः=परिचययोग्योऽस्ति ? हन्त हे स्वामिन् ! एष मुनिः अभि-  
 गमनीयोऽस्ति। पुनः प्रदेशी राजापृच्छति एवं तर्हि हे चित्र ! एत पुरुषं वयम्  
 अभिगच्छाम । अनेन सह परिचयं कराम ? । चित्रः सारथिः प्राह-हन्त हे  
 स्वामिन् ! अभिगच्छाम=अनेन सह वयं परिचयं कराम ॥मू० १२७॥

मूलम्--तए णं से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं जेणेव  
 केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, केसिस्स कुमारसमणस्स अदूर-  
 सामंते ठिच्चा एव वयासी-तुब्भे णं भंते । आहोहिया अण्णं-  
 जीविया ? । तएणं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-  
 पएसी ! से जहाणामए अंकवाणियाइवा संखवाणियाइवा दंत-  
 वाणियाइवा सुंक भसिउकामा णो सम्म पथ पुच्छति, एवामेव  
 पएसी ! तुब्भेवि विणयं भंसेउकामो नो सम्मं पुच्छसि, से णूणं तव

और दूसरा अर्थ 'अन्यजीवित' इस छायापक्ष में ऐसा होता है कि  
 सर्वविरतियुक्त होने से अथवा जीवन मरण की आशंसा से रहित होने  
 से इनका जीवन दूसरों के लिये ही है अपने लिये नहीं ॥मू. १२७॥

अर्थ--'अन्यजीवित' आ 'छायापक्ष'भा आ प्रमाणे थाय छे. हे सर्वविरतियुक्त होवाथी  
 अथवा जीवनमरणनी अशंसाथी रहित होवाथी जेभन 'एवमजीवित' भाटे  
 न छे पोताना भाटे नहि. १२७ ॥

पपसी । मम पासित्ता अयमेयाकूचे अक्षरिधए जाय समुत्पजित्था  
जहा खलु भो ! जइ जुपवासति जाव पयियरित्थं से पूणं पपसी !  
अट्टे समत्थे ? हत्ता ! अत्थि ॥सू० १२८॥

छाया—तत्र खलु स पदमी रामा विभेन सारहिणा सार्धं यथैव  
कसो कुमारभ्रमणः तथैव उवागच्छति कश्चिन्तः कुमारभ्रमणस्य भद्रमा  
मन्ते स्थित्वा एवमवासीत्—युय खलु भद्रम् । अथोऽपिक्काः अनमी  
विताः । नतः खलु केशीकुमारभ्रमण पदेक्षिन राजानमेवमवासीत्—पदे  
क्षिन् ! तद्यथा नाम—भद्रवणिच् इति वा अक्षरणिज इति वा दन्तवणिज

‘तए ण से पपसी राया विभेन सारहिणा सद्धि इत्यादि ।

सुवार्थ—(तए ण) इसके बाद (से पपसी राया विभेन सारहिणा  
सद्धि) वह पदमी रामा विभेन सारहि क माय (जैनेव केसिकुमारसमणे  
तेणेव उवागच्छइ) जहां केशिकुमारभ्रमण व वहां पर गया (कामिस्स कुमा  
रसमयस्स भद्रसद्धि ठिक्का एव वयासी) वहां जाकर वह केशिकुमार  
भ्रमण से ऐसे स्थान पर खड़ा रह गया कि जो स्थान न उनसे अधिक  
दूर या और न अधिक पास था । वही स खड़े इसने उनसे देना कहा—  
(तुम्हारे ण भते ! आहोदिया अभयजीविया) हे भद्र ! आपका ज्ञान—य  
विज्ञान परमावधि से किन्ति न्यून है और आप प्राप्त पयगीव हा  
आहार करते है ? (तए ण केमीकुमारसमणे पपसि राय एव वयासी)  
तब केशी कुमार भ्रमणने पदेक्षी राजा से ऐसा कहा— परकी ! से ना  
नामप प्रकाति ॥ इ वा दागणिवाइ वा, सुक्क मत्तिउ कामा गो गद्धे

‘तए ण से पपसी राया विभेन सारहिणा सद्धि’ इत्यादि ।

समर्थ—(तए ण) त्वास्मिन् (से पपसी राया विभेन सारहिणा सद्धि)  
ते प्रदेशी सत्ता विभेन सारहिणी सद्धि (जैनेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ)  
जहां केशिकुमार भ्रमण उवा त्वा गच्छ (केसिस्स कुमारसमणस्स भद्रसद्धि  
ठिक्का एव वयासी) त्वां जहने ते केशिकुमार भ्रमणसे जेवा स्थाने उवा गच्छ  
इ ते स्थानं तेमनामी वयाइ इर यत्त नद्धि कटु जने वयाइ नल्ल पत्त नद्धि कटु  
त्वा उवा उवा व तेजे तेमने आ प्रयावे इत्त (तुम्हारे ण भते ! आहोदिया  
अभयजीविया) के कहत । अथत्त ज्ञान—परमावधि कहां बहुत कम है ? अन  
आप प्राप्त जेपगीव आहार व भद्रण कथा छि ? (तए ण केमीकुमारसमणे  
पपसि राय एव वयासी) त्वाइ केशिकुमार भ्रमणे प्रदेशी सत्ता व आ प्रयावे इत्त

इति वा, शुल्कं भ्रंशयितुकामा नो सम्यक् पन्थानं पृच्छन्ति, एवमेव प्रदेशिन् । त्वमपि विनय भ्रंशयितुकामा नो सम्यक् पृच्छसि, अथ नूनं तव प्रदेशिन् ! मां दृष्ट्वा अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः यावत् समुदपच्यत-जडाः खलु भो ! जडं पर्युपासते यावत् प्रविचरितुं स नूनं प्रदेशिन् ! अर्थः समर्थः ? हन्त ! अस्ति ॥ सू० १२८ ॥

पंथं पृच्छन्ति) हे प्रदेशिन् ! जैसे अंकरत्न के व्यापारी, अथवा शंखरत्न के व्यापारी, या दन्त के व्यापारी, -अर्थात् शंख शुभ भी होता है इसलिये उसको रत्न कहा है, राजदेय भाग को नहीं देने की इच्छा वाले होकर जाने के अच्छे मार्ग को नहीं पूछते हैं (एवामेव परसी तुम्हे वि यणं भंसेउकामो नो सम्मं पृच्छसि) इसी प्रकार से हे प्रदेशिन् ! विनयरूप प्रतिपत्ति को नहीं करने की कामना वाले बने हुए तुमने भी यह अच्छेरूप से नहीं पूछा है, (से णूणं तव परसी ममं पासित्ता अयमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) हे प्रदेशिन् ! मुझे देखकर तुम्हें इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प हुआ है (जहुँ खलु भो ! जहुँ पज्जुवासंति जाव पवियरित्तिए) जड पुरुष जड पुरुषों की पर्युपासना करते हैं यावत् मैं अपनी भी इस उद्यान भूमि में अच्छी तरह से घूम नहीं पा रहा हूँ (से णूणं परसी ! अट्ठे समत्थे ?) हे प्रदेशिन् ! कहो मैं ठीक कह रहा हूँ न ? (हंता, अत्थि) हाँ, आप ठीक कह रहे हैं।

(परसी ! से जहाणामए अंक्वाणियाइ वा, संखवाणियाइ वा, दंतवाणि-याइ वा, सुकं भंसिउकामा नो सम्मं पंथं पृच्छन्ति) हे प्रदेशिन् ! अंक् अंकरत्नना, वडेपारी, के शंखरत्नना वडेपारी के दन्तना वडेपारी (शंख शुभ पणु गणाय छ तेथी अड्डी) तेने रत्नइये उल्लेखवाभां आय्यो छ) राजकर आपवानी धम्मा ने धरावता त्यांथी जवाना सारा भागो भाटे पूछपरछ करता नथी (एवामेव परसी तुम्हे वि वि यणं भंसेउकामो नो सम्मं पृच्छसि) आ प्रभावे हे प्रदेशिन् ! विनयइय प्रतिपत्तिने न आयरतां तमेय्ये पणु आ वान शिष्टमावथी-नम्रताथी-पूछी नथी, (से णूणं तव परसी ममं पासित्ता अयमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) हे प्रदेशिन् ! मने जेधने तमने आ प्रभावेना आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न थयो छ के (जहुँ खलु भो ! जहुँ पज्जुवासंति जाव पवियरित्तिए) जड पुरुषो जडने सेवे छ यावत् हुं आ भारी यो पानी उद्यान भूमिमा पणु सारी रीते आरामथी करी शकतो नथी, (से णूणं परसी ! अट्ठे समत्थे ?) हे प्रदेशिन् ! जावे हुं पराणर कहुं छं ने ? (हंता, अत्थि) हाँ, आप ठीक कहो छ।



टीका—‘तएण से पणमी’ इत्यादि—तत् खलु म प्रदशो रामा  
 त्रिभेण सारपिना सार्धं यत्रैव केसीकुमारभ्रमणस्तत्रैवोपागच्छति=समाग  
 च्छति, केशिनः कुमारभ्रमणस्य भद्ररसामन्ते=नातिदूरे नातिसमीपे स्थित्वा  
 अनुपविष्येव एवमवादीत्—पूय खलु हे भद्रन्त अथोऽवधिकाः—अथोऽव  
 पितम्पनाः ? भन्नजोबिताः—प्राप्तुकैपणीयान्नमात्रं चित्तं अन्यप्रीतिनो वा !  
 तत् खलु केसीकुमारभ्रमणं प्रदेक्षिनं राजानमेवमवादीत्—हे प्रदेक्षिन् !  
 तद्वयथा इति दृष्ट्वा ते, नामेति वाक्यान्महारे, अर्हैषणिजः=महूरत्नव्यापा  
 रिणः ‘इति’ वाक्यान्महारे ‘वा’ समुच्चये, अष्टत्रिणिजः=अष्टत्रिणव्यापारिणः,  
 दन्तवणिजः=हस्तिदन्तव्यापारिणः उपलसणास्तत्र रत्नव्यापारिणः भूत्क=  
 रामदेव मागं अश्रयितुकामाः=अदातुकामा नो सम्पदः=समीचीनतया  
 पन्थानः=गम्यमार्गं पृच्छति, एवमेव=अन्यैव रीत्या हे प्रदेक्षिन् ! त्वमपि  
 विनयः=प्रतिपत्तिरूपं अश्रयितुकामः=अकर्णुकाम नो सम्पदः पृच्छति ‘अथ=  
 वाक्पारम्मे नून’=निश्चयेन हे प्रदेक्षिन् ! तत्र मा दृष्ट्वा अयमेतद्वयः=वक्ष्यमा  
 णमकारकं आध्यात्मिकः आत्मगतः यावत् कल्पितः प्रार्थितः चिन्तितः  
 मनोगतः=मनः-स्थितः सकल्पः=विचारः समुपपद्यतः=समुत्पन्नः, एवमेव  
 धर्ति-महाःखलु मो ! अहं पर्युपास्ते यावत् प्रविचरितुम्, यावत्प्रसंगेप्राप्ताः  
 ‘सर्वोऽपि पाठः पूर्णगतः, स / तद्वयं तत् एवमलोकनीयः । हे प्रदेक्षिन् !  
 सोऽर्थः=समुक्तस्पर्द्धवृत्तविचाररूपोऽर्थः नून’=निश्चितः ‘समर्थो=वास्तविको  
 वृत्ते’ ? प्रदेक्षी राजा प्राह—हन्त ! अस्ति=अयमर्थः-समर्थाऽस्ति, सायं  
 मस्तीति मायः ॥ सू० १२८ ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है यहाँ ‘इति’ शब्द वाक्यान्कार में और ‘वा’  
 शब्द समुच्चय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तथा ‘तद् वयं’ पद दृष्टान्त में  
 आया है। उपलसण से यहाँ समस्त रत्न व्यापारी को घ्राण करना चाहिये यावत्  
 तत् से सकल्प के कल्पित, प्रार्थित, चिन्तित और मनोगत’ ये विशेषण  
 प्रहस्य किये गये हैं। तथा—‘पञ्जुवासति माय’ के यावत् पद से पूर्णगत  
 ‘समस्त पाठ श्रुति हुआ है। यह पाठ १२६वे सूत्र में प्रकट किया गया है। सू० १२८।

टीका—आ सूत्रेण टीकार्थ स्पष्ट अ है अर्थात् ‘इति’ शब्द वाक्यान्कार  
 केरमां अने ‘वा’ शब्द समुच्चय अर्थार्थ वचनार्थ है। तेषां ‘तद् वयं’ पद  
 दृष्टान्तार्थ आने अ है उपलसण अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात्  
 समस्त अर्थात् यावत् पदार्थ सकल्पना कल्पित, प्रार्थित, चिन्तित अने भवेत्तत्  
 के विशेषण अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात्  
 समस्त पाठ अर्थात् समस्त अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात्  
 सू० १२८।

मूलम्--तएणं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी  
मे केणं भंते ! तुज्झं नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्झे मम एयारूवं  
अज्जत्थियं जाव संकप्पं समुप्पणं जाणह पासह ? तएणं से, केसी  
कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-एवं खलु पएसि ! अम्हं सम-  
णाणं निग्गंथाणं पंचविहे नाणे पणत्ते, तं जहा-आभिणिबोहिय-  
णाणे १ सुयणाणे २ ओहिणाणे ३ मणपज्जवमाणे ४ केवलणाणे ५ ५ ।  
से किं तं आभिणिबोहियनाणे ? आभिणिबोहियनाणे चउव्विहे पणत्ते,  
तं जहा-उग्गहे १ ईहा २ अवाए ३ धारणा ४ । से किं तं उग्गहे ? उग्गहे  
दुविहे पणत्ते, जहा नंदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिणिबो-  
हियणाणे । से किं तं सुयनाणे ? सुयनाणे दुविहे पणत्ते-अंगपविट्ठं  
च अंगवाहिरियं च, सव्वं भाणियव्वं जाव दिट्ठिवाओ । ओहिणाणं  
भवपच्चइयखाओवसमियं जहा नंदीए मणपज्जवनाणे दुविहे पणत्ते,  
तां जहा-उज्जुमई य विउलमई य, तहेव केवलनाणं सव्व भाणि-  
यव्व । तत्थ णं जे से आभिणिबोहिनाणे, से णं मम अत्थि । तत्थ णं  
जे से सुयणाणे से वि य ममं अत्थि । तत्थ णं जे से ओहिणाणे से  
वि य ममं अत्थि । तत्थ णं जे से मणपज्जवनाणे से वि य मम  
अत्थि । तत्थ णं जे से केवलनाणे से णं ममं नत्थि, से णं अरि-  
हंताणं भगवताणं । इच्चेएणं पएसी । अह तव चउव्विहेणं छाउ-  
मत्थिएणं णाणेणं इमेयारूवं अज्जत्थियं जाव संकप्पं समुप्पणं  
जाणामि-पासामि ॥ सू. १२९ ॥

छाया—तव स्वसु ॥ प्रवेशी राजा केसिन कुमारधर्मणम् परमवा-  
दीत्-तर्त्तिक स्वसु मदन्त । युष्माक ज्ञान ना दर्शन ना, येन पूय मम  
एतद्विषयम् आध्यात्मिक यावत् सकल्प समुत्पन्न जानीय पश्यथ ? तदा  
सख स केसीकुमारधर्मणः प्रवेशिन रामान एवमवादीत् एव स्वसु प्रवे-  
शिनः । अस्माक धर्मणानां निर्ग्रन्थानां पञ्चविधं ज्ञानं प्रकृतम्, तद्यथा-  
आमिनिषोधिकज्ञानम् १, भूतज्ञानम् २, अवधिज्ञानम् ३, मनःपर्यवज्ञानम् ४,  
केवलज्ञानम् ५ । अथ किं तद्य आमिनिषोधिकज्ञानम् ? आमिनिषोधिकज्ञानं

‘त एष से पपसी राया’ इति’ इत्यादि ।

सुधार्थ—(त एष से पपसी राया केसि कुमारसमण एव वयासी)  
हुमा वस प्रवेशी राजाने केसी कुमारधर्मण से ऐसा कहा—(से केव  
भते ! तुम्हारे, नाणे वा दसणे वा जेण तुम्हारे मम एवाकन अक  
रिष्य जाव सकल्प समुत्पन्न आणह पासह ?) हे मदन्त ! ऐसा आपका  
वह कौनसा ज्ञान अवधवा दर्शन है कि जिसके द्वारा आपने मेरे इस  
व्युत्पन्न हुए आध्यात्मिक यावत् मनोगत सकल्प को जाना है, और देखा है  
(त एष से केसी कुमारसमणे पपसी राय एव वयासी) तब केसीकुमार  
धर्मणमे वस प्रवेशी राजा से ऐसा कहा—(एव स्वसु पपसी अम् सम  
णम् पिग्गयाण पचविहे नाण पञ्चत्तं महा-आमिनिषोदियमाणे, सुय  
माणे, ओहिनाणे, मणपज्जयमाणे केवलमाणे) हे प्रवेशिन ! हम अम्म निर्ग्रन्थों  
के मत में पांच प्रकार के ज्ञान कहे गये हैं जैसे आमिनिषोधिकज्ञान, भूतज्ञान  
भूतज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान (से किं तं आमिणि,

‘त एष से पपसी राया’ इत्यादि ।

सुधार्थ—(त एष से पपसी राया कसि कुमारसमण एव वयासी) इसी  
ते प्रवेशी राजाने केसीकुमारधर्मणसे आ प्रभावे अहं के (से कव म ते ! तुम्हारे  
बाणे वा दसणे वा जेण तुम्हारे मम एवाकन अकस्मत्तिष्य जाव सकल्प  
समुत्पन्न आणह पासह ?) हे मदन्त ! आपकी पक्ष से ओरु अहं व्युत्पन्न रहन के  
दर्शन है के केनामते आप आशमा उत्पन्न किये आध्यात्मिक यावत् मनोगत सकल्पने  
अहं अथा हे, अने ओह अथा हे (त एष से केसीकुमारसमणे पपसी  
राय एव वयासी) तब केसीकुमारधर्मण ते प्रवेशी राजाने आ प्रभावे अहं-  
(एव स्वसु पपसी) अम् समणाय पिग्गयाण पचविहे नाणे पञ्चत्तं त  
जहा-आमिनिषोदियमाणे सुयमाणे ओहिनाणे, मणपज्जयमाणे केवलमाणे)  
हे प्रवेशिन ! अम्म अम्म निज-माना भतमां भाव आशरणा रहन अहंवाये आना

ચતુર્વિધં પ્રજ્ઞસં, તદ્વથા-અવગ્રહઃ ? ૧, ર્દ્દા ૨, અવાયઃ ૩, ધારણા ૪।  
અથ કોઽસૌ અવગ્રહઃ અવગ્રહો દ્વિવિધઃ પ્રજ્ઞસઃ યથા નન્ધા યાવત્ સૈષા  
ધારણા, તદેતદ્, આમિનિબોધિકજ્ઞાનમ્। અથ કિં તત્ શ્રુતજ્ઞાનમ્? શ્રુતજ્ઞાનં  
દ્વિવિધં પ્રજ્ઞસં, તદ્વથા-અગ્નપ્રવિષ્ટં ચ અગ્નિવાહર્ય ચ, સર્વં ભણિતવ્યં યાવત્-  
દૃષ્ટિવાદઃ। અવધિજ્ઞાનં ભવપ્રત્યયિકં ક્ષાયોપશમિકં યથા નન્ધામ્ (નં. પૃ.

વોહિયનાળે) હે ભદન્ત ! આમિનિબોધિકજ્ઞાન કા કયા સ્વરૂપ હૈ ? (આમિનિ-  
વોહિયનાળે ચઠન્વિહે પળ્લત્તે) હે પ્રદેશિન્ ! આમિનિબોધિકજ્ઞાન ચાર પ્રકાર  
કા કહા ગયા હૈ (તં જહા-ઊગ્ગહે ? ર્દ્દા ૨ અવાય ૩ ધારણા ૪) જૈસે-  
અવગ્રહ. ર્દ્દા, અવાય ઓર ધારણા। (સે કિં ત ઊગ્ગહે) હે ભદન્ત ! અવગ્રહ  
જ્ઞાન કા કયા સ્વરૂપ હૈ (જહા નદીયે જાવ સે તં ધારણા, સે તં આમિનિ  
વોહિયનાળે) અવગ્રહ સે લેકર ધારણાપર્યન્ત સર્વ વિવેચન નન્દીસૂત્ર મેં  
કહા ગયા હૈ, ઇસ પ્રકાર વહ આમિનિબોધિકજ્ઞાન કા સ્વરૂપ હૈ। (સે કિં  
તં સુચનાળે) હે ભદન્ત ! શ્રુતજ્ઞાન કા કયા સ્વરૂપ હૈ ? (સુચનાળે દુવિહે-  
પળ્લત્તે) હે પ્રદેશિન્ ! શ્રુતજ્ઞાન દો પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ। (તં જહા-  
અગ્નપ્રવિષ્ટં ચ અગ્નિવાહરિયં ચ) જૈસે-અગ્નપ્રવિષ્ટ ઓર અગ્નિવાહર્ય (સર્વં ભણિ  
યન્ત્વાં જાવ દિદ્ધિવાઓ) ઇન દોનોં શ્રુતજ્ઞાનોં કા વર્ણન મી નન્દીસૂત્ર મેં કહા ગયા  
હૈ અતઃ દૃષ્ટિવાદ તરુ શ્રુતજ્ઞાન કા સમસ્ત વર્ણન વહાં સે દેખનાં ચાહિયે,  
(ઓહિનાળં ભવપ્રત્યયિકં ક્ષાયોપશમિકં જહા નદીયે) અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યયિક

છે. જેમકે આલિનિબોધિકજ્ઞાન, મતિજ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન, મન પર્યવજ્ઞાન અને કેવલજ્ઞાન.  
(સે કિં ત આમિનિવોહિયનાળે) હે ભદન્ત ! આલિનિબોધિક જ્ઞાનતું સ્વરૂપ કેવું  
છે ? (આમિનિવોહિયનાળે ચઠન્વિહે પળ્લત્તે) હે પ્રદેશિન્ ! આલિનિબોધિકજ્ઞાન  
ચાર પ્રકારતું કહેવાય છે (તં જહા-ઊગ્ગહે ? ર્દ્દા ૨ અવાય ૩ ધારણા ૪) જેમકે  
અવગ્રહ ૧, ઈહા ૨, અવાય ૩, અને ધારણા ૪. (સે કિં ત ઊગ્ગહે) હે ભદન્ત ! અવગ્રહ  
જ્ઞાનતું સ્વરૂપ કેવું છે ? (ઊગ્ગહે દુવિહે પળ્લત્તે) હે પ્રદેશિન્ અવગ્રહ જ્ઞાન બે પ્રકાર  
તું કહેવાય છે. (જહા નદીયે જાવ સે તં ધારણા, સે તં આમિનિવોહિયનાળે)  
અવગ્રહથી માહીને ધારણા સુધીતું સમસ્ત વિવેચન નદીસૂત્રમા સ્પષ્ટ કરવામાં  
આવ્યું છે આ પ્રમાણે આ આલિનિબોધિકજ્ઞાનતું સ્વરૂપ છે ? (સે કિં ત સુચનાળે)  
હે ભદન્ત ! શ્રુતજ્ઞાનતું સ્વરૂપ કેવું છે ? (સુચનાળે દુવિહે પળ્લત્તે) હે પ્રદેશિન્ !  
શ્રુતજ્ઞાન બે પ્રકારતું છે (તં જહા અગ્નપ્રવિષ્ટ ચ અગ્નિવાહરિય ચ) જેમકે અગ્ન  
પ્રવિષ્ટ અગ્નિવાહર્ય (સર્વં ભણિયન્ત્વાં જાવ દિદ્ધિવાઓ) આ બન્ને શ્રુતજ્ઞાનોતું વર્ણન  
પણ નન્દીસૂત્રમા કરવામાં આવ્યું છે તેથી દૃષ્ટિવાદ સુધી શ્રુતજ્ઞાનતું બધું વર્ણન  
ત્યાથી જ બોલી દેવું બેઠ્યું (ઓહિનાળં ભવપ્રત્યયિકં ક્ષાયોપશમિકં જહા નદીયે)

१६८ प ४)। मनःपर्यवज्ञान द्विविध मङ्गल, तद्यथा—ऋजुमतिश्च विपुल  
मतिश्च तथैव केवलज्ञान सर्वं भागिन्यम्। तत्र खलु यस्तत् मामिनिबोधि  
कज्ञान तत्खलु ममास्ति १। तत्र खलु यस्तत् भुतज्ञान तदपि च ममास्ति २।  
तत्र खलु यस्तत् अवधिज्ञान तदपि च ममास्ति ३। तत्र खलु यस्तत्  
मनःपर्यवज्ञान तदपि च ममास्ति ४। तत्र खलु यस्तत् केवलज्ञान तत्  
खलु मम नास्ति, तत् खलु महतां भगवताम्। इत्येतेन प्रदर्शितम्। अहं तव  
चतुर्विधेन छाद्यस्थिकेन ज्ञानेन एतमेतद्भूषम् आप्यास्मिन् यावन् संकल्पं  
उत्पन्नं जानामि पश्यामि ॥ सू० १-९ ॥

और क्षायोपशमिके के दो प्रकार का कहा गया है। इसका भी  
पूर्ण नन्दीसूत्र में किया गया है। (मणपञ्चनाने दुर्विहोपपन्ने) मन पर्यव  
ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है (त जहा—उज्जुमईय विज्जमईय)—ऋजु  
मति और विपुलमति, (तद्देव केवलज्ञानं सर्वं भागिन्यम्) इसी प्रकार  
केवलज्ञान का वचन भी यहाँ पर करना चाहिये (तस्य न जे से भागि  
नेबोदियनाने से न मम अस्ति) इन पाँच शानों में स मुझे मतिज्ञान  
हय भागिनिबोधिज्ञान है। (तस्य न जे से भुयनाने से वि य मम अस्ति)  
भुतज्ञान भी है (भोदियनाने से वि य मम अस्ति) अवधिज्ञान भी है।  
तस्य न जे से मणपञ्चनाने से वि य मम अस्ति) और मुझे मनः  
पर्यवज्ञान भी है। (तस्य न जे से कवलज्ञाने से न मम अस्ति) केवल  
ज्ञान मुझे नहीं है (से न अग्निताण भगवताण) यह केवलज्ञान अर्हन्त  
भगवन्तों के होता है। (इच्छेण पशमी ! अहं तव चतुर्विधेन छाद्य

मविज्ञानं अवप्रत्यक्षि) अने क्षायोपशमिके के दो प्रकार के भेदों का है। उज्जु  
मति पक्ष नन्दीसूत्र में अस्ति। (मणपञ्चनाने, दुर्विहोपपन्ने)  
मनः पर्यवज्ञान के प्रकार के भेदों का है (त जहा उज्जुमईय विज्जमईय)  
ऋजुमति अने विपुलमति (तद्देव केवलज्ञानं सर्वं भागिन्यम्) आ प्रमाद  
४ केवलज्ञानं यावन् यावन् यावन् यावन् (तस्य न जे से भागिनिबोदियनाने से  
न मम अस्ति) आ यावन् जानोमाथी अने भुतज्ञानं भागिनिबोधिज्ञान है  
(तस्य न जे से भुयनाने से वि य मम अस्ति) भुतज्ञान पक्ष है (भोदिय  
नाने से वि य मम अस्ति) अवधिज्ञान पक्ष है (तस्य न जे से मणपञ्चन  
नाने से वि य मम अस्ति) अने मनःपर्यवज्ञान पक्ष है (तस्य न जे से  
केवलज्ञाने से न मम अस्ति) परन्तु अने केवलज्ञान नहीं (से न अग्निताण  
भगवताण) आ केवलज्ञान अर्हन्त भगवन्तों के होता है। (इच्छेण पशमी !  
अहं तव चतुर्विधेन छाद्यमपि पणानेण इमं पारं अज्ज्ञानं जाय स कल्प

टीका--'तए ण से पएसी' इत्यादि--ततः खलु स प्रदेशी राजा  
 केशिनं कुमारश्रमणसू एवमवादीत्-तत् किम्=कीदृशं खलु हे भदन्त !  
 युष्माकं ज्ञानं वा दर्शनं वा अस्ति येन ज्ञानेन वा दर्शनेन वा यूयं मम  
 एतद्रूपं=पूर्वोक्तप्रकारम् आध्यात्मिकम्=आत्मगतविचारम् यावत् संकल्पम्,  
 यावच्छब्देन-चिन्तितं, कल्पितं, प्रार्थितं मनोगतम्, इति संग्राह्यम्, संकल्पं=समु  
 त्पन्नं=समुद्भूतं जानीथ=ज्ञानविषयीकुरुथ पश्यथ=दर्शनविषयीकुरुथ। ततः=प्रदेशि  
 राजप्रश्नान्तरं खलु स केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवमवादीत्-  
 एवं खलु हे प्रदेशिन ! अस्माकं श्रमणानां निर्गन्धानां पञ्चविधं ज्ञानं  
 प्रज्ञप्तं, तद्यथा-आभिनिबोधिकज्ञानम् १ श्रुतज्ञानम् २, अवधिज्ञानम् ३,  
 मनःपर्यवज्ञानम् ४, केवलज्ञानम् ५। तत्र-आभिनिबोधिकज्ञानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं,  
 न था-अवग्रहः १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४। अथ कोऽसौ अवग्रहः !

स्थिष्णं णाणेणं इमेयारूढं अज्झत्थियं जाव संकप्पं समुत्पण्णं जाणामि पासामि)  
 इस तरह से हे प्रदेशिन मैंने इन छाक्कस्थिक चतुर्विधज्ञान के द्वारा तुम्हारे  
 इस प्रकार के समुत्पन्न हुए इस संकल्प को जान लिया है और देख लिया है।

टीकार्थ--इसके बाद प्रदेशी राजाने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार  
 कहा-हे भदन्त ? आपका ज्ञान दर्शन किस प्रकार का है कि जिससे आपने  
 मेरे उत्पन्न हुए इस प्रकार के आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित  
 एवं मनोगत इस संकल्प को जान लिया है, और देख लिया है ? इस  
 प्रकार के प्रदेशी राजा के पूछने पर केशीकुमारश्रमणने उससे ऐसा  
 कहा-हे प्रदेशिन ! श्रमणनिर्गन्थों का ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है,  
 अभिनिबोधिकज्ञान १, श्रुतज्ञान २, अवधिज्ञान ३, मनःपर्यवज्ञान ४, और  
 केवलज्ञान ५. इनमें आभिनिबोधिकज्ञान-अवग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा के

समुत्पण्ण जाणामि पासामि) आ प्रमाणे हे प्रदेशिन ! मे आ छाक्कस्थिक आर  
 प्रकारना ज्ञानो वडे तमारामा समुत्पन्न थयेस सकट्ठेण णण्णी लं घो छि अने जेधवीघो छि.

टीकार्थ --त्यारपछी प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमणने आ प्रमाणे कहुं के हे  
 लदन्त ! आपनु ज्ञानदर्शन कथं ज्ञातनु छे. के जेथी आपे भारामां उत्पन्न थयेस  
 आध्यात्मिक चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित अने मनोगत आ सकट्ठेण णण्णी गया छि  
 अने जेध गया छि ? आ प्रमाणे प्रदेशी राजाना प्रश्नने सालणीने केशीकुमार श्रमणे  
 तेमने आ रीते कहुं के 'हे' प्रदेशिन ! श्रमणु निश्चयोतु ज्ञान पाय प्रकारतु कहेवाय  
 छे. आभिनिबोधिकज्ञान १, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ३, मनःपर्यवज्ञान ४, अने केवलज्ञान  
 ५, आमा आभिनिबोधिकज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय अने धारणा लेहोथी आर

इति प्रश्ने आह—अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः यथा नर्थायापत्तौ सैषा धारणा= अवग्रहादारभ्य धारणापर्यन्त सर्वमाभिनिषोषिकज्ञानविवरण नन्दीसूत्रे विष्टो कनीयम् । अर्थस्तु नन्दीसूत्रस्य मत्कृतज्ञानचन्द्रिका टीकातो बोध्यः । तदेतद् आभिनिषोषिकज्ञानम् । अथ किं तत् श्रुतज्ञानम् ? श्रुतज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तदप्या—अहमपिष्टम् । अहमपिष्टं च सर्वं=श्रुतज्ञानविषयक सर्वं विवरणं मणितन्त्र्यं= नन्दीसूत्रोक्तमवग्रहं पठितव्यं, यावत्—इष्टिषाद्=इष्टिषादविवरणपर्यन्तमिति । अवग्रहज्ञानं—मयप्रत्ययिक साधोपशमिक चेति द्विविधं, यथा नन्दा=नन्दीसूत्रे यथाकथितं तथैव सर्वं विज्ञेयम् । अप्येऽपि तत्रैव मत्कृतं ज्ञानचन्द्रिकाटीकायामवग्रहोक्तनीयः । मनःपर्यवज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तदप्या—

मेद से चार प्रकार का कहा गया है अवग्रह का स्वरूप क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में केसिकुमारभ्रमण ने कहा कि अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह के मेद से अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है नन्दीसूत्र में अवग्रह से लेकर धारणा तकका पूरा विषय 'अभिनिषोषिकज्ञान के विवरणप्रकरण में' पड़ता ही सुंदर ढंग से स्पष्ट किया गया है । नन्दीसूत्र के ऊपर हमने 'ज्ञानचन्द्रिका' नाम की टीका लिखी है उसमें यह सब विषय स्पष्ट रूप से समझाया गया है अतः विशेष निहाय इस विषय को यहां से हटाने से । श्रुतज्ञान भी अहमपिष्ट और अहमपिष्ट के मेद से दो प्रकार का कहा गया है इस विषय का भी स्पष्टीकरण नन्दीसूत्र में किया जा चुका है । मयप्रत्ययिक अवधि और साधोपशमिक अवधि इस प्रकार से अवधिज्ञान दो तरह का कहा गया है । इनका भी वर्णन वहीं पर किया गया है कृपया

प्रश्नस्तु कदेवायं वि अवग्रहस्तु स्वरूपं केन वि ? आ ज्ञानं प्रश्नना उत्तरं केसिकुमार भ्रमण के अर्थावग्रह ज्ञाने व्यञ्जनावग्रह ज्ञाने अवग्रह ज्ञाने प्रश्न कदेवायं वि नदीसूत्रं अवग्रहं भांति धारणा सुधीनी संपूर्ण विज्ञेय आभिनिषोषिक-ज्ञान विवरण प्रकरणं भूतं सारी रीति स्पष्ट करवाया जाय वि । नदीसूत्रं अभिज्ञे 'ज्ञानचन्द्रिका' नाम टीका ली वि तेभा अर्थ ली जायतेनु सविस्तर स्पष्टीकरण करवाया जाय वि तेभी विशेष निहाय सज्जना त्वाधीन वांछना बल है, श्रुतज्ञान पक्ष आज प्रविष्ट ज्ञाने आज जाहाना बोधनी वि प्रश्नस्तु कदेवायं वि आ ज्ञानं स्पष्टीकरण पक्ष नदीसूत्रं करवाया जाय वि ज्ञान प्रत्ययिक अवधि ज्ञाने साधोपशमिक अवधि आ प्रमाणे अवधिज्ञान वि प्रश्नस्तु कदेवायं वि आ विज्ञेय विषय तत्त्व करवाया जाय वि ज्ञानमति ज्ञाने विपुलमतिना बोधनी भन पञ्चवर्ग ज्ञान वि प्रश्नस्तु कदेवायं वि आ विज्ञेय सुभस्त विवरण नदीसूत्रं भांति ली

કુજુમતિશ્ચ । વિપુલમતિશ્ચ । અમ્યાપ સર્વ વિવરણં નન્દીમૂત્રે દ્રષ્ટવ્યમ્ ।  
તથૈવ=નન્દીમૂત્રોક્તપ્રકારેણૈવ કેવલજ્ઞાનં=કેવલજ્ઞાનવિવરણં સર્વ મણિતવ્યમ્ ।  
તત્ર=તેષુ પઞ્ચસુ જ્ઞાનેષુ સ્વલુ પચ્ચદ્ આમિનિવોધિકજ્ઞાન તત્ સ્વલુ મમાસ્તિ ।  
एवं ॥ ૧ ॥ તજ્ઞાનમ્ ૨, અવધિજ્ઞાનમ્ ૩, મનઃપર્યવજ્ઞાન ૪ ચેતિ જ્ઞાન-  
ચતુષ્ટયં મમાસ્તિ । તત્ર=તેષુ પઞ્ચસુ જ્ઞાનેષુ યત્તત્ દોનલજ્ઞાનં તત્ યમ નાસ્તિ=  
ન વિચિતે તત્=કેવલજ્ઞાનં સ્વલુ અર્હતાં મગયતાં મયતિ નાન્યેષામિતિ । इत्ये-  
तेन=પૂર્વોક્તેન કારણેન હે પ્રદેશિન ! રાજન્ ! અહં ચતુર્વિધેન=ચતુષ્પ્રકારકેન-  
છાગ્રસ્થિકેન=છાગ્રસ્થસ્વસ્થનિધના જ્ઞાનેન તત્ર યત્તમ્ યત્તપ્તમ્=ત્વદન્તઃકરણસ્થમ્-  
આધ્યાત્મિક યાવત્ સંકલ્પ=મનોગત સંકલ્પ મયુત્પન્ન જ્ઞાનામિ પશ્યામિસુ. ૧૨૯ ॥

મૂલમ્-તણ ણં સે પણ્ણી રાયા કેસિકુમારસમણં एवं વયાસી-

अहं णं भंते ! इहं उवविस्सामि १-पण्णी । साए उज्जाणभूमीए तुमंसी  
चेव जाणए, तए णं से पण्णी राया चित्ते णं सारहिणां सद्धिं केसि-  
स्स कुमारसमणस्स अदूरसामंते उवविसइ, केसिकुमारसमणं एवं  
वयासी तुब्भे णं भंते ! समणाणं णिग्गंथाणं एसा सण्णा एसा पइ-  
ण्णा एसा दिट्ठी एसा रुई एस हेऊ एस उवएसे संकप्पे एसा

મતિ ઓર વિપુલમતિ કે ભેદ સે મનઃપર્યવજ્ઞાન ન્દી પ્રકાર કા કહા ગયા  
હૈ । इसका समस्त विवरण नन्दीमूत्र से जानने योग्य है । इसी प्रकार  
केवलज्ञान विषयक समस्त कथन भी वहीं से जानना चाहिये । इहं प्रदर्शित पांच  
ज्ञानों में से मुझे चारज्ञान प्राप्त हैं, आमिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि-  
ज्ञान, एवं मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान मुझे नहीं है, यह ज्ञान अर्हन्त भग-  
वन्तों को ही होता है । अतः हे प्रदेशिन ! मैं इन चार छागस्थिक ज्ञान  
से उत्पन्न हुए इस तुम्हारे अन्तःकरणस्थ आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प  
को जान गया हूं और देख चुका हू ॥ सू. १२९ ॥

લેવું ભેદથી આ પ્રમાણે કેવલજ્ઞાન વિષયક સમસ્ત કથન પણ ત્યાંથી જ જાણી લેવું  
ભેદથી ઉપર જણાવેલ પાંચ જ્ઞાનોમાથી મને ચાર જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયેલ છે 'અભિનિ-  
વોધિકજ્ઞાન, (મતિજ્ઞાન) શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન અને મન પર્યવજ્ઞાન મને કેવલજ્ઞાન  
પ્રાપ્ત થયેલ નથી. આ જ્ઞાન અર્હન્ત લગવતોને જ હોય છે એથી હે પ્રદેશિન !  
હું આ ચાર છાગ્રસ્થિક જ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થયેલ તમારા આ અન્તઃકરણસ્થ આધ્યાત્મિક  
યાવત મનોગત સંકલ્પને જાણી ગયો છું અને જોઈ ગયો છું. ॥ સુ. ૧૨૯ ॥



इति प्रश्ने याह-अवग्रहो द्विविधः पश्यन् यथा नान्यायास्त तेषां धारणा-  
अवग्रहादारभ्य धारणापयन्त सर्वमाभिनिषोषिकशास्त्रिवरण नन्दीमुत्रे विष्टो  
कनीयम् । अर्थस्तु नन्दीमुत्रस्य मत्कृतज्ञानचन्द्रिका टीकातो घोष्यः । तदेतद्  
आमिनिषोषिकज्ञानम् । अथ किं तत् भुतज्ञानम् ? भुतज्ञानं द्विविधं प्रकृत्य,  
तपसा-अहमपिष्टम् १' अहम्याह च सर्व-भुतज्ञानविषयक सर्व विवरण  
मभितर्यम् = नन्दीमुखोक्तमेवात्र पठितव्यं, यावत्-इष्टिवादः=इष्टिवात्तव  
रूपपर्यन्तमिति । अवधिज्ञानं-मयमत्यधिक साधोपशमिक चेति द्विविधं, यथा  
नन्दां=नन्दीमुत्रे यथाकथित तथैव सर्वं विज्ञेयम् । अर्थोऽपि तत्रैव मत्कृतं  
ज्ञानचन्द्रिकाटीकायामवबोक्तीयः । मनापर्यवज्ञानं द्विविधं प्रकृत्य, तद्व्या-

મેદ સે ચાર પ્રકાર કા કહા ગયા છે અવગ્રહ કા સ્વરૂપ કયા છે ? ફલ  
પ્રશ્ન કે ઉત્તર મેં કેશિકુમારઅમળ ને કહા કે અર્ધાવગ્રહ ઔર વ્યવજ-  
માવગ્રહ કે મેદ સે અવગ્રહ દો પ્રકાર કા કહા ગયા છે નન્દીમુખ મેં અવગ્રહ  
સે હેકર ધારમા તકકા પૂજ વિષયે ૫ 'મિનિષોષિકજ્ઞાન કે વિવરણપ્રકારન મેં  
બહુત હી સુદર ઢગ સે સ્પષ્ટ કિયો ગયા છે । નન્દીમુખ કે ઉપર હમને  
જ્ઞાનચન્દ્રિકા નામ કી ટીકા લિખી છે તસમેં યહ સબ વિષય સ્પષ્ટ  
રૂપ સે સમજાયા ગયા છે અઠાવિશેષ જિજ્ઞાસુ હસ વિષય કો ઘાં સે હેસ  
હેરે । ભુતજ્ઞાન મી અહમપિષ્ટ ઔર અહિવાદ કે મેદ સે હો પ્રકાર કો  
કહા ગયા છે હસ વિષય કા મી સ્પષ્ટીકરણ નન્દીમુખ મેં કિયા ગાજુકા  
છે । મયમત્યયિક અવધિ ઔર સાધોપશમિકઅવધિ હસ પ્રકાર સે અવધિજ્ઞાન  
દો તરફ કા કહા ગયા છે । ફનકામી વર્ગન ઘીં પર કિયા ગયા છે । જરૂર

પ્રકારતુ કહેવાય છે અવગ્રહતુ સ્વરૂપ કેવુ છે ? આ બંધના પ્રશ્નના ઉત્તરમાં કેશિકુ-  
માર અમળે કહ્યું કે અર્ધાવગ્રહ અને વ્યવજાવગ્રહના કોઈથી અવગ્રહના બે પ્રકાર  
કહેવાય છે; નંદીસુત્રમાં અવગ્રહથી માંડીને ખાસજી સુધીની સંપૂર્ણ વિવરણ આમિનિ-  
ષોષિકજ્ઞાનના વિવરણ પ્રકરણમાં જૂજ સાચી રીતે સ્વ્ય કરવામાં આવી છે. નંદીસુત્રની  
અભાવે 'જ્ઞાનચન્દ્રિકા' નામે ટીકા લખી છે તેમાં આ બધી બાબતોતુ સવિસ્તાર  
સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આંચુ છે તેથી વિશેષ જિજ્ઞાસુ સંબંધને ત્યાંથી જ વાંચવા લાન  
કરે, ભુતજ્ઞાન પણ અજ પ્રવિષ્ટ અને અજ બાહ્યના કોઈથી બે પ્રકારતુ કહેવાય છે.  
આ બાબતતુ સ્પષ્ટીકરણ પણ નંદીસુત્રમાં કરવામાં આંચુ છે અજ પ્રત્યયિક અવધિ  
અને સાધોપશમિક અવધિ આ પ્રમાણે અવધિજ્ઞાન બે પ્રકારતુ કહેવાય છે. આ વિષેતુ  
વિજ્ઞાન પણ ત્વજ કરવામાં આંચુ છે પ્રબુધમિતિ અને વિપુલમિતિના કોઈથી મન-  
પથવજ્ઞાન બે પ્રકારતુ કહેવાય છે આ વિષેતુ સમસ્ત વિવરણ નંદીસુત્રમાંથી બાળી

खलु भदन्त ! श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् एषा संज्ञा एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः  
एषा रुचिः एष हेतुः एष उपदेशः एष सङ्कल्पः एषा तुला एतत् मानम् एतत्  
समवसरणम् यथा—अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो तत् जीवः तत् शरी-  
रम् ? ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्—प्रदेशिन्  
अस्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् एषा संज्ञा यावत् एतत् समवसरणं यथा—  
अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो तत् जीवः स शरीरम् ॥ सू० १३० ॥

પાસ કે સ્થાન મેં બેઠ ગયા (કેસિકુમારસમણં એવં વચાસી) ઓર કેશિ-  
કુમારશ્રમણ સે ઇસ પ્રકાર બોલા—(તુભમે જં મંતે ! સમણાણં નિગ્ગંથાણં એસા  
સણ્ણા એસા પહ્ણણા એસા દિટ્ઠી, એસા રૂઠ્ઠિ એસ હેઐ) હે ભદન્ત ! આપ  
શ્રમણ નિર્ગ્રન્થોં કી યહ સંજ્ઞા હૈ, યહ પ્રતિજ્ઞા હૈ, (પદાર્થ કે સ્વરૂપકા  
નિશ્ચય જ્ઞાનરૂપ) યહ દૃષ્ટિ હૈ, યહ રુચિ હૈ, યહ હેતુ હૈ (એસ ઉવએસે એસ  
સંકપ્પે એસા તુલા, એસ માણે, એસ પમાણે. એસ સમોસરણે) યહ ઉપદેશ  
હૈ, યહ સંકલ્પ હૈ, યહ તુલા હૈ, યહ માન હૈ, યહ પ્રમાણ હૈ, યહ સમવ-  
સરણ હૈ (જહા અણ્ણો જીવો, અણ્ણં સરીરં) કિ જીવ ભિન્ન હૈ ઓર શરીર ભિન્ન હૈ,  
(જો તં જીવો તં સરીરં) ન જીવ શરીરરૂપ હૈ. ઓર ન શરીર જીવરૂપ હૈ. (ત  
ણં કેસીકુમારસમણે પએસિં રાયં એવં વચાસી) તથ કેસી કુમારશ્રમણને પ્રદેશી  
રાજા સે એસા કહા—(પએસી ? અમ્હં સમણાણં નિગ્ગંથાણં એસા સણ્ણા જાવ  
એસ સમવસરણે જહા અણ્ણો જીવો, અણ્ણં સરીરં, જો તં જીવો તં સરીરં)

એવાસી) અને કેશિકુમાર શ્રમણને આ પ્રમાણે કહ્યું—(તુભમે જં મંતે ! સમણાણં  
નિગ્ગંથાણ એસા સણ્ણા એસા પહ્ણણા એસા દિટ્ઠી, એસા રૂઠ્ઠિ, એસ હેઐ)  
હે ભદત ! આપ શ્રમણ નિર્ગ્રંથાની આ સંજ્ઞા છે, આ પ્રતિજ્ઞા છે, આ દૃષ્ટિ છે,  
આ રૂચિ છે, આ હેતુ છે, (એસ ઉવએસે, એસ સંકપ્પે એસા તુલા, એસ માણે,  
એસ પમાણે, એસ સમોસરણે) આ ઉપદેશ છે, આ સંકલ્પ છે, આ તુલા છે, આ  
માણ છે, આ પ્રમાણ છે, આ સમવસરણ છે. (જહા અણ્ણો જીવો, અણ્ણ સરીરં,  
જો ત જીવો, ત સરીર) કે જીવ અને શરીર જુદાજુદાં છે. ન જીવ શરીર રૂપ  
છે અને ન શરીર જીવરૂપ છે. (તણા કેસીકુમારસમણે પએસિં રાયં એવં  
વચાસી) ત્યારે કેશીકુમાર શ્રમણે પ્રદેશી રાજાને આ પ્રમાણે કહ્યું કે (પએસી ! અમ્હં  
સમણાણં નિગ્ગંથાણ એસા સણ્ણા જાવ એસ સમવસરણે જહા અણ્ણો જીવો  
અણ્ણં સરીર, જો ત જીવો તં સરીરં) હે પ્રદેશિન્ ! શ્રમણ નિર્ગ્રંથાની આ

सुला एस माणे एस पमाणे एस समोसरणे जहा अण्णो जीवो  
अण्णं सरीर, णो त जीवो त सरीर? तएण केसीकुमारसमणे पपसी  
राय एव वयासी— पपसी। अम्ह समणाणं णिग्गथाणं एसा  
सण्णा जाव एस समोसरणे जहा अण्णो जीवो अण्णं सरीर  
णो त जीवो त सरीर ॥ सू० १३० ॥

छाया—ततः खलु स मवेशी राजा केचिन कुमारभ्रममेवमवादीत्  
अह खलु मदन्त। इह उपविशामि? मवेशिन! एतस्या उद्यानभूमिस्त्वमसि  
एव ज्ञायकः, ततः खलु स मवेशी राजा चित्रेण सारहिना सार्द्धं केचिनः  
कुमारभ्रमणस्य अवूरसामते उपविशसि, केचिकुमारभ्रममेवमवादीत्—पुष्पाक

‘त ए ण से पपसी राया’ इत्यादि।

छाया—(त ए ण से पपसी राया केसि कुमारसमण एव वयासी) इसके  
बाद केसीकुमार भ्रमण से उस मवेशी राजाने ऐसा कहा (अह न मते!  
इह उपविशामि) हे मवेश्य! मैं इस स्थान में बैठ जाऊँ? (पपसी! साए  
उद्यानभूमि ए तुमसि केव ज्ञायक) तब केसीकुमार भ्रमणने उससे कहा  
हे मवेशिन! इस उद्यानभूमि के तुम हो ज्ञायक हो—अर्थात् उपवेशन के  
विषय में या अनुपवेशन के विषय में मैं क्या कहूँ— यह तो स्वयं ही  
जानो। (त ए ण से पपसी राया चित्रेण सारहिना सार्द्धं केसिस्स कुमार  
समणस्स अवूरसामते उपविशइ) इसके बाद वह मवेशी राजा चित्र सारहि  
के साथ केसीकुमारभ्रमण के समीप—न अधिक दूर और न—अधिक

‘त एण से पपसी राया’ इत्यादि।

अर्थ—(त एण से पपसी राया केसि कुमारसमण एव वयासी)  
तबही केसीकुमारभ्रमणने ते मवेशी राजाने आ प्रभावे कह—(अह न मते!  
इह उपविशामि) के बाद ही आ स्थाने बैठूँ? (पपसी! साए उद्यान  
भूमि ए तुमसि केव ज्ञायक) तब केसीकुमारभ्रमणने ते राजाने आ प्रभावे  
कह के ते मवेशिन! आ उद्यानभूमिना तमे ए उपवेशनं भाटे  
के अनुपवेशन भाटे भाटे तमने कह्यु ते आभास साधुअपधी जहार ते मेशी ते  
भाटे तमे पातेव विचारी हो। (त ए ण से पपसी राया चित्रेण सारहिना  
सार्द्धं केसिस्स कुमारसमणस्स अवूरसामते उपविशइ) तबही ते मवेशी  
राजा चित्रसारहिनी साथे केसीकुमारभ्रमणनी पास वयाहे इह एण नदि-  
तेमव वयाहे नद्यक पण नदि—कोना स्थाने गेसी गयो। (केसिकुमारसमण एव

સર્વસ્યાપિ દર્શનપ્રતિપાદ્યાર્થસ્ય-एतत्कारणम्-युष्माकं दर्शनम्, एष उपदेशः-  
 शिक्षावचनम् एष संकल्पः-सर्वदैव भवतां. तात्त्विकोऽध्यवसायः, एषा तुला-  
 तुल्येव तव स्वीकारः, तत्र तुलासादृश्यं च मेयपदार्थपरिच्छेदकत्वेन, एवम्  
 एतत् मानम्-प्रस्थादिमानसदृशस्तवस्वीकारः, मानसादृश्यमपि मेयपदार्थ  
 परिच्छेदकत्वेन, एतत् प्रमाणप्रत्यक्षादिप्रमाणसदृशस्तव स्वीकारः, प्रत्यक्षादि  
 सादृश्यं च स्वीकारे दृष्टेष्टाविरोधित्वेन, यथा- प्रत्यक्षादिप्रमाणं दृष्टेष्टं न  
 विरुणद्धि तथा तवस्वीकारोऽपि । एतत् समवसरणं-बहूनामेकत्रमिलनम्  
 तद्वत् तव स्वीकारः, यथा समवसरणे बहवो जना आगत्य मिलन्ति तथैव  
 तव स्वीकारे सर्वाणि तत्त्वानि समाविशन्ति तत्स्वीकारस्वरूपमाह-यथा अन्यो  
 जीवः अन्यत् शरीरमिति-जीवः-उपयोगलक्षणः, अन्यः-शरीराद् भिन्नोऽस्ति,  
 एवं शरीरम् अन्यत्-जीवाद्धिन्नमस्ति, इत्येवं जीवशरीरयोः पार्थक्यमन्वव-

સ્વતત્વ હૈ, ऐसी जो आपकी श्रद्धापूर्वक अभिलाषरूप रुचि है, ऐसा जो दर्शन  
 प्रतिपाद्य समस्त भी-अर्थका आपका दर्शन कारणरूप है, ऐसा जो आपकी  
 शिक्षा वचनरूप उपदेश है, ऐसा जो आपका संकल्प है, सर्वदा आपका  
 तात्त्विक अध्यवसाय है, तुला के जैसी मेयपदार्थ की परिच्छेदक होने से  
 ऐसी जो आपकी मान्यता है, प्रस्थादिमान के जैसी आपकी ऐसी जो  
 स्वीकृति-दृढधारणा है, आपका ऐसा जो दृष्ट-प्रत्यक्ष एवं दृष्ट अनुमान  
 से अविरोधी होने के कारण प्रत्यक्षादि प्रमाण स्वरूप जैसा मन्तव्य है,  
 आपकी ऐसी जो कथनी समवसरणरूप है (अर्थात् समवसरण में जैसे  
 अनेक जन आकर के मिलते हैं उसी प्रकार से तुम्हारे स्वीकाररूप सिद्धान्त  
 में समस्ततत्त्व अन्तर्हित हो जाते हैं, अतः यह समवसरणरूप है)-कि-  
 उपयोगलक्षणवाला जीव अन्य है-शरीर से भिन्न है-भिन्न स्वरूपवाला

છે, શ્રદ્ધાપૂર્વક અભિલાષ રુચિ છે, દર્શનપ્રતિપાદ્ય સમસ્ત અર્થતુ આપતુ દર્શન  
 કારણરૂપ હેતુ છે, શિક્ષા વાચનરૂપ ઉપદેશ છે, સંકલ્પ છે, સર્વદા તાત્ત્વિક અધ્યવસાય છે,  
 તુલાની જેમ મેયપદાર્થની પરિચ્છેદક હોવાથી એવીજ આપની માન્યતા છે, પ્રસ્થાદિ-  
 માન જેવી આપની દૃઢધારણા છે, દૃષ્ટપ્રત્યક્ષ અને દૃષ્ટ અનુમાનથી અવિરોધી હોવા  
 બદલ પ્રત્યક્ષ વગેરે પ્રમાણરૂપ આપતું મંતવ્ય છે, આપની એવી જે કથની સમવ-  
 સરણરૂપ છે (એટલે કે સમવસરણમા જેમ ઘણા લોકો આવીને એકત્ર થાય છે તેમજ  
 તમારા સ્વીકારરૂપ સિદ્ધાન્તમા બધા તત્ત્વો અતર્હિત થઇ બાકી છે એથી આ સમવ-  
 સરણ છે) કે ઉપયોગ લક્ષણવાળો જીવ અન્ય છે, શરીર કરતાં જુદો છે, જુદા સ્વરૂપ

टीका— 'तत्र न स पामी रागा' इत्यादि—सतः खलु स प्रदेशी-  
 राजा केशिन कुमारभ्रमण पत्रम्—अनुपद वक्ष्यमाण वचनम् अवादीत्—  
 हे भिदन्तः! अहं खलु इह—अस्मिन् स्थानं उपविशामि? ततः केशिकुमार  
 भ्रमण आह—हे प्रदेशिन्! एतस्या उद्यानभूमिः स्वमेव ज्ञायकः असि एषा  
 ज्ञानभूमिस्तव निमित्ता, नाम्नाकस्य पथेनानुपवेशनविषये वक्तुं कल्पते, स्वमेव  
 प्रानासीति भावः। सतः—खलु स प्रदेशी, राजा निघ्नेण सारयिना सार्धं—  
 केशिनः कुमारभ्रमणस्य अदूरसामन्ते नातिदूरे नाविसमीपे उपविशति, उप-  
 विष्टम् स केशिकुमारभ्रमणमप्यम्—अनुपद वक्ष्यमाण वचनम् अवादीत्—हे  
 भिदन्तः! एतम् अहं खलु भ्रमणानां निमित्तस्थानम्, एषा इयं सज्ञा—सम्प-  
 ज्ञानम् अस्ति, एवमप्रेष्ये किम् एषा प्रतिज्ञा—निश्चयरूपा स्वीकारः, एषा  
 इष्टिः—इष्टं—स्वतन्त्रम्—एषा क्वचि—अज्ञापूर्वकोऽमिलापः, एषा हेतुः—

हे प्रदेशिन्! हम भ्रमण निमित्त था को यह संज्ञा है, यावत् यह समयसरण है कि जीव  
 मित्त, है और शरीरमि न है जीव शरीररूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है।  
 टीका—युद्धाथ के भ्रमण है परन्तु भावार्थ इसका हम प्रसंगमें  
 से, है—केशी कुमारभ्रमण की रूप प्रदेशी राजा की बातचीत के इस प्रसंग  
 में जब प्रदेशी राजा ने अपने, पैदल, गी, सात, पूजा, तब इसमें अपनी अनु-  
 मति देना साधुकस्य के अनुकूल नहीं है, यथार्थ—तुम, बैठो—उठो इत्यादि  
 कहना साधुओं को वक्ष्यता। केशी होने से मयाग प्रकट किय, तब प्रदेशी राजा  
 विध्व सारयि क साथ वहाँ बैठ गया फिर उसने केशी कुमारभ्रमण  
 से, ऐसा पूजा कि हे भिदन्त! आप की ऐसी जो सम्पदज्ञानरूप सज्ञा है  
 ऐसी आपकी लक्षणविशेषरूप या प्रतिज्ञा है, ऐसी आपकी दशनरूप इष्टि—

संज्ञा ॥ यावत् ॥ समयसरण ॥ ६ ॥ एव अने शरीर गुणानुसार ॥ ६ ॥ शरीर  
 रूप नहीं अने शरीर एव रूप नहीं

टीका—भ्रमण प्रमाणे ॥ ७ ॥ यत्न जाता। आ अनु ॥ ७ ॥ केशीकुमार भ्रमण  
 अने प्रदेशी राजांना जाता। एषा इत्यादि प्र शरी राजां केशीकुमार भ्रमण त्वां मेस  
 वानी बात पूछी त्वां देती कहतु ते आभास साधु कथी जात। ७ ॥ कथी ते  
 आजतमा तमोस्वयं निजय उरः तेम ६। तेमनी ७ ॥ पर १ ॥ टीका त्वां  
 पछी प्रदेशी राजा येता ॥ ८ ॥ तव स्थान पर वि गारयिनी पास केशी भ्रमण अने  
 त्वां मेमिने केशी भ्रमण आ प्रमाणे ७ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ आपनी ७ ॥ आ  
 आवनी समयसरणरूप संज्ञा ७ ॥ तत्त्व—निश्चयरूप के प्रतिज्ञा ७ ॥ दशनरूप इष्टि रूपतत्त्व

पुण पासाणयाए ? तं जइ णं से । अज्जए णं मम आगतुं वएज्जा-  
एव खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जए होत्था, इहेव सेयवियाए नयरीए  
अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेमि, तएणं अहं सुबहुं  
पाव कम्मं कलिकल्लुस समज्जिणित्तां नरएसु उववण्णे तं माणं  
नत्तुया ! तुमपि भवाहि अधम्मिए जाव णो सम्मं करभरवित्तिं  
पवत्तेहि, माणं तुमपि एव चेव सुबहुं पावकम्म जाव उववज्जिहिसि,  
तं जइ णं से अज्जए मम आगतुं वएज्जा तो णं अहं सदहेज्जा पत्ति-  
एज्जा रोएज्जा जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं णो त जीवो णो तं सरीरं,  
जम्हा णं से अज्जए मम आगतुं नो एवं वयासी तम्हा सुपइट्ठिया  
मम पइन्ना समणाउसो ! जहा तज्जीवो तं सरीरं ॥ सू० १३१ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत् यदि खलु  
भदन्त ! युष्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानामेषा संज्ञा यावत् समवसरणं यथा—अन्यो  
जीवः अन्यत् शरीरम् न तत् जीवः स शरीरम् एवं खलु मम आर्यकोऽभवत्, इहैव

‘तएणं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से पएसी राया केशिकुमार समणं एवं वयासी)  
तव उस प्रदेशीराजाने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(जइ णं भंते !  
तुवमं समणाण निर्गन्थाण एसा सण्णा जाव समोसरणे) हे भदन्त ! यदि  
आप श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी संज्ञा यावत् समवसरण है कि (अण्णो  
जीवो अण्ण सरीर) जीव अन्य है और शरीर अन्य है (णो तं जीवो तं

‘तएणं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से पएसी राया केशिकुमारसमणं एवं वयासी)  
त्यारे ते प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रमाणे कल्लुं के (जइ णं भंते !  
तुवमं समणाणं निर्गन्थाण एसा सण्णा जाव समोसरणे) के लक्षित । ने आप  
नेवा श्रमण निर्ग्रन्थानी येवी संज्ञा यावत् समवसरण के (अण्णो जीवो अण्ण सरीर)  
एव अन्य छे अने शरीर अन्य छे (णो त जीवो तं सरीरं) एव शरीरश्च

मुखेनोक्तवा व्यतिरेकमुखेन तथेवाऽऽह-‘नो त’ इत्यादि-तत्=शरीर जीवो  
न जीवश्च शरीर न ‘नो त’ इति वाक्ये उभावपि सच्छब्दावव्ययम् । ततः  
सल्ल केशीकुमारभ्रमणः प्रयत्नितं राजानयेवमवादीत्-अस्माकं भ्रमणानां  
तिष्ठान्यानाम् एषा सज्ञा यावद् एतत् समभ्रमणं यथा अ-णो जीवः भ्रमन्  
शरीरं, नो तत् जीवो नो स शरीरम् ॥ सु० १३० ॥

मूलम्-तए णि से पएसी राजा केसिं कुमारसमणं एव वयासी-  
जइ णं भते । तुब्भ समणाणं णिगंथाणं एसा सण्णा जाव समो  
सरणे-जइ अण्णो जीवो अण्णं सरिरे णो त जीवो तं सरिरे, एव  
खलु मम अज्जए होत्था, इहेव जइदीवे दीवे सेयवियाए णयरीए  
अधम्मिए जाव सयस्स वि य णं जणवयस्स तो सम्म करभरवित्ति  
पवत्तेइ, ते णं तुब्भ वत्तवयाए सुवहु पाव कम्मं कलिकलुस सम  
ज्जिणित्ता कालमासे काल किच्चा अण्णयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उव  
वण्णे । तस्स णं अज्जगस्स अह णं होत्था-इहे कते पिए मणुण्णे  
मंणामे येजे वेसातिए समए बहुमए रयणकरडगसमाणे जीवि  
उस्सविए हियणदणिज्जि-उंवरपुंफ पिव बुद्धमे सवणायाए, किमग

है और शरीर उससे भिन्न है (यह अव्ययमुख से कथन है) । शरीर जीव  
रूप नहीं है (यह व्यतिरेकमुख से कथन है) तो यह सत्य है न ? इस  
प्रकार प्रदेशी राजा के कृत इस प्रश्न को चुनकर केशीकुमारभ्रमणने उससे  
कहा-हां, प्रदेशिन् । हम भ्रमण निह-रों की ऐसी ही सज्ञा यावत् सम  
भ्रमण है कि जीव भ्रमण है और शरीर भ्रमण है जीव शरीररूप नहीं  
है और शरीर जीवरूप नहीं है इस प्रकार से दोनों में सब या पूर्यकृता है । सु० १३० ।

पाणि ॥ अने शरीर तेनाधी खुदु ॥ (आ जन्वमभुजधी कथन ॥) शरीर लभ्य  
नधी, लव शरीररूप नधी (आ व्यतिरेक भुजधी कथन ॥) तो आ जणु सत्य ॥  
आ जतना प्रदेशी राजाना प्रश्नने सावणीने केशीकुमार भ्रमणने तेने कहुं ॥ हां प्रदे  
शिन् । अभासा केना समख निश्चिन्नी ज्यो व सज्ञा यावत् समभ्रमण ॥ ॥  
लव खुदो ॥ अने शरीर खुदु ॥ लव शरीररूप नधी अने शरीर लव्य नधी  
आ भ्रमणने अने साव लव लव ॥ ॥ सु० १३ ॥

कान्तः प्रियः मनोज्ञः मन्मथः स्थैर्यः विश्वासिकः संमती, बहुमतः अनुमतः  
रत्नकरण्डकसमानः जीवितो-मयिकः हृदयानन्दिजननः, उदम्बरपुष्पमिव दुर्लभः  
अवणतया किमद्ग पुनः दर्शनतया ? तद् यदि खलु स आर्यकः मम आग-  
त्य वदेत्-एवं खलु नत्तक ! अहं तव आर्यकोऽभवम्, इहैव श्वेतविकायां  
नगर्याम् अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयम्, ततः खलु

णं अज्जगम्प अहं णत्तुए होत्था, इहो कंते पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे  
वेसासिए संमए बहुमए रयणकरण्डगसमाणे जीविउस्सविए) उन अर्यक का  
मैं पौत्र हूं मैं उन्हें अभिलषित था. कान्त था, प्रिय था, मनोज्ञ था मनो-  
गम्य था, स्थैर्यरूप था, विश्वासपात्र था, सम्मानपात्र था, प्रचुर मानपात्र  
था, हृदयप्रिय था, रत्नकरण्डक के जैसा था, जीवन के उत्सवरूप था.  
(हियण दिजणणे उंवरपुष्पं विव दुल्लभे सवणयाए, किम गपुण पामणयाए)  
उनके हृदय के आनन्द जनक था, उदम्बरपुष्प के समान मैं उन्हें सुनने के  
लिये दुर्लभ था-देखनेकी बात तो क्या कहनो (तं जइ णं से अज्जए  
णं ममं आगतुं वएज्जा) तो यदि वे आर्यक आकर के सुअसे ऐसा कहे  
(एवं खलु नत्तुया ! अहं तं अज्जए होत्था, इहैव सेयवियाए नयरीए  
अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेमि) हे पौत्र ! मैं तुम्हारा  
आर्यक-पितामह था, इसी श्वेताविका नगरी में अधार्मिक बना हुआ मैं  
अच्छी तरह से प्रजाजन से प्राप्त देव से उनका पोषण नहीं करता था.

पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए रयणकरण्डगसमाणे  
जीविउस्सविए) ते आर्यकनो हुं पौत्र छु हु तेमना भाटे अबिलषित हुतो, डात  
हुतो, प्रिय हुतो, मनोज्ञ हुतो, मनोगम्य हुतो, स्थैर्यरूप हुतो, विश्वासपात्र हुतो,  
सम्मानपात्र हुतो, प्रचुर मानपात्र हुतो, हृदयप्रिय हुतो, रत्न करण्डके जैसा हुतो,  
उत्सवरूप हुतो (हियण दिजणणे उंवरपुष्पं विव दुल्लभे सवणयाए  
किमंग पुण पासणयाए) तेमना हृदयने आनन्द आपनारे हुतो उभराना पुष्पनी  
जेम हुं तेमना भाटे जेवानी बात तो हर रही सावणवा भाटे पणु दुर्लभ हुते  
(तं जइ णं से अज्जए णं ममं आगतुं वएज्जा) तो हुवे जे ते आर्यक आवीने  
भने आभ कडे के (एवं खलु नत्तुया ! अहं तं अज्जए होत्था, इहैव सेयवियाए  
नयरीए अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेमि) हे पौत्र ! हुं तमारो  
आर्यक-पितामह हुतो. आज श्वेताविका नगरीमा अधार्मिक थधने प्रजाजने पासेथी  
कर वसुल करीने पणु तेमतुं रक्षणु-पोषणु वगेरे करतो न हुतो. (तए णं अहं



। मम्बूदीपे द्वीपे श्वेतविकायां नगरीयाम् अपार्मिकः पापत स्पष्टमापि च खलु  
जनपदस्य नो सम्पत् करभरवृत्तिं प्रापत यत्, स खलु युष्माकं रक्तम्यतया  
सुषुप्तं पापं कर्म कलिकलुप्तं समज्यं कालमासे कालं कृत्वा भगवतरेण नरकेषु  
नैरयिकतया उपपन्नः । तस्य खलु आर्षवस्य महं नष्टकं अभवम्, इष्ट।

शरीर) जीव शरीररूप नहीं है शरीर जीवरूप नहीं है (एव खलु मम  
अस्मिन् होत्या-इहेव नमूदीये द्वीपे सेयविवाए णयरीए अशमिण जाव  
सपरस वि य न नमवयस्स नो सम्म करमविति पवत्तेइ) तो इस बातको  
बढ़ि मेरे पितामह आकर के पुष्ट करें-सुप्त से कहे-तो मैं आपके इस  
कथन पर विश्वास कर सकता हूँ ऐसा सबबोधिवां लगाना चाहिये, इसी  
भात को वह इस आगे के सुप्रपाठ से प्रदर्शित करता है-वह कहता  
है कि इसी मम्बूदीप नामके द्वीप में स्थित इस श्वेतविका नगरी में  
मेरे पितामह-इहा ये वे अशमिण ये, यावत् भगवते प्रजाजनों का देखन लेकर  
मैं उनका पापण, अच्छी तरह, से नहीं करूँ ये (से ण तुक्कं यत्तव्ययाए  
सुषुप्तं पाव कम्म कलिकलुप्तं समज्जिणिता कालमासे कालं कृत्वा भव  
यरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उववण्णे) वे आपके कथनानुसार बहुत पापी वे  
अविमलिन बहुत से पापकर्मों का उपाजन करके वे कालमास में काल  
करके किसी एक नरक में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं। (वस्स

नभी, शरीर लवण नभी, (एव खलु मम अस्मिन् होत्या इहेव नमूदीये द्वीपे  
सेयविवाए णयरीए अशमिण जाव सपरस वि य न नमवयस्स नो सम्म  
करमविति पवत्तेइ) तो आ बात वे भास पितामह आधीने भने कहे तो हू  
आपने कथन पर विश्वास भूदी यत्तु तेम हू जेवो सबबे नदी लगवयो जेध्जे  
जेव वातने ते आ सुप्रपाठ प्रदर्शित करता कहे जे हे आ नमूदीप नामका  
द्वीपमा स्थित श्वेतविका नगरीमा आस पितामह होता, तेजो अशमिण इहा यावत्  
पितामा अशमिणो पसेधी कर वसल करीने यत्तु तमत्त सरस रीते भरषु पापसु  
तेम व रक्षसु करता न होता, (से ण तुक्कं यत्तव्ययाए सुषुप्तं पाव कम्म कवि  
कलुप्तं समज्जिणिता कालमासे कालं कृत्वा भवयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए  
उववण्णे) आपधीना कथन सुक्क तेजो नहु भाटा पापी होता, आतमिलन यत्तु  
पापभोठ उपावन करीने तेजो कलमासमा काल करीने काल जेव नरकमा रीतिनी  
परायमा वग पापमा छ (तस्स र्ण अज्जगस्स महं नष्टकं दाहया, इहे वत्ते

कान्तः प्रियः मनोज्ञः मन्साऽमः स्थैर्यः विश्वात्मिकः संमतः बहुमतः अनुमतः  
रत्नकरण्डकसमानः जीवितो-मयिकः हृदयानन्दिजननः, उद्गम्यरूपमिव दुर्लभः  
श्रवणतया किमद्ग पुनः दर्शनतया ? तद् यदि खलु म आर्यकः मम आग-  
त्य वदेत्-एवं खलु नत्तु ! अहं तव आर्यकोऽभवम्, इहैव श्वेतविकायां  
नगर्याम् अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयम्, ततः खलु

णं प्रज्जगम्य अहं णत्तुए होत्था, इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे  
वेसासिए संमए बहुमए रयणकरंडगममाणे जीविउम्सविए) उन अर्यक का  
मैं पौत्र हूं मैं उन्हें अभिलषित था. कान्त था, प्रिय था, मनोज्ञ था मनो-  
गम्य था, स्थैर्यरूप था, विश्वासपात्र था, सन्मानपात्र था, प्रचुर मानपात्र  
था, हृदयप्रिय था, रत्नकरण्डक के जैसा था, जीवन के उत्सवरूप था.  
(हिययणंदिजणणे उंवरपुण्फंवित्र दुल्लहे सवणयाए, किमगपुण पासणयाए)  
उनके हृदय के आनन्द जनक था, उद्गम्यरूप के समान मैं उन्हें सुनने के  
लिये दुर्लभ था-देवनेकी बात तो क्या कहनो (तं जड णं से अज्जए  
णं ममं आगतुं वएज्जा) तो यदि वे आर्यक आरुर के सुझसे ऐसा कहे  
(एवं खलु नत्तुया ! अहं तं अज्जए हात्था, इहेव सेयंविआए नयरीए  
अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरविन्नि पवत्तेमि) हे पौत्र ! मैं तुम्हारा  
आर्यक-पितामह था, इसी श्वेताविका नगरी मे अधार्मिक बना हुआ मैं  
अच्छो तरह से प्रजाजन से प्राप्त देवम से उनका पोषण नहीं करता था.

पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए रयणकरंडगममाणे  
जीविउम्सविए) ते आर्यकनो हूं पौत्र छु हू तेमना माटे अभिलषित હતો, કાત  
હતો, પ્રિય હતો, મનોજ્ઞ હતો. મનોગમ્ય હતો, સ્થૈર્યરૂપ હતો, વિશ્વાસપાત્ર હતો,  
સન્માનપાત્ર હતો, પ્રચુર માનપાત્ર હતો, હૃદયપ્રિય હતો, રત્ન કરંડક જેવો હતો,  
જીવનના ઉત્સવરૂપ હતો. (હિયયણંદિજણણે ઉંવરપુણ્ફં વિત્ર દુલ્લહે સવણયાए  
કિમંગ પુણ પાસણયાए) તેમના હૃદયને આનંદ આપનારો હતો ઉમરાના પુષ્પની  
જેમ હું તેમના માટે જોવાની વાત તો દૂર રહી સાલણવા માટે પણ દુર્લભ હતો.  
(ત જડ ણં સે અજ્જए ण મમં આગંતુવएज्जा) તો હવે જો તે આર્યક આવીને  
મને આમ કહે કે (एवं खलु नत्तुया ! अहं तं अज्जए होत्था, इहेव सेयंविआए  
नयरीए अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरविन्नि पवत्तेमि) हे पौत्र ! हूं तमारे  
आर्यक-पितामह હતો. આજ શ્વેતાવિકા નગરીમા અધાર્મિક થઈને પ્રજાજનો પાસેથી  
કર વસૂલ કરીને પણ તેમનું રક્ષણ-પોષણ વગેરે કરતો ન હતો. (તए णं अहं

। मम्बूदीपे द्वीपे श्वेताम्बिकायां नगर्याम् अपार्मिक यावत् स्वप्नस्यापि च सल्लु  
जनपदस्य नो सम्पत् करमरविधिं मायत यत्, स सल्लु युष्माकं वसन्त्यया  
सुबहु पापं कमं कलिकलुस समज्जणिता कालमासे कालं कृत्वा अग्नयत्तरं नरकेषु  
नैरयिकतया उपपत्ताः । तस्य प्लव्ण आपकस्य अहं नत्तु च मममम्, इह ।

।।।।

तरीर) जीव शरीररूप नहीं है शरीर जीवरूप नहीं है (एव सल्लु मम  
अग्निं होत्वा-इहेव जम्बूदीपे द्वीपे सेय विपाए णयरीए अपग्निं जाव  
सुबहु पापं कमं कलिकलुस समज्जणिता कालमासे कालं कृत्वा अग्नयत्तरं नरकेषु  
नैरयिकतया उपपत्ताः) तो इस बात को  
यदि मेरे पितामह आकर के पुष्ट करें-मुझ से करे-तो मैं आपके इस  
किसन पर विश्वास कर सकता हूँ ऐसा संबंध यहाँ लगाना चाहिये, इसी  
बात को वह इस आगे के-सुप्रसिद्ध से-प्रदर्शित करता है-वह कहता  
है कि इसी मम्बूदीप नामके द्वीप में स्थित इस श्वेताम्बिका नगरी में  
मेरे पितामह-दादा के अपार्मिक से, यावत् अपने प्रजाजनो का देखभाल  
सौ-ठनका-पापण अच्छी तरह से-नहीं करते थे-(से ज सुबहु वसन्त्यया  
सुबहु पापं कमं कलिकलुस समज्जणिता कालमासे कालं कृत्वा अग्नयत्तरं  
नरकेषु नैरयिकतया उपपत्ताः) वे आप के कथनानुसार बहुत पापी व  
अतिममिन बहुत से पापकर्मों का उपाजन करके वे कालमास में काल  
करके किसी एक नरक में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं। (तस्स

नभी. शरीर लब्ध नभी. (एव सल्लु मम अग्निं होत्वा इहेव जम्बूदीपे द्वीपे  
सेय विपाए णयरीए अपग्निं जाव सुपरस वि व नं जमवयस्स नो सम्मं  
करमविधिं पवत्तेह) तो आ बात के आश पितामह आधीने भने उहे तो हूँ  
आपने अपने पर विश्वास भूईं यह तेम हूँ जेवो सनभे नदी लमायवो जेध्ने  
जेव बातने ते आ सुप्रसिद्ध प्रदर्शित करता उहे उहे उहे आ जम्बूदीप नामक  
द्वीपमा स्थित श्वेताम्बिका नगरीमा आश पितामह दत्ता तेजो अपार्मिक दत्ता यावत्  
घाताना ममज्जो आसेधी कर वसुध करीने पण उभय सरस रीते भरवु पणवु  
तेम वसुध करता न दत्ता (से ज सुबहु वसन्त्यया सुबहु पापं कमं कलि  
कलुस समज्जणिता कालमासे कालं कृत्वा अग्नयत्तरं नरकेषु नैरयिकतया  
उपपत्ताः) आपकीना कथन सुनने तेजो नहुँ भोटा आपी दत्ता आतमिलन वपुं  
पापकर्मो उपाजन करीने तेजो आशमासमा आश करीने केवल नरकमां नैरयिकी  
प्राप्तमां न ग पायवा । (तस्स र्वा अज्जगस्स अहं नत्तु च मममम्, इहे करी

कान्तः प्रियः मनोज्ञः मनोऽमः स्थैर्यः विश्वासिकः संमतः बहुमतः अनुमतः  
रत्नकरण्डकसमानः जीवितोन्मत्तः हृदयानन्दिजननः, उदुम्बरपुष्पाभिव दुर्लभः  
अवणतया किमद् पुनः दर्शनतया ? तद् यदि खलु स आर्यकः मम आग-  
त्य वदेत्-एवं खलु नत्तु ! अहं तव आर्यकोऽभवम्, इहैव श्वेतविकायां  
नगर्याम् अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयम्, ततः खलु

णं अज्जगम्य अहं णत्तुए होत्था, उट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे  
वेमासिए संमए बहुमए रयणकरण्डगममाणे जीविउत्सविए) उन अर्यक का  
मैं पौत्र हूं मैं उन्हें अभिलषित था. कान्त था, प्रिय था, मनोज्ञ था मनो-  
गम्य था, स्थैर्यरूप था, विश्वासपात्र था, सन्मानपात्र था, प्रचुर मानपात्र  
था, हृदयप्रिय था, रत्नकरण्डक के जैसा था, जीवन के उत्सवरूप था.  
(हिययण दिजणणे उंवरपुष्पंवित्र दुल्लभे सवणयाए, किम गपुण पासणयाए)  
उनके हृदय के आनन्द जनक था, उदुम्बरपुष्प के समान मैं उन्हें सुनने के  
लिये दुर्लभ था-देखनेकी बात तो क्या कहनो (तं जइ णं मे अज्जए  
णं ममं आगतुं वएज्जा) तो यदि वे आर्यक आर्य के सुझसे ऐसा कहे  
(एवं खलु नत्तुया ! अहं त अज्जए हात्था, इहेव सेयवियाए नयरीए  
अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेमि) हे पौत्र ! मैं तुम्हारा  
आर्यक-पितामह था, इसी श्वेताविका नगरी में अधार्मिक बना हुआ मैं  
अच्छो तरह से प्रजाजन से प्राप्त देवम से उनका पोषण नहीं करता था.

पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे वेमासिए संमए बहुमए रयणकरण्डगममाणे  
जीविउत्सविए) ते आर्यकनो हु पौत्र छु हुं तेमना भाटे अभिलषित हुतो, डात  
हुतो, प्रिय हुतो, मनोज्ञ हुतो, मनोगम्य हुतो, स्थैर्यरूप हुतो, विश्वासपात्र हुतो,  
सन्मानपात्र हुतो, प्रचुर मानपात्र हुतो, हृदयप्रिय हुतो, रत्न करण्डक जैसा हुतो,  
उत्सवरूप हुतो ( हिययणंदिजणणे उंवरपुष्पं वित्र दुल्लभे सवणयाए  
किमंग पुण पासणयाए) तेमना हृदयने आनन्द आपनादे हुतो उभराना पुण्यनी  
जेम हुं तेमना भाटे जेवानी बात तो दूर रही साक्षणवा भाटे पणु दुर्लभ हुतो  
(तं जइ णं मे अज्जए णं ममं आगतुं वएज्जा) तो हुवे जे ते आर्यक आवीने  
भने आभ छडे डे (एवं खलु नत्तुया ! अहं त अज्जए होत्था, इहेव सेयवियाए  
नयरीए अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेमि) हे पौत्र ! हुं तभादे  
आर्यक-पितामह हुतो. आण श्वेतागिका नगरीमा अधार्मिक थधने प्रजाजनो पासोथी  
कर वसूल करीने पणु तेमहु रक्षणु-पोषणु वगेरे करतो न हुतो. (तए णं अहं



આર્યકઃ મમ આગત્ય ના એવમવાદીત્, તસ્માત્ સુપ્રતિષ્ઠિતા મમ પ્રતિજ્ઞા શ્રમ-  
ણાઽઽયુષ્મન્ ! યથા તજ્જીવઃ સ શરીરમ્ ॥મૂ૦ ૧૩૧॥

ટોકા--'ત્વં એ પામી' હત્યાદિ--=તતઃ સ્વલુ મ પ્રદેશી રાજા  
કેશિનં કુમારશ્રમણમ્ એવમ્ અનુરંદં વક્ષ્યમાણં વચ્ચનમ્ અવાદીત--દે મદન્ત !  
યદિ ચેત્ત સ્વલુ યુષ્માકં શ્રમણાનાં નિર્ગ્રન્થાનામ્ યથા સંજ્ઞા યાવત્ મમ શ્રમણં  
યથા-અન્યો જીવઃ અન્યત્ શરીરં નો નત્ત જીવઃ મ શરીરમ્, એવં-વક્ષ્યમાણ-  
સ્વરૂપઃ સ્વલુ મમ આર્યકઃ-પિતામહઃ અભવત્, દૃઢૈવ-આસ્મિન્નેવ જમ્બૂદ્વીપે-  
દ્વીપે શ્વેતિકાયા નગર્યામ્ અધાર્મિકઃ ધર્માચરણવર્જિતઃ યાવત્--યાવ-  
ત્પદેન-અધર્મિષ્ઠ હત્યાદીનાં પદાનાં સંહૃદ્ એકશતતમમત્રાદ્ બોધ્યઃ અર્થો-  
ઽપિ તત્રૈવ । સ્વકમ્યાપ-સ્વમ્યાપિ ચ સ્વલુ જનપદમ્ય-દેશસ્ય કરમરવૃત્તિ  
કારેણ સ્વગ્રાહ્યમાગ્રહણેન યો ભરઃ-પ્રજાનાં ભ્રમણ-પોષણં તદ્વાયા યા વૃત્તિસ્તા  
સમ્યક્-સુપ્રતિષ્ઠિતા નો પાવર્તયત્-અત્ર મૂલે 'પવતેઢ' હત્યાર્થત્વાદ્ ભૂતાર્થે  
વર્તમાનનિર્દેશઃ । મઃ-પૂર્વોક્તઃ આર્યકઃ સ્વલુ યુષ્માકં વક્ષ્યમાનયા-મતેન  
સુવહુ-પ્રચુર કલિકલુપમ્-અતિમલિનં પાપં કર્મ મમર્જ્ય-મમુપાર્જ્ય કાલમાસ-  
કાલં કૃત્વા, અન્યતરેપુ-અન્યતમેષુ નરકેષુ નૈરયિકતયા-નામકતયા ઉપવન્તઃ-  
મમુત્પન્નઃ । તમ્ય સ્વલુ આર્યકમ્ય અહ નત્તુકઃ=પૌત્રઃ અભવમ્, કીદૃશોઽહમ-

સગરં ણો તં જીવો તં સરીરં) કિ જીવ અન્ય હૈ ઓર શરીર અન્ય હૈ, જીવશરીર-  
રૂપ નહીં હૈ, શરીર જીવરૂપ નહીં હૈ. (જમ્મા ણં સે અજ્જણ મમં નો એવ  
તમ્મા સુપહ્ઠિયા મમ પહન્ના મમણાઉમો ! જહા તજ્જીવો તં સરીરં) યાન્તુ  
જિમ્મ કારણ સે આર્યકને આકરકં સુઙ્ગસે એસા કહ્તા નહીં હૈ, ઇમ  
કારણ સે હૈ શ્રમણ ! આયુષ્મન્ ! મેરી યદ્ધ પ્રતિજ્ઞા સુપ્રતિષ્ઠિત-સુસ્થિર હૈ  
કિ જો જીવ હૈ વહો શરીર હૈ ઓર જો શરીર હૈ વહો જીવ હૈ.

ટીકાર્થ--મૂલાર્થ કે અનુરૂપ હી હૈ. પરન્તુ જો વિશેષતા હૈ વદ્દ ઇસ  
પ્રકાર સે હૈ-પ્રદેશી રાજાને જો અપને કો રજાદિ વિશેષણોં વાલા પકટ  
કિયા હૈ સો ઉમકા કારણ યદ્દ હૈ કિ વદ્દ આર્યક કો અભિલપિત થા  
શકુ તેમ છુ. (જહા અન્નેો જીવો, અન્ન સરીર, ણો ત જીવો, તં સરીરં)  
હૈ એવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે, એવ શરીરરૂપ નથી. (જમ્મા ણં સે અજ્જણ  
મમ આગતું નો એવં વયામી, તમ્મા સુપહ્ઠિયા મમ પહન્ના મમણાઉમો !  
જહા તજ્જીવો તં સરીરં) પરન્તુ જે કારણને લીધે આર્યકે આવીને મને આ પ્રમાણે  
કહ્યું નથી તેથી જ હું શ્રમણ ! આયુષ્મન્ ! મારી આ પ્રતિજ્ઞા સુપ્રતિષ્ઠિત-સુસ્થિર-છે  
હૈ જે એવ છ તેજ શરીર છ અને જે શરીર છ તે જ એવ છ.

ટીકાર્થ--મૂલાર્થ પ્રમાણે જ છે પરન્તુ વિશેષતા આટલી જ છે કે પ્રદેશી  
રાજાએ જે પોતાને ધૃષ્ટ વગેરે વિશેષણવાળો બતાવ્યો છે. તે તેનું કારણ એ છે કે

મયમિત્યાહ-દૃષ્ટ-અભિલપિતઃ, વા-ત-ચમનીયસ્વાત, પ્રિય-મેમપાત્રસ્વાત  
 મનોહ-મનમા સમ્યગ્પેક્ષપથયા ક્ષાતસ્વાત, મનોડમ-મનોગમ્યઃ, અતિપ્રિય-  
 ત્વન મનસ્વસ્થિતસ્વાત, સ્થૈર્ય-સ્થિરતાગુણસમ્પન્ન વૈશ્વસિકઃ-વિશ્વાસ  
 પાપ્રમ્ સમત-સમાનપાત્રમ્, યદુમતઃ-પશુરમાનપાપ્રમ્, અનુમતઃ-હૃદયપ્રિયઃ  
 તદાધારાપકસ્વાત્ રતનકરણકસમાન-રત્નાનાં-કષેતનાદીનાં યત્ કરણક  
 તત્સમાન-રતનકરણક-સુદૃઢસ્થ ચાપાત્યન્તાપેક્ષત્વેન યોગ્યમ્ જીવિતોત્સપિકઃ  
 -જીવિતસ્ય-મીષનરય ય વસ્તુચ-ઉત્સરિક-ઉત્સવરૂપઃ, નથ નથ વર્ષન-ક  
 રવાત્ હૃદયાનિદનનનઃ-હૃદયાન-વક્ષારવઃ ઉદુઃચરપુષ્પમિષ-ઉદુઃચરપુષ્પ-યા  
 દુર્લભ તથાડહમાપ શ્રવણતથા-શ્રવણેન, અહ્ ॥ હે યુને ॥ ઈં પુનઃ દર્શનતથા-  
 દર્શનેન અપિ હુ દર્શનનાશ્યન્તદુર્લભોડહમિત્યર્થઃ, તત્-તસ્માત્ યત્-ચેત્  
 તલ્લુ સ આર્યકઃ મમ આગત્ય ષટ્ક-કથયત-ચમનીયસ્વરૂપમાહ-પથ તલ્લુ  
 નષ્ટક-!-દે વૌશ્વ ॥ અહ તથ આર્યક-મિતામહઃ અમયમ્, હૃદૈષ-પ્રમ્યામેષ  
 શ્વતાંશકાયાં નગર્યામ્ અધામિષો યાવત્ નો સમ્યક્ કરમરુષ્ટિ માર્ત્તયમ્  
 અમાપ મુછે 'વશ્વેમિ' इत्यापरवात् भूताये वर्त्तमाननिर्देशः । ततः-तस्मा

इमलिये इष्ट या, कमनीय-सुख होने से कान्म या, प्रेमपात्र होने से प्रिय  
 या, मनस उसे अच्छी तरह से अपेक्षक स जाना या इसविध मनोह  
 या अतिप्रिय होने के कारण मनमें अवस्थित या इसमिये षड मनोडम या,  
 मनोगम्य या स्थिरतागुण से संपन्न था-अतः स्थैर्यरूप या विश्वासपात्र  
 होने से वैश्वसिक या, सम्मानपात्र होने से समत या पशुरूप ॥ मान  
 पात्र, जाने से पशुर मानपात्ररूप था उगती आधा का आरापक होने  
 से अनुमत-हृदय प्रिय था अग्य-त अपेक्षित होने से रतनकरणक क समान  
 था नर-दुर्लभनक होने से उत्सपिक उत्सवरूप था, इसीप्रिय हृदया  
 हृदयक या मूल में 'वश्वेमि' ऐसा जो वर्तमानरूप से निर्देश हुआ है

તે આયકને અભિલપિત હતો-એથી ઈષ્ટ હતો કમનીય હોવાથી કાન્ત હતો, પ્રેમપાત્ર  
 હોવાથી પ્રિય હતો અને તેને સારી રીતે અપેક્ષકથી આપી લીધો હતો એથી તે  
 મનોહ હતો, અતિપ્રિય હોવાથી તે અનર્માં અવસ્થિત હતો એથી તે મનોડમ હતો-  
 મનોગમ્ય હતો સ્થિરતાના ગુણથી સંપન્ન હતો એથી સ્થૈર્યરૂપ હતો વિશ્વસપાત્ર  
 હોવાથી વૈશ્વસિક હતો સન્માનપાત્ર હોવાથી સમત હતો પશુરૂપમાં મનપાત્ર  
 હોવાથી પશુરમાનપાત્ર રૂપ હતો તેની આશને માનનાર હોવાથી અનુમત-હૃદયપ્રિય  
 હતો, અત્યંત અપેક્ષ હોવાથી રત્નકરણની જેમ હતો નરનવીન રૂપ ધરાવતો હોવાથી  
 ઉદુઃચર-પુષ્પરૂપ હતો-એથી જ તે હૃદયાગ્રહ હતો મૂળમાં 'વશ્વેમિ' બોલો જે

त्कारणात्-खलु अहं सुबहु-अन्यन्तं कलिकलुषम्=अतिसलिनं पापं कर्म  
समर्ज्य=समुपाज्यं नरकेषु उपपन्नः-नारकतयोत्पन्नोऽभवम्. तत्-तस्मात्कार-  
णात् नन्तुक!-हे पौत्र ! त्वमपि तथा सा भव, अधार्मिको यावत् नो सम्यक्  
करभरवृत्तिं प्रवर्तय-निषेधार्थकपदद्वयं प्रकृतार्थं दृढयतीति त्वमवश्यमेव  
धार्मिकादिनिशेषणावशिष्टो भूत्वा स्वकस्य जनपदस्य करभरवृत्तिं स्वम्यक्  
प्रवर्तयेति आवः । सा खलु त्वमपि एवमेव-अहमिव सुबहु-पापकर्म यावत्  
यावच्छब्देन-समुपाज्यं-नरकेषु नैरयिकतया इति संग्राह्यम्, उत्पत्त्यसे मा  
उत्थेया इत्यर्थः, तत्-तस्मात् कारणाद्-यदि-चेत् खलु आर्यको मम  
आगत्य वदेन्-रुथयेत्, ततः-तदा खलु अहं श्रद्धायाम्-भवद्वचने श्रद्धां कुर्याम्  
प्रतीया-विशेषतो विश्वस्याम, रोचेयं रुचिं विषयीकुर्याम् यथा अन्यो जीवो  
ऽन्यच्छरीरम् नो तत्र जीवः स शरीरम्-इति यस्मात् हेतोः खलु सः पूर्वोक्तः आर्य-  
कः ममागत्य नो-न एवं पूर्वोक्तप्रकारेण अवादीत्-हे श्रमणायुष्मन् ! तस्माद्  
हेतोः मम प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठिता-सुस्थिरा यथा तत्र जीवः स शरीरम् इति ॥मृ. १३१॥

मूलम्-तएणं केसीकुमारसमणे पएँसि रायं एवं वयासी-अत्थि  
णं पएँसी ! तव सूरियकंता णाम देवी ? हंता अत्थि, जइ णं तुम  
पएँसी त सूरियकंतं देविं ण्हाय कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपाय-  
च्छित्तं सव्वालंकारभूसिय केणइ पुरिसेण ण्हाएणं जाव सव्वाल-  
कारभूसिएण सँडि इट्ठे सद्धफरित्तसरूवे गंधे पंचविहे माणुस्सए  
काभभोगे पच्चणुभवमाणिं पासिज्जामि तस्स णं तुमं पएँसी ! पुरिस-  
स्स क उडं निव्वत्तेज्जासि ? अहण भंते ! तं पुरिसं हत्थच्छिण्णगं

वह आर्प होने से भूत अर्थ में हुआ है 'तं माण नत्तया ! तुमं पि' इत्यादि  
सूत्र में आगत दो निषेधार्थक पद प्रकृत अर्थ की पुष्टि करते हैं अर्थात्  
तुम अवश्य ही धार्मिक आदि विशेषणों वाले होकर अपने जनपद की  
करभरवृत्ति को अच्छी तरह से चलाओ-यह अर्थ पुष्ट होता है ॥मृ. १३१॥

वर्तमानस्थिति निर्देश थियेल छे ते आर्प डोवाथी भूत अर्थमा न थियेल छे आभ  
समज्जुं. 'तं माण नत्तया ! तुमं पि' वगेरेसूत्रमा आवेला जे निषेधार्थकपदो प्रकृत  
अर्थने न पोये छे. ओटखे छे तमे अवश्यमेव धार्मिक वगेरे विशेषणोथी संपन्न थयने पोताना  
जनपदनी करभरवृत्तिने सारी रीते चलावो-आ अर्थ पुष्ट थाय छे ॥ अ. १३१॥



મનમિત્યાદિ-દૃષ્ટ -અભિવ્યપિતઃ, વાન્ત -વચ્ચનોયત્પાત્, પ્રિયઃ-પ્રેમપાત્રત્વાત  
 મનોદ્ધઃ-મનસા સમ્યગપેક્ષયતયા જ્ઞાત-જ્ઞાત, મનોડમ -મનોગમ્યઃ, અતિપ્રિય  
 ત્વેન મનસ્યવસ્થિતત્વાત, સ્થૈર્ય -સ્થિરતાગુણસમ્પન્ન બૈશ્વસિકઃ-વિશ્વાસ  
 પાત્રમ્ સમતઃ-સમાનપાત્રમ્, યદ્વતઃ-મધુરમાનપાત્રમ્, અનુમત -હૃદયપ્રિયઃ  
 તદાકારાવકત્વાત રત્નકરખંડક સમાન -રત્નનાં-વર્ણેતનાદીનાં યત્વ કરખંડક  
 તત્સમાન -રત્નકરખંડક-સુચ્યત્થ ધામાત્યન્તાપેક્ષત્વેન દ્યોષ્યમ્ જીવિષોત્સવિકઃ  
 -જીવિતસ્ય-જીવનસ્ય ય ઉત્સવઃ-ઉત્સરિક =ઉત્સવરૂપઃ, નય નય જ્વજ-જ  
 ત્વાત હૃદયાન્નિદનનઃ-હૃદયાન્ન-દેવારકઃ ઉદુષ્યરપુર્ણમિદ-ઉદુષ્યરપુર્ણ યા  
 દુર્ભમ તયાડદમાપ અવળતયા-અવળેન, અદ્વ ! હ મુને ! કિં પુનઃ દર્શનતયા-  
 દર્શનેન અપિ તુ દર્શનનાત્યન્તદુર્લભોડદમિત્યર્થઃ, તત્-તસ્માત્ યદિ-ચેત્  
 ત્વલ્લુ સ આર્યકઃ મમ આગત્ય વદત્ત કથયત-વચ્ચનોયત્સ્વરૂપમાદ-વપ ત્વલ્લુ  
 નપ્તુક !-હે પૌત્ર ! અદ્વ તવ આર્યકઃ=પિતામાહઃ અમયમ્, કૃતૈવ-મર્યામેવ  
 જ્વતાંવિકાયાં નગર્યામ્ અપાર્મિયો યાવત્ નાં સમ્યક્ કરમરવૃત્તિ પ્રાવર્તયમ્  
 અપ્રાપ્ત મુઠે 'વવતેમિ' દર્યાપેત્વાદ્ મૃતાથે વત્ત માનનિદેશઃ । તતઃ-તસ્મા-

કમલિય દૃષ્ટ યા, કમનીય-સુદર જ્ઞાને મે કાન્ત યા, પ્રેમપાત્ર હોને સે પ્રિય  
 યા, મનસે ઉસે અવછી તરહ સે મપચ્ચકવ સ જ્ઞાના યા કમલિય મનોદ્ધ  
 યા, અતિપ્રિય હોને કે કારણ મનમે અવચ્ચિત યા કમલિયે વદ મનોડમ યા,  
 મનોગમ્ય યા સ્થિરતાગુણ સે સમ્પન્ન યા-અત સ્થૈર્યરૂપ યા વિશ્વાસપાત્ર  
 હોને સે બૈશ્વસિક યા, સન્માનપાત્ર હોને સ મમત યા મધુરરૂપ મં માન  
 પાત્ર, હોને સે મધુર માનપાત્રરૂપ યા ઉમકી આજ્ઞા કા આરાધક હોને  
 સ અનુમત-હૃદય પ્રિય યા અત્યન્ત અપેક્ષિત હોને સે રત્નકરખંડક ક સમાન  
 યા નયર હર્ષજનક હોને સ ઉત્સવિક ઉત્સવરૂપ યા, દુર્ભમિય હૃદયા-  
 દુર્લભક યા મૂલ મે 'વવતેમિ' વેસા જો વર્તમાનરૂપ સે નિર્દેશ હુમા ફે

તે આચરને અભિવ્યપિત હતો-જોથી છૂટ હતો કમનીય હોવાથી કાન્ત હતો પ્રેમપાત્ર  
 હોવાથી પ્રિય હતો અને તેને સારી રીતે અપેક્ષરૂપથી અભી લીધો હતો જોથી તે  
 મનોદ્ધ હતો અતિપ્રિય હોવાથી તે મનમાં અવચ્ચિત હતો જોથી તે મનોડમ હતો-  
 મનોગમ્ય હતો સ્થિરતાગુણ ગુણથી સમ્પન્ન હતો, જોથી સ્થૈર્યરૂપ હતો વિશ્વાસપાત્ર  
 હોવાથી બૈશ્વસિક હતો સન્માનપાત્ર હોવાથી સમત હતો, મધુરરૂપમાં માનપાત્ર  
 હોવાથી મધુરમાનપાત્ર રૂપ હતો તેની આજ્ઞાને માનનાર હોવાથી અનુમત-હૃદયપ્રિય  
 હતો, અત્યન્ત અપેક્ષ હોવાથી રત્નકર કમની જેમ હતો. નવનવીન રૂપ જનક હોવાથી  
 ઉત્સવિક-ઉત્સવરૂપ હતો-જોથી જ તે હૃદયાદુર્લભ હતો મૂલમાં 'વવતેમિ' એવે જે

कारणात्-खलु अहं भवहु-अन्यन्तं कञ्चिल्लुप्पम्=अतिसलिनं पापं कर्म  
समर्ज्य=समुपाज्यं नरकेषु उपपन्नः-नारकतयोत्पन्नोऽभवम्. तत्-तस्मात्कार-  
णात् नप्तुक!-हे पौत्र ! त्वमपि तथा सा भव, अधार्मिको यावत् नो सम्यक्  
करभरवृत्तिं प्रवर्तय-निषेधार्थकपदद्वयं प्रकृतार्थं दृढयतीति त्वमवश्यमेव  
धार्मिकादि विशेषणावशिष्टो भूत्वा स्वकस्य जनपदस्य करभरवृत्तिं सम्यक्  
प्रवर्तयेति भावः । सा खन् त्वमपि एवमेव-अहमिव सुबहु-पापकर्म यावत्  
यावच्छब्देन-समुपाज्यं-नरकेषु नैरयिकतया इति संग्राह्यम्, उत्पत्त्यसे मा  
उत्थेया इत्यर्थः, तत्-तस्मात् कारणाद्-यदि-चेत् खलु आर्यको मम  
आगत्य वदेन्-कथयेत्, ततः-तदा खलु अहं श्रद्धयाम्-भवद्वचने श्रद्धां कुर्याम्  
प्रतीया-विशेषतो विश्वस्याम्, रोचेयं रुचिं विषयीकुर्याम् यथा अन्यो जीवो  
ऽन्यच्छरीरम् नो तत् जीवः स शरीरम्-इति यस्मात् हेतोः खलु सः पूर्वोक्तः आर्य-  
कः ममागत्य नो-न एवं पूर्वोक्तप्रकारेण अवादीत्-हे श्रमणायुष्मन् ! तस्माद्  
हेतोः मम प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठिता-सुस्थिरा यथा तत् जीवः स शरीरम् इति ॥मृ. १३१॥

मूलम्-तएणं केसीकुमारसमणे पएसी रायं एवं वयासी-अत्थि  
णं पएसी ! तव सूरियकंता णाम देवी ? हंता अत्थि, जइ णं तुम  
पएसी त सूरियकंतं देविं णहाय कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपाय-  
च्छित्तं सव्वालंकारभूसिय केणइ पुरिसेण णहाएणं जाव सव्वाल-  
कारभूसिएण सद्धिं इट्ठे सद्धपरित्तसखवे गंधे पंचविहे माणुस्सए  
काभभोगे पच्चणुभवमाणिं पासिज्जासि तस्स णं तुमं पएसी ! पुरिस-  
स्स क उडं निव्वत्तेज्जासि ? अहण भंते ! तं पुरिसं हत्थच्छिण्णगं

बह आर्ष होने से भूत अर्थ में हुआ है 'त माण नत्तुया ! तुमं पि' इत्यादि  
सूत्र में आगत दो निषेधार्थक पद प्रकृत अर्थ की पुष्टि करते हैं अर्थात्  
तुम अवश्य ही धार्मिक आदि विशेषणों वाले होकर अपने जनपद की  
करभरवृत्ति को अच्छी तरह से चलाओ-यह अर्थ पुष्ट होता है ॥मृ. १३१॥

वतमान्दपमा निर्देश थयेल छे ते आर्ष होवाथी भूत अर्थमा न थयेल छे आभ  
समभवुं. 'तं माणं नत्तुया ! तुमं पि' वगेरे सूत्रमा आवेला जे निषेधार्थकपदे प्रकृत  
अर्थने न पोषे छे. ओटवेडे तमे अवश्यमेव धार्मिक वगेरे विशेषणोधी संपन्न थयने पोताना  
जनपदनी कलरवृत्तिने सारी रीते चलावो-आ अर्थ पुष्ट थाय छे ॥ अ. १३१॥

वा सुलाङ्ग वा सुलभित्तग वा पायच्छिन्नग वा एगाहस कूडाहस  
 जीवियाओ ववरोवपजा । अह ण पणसी से पुरिसे तुम एव वदेजा-  
 मा ताव मे सासी । मुहुत्तग हस्थच्छिण्णग वा जाव जीवियाओ  
 ववरोवाह जाव माव अह मित्त्तणाट्ठणियगसयणसुवधिपोरयण एव  
 वयामि एव खल्ल देवाणुत्पिया । पावाइ कम्माइ समायरेत्ता इमेया  
 रुव आवइ पाविज्जामि, त मा णं देवाणुत्पिया । तुममेवि केइ  
 पावाइ कम्माइ समायरइ, मा ण भे वि एव चेव आवइ पावेज्जाहि  
 य जहा ण अह, तस्स ण तुम पणसी । पुरिमस्स खणमवि पयमट्ठ  
 पडिमुणेज्जासि ? णो इणट्ठे समट्ठे, कम्हा ण ? जम्हा णं भते ! अव  
 रोही ण से पुरिसे, एवामेव पणसी ! तववि अज्जए होत्था इहेव  
 सेयवियाए णयरोए अग्गिमए जाव णो सम्म वरभरवि न पन्त्तेइ,  
 स णं अम्ह वत्तव्वयाए सुवट्ठु जाव उववन्नो, तस्स ण अज्जगस्स  
 तुम णत्तए होत्था इहे कते जाव पारुणयाए, से णं इच्चइ माणुसं  
 लोग हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं रुचाएइ हव्वमागच्छित्तए ।  
 चउहिं ठाणेहिं पणसी ! अट्ठणोववण्णए नरएसु नेरइए इच्छेइ माणुस  
 लोग हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं स=१५४ १ अट्ठणोववन्नए  
 नरएसु नेरइए से णं तत्थ महब्भूय वेयणं वेदेमाणे इच्छेज्जा माणु  
 स्स लोग हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं रुचाएइ ॥ २ ॥ अट्ठणोववन्नए  
 नरएसु नेरइए नरयपालेहिं भुज्जो भुज्जो समहिट्ठिज्जमाणे इच्छइ  
 माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं सचाणइ ॥ ३ ॥ अट्ठणोववन्नए  
 नरएसु नेरइए निरयवेयणिज्जसि कम्मसि अवस्तीणंसि अवेइयसि

आनजिन्नसि इच्छइ माणुसं लोग हवमागच्छित्तए नो चेव णं  
सचाएइ हवमागच्छित्तए । १। एव निरयाउंसि अवखीणे अचेइए,  
अणिज्जिण्णे इच्छेज्जा माणुस्सं लोग हवमागच्छित्तए नो चेव णं  
संचाएइ । इच्छेएहिं चउहिं ठाणोहं पएसी ! अहुणोवदन्ने नरएसु  
नेरडएसु नेरडए इच्छइ माणुसं लोग हवमागच्छित्तए नो चेव णं  
संचाएइ । तं सद्वहाहिं णं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्न सरीरं  
नो त जीवो तं सरीर ॥सू० १३२॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिने राजानमेवमवादात् अस्ति  
खलु प्रदेशिन ! तव सूर्यकान्ता नाम देवी ? हन्त अस्ति, यदि खलु त्वं  
प्रदेशिन ! तां सूर्यकान्तां देवीं स्नाता कृतबलिकर्म्म कृतकौतुकमालप्रा  
यश्चत्ता सर्वालङ्कारभूषिता केनापि पुरुषेण स्नातेन यावत् सर्वालङ्कारभूषि  
तेन स्नाद्म तृष्टान् शब्दस्पर्शरमरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष्यकान् काम-

‘तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं राय एवं वयासी’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे) इसके बाद केशीकुमारश्रमणने  
(पएसिं राय एवं वयासी) प्रदेशो राजा से ऐसा कहा—(अत्थि णं पएसी !  
तव सूर्यकान्ता नाम देवी ? हे प्रदेशिन् तुम्हारी सूर्यकान्तानामकी देवी है ?  
(हे ता, अत्थि) हां भदन्त ! है (जइ णं तुमं पएसी ! तं सूरियकतं देविं  
पहायं कयबलिकम्मं कयकोउयमगलपायच्छित्तं सव्वालंकारभूमियं केणइ  
पुरिसेणं पहाएणं. जाव सव्वालंकारभूसिएणं सद्धिं इट्ठे सदफरिसरसरुवे गंधे  
पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुवभवमाणिं पासिज्जोसि) यदि हे प्रदेशिन !

‘तए ण केसीकुमारसमणे पएसिं राय एवं वयासी’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—( तए ण केसीकुमारसमणे ) त्थारपछी केशीकुमार श्रमणे (पएसीं  
राय एव वयासी) प्रदेशी राजने आ प्रभाणु कहुं. (अत्थि णं पएसी ! तव  
सूरियकंता नाम देवी ? ) हे प्रदेशीन् ! तमारी सूर्यकान्ता नाम देवी छ ?  
(हे ता, अत्थि) हां भदन्त ! छ. (जइणं तुम पएसी ! तं सूरियकतं देविं  
पहाय कयबलिकम्म कयकोउयमगलपायच्छित्तं सव्वालंकारभूमिय  
केणइ पुरिसेण पहाएण, जाव सव्वालंकारभूसिएण सद्धिं इट्ठे सदफरिस-  
रसरुवगंधं पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुवभवमाणिं पासिज्जोसि) तो छ

मोगान् प्रपनुमन्तीं पश्ये (नदा) तस्य स्मृतु त्वं प्रदेक्षिन् । क इष्टं  
निवर्तयः ? अहं स्मृतु मन्त्रम् । न पुरुष इत्यजिह्वसक वा शूलानिग वा  
शूलमिनक वा वात्सिहन्नक वा एकाऽऽपात कृष्णघात जीविताद् व्यप  
रोपयेयम् अथ स्मृतु प्रदेक्षिन् । स पुरुषः स्वाम एव वदेत् मा गायत्

तम स्नान कृत्वापिहर्मा—(काक आदि का अनादिका भाग देनेका उस  
देवीको कि जिसने कौतुक, मगलरूप पायबिले कर लिया है और ममस्त  
अण्डकारों से जो विभूषित बनो हुई है किसी भी स्नान यावत् सर्वोद्धार  
विभूषित परपुरुष के साथ इष्ट सुन्दर स्पर्श, रस, रूप, मध्व इन पांच  
प्रकार के अनुकूलन संबंधी कामयोगों का अनुभव करती हुई दाबलो ता  
(तस्मिन् ण तुम पणमी ! पुरिसस्म क इत्थं निष्पृच्छामि ?) ता है प्र  
ज्ञिन ! तुम उस पुरुष क लिये क्या-कसा लब्ध हो ? (अहं ण मत्ते ! त  
पुरिस इत्यविण्णम वा मूयाइम वा सुलभिन्नम वा पापच्छिन्नम वा एगा  
हव कूडाहव जीवियायो वारोवज्जा) तब प्रदेक्षी राजाने कहा—हे  
मदन्त ! मैं उस पुरुष का ऐसा दंड दू कि जिससे उसके दोनों हाथ काट  
लिय जावे, या उसे शूली पर चढ़ा दिया जावे, या उसके दोनों पैर  
काट लिय जावे, या एक हो प्रकार में उसका प्राण छे मिया जावे, या  
किसी पर्वत शिखर पर उसे पड़ाकर वहां उस चक्रेक दिया जावे कि  
जिससे वह अपने जीवन से रहित हो बैठे। (प्रहं ण पणमी ! स पुरिसे

प्रदेक्षिन् । तमे नेच्छे स्थित, हुन अलिकर्मा-समग्र वगैरने अ न बाज आभ्यो छ कोरी  
ते देवाने के नेच्छे होतुक भजलरूप प्रायश्चित्तो करी लीधा छ अने समस्त अल  
होशधी ने विभूषित मध्य गयेही छ अने जमे ते स्नान यावत् सर्वोद्धारविभूषित  
परपुरुषकी साथ छे इष्ट सुन्दर स्पर्श रस रूप, मध्व आ पांच प्रकारका अनुकूलन  
संबंधी कामयोगों कोजवती कोष्ट हो ते (तस्मिन् ण तुम पणमी ! पुरिसस्म क  
इत्थं निष्पृच्छामि ?) तो के प्रदेक्षिन् । तमे ते पुरुषने छ अतनी शिक्षा प्रये ?  
(अहं ण मत्ते ! तं पुरिसे इत्यविण्णम वा मूयाइम वा सुलभिन्नम वा पापच्छि  
न्नम वा एगाहव कूडाहव जीवियायो वारोवज्जा) तब प्रदेक्षी राजाने  
कह्य के कहत । हु ते पुरुषने आ अतनी शिक्षा करीय के नेच्छी तेना अ ने हारी  
हाथी देनामा आवे के तेने शूली पर चढ़ावतामा आवे के तेना अने पथे हाथी  
नाथवामा आवे के कोठ के बागों तेने भारी नाथवामा आवे अजर पर्वतशिखर  
पर छे अथ तेने त्वाथी नीधे हेरी देनामा आवे के नेच्छी परिधामि ते सुलु पागे

स्वामिन ! मुहुर्न क हस्तच्छिन्नक वा यावत् जीविताद् व्यपगपय यावत् तावद् अहं मित्र ज्ञाति-निजक स्वजनसम्बन्धिपरिजनम् एवं वदामि-एव खलु देवानुप्रिया ! पापानि कर्माणि समाचर्य इमाभेनद्रुवाम् आपात्ति प्राप्नोमि, नत मा खलु देवानुप्रिया ! युयमपि केचित् पापानि कर्माणि समाचरत, मा खलु युयमपि एवमेव आपत्ति प्राप्नुत यथा खलु अहं, तस्य खलु त्वं प्रदे-

तुमं एवं वएज्जा-मा ताव मे सामी ! मुहुत्तगं हत्थाच्छिण्णगं वा जीवियाओ ववरोवेहि जाव ताव अहं मित्तणाहणियगमयणसंबंधिपरियणं एवं वयामि) इस प्रकार से प्रदेशी राजा का कथन सुनकर केशीश्रमणने उससे ऐसा कहा-हे प्रदेशिन ! यदि वह तुमसे ऐसा कहे-हे स्वामिन ! आप थोड़ी देर तक ठहरिये. मेरे हाथ पैर न काटिये यावत् मुझे जीवन से रहित न कीजिये, तब तक मैं मित्र, माता आदि ज्ञाति, स्वपुत्रादिक निजक, पितृव्यादि वजन श्वशुर आदिक सम्बन्धिजन, दासो दास आदि परिजन, इन सब से ऐसा कह दूं कि (एवं खलु देवानुप्रिया ! पावाइं कम्माइं समायरत्ता इमेयारुवं आवइं पाविज्जामि) हे देवानुप्रियो ! मैं पापकर्मों को समाचरित करके इस प्रकार की आपत्ति को पा रहा हूं (तं मा णं देवानुप्रिया ! तुव्भे वि केइ पावाइ कम्माइं समायरइ) इसलिये हे देवानुप्रियो ! आप लोग कोई भी पापकर्म मत करना कि (मा णं भे वि एवं चेव आवइं पावेज्जाहि य जहा णं अहं) जिससे तुमको भी ऐसी आपत्ति प पडना पड़े, जैसा

(अहं णं पएसी ! से पुरिसे तुमं वदेज्जा मा ताव मे सामी ! मुहुत्तगं हत्थ-च्छिण्णगं वा जाव जीवियाओ ववरोवेहि जाव ताव अहं मित्तणाहणियग-मयणसंबंधिपरियणं एवं वयामि) आ प्रभाणु प्रदेशी राजानुं कथन सामग्रीने केशीकुमार श्रमणु तेमने कथुं के डे प्रदेशिन ! जे तमने आ प्रभाणु कडे के स्वामिन ! आप थोड़ी व्यत थोली जव. भांरा हाथपग आपो नडि यावन् भने जवन रहित पणु जनावो नडि हुं मित्र, माता, पिता वगेरे ज्ञाति, स्वपुत्रादिक निजक पितृ-व्यादि स्वजन, श्वशुर वगेरे सम्बन्धिजन, दासदासी वगेरे परिजन आ जधाने आ प्रभाणु कडी हठ के (एवं खलु देवानुप्रिया ! पावाइं कम्माइं समा-यरत्ता इमेयारुवं आवइं पाविज्जामि) हे देवानुप्रियो ! हुं-पापकर्मों आचरणु करीने आ जतनी शिक्षा लोगवी रह्यो छुं. (तं मा णं देवानुप्रिया ! तुव्भे वि केइ पावाइ कम्माइं समायरइ) ओथी हे देवानुप्रियो तमें कोइपणु जतनुं पापकर्म आचरता नडि (मा णं भे वि एवं चेव आवइं पावेज्जाहि य जहा णं अहं) ओथी तमने आ जतनी शिक्षा लोगवी पडे के जेवी हुं लोगवी रह्यो छुं

शिव ! पुरुषस्य सज्जमाने एतमर्थं प्रतिशृणुयाः ? , नायमर्थः समर्थः, कस्मात्  
स्वल्पः ? यस्मात् स्वल्पं भवन्ति । अथवापी स्वल्पं न पुरुषः एवमर्थं प्रदेदन् ।  
तथापि आर्थिकाऽनघत इहेव 'श्वतविकाया' नमस्याम् अपार्मिको यावत् नो  
सम्पत् कर्मरविर्ति मावर्तयत, स स्वल्पं मम स्वल्पं यतः सुषट् पारव  
उपपन्नं, तस्य स्वल्पं आर्थिकस्य त्वं नष्टकोऽभवः, इह कान्त यावत्  
वर्धनतया, स स्वल्पं इच्छति मनुष्य मोक्षं प्राप्तमागन्तुं नैव स्वल्पं प्रकृति  
वीक्षमागन्तुम् शक्नुमिः स्यान् नैव प्रदेदन् । अपुनापवन्नकाः नरकपु नैविक

किं न पद गया इ । (तस्मिन् तुम पपसा ! पुरिसस्म स्वल्पमपि एवमहं  
पश्चिमुणेज्जामि ? ) ना इ प्रदेदन् । तुम कया त्वम पुरुष की बात की  
घोड़ी मा भी दर के मिय स्वीकार कर मागे ? (तो इन्हें समझें) हे  
मदन्त ! यह भये समर्थ नहीं है-मर्थात् उसकी यह बात स्वीकार नहीं  
की जावेगी (मम्हा) क्यों कि (म स भते ! अथवाही न स पुरिस) हे  
मदन्त ! वह पुरुष अपराधी है । (एवामेव पपसी ! तव वि अज्जण इत्था)  
तो इसी तरह से हे प्रदेदन् ! तुम्हारे भी आर्थिक हुए हैं । (एवामेव  
इहेव सेवयिष्याण जपरीण अपार्मिण गो, सम्म कर्मरविर्ति पवनेइ) उन्होंने  
इस श्वतविका नगरी में अपना जीवन अपार्मिक बनाया है, तथा प्रजाजन  
से प्राप्त देवस से उनका उन्होंने अच्छी तरह से पालनपोषण नहीं किया है।  
(से न मम वत्तमाए सुषट् जाव उववन्तो) इस तरह मरी वस्तुव्यता क  
अनुसार वे अनेक अतिमांसन पाप कर्मों का भर्जन करके यावत् किमा  
एक नरक की पर्याय से उववन्त हुए हैं । (तस्मिन् अज्जणस्स तुम मणुए  
इत्था, इहे कते जाव पामणयाए) उन्हीं आपक के तुम इष्ट कान्त

(तस्मिन् तुम पपसी ! पुरिसस्स स्वल्पमपि एवमहं पश्चिमुणेज्जामि !)  
तो हे प्रदेदन् ! तुम ते पुरुषनी बातने श्रद्धा वणत भाटे पण स्वीकारी देखो !  
(तो इन्हें समझें) हे कान्त ! आ अर्थं समर्थं नथी कोटवे हे तेनी आ याव  
स्वीक्षयमां अपपसी नदि । (मम्हा) हेमते (म से मते ! अथवाही न से पुरिसे)  
हे कान्त ! ते पुरुष अपराधी हैं । (एवामेव पपसी ! तव वि अज्जण इत्था)  
तो आ प्रभावे न हे प्रदेदन् तमाश भाटे पण आर्थिक तथा है 'एवामेव इहेव  
सेवयिष्याण जपरीण अपार्मिण गो सम्म कर्मरविर्ति पवनेइ) तेमवे  
पोत्तान् एवम सेवयिष्याण नजरीमां अपार्मिक पीते पमाए भुंति तेमम प्रभावेना  
पासेधी न वत्तमाए देखीने पण तेमम सारी पीते पोत्तान् भुंति नथी । (से न मम  
वत्तमाए सुषट् जाव उववन्तो) आ प्रभावे आश कथन मुख्य तेमवे पण  
पाप्मनीय अपार्मिक करीने यावत् हेम को नरकमां नरकनी पर्यायधी नम पाप्मां है।  
(तस्मिन् अज्जणस्स तमं जपण इत्था, इहे कते जाव पामणयाए)

इच्छात मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव खलु शक्नोति- १ अधुनोपपन्नकः नरकेषु नैरयिकः स खलु तत्र महद्भूतां वेदनां वेदयन् इच्छेत् मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव खलु शक्नोति । २ अधुनोपपन्नको नरकेषु नैरयिका नरकपालैः भूयो भूयः समधिष्ठीयमानः इच्छति मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं

आदि विशेषणों वाले पौत्र हो (मे ण इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ, हव्वमागच्छित्तए) वे तुम्हारे आर्यक ! यद्यपि इस मनुष्यलोक में वहाँ से जल्दी से जल्दी आना चाहते हैं, परन्तु वे वहाँ से आने के लिये असमर्थ है । (चउहिं ठाणेहिं पणमी ! अहुणोववण्णण नरएसु नेरइए इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ) क्यों की है प्रदर्शित ! अधुनोपपन्नक नारक चार कारणों को लेकर मनुष्यलोक में शीघ्र आने की इच्छा करता हुआ भी वह वहाँ से शीघ्र नहीं आ सकता है । (अहुणोववण्णण नरएसु नेरइए-से ण तत्थ महब्भूय वेयणं वेदेमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ) वे चार कारण इस प्रकार से हैं--अधुनोपपन्नक नैरयिक नरकों में बहुत बड़ी वेदना का अनुभव करता है, अतः वह चाहता है कि मैं मनुष्यलोक में उत्पन्न हो जाऊँ-परन्तु वह वहाँ से निकलने में सर्वथा असमर्थ होता है-वहाँ नहीं आ सकता है ? (अहुणोववण्णण नरएसु नेरइए नरय-

तेज आर्यकना तमे छष्ट धात वगेरे विशेषणोपाणा पौत्र छे. (मे ण इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ, हव्वमागच्छित्तए) तमारा ते आर्यक ने के मनुष्यलोकमा त्याही जल्दीमा जल्दी आववा छच्छे छे, परंतु तेज्या त्याही आववामा असमर्थ छे. (चउहिं ठाणेहिं पणसी ! अहुणोववण्णण नरएसु नेरइए इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ) केमके छे प्रदर्शित ! अधुनोपपन्नक नारक चार कारणेने लीधे मनुष्यलोकमा जल्दी आववानी छच्छा धरावे छे छलाये ते त्याही जल्दी आवी शकतो नही. (१ अहुणोववण्णण नरएसु नेरइए से णं तत्थ महब्भूय वेयणं वेदेमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ) ते चार कारणे आ प्रमाणे छे. अधुनोपपन्नकनैरयिक नरकोमा तीव्र वेदनाने अनुभवे छे ज्येथी ते छच्छे छे के हुं मनुष्यलोकमा जन्म पासु परंतु ते त्याही नीकणवामा सर्वथा असमर्थ होय छे, अही ते आवी शकतो नही । (२ अहुणोववण्णण नरएसु नेरइए णरयपाछेहिं झुज्जो झुज्जो समहिट्ठिज्जमाणे इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमाग-



श्रित ! पुरुषस्य सगमसि एनमर्थं प्रतिश्रुत्या ? , नाथमर्थं समर्थं , कस्मात्  
 स्वलु ? यस्मात् स्वलु भवन्त । अराधी स्वलु स पुरुषः एवमेव प्रदेदन् ।  
 तत्वापि आर्थिकऽवस्थ इहेव स्वतविकाया ' नगर्याम् अपार्थिको यावत् नो  
 सम्पद् करमरुतिं माकर्तयत् , स स्वलु मम स्वतविकाया सुयद् यावत्  
 उपपन्नः , तस्य स्वलु आर्थिकस्य स्व नष्टकोऽभव , इष्टः कान्त यावद्  
 दर्शनतया , स स्वलु इच्छान् मनुष्य मोह जाग्रमागन्तु नैव स्वलु शक्नोति  
 जीवमागन्तुम् चतुर्भिः स्थानैः मर्दान्न । अपुनापपन्नकः नरकपु नैरयिक

किं नै पद गया इ । ( तस्मिन् न तुम पदसी । पुरिसस्म स्वमयि एवमदं पदिसुणेज्जासि ? ) ना इ मदेहिम् । तुम क्या उस पुरुष की बात का  
 घोड़ी सा मी दर के मिय स्वीकार कर भागे ? ( ना इगदं समदं ) हे  
 मर्दान ! यह अर्थ समर्थ नहीं है—अर्थात् उसकी यह बात स्वीकार नहीं  
 की जावगी ( मद्दा ) क्या बि ( न स भते । अराधी न स पुरिस ) हे  
 मर्दान ! यह पुरुष अपराधी है । ( एवमेव पदसी । तव वि अजगत् होत्वा )  
 तो इसी तरह स हे मर्दान ! तुम्हारे भी आर्थिक रूप है । ( एवमय  
 इहेव सेयमियाए जपरीए अपार्थिक गो , सम्म करमरुतिं तवनेइ ) उन्होंने  
 इस स्वतविका नगरी में अपना जीवन अपार्थिक बनाया है , तथा प्रजापति  
 स मात्त देवस से उनका उन्होंने अच्छी तरह से पालनपोषण मही किया है ।  
 ( से न अग्न वचस्वाए सुयद् जाव उवन्तो ) इस तरह मरी वस्तुव्यता व  
 अनुसार व अनेक अतिमात्तन पापकर्मों का भर्जन करके यावत् किमा  
 एक नरक की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं । ( तस्मिन् न अजगत्स तुम गप्पए  
 होत्वा , इहे कते जाव पामणयाए ) उहीं आथक के तुम इस कान्त

( तस्मिन् न तुम पदसी । पुरिसस्म स्वमयि एवमदं पदिसुणेज्जासि ! )  
 तो हे मर्दान ! तु वही ते पुरुषनी बातने भिक्षु वचन भाटे पदु स्वीजरी देखो  
 ( गो इगदं समदं ) हे मर्दान ! ना अथ समर्थ नहीं कोटवे हे तेनी ना याव  
 स्वीहस्वमां आपसे नहीं । ( मद्दा ) हेमके ( न से भते । अराधी न स पुरिस )  
 हे मर्दान ! ते पुरुष अपराधी है । ( एवमेव पदसी । तव वि अजगत् होत्वा )  
 तो आ प्रभावे न हे मर्दान ! वमस भाटे पदु आर्थिक तथा है । ( एवमेव इहेव  
 सेयमियाए जपरीए अपार्थिक गो , सम्म करमरुतिं तवनेइ ) तेमवे  
 पित्तनु लवन सेवान्निज नगरीमां अपार्थिक इति पञ्चाइ भुंति है तेमज प्रजापति  
 आपसे ही हर वस्तु करीने पदु तेमज सारी पडे पोषण भुंति नहीं । ( स न अग्न  
 वचस्वाए सुयद् जाव उवन्तो ) आ प्रभावे भास भवन सुयत् तेमवे पदा  
 पामिनि अर्थन करीने यावत् केत को नरकमा नरकनी पर्यायवी नम पापमां है  
 ( तस्मिन् न अजगत्स तुम गप्पए होत्वा , इहे कते जाव पामणयाए )

નરકેષુ નૈરર્થકઃ દૃચ્છતિ માનુષ્યં લોકં શીઘ્રમાગન્તુ નૈવ સ્વલુ શવનોતિ ।  
તત્ શ્રદ્ધેદિ સ્વલુ પ્રદેશિન્ । યથા-અન્યો જીવ અન્યતૂ શરીરમ્ નો તજ્જીવઃ સ  
શરીરમ્ ॥ મ. ૧૩૨ ॥

ટીકા--'નૈ ૫' કેશીકુમારમમણે' ઇત્યાદિ-તતઃ-તદનન્તરમ્, સ્વલુ  
કેશીકુમારશ્રમણઃ પ્રદેશિન્' ગજાનમેવમવાદીત-હે પ્રદેશિન ! તવ મર્યકાન્તા-  
નામ દેવી=રાજો અસ્તિ સ્વલુ ? તતઃ પ્રદેશી ગજોત્તરયતિ-હન્ત !' ઇતિ

एहि चउह ठाणेह पएसी ! अहुणाववन्ने नरएसु नेरइएसु नेरइए  
इच्छइ माणुमं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव ण संचाएइ) इस प्रकार  
इन चार कारणों से हे प्रदेशिन् । अधुनोपपन्नक नारक मनुष्यलोक में शीघ्र  
जाने का अभिलाषी होता हुआ भी वह वहां से शीघ्र मनुष्य लोक में  
नहीं आ सकता है । (तं मदहाहि णं पएसी ! जहा अन्नो जीवो अन्नं  
सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं) इसलिये हे प्रदेशिन् ! तुम इस बात पर  
अवश्य विश्वास करो, कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है ।

ટીકાર્થ—કેશીકુમારશ્રમણને પ્રદેશી રાજા સે જો કહા વહ હમ સૂત્ર  
ઢારા પ્રકટ કિયા ગયા છે. હમમેં જીવ ભિન્ન છે ઓર શરીરભિન્ન છે હમ  
વાતકો ઉમકે આર્યક- (પિતામહ દાદા) નરક સે આકર ઉસે ક્યોં નહીં  
સમજાતે છે હસ વાત કા ઉત્તર ઉસે સમજાયા ગયા છે. ઉમસે કેશી-  
કુમારશ્રમણને કહા હે પ્રદેશિન ! તુમ્હારી જો સૂર્યકાન્તા દેવી છે ઉસસે  
યદિ કોઈ મનુષ્ય ઉમી કે જૈસે વિશેષણોં વાલા ઘન કર મનોઽનુકૂલ શબ્દ

શકતો નથી. (इच्छएहि चउह ठाणेह पएसी ! अहुणाववन्ने नरएसु नेर-  
इएसु नेरइए इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव ण संचाएइ)  
आ प्रभाणु आ यादे आर कारणाथी हे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नक नारक मनुष्यलोकमां  
जलही आववानी छच्छ राभतो छाय छता ये त्याथी जलही मनुष्यलोकमा आवी  
शकतो नथी (त मदहाहि णं पएसी ! जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं जीवो  
तं सरीरं) येथी हे प्रदेशिन् ! तमे आ बात पर अवश्य विश्वास करो के एव  
भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे.

ટીકાર્થ—કેશીકુમારશ્રમણે પ્રદેશી રાજાને જે કંઈ કહ્યું છે તે બધું આ સૂત્ર  
વડે પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે. આમા જીવ ભિન્ન છે અને શરીર ભિન્ન છે એ વાતને  
તેના આર્યક (પિતામહ-દાદા) નરકમાંથી આવીને કેમ સમજાવતા નથી એ વાત આ પ્રમાણે  
તેને સમજાવવામાં આવી છે. કેશીકુમારશ્રમણે કહ્યું કે હે પ્રદેશિન્ ! તમારી  
જે સૂર્યકાન્તાદેવી છે તેની સાથે જે કોઈ માણસ તેના જેવા વિશેષણોથી સુકત થઈને

नैव स्वच्छमवतीति । ४ अधुनापपन्नकः नरकपु नैरयिक निरयवेदनीय कर्मणि  
अक्षीणे अवहिते अनिर्मिणं इच्छति मानुष्य भोग क्षीघ्रमागन्तु नैव स्वच्छ  
मवतीति । ४ एवम् अधुनापपन्नका नरकपु नैरयिको निरयाऽऽप्युपि कर्मणि  
अक्षीणे अवहिते अनिर्मिणं इच्छति मानुष्य भोग क्षीघ्रमागन्तु नैव स्वच्छ  
मवतीति क्षीघ्रमागन्तुम् इत्यनेनानुमितिः ध्यानेः प्रवेशिम् । अधुनापपन्नका

पालेहिं सुखो सुखो समारोहज्जमाणे इच्छा माणुस भोग इवमागच्छि-  
त्तए नो वेव ण सचाएइ) अधुनापपन्न नारक नरकी में परमाधार्मिकरूप  
नरकपालों द्वारा बार बार आक्रमणमात्र होता हुआ यह चाहता है कि मैं  
मनुष्यलोक में क्षीघ्र सम्पन्न हो जाऊँ, परन्तु यह मनुष्यलोकमें क्षीघ्र उत्पन्न  
नहीं होसकता है २ (इन्द्रकोवचनम् नरपु नरइव निरयवेयणिज्जसि कम्मसि  
अवस्सीमसि अवइयसि अनिग्गिज्जमसि इच्छइ माणुस भोग इवमागच्छि-  
त्तए नो वेव ण सचाएइ इवमागच्छि-  
त्तए) अधुनापपन्नक नारक नरक में नरक  
भोग्य अस्मात्वेदनीय कर्म क अभीष्ट होने पर, अननुभूत होने पर एव  
अनिजिगं नाञ्च होमे पर, मनुष्यलोक में जानेका अभिलाषी होता हुआ भी  
नहीं आ सकता है ३ (४ एव नैरयाउसि अवस्सीणे अवइए अनिजिमण-  
इच्छेज्जा माणुस्स भोग इवमागच्छि-  
त्तए नो वेव ण सचाएइ) हमी प्रकार  
चौथा कारण यह है कि उसके नरकसंघर्षी आयु क्षीण नहीं हुआ है, उसका  
वेदन नहीं हो चुका है तथा नारक आयु की निमरा भी नहीं हुई है इसी  
कारण संघर्ष मनुष्यलोक में मान को इच्छाकरता हुआ भी नहीं आ सकता है (इच्छे

च्छि-  
त्तए नो वेव ण सचाएइ) अधुनापपन्नक नारक नरकी में परमाधार्मिकरूप  
नरकपालों वडे बार बार आक्रमणमात्र धरने ते ओम छुछे छे छे छे मनुष्यलोक में नरकी  
उत्पन्न धार्क परन्तु ते मनुष्यलोक में नरकी उत्पन्न धार्क शक्यते नहीं, २. (इन्द्रको-  
वचनम् नरपु नरइव निरयवेयणिज्जसि कम्मसि अवस्सीमसि अवइयसि  
अनिग्गिज्जमसि इच्छइ माणुस भोग इवमागच्छि-  
त्तए नो वेव ण सचाएइ इवमागच्छि-  
त्तए) अधुनापपन्नक नारक नरकी में भोग्य अस्मात् वेदनीय कर्मअभीष्ट  
होवासी अननुभूत होवासी अने अनिजिगं होवासी मनुष्यलोक में आवधानी अभिलाषा  
शक्ते छे छत्तांवे ते त्यांसी सुख धार्क शक्यते नहीं, अने (४ एव नैरयाउसी  
अवस्सीणे अवइए अनिजिमण-  
इच्छेज्जा माणुस्स भोग इवमागच्छि-  
त्तए नो वेव ण सचाएइ) आ प्रमाणे न शक्य कारण आ प्रमाणे छे छे नरकसंघर्षी  
तेछ आयु क्षीण धर्मु नहीं, तेछ वेदन धर्मु नहीं मन् नारक आयुनी निज-  
पुन धर्मु नहीं ओसी न ते मनुष्यलोक में आवधानी छत्तांवे धर्मावे छे छत्तांवे आसी

નરકેષુ નૈરાર્યકઃ હચ્છતિ માનુષ્યં લોકં શીઘ્રમાન્તુ નૈવ સ્વલુ શવનોતિ ।  
તત્ શ્રદ્દેહિ સ્વલુ પ્રદેશિન્ ! યથા-અન્યો જીવ અન્યત્ શરીરમ્ નો તજ્જીવઃ સ  
શરીરમ્ ॥ સ. ૧૩૨ ॥

ટીકા--‘તદ્ ગં નેમીકુમારશ્રમણે’ ઇત્યાદિ-તતઃ-તદનન્તરમ્, સ્વલુ  
કેશીકુમારશ્રમણઃ પ્રદેશિન્ ગજાનમેવમવાદીત-હે પ્રદેશિન્ ! તવ સૂર્યકાન્તા-  
નામ દેવી-ગજો અસ્તિ સ્વલુ !, તતઃ પ્રદેશી ગજોત્તરયતિ-હન્ત !’ ઇતિ

एहि चउह ठाणेह पएसी ! अहुणोववन्ने नरएसु नेरइएसु नेरइए  
इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव ण संचाएइ) इस प्रकार  
इन चार कारणों से हे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नक नारक मनुष्यलोक में शीघ्र  
जाने का अभिलाषी होता हुआ भी वह वहां से शीघ्र मनुष्य लोक में  
नहीं आ सकता है। (तं सद्वहाहि णं पएसी ! जहा अन्नो जीवो अन्नं  
सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं) इसलिये हे प्रदेशिन् ! तुम इस बात पर  
अवश्य विश्वास करो, कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है।

ટીકાર્થ—કેશીકુમારશ્રમણને પ્રદેશી રાજા સે જો કહા વહ ઇસ સૂત્ર  
દ્વારા પ્રકટ ક્રિયા ગયા છે. ઇમમેં જીવ ભિન્ન છે ઓર શરીરભિન્ન છે ઇસ  
વાતકો ઉમકે આર્યક-(પિતામહ દાદા) નરક સે આકર ઉસે કયો નહીં  
સમજાતે હૈં ઇસ ઘાત કા ઉત્તર ઉસે સમજાયા ગયા છે. ઉસસે કેશી-  
કુમારશ્રમણને કહા હે પ્રદેશિન્ ! તુમ્હારી જો સૂર્યકાન્તા દેવી છે ઉસસે  
યદિ કોઈ મનુષ્ય ઉમી કે જૈસે વિશેષણોં વાલા બન કર મનોઽનુકૂલ શબ્દ

શકતો નથી. (इच्चेएह चउह ठाणेह पएसी ! अहुणोववन्ने नरएसु नेर  
इएसु नेरइए इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव ण संचाएइ)  
આ પ્રમાણે આ ચારે ચાર કારણોથી હે પ્રદેશિન્ ! અધુનોપપન્નક નારક મનુષ્યલોકમાં  
જલદી આવવાની ઇચ્છા રાખતો હોય છતાં એ ત્યાંથી જલદી મનુષ્યલોકમાં આવી  
શકતો નથી (તં સદ્વાહિ ણં પएसी ! જહા અન્નો જીવો અન્નં સરીરં, નો તં જીવો  
તં સરીરં) એથી હે પ્રદેશિન્ ! તમે આ વાત પર અવશ્ય વિશ્વાસ કરો કે જીવ  
ભિન્ન છે અને શરીર ભિન્ન છે.

ટીકાર્થ—કેશીકુમારશ્રમણે પ્રદેશી રાજાને જે કંઈ કહ્યું છે તે બધું આ સૂત્ર  
પડે પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે. આમાં જીવ ભિન્ન છે અને શરીર ભિન્ન છે એ વાતને  
તેના આર્યક (પિતામહ-દાદા) નરકમાંથી આવીને કેમ સમજાવતા નથી એ વાત આ પ્રમાણે  
તેને સમજાવવામાં આવી છે. કેશીકુમારશ્રમણે કહ્યું કે હે પ્રદેશિન્ ! તમારી  
જે સૂર્યકાન્તાદેવી છે તેની સાથે જે કોઈ માણસ તેના જેવા વિશેષણોથી યુક્ત થઈને

स्वीकार प्रदत्त-विधान मम मूर्धन्याभावात् । तथा केशीकुमारभजन-  
भाष-यदि-येन् खलु स्व पदेऽग्री रामा ता-पूर्वोक्ता मूर्धन्याभावात् देवी  
स्नाता-कृतस्नाना कृतबलिर्कर्मणि-कृतवापसादि निमित्तान्नमाता, कृत  
चौकमङ्गलपापमिच्छा-कृतमपौषा-नित्यकारि महावार्धवापसाधनक्रिया, सर्वा  
मङ्गाभूषिता-गङ्गाहापाहाभरणालङ्कृता केनापि कनचित् पृथग्न सार्द्ध,  
कीदृशेन ? इत्याह-स्नानेन ? इत्याह-स्नानेन यावत्-यावत्पदेन-कृतबलि  
कर्मणा कृतचौकमङ्गलपापमिच्छेन' इत्यर्था मूर्च्छिता, तथा सर्वाभङ्गारयुपितेन  
सार्द्ध इष्टान-मनोऽनुत्थान तावत्-स्वर्ग-मस्त्य-गन्धान पठ्यविधान-पठ्य  
मकारान मनुष्यकान-मानुष्योत्पन्नान कामयोगान्-पूर्वोक्तान् इत्यादीन्दिप  
विषयान् पत्यनुभवन्तीम्-भनुभवविषयीकृततीम् पश्यत तस्मिन्मरे हे मर  
ज्ञान ! त्व तस्य-पूर्वोक्तस्य स्वतु क-कीदृश दण्डनिग्रह निर्बन्धः-कुर्याः ? ।  
ततः प्रवेशिराज आह-इ मन्दन् ! अह खलु त-कृतनाहदुराचार पुरुष  
इत्यन्तिन्नक-हस्तौ छिन्नौ यस्य तावत् वा-अथवा गुमातिगुमापित वा  
मिन्नक-शुभन मिन्नः शुभमिन्नः स एव शुभमिन्नकस्तम्, वा-अथवा पाद  
छिन्नक-छिन्नौ पादौ यस्य तम् वा अथवा एकाऽऽप्यन्तम् एकः-मकुट आभात  
महाग यस्मिन्, तम्, पृष्ठाऽ-पात-कृत्न-वर्णतटिभ्यरेण तदपरिममारापण्डारा  
पातनेन आपातः-वषो यद्य त तथा जीविनाह-अपयोपयय-विद्योत्रयेवम्,  
जावरहित कुर्यामिष्यथः, इति प्रवेशिराजनिवेदनानन्तर पुनः केशीभमण  
पृच्छति-अथ खलु इ मर्दान्त ! पाद मा पुरुषाः त्वाम् एवम् अनुपद  
वक्ष्यमाण वचन वदेत्-कथयेत्-तयाहि-मे-मां हे स्वामिन् ! यावत्-विषा

स्वप्न-रस-रूप गवादि पात्र प्रकारक मनुष्यमव मन्वा कामयोगों को  
भोगे और तुम्ह इस बात को देखना हो तब या सत्र म । म दस पुरुष के  
लिये क्या दण्ड दो ? तब प्रवेशी राजान कहा-इ मन्दन् ! ऐसे दुराचारी  
पुरुष को मैं भङ्गमह का यावत् जीवरहित होने का दण्ड दू ठीक है-  
इस पर यदि वह पुन तुम से जेमा निवेदन करे कि हे स्वामिन् ! वोही  
देर आप मुझे इस दण्ड से रक्षित कर दीजिये इतने में मैं अपने भिषा

१ मकु ४२ मनोऽनुत्थ खलु रूपस एव इय गध नवेरे पात्र भङ्गमह भङ्गम-  
स लभी कामभोगो कोजवे अने तथे म्मा मपु कर्त्ता जे । वो तो ते वजते तथे ते  
पुरुषने श्री शिखा कर्त्ता त्वारे प्रवेशी राजाने कर्त्ता के के-दना जेव इत्यन्तरी पुरुषने  
हु अगलमनी यावत् निष्ठाव कर्त्ता भङ्गमह शिखा आयु ते योज्य कर्त्ताव कोन  
पत्नी ते श्री तमने जेवी रीते जिन । ४२ के के स्वामिन् ! श्राव वजत भाटे मने  
रस आपा के लक्ष्मी हु । अत्र नवेरे स्वप्ननेने आभ इह के के देवामिथो तमसर्वाधि

दीन् प्रति वक्ष्यमाणं पिपयनिवेदनममयावधिमुद्धूतं मुद्धूतमात्रं मां हस्त-  
च्छिन्नकं वा यावत्-यावत्पदेनोपर्युक्तपदानां संग्रहा बोध्यः, तदर्थथोपर्युक्त  
एव, जीवितात् मा व्यपरोपय-न विगोजय, मा मारयेत्यर्थः यावत्-यत्प्रमय-  
पर्यन्तः 'तावत्' इति वाक्यालङ्कारे, अह मित्र-ज्ञाति-नि-व-स्वजन-सम्बन्धि  
परिजनं मित्राणि-सृहदः, ज्ञातयः-मातापितृभ्रात्रादयः, निजकाः-भ्रातृपुत्रादयः  
भ्राजनाः-पितृव्यादयः, सम्बन्धिनः-भ्रातृशुरादयः, परिजनाः-दान्नी दामादयः,  
एषां समाहारो मित्र-ज्ञाति-निजक स्वजन-सम्बन्धि-परिजनं, तत्तथा, एवम्  
अनुपद वक्ष्यमाणं वचनं वदामि-कथयामि, यथा-हे देवानुप्रियाः! यूयम्  
एवं-वक्ष्यमाणं शृणुत-'अहं पापानि कर्माणि समाचर्य-कृत्वा इमाम्-एतदूपा-  
प्रदेशीराजोपनीयमाना कुमारण्या ज चिताद् व्यपरोपणीयतारूपाम् आपात्तम्-  
आपदं प्राप्नोमि-प्राप्तोऽऽस्मि, तत्-तस्मात्कारणात्-पापकर्मणामापत्तिप्राप  
कत्वाद्धेतोः, हे देवानुप्रियाः! यूयमपि-मदीयमित्रादयः केचित्-केऽपि पापानि  
कर्माणि मा समाचरत-न प्रकुर्वत 'भेवि' इति यूयमपि एवमेव=अनेनैव-  
प्रकारेण आपाति मा प्राप्नुत-यथा खलु अहम् इति। तस्य खलु त्वम् एतं=  
तत्कथनरूपम् अर्थं हे प्रदेशिन्! प्रतिशृणुयाः-स्वीकुर्याः? प्रदेशी कथयति-  
अयम्-अनन्तराक्तोऽर्थः नो समर्थः-न युज्यते, कस्मात् खलु न समर्थः?  
इति जिज्ञासायामाह-'यस्मात्' इत्यादि-हे भन्त! यस्मात् खलु स पुरुषः  
मे-मम अपराधी वर्तते' इति हेनोः अयमर्थो न समर्थः, केशीकुमारश्रमणः

दिजनो से ऐसा कह दू कि हे देवानुप्रियो! तुम लोगों में से कोई  
भी जन ऐसा पापकर्म नहीं करना-नहीं तो मेरी जैसी आपत्ति को भोगना  
पड़ेगा तो क्या हे प्रदेशिन्! तुम उसकी इस बातको मान लोगे। यदि  
कहो कि नहीं तो इस पर पुनः यही पूछा जा सकता है कि क्यों नहीं?  
तुम कह सकते हो? इसके उत्तर में वह अपराधी है। तो इसी प्रकार से हे  
प्रदेशिन्! तुम्हारे जो आर्यक (दादा) हैं वे भी अनेक मलिन पापकर्मों को कमाकर  
यहाँ से नरक में नारक की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं-अतः जब तक वे  
वैरा की पूरी स्थिति को नहीं भोग लेते हैं-तब तक वे अपनी इच्छा

कोषपण्ये येन पापकर्मं करेशो नहि नहितर भासो जेवी शिक्षा सोगववी पडेशे तो  
थुं हे प्रदेशिन् तमे तेनी आ वात स्वीकारी वेशो? इवे जे तमे आभ कडो हे  
नहि, तो जेना पर करी तमने पूछवामां आवे हे हेम नहि? जेना उत्तरमा तमे  
कडेशे हे ते अपराधी छे, तो आ प्रभाण्ये हे प्रदेशिन् तमारा जे आर्यक छे  
तेजो पण्ये धण्यो पापकर्मोतु अज न करीने अही थी नरकमा नरकनी  
पर्यायथी जन्म पास्या छे जेथी जथा सुधी तेजो त्यानी सपूर्ण भास



હિતિ । ગદિ જોવ-ઝારીયોમેદો ન સ્યાત્તદા પૂર્વોક્તકારણચતુષ્ટયેન નરક-  
ભોગ કઃ કર્યાન ? શરીરસ્ય તુ મનુષ્યલોક એવ નષ્ટવાન, શરીરભિન્નત્વે  
તુ જીવસ્ય શરીરનાશોઽપિ સત્ત્વાદુક્તહેતુચતુષ્ટયેન નરકભોગં કર્તુ જીવઃ  
શક્યો ભવતિ ॥ સૂ. ૧૩૨ ॥

મૂલ્ય--તણાં સે પણસી રાયા કેસિં કુમારસમણં એવં વયાસી-  
અર્થિ ણં મંતે ! તસા પળણાઓ ઉવમા, ડમેણ પુળ કારણેણ નો ઉવા-  
ગચ્છહ । એવં ચલ્લુ મંતે ! સમ અજિયા હોત્થા ડહેવ સેયવિયાણ નય-  
રીણ ધમ્મિયા જાવ વિત્તિં કપ્પેમાણી સમણોવાસિયા અભિગય જીવાં  
સન્વોવળણઓ જાવ અપ્પાણં ભાવેમાણી વિહરહ. સા ણંતુજ્ઞં વત્તવ્વયાણ  
સુવહુ પુન્નોવચયં સમજિણિત્તા કાલમાસે કાલં કિચ્છા અળ્લયરેસુ  
દેવલેણસુ દેવત્તાણ ઉવવળ્લા, તીસેણં અજિયાણ અહં નત્તુણ હોત્થા ડહે  
કતે જાવ પાસળયાણ, તં જહ ણં સા અજિગાં સમ આગંતું એવં વણ્જા-  
ણં, ચલ્લુ નત્તુઆ ! અહ તવ અજિયા હોત્થા, ડહેવ સેયવિયાણ  
નયરીણ ધમ્મિયા જાવ વિત્તિ કપ્પેમાણી સમણોવાસિયા જાવ વિહ-

યદિ જીવ ઓર શરીર મેં ભેદ નહીં હોતા તો પૂર્વોક્ત કારણ ચતુષ્ટય મેં  
નરક ભોગ કૌન કરે? વ્યૉં કિ શરીર તો મનુષ્યલોક મેં હો નષ્ટ હો જાતા  
‘ ઉમકે નષ્ટ હોને પર તદભિન્ન જીવ મી નષ્ટ હો જાવેગા । પરન્તુ જવ શરીર  
સે ભિન્ન જીવ કો માના જાતા હૈ તો શરીર કે નાશ હોને પર મી જીવ  
કા મદ્ધાવ રહતા હી હૈ । અનઃ ઉક્ત હેતુ ચતુષ્ટય સે નરકભોગ કરને કે લિયે જીવ સમર્થ  
હોતા હૈ । ઇમ પ્રકાર સે યહ ટીકા કા ભાવ લિખા ગયા હૈ ॥ સૂ. ૧૩૨ ॥

વિદ્યાસ રાજો બે છવ અને શરીરમા ભિન્નતા ન હોત તો પૂર્વોક્ત કારણ ચતુષ્ટયમા  
નરકભોગ કરે કોણ ? કેમકે શરીર તો મનુષ્ય લોકમા જ નષ્ટ થઈ જાય છે, તેના નાશ  
પછી તદ્ભિન્ન છવ પણ નષ્ટ થઈ જ જશે જ. પરંતુ બ્યારે શરીર કરતાં ભિન્ન  
છવને માનવામા આવે છે તો શરીરના વિનાશ પછી પણ છવનો સદ્ભાવ રહેજ  
છે ઉક્ત હેતુ ચતુષ્ટયથી નરકભોગ માટે છવ સમર્થ હોય છે આ પ્રમાણે આ ટીકા  
નો ભાવ લખવામા આવ્યો છે. ॥ સૂ. ૧૩૨ ॥



माह-हे पद्मिनी ! एषमेव-अमनैव प्रकारेण तथापि आर्यकाऽभवत्, पिता  
 महो कीदृशोऽभवत् ? इत्याह-स च इहैव श्वेतविकायां नगर्यामधार्मिको  
 यावत्नो सम्पत् करभारान्न प्राप्तयत् । सः-नार्यकः खलु मम वक्त-  
 व्यतया-कथनानुसारेण सुखं यावत् यावत् । न-“पार्थ कर्म माणातिपातादिकं  
 मम उप नरकेषु” इत्येतां पदानां सर्वत्र उक्तं नः समुत्पन्नः” तस्य-पूर्वकस्य  
 नार्यकस्य खलु स्व नष्टः पौत्रोऽभवः कीदृशः ? इति जिज्ञासाया  
 माह-इत्येतां कान्ता यावत् तत्र नृपया, । न-मरुपुराणः । खलु सम्प्रति  
 मानुष्य लोके इव शीघ्रमागन्तुमिच्छति परन्तु न शीघ्रमागन्तु नो शक्नोति ।  
 इतो न इति जिज्ञासायां शृणु-हे प्रदेक्षि ! अयमिदं स्थानैः-कारणैः,  
 अधुनोपपन्न-नरकाभ्योत्पन्नो नरकेषु-नरकमध्ये, नैरयिकः नारक मानुष्य  
 लोक शीघ्रमागन्तुमिच्छति परन्तु शीघ्र आगन्तु नो शक्नोति-तानि चत्वारि  
 स्थानायेषाम्-अधुनोपपन्नो नरकेषु नैरयिकः सः खलु तत्र-नरकेषु मह  
 वृक्षा-महर्षी वेदना वेदयन्-अनुभवन् मानुष्य लोकं शीघ्रमागन्तुमिच्छेत्  
 परन्तु आगन्तु नैव शक्नोति । अधुनोपपन्नो नरकेषु नैरयिको नरकपालैः  
 परमाधार्मिकैर्द्वैतश्रेष्ठैः-पुनःपुनः समविष्टीयमानः-आकल्पमाद्यः मम  
 इच्छति मानुष्य लोकमागन्तु किन्तु न शक्नोति । तन्मयं स्थानमाह-‘अयं  
 नोपरान्तो नरकेषु नैरयिकः मरुवेदनाये नरकभास्ये अज्ञातवेदनोये कर्मणि  
 अक्षीणे-क्षयमप्राप्ते अवेदिन जनशृङ्गे भनिर्जीणे-माद्यमप्राप्ते च सति  
 इच्छति मानुष्य लोकमागन्तु किन्तु न शक्नोति-यागन्तुमाह-अनेन प्रकारेण निर-  
 यायुषि-नरकसम्पत्तिनि आप्त् कर्मणि अक्षीणेऽवेदितेऽनिर्मिणे-मिमराम  
 प्राप्ते च सति, इच्छति मानुष्य लोकमागन्तु किन्तु न शक्नोति । इत्येतैः  
 अनन्तराक्तैश्चतुर्भिः स्थानैः इदं प्रदर्शितम् । अधुनोपपन्न इत्यादीनां विवरण  
 माह-तत्-नम्रात्कारणात् हे महर्षि ! स्व अवेदि-मद्यपि विश्वमिदं  
 खलु मया अयो नीयः अगम्य शरीरम् नो न नीयः नत् शरीरम्’

के अनुसार यहाँ नहीं आ सकते हैं, क्यों कि नारक जीवों को यहाँ जाने  
 में बार कारण बाधक हैं जो मूलार्थ में प्रकट किये जा चुके हैं इसलिये  
 हे प्रदेक्षि ! तुम मेरे इस वचन पर कि नीच मित्र है और शरीर मित्र  
 है, जीव शरीररूप नहीं है, और शरीर जीव रूप नहीं है विश्वास रखो,  
 स्थितिने मोक्षपी देशे नहि जाँ अथी तेजो पावनपी छप्प अथय अहाँ अथी  
 शरीर नहि केमे नाशलोकोने अहाँ आपका भटे शर शरीरों आपका उ. के  
 भूलायैभ अलायैभ आपका उ. जेथी हे प्रदेक्षि ! तमि आपका आ वचन पर-  
 लव भिन्न उ जाने शरीर भिन्न उ लव शरीररूप नहीं, अने शरीर लव रूप नहीं,

इति । यदि जीव-शरीरयोर्भेदो न स्यात्तदा पूर्वोक्तकारणचतुष्टयेन नरक-  
भोग कः कुर्यात् ? शरीरस्य तु मनुष्यलोक एव नष्टत्वात्, शरीरभिन्नत्वे  
तु जीवस्य शरीरनाशेऽपि सत्त्वादुक्तहेतुचतुष्टयेन नरकभोगं कर्तुं जीवः  
शक्यो भवति ॥ सू० १३२॥

મૂલ્ય--તણાં સે પણસી રાયા કેસિં કુમારસમણં એવં વયાંસી-  
અસ્થિ ણં મંતે ! ણસા પળળાઓ ઉવમા, ડમેણ પુળ કારણેણ નો ઉવા-  
ગચ્છડ । એવં ચલુ મંતે । મમ અજ્ઞિયા હોત્યા, ઇહેવ સેયવિયાણ નય-  
રીણ ધમ્મિયા જાવ વિત્તિ કપ્પેમાણી સમણોવાસિયા અભિગય જીવાં  
સઠ્ઠો વળળાઓ જાવ અપ્પાણં ભાવેમાણી વિહરઈ, સા ણંતુજ્ઞં વત્તવ્વયાણ  
સુવહુ પુન્નોવચયં સમજ્ઞિણિત્તા કાલમાસે કાલં કિચ્છા અળળયરેસુ  
દેવલેાણસુ દેવત્તાણ ઉવવળળા, તીસેણં અજ્ઞિયાણ અહં નત્તુણ હોત્યા, ઇટ્ઠે  
કત્તે જાવ પાસણયાણ, તં જઈ ણં સા અજ્ઞિગાં મમ આગંતું એવં વણ્ણા-  
એવં, ચલુ નત્તુઆ ! અહ તવ અજ્ઞિયા હોત્યા, ઇહેવ સેયવિયાણ  
નયરીણ ધમ્મિયા જાવ વિત્તિ કપ્પેમાણી સમણોવાસિયા જાવ વિહ-

यदि जीव और शरीर में भेद नहीं होना तो पूर्वोक्त कारण चतुष्टय में  
नरक भोग कौन करे? क्यों कि शरीर तो मनुष्यलोक में ही नष्ट हो जाता  
है उसके नष्ट होने पर तदभिन्न जीव भी नष्ट हो जावेगा । परन्तु जब शरीर  
से भिन्न जीव को माना जाता है तो शरीर के नाश होने पर भी जीव  
का सद्भाव रहता ही है । अतः उक्त हेतु चतुष्टय से नरकभोग करने के लिये जीव समर्थ  
होता है । इस प्रकार से यह टीका का भाव लिखा गया है ॥ सू. १३२ ॥

વિદ્યાસ રાણો જો જીવ અને શરીરમા ભિન્નતા ન હોત તો પૂર્વોક્ત કારણ ચતુષ્ટયમા  
નરકભોગ કરે કોણ ? કેમકે શરીર તો મનુષ્ય લોકમા જ નષ્ટ થઈ જાય છે, તેના નાશ  
પછી તદ્ભિન્ન જીવ પણ નષ્ટ થઈ જ જશે જ પરંતુ જ્યારે શરીર ધરતાં ભિન્ન  
જીવને માનવામા આવે છે તો શરીરના વિનાશ પછી પણ જીવનો સદ્ભાવ રહેજ  
છે ઉક્ત હેતુ ચતુષ્ટયથી નરકભોગ માટે, જીવ સમર્થ હોય છે. આ પ્રમાણે આ ટીકા  
નો ભાવ લખવામા આવ્યો છે. ॥સૂ. ૧૩૨॥

रामि । तए णं अह सुवहु पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता कालमासे काल  
किञ्चा देवलोपसु उववण्णा, त तुमपि णत्तुया । भवाहि धम्मिण  
जाव विहरोहि, तएणं तुमपि एवं चेव सुवहु पुण्णोवचयं समज्जि-  
णित्ता जाव उववज्जिहिसि, त णं आज्जया मम आगतु एव  
वपज्जा तो णं अह सहहेज्जा पत्तिपज्जा रोपज्जा जहा अण्णो जीवो  
अण्ण सरीर, णो त जावो त सरीर, जम्हा सा अज्जिया मम आगतु  
णो एव वयासी तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा । जहा त जीवो त  
सरीर नो अन्नो जीवो अन्न सरीर ॥ सू० १३३ ॥

छाया—ततः खलु न मदधी रामा केचिन् कुमारभ्रमणमवधवादीन्  
अस्ति खलु भदत ! एषा प्रज्ञातउपमाः, अनेन पुनः कारणेन नो उपागच्छति,

‘तएण से पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (से पएसी राया केसि कुमारसमयं  
एव वयासी) उस भवेसी राजाने केसीकुमारभ्रमण से इस प्रकार कहा-  
(अर्थात् ॥ भते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेण नो उपागच्छइ)  
हे भदन्त ! जीव और सरीर को भिन्न प्रकट करने में मेरे आर्थक—(पिता  
मह) इस कारण से नहीं आते हैं’ यहां ल० के सन्दर्भ से जो आपने उपमा दी है,  
तो यह उपमा प्रज्ञात-दृष्टान्त है । यह वास्तविकी उपमा नहीं है’ तो भी मैं यह  
मान लेता हू कि मेरे पितामह—आर्थक आपके द्वारा प्रदर्शित कारणों की  
बजह से यहां नहीं आते हैं—तो भले न जाये परन्तु (एव खलु भते !

‘त एन से पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) तथा यही (स पएसी राया केसि कुमारसमयं  
एव वयासी) वे भवेसी राजाने केसीकुमारभ्रमण से इस प्रकार कहा-  
(अर्थात् ॥ भते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेण नो उपागच्छइ) हे भदत !  
एव अने सरीरने भिन्न प्रकट करवाया ‘आश आधक (पितामह) आ कारणेण एपि  
आपत्ता नथी अर्थात् सुधीन सदाक लगी के कथं पण तसे उपमा इपमा कथुं ॥  
तो ते उपमा प्रज्ञात-दृष्टान्त है आ वास्तविकी उपमा नहीं, उता के हू तभासी  
आ बात स्वीकारी लउं हे आश पितामह आधक तभाश वटे प्रदर्शित कारणेने  
दीपे न अर्थात् आपी शक्य नथी तो तेओ भवे न आवे. परंतु (एव खलु भते !

एवं खलु भदंत ! मम आर्यिकाऽभवत्, इहैव श्वेतविकार्या नगर्या धार्मिकी  
यावद् वृत्तिं कल्पयमाना श्रमणोपासिका अभिगतजीवा० सर्वो वर्णकः यावद्  
आत्मानं भावयन्ती विहरति, सा खलु तव वक्तव्यतया सुबहु पुण्योपचयं  
समर्ज्य कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवतयोपपन्ना, तस्याः  
खलु आर्यिकायाः अहं नष्टकोऽभवम्, इष्टः कान्तः यावद् दर्शनतया, तद्  
यदि खलु साऽऽर्यिका मम आगत्य एवं वदेत्—एवं खलु नष्टक ! अहं

मम अज्जिया होत्था इहेव सेयवियाए नयरीए धम्मिया जाव वित्ति कप्पे-  
माणी समणोवासिया अभिगत जीवा० सन्वओ वण्णओ जाव अप्पाणं भावे-  
माणी विहरहं हे भदन्त ! मेरी जो आर्यिका—(दादी) हुई है, वह तो इस  
श्वेताविका नगरी में धार्मिकी यावत् धर्म से ही अपनी जीवमयात्रा  
चलाती थी, श्रमणोपासिका थी, जीवअजीव तत्त्व के स्वरूप को जानती  
थी, इत्यादि सर्व वर्णन यहां पर करना चाहिये. यावत् वह आत्मा को  
सवित करती हुई अपने समय को व्यतीत करती थी (सा णं तुज्झ वत्त-  
व्वयाए सुबहुं पुण्णोवचयं ममज्जिज्जित्ता कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोकसु  
देवत्ताए उववन्ता) वह आपके कथनानुसार बहुत अधिक पुण्य का उपचय  
करके कालमास में काल कर देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देव  
की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं। (तीसे णं अज्जियाए अहं नष्टुए होत्था)  
में उसका पौत्र हुआ है (इदं कते जाव पासणयाए) मैं उसके  
लिये इष्टअभिलषित. कान्त था यावत् दर्शन के लिये भी दुर्लभ था.

मम अज्जिया होत्था इहेव सेयवियाए नयरीए धम्मिया जाव वित्ति  
कप्पेमाणी समणोवासिया अभिगतजीवा० सन्वओ वण्णओ जाव अप्पाण  
भावेमाणी विहरहं हे भदन्त ! मेरी जो आर्यिका (दादी) तथा छि ते तो आ  
श्वेताविका नगरी में धार्मिकी हुआ यावत् धर्मसु आश्रयण करीने पोताहुं एवम  
पसार कथुं हुं. तेओ श्रमणोपासिका हुता, एव अएवतत्त्वना स्वइपनेऽनुश्रुता  
हुता. वगेरे अधुं वण्णं अहीं समए लेवुं लेधओ. तेओ पोताना आत्माने लावित  
करता पोतानो समय पसार करता हुता. (सा णं तुज्झ वत्तव्वयाए सुबहुं पुण्णो-  
वचयं ममज्जिज्जित्ता कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोकसु देवत्ताए उववन्ता)  
तेओ आपना कथन मुण्ण भूण्ण पुण्य सत्य करीने काल भासमां काल करीने  
देवलोकमाथी काल ओक देवलोकमा देवनी पर्यायमा जन्म पाया छि. ( तीसे णं  
अज्जियाए अहं न ए होत्था) तेभनो हुं पौत्र थयो छु (इदं कते जाव  
पासणयाए) हुं तेभना माटे छण्ट, अभिलषित, प्राप्त हुतो यावत् दर्शन माटे पण्ण

रामि । तप णं अह सुधहु पुण्णोवचयं समज्जिणिता कालमासे काल  
किञ्चा देवलोपसु उववण्णा, त तुमपि णत्तुया । भवाहि धम्मिप  
जाव विहरोहि, तपणं तुमपि एव चेव सुधहु पुण्णोवचयं समज्जि  
णिता जाव उववज्जिहिसि, त जह णं आज्जया मम आगु एव  
वपज्जा तो णं अह म्महेज्जा पत्तिपज्जा रोपज्जा जहा अण्णो जीवो  
अण्ण सरीर, णो त जावो त सरीर, जम्हा सा अज्जिया मम आगु  
णो एव वयासी तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा त जीवो त  
सरीर नो अन्तो जीवो अन्न सरीर ॥ सु० १३६ ॥

छाया—ततः स्वल्पं न प्रवेशी रामा केचिन् कुमारभ्रममेवमभादीव  
अस्ति स्वच्छं भवत ! एषा प्रज्ञातउपमाः, अनेन पुनः कारणेन नो उपागच्छति,

‘तपणं से पप्सी राया’ इत्यादि ।

सुधार्थ—(तप णं) इसके बाद (स पप्सी राया केसि कुमारसमं  
एव वयासी) उस प्रदोषी राजाने केसीकुमारभ्रम से इस प्रकार कहा—  
(अतिथि ण मते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेण नो उपागच्छइ)  
हे भदन्त ! जीव और सरीर को भिन्न प्रकृत करने में मेरे आर्यक—(पिता  
मह) इस कारण से नहीं आते हैं’ यहाँ त० के सन्दर्भ से जो आपने उपमा दी है,  
सो यह उपमा प्रज्ञात-दृष्टान्त है । यह वास्तविकी उपमा नहीं है’ तो भी मैं यह  
मान लेता हूँ कि मेरे पितामह—आर्यक आपके द्वारा प्रदर्शित कारणों की  
वजह से यहाँ नहीं आते हैं—सो भले न जाये परन्तु (एव स्वच्छं भवते !

‘त एव से पप्सी राया’ इत्यादि ।

सुधार्थ—(तप णं) त्थार पछी (स पप्सी राया केसि कुमारसमं  
एव वयासी) ते प्रवेशी राजाने केसीकुमार भ्रमणे आ प्रभावे कसु—अतिथि ण  
मते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेण नो उपागच्छइ) देनाइत !  
एव अने उरीरने भिन्न प्रकृत करवाया आरा आर्यक (पितामह) आ भ्रमणे तीपे  
आकण नथी’ अही सुधीना अइक ठगी के कथं पण तपे उवमा इपमा कसु उ  
ते ते उवमा प्रज्ञात-दृष्टान्त है आ वास्तविकी उपमा नथी, उतां के हूँ तभासी  
आ वात स्वीकारी ठई के भाग पितामह अथक तभास बडे प्रदर्शित भ्रमणेने  
तीपे न अही आधी शक्य नथी तो तेन्ना भवे न आवे. परंतु (एव स्वच्छं भवते !

एवं खलु भदन्त ! मम आर्थिकाऽभवत्, इहेव श्वेतविकार्या नगर्यां धार्मिकी  
यावद् वृत्तिं कल्पयमाना श्रमणोपासिका अभिगतजीवा० सर्वो वर्णकः यावद्  
आत्मानं भावयन्ती विहरति, सा खलु तव वक्तव्यतया सुबहु पुण्योपचयं  
समर्ज्य कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवतयोपपन्ना, तस्याः  
खलु आर्थिकायाः अहं नष्टकोऽभवम्, इष्टः कान्तः यावद् दर्शनतया, तद्  
यदि खलु साऽऽर्थिका मम आगत्य एवं वदेत्—एवं खलु नष्टक ! अहं

मम अज्जिया होत्था इहेव सेयं विद्याए नयरीए धम्मिया जाव वित्ति कप्पे-  
माणी समणोवासिया अभिगय जीवा० सव्वओ वण्णओ जाव अप्पाणं भावे-  
माणी विहरइ) हे भदन्त ! मेरी जो आर्थिका—(दादी) हुई है, वह तो इस  
श्वेताविका नगरी में धार्मिकथी यावत् धर्म से ही अपनी जीवमयात्रा  
चलानी थी, श्रमणोपासिका थी, जीवअजीव तत्त्व के स्वरूप को जानती  
थी, इत्यादि सर्व वर्णन यहां पर करना चाहिये. यावत् वह आत्मा को  
भक्ति करती हुई अपने समय को व्यतीत करती थी (सा णं तुज्झ वत्त-  
व्याए सुबहुं पुण्णोवचयं ममज्जिणिच्चा कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु  
देवत्ताए उववन्ना) वह आपके कथनानुसार बहुत अधिक पुण्य का उपचय  
करके कालमास में काल कर देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देव  
की पर्याय से उत्पन्न हुए है। (तीसे णं अज्जियाए अहं नत्तुए होत्था)  
में उसका पौत्र हुआ हू (इट्ठे कते जाव पासणयाए) मैं उसके  
लिये इष्टअभिलषित. कान्त था यावत् दर्शन के लिये भी दुर्लभ था.

मम अज्जिया होत्था इहेव सेयं विद्याए नयरीए धम्मिया जाव वित्ति  
कप्पेमाणी समणोवासिया अभिगयजीवा० सव्वओ वण्णओ जाव अप्पाण  
भावेमाणी विहरइ) हे भदन्त ! मेरी जो आर्थिका (दादी) थी, छे ते तो आ  
श्वेताविका नगरीमा धार्मिक हुता यावत् धर्महु आयरणु करीने पोतानुं एव  
पसार कथुं हुतुं. तेओ श्रमणोपासिका हुता, एव अएवतत्त्वना स्वइप्पेःणणुता  
हुता वगेरे णधुं वणुंन अहीं समए लेवु नेधये. तेओ पोताना आत्माने लावित  
करता पोतानो समय पसार करता हुता (सा णं तुज्झ वत्त व्याए सुबहुं पुण्णो-  
वचयममज्जिणिच्चा कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ना)  
तेओ आपना कथन सुण्ण भूण्ण पुण्य सय्य करीने काल भासमा काल करीने  
देवलोकमाथी कोछ ओक देवलोकमा देवनी पर्यायमा जन्म पाप्मा छे. ( तीसे णं  
अज्जियाए अहं न ए होत्था) तेमनो हुं पौत्र थयो छु (इट्ठे कते जाव  
पासणयाए) हुं तेमना माटे छुट, अभिलषित, शत हुतो यावत् दर्शन माटे पणु

તત્ર આર્યિકાડમયમ્, હૃદયેય શ્વેતાચિકાર્યા નગર્યા ધાર્મિકી યાવત્ દ્વાન્ત  
કલ્પયમાના ધમણોપાસિકા યાવત્ વિદ્યારામિ । તતઃ સ્વલ્લ મદ્ સુમહુ પુણ્યો  
પચય સમગ્ર્ય કાલમાસે કાલ કૃત્યા ચેવલોકેષુ ઠાપના, તત્ત્વ ત્વમાપ  
જન્તક । મય ધાર્મિક યાવત્ વિદ્યાર, તતઃ સ્વલ્લ ત્વમાપિ પરમય સુમહુ

(ત જઈ બ સા અગ્નિયા મમ આગતુ પચ ચણ્ડા) મદ્ ગદિ આર્યિકા (ગદો)  
મુમ્મ સઃ આકરક જેમા કહે (એ સ્વલ્લ નૃણા) મદ્ તય અગ્નિયા ધાર્યા  
હૃદય સેવવિયાન નયરાર ધર્મિયા જાવ વિન્તિ કાપેમાણી મમણોશમિયા  
જાવ વિદ્યારામિ) હે પોત્ર ! મૈ તુમ્હારી દાત્રી થો હમી શ્વેતાચિકા  
નગરી મૈ મૈ ધાર્મિક જીવન વ્યતીત કરતી હુઈ યાવત્ અપના જાણનાયાત્રા  
ચલાતી થો જીવ અજીવ તરફ ક સ્વરૂપ કો જ્ઞાતા થો, તથા તપ ધૌર  
સયમ સે અપની આત્માકો આચિત્ત કરતી હુઈ અપન સમય કો વ્યતીત  
ક્રિયા કરતી થો (તપ બ અદ્ સુમહુ પુણ્યોચય સમગ્રિજિજિષ્ઠા કાલમાસ  
કાલ કિન્ધા, દેવલોકેષુ ઠાપણ્યા) હમ તરફ મૈને મહુત મધિક ગુણ્ય કા  
સચય ક્રિયા ઔર સચય કરક જમ મ મરણ કે અધમર પર મરી ઠો  
દલલોકો મૈ સે કિસી એક દલલોક મૈ દ્વ કી પર્વાય સં ઠમ્પન્ન હુઈ હ  
(ત તુમ પિ નૃણા) મવાદિ ધર્મિય જાવ વિદ્યારાદિ) હમલિયે હે પોત્ર !  
તુમ મી ધાર્મિક જીવન વ્યતીત કરો ઔર પ્રમાનુગ આપિ વિશેષણો પાછે  
થનો ! તથા ધર્મ સે હી અપની જીવનયાત્રા કરતે હુગ યાવત્ ધમણોપાસક

હૃદયેય હતો (ત જઈ બ સા અગ્નિયા મમ આગતુ એ ચણ્ડા) તે આધિક  
(ધારી) જો મને આવીને આમ કહે કે (એ સ્વલ્લ નૃણા) ' અદ તત્ર અગ્નિયા  
હોન્ધા, હૃદય સેવવિયાન નયરાર ધર્મિયા જાવ વિન્તિ કાપેમાણી  
મમણોશમિયા જાવ વિદ્યારામિ) હે પોત્ર ! હુ તમારી પિતામહા હતી. અજ  
શ્વેતાચિકા નગરીમાં આમિત્તે જીવન પસાર કરતી યાવત્ પિતાની જીવન યાત્રા ખેડતી  
હતી હુ મમણોપાસિકા હતી, જીવ અજીવ તત્વના સ્વરૂપને જાણતી હતી તેમજ  
તપ અને સમયથી પિતાના આત્માને જાણિત કરતી પિતાને સમય પસાર કરતી હતી.  
(તપ બ અદ્ સુમહુ પુણ્યોચય સમગ્રિજિજિષ્ઠા કાલમાસે કાલ કિન્ધા  
દેવલોકેષુ ઠાપણ્યા) આ રીતે મે મળ્યા પુરુષનો સત્ત્વ ક્રોધ અને સવમ કરીને  
જન્મ પામી હુ (ત તુમ પિ નૃણા) મવાદિ ધર્મિય જાવ વિદ્યારાદિ) કોથી જ  
હે પોત્ર ! તમે પણ ધાર્મિક જીવન પસાર કરો અને પ્રમાનુગ વગેરે વિશેષણોથી  
સંપન્ન બનો તેમજ ધર્મથી જ પિતાની જીવનયાત્રા આજળ ધયાવતા યાવત્

પુણ્યોપચય સમર્જ્ય યાવદ્ ઉપપન્સ્યસે, તદ્ યદિ શ્વલુ આર્યિકા મમ આગત્ય એવં વદેત્, તદ્ શ્વલુ અહ શ્રદ્ધયામ્ પ્રતીયાં રોચયેચ યથા-અન્યો જીવઃ, અન્યચ્છરીરમ્. નો તજ્જીવસ્તચ્છરીરમ્ । યસ્માત્ સાઽઽર્યિકા મમાઽઽગત્ય નો એવમવાદીત, તસ્માત્ સુપ્રતિષ્ઠિતા મે પ્રતિજ્ઞા યથા-તજ્જીવઃ સ્સચ્છરીરમ્, નો અન્યો જીવઃ, અન્યચ્છરીરમ્ ॥મુ. ૧૩૩॥

વનો. (તદ્ જં તુમંપિ એવં ચેવ સુવહુ પુણ્યોપચય સમમઙ્ગિજિજ્ઞાતા જાત્ર ઉવવજ્જિહ્મિ) આ પ્રમાણે કરકે તુમ માં મેરો હી તરહ સે પુણ્ય કા ઉપ-ચય કરક યાવત્ દેવલોકા મે કિમિ એક દેવલોક મેં દેવ કી પર્યાય સે ઉત્પન્ન હો જાઓગે. (ત જહ્ણં અઙ્ગિજ્ઞા મમ આગતુ એવં વણ્જ્ઞા, તો જં અહ મહ્ણજ્ઞા, પત્તિણ્જ્ઞા, રોહ્ણજ્ઞા. જહ્ણા અણ્ણો જીવો, અણ્ણં સરીરં જો તં જીવો તં સરીરં) આ તાહ સે હે મદન્ત ! વહ આર્યિકા આકર કે મુઙ્ગ સે એસા કહે તો મેં તુમ્હારે આ કથન પર કિ જીવ અન્ય હૈ ઓર શરીર અન્ય હૈ તથા-જીવ શરીરરૂપ નહીં હૈ ઓર શરીર જીવરૂપ નહીં હૈ વિશ્વાસ કર સકતા હું પ્રતીતિ કર સકતાહું ઓર ઉસે અપની રૂઝ કા વિષય વના સકતા હું. (જન્હા સા અઙ્ગિજ્ઞા મમ આગતું જો એવ વયાસી-તમ્હા સુપહ્ણિયા-મે પહ્ણા-જહ્ણા તં જીવો અન્નં સરીરં) પરન્તુ જિસ કારણ સે વહ આર્યિકા મુઙ્ગ સે આકર કે એસા કહતી નહીં હૈ. અતઃ આ કારણ સે મેગ-યહ મન્તવ્ય હૈ કિ જીવ હૈ વહી શરીર હૈ જીવ શરીર સે ભિન્ન નહીં હૈ ઓર શરીર જીવ સે ભિન્ન નહીં હૈ સુસ્થિર હૈ અર્થાત્ સત્યં ।

શ્રમણોપાસક થાએ. (તદ્ જં તુમંપિ એવં ચેવ સુવહુ પુણ્યોપચય સમઙ્ગિ-જિજ્ઞાતા જાત્ર ઉવવજ્જિહ્મિ) આ પ્રમાણે તમે પણ મારી જેમજ પુણ્યોપચય દેવની પર્યાયથી જન્મ પામશે. (ત જહ્ણં અઙ્ગિજ્ઞા મમ આગતું એવં વણ્જ્ઞા તો જં અહં મહ્ણજ્ઞા. પત્તિણ્જ્ઞા, જહ્ણા અણ્ણો જીવો, અણ્ણં સરીરં જો તં જીવો તં સરીરં) આ પ્રમાણે હે ભદ્રત ! તે આર્યિકા આવીને મને આમ કહે તો હું તમારા આ કથન પર કે જીવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે તેમજ જીવ શરીરરૂપ નથી અને શરીર જીવરૂપ નથી-વિશ્વાસ કરી શકું છું પ્રતીતિ મગી શકું છું અને તેને પોતાની રુચિને ગમતો વિષય બતાવી શકું છું. (જન્હા સા અઙ્ગિજ્ઞા મમ આગતું જો એવ વયાસી-તમ્હા સુપહ્ણિયા મે પહ્ણા-જહ્ણા તં જીવો તં સરીરં નો અન્નો જીવો અન્ન સરીરં) પરંતુ જે કારણને લીધે તે આર્યિકા મને આવીને આ પ્રમાણે કહેતા નથી તે કારણથી જ મારું આ બતાવું મન્તવ્ય છે કે જે જીવ છે તે જ શરીર છે જીવ શરીરથી ભિન્ન નથી અને શરીર જીવથી ભિન્ન નથી આ વાત સુસ્થિર છે.



तव आर्थिकाऽमवयव, इहैव श्वेतविकार्या नगर्या धार्मिकी यावत् प्राप्त  
कल्पयमाना भ्रमणोपासिका यावत् विहरामि । ततः नल्ल अहं सुबहु पुण्यो  
पचय समज्यं कालमासे कामं कुर्या दबलोक्तु उपपन्ना, तत् त्वमपि  
नृपक ! मय धार्मिकः गान्ध पितर, तत् स्मरु त्वमपि । एवमयं सुपदु

(त जइ ण मा भज्जिया मम भागतु एव वणज्जा) बह यदि आर्थिका (गरी)  
सुस सा आकरक ऐसा कहे (एव स्मरु नृपया ! अहं तव भज्जया गार्था,  
इहैव सेय विद्याय नयरीए धम्मिया जाव विस्सि कप्पेमाणी ममणोवासिया  
जाव विहरामि) हे पौत्र ! मै त्पकारी दाही थी इसी श्वेतविकार्या  
नगरी में मै धार्मिक जीवन व्यतीत करती हुई यावत् अपना जावनयाभा  
बलाती थी जीव अजीव तत्त्व क स्वरूप को ज्ञाता थी, तथा तप और  
समय से अपनी आत्माको आचित करती हुई अपन समय को व्यतीत  
किया, करती थी (तए न अहं सुबहु पुण्यावयव समज्जिजिता काममास  
काल किप्पा, देवलोपसु उववण्णा) इस तरह मैने बहुत अधिक पुण्य का  
संचय किया और संचय करके जब मै मरण के अवसर पर मरी तो  
देवलोकों में से किसी एक देवलोक में स्व की पर्याय से उत्पन्न हुई हूँ  
(त तुम पि नृपया ! मवाहि धम्मिए जाव विहराहि) इमालिये हे पौत्र !  
तुम भी धार्मिक जीवन व्यतीत करो और धर्मानुग आदि विशेषणों वाले  
बनो । तथा धर्म से ही अपनी जीवनयाभा करते हुए यावत् भ्रमणोपासक

इहैव देवे (त जइ ण मा भज्जिया मम भागतु एव वणज्जा) वे आर्थिक  
(गरी) जे भने आवीने आभ कहे के (एव स्मरु नृपया ! अहं तव भज्जिया  
गोथा, इहैव सेय विद्याय नयरीए धम्मिया जाव विस्सि कप्पेमाणी  
ममणोवासिया जाव विहरामि) हे पौत्र ! हु तभारी पितामही दती केव  
श्वेतविकार्या नगरीमां धार्मिक जीवन पसार करती यावत् पितामही जीवन यात्रा जेदती  
दती हु भमणोपासिका दती, एव अल्प तत्त्वना स्वयंने आशुती दती तेम  
तप अने सधर्मपी पितामया आत्माने आचित करती पितामो समय पसार करती दती  
(तए न अहं सुबहु पुण्यावयव समज्जिजिता कालमासे काम किप्पा  
देवलोपसु उववण्णा) जो रीते मे पचा पुण्यनो सधर्म कर्मे अने सधर्म करीने  
बनारे हु मरण हाजे मरी त्वारे देवलोकमाभी केउ जेके देवलोकमां देवनी पर्याय  
लभ पायी छ (त तुम पि नृपया ! मवाहि धम्मिए जाव विहराहि) जेभी व  
हे पौत्र ! तमे पण धार्मिक जीवन पसार करे अने धर्मानुग वगेरे विशेषणों  
संपन्न बने तेमव धर्मपी व पितामही जीवनयात्रा आजण धपावता यावत्

दर्शिनी, धर्मप्ररञ्जना=धर्मानुरागिणी, धर्मसमुदाचारा=धार्मिकसदाचारसंपन्ना, धर्मेणैव=जिनोक्तधर्मेणैव वृत्ति=जीवनयात्रां, कल्पयमाना कुर्वाणा, पुनःसा कीदृशी? इति जिज्ञासायामाह—“अभिगतजीवाऽजीवे”—त्यादि-सर्वः वर्णकः—वर्णनकारकपदसमूहो बोध्यः, यावद् आत्मानं भावयमाना व्यहरत । अत्रत्य यावत्पदैव—‘अभिगतजीवाजीवा’ इत्यादि सर्वोऽपि पाठश्चतुर्दशाधिकैक-शततममृत्रतः स्त्रीत्वनिर्देशेन बोध्यः । अर्धोऽपि तत्रत एव विज्ञेयः । सा=अनन्तरोक्ता आर्यिका पितामही खलु तव वक्तव्यतया तवमतेन सुबहुम्—अतिप्रचुरं, पुण्योपचयं—पुण्यकर्मसमूहं समर्ज्यममुपाज्य कालमासे कालं

प्रलोकिनी थी, धर्मप्ररञ्जना—धर्मानुरागवाली थी, धर्मसमुदाचारा—धार्मिक सदाचार से संपन्न थी. और जिनाक्तधर्म से ही अपनी जीवनयात्रा करने वाली थी. तथा जीव और अजीव तत्त्व के स्वरूप की ज्ञाता थी. अभि-गतजीवाजीवा’ इत्यादिरूप से वर्णन करने वाला पदसमूह और यहा यावत्पद से गृहीत पदसमूह ११४ वे सूत्र मे वर्णित हुआ है, सा उसे यहा स्त्रीलिङ्ग की विभक्ति लगाकर ग्रहण कर कहना चाहिये तथा इन पदों का अर्थ भी वहां से जानना चाहिये. ऐसी वह आर्यिका—पितामही—दादी आपके मन्तव्यानुसार अतिप्रचुर पुण्य का उपचय करके कालमास मे जघ मरी तब वह अनेकविध देवलोंकों में देव की पर्याय से उत्पन्न हुई है. उस आर्यिका का मैं पौत्र हूं, जो धर्म उसको बहुत अधिक दृष्ट यावत् कान्त था. यावत् पदसे वहां १३२ वे सूत्र में प्रोक्त इस विषय के विशेषणगृहीत हुए हैं। ये विशेषण वहां उसके पितामह के प्रकरण दिये गये है।

देश करनारा होता, धर्मप्रलोकिनी—धर्मदर्शिनी होता, धर्मप्ररञ्जना—धर्मानुरागवाणा होता, धर्मसमुदाचारा—धार्मिक सदाचार संपन्न होता अने जिनोक्त धर्म प्रमाणे न पोतातु एवम पसार करता है । तेमन एव अने अएव तत्त्वना स्वइपने नाथुनारा होता ‘अभिगत जीवाजीवा’ एव अने अने अएव वगेरे इपमा वणुन करनार पद समूह अने अही यावत्पदथी गृहीत पद समूह ११४मो सूत्रमां वणिंति थयेल छ. अही तेने स्त्रीलिङ्गनी विलकित लगाडीने अर्थ करवे. नेधये तेमन आ पढोने अर्थ पणु त्याथी न नाथी देवे. नेधये. जेवी ते आर्यिका दादी तमारा मन्तव्य मुन्यन अति-प्रत्युर पुण्यनो सथय करीने कालमासमां जयारे भरणु पाभ्या त्यारे ते घणु देवदेहिमा देवनी पर्यायथी जन्म पाभ्या छ. ते आर्यिकानो हुं पौत्र छुं तेमने धर्म पूणन छं यावत् कान्त होतो यावत् पदथी अही १३२मा सूत्रमा प्रोक्त आ विषयना विशेषणो गृहीत थया आ विशेषणो त्या तेना दादाना प्रकरणमा

टीका—'तपण से पणसो' इत्यादि—

तत—तदन्तर, म पदवी राजा केसिन कुमारअमणम्, एवम्—अनु  
पद वक्ष्यमाण चत्वनम्, अवादीत—हे भदन्त ! जीवशरीरयोमे दे भनेन  
पुनः कारणेन ना उपागच्छति—इत्यन्तमन्वयेण या उपमा भवता  
दद्या, एषा खलु मज्झात—नु द्वेषिशेषात्—बुद्धिप्रतिपत्त्या या उपमा—एष्टान्त  
भस्ति, नन्विय दास्तविकी उपमाऽस्ति, तथापि मये यन्मत्पितामहो  
मवदुक्तकारणैर्नापागच्छति। परन्तु हे भदन्त ! मम आर्थिकापितामही  
त्वस्तु एव—वक्ष्यमाणप्रकारा अभवत्—मा—ऽमशक्ति मित्राभावात्—इहै  
इत्यादि इहैव अस्यामेव—वर्ताविकायां नगर्याम् सा कीदृशी ? इत्यत्राह—  
धार्मिकीत्यादि—धार्मिकी—धर्माचरणशीला, यावत्—यावत्पदेन "धर्मानुगा,  
धर्मिष्ठा धर्मासुयायिनी धर्मप्रमोक्षिनी धर्मप्ररञ्जना धर्ममनुवाचारा धर्मेनैव"  
इत्येवां सप्रहः, तत्र—धर्मानुगा धर्मम् अनुगच्छति अनुसरति या सा तथा,  
धर्मिष्ठा—धर्मप्रिया धर्मासुयायिनी—धर्मप्रतिपादिका, धर्मप्रलोकिनी—धर्म

टीकार्थ—इमक बाद पदवी राजाने केशीकुमारअमण से पेमा कहा—  
हे भदन्त ! जीव और शरीर को भी नवा प्रदर्शित करने के निमित्त जो  
आपने उपमा दी है वह तो केवल आपकी बुद्धि से जन्म एक दृष्टान्त  
मात्र है यह उपमा—एष्टान्त सत्यार्थकानि में नहीं आ सकती है। फिर  
भी आपके कथनानुसार यह मान लेता हूँ कि मेरे मार्थक प्रदर्शित चार  
कारणों के कारण यहाँ नहीं आ सकते हैं। सो वे न आवे—परन्तु मेरी  
जो दादी थी—जो कि इसी भवेताविका नगरी में रहती थी, और धार्मिक—  
धर्माचरण शील थी यावत् जो धर्मानुगाधर्म का अनुसरण करने वाली थी,  
धर्मिष्ठा—धर्मप्रिया थी, धर्मासुयायिनी—धर्म का उपदेश देनेवाली थी, धर्म

टीकार्थ—तत्पराधी प्रदेयी राजाने केशीकुमार अमणने आ प्रभावे कष्ट है  
कहत ! एव अने शरीरनी जिनता प्रदर्शित करता ने तमे उपमा आधी है ते  
तो इत तमारी बुद्धिसे कल्पित हैत जेक छात मात्र न छ. जेथी तमारी आ  
उपमा एष्टान्त—सत्यार्थ केदिका आधी शके तेम नहीं छताने तमारा कदा मुकल  
आ बात मानी लठ सु के भास आवक तमे करेता चार कारणने लीपे अर्था  
आधी शकत नहीं तो जेते ते न आवे परतु भास के दादी कता—हे जेजे आ  
भेताजिहा नमरीमां रहता कता, अने धार्मिक—धर्माचरणशील कता यावत् ने धर्मा—  
नुगा—धर्मने अनुसरता कता, धर्मिष्ठा—धर्मप्रिया कता, धर्मासुयायिनी—धर्मने उप

दर्शिनी, धर्मप्ररञ्जना=धर्मानुरागिणी, धर्मसमुदाचारा=धार्मिकसदाचारसंपन्ना,  
धर्मेणैव=जिनोक्तधर्मेणैव वृत्ति=जीवनयात्रां, कल्पयमाना कुर्वाणा, पुनःसा  
कीदृशी? इति जिज्ञासायामाह—“अभिगतजीवाऽजीवे”—त्यादि-सर्वः वर्णकः—  
वर्णनकारकपदसमूहो बोध्यः, यावद् आत्मानं भावयमाना व्यहरत । अत्रत्य  
यावत्पदैव—‘अभिगतजीवाजीवा’ इत्यादि सर्वोऽपि पाठश्चतुर्दशाधिकैक-  
शततममूत्रतः स्त्रीत्वनिर्देशेन बोध्यः । अर्थोऽपि तत्रत एव विज्ञेयः । सा=  
अनन्तरोक्ता आर्यिका पितामही खलु तत्र वक्तव्यतया तवमतेन सुबहुम्—  
अतिप्रचुरं, पुण्योपचयं—पुण्यकर्मसमूहं समर्ज्यसमुपाज्यं कालमासे कालं

प्रलोकिनी थी, धर्मप्ररञ्जना—धर्मानुरागवाली थी, धर्मसमुदाचारा—धार्मिक  
सदाचार से संपन्न थी. और जिनाक्तधर्म से ही अपनी जीवनयात्रा करने  
वाली थी. तथा जीव और अजीव तत्त्व के स्वरूप की ज्ञाता थी. अभि-  
गतजीवाजीवा’ इत्यादिरूप से वर्णन करने वाला पदसमूह और यहा  
यावत्पद से गृहीत पदसमूह ११४ वे सूत्र में वर्णित हुआ है, सा उसे  
यहा स्त्रीलिङ्ग की विभक्ति लगाकर ग्रहण कर कहना चाहिये तथा इन  
पदों का अर्थ भी वहां से जानना चाहिये. ऐसी वह आर्यिका—पितामही—  
दादी आपके मन्तव्यानुसार अतिप्रचुर पुण्य का उपचय करके कालमास  
में जब मरी तब वह अनेकविध देवलोंकों में देव की पर्याय से उत्पन्न  
हुई है. उस आर्यिका का मैं पौत्र हूं, जो धर्म उसको बहुत अधिक दृष्ट यावत्  
कान्त था. यावत् पदसे वहां १३२ वे सूत्र में प्रोक्त इस विषय के विशेषणगृहीत  
हुए हैं । ये विशेषण वहा उसके पितामह के प्रकरण दिये गये है ।

देश करना होता, धर्मप्रलोकिनी—धर्मदर्शिनी होता, धर्मप्ररञ्जना—धर्मानुरागवाणा होता.  
धर्मसमुदाचारा—धार्मिक सदाचार संपन्न होता अने जिनोक्त धर्म प्रमाणे व पोतानु  
एवम पसार करता है । तेमज एव अने अएव तत्त्वना स्वइपने जलुनारा होता  
‘अभिगत जीवाजीवा’ एव अने अने अएव वगेरे इपमा वलुन करना पद समूह  
अने अही यावत्पदथी गृहीत पद समूह ११४मा सूत्रमा वलुित थयेल छ. अही  
तेने स्त्रीलिङ्गनी विलकित लगाहीने अर्थ करवे. जेधजे तेमज आ पदोनो अर्थ पलु  
त्याथी व जलुी देवे जेधजे. जेवी ते आर्यिका दादी तमारा मन्तव्य मुज्जण अति-  
प्रत्युर पुण्यनो संख्य करीने कालमासमा जयारे भरलु पाम्या तयारे ते धलुा देवलोकेमा  
देवनी पर्यायथी जन्म पाम्या छ. ते आर्यिकानो हुं पौत्र छुं तेमने धर्म भूषण  
धष्ट यावत् कान्त होतो यावत् पदथी अही १३२मा सूत्रमा प्रोक्त आ विषयना  
विशेषलुा गृहीत थया आ त्या तेना दादाना प्रकरलु

कृष्णा अन्यतरेषु अनेकविधेषु देवलोकेषु कस्मिंश्चिद् पलाके देवतया दत्तत्वन  
उपपन्नाः, सम्पाः, स्यलु आर्यिकायाः अह नष्टका-पौष अमयम् कीदृशः।  
इत्याद्याऽऽह-इष्टःकान्तः यावत्-दत्तनतया अथ यावत्पदेन द्वात्रिंशदुत्तर  
शर्मैकमयमे एवस्थितामहयक्तश्चराक्षयः सद्योऽपि पाठः सद्भाष्यः। व्या  
ख्याति तत्रैव विलोम्नीया।

तत्-तस्मात् यदि च्छ मा-पूर्वोक्ता आर्यिका मम भागत्य एषम्-  
अनुाद् नष्टपमाण वनन, चक्ष-वथयत्-नष्टक ! हे पौष ! एष खलु-  
पर्यमात्मकारक धृणु-मह तव आर्यिकाऽमयम् कृष्ण ! इत्याद्याऽऽह-इष्टैव-  
अस्यामेव अथाधिकार्या नगर्या चामिकी, यावत्-धमेनैव दृष्टा कल्पयमाना  
अमजोपासिका-आसिका यावत्-चक्षरम्। ततः-तस्मात्कारणात् सुषट्-  
प्रचुरतर पुण्योपपन्न ममस्य कान्तासे कास कृष्णा द्यवलोक्ये उपपन्ना, त-  
तस्मात्कारणात् नष्टक !-हे पौष ! स्वमपि चामिकी यावत्-वमानुगादि  
विशेषणविशिष्टो मय, तथा चर्मणव दृष्टा कल्पयमानः अमिगत जीवार्जीपादि  
विशेषणविशिष्टः भावको भूत्वा निहत्। तत-साहसाचरणेन खलु स्वमपि

जग बही स इन्हे और इनके अथ का मानना चाहिये ऐसी वह मेरी आर्यिका-  
दादी आकरके मुझ से ऐसा यदि कहे कि हे नष्टक-पौष ! मैं इसी  
अथाधिकार्या नगरी में तेरी दादी थी और चामिक यावत् धम से ही  
अपनी जीवन यात्रा चलायेवाली थी अमजोपासिका-आसिका यी इत्यादि  
मन प्रचुरतर पुण्य का उपाजन कर कालमात्र में जप मरण किया-तो  
मैं दयलुओं में से किसी एक देवलोक में दण की पर्याय से उत्पन्न हुई  
हूँ इसलिए हे पौष ! तुम भी चामिक यावत् धर्मानुग आदि विशेषण  
वाले बनो, तदा धम से ही अपनी जायनामा का निर्वाह करते हुए जीव  
और अमीय तब क स्वस्वक ज्ञाता बना और सबसे भय में भावक बन

आपका ७ तेषां निजगुणोन्मेषे त्वांभी न भवता तेषां नोन्मेषे, जेना भास  
आर्यिका दादी आवीने भने ते आ प्रभाव्ये करे ठे ठे भोत्र ! ८ आ नैतानिभ  
नमराभा तारी दादी दती अन धार्मिक भावत भर्माभरणधी न पीतानी एवमप्यत्र  
पनार इती दती ९ अमजोपासिका-आसिका दती वनेरे प्रचुरतर पुण्यत्त उपाजन  
होने अलभाग्य वनादे भूत्य भर्मा त्वादे देवदाताधी होई जेक देवदातां देवनी  
पर्यायधी न ग भर्माभु तेषां द भोत्र ! तमे पञ्च धार्मिक भावत् भर्माभु वनेरे  
विशेषण वाणा तेम न भर्माभु पीतानु एवम पयारकता एवजने अष्टपदत्तन  
स्वपुत्रने अलनारा शाब्बा अने आया अणु भा भावत यने पीताना एवतने अहण  
अनायक न तमे आ प्रभाव्ये धार्मिक भावतभुक्त अन्तःकरणवाय शाब्बा ते तमे

एवमेव अहमिव सुबहुं प्रचुरतरं पुण्योपपन्नं समज्यं यावत्-यावत्पदेन काल-  
मासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु अनेकविधेषु देवलोकेषु कस्मिंश्चिदेवलोके उप-  
पत्स्यसे-उत्पन्नो भविष्यसि, तत्-त माद् हेतोः यदि खलु आर्यिका मम  
आगत्य एव वदेत् तदा खलु अहं श्रद्धया-तद्वचने विश्वस्याम्, प्रतीया-  
विशेषतो विश्वासं कुर्याम्, गच्छेदं-रुचिविषयं कुर्याम् यथा-अन्यो जीवः  
ऽन्यत् शरीरम्, ना तन्न वःस्सशरीरम्, इति । यस्मात्-कारणान् मा-पूर्वोक्ता  
आर्यिका मम आगत्य एवम् अनन्तरोत्तप्रकारम् वचनं नो न अवादीत्-नाकथ-  
यत् तस्मात्-कारणात् मे-मम प्रतिज्ञा-स्वीकारः सुप्रतिष्ठिता-सत्याऽस्ति,  
प्रतिज्ञाविषयमाह यथेत्यादि-यथा-तथाहि तज्जीवःस्सशरीरम्, नो अन्यो जीवः,  
अन्यच्छरीरम्, इति ॥ सू० १३३ ॥

कर अपने जीवन को सफल करो, यदि तुम इस प्रकार के धार्मिक आचरण  
से वासितान्तःकरणवाले हो जाते तो तुम मेरे जैसे ही प्रचुरतर पुण्य  
का उपार्जन करके यावत्-कालमास में कालकर अनेकविध देवलोकों में  
से किसी एक देवलोक में देवकी पर्याय से उत्पन्न हो जाओगे. इस  
प्रकार से मेरी आर्यिका-दादी मेरे पाप आकर ऐसा कहे तो मैं आपके  
इस वचन पर विश्वास करूँ, प्रतीति-विशेषरूप से विश्वास करूँ, उस पर  
रुचि करूँ, कि जीव भिन्न है, शरीर भिन्न है, वह शरीर जीवरूप नहीं है,  
और जीव शरीररूप नहीं है-परन्तु जिस कारण से वह अभी तक मुझ से आकर  
के ऐसा नहीं कहती है. इसी कारण से हे भदन्त ! मैं अपनी इस मन्त्रव्य  
पर कि 'जीव और शरीर एक ही जीव भिन्न नहीं है और शरीर भिन्न नहीं  
है' अटल हूँ, उसे सत्य मान रहा हूँ ॥ सू० १३३ ॥

પણ મારી જેમ જ પ્રચુરતર પુણ્યોત્તુ ઉપાર્જન કરીને યાવત કાલમાસમા કાલ કરીને  
અનેકવિધ દેવલોકોમાંથી કોઈ પણ એક દેવલોકમા દેવના પર્યાયથી જન્મ પામશો.  
આ પ્રમાણે જો મારા આર્યિકા-દાદી મારી પાસે આવીને આમ કહે તો હું તમારી  
પર વિશ્વાસ કરું, પ્રતીતિ-વિશેષરૂપથી વિશ્વાસ કરું, તેમા રુચિ ઉત્પન્ન કરું કે જીવ  
ભિન્ન છે, શરીર ભિન્ન છે, અને શરીર જીવરૂપ નથી અને જીવ શરીરરૂપ નથી,  
પરંતુ જે કારણને લીધે હજી સુધા તેઓ-મારી પાસે આવીને મને કહેતા નથી તે  
કારણને લીધે હું ભદન્ત ! મારા આ વિચાર પર કે જીવ અને શરીર એકજ છે જીવ  
ભિન્ન નથી, અને શરીર ભિન્ન નથી. દૃઢ છું, તેને જ સત્ય માનીને વળગી રહું  
છું ॥ સૂ. ૧૩૩ ॥

कृत्वा अन्यतरेषु अनेकविधेषु देवलोकेषु कस्मिंश्चिद् देवलोके देवतया देवतत्वेन  
उपपन्नाः, तस्याः स्वसु आयिंकायाः अहं नष्टकः-पौत्र भवम् कीदृशः।  
इत्याद्याऽऽह-इष्टान्तः यावत्-दृष्टेनतया अत्र यावत्पदेन द्वात्रिंशदुत्तर  
शतैकतमसूत्रे एतत्पितामहवक्तृ-वशरूपः सर्वोऽपि पाठः समाप्तः। न्या  
स्यापि तत्रैव विलोकनीया।

तत्-तस्मात् यदि स्व मा-पूर्वोक्ता आयिंका मम आगत्य-परम्-  
अनुरागं वक्ष्यमाणं वचनं, खट-कथयत्-नष्टकः। हे पौत्र! एव स्वसु-  
वक्ष्यमाणकारकं शृणु-महं तव आयिंकाऽनन्यं कुम्भः। इत्याद्याऽऽह-इष्ट-  
अस्यापि श्वेतविकारां नगर्यां चामिकी, यावत्-धमेणैव हस्तं कल्पयमाना  
भमणोपासिका-आविष्ठा यावत्-व्यहरम्। ततः-तस्मात्कारणात् सुयष्ट-  
प्रचुरतरं पुण्योपपद्य समर्थं कालमासे कालं कृत्वा देवलोकेषु उपपन्ना, त-  
तस्मात्कारणात् नष्टकः-हे पौत्र! त्वमपि चामिकी यावत्-धर्मानुगा-  
विशेषणविशिष्टो भव, तथा धमेणैव हस्तं कल्पयमानः भूमिगतं जीर्वाणीपादि  
विशेषणविशिष्टः यावत्को भूत्वा निहर। तत-साहसाचरणेन स्वसु त्वमपि

अतः वही से कहें और इनके अर्थ का जानना चाहिये ऐसी वह मेरी आयिंका-  
दादी आकरकं मुझ से ऐसा यदि कहे कि हे नष्टक-पौत्र! मैं इसी  
श्वेतांशिका नगरी में तेरी दादी थी और चामिक यावत् धम से ही  
अपनी जीवन यात्रा समाप्तवाली थी भमणोपासिका-आविष्ठा थी इत्यादि  
मैंने प्रचुरतर पुण्य का उपार्जन कर कालमास में जब मरण किया-तो  
मैं देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हुई  
हूँ इत्यर्थ है पौत्र! तुम भी चामिक यावत् धर्मानुग आदि विशेषणों  
वाले बनो, तदा धम से ही अपनी जीवनयात्रा का निर्याह करते हुए जीव  
और भूमिगत एवं क स्वस्व के ज्ञाता बना और मरने पर मैं यावत् धम

आवष्टा ७ तेषां विश्वसुखोऽपि तेषां च तेषां देवा नोऽपि तेषां भाव  
जायिषा दादी आविष्ठा भवे नो आ प्रभावे कहे के के पौत्र! हूँ आ श्वेतांशिका  
नगर्यां दादी हूँ अने चामिक यावत् धर्मानुग थी चामिकी एतन्मात्र  
पसार करता हूँ, हूँ भमणोपासिका-आविष्ठा। दादी वगैरे प्रचुरतर पुण्य उपार्जन  
करने अलभ्यमानं नष्टकः भूत्वा धर्मानुग त्वारे देवलोकागामी कष्टं नो देवलोकागामी देवनी  
पर्यायधी न भवामी कुं तेषां दे पौत्र! तमे पञ्च चामिक यावत् धर्मानुग वगैरे  
विशेषणों वाण्य तेषां धम थी चामिक यावत् धर्मानुग एतन्मात्र पसार करता हूँ अने अष्टवत्सव्य  
स्वर्गपते नष्टकः आलो अने आया अष्टवत्सव्य आया अष्टवत्सव्य पौत्राना एतन्मात्र अष्टवत्सव्य  
नष्टकः नो तमे आ प्रभावे चामिक यावत् धर्मानुग अष्टवत्सव्य आलो तो तमे

अप्पाउया णरा कालधम्मणा संजुत्ता भवंते, से णं इच्छेज्जा माणुस्सं  
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ । ३। अहुणोववण्णे देवे  
 दिव्वेहिं जाव अज्जोववण्णे, तस्स माणुस्सए उराले दुग्गंधे पडिकूले  
 पडिलोमे यावि भवइ, उहुं पि य णं जाव चत्तारि पच्च जोयणसए  
 असुभे माणुस्सए गंधे अभिसमागच्छइ, से णं इच्छेज्जा माणुस्सं  
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ । ४। इच्चेएहि चउहिं  
 ठाणेहि पएसी ! अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस्सं  
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए तं  
 सद्दहाहि णं तुम पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं  
 जीवो तं सरीरं २ ॥सू० १३४॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं (राजानमेवमवादीत यदि  
 खलु त्वं प्रदेशिन् ! स्नातं कृतबलिकर्मणं कृतकौतुकमङ्गल-प्रायश्चित्तम्  
 आर्द्रपटशाटक भृङ्गारकटुच्छुकहस्तगत देवकुलमनुपविशन्तं कोऽपि पुरुषो

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केसी कुमारसमणे) केशीकुमारश्रम-  
 णने (पएसिं रायं) प्रदेशी राजा से (एव वयासी) ऐसा कहा—(जइणं तुम  
 पएसी ! ण्हाय कयबलिकम्मं, कयकोउयमंगलपायच्छित्तं उल्लपडसाडगं) हे  
 प्रदेशिन् ! जिस समय तुम कृतस्नान होकर, कृतबलिकर्मा होकर,—वायसादिकों  
 के लिये कृत श्रन्नविभागवाले होकर, कृत मणीतिलकादि मांगलिक प्राय-  
 श्चित्त विधि वाले होकर, जलसिक्तवस्त्रशाटकयुक्त होकर (भिंगारकटुच्छु-  
 यहत्यगयं) एवं भृङ्गार कटुच्छुक हस्तगत होकर (देवकुलमनुपविसमाणं)

‘तए णं केसी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) तत्पर्यय (केसी कुमारसमणे) केशीकुमारश्रमे (पएसिं रायं)  
 प्रदेशी राजाने (एवं वयामी) आ प्रभावे क्खु (जइणं तुमं पएसी ! ण्हायं  
 कयबलिकम्मं, कयकोउयमंगलपायच्छित्तं उल्लपडसाडगं) हे प्रदेशिन्  
 ने पश्चते तमे स्नान करीने, बलिकर्म—बोटेवे के शागडा वगेरेने अन्न लाग आपीने  
 २५ तिलक वगेरे ३५ भागदिक प्रायश्चित्त विधि पतावीने याणीवडे पणवेणाधेतवन्न



मृग—तएण केसी कुमारसमणे पपाँसे रोय एव वयासी-जइ  
 णं तुम पएसी ! ण्हाय कयबलिकम्म कयकोउयमंगलपायच्छित्त  
 उल्लपहसादग भिगारकहुच्छुयहत्थगय देवकुलमणुपविसमाणं केइ  
 य पुरीसे वधघरसि ठिञ्चा एव वदेज्जा एह ताव सामी ! इह मुह  
 त्तग आसयह वा चिट्ठह वा निसीयह वा तुयट्ठह वा, तस्स णं तुम  
 पएसी ! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठ पडिसुणिज्जामि ? णो इणट्ठे  
 समट्ठे । कम्हा ? भसे ! असुई असुइसामते । एवामेव पएसी ! तववि  
 अज्जिआ होरथा इहेव सेयवियाए णयरीए धम्मिया जाव विहरइ, सा  
 णं अम्ह वत्तवयाए सुबहु जाव उववन्ना, तीसे णं अज्जियाए तुम  
 णत्तुए होन्था इट्ठे जाव किमेगपुण पासणयाए ? मा णं इच्छइ  
 माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं सचाएइ हव्वमागच्छित्तए ।

चउहिं ठाणेहि पएसी । अट्ठुणोववण्णए देवे देवलोपसु इच्छेज्जा  
 माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए णो चेव ण सचाएइ अट्ठुणोववण्णे  
 देवे देवलोपसु दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिए गिद्धे गहिए अज्झो  
 ववण्णे से ण माणुसे लोगे नो आढाइ नो परिजाणाइ मे ण  
 इच्छिज्जा माणुस नो चेव णं सचाएइ । अट्ठुणोववण्णए देवे देव  
 लोपसु दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे, तस्स णं  
 माणुस्से पेम्मे घोच्छिन्ने भवइ दिव्वे पेम्मे सक्ते भवइ, से णं  
 इच्छेज्जा माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए नो चेव सचाएइ (२) अट्ठ  
 णोववण्णे देवे दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे,  
 तस्स णं एव भवइ-इयाणि गच्छ मुट्ठसण गच्छ तेण कालेण इट्ठ

वक्तव्यतया सुबहुं यावद् उपपन्ना तस्याः खलु आर्थिकायाः न्व नष्टृको  
ऽभवः दृष्टः यावत् किमद्ग ! पुनर्दर्शनतया ? सा खलु इच्छा मानुष्यं लोकं  
शीघ्रमागन्तु, नैव खलु शक्नोति शीघ्रमागन्तुम् ।

चतुर्भिः स्थानैः प्रदेशिन ! अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु इच्छेत  
मानुष्यं लोकं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति । अधुनोपपन्नो देवो देव

प्रदेशिन ! इस श्वेतांशिका नगरी मे तुम्हारी आर्थिका-दादी भी धार्मिक  
यावत् धर्मानुभागादि विशेषणां से विशिष्ट हुई है (सा णं अम्हं वत्तवयाए  
सुबहुं जाव उववन्ना, तीसे ण अज्जियाए तुमं णत्तुए होत्था इट्ठे जाव  
किमंग पुणपामणयाए) वह हमारी वक्तव्यता के अनुसार-मान्यता के  
अनुसार अनिष्ट बहुत अधिक पुण्य का उपार्जन करके और कालमात्र  
में काल करके देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देव की पर्याय  
से उत्पन्न हो गई है । उस आर्थिका-दादी के तुम पौत्र हुए हो, जो उसे  
तुम इष्ट कान्त आदि विशेषणों वाले थे, और उदुम्बर पुष्प के समान  
उसे सुनने के लिये उस समय तुम दुर्लभ थे, फिर तुम्हारे देखने की  
वात ही क्या कहनी, (सा ण इच्छा मानुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए  
णोचेव ण संचाएइ हव्यमागच्छित्तए) वह आर्थिका-दादी मनुष्यलोक में  
आनेकी इच्छा तो करती है, परन्तु आ नहीं सकती है ! इसमें चार कारण  
हैं जो इस प्रकार से हैं-(चऊहिं ठाणेहिं पएसी अहुणोववन्नए देवे देव  
लोएसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ)

शिक्षा नगरीमा तमारा आर्थिका दादी पणु धार्मिकी यावत् धर्मानुराग वगेरे विशेषणो  
वाणा थया छे. (सा णं अम्हं वत्तवयाए सुबहुं जाव उववन्ना, तीसे ण  
अज्जियाए तुमं णत्तुए होत्था इट्ठे जाव किमंगपुणपामणयाए) ते तमारी  
वक्तव्यता मुण्य-मान्यता मुण्य अतिशय पुष्ट्योत्तुं उपार्जन करीने कालमात्रमा  
काल करीने देवलोकोंमाथी कौछ पणु ओक देवलोकमा देवनी पर्यायथी जन्म पाय्या छे  
ते आर्थिका-दादीना तमे पौत्र छे, तमे तेना भाटे इष्ट कान्त वगेरे विशेषणोवाणा  
हुता अने उदुम्बर पुष्पनी जेम तमे तेना भाटे श्रवणदुर्लभ हुता, तो पछी तमारी  
जेवानी तो वात न थी करवी. (सा णं इच्छा मानुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए  
णो चेव णं संचाएइ हव्यमागच्छित्तए) ते आर्थिका दादी मनुष्यलोकमा आववानी  
इच्छा तो राखे छे, पणु आवी शक्ता नथी आना थार करणो छे ते आ प्रभाणो  
छे. (चऊहिं ठाणेहिं पएसी अहुणोववन्नए देवे देवलोकसु इच्छेज्जा माणुसं  
लोगं हव्यमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ) छे प्रदेशिन ! ते थार करणो

बर्षोसुदे स्थित्वा पथ पदेत्-एत तावत् स्वामिन् ! इह सुहृत्कम् आस्थित  
 वा तिष्ठत वा निपीदत वा स्वग्नस्तैयत वा, नस्य म्वस्तु त्व प्रदक्षिन् !  
 पुरुषस्य क्षणमपि एतमर्थं यत्तिशृणुयाः ? नो अयमर्थं समर्थ । कस्मात् ?  
 मदत्त ! अशुचि अशुचिसामन्तरम् । पथमेव प्रदक्षिन् ! तवापि भाषिवा  
 उमवत् इहैवतपिकायां नगर्या धार्मिकी यावत् व्यहरत् सा म्वत् अस्मात्

पलायन में 'बुस्त रहे हो, उस समय (केह प पुरिसे) तुम स कोई पुरुष  
 (बधघरसि दिक्षा एव बपज्जा) पिठ्ठासुर में स्थित होकर ऐसा कहे (एह  
 ताव मामी ! इह सुहृत्कम् आस्थित, वा चिहृह वा निमीयह वा, तुयहृह वा)  
 ह 'वामिन् !-आप आड़े और एक सुहृत्कमात्र समयतक यहाँ बैठिये,  
 अथवा ठहरिये, सुस्पर्शक रहिये छाटिये (तस्म न तुम पपसी ! पुरिस  
 स्त म्वणमपि एयमह पडिमणेज्जासि) हे प्रवेशिन् ! तुम उस पुरुष की  
 उस बात को एक क्षण के लिए भी स्वीकार कर लोगे क्या ? (नो इणहे  
 समह्ते हे मदत्त ! उस समय उस पुरुष की यह बात स्वीकार योग्य  
 नहीं हो सकती है (कम्हा) हे प्रवेशिन् ! किस कारण से उस पुरुष की  
 यह बात स्वीकार योग्य नहीं हो सकती है ? (मते ! असुई असुइ  
 सामते) हे मदत्त ! क्यों कि यह स्थान अपवित्र है और सय तरफ  
 से अपवित्र वस्तु से युक्त हैं। (एवामेव एसी ! तव पि अज्जिपा होत्या  
 इहेव, सेयवियाए नयरीए पम्मिया जाव विहरइ) इसी प्रकार से हे

भुक्त धने (भिगारककुप्पुपइत्ययय) अने अजार तमव इदुप्पुह हावभा  
 धने (देवकुसमणुपविसमाज) यक्ष्णवतन (व्यवरायतन)मा प्रवेशता केह ते उमये  
 (केहपुसिसे) तमने केह भावुस (बधघरसी दिक्षा एव बपज्जा) अवहभा  
 स्तीने आ प्रभावे के (एह ताव मामी ! इह सुहृत्कम् आस्थित वा चिहृह वा  
 निमीयह वा, तुयहृह वा) हे स्वाभिन् ! तमे आवि अने इत केह सुहृत् केह  
 समम सुधी अही जेसा के केह स्ते, सुजेथे स्ते के आवम केह (तस्म न तुम  
 पपसी ! पुरिसस्त म्वणमपि एयमह पडिमणेज्जासि) तो हे प्रवेशिन् ! तमे ते  
 भावुसनी ते बातने माह बजत आटे पख स्वीकारये ? (नो इणहे समह्ते) हे नदवा  
 ते बजते ते भावुसनी आ बात स्वीकारनामां आवये नहि (कम्हा) हे प्रवेशिन् !  
 शा कारणथी ते भावुसनी ते बात तमाशमां स्वीकार केह नहि ? (मते ! असुई  
 असुइ सामते) हे नदवा ! केह ते स्थान अपवित्र छे अने जे ते अपवित्र  
 वस्तुअधी भुक्त छे (एवामेव पपसी ! तव पि अज्जिपा होत्या, इहेव सेय  
 वियाए नयरीए पम्मिया जाव विहरइ) आ प्रभावे के प्रवेशिन् आ थेता

व्युच्छिन्नं भवति दिव्यं प्रेम संक्रान्तं भवति. स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोकं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति २ । अधुनोपपन्नो देवो दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो यावत् अध्युपपन्नः, तस्य खलु एवं भवति, इदानीं गमिष्यामि मुहूर्तेन गमिष्यामि तस्मिन् काले इह अल्पायुषो नराः कालधर्मेण संयुक्ता भवन्ति, स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोकं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति

में दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित हो जाता है यावत् अध्युपपन्न हो जाता है सो (तस्स णं माणुस्से पेम्मे वोच्छिन्ने भवइ, दिव्वे पेम्मे सकंते भवइ) इसका मनुष्य-संबंधी प्रेम व्युच्छिन्न-टूट जाता है और देव-लोक संबंधी प्रेम उसके हृदय में संक्रान्त-प्रविष्ट हो जाता है। (से ण इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए, नो चेव संचाएइ) अतः वह मनुष्यलोक में आनेका अभिलाषी होता हुआ भी आना नहीं चाहता है। (अह्णोववन्ने देवे दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्झोववणे, तस्स णं एवं भवइ, इय्याणि गच्छं, मुहुत्तेणं गच्छं, तेणं कालेण इट्ठ अत्पाउयाणरा, कालधम्मणा संजुत्ता भवति, से ण इच्छेज्जा माणुस्स लोगं हव्यमागच्छित्तए णो चेव ण संचाएइ) अधुनोपपन्न देव देवलोक में दिव्य कामभोगों के द्वारा मूर्च्छित हो जाता है यावत् अध्युपपन्न-आमक्त हो जाता है सो उसके मन में ऐसा होता है कि अब जाता हूँ, थोड़े काल पीछे जाऊंगा-उस काल में मर्त्यलोक में मनुष्य-माता, पिता, पुत्र, कलत्रादिक कि जिन की आयु समाप्त हो चुकी होती है, वे कालधर्म से संयुक्त हो जाते

कामलोगोभा मूर्च्छितं यथ नय छे यावत् अध्युपपन्नं यथ नय छे तो (तस्स ण माणुस्से पेम्मे वोच्छिन्ने भवइ, दिव्वे पेम्मे संक्रान्ते भवइ) तेना मनुष्य संबंधी प्रेम व्युच्छिन्नं यथ नय छे अने स्वर्गलोकभा संगंधी प्रेम तेना हृदयभा संक्रान्त प्रविष्ट-यथ नय छे. (से णं इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए नो चेव संचाएइ) अथी ते मनुष्यलोकभा आववानी अभिलाषा राखतो होय छता पणु ते अही आववा छच्छतो नथी. (अह्णोववन्ने देवे दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्झोववणे, तस्स णं एवं भवइ, इय्याणि गच्छं, मुहुत्तेणं गच्छं तेण कालेण इट्ठ अत्पाउयाणरा कालधम्मणा संजुत्ता भवति, से ण इच्छेज्जा माणुस्स लोगं हव्यमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ) अधुनोपपन्न देव देवलोकभा दिव्य कामलोगो वडे मूर्च्छितं यथ नय छे यावत् अध्युपपन्नं यथ नय छे, अने, अथी परिस्थितिभा तेना मनभा आ प्रमाणे थाय डे डवे नयथ, थोडा वणत पछी नयथ, ते समये मर्त्यलोकभा मायुस माता, पिता, पुत्र कलत्र वगेरे गथा

लोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो सुखं प्रविताः अभ्युपपन्नः स सखु  
मानुष्यान् भोगान् नो आद्रियते नो परिजानाति स खलु इच्छेत् मानुष्यं  
भोग इव्यमागन्तु नैव खलु शक्नोति । अभ्युनोपपन्नो देवो देवलोकेषु  
दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो यावत् अभ्युपपन्नः, तस्य सखु मानुष्यमेव

इ मदेष्टिम् । वे चार कारण ऐसे हैं कि जिनके कारण से अभ्युनोपपन्नक  
देव देवलोके में लुत्कामोत्पन्न देवमनुष्यलोके में क्षीघ्र आना चाहता है,  
परन्तु वह नहीं आसक्तता है सो उसमें प्रथम कारण ऐसा है—(अहुनो-  
पपन्न देवे दवल्लोपसु दिव्येहि कामभोगेहि मुच्छिण गिदे गदिए अल्लो-  
पपन्ने से माणसे लोने नो आढाह, नो परिजानाह) अभ्युनोपपन्नक देव  
देवलोको में दिव्यकामभोगों में मूर्च्छित हो जाता है, सुख-विषयोपभोग  
की अमिलपा से ग्रस्त हो जाता है प्रथित-विषयों में आसक्त हो जाता  
है, अभ्युपपन्न-इनमें भरपन्न आसक्तिवाला बन जाता है । अतः वह मनुष्य  
लोक सगर्भी शब्दादिक विषयों की आदर की दृष्टि से नहीं देखता है,  
उनकी अपेक्षा नहीं करता है, और न उन्हें जानने की ही इच्छा करता  
है (से न इच्छेत्ता माणस्य नो चेव न सचाएह ?) ऐसा वह देव किसी  
प्रकार मनुष्यलोक में जानेकी इच्छा करे तो भी देवभोगों की आसक्ति  
से वह यहाँ नहीं आना चाहता है । (अहुनोपपन्न देवे दवल्लोपसु  
दिव्येहि कामभोगेहि मुच्छिण गिदे गदिए अल्लोपपन्ने) अभ्युनोपपन्न देव देवलोके

आ प्रभावे छे के लेने कीपि अभ्युनोपपन्न देव देवलोकांशी वल्लोपपन्न देव  
मनुष्यलोकांशी जल्लोपपन्न देव देवलोके छे परन्तु ते आनी शक्य नहीं तेसु पडेह  
कारण आ प्रभावे छे— (अहुनोपपन्न देवे दवल्लोपसु दिव्येहि कामभोगेहि  
मुच्छिण गिदे गदिए अल्लोपपन्ने स माणसे लोने नो आढाह नो परि-  
जानाह अभ्युनोपपन्न देव देवलोकांशी दिव्यभोगेभ्यो मूर्च्छितो यत्तु नैव छे,  
सुख-विषयोपभोग की आसक्तिवाली आसक्ति यत्तु नैव छे, प्रथित-विषयोभ्यो आसक्ति  
यत्तु नैव छे अने अभ्युपपन्न अने तेभ्यो अतीव आसक्ति मुक्त यत्तु नैव छे  
कोषी मनुष्यलोकांशी शब्द वज्जे विषयेने स-माननी दृष्टिको लेतो नहीं, तेनी  
ते अपेक्षा राखतो नहीं अने तेना स नैव ते छे छेयत्तु नैव यत्तु छे  
प्रशस्तो नहीं (से न इच्छेत्ता माणस्य नो चेव न सचाएह ?) कोषी ते देव  
ने शक्य मनुष्यलोकांशी आसक्तिवाली शक्य राखतो नैव ते पक्ष देवलोकांशी आसक्ति  
ने कीपि ते अकां आपना छेयत्तु नहीं. (अहुनोपपन्न देवे दवल्लोपसु दिव्ये-  
हि कामभोगेहि मुच्छिण गिदे गदिए अल्लोपपन्ने) अभ्युनोपपन्न देव देवलोकांशी दिव्य

નોપપન્નો દેવો દેવલોકેષુ ઇચ્છેત્ માનુષ્યં લોકં શીઘ્રમાગન્તું નૈવ શક્નોતિ  
હવ્યમાગન્તુમ્ તત્ શ્રદ્ધેહિં ચલુ ત્વં પ્રદેશિન્ ! યથા-અન્યો જીવઃ અન્યત્  
શરીરમ્, નો તજ્જીવઃ સ શરીરમ્ ૨ ॥મૂ. ૧૩૪॥

ટીકા-‘તદ્દેવં કેસીકુમારસમણે’ इत्यादि-ततः खलु केश कुमारश्रवणः  
प्रदेशिराजम् एवम्-वक्ष्यमाणवचनमवादीत-हे प्रदेशिन् ! यदि-चेत् खलु  
त्वां स्नातं कृतस्नानं कृतबलिकर्माणं-कृतवायसादिनिमित्तान्नभागं कृतकौतुक-  
मङ्गलपायश्चित्त-कृतमषीतिलकादि माङ्गलिकप्रायश्चित्तविधिम्. आर्द्रपट्टशाटकं-  
जलसि कवस्त्रशाटकयुक्तं भृङ्गारकटुच्छुक्कहस्तगतं-हस्तगृहीतभृङ्गारदर्वीकम्, देव-  
कुलं-यक्षायतनम् अनुप्रविशन्तम्-गच्छन्, कोऽपि-कश्चिदपि पुरुषो वर्चो-  
गृहे विष्ठागृहे स्थित्वा एवम्, वदेत्-कथयेत् हे स्वामिन् ! यूयमिह तावद् एत  
आगच्छत इह मुहूर्तं मुहूर्तमात्रसमयं यावत् आस्थवम् उपविशत, वा-  
अथवा तिष्ठत इहस्थिता भवत, निषीदत-समुखमुपविशत, त्वग्वर्त्तयत-शयनं-  
कुरुत, अत्र वा शब्दो वाक्यालङ्कारे, तस्य पुरुषस्य खलु हे प्रदेशिन् !  
त्वम् एतमर्थं किम् प्रतिशणुयाःस्वीकुर्याः ? प्रदेशीप्राह-

नायमर्थः समर्थः-अयमर्थः स्वीकारयोग्यो नास्ति किमर्थमित्याह हे-भदन्त !  
तत्स्थानम्-अशुचि-अपवित्रम्, अशुचिसामन्तम्=सर्वतोऽशुचि युक्तम्, तस्मा-

વવળ્ણે દેવે દેવલોએસુ ઇચ્છેજ્ઞા માણુમ્ લોમં હવ્યમાગચ્છિત્તદ્દેવ ણો ચેવ  
ળ સંચાણ્ હવ્યમાગચ્છિત્તદ્દેવ, તં મદ્દહાહિ ણં તુમં પર્ણસી ! જહા અન્નો  
જીવો અન્નં સરીરં, નો તં જીવો તં સરીર) હે પ્રદેશિન્ ! યે ચાર કારણ હૈં જો  
અધુનોપપન્ન દેવ કો મનુષ્યલોક મેં આને કી ઇચ્છા કરને પર ખી ડસે  
યહાં આને મેં બાધક હોતે હૈ । ઇસલિયે હે પ્રદેશિન્ ! તુમ મેરે કહને  
મેં શ્રદ્ધા કરો કિ જીવ અન્ય હૈ ઓર શરીર અન્ય હૈં જીવ શરીરરૂપ નહીં હૈ  
ઓર શરીર જીવરૂપ નહીં હૈ ।

ટીકાર્થ—इमं सूत्रं का मूलार्थं के जैसा ही है ॥मू. १३४॥

ચઠ્ઠિં ઠાળેહિં પર્ણસી ! અહુળોવવળ્ણે દેવે દેવલોએસુ ઇચ્છેજ્ઞા માણુસં  
લોગં હવ્યમાગચ્છિત્તદ્દેવ ણો ચેવ ણં સંચાણ્ હવ્યમાગચ્છિત્તદ્દેવ, તં મદ્દહાહિ  
ણં તુમં પર્ણસી ! જહા અન્નો જીવો અન્નં સરીરં નો તં જીવો તં સરીર)  
હે પ્રદેશિન્ ! આ ચાર કારણો છે કે જેથી અધુનોપપન્ન દેવ મનુષ્ય લોકમા આવ-  
વાની ઇચ્છા રાખતો હોય છતાંયે તે અહીં આવી શકતો નથી એટલા માટે હે  
પ્રદેશિન્ ! તમે મારી વાત પર શ્રદ્ધા રાખો કે જીવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય  
છે, જીવ શરીર રૂપ નથી અને શરીર જીવ રૂપ નથી.

ટીકાર્થ:—આ સૂત્રનો ટીકાર્થ મૂલાર્થ પ્રમાણે જ છે. ॥૧૩૪॥

३। अधुनोपपन्नो देवो दिव्यपु यावत् अधुपपन्नः, तस्य मानुष्यकः उदारः  
 दुर्ग-प पतिकूलः प्रतिलोम-पि भवति, ऊर्ध्वमपि च सलु यावत्सु पथ  
 योजनशतम् भद्रुमो ग-घोऽभिसमागच्छति, स सलु इच्छेत् मानुष्य मोर्कं  
 दृश्यमाण-तु नैव सलु श्वनार्ति। इत्यसौ चतुर्भिः स्थानैः प्रदेष्टिन ! भयु

है, सो यह देव मनुष्यलाक में भान का अभिलाषी बना रहन पर भी  
 यहाँ नहीं आ सकता है। (अहम्भाव ने देवे दिव्येहि जाय अज्ज्ञोवपणे  
 तस्म माणुस्सए उरास्से दुग्गये पटिहूले पटिलोमे पावि भवइ) चौथा  
 कारण यहाँ पर नहीं आसकम का ऐसा है कि-अधुनोपपन्न देव दिव्य  
 कामभोगों में यावत् अधुपपन्न हो जाता है सो उसके लिय औशगिक  
 सरोर सबही गोप्तककछेयरादि शत्रुसम दुर्ग-प-धाणेद्वय के अनुह्य  
 नहीं पड़ता है, प्रत्युत वह-उस-पतिकूल-मनिष्ट कर प्रतीत होता है (उह  
 पि य ण आव यत्तारि पव मोयणसए अतुम माणुस्सए गघे अभिसमा  
 गच्छइ से ण इच्छेज्जा माणुम भोग इवमागच्छसए वा चव ण  
 सचावइ) तथा २९ मनुष्यशोक सबही अशुम गघ चारसो या पावसो  
 योजन तक ऊपर में रुक रुक पैल जाता-है अत मनुष्यलाक में भान  
 का अभिलाषी बना हुआ यह देव उस दुग्ग प के कारण यहाँ नहीं  
 आ सकता है अर्थात् युगमियों के समय में चारसो याजन और मनुष्य में  
 पावसो योजन तक दुग्ग प जाता है (इहोपट्ठि चठहि ठाणेहि गन्मी ! अह्णु

भुत्तु प्राप्त करी बैठे हैं अने आभ ते देव अनुप्य होआं आववानी अनिवाप्त  
 शप्तो होय छाओ अही आवी शक्तो नथी (अह्णोवपने देवे दिव्येहि जाय  
 अज्ज्ञोवपणे, तस्म माणुस्सए उरास्से दुग्गये पटिहूले पटिलोमे पावि भवइ)  
 अही न आववातु भुत्तु करव आ भ्राओ है के अधुनोपपन्न देव दिव्य काम  
 भोगों में यावत् अधुपपन्न वह जाय है तो तेना भटे ओदरिह शरीर सबही  
 मोभुतक होवशा कि समुत्पन्न दुग्ग प धाणेद्वयना भटे अतुल अही शत्रुम नहि,  
 पण कोना बिबुद्ध ते तेने अतीव अनिष्टकर आवे है (उह पि य ण आव  
 यत्तारि पव मोयणसए अतुमे माणुस्सए गघे अभिसमागच्छइ, स वा  
 इवतोज्जा माणुम भोग इवमागच्छसए वा चव ण सचावइ) तथा ते  
 मनुष्य होके सबही अशुम अथ चारसो के पावसो योजन सुधी-उपर आभयभा  
 योमर प्रसरीने रहे है कोथी अनु यतोआं आववानी अनिवाप्त शप्तो होय छाओ  
 ते देव ते दुग्ग पने वीपी अही आवी शक्तो नथी अतवे के मुक्तोकोना समयभा  
 आवसो योजनने मनुष्यभां पावसो योजन सुधी दुग्ग प जाय है (इय रदि

नोपपन्नो देवो देवलोकेषु इच्छेत् मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव शक्नोति  
हव्यमागन्तुम् तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् ! यथा-अन्यो जीवः अन्यत्  
शरीरम्, नो तज्जीवः स शरीरम् २ ॥ सू० १३४॥

टीका-‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि-ततः खलु केश कुमारश्रवणः  
प्रदेशिराजम् एवम्-वक्ष्यमाणवचनमवादीत्-हे प्रदेशिन् ! यदि-चेत् खलु  
त्वां स्नातं कृतस्नानं कृतबलिकर्माणं-कृतवायमादिनिमित्तान्नभागं कृतकौतुक-  
मङ्गलप्रायश्चित्त-कृतमषीतिलकादि माङ्गलिकप्रायश्चित्तविधिम्. आर्द्रपट्टशाटकं-  
जलसि कवस्त्रशाटकयुक्तं भृङ्गारकटुच्छु रुहस्तगतं-हस्तगृहीतभृङ्गारदर्वीकम्, देव-  
कुलं-यक्षायतनम् अनुप्रविशन्तम्-गच्छन्. म्, कोऽपि-कश्चिदपि पुरुषो वर्चो-  
गृहे विष्ठागृहे स्थित्वा एवम्, वदेत्-कथयेत्-हे स्वामिन् ! यूयमिह तावद् एत  
आगच्छत इह मुहूर्त्तं सुहूर्त्तमात्रसमयं यावत् आस्थवम्-उपविशत, वा-  
अथवा तिष्ठत इहस्थिता भवत, निषीदत-समृखमुपविशत, त्वग्वर्त्तयत-शयनं-  
कुरुत, अत्र वा शब्दो वाक्यालङ्कारे, तस्य पुरुषस्य खलु हे प्रदेशिन् !  
त्वम् एतमर्थं किम् प्रतिशणुयाः-स्वीकुर्याः ? प्रदेशीमाह—

नायमर्थः समर्थः-अयमर्थः स्वीकारयोग्यो नास्ति किमर्थमित्याह हे-भदन्त !  
तत्स्थानम्-अशुचि-अपवित्रम्, अशुचिसामन्तम्=सर्वतोऽशुचि युक्तम्, तस्मा-

ववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा मानुसं लामं हव्वमागच्छित्तए णो चेव  
ण संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं सदहाहि णं तुमं पएसी ! जहा अन्नो  
जीवो अन्नं सरीरं, नो तं जीवो तं सरीरं) हे प्रदेशिन् ! ये चार कारण हैं जो  
अधुनोपपन्न देव को मनुष्यलोक में आने की इच्छा करने पर भी उसे  
यहां आने में बाधक होते हैं । इसलिये हे प्रदेशिन् ! तुम मेरे कहने  
में श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य हैं जीव शरीररूप नहीं है  
और शरीर जीवरूप नहीं है ।

टीकार्थ—इस सूत्र का मूलार्थ के जैसा ही है ॥ सू. १३४॥

चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा मानुसं  
लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तं सदहाहि  
णं तुमं पएसी ! जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं)  
हे प्रदेशिन् ! आ चार कारणे छे के जेथी अधुनोपपन्न देव मनुष्य लोकमा आव-  
वानी छुछा राणतो छाय छताये ते अहुी आवी शक्ते नथी ओटला भाटे छे  
प्रदेशिन् ! तमे भारी वात पर श्रद्धा सणे के एव अन्य छे अने शरीर अन्य  
छे, एव शरीर इय नथी अने शरीर एव इय नथी.

टीकार्थः—आ सूत्रेनो टीकार्थं मूलार्थं प्रभावे ज छे. ॥१३४॥



३। अधुनोपपन्नो देवा दिव्येषु यावत् अश्वेषु पयसा, तस्य मानुष्यक उदारः  
 दुर्गन्धं प्रतिहृत्यः प्रतिलोमं वापि भवति, ऊर्ध्वमपि च खलु यावत्तु पयः  
 योजनसप्तमं भक्ष्यं गोघोऽमितमगच्छति, स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोक  
 इव्यमागच्छ नैव खलु क्षयनाति। इत्यस्य चतुर्भिः स्थानैः प्रवेष्टिनः। अधु

है, तो यह देव मनुष्यत्वाक में भाग का अभिलाषी बना रहन पर भी  
 यहाँ नहीं आ सकता है। (अधुनापपन्नं न दत्तं दिव्यं हि साधु मन्त्रोवचने।  
 तस्य मानुस्य उराखे दुर्गन्धे पश्चिक्छे पश्चिमो वापि भवति) चौथा  
 कारण यहाँ पर नहीं भोगकम का ऐसा है कि-अधुनापपन्नं दत्तं दिव्य  
 काममोगों में यावत् अश्वेषु पयस्य हो जाता है तो उसके लिए औशगिक  
 शरीर मन्त्रो गोघ्नकच्छरादि शत्रुस्य न दुर्गन्ध-प्राणेन्द्रिय के अनुकूल  
 नहीं पड़ता है, मनुष्य वस्त्र-उत्स-प्रतिकूल-मनिष्ट कर प्रतीत होता है (उद्  
 पि य ण जाय चत्वारि पञ्च जायवस्य भक्ष्यं मानुस्य गच्छे अमितमा  
 गच्छत्, से ण इच्छेत्ता मानुसं लोका इव्यमागच्छत्त एवो चैव ण  
 सखापत्) तथा यह मनुष्यत्वाक सवधी भक्ष्य गच्छे चारसौ या पाँचसौ  
 योजन तक ऊपर में रूप एक पैर जाता-ई अतः मनुष्यत्वाक में भाग  
 का अभिलाषी बना हुआ यह देव उस दुर्गन्ध के कारण यहाँ नहीं  
 आ सकता है अर्थात् पुण्ड्रिगों के समय में चारसौ याजन और मनुष्य में  
 पाँचसौ योजन तक दुर्गन्ध जाता है (इच्छेत्ति चतुर्हि ठाणेहि पयसी। अधुना

भूतु प्राप्त करी लूँगे छे अने आभ ते देव मनुष्य लोकमा आववानी अलिखण  
 शपते। देव छान्ने अही आवी शकते नहीं। (अधुनोवचने देव दिव्ये हि जाय  
 मन्त्रोवचन, तस्य मानुस्य उराखे दुर्गन्धे पश्चिक्छे पश्चिमो वापि भवति)  
 अही न आकाश में जाय शक्य न प्रभावे ॥ के अधुनोपपन्नं देव दिव्य काम  
 मोगों में यावत् अश्वेषु पयस्य भवति अतः तो तेना आटे औद्यगिक शरीर सवधी  
 मोक्षक इव्यमागच्छति अश्वेषु न दुर्गन्ध प्राणेन्द्रियमाटे अनुकूल अही शक्य नहीं  
 पय कोना विदुः ते तेने प्रतिहृत्य अतिष्ठत्त लाये छे (उद् पि य ण जाय  
 चत्वारि पञ्च जायवस्य भक्ष्यं मानुस्य गच्छे अमितमागच्छत्, से ण  
 इच्छेत्ता मानुसं लोका इव्यमागच्छत्त एवो चैव ण सखापत्) तमय ते  
 मनुष्य लोक सवधी मनुष्य गच्छे चारसौ के पाँचसौ योजन श्रुधी उपर आकाशमा  
 श्रुति प्रदर्शने रहे छे कोषी मनुष्यलोकमा आववानी अलिखण शपते। देव छान्ने  
 ते देव ते दुर्गन्धने लीपे अही आवी शकते नहीं अतः के मनुष्यलोका समवभा  
 आवसो योजनने मनुष्यमा पाँचसौ योजन श्रुधी दुर्गन्ध भवति छे (इत्येहि

खलु यावच्चतुःपञ्चयोजनगतं-चत्वारि वा पञ्च वा योजनानां शतानि यावत्  
अभिममागच्छन्ति-अभिनः प्रमरति. स देवः मानुष्यं लोकमागन्तुम्, इच्छेत्  
परन्तु तद्गन्धश्चादागन्तुं न शक्नोति ४। हे प्रदेशिन् । इत्येतैः चतुर्भिः  
स्थानैः-देवा आगन्तुं न शक्नुवन्तीति । तत् तस्मात्कारणान् हे प्रदेशिन् ।  
त्वं श्रद्धेहि-मद्वचने श्रद्धां कुरु यथा-अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम् नो तज्जीवः  
स शरीरम्, इति ॥सू० १३४॥

मूलम्—तएणं से पएसी राया केन्नि कुमारसमणं एवं वयासी-  
अत्थिणं भंते । एसा पण्णा उवमा, इमणं पुण कारणेण णो उवा-  
गच्छइ. एवं खलु भंते ! [अह अन्नया कयाइं वाहिरियाए उवट्ठाण-  
सालाए अणेगगणणायक-दंडणायग राईसर-तलवर-माडंवि-केळुं-  
विय - डवभसेट्ठि सेणावइ - सत्थवाह-मंति-महामंति-गणग-  
दोवारिय-असच्चचेड-पीढमइ-नगर-निगम-दूय-सधिवालेहिं सद्धि संप-  
रिवुडे विहरामि ] तएणं मम णगरगुत्तिया ससक्खं सहोढं सगेवेज्जं  
अवउडमवंधणवद्धं चोरं उवणेंति, तएणं अहं तं पुरिसं जीवत  
चैव अउकुंभीए पक्खिवावेमि, अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि, अएण  
य तउएण य आयावेमि, आयपच्चइएहिं पुरिसेहि रक्खावेमि, ] तए  
अहं अणया कयाइं जेणामेव सा अउकुंभी तेणामेव उवागच्छामि, ]  
उवागच्छित्ता त आउकुंभि उगलत्थावेमि, उगलत्थावित्ता तं  
पुरिसं सयमेव पासामि णो चैव णं तीसे अयकुंभीए केइ छिड्डेइ वा  
विवरेइ वा अंतरेइ वा राईवा जओ णं से जीवे अंतोहिंतो वहिया  
णिग्गए, जइ णं भते । तीसे अउकुंभीए होज्जा केइ छिड्डे वा जाव  
राई वा जओ णं से जीवे अंतोहिंतो वहिया णिग्गए, तो णं अइ  
सद्वहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा जहा-अन्नो जीवो अन्न सरीर नो त

नोचितोऽपमर्थः इति बोध्यम्, केहीअमणः ग्राह-हे मदेशिन् । एवमेव  
इत्यमेव तथापि आर्यिकाऽमवत् कुम्भ साऽमवदित्यथाऽऽह-इहेव श्वेतविकायां  
मगर्या पार्मिकी-यावत्-यावत्पदेन-मर्मानुगादिविशेषणविशिष्टा व्यहरत,  
सा-आर्यिका खलु मम वस्तुव्यवस्था-मम मतेन सुबहु यावत्-यावत्पदेन-  
'पुण्योपपन्न समञ्जस' काष्ठमासे काष्ठ कुम्भाऽन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया  
उपपन्ना, तस्याः खलु आर्यिकायाः त्व नष्टक-पौत्रोऽमव कीदृशः ?  
इत्यथाऽऽह-इष्टः यावत्-यावत्पदेन-इष्टकान्तादिविशेषणविशिष्टाः उद्भूत  
पुष्पमिव दुर्लभा भवणतया, किमह पुनर्दानतया, एतादृशस्त्वमधुः । सा  
आर्यिका खलु मानुष्यलोकमागतुमिच्छति किन्तु नैव शक्नोति ।

कुतो न शक्नोति ? इति जिज्ञासायामाह-हे मदेशिन् । अतुमिः-  
म्यानेः अधुनोपपन्नः-तस्मात्पत्न्यन्तो देवः देवलोकेषु मानुष्यलोकं क्षीत्र-  
मागन्तुमिच्छेत्-अभिलषेत् किन्तु नैव शक्नोति-तत्र प्रथमकारणमाह-  
अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु कामभोगेषु मूर्च्छित-मूर्च्छामधिगतः, शृद्धा-  
विषयोपभोगामिच्छापन्नस्तः, ग्रथितः आसक्तः, अधुपपन्नः-अत्यासक्तः स  
खलु मानुष्यान्-मानुष्यलोकसम्पर्धिनः भोगान्-शब्दादीन् विषयान् नो  
आश्रियते नापेक्षते, अतएव नो परिजाना त-विज्ञातु नेच्छति, स खलु देवः  
कथञ्चित् मानुष्यलोकमागन्तुमिच्छति किन्तु देवभोगासक्त्या नैवागन्तु  
शक्नोति-नेच्छतीत्यर्थः १। द्वितीयस्थानमाह-अधुनोपपन्न इत्यारभ्य  
वत्पुपपन्नः इति पचन्तानां विवरणं प्राप्यत्, तस्य-देवस्य मानुष्य-मनु-  
ष्यसम्पर्धिनः प्रेम मूर्च्छितन्तु मनुष्यलोकसुखापेक्षयाऽधिकविषयसुखेन मति  
इत भवति तथा-दिश्य-स्वर्गलोकसम्पर्धिनः प्रेम सकान्त-इत्यनुमिष्य  
भवति, तेन हेतुना स देव आगन्तु न शक्नोति २।  
अधुनोपपन्नो देवो दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो शृद्धा ग्रथितोऽप्यु-  
पपन्नो भवति, तस्य खलु देवस्य एवम्-अनुपदक्ष्यमाणस्यस्यो मित्रापो  
भवति तथाहि-इदानीम्-अधुना गमिष्यामि, तथा श्रूयते न पत्रिकाद्वया  
नन्तर गमिष्यामि । तस्मिन् काष्ठ इह-मस्य साकं नराः-मातापितृपुत्र  
कलत्रादयः अल्पोपुत्र अल्पजोविनः काष्ठपमण-मृग्युना मयुक्ता भवन्ति,  
सः देव आगतु न शक्नोति ३। अथ वस्तुस्थानमाह-"अधुनोपपन्नो देवो  
दिव्यभोगासक्तो भवति, तस्य दस्य औदारिकः औदारिकस्तरिरगम्यपी  
गायतकक्षेत्रादिमृदुभूतो दुर्गम्य मतिश्रमः प्राणोद्विगानन्तरमः, पतिव्याम-  
प्राणापिष्टकरमापि भवति । तथा-अधुना सः गन्ध ऊरु म व उपरिग्रहण वि प

खलु यावच्चतुःपञ्चयोजनगतं-चत्वारि वा पञ्च वा योजनानां शतानि यावत्  
अभिसमागच्छति-अभितः प्रसरति. स देवः मानुष्य लोकमागन्तुम्, इच्छेत्  
परन्तु तद्गन्धवशादागन्तुं न शक्नोति ४। हे प्रदेशिन् । इत्येतैः चतुर्भिः  
स्थानैः-देवा आगन्तुं न शक्नुवन्तीति । तत् तस्मात्कारणात् हे प्रदेशिन् ।  
त्वं श्रद्धेहि-मद्वचने श्रद्धां कुरु यथा-अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम् नो तज्जीवः  
स शरीरम्, इति ॥सू० १३४॥

मूलम्—तएणं से पएसी राया केमि कुमारसमणं एवं वयासी-  
अत्थिणं भंते । एसा पण्णा उवमा, इमेणं पुण कारणेण णो उवा-  
गच्छइ, एव खलु भंते ! (अह अन्नया कयाइं वाहिरियाए उवट्ठाण-  
सालाए अणेगगणायक-दंडणायग राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुं-  
बिय - डवभसेट्ठि सेणावइ - सत्थवाह-मंति-महामंति-गणग-  
दोवारिय-असच्चवेड-पीढमइ-नगर-निगम-दूय-सधिवालेहिं सद्धि संप-  
रिवुडे विहरामि ।) तएणं मम णगरगुत्तिया ससक्खं सहोढं सगेवेज्जं  
अवउडमबंधणवद्धं चोरं उवणेंति, तएणं अहं तं पुरिसं जीवत  
चैव अउकुंभीए पक्खिवावेमि, अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि, अएण  
य तउएण य आयावेमि, आयपच्चइएहिं पुरिसेहि रक्खावेमि, ) तए  
अह अण्णया कयाइं जेणामेव सा अउकुंभी तेणामेव उवागच्छामि, ]  
उवागच्छित्ता त आउकुंभि उगलत्थावेमि, उगलत्थावित्ता तं  
पुरिसं सयमेव पासामि णो चैव णं तीसे अयकुंभीए केइ छिड्डेइ वा  
विवरेइ वा अंतरेइ वा राईवा जओ णं से जीवे अंतोर्हितो वहिया  
णिग्गए, जइ णं भते । तीसे अउकुंभीए होज्जा केइ छिड्डे वा जाव  
राई वा जओ णं से जीवे अंतोर्हितो वहिया णिग्गए, तो णं अहं  
सहहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा जहा-अन्नो जीवो अन्न सरीरं नो त

જીવો ત સરીર, જમ્હા ણં મતે ! તીસે અઝકુમીય ણરિય કેડ  
છિડે યા જાવ નિગમ, તમ્હા સુપહિટિયા મં પહણા જહા-ત  
જીવો ત સરીર, નો અન્નો જીવો અન્નં સરીર ॥સૂ૦ ૧૩૫॥

ઘાયા—તત્કાલ સ પ્રદેશી રાખા કેશિન કુમારઅમનમેયમચારીત્  
અસ્તિ લલુ મદન્ત ! યમા મજા ઠપમા અનેન પુનાકારણેન નો ઠપાગ  
વછતિ, એ લલુ મદન્ત ! અહમન્યશ કદાચિત્ત ચાહ્યાપામ્ ઠપમ્પાનંચાલા  
યામ્ અનેકગણનાયક-વજનાયક-રાજેશ્વર-તલચર-માહમ્મિય-કોડુમ્મિય-  
કેશવ-મેષ્ટિ-સેનાપતિ-સાર્વજાહ-મન્ત્રી-મહામન્ત્રી-ગણક-દોશારિયા-ડમાત્પ-  
ચેટ-વીઠમર-નગર-નિગમ-નૂત-સંધિચાલેઃ માહ્યં સપરિયુલો વિહરામિ ।

‘તપન સે વપસી રાયા’ इत्यादि ।

અન્યાર્થ—(તપ ન) હસકવાદ (વપસી રાયા કેસિકુમારસમન એવં  
વચાસી) પ્રદેશી રાજામે કેશીકુમાર અમન સંવેસા કહ્યો—(અસ્તિ ન મતે !  
યમા પળા ઠવમા, હમેન પુણ કારણેન નો ઠવાગવછડ) હે મદન્ત ! યહ  
જીવ એ શરીર મેં મહાકૃપ બુદ્ધિ કેવલ ઠપમામાત્ર છે, જૈસા કિ અમી  
મકટ ક્રિયા ગયા છે—કિ હસર કારણ સે દેવ યહાં નહીં ઝાઠા છે. (એ  
લલુ મતે ! અહ અન્નયા વચાઈ ચારિરિયાવ ઉચ્છાલસાભાવ) હે મદન્ત !  
કિસી એક સમય મેં ચાહ્યા ઠપમ્પાન છાલા મેં (અણમગનનાયક, વજના  
યક-રાજેશ્વર-તલચર-માહમિય-કોડુમિય-ડમ-સદ્ધિ-સેનાવહ-સત્પચાહ-  
મતિ-મહામતિ-ગણક-દોશારિય-અમચ-ચેટ-વીઠમર-નગર-નિગમ-નૂત-  
સંધિચાલેઈ સદ્ધિ સપરિયુલે વિહરામિ) અનેક ગણનાયક, વજનાયક, રાખા,

અન્યાર્થ—(તપ ન) ત્યારથી (વપસી રાયા કેસિકુમારસમન એવં વચાસી)  
પ્રદેશી રાજામે કેશીકુમાર અમનને આ પ્રભાવે કહ્યું—(અસ્તિ ન મતે ! યમા  
પળા ઠવમા હમેન પુણ કારણેન નો ઠવાગવછડ) હે મદન્ત ! તમે દેવને  
મહી ન આપવા માટે એ કંઈ કહ્યું છે તેના બદલે તો એ અને શરીરમાં બેઠેલ  
બુદ્ધિ કંઈ ઠપમામાત્ર ન છે આમ સ્પષ્ટપણે બાધિત થાય છે (એ લલુ મતે !  
અ અન્નયા વચાઈ ચારિરિયાવ ઉચ્છાલસાભાવ) હે મદન્ત ! કોઈ એ વચને  
નીચે ઠપમ્પાનનાભાવે હું (અણમગનનાયક-વજનાયક-રાજેશ્વર-તલચર-માહ  
મિય-કોડુમિય-ડમ-સદ્ધિ-સેનાવહ-સત્પચાહ-મતિ-મહામતિ-ગણક-દો  
શારિય-અમચ-ચેટ-વીઠમર-નગર-નિગમ-નૂત-સંધિ-ચાલેઈ-સદ્ધિ સપરિ

ततः खलु मम नगरगुप्तिकाः समक्ष सहोद सग्रेवेयकम् अवकोटकचन्वनवद्  
चौरमुपनयन्ति, ततः खलु भद्रं नं पुरुषं जीवन्तमेव अयःकुम्भां पक्षेभ्यामि,  
अयामयेन पिधानकेन पिद्यापयामि अयमा च त्रपुणा च आतापयामि,  
आत्मप्रत्ययिकैः पुरुषैः रक्षयामि, ततोऽहमन्यदा कदाचित् यत्रैव सा अय-

ईशा ऐश्वर्यसंयन्त, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति,  
सार्थवाह, मन्त्री, महामन्त्री, गणिक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्द,  
नगरनिवासीजन, व्यापारिगण, दूत, मन्धिपात्र, इन मयके साथ बैठे हआ  
था. (तएणं मम नगरगुप्तिया ससक्खं, सहोदं, सगेवेज्जं, अवउडमवंध-  
णवद्धं चोर उवणेति) इतने में नगररक्षक मेरे समक्ष सहोद-चुराई हुई  
वस्तुओं सहित, सग्रेवेयक-ग्रोवा में जियने चुराई हुई वस्तुओं को बाधा  
है ऐसे चार को अवकोटक-(मुसक्रिया) बंधन से बांधकर लाये (तएणं  
अहं तं पुरिसं जीवंतं चेव अउकुंभीए पक्खिवावेमि) मैं उस पुरुष को  
जीवितावस्था मे ही लोह की कोठी में बन्द करवा दिया-और (अउम-  
एण पिहाणएणं पिहावेमि) उसके मुख को-कोठी के मुख को लोह के ढकन  
से बन्द करवा दिया-ढकवा दिया. (अएण य तउएण य आयावेमि) बाद  
में फिर मैंने उसे द्रवीभूत लोहे से और द्रवित राग से अङ्कित करवा  
दिया, (आयपच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खवावेमि) यह सब करवाकर फिर मैंने  
अपने विश्वासपात्र पुरुषों को उसकी रक्षा के नि मत्त नियुक्त करवा दिया.

छुटे विहरामि) घण्टा गणुनायको, दंडनायको, राजा, ईश्वर, ऐश्वर्य, स यन्त, तलवर  
माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, मन्त्री, महामन्त्री, गणिक,  
दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्द, नगरनिवासीजन, बड़ेपारीयो, हूतो, संधिपालो,  
आ अधानी साथे बैठे हुतो, (तए णं मम नगरगुप्तिया ससक्खं सहोदं, सगेवे-  
ज्जं, अवउडमवंधणवद्धं चोर उवणेति) येतलामा नगररक्षक मारी साथे सहोदं  
-चोरायेली वस्तुओंनी साथे, सग्रेवेयक-जेनी डाकमा चोरायेली वस्तुओं बांधवामां  
आवी छे जेवा चोरने अवकोटक-जन्ने हाथये लेगा जाधीने लाव्या. (तए णं अह  
त पुरिसं जीवंतं चेव अउकुंभीए पक्खिवावेमि) मे ते पुरुषने एवने  
७ दोष उना नजामा गद करावी दीधो. अने (अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि)  
ते नजाने दोष उना दाक्षुथी गंध करावी दीधो. (अएण य तउएण य आयावेमि)  
त्यार पछी मे तेने द्रवीभूत दोष उ तेमज्ज द्रवित रागथी अङ्कित करावी दीधो  
(आयपच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खवावेमि) आ अधु करावीने पछी मे तेना रक्षा

જીવો ત સરીર, જમ્હા ણં મતે ! તીસે અઠકુમીણ ણરિય કેઢ  
છિઢે યા જાવ નિગમ, તમ્હા સુપહિટ્ટિયા મ પહપ્પણા જહા-ત  
જીવો ત સરીર, નો અન્નો જીવો અન્નં સરીરં ॥સૂ૦ ૧૩૫॥

છાયા—તત્ત્વલુ સ પ્રવેશી રાજા કેશિન કુમારભમ્મણમેવમચારીત્  
અસ્તિ સ્વલુ મદન્ત ! યપા પ્રજ્ઞા ઉપમા અનેન પુનઃકારણેન નો ઉપામ  
પ્પત્તિ, એવ સ્વલુ મદન્ત ! અહમ્મયસા કદાચિત્તં યાદ્યાપામ્ ઉપમ્પાનસાદા  
યામ્ અનેકગણનાયક-દશ્વનાયક-રાજેશ્વર-તલશ્વર-માહમ્મિય-કોઢુમ્મિય  
કેશ્વ-સેટ્ઠિ-સેનાપતિ-સાર્થસાહ-મન્થી-મહામન્થી-ગણક-દોઢારિકા-ડમાત્પ-  
વેદ-પીઠમદ-નગર-નિગમ-વૃત-સપિયાલેઃ સાર્દ્ધં સપરિગૃહો વિહરામિ ।

‘તપ્પણ સે વપ્પસી રાયા’ इत्यादि ।

સમ્બાર્થ—(તપ્પ ૧) इसक बाद (वपसी राया केसिकुमारसमय एवं वयासी) प्रवेशी राजाने केशीकुमार भमब से ऐसा कहा—(अस्थि य मते ! एसा पज्ज्ञा उपमा, इमेव पुण कारणेण नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह जीव एव शरीर में मेदरूप बुद्धि केवल उपमा मात्र है, जैसा कि अभी प्रकट किया गया है—कि इसर कारण से येव यहाँ नहीं आता है. (एव स्वलु मते ! अह अन्नया कयाइ चादिरियाए उवट्ठाणसासाए) हे भदन्त ! किसी एक समय मैं याद उपस्थान क्षात्ता में (अणेगगणनायक, दशनायक-राजेश्वर-तलश्वर-माहमिय-कोडुविय-इम्म-सेट्ठि-सेणावह-सथसाह मति-महामति-गणक-दोडारिय-भमब-वेड-पीठमद-नगर-निगम-वृत्-सपियालेहि सद्धि सपरिगृहे विहरामि) અનેક ગણનાયક, દશનાયક, રાજા,

સમ્બાર્થ—(તપ્પ ૧) ત્યારપછી (વપસી રાયા કેસિકુમારસમય એવં વયાસી) પ્રવેશી રાજાને કેસી કુમાર ભમબને આ પ્રમાણે કહ્યું—(અસ્થિ યં મતે ! એસા પજ્ઞા ઉપમા, હમેવ પુણ કારણેણ નો ઉવાગપ્પહ) હે ભદન્ત ! ઉમે ઉપને બહો ન બાવવા માટે જે કંઈ કહ્યું છે તેના વડે તો એવ અને શરીરમાં કેદરૂપ બુદ્ધિ કેવલ ઉપમામાત્ર જ છે આમ સ્પષ્ટપણે જાણિત થાય છે. (એવં સલુ મતે ! મ અન્નયા કયાઈ ચાદિરિયાએ ઉવટ્ઠાણસાસાએ) હે ભદન્ત ! કેઈ બેઠે વપ્પતે બીજા ઉપસ્થાનશાળામાં જુ (અણેગગણનાયક-દશનાયક-રાજશ્વર-તલશ્વર-માહમિય કોઢુમિય-ઈમ્મ-સેટ્ઠિ-સેનાવહ-સથસાહ-મતિ-મહામતિ-ગણક-દોઢારિકા-ડમાત્પ-વેદ-પીઠમદ-નગર-નિગમ-વૃત-સપિયાલેઃ સાર્દ્ધં સપરિ

ततः खलु मम नगरगुप्तिकाः समक्ष सहोद सगैवेयकम् अवकोटकवन्धनवद्ध  
चौरमुपनयन्ति, ततः खलु बह तं पुरुषं जीवन्तमेव अग्रःकुम्भां प्रक्षेपयामि,  
अग्रामयेन पिधानकेन पिधापयामि अग्रमा च त्रपुण च आतापयामि,  
आत्मप्रत्ययिकैः पुरुषैः रक्षयामि, ततोऽहमन्यदा कदाचित् यत्रैव सा अग्र-

ईशा ऐश्वर्यसंपन्न, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इत्य, श्रेष्ठी, सेनापति,  
सार्थवाह, मन्त्री, महामन्त्री, गणेश, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्द,  
नगरनिवासीजन, व्यापारिगण, दूत, पन्थिपारु, इन सब के साथ बैठा हुआ  
था। (तएणं मम नगरगुप्तिया ससक्खं, सहोदं, सगेवेज्जं, अवउडमवंध-  
णवद्धं चोर उवणेति) इतने में नगररक्षक मेरे समक्ष सहोद-चुराई हुई  
वस्तुओं सहित, सगैवेयक-ग्रोवा में जिमने चुराई हुई वस्तुओं को बाया  
है ऐसे चार को अवकोटक-(मुमक्षिया) बंधन से बांधकर लाये (तएण  
अहं तं पुरिसं जीवन्तं चेव अउकुम्भीए पक्खिवावेमि) मैं उस पुरुष को  
जीवितावस्था में ही लोह की कोठी में बन्द करवा दिया-और (अउम-  
एण पिहाणएणं पिहावेमि) उसके मुखले-कोठी के मुख को लोह के ढकन  
से बन्द करवा दिया-ढकवा दिया। (अएण य तउएण य आयावेमि) बाद  
में फिर मैंने उसे द्रवीभूत लोहे से और द्रवित राग से अङ्कित करवा  
दिया, (आयपच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खवावेमि) यह सब करवाकर फिर मैंने  
अपने विश्वासपात्र पुरुषों को उसकी रक्षा के निमित्त नियुक्त करवा दिया।

बुडे विहरामि) धण्डा गणुनायको, उडनायको, राज, धंधर, ऐश्वर्य, संपन्न, तलवर  
भांडगिक, कौटुगिक, इत्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, मन्त्री, महामन्त्री, गणेश,  
दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्द, नगरनिवासीजन, बडेपारीयो, दूतो, संधिपालो,  
आंधधानी साथे बैठे हुतो, (तएणं मम नगरगुप्तिया ससक्खं सहोदं, सगेवे-  
ज्जं, अवउडमवंधणवद्धं चोर उवणेति) अटलामा नगररक्षक भारी सामे सहोदं  
-चोरालेली वस्तुओनी साथे, सगैवेयक-नेनी डाकमा चोरालेली वस्तुओ आंधवामां  
आवी छे ओवा चोरने अवकोटक-गन्ने डायथे लेगा आंधीने लाव्या। (तएणं अह  
त पुरिसं जीवन्तं चेव अउकुम्भीए पक्खिवावेमि) मे ते पुरुषने एवने  
न दोषउना नणामा अह करावी दीधा, अने (अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि)  
ते नणाने दोषउना डाकुथी अध करावी दीधा (अएण य तउएण य आयावेमि)  
त्यार पछी मे तेने द्रवीभूत दोषउ तेमअ द्रवित रागथी अङ्कित करावी दीधा  
(आयपच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खवावेमि) आ अधु करावीने पछी मे तेना रक्षा



कुम्भी तत्रैव उपागच्छामि उपागम्य तामपकुम्भीम् उत्सेरयामि उत्सेप्य  
त पुरुष स्यमेव पश्यामि नो चेन्न स्वस्त्यस्तथा अयस्कुम्भीं किञ्चित् छिद्रमिति  
वा विवरमिति वा भन्तरमिति वा राजिरिति वा यतः स्वस्त्यस्त जीवः भस्म  
राद् वह्निर्निगतः यदि स्वस्त्यस्त्यन्तः ' तस्यां अयस्कुम्भीं भवेत् किमपि छिद्र  
या यावद् राजिर्वा यतः स्वस्त्यस्त जीवः अन्तराद् वह्निर्निगतः, तदा स्वस्त्य  
मह्य अहर्षां प्रसीयां राक्षसेय यथा-अ यो जीवः मन्पन् शरीरं नो तज्जीव

(तएव मह्य अगम्य कथाः जेगामेव मा भउकु मी तेणामेव उपागच्छामि)  
एक दिन को बात है कि मैं उस भय कुम्भी के-फोड़ेकी ठोनी के पास  
गया (उपागच्छिता त आउकुमि उगमस्थानेति) वहाँ जाकर मैंने उस  
फोड़ेकी काठी का खुलवाया (उगमस्थानेति त पुरिस सयमेव पासामि  
नो चेन्न न तोसे अपकु मीए केइ छिड़ेइ वा विवरेइ वा अतरेइ वा राई वा  
जओण से जीवे अतोहिंनो यहिया निगए) खुलवाकर मैंने स्वयं उस चार  
का देखा तो वह वहाँ मरा पड़ा था, जब कि उस लोहे की काठी में न कोई  
छिद्र था, न कोई विवर था, न अक्काश था, न कोई देखा थी, कि  
जिससे होकर उस चार पुरुष का जीव उस छोड़े की काठी के  
भीतर से बाहर निकल जाता (अइण मत्ते ! तौसे भउकु मीए- होइ  
केइ छिड़े वा जाव राई वा जओण से जीवे अतोहिंनो यहिया  
निगए) हाँ अन्त ! यदि उस लोहे की काठी में, कोई छिद्र वा यावत्  
देखा होती तो उससे होकर वह चार पुरुष का जीव भीतर से बाहर

आ? (विशेषात् पुनरेव निश्चितं १११६५५) (तएव मह्य अगम्य कथाः जेगामेव  
मा भउकु मी तेणामेव उपागच्छामि) अथ द्विअन्तं वात्त उ केहु त बोअटना  
नग्य पत्ते गये. (उपागच्छिता त आउकुमि उगमस्थानेति) त्वं वदने अ  
॥ बोअटना नग्यने उवध ये. (उगमस्थानेति त पुरिस सयमेव पासामि, नो  
चेन्न न तोसे अपकु मीए केइ छिड़ेइ वा विवरेइ वा अतरेइ वा, राई  
वा जओण से जीवे अतोहिंनो यहिया निगए) उवधने ये पत्ते ते वाने  
येये. तो त तेमां भूवावस्थाभा पउवेइ इते. ज्यारे ते बोअटना नग्यभां न छिद्र  
इउ के न विवर इउ के न अक्काश इते के न देखा इती के नेथी ते वारने  
एव ते बोअटना नग्यभां नग्यने नीअने जते इते. (अइण मत्ते ! तौसे भउकु  
मीए होइआ कह छिड़े वा जाव राई वा जओण से जीवे अतोहिंनो  
यहिया निगए) हे अन्त ! जो ते बोअटना नग्यभां केछ छिद्र के यावत् देखा  
इत तो तेमां वदने ते वार पुअने एव अइइथी-अइइ नीअनी शत. (नो

सशरीरम्, यस्माद् भदन्त ! तस्या अयम्कुम्भः नान्ति किञ्चित छिद्रं वा यावत् निर्गतः, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-मन्त्रजीवः नत् शरीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम् ॥ सू० १३५॥

टीका— नगणं से पएसी राया' इत्यादि-ततः-केशिकुमारवचन-अवगणनन्तरं खलु स प्रदेशी राजा केशिन कुमारश्रमणम् एवम्-अवादिद-हे भदन्त ! एषा-जीवशरीरयो भेदरूपा प्रज्ञा=बुद्धिः उपमा=उपमामात्रम् अस्ति-विद्यते, यद् अनेन कारणेन देवो नो उपागच्छतीति । हे भदन्त ! एवं-पूर्वोक्तप्रकारेणान्यदर्शवृत्तमस्ति यद् अहम्-अन्यदा-यदाचित्-अन्यस्मिन् कर्मिश्चित् समये-वाह्यायाम्-उपस्थानशालायाम् अनेकगणनायक-दण्डनायक राजेश्वर-तन्त्र-साडम्बिक-कौटुम्बिके-भ्य-अष्टिष्ठ-सेनापति-सार्थवाह-

निकलता (तो णं अहं सदहेज्जा पत्तिएज्जा-गोएज्जा जहा-अन्नो जीवो अन्नं सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं) तो मैं आपको इस ध्यान पर विश्वास कर लेता, प्रतीति कर लेता, उसे रुचि का विषय बना लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर रूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है (जम्हा णं भन्ते ! तीसे अउकुंभीए णत्थि केड छिद्धे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपडट्टिया मे पड्डणा जहा-तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं) जिस कारण हे भदन्त ! उस लोहे की कोठी में काँड़, छिद्र अथवा यावत् रेखा नहीं थी कि जिससे उसका जीव बाहर निकल जाता, अतः छिद्रादि के अभाव से निकलने में अशक्त होने के कारण मेरा ही यह मन्तव्य ठीक है कि जो जीव है, वही शरीर है, जीव शरीर से भिन्न नहीं है और शरीर जीव से भिन्न नहीं है ।

अहं सदहेज्जा पत्तिएज्जा राएज्जा जहा-अन्नो जीवो अन्नं सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं) तो हुं तमारी आ बात पर विश्वास करी लेता, प्रतीति करी लेता अने तेने मारी इत्थिने विषय णनावी लेता के एव अन्य छि अने शरीर अन्य छि, एव शरीररूप नहीं अने शरीर एवरूप नहीं, (जम्हा ण भन्ते ! तीसे अउकुंभीए णत्थि केड छिद्धे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपडट्टिया मे पड्डणा जहा-तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं) लेने लीधि छे जइता । ते लोभइता नणामा केड छिद्र के यावत् रेखा नहीं के नेथी तेने एव अडार नीकणी जेतो रडे माटे छिद्र वगेरेना अभावमा अडार नीकणवामा अशक्त होवा अडल मारी न आ जतनी मान्यता उचित लागे छि के ने एव छे तेन शरीर छि, एव शरीरधी भिन्न नहीं अने शरीर एवधी भिन्न नहीं.

स्कम्पो तथैव उपागच्छामि उपागम्य तामयस्कम्प्योऽप्य उल्लेखयामि उल्लेख्य  
त पुरुष सयमेव पश्यामि नो चेव स्वलु तस्या अयस्कम्प्या किरिन् छिद्रमिति  
वा विवरमिति वा अन्तरमिति वा रामिरिति वा यतः स्वलु स जीवः अन्त  
राद् बहिर्निगत यदि स्वलु मयन्त ! तस्या अयस्कम्प्या भवेत् किमपि छिद्र  
या यावद् रामिर्वा गतः स्वलु स जीवः अन्तराद् बहिर्निगत, तदा स्वलु  
मह अस्या प्रतीया रात्रयेय यथा-अ गो जीवः अ-यन् क्षीर नो तज्जीर

(तए अह अयथा कथाऽ जेनामव मा अउकु मी तेणामेव उपागच्छामि)  
एक दिन को बात है कि मैं उस अय कुम्भी के-चोहेकी कोठी के पाग  
गया (उपागच्छता त आउकु मि उगगच्छावेमि) वहाँ बाहर मैंने उस  
चोहेकी कोठी का खुलवाया (उगगच्छाविता त पुरिस सयमेव पासामि  
मो चेव ण तोसे अयकु मीए केइ छिह्हेवा विवरइ वा, अतरइ वा राइ वा  
जओव से जीवे अतोहिंतो बहिया निगए) खुलवाकर मैंने स्वयं उस चार  
का देखा तो यह वहाँ मरा पड़ा था, जब कि उस चोहेकी कोठी में न कोई  
रश्म था, न कोई विवर था, न अवकाश था, न कोई देखा धी, कि  
मिससेहोकर उस चार पुरुष का जीव उस चोहेकी कोठी के  
मीतर से बाहर निकल जाता (मइ ण मते ! तीस अउकु मीए- होआ  
केइ छिह्हे वा जाव राई वा जओ ण से जीव अतारिंतो बहिया  
निगए) वहाँ मयन्त ! यदि उस चोहेकी कोठी में, कोई छिद्र वा यावत्  
देखा होती तो उससे होकर वह चोर पुरुष का जीव मीतर से बाहर

भा? (वन्धस्यत्र पुत्रे ? निवृत्ति ४१।६।५। (तए अह अयथा कथाऽ जेनामव  
मा अउकु मी तेणामेव उपागच्छामि) कोइ विवसन्ता याव छिह्हेकु त होअठन्  
नया भवे भये (उपागच्छता त आउकु मि उगगच्छावेमि) त्थां वधने भ  
छि होअठन् नयने उवधन्ने (उगगच्छाविता त पुरिस सयमेव पासामि, गो  
चेव ण तोसे अयकु मीए केइ छिह्हेवा विवरइ वा अतरइ वा, राई  
वा जओव से जीवे अतोहिंतो बहिया निगए) उवधन्ने भे पाते ते धारने  
नेथे। तो त तेमां युवावस्थाभां पठेथे कते। न्याए ते होअठन् नयाभां न छिद्र  
कतु के न विवर कतु के न अवकाश कते के न रेषा कती के नेधी ते धारने  
एव ते होअठन् नयाभां न्याए नीकणी नतो रके (मइ ण मते ! तोसे अउकु  
मीए होआ केइ छिह्हे वा जाव राइ वा जओव से जीवे अतोहिंतो  
बहिया निगए) के कहत ! ने ते होअठन् नयाभां कोइ छिद्र के यवत् रेषा  
कत ते तेमां धी धनि ते धार पुत्रने एव अवस्था न्याए नीकणी शक्त (नो ण

मशरीरम्, यस्माद् भदन्त ! तस्या अयस्कुरङ्गाः नास्ति किञ्चित् छिद्रं वा यावत् निर्गतः, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-संजीवः तत् शरीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम् ॥ सू० १३५॥

टीका—तणं से पएसी राया' इत्यादि-ततः-केशिकुमारवचन-श्रवणानन्तरं खलु म प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम् एवम्-भवादिद-हे भदन्त ! एषा-जीवशरीरयोर्भेदरूपा प्रज्ञा=बुद्धिः उपमा=उपमाप्राप्तम् अस्ति-विद्यते, यद् अनेन कारणेन देवो नो उपागच्छतोति । हे भदन्त ! एवं-पूर्वोक्तप्रकारेणान्यदपि वृत्तमस्ति यद् अहम्-अन्यदा-रुदाचित्-अन्यस्मिन् कर्मिश्चित् समये-वाह्यायाम्-उपस्थानशालायाम् अनेकगणनायक-दण्डनायक-राजेश्वर-तलवा-माडम्बिक-कौटुम्बिके-भ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-मार्थवाह-

निकलता (तो णं अहं सहदेज्जा पत्तिएज्जा-रोएज्जा जहा-अन्नो जीवो अन्नं सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं) तो मैं आपकी उम बात पर विश्वास कर लेता. प्रतीति कर लेता, उसे रुचि का विषय बना लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर रूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है (जम्हा णं भंते ! तीसे अउकुंभीए णत्थि केइ छिद्धे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपहट्ठिया मे पडण्णा जहा-तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं) जिस कारण हे भदन्त ! उस लोहे की कोठी में कोई, छिद्र अथवा यावत् रेखा नहीं थी कि जिससे उसका जीव बाहर निकल जाता. अतःछिद्रादि के अभाव से निकलने में अशक्त होने के कारण मेरा ही यह मन्तव्य ठीक है कि जो जीव है, वही शरीर है, जीव शरीर से भिन्न नहीं है और शरीर जीव से भिन्न नहीं है ।

अहं सहदेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा जहा-अन्नो जीवो अन्नं सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं) तो हु तमारी आ बात पर विश्वास करी लेत. प्रतीति करी लेत अने तेने मारी इत्थिने विषय बनावी लेत के एव अन्य छ अने शरीर अन्य छ, एव शरीररूप नहीं अने शरीर एवरूप नहीं (जम्हा ण भंते ! तीसे अउकुंभीए णत्थि केइ छिद्धे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपहट्ठिया मे पडण्णा जहा-तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं) देने दीधि छे जहत ! ते दोअउना नणाभा केअ छिद्र के यावत् रेखा नहीं छे नेथी तेना एव अहार नीकणी जतो रहे माटे छिद्र वगेरेना अभावभा अहार नीकणवामा अशक्त होवा जहत मारी न आ जतनी मान्यता उचित लागे छे के ने एव छे, तेन शरीर छे, एव शरीरथी भिन्न नहीं अने शरीर एवथी भिन्न नहीं.

મન્નિ-મહામન્નિ-ગણક-દૌવારિકા-ડમાય-ચેટ-પીઠમર્- નગર -નિગમ-  
 વૃત-સન્નિપાલે -અનેકે યે ગણનાયકા હય -તપ્ર ગણનાયકા:-ગગમ્વામિના,  
 દશનાયકા:-દશવિધાયકા, રાજાન -પ્રસિદ્ધાઃ, ઈશ્વરા-એશ્વર્યસમપન્ના,  
 તમ્નરા:-મન્નુષ્ટરાજવસ્તવદ્વચ્ચપરિશૃપિતરાજકસ્વાઃ, મોહમ્નિકા -ગ્રામપ્રજ  
 વ્તીપતયઃ, યદ્યા-સાદ્ધકોદ્રમ્યપરિમિતમાન્તરૈર્ચિન્નિષ્ઠ ચિન્નિષ્ઠ સ્થિતાનાં  
 ગ્રામાણમપિપત્રયઃ, કૌટુમ્બિકા:-વહુકુટુમ્બપતિપાલકાઃ, ઇમ્યા:-ઈમો-ઈમ્વી  
 તત્રપ્રમામ દ્રવ્યમર્જનીત ઇમ્યાઃ, તે ચ જયન્ય-મધ્યમોત્કૃષ્ટમેશત્ત્રિ  
 પ્રકારાઃ, યદ્ય હસ્તિપરિમિતમણિમુક્તા-પ્રવાસ-સુવર્ણરમતારિદ્રવ્યરાશિ સ્વા  
 મિનો મપ-યાઃ, હસ્તિપરિમિતયદ્યમણિમાણિક્યરાશિસ્વામિનો મધ્યમા

ત્રીકાર્ય-સ્પષ્ટ છે-પરન્તુ જો હસમે ગણનાયક આદિ પદ આવે છે-તેનકી જ્યાન :-  
 હમ મકાર સે છે-ગણ કે જો સ્વામી હોને છે, તે ગણનાયક હ દશ દા  
 જો વિધાન કરતે છે તે દશનાયક છે, રાજા પ્રસિદ્ધ છે, એશ્વર્ય સે જો પુત્ર  
 હોત છે તે ઈશ્વર હ સન્નુષ્ટ્ર જૂગ રાજા દ્વારા મિનો વિષોપ પોષાક  
 હી ગતી છે જેમ રાજવૃદ્ધ વ્યક્તિયો કા નામ તલ્લભર છે પાંચ સૌ ગ્રામ  
 કે જો અધિપતિ હોતે છે તે માહમ્બિક હ, અથવા કાઈ કાઈ કોમ કે  
 અન્તર સે વસે છુટ ગ્રામો કે જા અધિપતિ હોતે છે તે માહમ્બિક  
 છે વહુન કુટુમ્બ કા પાલન પાલન કરનેવાને જો હોતે છે કૌટુમ્બિક છે  
 હસ્તિપ્રમાણ દ્રવ્ય-મણિ-મુક્તા-પ્રવાસ-સુવર્ણ-રમત-આદિ દ્રવ્યરાશિ કે  
 જો સ્વામી હોતે હ વ મપ-યા હમ્ય છે યદ્યા-હસ્તિપરિમિત વજ્ર, મણિ  
 માણિક્યરાશિ કે જો સ્વામી હોને છે તે મધ્યમ હમ્ય હ હસ્તિપરિમિત

ત્રીકાર્ય-ત્રીકાર્ય સ્પષ્ટ જ છે પરન્તુ આ સુત્રમાં બલુનાયક વગેરે જે પદો  
 આવેલ છે તેમની બ્યાખ્યા આ પ્રમાણે છે બલુના જે સ્વામી હોય છે તે બલુ  
 નાયક છે, હસ્ત જે વિધાન કરે છે તે હસ્તાયક છે રાજા પ્રસિદ્ધ છે એશ્વર્યથી  
 જે સપન્ના હોય છે તે હમ્ય છે સન્નુષ્ટ્ર સથેલા રાજા વડે જેમને પહેરવાના વસ્ત્રો  
 આપવામા આવે છે એવી રાજવૃદ્ધ વ્યક્તિઓ તલ્લભર કહેવાય છે પાંચસો ગ્રામના  
 જે અધિપતિ હોય છે તે માહમ્બિક છે અથવા તેમની માહી માહી ઠેસના આ તરે વસેલા  
 ગ્રામના જે અધિપતિ હોય છે તે માહમ્બિક છે યદ્યા કુટુમ્બિય પાલન-પાલન કરનાર  
 જે હોય છે તે કૌટુમ્બિક છે હસ્તિપ્રમાણ દ્રવ્ય-મણિ-મુક્તા-પ્રવાસ-સુવર્ણ-રમત  
 વગેરે દ્રવ્યરાશિના જે સ્વામી હોય છે તે મધ્યમ હમ્ય છે તેમજ હસ્તિપરિમિત  
 વજ્રમણિ માણિક્ય રાશિના જે સ્વામી હોય છે તે મધ્યમ હમ્ય છે, હસ્ત હસ્તિ-

હસ્તિપરિમિતકેવલવજ્રરાગિસ્વામિન ઉત્કૃષ્ટાઃ, ઐષ્ઠિનઃ-લક્ષ્મીકૃપાકટાક્ષ-  
પ્રત્યક્ષલક્ષ્યમાણદ્રવિણલક્ષલક્ષણવિલક્ષણહિરણ્યપટ્ટસમલક્ષ્મીતમૂર્ધાનો નગરમધાન-  
વ્યવહારકારિણઃ, સેનાપતયઃ-ચતુરઙ્ગસેનાનાયકાઃ સાર્થવાહાઃ-ગણિમ-ધરિમ-  
મેય-પરિચ્છેદ્યરૂપ-ક્રયવિક્રેયવસ્તુજાનમાદાય લાભેચ્છયા દેશાન્તરાણિ વ્રજતાં  
સાર્થવાહયન્તિ-યોગ-ક્ષેમાભ્યાં પરિપાલયન્તિ, દીનજનોપકારાય મૃતધનં દક્ષા  
તાન્ સમર્થ્યન્તીતિ તથા, તત્ર ગણિમમ્-એક-દ્વિ-ત્રિ-ચમુરાદિસંખ્યાક્રમેણ  
યદીયતે, યથા-નારિકેલ-પૂર્ણીફલ-કદલીફલાદિકમ્, ધરિમમ્-તુલાસૂત્રેણો  
ત્તોલ્ય યદીયતે, યથા-ત્રીદિ-યવ-લવણ-સિતાદિ, મેય-શરાવલઘુમાળાદિનો-  
ત્તોલ્ય યદીયતે, યથા-દુગ્ધ-ધૃત-તૈલ-પ્રમૃતિ, પરિચ્છેદ્યં ચ-પ્રત્યક્ષતોનિક-  
ષાદિપરીક્ષયા યદીયતે, યથા-મણિમુક્તા-પ્રવાલાઽઽભરણાદિ. મન્ત્રી-રહસ્ય-  
કાર્યકારી સ એવ મહાન્ મહામન્ત્રી, ગણકાઃ જ્યૌતિષવેત્તારઃ, દૌવારિકાઃ-દ્વારિ-  
નિયુક્તાઃ દ્વારપાલાઃ, ઐમાત્યાઃ રાજ્યાધિષ્ઠાયકાઃ સહવાસિરાજપુરુષવિશેષાઃ,  
ચેટાઃ-ચરણસેવકાઃ કિક્કુરાઃ, પીઠ મર્દાઃ-રાજસમીપત્થાયાનો રાજવચસ્કાઃ  
સેવકવિશેષાઃ, નગરેતિ નાગરા નગરનિવાસિનો જનાઃ, નિગમાઃ-વ્યાપારિગણાઃ,

કેવલ વજ્રરાશિ કે જો સ્વામી હોતે હૈં વે ઉત્કૃષ્ટ ઇન્દ્રિય હૈં. લક્ષ્મી કી  
જિનપર પુરો રકુપા હૈ, ઓર હસી કૃપા કે કારણ જિનકે લાલ્લોં કે  
સજાને હોં, તથા જિનકે મસ્તક પર ડન્હીં કો સૂચિત કરનેવાલા ચાન્દી  
કા વિલક્ષણ પટ્ટ શોભાયમાન હો રહા હો એસે નગર કે પ્રધાનવ્યાપારી  
શ્રેષ્ઠી કહેલાતે હૈં । ચતુરઙ્ગસેના કે નાયક જો હોતે હૈં વે સેનાપતિ હૈં, જો  
ગણિમ-ગિનકર સ્વરીદમે બેંચને યોગ્ય નારિયલ, છુપારી કેલા આદિ મેય-શરાવ  
આદિ સે નાપકર સ્વરીદને બેંચને યોગ્ય દૂધ, ઘી, તૈલ, આદિ વસ્તુઓં કો તથા  
પરિચ્છેદ્ય-કસૌટી આદિ પર પરીક્ષા કરકે સ્વરીદને બેંચને યોગ્ય મણિ,  
મોતી, મૂંગા, ગહના આદિવસ્તુઓં કો લેકર લામ કે ક્રિયે દેશાન્તર મેં જાને

પરિમિત વજ્રરાશિના જે સ્વામી હોય છે તે ઉત્કૃષ્ટ ઇન્દ્રિય છે. જેની ઉપર લક્ષ્મીની  
પૂર્ણ કૃપા છે અને એથી જ જેમની પાસે લાખોના ભંડાર ભરેલા છે તેમજ જેમના  
મસ્તક પર તેમને જ સૂચવતો ચાંદીનો વિલક્ષણ પટ્ટ શોભાયમાન થઈ રહ્યો હોય  
એવા નગરના પ્રધાન વ્યાપારી શ્રેષ્ઠી કહેવાય છે. જે ચતુરંગ સેનાના નાયક હોય  
છે તે સેનાપતિ છે જે ગણિમ-ગણીને વેપાર કરવા યોગ્ય નારિયેલ, સોયાળી કેળા  
વગેરે વસ્તુઓને ગણિમ કહે છે મેય-શરાવા વગેરે નાના વાસણુ વગેરેથી માપીને વેપાર કરવા  
યોગ્ય દૂધ, ઘી, તૈલ વગેરે વસ્તુઓને મેય કહેછે તેમજ પરિચ્છેદ્ય કસૌટી વગેરે પર પરીક્ષણ  
કરીને વેપાર કરવા યોગ્ય મણિ, મોતી પ્રવાલ, આભૂષણો વગેરે વસ્તુઓને સાથે

વૃતા:-ચાર્તાશરિણો બનાઃ, સાંઘપામ્ -રાજ્યસપિરક્ષકા, પૈત્તઃ મનેક  
ગભનાયકાદિમિઃ માદ્ સપરિવૃતઃ-પરિવેદિતઃ ચિદરામિ-તિષ્ઠામિ । તતઃ-  
તદનન્તરમ્ ધરિમન્ કાલે નગરશુસિકા:-નગરરક્ષકા, મમ સમસ્ટ સરોહ-  
ચોરિત્તવસ્તુસહિતમ્ । સમૃદ્ધેયકમ્-ગ્રીવામદ્ધચોરિત્તવસ્તુકમ્ અવકોટકમ્-પત  
વદ્ધમ્-અવકોટકમ્-ગ્રીવાયાઃ પશ્ચાદ્ગમેમોટનેન યયયા સહ હસ્તપોર્વધનન,  
તદવકોટકનન્ધન તમ યદ્ ચૌરમ્ ઇવનયન્તિ-મમસમીપે બાનયન્તિ, ઇત્

વાળે સાર્ય કો છે જાતે છે, તથા યાગ નહીં વસ્તુની માસિ ઔર ક્ષેમ-પ્રાસવસ્તુ કી  
રક્ષા કે દ્વારા ઝનકા પાલન કરતે છે, અનાથ કી મલ્હારી કે સિય ઠન્હે પૂઁની હેકર  
વ્યાપારદ્વારા પત્રવાન બનાવે છે વહ સાર્યશાહ છે રાત્રાકે સિયે સચિતમ પ્રસન્ના  
વેનેવાળે કા નામ મત્રી છે ફન મત્રીયોં કે ઉપર જો મત્રી હોતા છે વહ મહામત્રી છે,  
જ્યોતિષશાસ્ત્ર કે વેત્તા કા નામ ગણક છે દ્વાર પર રક્ષા કે નિમિત્ત  
નિયુક્ત હુપ-બ્યક્તિ કા નામ દ્વારપાલ છે, રાજ્ય કે અધિષ્ઠાયક સહ  
શાસિરાજપુરુષધિશેષ કા નામ અમાત્ય છે. ધરમ સેવક કા નામ પેટ  
છે, રાજા કી સમર કે ધરાધર જો વ્યક્તિ રાજા કે હી પાસ રહતે છે  
એસે સેવક વિશેષ કા નામ પીઠમર્દ છે, નગરનિવાસી જમતા કા નામ  
નાગરિક છે વ્યાપારિગણ કા નામ નિગમ છે. સંવેશ હર કા નામ રત  
છે રાજ્યસપિકે રક્ષકા નામ સધિપાલ છે. ગ્રીવા કે પશ્ચાદ્ગમ મેં  
મોહને સે જો ઠસીં ગ્રીવા કે સાથ લોનોં દ્વારોં કા લાંબના મિસ વચન  
મેં હોતા છે ઠસ વમ્વન કા નામ અવકોટક વંધન છે. પ્રદેશી રાજાં કે

લખને લખ માટે દેશાંતરમાં જનાર સાથેની લઈ લખ છે-તેમજ થોડા નવી વસ્તુની  
માફિ અને ક્ષેમ પ્રાપ્ત વસ્તુની રક્ષા વડે તેમજ પાલન કરે છે ગરીબ માણસોના લખ  
માટે તેમને દુબ્ધ જાખીને વેપારવડે તેમને પત્રવાન બનાવે છે તે સાર્યવાલ કહેવાય  
છે શબ્દને જે વેળા અત્ર-સલાહ આપે છે તે મત્રી છે આ મત્રિઓની ઉપર જે  
મત્રી હોય છે તે મહામત્રી છે જ્યોતિષશાસ્ત્રને બાબુનાર બધુ કહેવાય છે દ્વાર પર  
રક્ષા માટે નિયુક્ત કરેલ માણસને દ્વારપાલ કહે છે. શાબ્દના અધિષ્ઠાયક સહવાસિ  
રાજપુરુષ વિશેષતઃ નામ અમીત્ય છે ધરવ્ધ સંવકલ્પ નામ પેટ છે રાજાની ઉમરની  
જ જે અકિત શબ્દની પાસે રહે છે જોવી સેવક વિશેષ અકિતવત્ નામ પીઠમર્દ  
છે નમર નિવાસી જનતા નાગરિક કહેવાય છે. વેપારી બધુત્ત નામ નિગમ છે  
છે સંદેશકવત્ નામ રત છે શાબ્દસાધિના રક્ષકત્ નામ સધિપાલ છે ગ્રીવાને  
પાછળની વરદ પાળવાથી તે બીનાની સાથે બન્ને હાથો જેજ પત્રથી બાંધવામાં આવે  
છે તે બંધનત્ નામ અવકોટક વંધન છે. પ્રદેશી રાજાત કહેવુ આ પ્રમાણે છે

खलु अहं तं पुरुषं जीवन्तमेव अयस्कुम्भ्यां लोहकोष्ठिकायां प्रक्षेपयामि,  
तामयस्कुम्भीम् अयोमयेन-लोहमयेन पिधानेन-आच्छादनेन पिधापयामि-  
आच्छादयामि, तामयस्कुम्भीं च-पुनः अयसा-द्वेवीभूतलोहेन च-पुनःत्रपुणा  
त्रपुद्वेण अङ्कयामि-अङ्कितां करोमि-मुद्रितां करोमीत्यर्थः । तामयस्कुम्भीम्-  
आत्मप्रत्ययिकैः-निजविश्वासपात्रैः पुरुषैः रक्षयामि-रक्षितां कारयामि, ततः-  
तदनन्तरम्, अहम् अन्यदा कदाचित्-अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित्काले यत्रैव चोर-  
युक्ता अयस्कुम्भी तत्रैव-उपागच्छामि, उपागम्य-तामयस्कुम्भीम् 'उगल'-  
'त्थावेमि' त्ति उत्क्षेपयामि उद्घाटयामि, अत्र-उत्पूर्वकमप्य क्षिपूधातो गल-  
त्थादेशेन रूपसिद्धिर्बोध्यः । "हैम० । ८।४।१४३।" उत्क्षेप्य-उद्घाटय  
तत्रस्थितं तं पुरुष-चोर स्वयमेव पश्यामि, नैव खलु तस्यां अयस्कुम्भ्यां  
किञ्चित्-किमपि छिद्रमिति वा विवरं-विलम् इति वा अन्तरम्-अवकाशः-  
इति वा राजिः-लेन्वा इति वा आसीत्, यतः-यस्मात् छिद्रादितः स जीवः ।  
चोरपुरुषजीवः अन्तः-अयस्कुम्भ्या अन्तरप्रदेशात् वहिः-बहिः प्रदेशे निर्गतः-  
निसृतो भवितुमर्हेत्, हे भदन्त ! यदि-चेत् खलु तस्या अयस्कुम्भ्याः  
किञ्चित् छिद्रं यावत्-यावत्पदेन-"विवरम्, अन्तरम्, राजिः" इत्येषां  
सङ्गो बोध्यः एवं च छिद्रादि भवेत्-स्यात् यतः-यस्मात् छिद्रादितः खलु-  
स जीवः अन्तः अयस्कुम्भीमभ्यात् वहिर्निर्गतः स्यात्, तदा-अयस्कुम्भीमध्यत-  
स्तच्चोरजीवनिस्सरणे सति खलु अहं श्रद्धयां तव वचने विश्वस्याम्, मतीयां-  
विशेषतो विश्वस्याम्, रोचयेय रुचिर्विषयं कुर्याम्, यथा-अन्यो जीवः अन्यत्  
शरीरम् नो तत जीवः स शरीरम् । यस्मात्-कारणात् खलु भदन्त ! तस्याः-

कहने का अभिप्राय ऐसा है कि जब चोर को पूर्वोक्त रूप से बांधकर  
लोहे की कोठी में बन्द कर दिया गया और लोहे को गलाकर तथा  
राग को गलाकर उसके ढक्कन सहित मुख को इस तरह से बन्दकर  
दिया गया कि उसमें थोड़ा सा भी छिद्र आदि न रहा । तब ऐसी स्थिति  
में वह चोर उसमें मर गया. इस पर ऐसा विचार उस प्रदेशी राजा  
को हुआ कि यदि जीव और शरीर भिन्न २ हैं तो उस कोठी में  
छिद्र आदि के अभाव से उसका जीव उसमें से कहां से होकर निकला,

ग्यारे चोरने पूर्वोक्त रीते बांधीने दोषाडना नणाभा बांध करवाभा आण्ये। अने  
दोषाडने पीगणावीने तेमज रागने पीगणावीने ते बांङ्गुला सहित मुण्णने ओवा  
प्रकारे बांध करवाभा आण्यु के तेमा जराळो छिद्र वगेरे रह्यु नहि. त्यारे ओवी  
परिस्थितिमा ते चोर तेमा मरण पाव्यो. अने लघने ते प्रदेशी राजाने आ नतने।



અવસ્થામાં નાસ્ત, કાચા છિદ્ર વા વાતરાઅવા, યતઃ સ જોનો  
 ડમ્તા-મધ્યાદ્ બહિર્નિર્ગતઃ સ્યાત્ તસ્માત્ કારણાત્ છિદ્રાવિવિરહેણ નિઃસર્ત-  
 મશક્તત્વાત્ યે મમ મતિજ્ઞા મમતવ્યરૂપા સુમતિષ્ઠિતા-સુપ્ત સમવસ્થિતા વ  
 હ સ્થિતિયા યવા તચ્ચીવાઃ સ શરીરમ્, નો અયો મીવાઃ અમ્પચરીરમ્ ॥૬ ૧૩૫॥

મૂલ્ય—તણ ણ કેસીકુમારસમણે પર્ણસિં રાય પર્વ વયાસી—

સે અહાનામપ કૂઢાગારસાલા સિયાં કુહમો લિત્તા યુત્તા યુત્તુવાર  
 ણિવાયગંભીરા, અહ ણ કેહ પુરિસે મેરિ ચ દડ ચ ગહાય કૂઢાગાર  
 સાલાદ અંતો અતો અણુપ્યવિસહ તીષે કૂઢાગારસાલાપ સદવમો  
 સમેતા ઘણણિચિયનિરંતરાણેછિદ્રાહ કુવારવયણાહ પિહેહ, તીષે  
 કૂઢાગારસાલાપ વહુમજ્જવેસમાપ ઠિચ્છાતં મેરિ દડણં મહયા  
 મહયા સદેણં તાલેજ્ઞા, સે પૂણં પર્ણસી ! સે સદે ણ અતોહિતો વહિયા  
 નિમાચ્છહ ? હતા ણિમાચ્છહ, અરિય ણં પર્ણસી ! તોષે કૂઢાગાર  
 સાલાપ કેહ છિદે વો જાવ રાઈ વા જઓ ણં સે સદે અતોહિતો  
 વહિયા ણિમાપ ? નો ફળટ્ટે સમટ્ટે, યવામેવ પર્ણસી ! જીવે વિ  
 અપ્પદિહયગઈ પુઢવિં મિચ્છા સિલં મિચ્છાઅતોહિ તો વહિયા ણિમાચ્છહ,  
 ત સદહાહિ ણં તુમ પર્ણસી અણ્ણો જીવો અણ્ણં સરીરં, નો તં  
 જીવો ત સરીર ૩ ॥સુ, ૧૩૬॥

અતઃ મિશ્રણમે કે અગાવ યદી મતીત્ત હોતા હે ફિ જીવ શરીર સે મિશ્ર  
 ૨ મહી હે જો જીવ હે વહી શરીર હે ઝીર જો શરીર હે વહી મીવ હે ॥૬ ૧૩૫॥

વિચાર યમે કે નો હવ જીવશરીર છુદાં છુદાં સે હોય તેા નળામ છિદ્ર વજેર ન  
 હોવાથી તેના હવ તેમણી ક્યાં જાને નીકળે ? નીકળી ન શકવને છીપે જા વાત  
 રજાદ રીતે જણાય છે કે હવ શરીરથી જિન્ન નથી. જે હવ છે તેજ શરીર છે  
 જીવે જે શરીર છે તેજ હવ છે ॥ સુ. ૧૩૫ ॥

छाया—ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत् -  
सा यथानामकं कूटाकारशालां स्यात् द्विधातो लिप्ता गुप्ता गुप्तद्वारा निवात-  
गम्भीरा, अथ खलु कश्चिन् पुरुषः भेरीं च दण्डं च गृहीत्वा कूटाऽऽकार-  
शालायामन्तरन्तः अनुप्रविशति तस्याः कूटाऽऽकारशालायाः सर्वतः समन्तात्  
घननिचितनिरन्तरनिच्छिद्राणि द्वारवदनानि पिदधाति, तस्याः कूटाऽऽकार-

‘तएणं केसी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे) इसके बाद केशीकुमार श्रमणने  
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कडा (से जहा नामए कूडागा-  
रसाला सिया दुहओ लिप्ता गुप्ता गुप्त दुवारा निवायगंभीरा) हे प्रदेशिन  
! जैसे कोई एक कूटाकारशाला हो पर्वत की शिखर जैसी आकृति-  
वाला भवन हो और वह भीतर बाहर में आच्छादित हो, आच्छादित द्वार  
प्रदेशवाली हो, निवात गंभीर हो वायुहित होती हुई गंभीर अन्तः प्रदेशवाली हो  
(अहणं केइपुरिसे भेरिं च दंडं च गहाय कूडागारसालाए अतो अणुप्पविसइ)  
अब कोई पुरुष भेरी और दंड को लेकर उस कूटाकारशाला के भीतर घुस  
जाता है, (तीसे कूडागारसालाए सव्वओ समंता घणनिचियनिरंतरणिच्छिद्धां  
दुवारवयणाइं पिदेइ) और घुसकर वह उसके दरवाजों को चारों तरफ से इस  
तरह से बन्दकर लेता है कि जिससे उनके फिवाड आपस में बिलकुल सट  
जाते हैं थोड़ा सा भी अन्तर उनमें नहीं रहता है, छिद्र उनके बन्द हो जाते हैं,

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे) त्पार पछी केशी कुमार श्रमण्णे  
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रमाणे क्खु (से जहा नामए  
कूडागारसाला सिया दुहओ लिप्ता गुप्ता-गुप्तद्वारा निवायगंभीरा)  
हे प्रदेशिन ! जेम केअ ओक कूटाकारशाला होय पर्वतना आकार जेवुं बन होय  
अने ते गडार अने अंदरना लागमां आच्छादित द्वार प्रदेशयुक्त होय, निवात  
गंभीर होय—पवन रहित तेमज गंभीर अंत प्रदेश युक्त होय, (अहणं केइ  
पुरिसे भेरिं च दंडं च गहाय कूडागारसालाए अतो अणुप्पविसइ) जे  
केअ पुरुष भेरी अने दडाने लडने ते कूटाकार शालामा पेसी जाय छे (तीसे कूडा-  
गारसालाए सव्वओ समंता घणनिचियनिरंतरणिच्छिद्धां दुवारवयणाइं  
पिदेइ) अने पेसीने ते गधा दारोने आ प्रमाणे गध करी दे छे के जेथी तेमना  
आग्घुना कमाओ ओकहम अडीने गध थरु जाय छे तेमनी वग्गे थोडु पणु ओना

अथ कुम्भः नास्ति, किञ्च छिद्रं वा यात्राजवा, यतः स मोक्षो  
 अतः मत्स्याद् बहिर्निर्गतः स्यात् तस्मात् कारणात् छिद्रादिविरेण निःसर्ग-  
 मक्षकत्वात् ये मम प्रतिज्ञा मस्तव्यरूपा सुप्रतिष्ठिता-सुष्ठु समवस्थिता म  
 द सन्निता यया वज्रीवः स चारीरम्, नो भव्यो भीषः अपच्छरीरम् ॥ सु. १३५ ॥

मूक्य—तए ण केसो कुमारसमणे पएसिं राय एवं वयासी-

से अहानामए कूडागारसाला सियां दुहओ लिच्छा गुत्ता गुत्तदुवारा  
 णिवाभगंभीरा, अह ण केइ पुरिसे भेरि च दड च गहाय कूडागार  
 सालाए अंतो अतो अणुप्यविसइ तीसे कूडागारसालाए सव्वओ  
 समंता घणणिच्चियनिरंतराणेच्छिइइइ दुवारवयणाइ पिहेइ, तीसे  
 कूडागारसालाए बहुमज्झवेसमाए ठिच्चात भेरि दडएणं महया  
 महया सवेणं तालेज्जा, से णूणं पएसी ! से सवे ण अतोहिं तो बहिया  
 निमाच्छइ ? इ ता णिगच्छइ, अत्थि णं पएसी ! तीसे कूडागार  
 सालाए केइ छिदे वा जाव रोई वा अओ णं से सवे अतोहिं तो  
 बहिया णिमाए ? नो इणट्टे समट्टे, एवामेव पएसी ! जीवे वि  
 अप्पडिह्यगई पुढविं मिच्चा सिलंभिच्चाअतोहिं तो बहिया णिमाच्छइ,  
 त सदहाहि णं तुम पएसी अण्णो जीवो अण्णं सरीर, नो तं  
 जीवो त सरीर इ ॥ सु. १३६ ॥

अतः निकलने के अभाव यही पतीत होता है कि जीव शरीर से निम्न  
 २ नहीं है जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है ॥ सु. १३५ ॥

बिचार भयो है जो एव अनेशरीर गुहां गुहां ते डोय तो नज्जाभं छिद्रं बनेरे न  
 दोचाथी तेने एव तेमांभी क्वां यस्मिं नीडल्लो ? नीडल्लो न यक्काने छीपे न्ना यत्त  
 श्कट रीते जप्पाय छे है एव शरीरथी जिन नथी. ने एव छे तेज शरीर छे  
 अने ने शरीर छे तेज एव छे ॥ सु. १३५ ॥

अचान्तमध्यप्रदेशो कश्चिद् कोऽपि पुरुषः भेरीं च पुनः दण्डं गृहीत्वा अनुपवि-  
शति, स प्रविष्टः पुरुषः तस्याः कूटाऽऽकारशालायाः-तत्कूटाकारशाला-  
सम्बन्धीनि घननिचितनिरन्तरनिश्छिद्राणि-घनानि निचिडानि निचितानि-अत्य-  
न्तमिलितानि अत एव निरन्तराणि-अन्तररहितानि च-पुनः निश्छिद्राणि-  
छिद्ररहितानि द्वारवदनानि-द्वारमुखानि सर्वतः-सर्वदिक्षु समन्तात्-  
सर्वं विदिक्षु विदधाति-आच्छादयति, तस्याः पिहितायाः कूटाकारशालायाः बहु  
मध्यदेशभागे-अत्यन्तमध्यदेशभागे, स्थित्वा स पुरुषः तां भेरीं दण्डकेन  
महता महता शब्देन यथा अत्युच्चः शब्दः समुत्पद्येन तथेत्यर्थः ताडयेत्-अथः  
चूनं हे प्रदेशिन् ! सः-दण्डाघातजनितः शब्दः भेरीशब्दः अन्तः-मध्य  
प्रदेशात् वहिः-बहिःप्रदेशो निर्गच्छति ?-निस्सरति ? इति प्रश्नः । प्रदेशी माह-  
-इन्त ! इति स्वीकारे हे भदन्त ! निर्गच्छति-केशीकुमारश्रमणः कथयति  
हे प्रदेशिन् ! तस्याः-कूटाऽऽकारशालाया किञ्चित् छिद्रं वा यावत् धिवर वा  
अन्तरं वा राजिर्वा अस्ति यतः यस्मात् स शब्दः अन्तः कूटाकारशालाऽ-  
भ्यन्तरप्रदेशाद् बहिर्निगतः निस्सृतः स्यात् ? । इति केशिना पृष्ठे प्रदेशी माह-  
नायपर्यः समर्थः छिद्रादि रूपोऽर्थस्तत्र न युज्यते सर्वथाऽऽवृत्तत्वात् । पुनरपि  
केशीमाह-हे प्रदेशिन् ! एवमेव-एतद्वृष्टान्तनुसारेणैव अप्रतिहतगतिः-अंकु-  
ष्ठितगतिः जीवोऽपि पृथिवीं भित्त्वा शिलां-प्रस्तरं भित्त्वा पर्वतं भित्त्वा अन्तः  
मध्यप्रदेशात् बहिर्निर्गच्छति, तत्-तस्मात्-उक्तदृष्टान्तेन हे प्रदेशिन् !  
त्वं अद्देहि-मवचने श्रद्धां कुरु अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो स जीवः  
तच्छरीरम् ॥ सू० १३६ ॥

कोई छिद्र है, यावत् न कोई रेखा है कि जिससे होकर वह शब्द उसमें  
से बाहर निकला हो ? (गो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ  
नहीं है, अर्थात् वहाँ पर कोई छिद्रादि नहीं है, (एवामेव पएसी ! जीवेवि-  
अण्णड्हियगई पुड्हियि भित्त्वा, सीलं भित्त्वा अंतोहितो बहिया णिग्गच्छइ)  
इसी प्रकार हे प्रदेशिन् ! जीव भी अप्रतिहत गतिवाला है अतः वह पृथिवी  
को भेद करके, शिला को भेद करके उसके भीतर से होकर  
बाहर निकल जाता है । (तं सद्वहाहि णं तुमं पएसी ! अण्णो-

करो के ते इटागार शाणामा कोछ छिद्र नथी यावत् कोछ रेखा (तराड) पणु नथी के  
जेभनाथी ते शण्ड तेमांथी णडार नीकणतो होय ? (गो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त !  
आ अर्थ समर्थ नथी ओटवे के तेमां कोछ छिद्र वगेरे नथी (एवामेव पएसी  
! जीवे वि अण्णड्हियगई, पुड्हिभिच्चा, मिलं भित्त्वा, अंतोहितो बहिया  
णिग्गच्छइ) आ प्रमाणे हे प्रदेशिन् ! एव पणु अप्रतिहत गति युक्त छे ओथी  
ते पृथिवीतुं बेदन करीने, शिलातुं बेदन करीने, तेनी अहर थधने णडार नीकणी  
णथ छि, (तं सद्वहाहि णं तुमं पएसी ! अण्णो जीवो अण्णं सरीर णो तं जीवो

शालाया बहुमध्यदेशमागे स्थित्वा तां मेरीं दण्डकेन महता महता  
 ध्वजेन ताडयत्, अथ नूनं प्रवेशिन ! स ध्वजास्तल्लु अन्तः बहिर्निर्गच्छति ॥  
 इन्तं निर्गच्छति । अरितं स्वल्लु प्रवेशिन् ! तस्याः कूटाऽऽकारशालायाः  
 किञ्चित् छिद्रं वा यावत् राशिर्वा यतः स्वल्लु स ध्वजोऽन्तर्बहिर्निर्गतः ?  
 नायमथः समथः, एवमेव प्रवेशिन् जीवोऽपि अयतिहृत्यतिः पृथिवीं गित्वा  
 शैलं गित्वा अन्तर्बहिर्निर्गच्छति तत् प्रवेशि स्वल्लु स्व प्रवेशिन् ! अग्न्यो  
 जीवः अन्यच्छरीरं नो तज्जीवः स शरीरम् ॥ सू० १३६॥

टीका—‘तए ण केमोक्कुमारसमणे’ इत्यादि—ततः स्वल्लु केमो  
 कुमारसमण एवमवादीत्—तद् यथा नामक=यथा दृष्टान्तम्=एतद्विषये  
 दृष्टान्तं प्रदर्शयते, अपि च कूटाऽऽकारशाला-पर्वतशिखराकृतिकमवनम् स्यात्  
 मवत्, सा च द्विषातः—अन्तर्बहिःप्रवेशयोः गुप्ता आच्छादिता, गुप्तद्वारा-  
 आच्छादितद्वारप्रवेशा निवातगम्भीरा निवाता एव न रहिता सुतां गम्भीरा-  
 गम्भीरातःप्रवेशा स्यात् । अथ स्वल्लु तस्याः कूटाकारशालायाः अन्तरन्तः

है, (तीसे कूटागारसालाए बहुमध्यदेशमाए ठिक्का त मेरीं दण्डकेन महता  
 २ सरेण ताछेझा) एता तरह से करके मथ उस कूटाकार शालाके बिज  
 कुछ मध्यभागमें खड़ा होकर उस मेरीं को जोर २ से उस डंडे से हथ  
 डंग से बजाता है कि जिससे उसमें से बहुत ही अधिक जोर की ठप्पी  
 अ धान निकले (सेणूण पपसी से मथे अतोहिती बहिया निमाच्छइ) मथ  
 प्रवेशिन ! यह कहा यह उसका ध्वज जो कि दण्डापात सं उत्पन्न हुआ  
 है उस कूटाकारशाला के मध्य प्रदेश से बाहर निकलता है या नहि ?  
 (हता, निमाच्छइ) हां, अदन्त ! बाहर निकलता है । (अस्मिण पपसी !  
 तीसे कूटागारसालाए केइछिरे वा वा राइ वा अजोण से सव् अतोहिती  
 बहिया पिमाए) तो हे प्रवेशिन् ! जिसको उस कूटाकारशाला में न

रहेती नथी तेमना जथा छिन्तो जइ कथं जय छि (तीसे कूटागारसालाए बहु  
 मध्यदेशमाए ठिक्का त मेरीं दण्डकेन मसपा महता सरेण ताछेझा)  
 आ प्रमाछे करने ते कूटाकारशालाया अंतर्धम मध्यभागमा ते उक्ते ध्वजे ते केरिनि  
 ते इत्यर्थी आ आ प्रमाछे जमठे छि हे तेभांधी जकु ज अथ कर शब्द नीछे  
 (से तेन पपमी सं मथे अतोहिती बहिया निमाच्छइ ?) कवे प्रवेशिन् । तथे अने  
 ओ हे ते केरीभांधी उत्पन्न अतो शब्द ते कूटाकार शालाया मध्य प्रदेश (मी अकार नीछे  
 छि (हता निमाच्छइ) हे अदन्त जह्यार नीछे छि, (अस्मिण पपमी । तीसे कूटागारसालाए  
 केइ छिरे वा वा राइ वा अजोण से सवे अतो बहिया निमाए) ते हे प्रवेशिन् । तथे बिचार

अथान्तमध्यप्रदेशे कश्चित् कोऽपि पुरुषः भेरीं च पुनः दण्डं गृहीत्वा अनुपवि-  
शति, स प्रविष्टः पुरुषः तस्याः कूटाऽऽकारशालायाः-तत्कूटाकारशाला-  
सम्बन्धीनि घननिचितनिरन्तरनिश्छिद्राणि-घनानि निबिडानि निचितानि-अत्य-  
न्तमिलितानि अत एव निरन्तराणि-अन्तररहितानि च-पुनः निश्छिद्राणि-  
छिद्ररहितानि द्वारवदनानि-द्वारमुखानि सर्वतः-सर्वदिक्षु समन्तात्-  
सर्व दिदिक्षु पिद्धानि-आच्छादयति, तस्या पिहितायाः कूटाकारशालायाः बहु  
मध्यदेशभागे-अत्यन्तमध्यदेशभागे, स्थित्वा स पुरुषः तां भेरीं दण्डकेन  
महता महता शब्देन यथा अत्युच्चः शब्दः समुत्पद्येत तथेत्यर्थः ताडयेत्-अथः  
नूनं हे प्रदेशिन् ! सः-दण्डाघातजनितः शब्दः भेरीशब्दः अन्तः-मध्य  
प्रदेशात् बहिः-बहिःप्रदेशे निर्गच्छति ?-निस्सरति ? इति प्रश्नः । प्रदेशी माह-  
-इन्त ! इति स्वीकारे हे भदन्त ! निर्गच्छति-केशीकुमारश्रमणः कथयति  
हे प्रदेशिन् ! तस्याः-कूटाऽऽकारशालाया किञ्चित् छिद्रं वा यावत् वित्रर वा  
अन्तरं वा राजिर्वा अस्ति यतः यस्मात् स शब्दः अन्तः कूटाकारशालाऽ-  
भ्यन्तरप्रदेशाद् बहिर्निगतः निस्ततः स्यात् ? । इति केशिना पृष्ठे प्रदेशी माह-  
नायमर्थः समर्थः छिद्रादि रूपोऽर्थस्तत्र न युज्यते सर्वथाऽऽवृत्तत्वात् । पुनरपि  
केशीमाह-हे प्रदेशिन् ! एवमेव-एतद्वृष्टान्तनुसारेणैव अप्रतिहतगतिः-अंकु-  
ष्ठितगतिः जीवोऽपि पृथिवीं भित्त्वा शिलां-प्रस्तरं भित्त्वा पर्वतं भित्त्वा अन्तः  
मध्यप्रदेशात् बहिर्निर्गच्छति, तत्-तस्मात्-उक्तदृष्टान्तेन हे प्रदेशिन् !  
त्वं श्रद्धेहि-मद्वचने श्रद्धां कुरु अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो स जीवः  
तच्छरीरम् ॥ सू० १३६ ॥

कोई छिद्र है, यावत् न कोई रेखा है कि जिससे होकर वह शब्द उसमें  
से बाहर निकला हो ? (णो इण्ट्रे समट्रे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ  
नहीं है, अर्थात् वहाँ पर कोई छिद्रादि नहीं है, (एवामेव पएसी ! जीवेवि-  
अप्पड्ढिहयगई पुढ्विभिच्चा, सीलं भिच्चा अंतोहितो बहिया णिगगच्छइ)  
इसी प्रकार हे प्रदेशिन् ! जीव भी अप्रतिहत गतिवाला है अतः वह पृथिवी  
को भेद करके, शिला को भेद करके उसके भीतर से होकर  
बाहर निकल जाता है । (तं सद्वहाहि णं तुमं पएसी ! अण्णो-

करो के ते कूटागार शाणाभा कोछ छिद्र नथी यावत् कोछ रेखा (तराड) पणु नथी के  
जेमनाथी ते शण्ड तेमांथी णडार नीकणतो होय ? (णो इण्ट्रे समट्रे) हे भदन्त !  
आ अर्थ समर्थ नथी ओटवे के तेमा कोछ छिद्र पगेरे नथी (एवामेव पएसी  
! जीवे वि अप्पड्ढिहयगई, पुढ्विभिच्चा, मिलं भिच्चा, अंतोहितो बहिया  
णिगगच्छइ) आ प्रमाणे हे प्रदेशिन् ! एव पणु अप्रतिहत गति युक्त छे ओथी  
ते पृथिवीतुं वेदन करीने, शिलातु वेदन करीने, तेनी अहर थधने णडार नीकणी  
नथ छे, (तं सद्वहाहि णं तुमं पएसी) अण्णो जीवो अण्णं सरीरं णो तं जीवो

मूल—तए णं पणसी राया केसिकुमारसमण एवं वयासी  
अस्थिणं भते ! एसा पण्णाओ उवमा, इमेण पुण कारणेणं णो  
उवागच्छइ, एव खलु भते ! अह अन्नया कयाइ वाहिरियाए उव  
ट्टाणसालाए जाव विहरामि, तएण मम णगरगुत्तिया ससक्ख जाव  
उवणे ति, तएणं अह त पुरिस जीवियाओ ववरोवेमि, ववरोवेसा  
अउकुभीए पक्खिवावेमि अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि जाव आय  
पच्चइएहि पुरिसेहिं रक्खवावेमि, तएण अह अन्नया कयाइ जेणेव सा  
अउकुभी, सेणेव उवागच्छामि, त अउकुभि उग्गलत्थावेमि, त अउ  
कुभि किमिकुभिपिव पासामि, णोचेवणं तीमे अउकुभीए केइछिइ  
वा जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा वहिवाहिता अणुप्पविट्ठा, जइ  
णं तीसे अउकुभीए होजा केइ छिइइ वा जाव अणुप्पविट्ठा, तो ण  
अह सइहेउजा, जहा—अन्नो जीवो त चेव, जम्हा णं तीसे अउकु  
भीए नत्थि केइ छिइइ वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुप्पइट्ठिआ मे  
पइण्णा जहा—त जीवो त सरीर त चेव ॥ सू० १३७ ॥

छाया—ततःखलु प्रवेशी राजा केसीकुमारसमणमेवमवासीत् अस्ति  
खलु भवन्त ! एसा प्रज्ञात उपमा अनेन पुनःकारणेन वो उपागच्छति),  
जीवो कण्यं सरीर णो तं जाओ तं सरीर) अतः हे प्रवेशिन ! तुम विन्धीस  
करो जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है जीव शरीर रूप नहीं—है—और—  
शरीर जीवरूप नहीं है ।

टीकार्थ को लेकर ही यह मूलार्थ लिखा है भावार्थ इसका केवल  
यही है कि जिस प्रकार शब्द अप्रतिहतगतिवाचा है उसी प्रकार से जीव  
भी अप्रतिहतगतिवाचा है अतः वह किसी भी स्थितिमें प्रतिहतगति  
वाचा नहीं हो सकता है ॥ सू० १३९ ॥

‘तए ण पणसी राया इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएण) इसके बाद (पणसी राया) प्रवेशी रामाये (केसी  
तं सरीर) केसी के प्रवेशन । तथे विन्धीस कश्चि के लुप गिन्ने छ अने शरीर  
गिन्ने छ लुप शरीर रूप नहीं अने शरीर लुप रूप नहीं.

टीका—ते लक्ष्यमां राजानि च आ भूतार्थं दण्डवाभां आनो ॥ आनो  
भावार्थ आ प्रभावे छ के केम शब्द अप्रतिहत अणि सुष्ठु दोष छ, केसी ते भवे  
ते स्थितिमां यथ प्रतिहत अतिशुद्ध कथं शक्ये नहि ॥ सू. १३९ ॥

‘तए ण पणसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एणं) त्वाप्यपि (पणसी राया) केसी कुमार अभवने आ प्रभावे

एवं खलु भदन्त ! अहमन्यदा कदाचित् बाह्यायाम् उपस्थानशालाया यावत्  
विहरामि, ततः खलु मम नगर गुप्तिकाः सप्ताक्ष्यं यावद् उपनयन्ति ततः  
खलु अहं तं पुरुषं जीविताद् व्यपरोपयामि, व्यपरोप्य अयस्कुम्भ्यां प्रक्षे-  
पयापि अयोमयेन पिधानकेन पिधापयामि यावत् आत्मप्रत्ययिकैः पुरुषैः  
रक्षयामि, ततः खलु अहं अन्यदा कदाचित् यत्रैव सा अयस्कुम्भी तत्रैव

कुमारसमणं एवं व्यासी) केगीकुमारश्चमण से गेसा कहा—(अस्थि णं  
मंते ! एसा पण्णाओ उवमा) हे भदन्त ! यह आपके द्वारा कही गई  
उपमा—(दृष्टान्त) बुद्धिविशेष रूप है (इमेण पुण कारणेणं णो उ०) किन्तु इस  
वक्ष्यमाण कारण से मेरे मनमें जीव और शरीर का भेद नहीं आता  
है—युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है। इसी बात को अब पदेशी राजा प्रकट करता  
है—(एवं खलु मंते ! अहं अन्नया कयाइं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए जाव  
विहरामि) हे भदन्त ! मैं एक दिन बाहर की उपस्थान शाला में यावत् बैठा  
हुआ था (तएणं ममं णगरगुत्तिया ससक्खं जाव उवणेति) उस मेरे नगर  
रक्षकोंने साक्षिमहित यावत् एक चोर को उपस्थित किया (तएणं अहं  
तं पुरिसं जीविताओ ववरोवेमि) मैंने उन चोर को प्राणरहित कर दिया  
(ववरोत्ता अउकुंभीए पक्खिवावेमि अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि)  
प्राणरहित करके फिर मैंने उसे अयस्कुंभी (लोहेकी कोठी) में अपने पुरुषों  
से डलवा दिया (जाव आयपच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि) यावत् फिर मैंने  
अपने आत्मरक्षक पुरुषों का वहा पहरा नियुक्त कर दिया. (नएणं अहं

कथं—(अस्थिणं मंते ! एसा पण्णाओ उवमा) हे भदन्त ! आ तभास वडे  
प्रयुक्त उपमा (दृष्टान्त) बुद्धि विशेष रूप छ. (इमेण पुण कारणेणं णो उ०)  
येनाथी भास मनमां छव अने शरीरनी निन्नतानो विचार उत्पन्न थयो नथी  
मने आ बात युक्तिगत पणु लागी नहिं ओज बात हुवे प्रदेशी राजा आ प्रभाणु  
प्रकट करे छ (एवं खलु मंते ! अहं अन्नया कयाइं बाहिरियाए उवट्ठाण  
सालाए जाव विहरामि) हे भदन्त ! हुं ओक द्विस पहारनी उपस्थान शालाभां  
ओहा हुतो. (तएणं ममं णगरगुत्तिया ससक्खं जाव उवणेति) भास  
नगर रक्षके ओक साक्षित सहित यावत् ओक चोरने भारी सामे उपस्थित  
कर्यो (तएणं अहं तं पुरिसं जीविताओ ववरोवेमि) में ते चोरने भारी नाप्यो.  
(ववरोवेत्ता अउकुंभीए पक्खिवावेमि अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि)  
भारीने तेने में दोषउना नणाभां पोताना भाणुसो नंभावी नीधो (जाव  
आयपच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि) यावत् पछी में त्या आत्मरक्षक पुरुषोंने



मूल—तए णं पपसी राया केसिकुमारसमण एव वयासी  
 अत्थिणं भत्ते । एसा पण्णाओ उवमो, इमेण पुण कारणेणं णो  
 उवागच्छइ, एव खल्ल भत्ते । अह अन्नया कयाइ वाहिरियाए उव  
 ट्ठाणसालाए जाव विहरामि, तएण मम णगखुत्तिया ससक्ख आव  
 उवणे ति, तएणं अह त पुरिस जीवियाओ ववरोवेमि, ववरोवेत्ता  
 अउकुभीए पक्खिवावेमि अउमएण पिहाणएणं पिहावेमि जाव आय  
 पच्चइएहि पुरिसेहि रक्खावेमि, तएण अह अन्नया कयाइ जेणेव सा  
 अउकुभी, तेणेव उवागच्छामि, त अउकुभि उगगलत्थावेमि, त अउ  
 कुभि किमिकुभिपिव पासामि, णोचेवण तीमे अउकुभीए केइ छिइ  
 वा जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा वहिवाहिता अणुप्पविट्ठा, जइ  
 णं तीसे अउकुभीए होजा केइ छिइ वा जाव अणुप्पविट्ठा, तो ण  
 अह सहहेज्जा, जहा—अन्नो जीवो त चेव, जम्हा णं तीसे अउकु  
 भीए नत्थि केइ छिइ वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुप्पइट्ठिआ मे  
 पइण्णा जहा—त जीवो त सरीर त चेव ॥ सू० १६७ ॥

छाया—उतःखल्ल प्रवेशी राजा केसीकुमारसमणमेवमवादीव अस्ति  
 खल्ल भदन्त ! एसा प्रज्ञात उपमा अनेन पुनःकारणेन नो उपागच्छति,  
 जीवो अणं सरीरं णो तं जीवो तं सरीरं अतः हे प्रवेशिन ! तुम विधीय  
 करो जीव मित्तं हे और सरीर मित्तं हे जीव सरीर रूप नहीं—हे और  
 सरीर जीवरूप नहीं है ।

टीकार्थ को लेकर ही यह मूलार्थ लिखा है भाषार्थ इसका केवल  
 यही है कि जिस प्रकार शब्द अप्रतिवृत्तिवाक्य है उसी प्रकार से जीव  
 भी अप्रतिवृत्तिवाक्य है अतः वह किसी भी स्थितिमें प्रतिवृत्ति  
 वाक्य नहीं हो सकता है ॥ सू० १६१ ॥

‘तए ण पपसी राया’ इत्यादि ।

अर्थ—(तएणं) इसके बाद (पपसी राया) प्रवेशी राजाने (केसी  
 तं सरीरं) जीवो के प्रवेशन । तथे विधीय इति के लिये मित्तं छि अने सरीर  
 मित्तं छि लव सरीर रूप नहीं अने सरीर लव रूप नहीं ।

टीकाय—ते लक्षणां शास्त्रिणे च आ मूलाय लक्षणायां आनो छि आनो  
 आचार्य आ प्रभाषे छि के लोभ शब्द अप्रतिवृत्त अति मुक्त कोय छि जीवो ते जमि  
 ते स्थितिमां पक्ष प्रतिवृत्त अतिमुक्त यत्थं शक्ये नहि ॥ सू० १६६ ॥

‘तएण पपसी राया’ इत्यादि ।

अर्थ—(तएणं) त्थापछी (पपसी राया) केसी कुमार समणने आ प्रभाषे

छिद्रमिति वा यावद् अनुप्रविष्टाः, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा तज्जीवः स शरीरं तदेव ॥ सू० १३७ ॥

‘तए नं पएसी राया’ इत्यादि—

टीका—ततः खलु प्रदेशी राजा पुनः केशिकुमारश्रमणम् एवं भवादीत् हे भदन्त ! एषा-भवदुक्ता उपमा=दृष्टान्तः प्रज्ञातः=बुद्धिविशेष-पात, बुद्धिविशेषजन्या अस्ति, किन्तु अनेन-वक्ष्यमाणेन पुनः कारणेन मे-मम मनसि जीवशरीरयो भेदः नोपागच्छति न संगच्छते युक्तियुक्तो नो प्रतिभातीत्यर्थः । तदेव दर्शयति-हे भदन्त ! एवम्-इत्थं खलु अहम् अन्यदा कदाचित्-अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित्काले बाह्यायाम् उपस्थानशालायां यावत्-यावत्पदेन-अनेकगणनायकादिभिः सार्द्धं संपरिवृत्तो विहरामि, ततः तदा खलु मम नगरगुप्तिकाः-नगरक्षकाः-सम्पाक्षिकं-साक्षिसहितम्, यावत्-यावत्पदेन-सहोढादिविशेषणविशिष्टं चोरम् उपनयन्ति-उपस्थापयन्ति, ततः खलु अहं तं-पूर्वोक्त चोरं जीवितात् व्यपरोपयामि-प्राणरहितं करोमि, व्यपरोप्य मारयित्वा अयस्कुम्भीयां प्रक्षेपयामि-स्वपुरुषैर्निधापयामि, प्रक्षेपितचोरां तामयस्कुम्भीम् अयोमयेन-लोहमयेन पिधानेन पिधापयामि-आच्छादयामि, यावत् यावत्पदेन-अयसा च त्रपुणा च अङ्गुयामि, आत्मप्रत्ययिकैः-स्ववि-

तं शरीरं चेव) और इसी कारण मैं भी यह श्रद्धा करता हूँ कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है । जिस कारण से उस अयस्कु भी मैं कोई छिद्र आदि नहीं थे. फिर भी उसमें जीव आ गये तो इस कारण से मैं तो यही विश्वास करता हूँ कि मेरा कथन कि जीव शरीर रूप है और शरीर जीवरूप है सुप्रतिष्ठित है ।

टीकार्थ इस मूलार्थ के जैसा ही है. यहां ‘उवट्ठाणसालाए जाव’ के इस यावत् पद से पूर्वोक्त अनेक गणनायक आदिकों का ग्रहण हुआ है । तथा ‘ससक्खं जाव’ के इस यावत्पद से सहोढादिविशेषणों का ग्रहण

चेव) અને એથી જ મને પણ આ વાતમાં ફરી શ્રદ્ધા છે કે જીવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે જે કારણથી તે લોખંડના નળામાં છિન્ન વગેરે નહોતા છતાંએ તેમાં જીવો પ્રવેશ પામ્યા તે કારણથી મને તો એ જ લાગે છે કે જીવ શરીર રૂપ છે. અને શરીર જીવરૂપ છે એ કથન પર મારો સંપૂર્ણપણે વિશ્વાસ સુપ્રતિષ્ઠિત છે

આ સત્રનો ટીકાર્થ મૂલાર્થ પ્રમાણે જ છે અહીં ‘ઉવટ્ઠાણસાલાણ જાવ’ ના આ ‘યાવત્’ પદથી પૂર્વોક્ત અનેક ગણનાયક વગેરેનું ગ્રહણ થયું છે. તથા ‘સસક્ક જાવ’ ના આ યાવત્પદથી સહોદાદિ વિશેષણોનું ગ્રહણ થયું છે ‘પિહા-

उपागच्छामि सामयस्कृन्मीमृत्सपगामि, सामयस्कृन्मी कमिकुम्मीमिष पश्यामि  
 नैव स्वलु तस्या कृम्पाः किञ्चित् छिद्रमिति वा यावद् राजिरिति वा यतः  
 स्वलु ते जीवा बाह्याद् अनुमषिष्ठाः, यदि स्वलु तस्या अपस्कृम्पाः  
 भवेत् किञ्चित् छिद्रमिति वा यावद् अनुमषिष्ठाः तदाऽहं शरण्या यथा  
 -अन्यो जीव तदेष, यस्मात् स्वलु तस्या अपस्कृम्पा नास्ति किमपि

अन्नया कयाह जेणेव सा अठकुमी तेणेव उवागच्छामि कुछ दिनों के  
 बाद फिर मैं उस अपस्कृमी के पास गया (त अपकुमि उगगल्स्यामि)  
 उस अपस्कृमी को उवाहा (त अठकुमि किमिकुमिपिष पासामि, जो  
 चेव न तीसे अठकुमीए केह छिड्डे वा जाव राई वा जमो न ते जीवा  
 पहियारितो अणुपविद्धा) उवाहते ही मैंने उसमें देखा कि वहाँ उस अप  
 स्कृमी में कमिकुलों को देखा कि जिससे वह अपस्कृमी कीटमयी हो  
 रही थी अब विचारने की बात वहाँ ऐसी है कि जब उस अपस्कृमी  
 में न कोई छिद्र या यावत् न कोई देखा ही थी, कि जिससे होकर वे  
 जीव उसमें बाहिर से आये (जहण तीस अठकुमीए होखा केह छिड्डे  
 वा जाव अणुपविद्धा) यदि उसमें कोई छिद्रादि होगा तो वह बात मान ली  
 जाती कि वे उनमें दाख उगमें पविष्ट हो गये हैं (तो न अह  
 सर हेउमा-जहा-अन्ना जीवा त चेव जगण तीस अठकुमीए पत्वि  
 केह छिड्डे वा जाव अणुपविद्धा मग्ग सुपइड्डिया मे पइण्णा जहा-त जीवो

आनी दीया (तएण अह अन्ना कयाह जेणेव सा अठकुमी तेणेव  
 उवागच्छामि) मेअ विसे आह दु इरी ते वेअन्ना नगानी पासे अथे  
 (त अपकुमि उगगल्स्यामि) ते वेअन्ना नगाने उवाउथे (त  
 अपकुमि किमिकुमि पिष पासामि, जो चेव न तीसे अठकुमीए  
 केह छिड्डे वा, जाव राई वा जमो न ते जीवा पहियारितो अणुपविद्धा)  
 उवाहति इत्यन्ती साधे न ते वेअन्ना नगामां कृमिभेदेने मेवा-ते नणे  
 कीटमुक्त यथं जये इत्ये इवे आ वात विचार इत्या योग्य उ हे च्छारे नगामां  
 केह पणु छिद्र यावत् केह पणु देया (तराह) नदेती इ नेथी ते एवे अठकुमी  
 तेमां प्रविष्ट यथं शके (जहण तीसे अठकुमीए होखा केह छिड्डे वा जाव  
 अणुपविद्धा) तेमां छिद्र जगेरे होत ते आनी वात मानवाभां पणु आनी  
 शके तेमां अथने ते नगामां कृमिभेदे प्रविष्ट यथा उ (तो न अहं सरणेखा-जहा  
 -अन्नो जीवो त चेव, जगण तीसे अठकुमीए पत्वि केह छिड्डे  
 वा जाव अणुपविद्धा मग्ग सुपइड्डिया मे पइण्णा जहा त जीवो न सरीरं

છિદ્રમિતિ ચા યાવદ્ અનુપચિષ્ટાઃ, તસ્માત્ સુપ્રતિષ્ઠિતા મે પ્રતિજ્ઞા યથા તજ્જીવઃ સ શરીરં તદેવ ॥ સૂ. ૧૩૭ ॥

‘તણ નં પપસી રાયા’ હત્યાદિ—

ટીકા—તતઃ સ્વલુ પ્રદેશી રાજા પુનઃ કેશિકુમારશ્રમણમ્ એવં મવાદીત્ હે ભદન્ત ! એવા-મવદુક્તા ઉપમા=દૃષ્ટાન્તઃ પ્રજ્ઞાતઃ=બુદ્ધિવિશે- પાત્, બુદ્ધિવિશેષજન્યા અસ્તિ, કિન્તુ અનેન-વક્ષ્યમાણેન પુનઃ કારણેન મે-મમ મનસિ જીવશરીરયો ભેદઃ નોપાગચ્છતિ ન સંગચ્છતે યુક્તિયુક્તો નો પ્રતિભાતીત્યર્થઃ । તદેવ દર્શયતિ-હે ભદન્ત ! એવમ્-હત્યં સ્વલુ અહમ્ અન્યદા કદાચિત્-અન્યસ્મિન્ કસ્મિંશ્ચિત્કાલે બાહ્યાયામ્ ઉપસ્થાનશાલાયાં યાવત્-યાવત્પદેન-અનેકગણનાયકાદિભિઃ સાર્દ્ધં સંપરિવૃત્તો વિહરામિ, તતઃ તદા સ્વલુ મમ નગરગુપ્તિકાઃ-નગરરક્ષકાઃ-સસાક્ષિકં-સાક્ષિસહિતમ્, યાવત્-યાવ- ત્પદેન-સહોદાદિવિશેષણવિશિષ્ટ ચોરમ્ ઉપનયન્તિ-ઉપસ્થાપયન્તિ, તતઃ સ્વલુ અહં તં-પૂર્વોક્ત ચોરં જીવિતાત્ વ્યપરોપયામિ-પ્રાણરહિતં કરોમિ, વ્યપ- રોપ્ય મારયિત્વા અયસ્કુમ્ભ્યા પ્રક્ષેપયામિ-સ્વપુરુષૈર્નિધાપયામિ, પ્રક્ષેપિતચોરં તામયસ્કુમ્ભીમ્ અયોમયેન-લોહમયેન પિધાનેન પિધાપયામિ-આચ્છાદયામિ, યાવત્ યાવત્પદેન-અયસા ચ ત્રપુણા ચ અહ્ણયામિ, આત્મપ્રત્યયિકૈઃ-સ્વચિ-

તં સરીરં ચેવ) ઓર હસી કારણ મૈં મી યહ શ્રદ્ધા કરતા હૂં કિ જીવ અન્ય હૈ ઓર શરીર અન્ય હૈ । જિસ કારણ સે ઉસ અયસ્કુ મી મૈં કોઈ છિદ્ર આદિ નહીં યે. ફિર મી ઉસમેં જીવ આ ગયે તો ડસ કારણ સે મૈંતો યહી વિશ્વાસ કરતા હૂં કિ મેરા કથન કિ જીવ શરીર રૂપ હૈ ઓર શરીર જીવરૂપ હૈ સુપ્રતિષ્ઠિત હૈ ।

ટીકાર્થ હસ મૂલાર્થ કે જૈસા હી હૈ. યહાં ‘ઉવદ્દાણસાલાણ જાવ’ કે હસ યાવત્ પદ સે પૂર્વોક્ત અનેક ગણનાયક આદિકોં કા ગ્રહણ હુઆ હૈ । તથા ‘સસકલં જાવ’ કે હસ યાવત્પદ સે સહોદાદિવિશેષણોં કા ગ્રહણ

ચેવ) અને એથી જ મને પણ આ વાતમાં ફરી શ્રદ્ધા છે કે જીવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે જે કાશ્વથી તે લોખંડના નળામાં છિન્દ્ર વગેરે નહોતા છતાંએ તેમાં જીવો પ્રવેશ પામ્યા તે કાશ્વથી મને તો એ જ લાગે છે કે જીવ શરીર રૂપ છે. અને શરીર જીવરૂપ છે. એ કથન પર મારો સપૂર્ણપણે વિશ્વાસ સુપ્રતિષ્ઠિત છે

આ સૂત્રનો ટીકાર્થ મૂલાર્થ પ્રમાણે જ છે અહીં ‘ઉવદ્દાણસાલાણ જાવ’ ના આ ‘યાવત્’ પદથી પૂર્વોક્ત અનેક ગણનાયક વગેરેનું ગ્રહણ થયું છે તથા ‘સસકલ જાવ’ના આ યાવત્પદથી સહોદાદિ વિશેષણોનું ગ્રહણ થયું છે ‘પિહા-

આમપામે પુરુષૈઃ રક્ષયમિ તમ સ્વપ્ન મદમ્ અન્યથા કરાન્નિત યત્રૈવ-યસ્મિન્ના  
 સ્થાને સા-સુરક્ષિતા અયસ્કુમ્ભી તત્રૈવ-તસ્મિન્નૈવ સ્થાને ઉપાગચ્છામિ-  
 તદન્તિક ગચ્છામિ, ગત્વા શમ્પ તત્કોપયામિ-ઉદુપાટયામિ । તામયસ્કુમ્ભી કમિ-  
 કુમ્ભીમિથ કીટમ્પીમેક-કુમ્ભી પદયમિ નૈવ જ્વલ્ય તસ્યાઃ-સુરક્ષિતાયાઃ  
 અયસ્કુમ્ભ્યાઃ કિન્નિત-કિમપિ છિદ્રમિતિ વા યાવત્-વિચર અન્તરમ્ રામિ  
 ચૌનાસ્તિ યતઃ-યસ્માત્-છિદ્રાદે ત કૃમિજીવાઃ પાત્થાત્-પાત્થપ્રદેશાત્ મનુ-  
 પ્રવિષ્ટાઃ-અન્યન્તરે પ્રવિષ્ટા મયેયુઃ । યદિ-એત્ સ્વલ્પ તસ્પીઃ-સુરક્ષિતાયાઃ,  
 અયસ્કુમ્ભ્યાઃ મવેન-સ્પાત્ કિન્નિત્વત્ છિદ્રમ્ યાવત્ વિચરાદિક મવત્, યતસ્તે  
 જીવાઃ પાત્થપ્રદેશા અનુપ્રવિષ્ટાઃ સ્યુ ત, ત્વલ્પ અદ્ અદૃશ્યા-તથ વચન  
 વિશ્વસ્યામ્, અપો જીવઃ તત્કેવ-પૂર્વોક્તમેવ અન્યો જીવ અપચ્છરીર નો તજીવ  
 સ શરીરમ્ इति । યસ્માત્-કાર્જનાત્ સ્વલ્પ તસ્યાઃ-સુરક્ષિતાયાઃ અય  
 સ્કુમ્ભ્યા નાસ્તિ કિન્નિત્વત્ કિમપિ છિદ્રાદિક યતસ્તે જીવાઃ પાત્થપ્રદેશાત્  
 અનુપ્રવિષ્ટાઃ સ્યુઃ તસ્માત્ મે-મમ પ્રવિજ્ઞા-સ્વીકારઃ સુ રક્ષિત્વિતા-સ્થિરા  
 પયા-તત્તજીવઃ સ શરીર તત્કેવ-પૂર્વોક્તમવ નો અપો જીવો-અપચ્છરીરમ્  
 इति ॥ સૂ. ૧૩૭ ॥

મૂલમ—તદ્ જા કેસીકુમારસમણે પપ્પસિ રાય એવ વયાસી ।

અર્થિણ તુમે પપ્પસી કયાદ્ અપ્પ તપુલ્લે વા ધમાવિયપુલ્લ વા ? હતા  
 અર્થિ, સે જ્ઞા પપ્પસી ! અપ્પત્તે સમાણે સલ્લે અગણિપરિણપ્પ મવદ્, ?  
 હતા મવદ્, અર્થિણ પપ્પસી ! તસ્સ અયસ્સ કેદ્દ છિદ્દેદ્દ વા જેણ સે

હુમા છે । ‘પિદાવમિ જાત’ મેં આપે હૂમ્ હમ યાવત્પદ સે ‘દ્રવિત છોદે સે  
 ઔર દ્રવિયરાર્ગ સે મેને ત્સે અત્યન્ત કરવા દિયા’ હમ્ પૂર્વોક્ત પાઠ કા પ્રહન  
 હુમા છે । હમ સૂત્ર કા આપાર્થવેસા છે કે જપ્પ કિ ઉત્ત અપસ્કુમ્ભી મેં કિસી  
 ખી પ્રકાર કા કોઈ ખી છિદ્રાન્તિ નહીં યા તો ઠરામ્ બાહર સે જીવ  
 કેસે પ્રવિષ્ટ્ત હો ગયે, વર્જા તો કપલ્લ વીર કા હી વહ્ યુન શરીર વહા  
 પા અતઃ જીવ ઔર શરીર મિન્ન ૨ નહીં છે વહીં કપન સમુચિત્ત છે । સૂ ૧૩૭

‘એમિ જાત’ માં આપેલ યાવત્ પદમાં દ્રવિત લેખકથી અને દ્રવિત રાત્રાથી એ તેને  
 અન્નિત કરાવી દીધા આ પાઠનુ અદ્ધપ્પ મયુ છે આ સૂત્રનો જાવાલ્ આ પ્રમાણે  
 છે કે અમારે તે લેખકના નળામાં કોઈપણ છિદ્ર નજરે ન દેતા છતાંને તેમાં  
 અસ્ત્રી લયો કેની રીતે પ્રવેશ પામ્યા ત્યાં તે હકત લેખક મુવ શરીર  
 વામુ ત્તુ જોથી લય અને શરીર બિન્ન નથી, આ વાત સમુચિત્ત છે । સૂ ૧૩૭

જોઈ વહિયાહિંતો અંતો અણુપ્પવિટ્ટે ? ખો ઇણટ્ટે સમટ્ટે એવામેવ પપ્પસી ! જીવોઽવિ અપ્પહિહયગઈ પુઢવિં ભિચ્ચા સિલંભિચ્ચા વહિયાહિંતો અણુપ્પવિસદ્ધ, તં સદ્દહાહિ ણં તુમં પપ્પસી ! તહેવ । સૂ. ૧૩૮ ।

છાયા—તતઃ સ્વલુ કેશીકુમારશ્રમણઃ પ્રદેશિનં રાજાનમેવમવાદીત્ અસ્તિ સ્વલુ ત્વયા પ્રદેશિન્ । કદાચિદ્ અયોધ્માતપૂર્વવા ધ્માપિતપૂર્વવા ? હન્ત અસ્તિ, સ નૂનં પ્રદેશિન્ । અયોધ્માતં સત્ સર્વં અગ્નિપરિણતં ભવતિ ? હન્ત ભવતિ, અસ્તિ સ્વલુ પ્રદેશિન્ ! તસ્ય અયસઃ કિઞ્ચિત્ છિદ્રમિતિ વા યેન તત્ જ્યોતિઃ વાહ્યાત્ અન્તરગ્નુપવિષ્ટમ્ નો અયમર્થઃ સમર્થઃ,

‘તણ્ ણં કેસીકુમાર સમણે’ इत्यादि ।

સૂત્રાર્થ—(તણ્ ણં) હસકે વાદ (કેસીકુમારસમણે પપ્પસિં રાયં એવં વયાસી) કેશીકુમાર શ્રમણ ને પ્રદેશી રાજા સે એસા કહા (અત્થિ ણં મંતે ! પપ્પસી ! કયાઈ અણ્ઘંતપુઞ્વે વા ધમાવિયપુઞ્વે વા) હે પ્રદેશિન્ ! તુમ્હારે પાસ એસા લોહા હૈ કિ જિસે તુમને પહિલે કમી અગ્નિ મેં તપાયા હો યા કિસી સે તપવાયા હો ? (હંતા અત્થિ) હાં ભદન્ત ! હૈ (સે ણૂં પપ્પસી અણ્ઘંતે સમાણે સવ્વે અગ્નિ પરિણં ભવઠ્ઠ) તો હે પ્રદેશિન્ મૈં તુમસે એસા પૂછતા હું કિ વહ લોહા જવ અગ્નિમેં તપાયા જાતા હૈ તવ વહ સમ્પૂર્ણરૂપસે અગ્નિરૂપ સે પરિણત હો જાતા હૈ ન ? (હંતા ? ભવઠ્ઠ) પ્રદેશીને કહા હાં હો જાતા હૈ (અત્થિ ણં પપ્પસી ! તસ્સ અયસ્સ કેઈ છિદ્ધેહ વા જેણં સે જોઈ વહિયાહિંતો અંતો અણુપ્પવિટ્ટે ?)

‘તણ્ ણં કેસીકુમારસમણે’ इत्यादि ।

સૂત્રાર્થ—(તણ્ ણં) ત્યાર પછી (કેસીકુમારસમણે પપ્પસિં રાયં એવં વયાસી) કેશીકુમાર શ્રમણે પ્રદેશી રાજાને આ પ્રમાણે કહ્યું—(અત્થિ ણં મંતે ! પપ્પસી ! કયાઈ અણ્ઘંતપુઞ્વે વા ધમાવિય પુઞ્વે વા) હે પ્રદેશિન્ ! તમારી પાસે એવું પણ લોખંડ છે જેને પહેલાં ગમે ત્યારે અગ્નિમાં બિનુ કયું કરાવ્યું હોય ? (હંતા અત્થિ) હાલ લદત ! છે. (સે ણૂં પપ્પસી અણ્ઘંતે સમાણે સવ્વે અગ્નિ પરિણં ભવઠ્ઠ ?) તો હે પ્રદેશિન્ ! હું તમને આમ પ્રશ્ન કરું છું કે તે લોખંડ ત્યારે અગ્નિ પર તપાવવામાં આવે છે ત્યારે તે સંપૂર્ણપણે અગ્નિ રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે (હંતા ભવઠ્ઠ) પ્રદેશીએ ઉત્તરમાં કહ્યું હા, લદત થઈ જાય છે. (અત્થિ ણં પપ્પસી ! તસ્સ અયસ્સ કેઈ છિદ્ધેહ વા જેણં સે જોઈ વહિયાહિંતો અંતો અણુપ્પવિટ્ટે ?) તો હું હે પ્રદેશિન્ ! તે લોખંડમાં છિદ્ર હોય છે કે જેથી

पवमेव प्रवेशिन। जीवाऽपि अपतिहतगतिः पृथिवीं मित्रा दीन मित्रा वाहपात्  
अनुर्वापयति, तत आदौहि ग्लु त्वं प्रवेशिन् ! तथैव ४ ॥ सू० १३८ ॥

‘तए ण केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

टीका-ततः ग्लु केसीकुमारसमणे प्रवेशिन राजानम् एष-बहुपमाण  
बभनम् अवादीत् हे प्रवेशिन् ! इषा कदाचित्-कास्मिन्नकाले अयो=जोह  
ध्मात्पूर्व पूर्व ध्मातम्=अग्निना सयोजितम् ? वा अथवा ध्मापितपूर्व=पूर्व  
केनचित्पुरुषेण ध्मापितम् अस्ति ? इति प्रश्नाः, प्रदशीपाह-हन्त अस्ति । केसी  
पृच्छति-हे प्रवेशिन् ! त्वज्यः लोह नून निमित्तम् ध्मात् सत सर्व अग्नि  
परिणतम्-अग्निस्वरूपतया परिणत भवति ? प्रदशीपाह-हन्त भवति ! पुन  
केसीपृच्छति हे प्रवेशिन् ! तस्य अपसः=कोहस्प, किञ्चित्-छिद्रमिति वा०  
छिद्रादिकम् अस्ति ? येन-कारणेन तत् उयोति=अग्निः बाह्यात् बहिः-

तोषया हे प्रवेशिन् ! हम सोहे में कोई छिद्र होता है कि जिससे होकर  
वह अग्नि बाहर से उस के भीतर घुस जाती है ? प्रवेशीने कहा-  
(जो इण्हे समझे) हे मन्द ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् उस लोह  
में कोई भी छिद्रादिक नहीं है । (एवायेव पपमी ! जीवाऽपि अपपि  
इयगई पुइवि मित्रा सिल मित्रा, बहियाहिंतो अणुप्पमिसइ, त सइहा  
हि ण तुमं पपसी तइव) इसी तरह स हे प्रवेशिन् ! जीव भी अपति  
हतगतिमाना है अतः वह पृथिवी को शिमा को भेदकर बहिःप्रदेश से  
भीतर में घुस जाता है इस कारण हे प्रवेशिन् ! तुम मेरे वचन पर विश्वास  
करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है । ४।

टीकार्थ स्पष्ट है इस सुत्र का आशय ऐसा है कि जिस प्रकार छिद्रा  
विसे रहित लोहे के गोले में अग्नि बाहर से उमक पसक प्रदेश में

ते अग्नि जला भी तेषां प्रविष्ट भवत्येव ? प्रश्न के हल. (जो इण्हे समझे)  
हे मन्द ! आ अथ समर्थ नहीं कोहे के तेतोण भा कोण पप्प छिद्र वजेरे नथी  
(एवामेव पपमी ! जीवाऽपि अपपिइयगई पुइवि मित्रा बहियाहिंतो  
अणुप्पमिसइ, त सइहाहि ण तुमं पपसी तइव) आ प्रभावे के प्रवेशिन् एव  
पप्प अपतिहत गतिमुक्त दोष है कोही ते पृथिवीन शिमान् छेदीने ज्वालना  
प्रदेशमी अहरना प्रदेशमां पेसी ज्वा है आ बाएवपी के प्रवेशिन् ! तमे  
अग्नि बाट पर शिमा करे के एव भीन है जने शरीर जिन है ॥ सू ४ ॥  
टीकार्थ स्पष्ट है आ सनने आवाय आ प्रभावे के के जेम छिद्र वजेरेपी  
अद्विष्ट दोष भा अग्नि ज्वालपी तेना करे के इहे प्रदेशमां प्रविष्ट भवत्येव

प्रदेशात् अन्नः—अपसोऽभ्यन्तरप्रदेशो अनुप्रविष्टं स्यात् ? प्रदेशो कथयति नायमर्थः समर्थः नास्ति तत्र छिद्रादिकमित्यर्थः । केशीपाद—हे प्रदेशिन् ! एवमेव—छिद्रादि विनाऽपि तज्ज्योतिषोऽयोऽभ्यन्तरेऽनुप्रवेशवदेव जीवोऽपि अपति-हृतगतिः अकुण्ठितगतिः पृथिवीं भित्त्वा गिलां—पम्तरं भित्त्वा बाह्यात्—वहिः प्रदेशात् अन्तरानुप्रविशति, तत्—तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन् ! त्वं श्रद्धेहि मद्बचने विश्वसिहि तथैव पूर्वोक्तमेव अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम् नो तज्जीवः स-शरीरम्' इति ॥ सू० १३८ ॥

मूलम्—तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी—अत्थि णं भंते । एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ, अत्थि णं भंते ! से जहानामए केइपुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए पभू पंच कंडगं निसिरित्तए ! हंत पभू ! जइ णं भते ! से चेव पुरिसे वाले जाव मंदविन्नाणे पभू होजा पंच कंडगं निसिरित्तए, तो णं अहं सदहेजा जहा—अन्नो जीवो तं चेव, जम्हा णं भते ! से चेव पुरिसे वाले जाव मंदविन्नाणे णो पभू पंच कंडयं निसिरित्तए तम्हा सुप्पइट्ठियो मे पइण्णा जहा त जीवो तं चेव ॥ सू० १३९ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणमेवमवादीत् अस्ति खलु

प्रविष्ट हो जाती है, और इस कारण वह अग्निमय बन जाता है, इसी प्रकार से उम लोहे की टंकी में भी छिद्रादिक के अभाव में भी बाहर से जीव प्रविष्ट हो जाते हैं क्योंकि जीव अकुण्ठित गतिवाला है, इसकी गति कहीं पर भी नहीं रुक सकती है ॥ सू० १३८ ॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी) तव प्रदेशी राजाने

अने आर्थी ते अग्निमय थछ जाय छ तेमज ते दोणउना नणा (कोठी) मा छिद्र वगेरे न होवा छताओ गहाराथी लवो प्रविष्ट थछ जाय छ, केमके लन अप्रतिष्ठल गतिवाणो छ ओटवे के लवनी गति कोछ पणु जय्याओ दोकी थछती नथी, तेनी गति अंकुष्टित छ, ॥ सू० १३८ ॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी) त्यादे



एवमेव प्रवेशिन्। जीवोऽपि अमतिहृतगतिः पृथिवीं मित्रा शील मित्रा बाह्यात्  
अनुप्रविशति, तत् अद्वैहि स्थलु स्वं प्रवेशिन् ! तथैव ॥ सू० १३८ ॥

‘तएवं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

टीका-ततः खलु केसीकुमारश्चमणः प्रवेशिन राजानम् एवम्-वक्ष्यमाण  
मचनम् अवादीत् हे प्रवेशिन् ! तया कदाचित्-कास्मिन्निष्कासे अयो=लोह  
ध्मातपूर्वं पूर्व ध्मातम्=अग्निना संयोजितम् ? वा अथवा ध्मापितपूर्व=पूर्व  
केनचित्पुरुषेन ध्मापितम् अस्ति ? इति प्रश्नः, प्रवेशीमाह-हन्त अस्ति । केसी  
पृच्छति-हे प्रवेशिन् ! तवअय लोह नून निक्षिप्तम् ध्मात सत् सर्व अग्नि  
परिणतम्-अग्निस्वरूपतया परिणत भवति ? प्रवेशीमाह-हन्त भवति ! पुन  
केसीपृच्छति हे प्रवेशिन् ! तस्य अयस-लोहस्य, क्विचित्-छिद्रमिति वा०  
छिद्रादिकम् अस्ति ? येन-कारणेन तत् ज्योतिः-अग्निः बाह्यात् बहिः-

તો કયા હે પ્રવેશિન્ ! તમ છોદે મેં કોઈ છિન્દ્ર હોતા હે કિ જિસસ હોકર  
વહ અગ્નિ બાહર સે જસ કે મીઠર ઘુસ જાવી હે ? પ્રવેશીને કહા-  
(જો ઇણદે સમદે) હે મવન્ત ! યહ અર્થ સમર્થ નહીં હૈ અર્થાત્ તમ છોદે  
મેં કોઈ બી છિદ્રાદિક નહીં હૈ । (એવામેવ પપસી ! જીવોઽપિ અપ્પચિ  
હયગર્હ પુઢવિ મિત્ત્વા, સિલં મિત્ત્વા, બહિયાર્હિતો અણુપ્પવિસહ, ત સહહા  
હિ ણ તુમે પપસી તહેવ) હસી તરહ સે હે પ્રવેશિન્ ! જીવ બી અમતિ  
હતગતિબાસા હે અતઃ વહ પૃથિવી કો શિલા કો મેઢકર બહિ પ્રવેશ સે  
આંતર મેં ઘુસ જાતા હે દસ કારણ હ પ્રવેશિન્ ! તુમમેરે વચન પર વિશ્વાસ  
કરો કિ જીવ અન્ય હૈ ઔર શરીર અન્ય હૈ । ૧૪।

टीकार्थ स्पष्ट है इस सूत्र का मारार्थ ऐसा है कि जिस प्रकार छिद्रा  
द्विसे रहित छोड़े के गोखे में अग्नि बाहर स तमके प्रत्येक प्रवेश में

તે અગ્નિ બહારથી તેમાં પ્રવિષ્ટ થઈ જાય છે ? પ્રવેશી કો કહ્યું (જો ઇણદે સમદે)  
હે મવન્ત ! આ અર્થ સમર્થ નથી કોટલે કે તે લોખંડમાં કોઈ પણ છિન્દ્ર વગેરે નથી,  
(એવામેવ પપસી ! જીવોઽપિ અપ્પચિહયગર્હ પુઢવિ મિત્ત્વા બહિયાર્હિતો  
અણુપ્પવિસહ, ત સહહાહિ ણ તુમ પપસી તહેવ) આ પ્રમાણે હે પ્રવેશિન્ એ  
પણ અપ્રતિકૂલ બિનમુકલ કોય છે કોયો તે પૃથિવીને શિલાને ઇંદીને બહારના  
પ્રવેશથી અંદરના પ્રવેશમાં પેસી જાય છે આ કારણથી હે પ્રવેશિન્ ! તમે  
આની વાત પર વિશ્વાસ કરો કે એવ જીવન છે અને શરીર જીવન છે ॥ સુ ૪ ॥

टीकार्थ स्पष्ट है आ सूत्रना बावाय आ प्रमाणे छे के जेम छिद्र वगैरेशी  
अद्वित्य लोखंडमा अग्नि बहाराशी तेना इधेके इधेके प्रवेशमा प्रविष्ट भई जय छे

પ્રદેશાત્ અન્નઃ—અપસોઽભ્યન્તરપ્રદેશે અનુપરિષ્ઠં સ્યાત્ ? પ્રદેશે કથયતિ નાયમર્થઃ સમર્થઃ નાસ્તિ તત્ર છિદ્રાદિકમિત્યર્થઃ । કેશીપાત્—હે પ્રદેશિન્ ! એવ મેવ—છિદ્રાદિ વિનાઽપિ તજ્જયેતિપોઽયોઽભ્યન્તરેઽનુપવેશવદેવ જીવોઽપિ અપતિ-  
હતગતિઃ અકુણ્ઠિતગતિઃ પૃથિવીં મિત્ત્વા ગિલાં—પસ્તરં મિત્ત્વા વાહ્યાત્—વહિઃ  
પ્રદેશાત્ અન્તરનુપવિશતિ, તત્—તસ્માત્ કારણાત્ હે પ્રદેશિન્ ! ત્વં શ્રદ્ધેહિ  
મદ્વચને વિશ્વસિંહિ તથૈવ પૂર્વોક્તમેવ 'અન્યો જીવોવન્યચ્છરીરમ્ નો તજ્જીવઃ સ-  
શરીરમ્' इति ॥ સુ. ૧૩૮ ॥

મૂલ્ય—તપ્ પાં પપ્સી રાયા કેસિકુમારસમણં એવં વયાસી  
—અત્થિ પાં મંતે ! એસા પળ્ળાઓ ઉવમા ઇમેળ પુળ મે કારણેળં  
નો ઉવાગચ્છહ, અત્થિ પાં મંતે ! [સે જહાનામપ કેહપુરિસે તરુળે  
જાવ નિઉળસિપ્પોવગપ્ પમૂ પંચ કંડગં નિસિરિત્તપ્ ! હંત પમ્ !  
જહ્ પાં મતે ! સે ચેવ પુરિસે વાલે જાવ મંદવિન્નાળે પમ્ હોજ્જા  
પચ કંડગં નિસિરિત્તપ્, તો પાં અહં સદ્દહેજ્જા જહા—અન્નો જીવો  
તં ચેવ, જમ્હા પાં મતે ! સે ચેવ પુરિસે વાલે જાવ મંદવિન્નાળે  
ળો પમ્ પંચ કંડયં નિસિરિત્તપ્ તમ્હા સુપ્પહટ્ઠિયો મે પહ્ણળા  
જહા ત જીવો તં ચેવ ॥ સૂ. ૧૩૯ ॥

છાયા—તતઃ જ્વલુ પ્રદેશી રાજા કેશીકુમારશ્રમણમેવમવાદોત્ અસ્તિ જ્વલુ

પ્રવિષ્ટ હો જાતી હૈ, ઓર ઇસ કારણ વહ અગ્નિમય બન જાતા હૈ, ઇસી  
પ્રકાર સે ઉસ લોહે કી ટંકો મેં બી છિદ્રાદિક કે અભાવ મેં બી વાહર  
સે જીવ પ્રવિષ્ટ હો જાતે હૈ ક્યોં કિ જીવ અકુણ્ઠિત ગતિવાન્ના હૈ. ઇસકી  
ગતિ કહીં પર બી નહીં રુક સતી હૈ ॥ સુ. ૧૩૮ ॥

‘તપ્ પાં પપ્સી રાયા’ इत्यादि ।

સૂત્રાર્થ—(તપ્ પાં પપ્સી રાયા કેસિકુમારસમણં એવં વયાસી) તવ પ્રદેશી રાજાને

અને આર્થી તે અગ્નિમય થઇ બળ્ય છે તેમજ તે લોળડના નળા (કોઠી) માં છિદ્ર  
વગેરે ન હોવા છતાંયે બહારથી જીવો પ્રવિષ્ટ થઇ બળ્ય છે. કેમકે જીવ અપ્રતિહત  
ગતિવાળો છે એટલે કે જીવની ગતિ કોઇ પણ જગ્યાએ રોકી શકાતી નથી. તેની  
ગતિ અંકુશિત છે. ॥ સુ. ૧૩૮ ॥

‘તપ્ પાં પપ્સી રાયા’ इत्यादि ।

સૂત્રાર્થ—(તપ્ પાં પપ્સી રાયા કેસિકુમારસમણં એવં વયાસી) ત્યારે

મદન્ત ! એવા પ્રજ્ઞાત ઉપમા અનેન પુનઃ કે કારણેન નો ઉત્તાગચ્છતિ, અસ્તિ  
સ્વનૃ મદન્ત ! સ યથાનામકઃ કશ્ચિત્ પુરુષઃ તરુણ યાચત્ નિપુણશિરો  
પગતઃ પ્રમુઃ । પઠત્ કાષ્ઠક નિસપ્તદુમ્ ? હન્ત પ્રમુ ! યદિ સ્વલ્પ મદન્ત ! સ  
પ્રમ પુરુષો પાલઃ યાચત્ મન્દચિજ્ઞાનઃ પ્રમુર્ધવેત્ પઠત્કાષ્ઠક નિસપ્તદુમ્, તદા  
સ્વલ્પ અથ શ્રદ્ધ્યા યથા-અન્યો જીવઃ સદેવ યસ્માત્ સ્વલ્પ મદત્ ! સ

કેશીકુમાર અમળ સે પેસા કહા (અર્થિ જ મંતે ! એસા પચ્છાઓ ઉપમા) હે  
મદન્ત ! યહ તો માપને ઉપમા દી દેવહ કેવલ પુદ્ધિવિશેષ સે જન્મ હોન કે  
કારણ વાસ્તવિક નહી હૈ (ફમેજ પુન મે કારણેજ નો ઉત્તાગચ્છતિ) ક્યોં કિ જો  
કારણ મે પ્રદર્શિત કર રહા હુ ઉમસ મરે હૃદય મેં જીવ શ્રીર શરીર કા  
મેદ જમતા નહીં હૈ । (અર્થિ જ મંતે ! સે જહા નામજ કેહુ પુરિસે તરુણે  
જાવ નિઝગસિપ્પોરગણ પમ્ પચકહગ નિસિરિસણ) યહ કારણ પેસા હૈ-હે  
મદન્ત ! જૈસે કોહુ યુવાપુરુષ હો યાચત્ યહ નિપુણશિરોપગત હો, સો યહ  
પાંચવાળોં કો એક હી સાથ પાંચ સ્થળોંકો વેધને કે લિપે છોદને મેં સમર્થ  
હો સકતા હૈ ન ? (હતા પમ્) કેશીકુમાર અમળને કહા—હાં હો સકતા  
હૈ । (મદ્ જ મંતે ! સે જેવ પુરિસે વાલે જાવ મંદચિન્નાણે પમ્ હોજા પંચ  
કંઠગ નિસિરિસણ) અથ યદિ યહી પુરુષવાલ, યાચત્ મન્દચિજ્ઞાન વાલા  
અપની અવપ્પાપન્ન હુમા પાંચકાષ્ઠકનો-પાંચવાળોં કો છોદને કે લિપે  
સમર્થ હો જાવે તો મેં આપકે વપનોં કો અઢા કે લિપયમૂત બનાડ' શ્રીર  
યહ મામત્તુ કિ જીવ મિન્ન હૈ શ્રીર શરીર મિન્ન હૈ, જીવ શરીર અપ નહીં

પ્રદેશી શબ્દો ઠેથીપ્રમારઅમળને આ પ્રમાણે કહ્યું (અર્થિજ મંતે ! તુમા પચ્છાઓ  
ઉપમા) હે મદત્ ! આ પ્રમાણે જે વધેએ ઉપમા આપી છે તે માત્ર પુદ્ધિવિશેષ  
અન્ય હોવાથી વાસ્તવિક નથી (ફમેજ પુન મે કારણેજ નો ઉત્તાગચ્છતિ) કેમકે  
જે કારણ હુ જ્ઞાતી રહો છુ તેથીમાત્ર હૃદયમાં જીવ અને શરીરની મિન્નતાની જાત  
અમ દી નથી. (અર્થિ જ મંતે ! સ મહાનામજ કેહુ પુરિસે તરુણે જાવ  
નિઝગસિપ્પોરગણ પમ્ પંચ કહગ નિસિરિસણ ને કારણ આ પ્રમાણે ॥ હે  
મદત્ ! જેમ કોઈ મુલક દોષ યાચત્ તે નિપુણશિરોપગત દોષ તો તે પાંચ બાણોને  
એકી સાથે પાંચ વારેતુ વેધન કરવામાં સમર્થ થઈ શકેછો(ફતા પમ્) ઠેથીપ્રમાર  
અમળે કહ્યું હાલ થઈ શકે છે (જહજ મંતે ! સે જેવ પુરિસે વાલે જાવ  
મંદચિન્નાણે પમ્ હોજા પંચ કંઠગ નિસિરિસણ) હવે જો તે પુરુષ બાળ, યાચત્  
મન્દચિજ્ઞાનવાળો પીતાની અવસ્થાવન્ન થયેલ પાંચકાંઠોન-પાંચ બાણોને ઠાકવામાં  
સમર્થ થઈ જાય તો હુ નમ્રતા વધનોને અઢા થોગ્ય માની શકુ તેમ જ અને આ

एव पुत्रो बालः यावत् मन्दविज्ञानो नो ययुः पञ्चकाण्डं विव्रतुर् तस्मात्  
सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः तदेव ॥ मृ० १३९ ॥

टीકાર્થ—‘તણે પણી રાયા’ હત્યાદિ ।

ततः-तदनन्तरं खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणम् पत्रम्-अनेन  
प्रकारेण अवादीत्-हे भदन्त! गणा-इयम् उपमा-सादृश्यम् प्रज्ञातः=बुद्धि-  
विशेषाद् अस्ति न तु वास्तविकी यतः अनेन-वक्ष्यमाणेन पुनः कारणेन  
जीवशरीरयोर्भेदो मे-मम हृदये नोपागच्छति-न संगच्छते न स्वीकार-  
योग्यतामर्हति । तदेव दर्शयति-हे भदन्त ! अस्ति-भवेत् खलु स यथा  
नामकः अनिर्दिष्टनामा कश्चित् पुरुषः कीदृशः ? इत्याह-तन्मगः-युवा यावत्  
-यावत्पदेन-“युगवान् बलवान् अल्पातङ्कः स्थिरसंहननः स्थिराग्रहस्तः प्रति-

हे, और शरीर जीवरूप नहीं है । अतः हे भदन्त ! जिन कारण से वह  
तरुणादि विशेषणों वाला पुरुष जब बाल यावत् मन्दविज्ञानवाला होता  
है, तब पांच वाणों को छोड़ने के लिये समर्थ नहीं होता है इस कारण  
से मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जीव और शरीर एक है, जो जीव है, वही शरीर  
है और जो शरीर है वही जीव है सुप्रतिष्ठित है ।

टीકાર્થ—વાદ મેં પ્રદેશી રાજાને કેશીકુમારશ્રમણ સે એસા કહા હે  
ભદન્ત ! આપને જો અમી ઉપમા દેકર જીવ ઓર શરીર કી પૃથક્તા  
પ્રકટ કી હે સો જબ મે અપની હસ વાત કા વિચાર કરતા હું તબ યહ  
ઉનકી પૃથક્તા મેરે ચિત્ત મેં નહીં જમતી હે, વહ વાત હસ પ્રકાર  
સે હારે કોઈ એક તરુણ પુરુષ હો ઓર યાવત વહ નિપુણશિલ્પોપગત  
હો યહાં યોગ્ય-મે ‘યુગવાન્ બલવાન્. અલ્પાતઙ્કઃ સ્થિર સંહનનઃ સ્થિરા-  
વાત પર વિશ્વાસ કરી લઉં -

રૂપ નથી અને શરીર જીવ રૂપ નથી. - છે અને શરીર સિન્ન છે. જીવ શરીર  
વગેરે વિશેષણોથી યુક્ત યુવક બન્યા હોય જાણ યા-... ! જે કારણને લીધે તે તરુણ  
પાંચ બાણોને છોડવામાં સમર્થ હોતો નથી. આથી જ જે કારણને લીધે છે, ત્યારે તે  
જે જીવ છે તેજ શરીર છે અને જે શરીર છે તે જ જીવ છે આ પ્રમાણે છે.

ટીકાર્થ—ત્યાર પછી પ્રદેશી રાજાએ કેશીકુમાર શ્રમણને આ પ્રમાણે કહ્યું.  
બહત ! તમોએ જે હમણા ઉપમા વડે જીવ શરીરની પૃથક્તા પ્રકટ કરી છે તે લખ  
હું બન્યા હોય મારા મનમાં વિચાર કરું છું ત્યારે આ વાત મારા મનમાં બરાબર જામતી  
નથી. કેમકે જેમ કોઈ એક તરુણ પુરુષ થાય અને યાવત તે નિપુણ શિલ્પોપગત થાય  
અહીં ‘યાવત’ પદથી ‘યુગવાન, બલવાન, અલ્પાતઙ્કઃ, સ્થિરસંહનનઃ, સ્થિરા-

पूर्णपाणिपादपृष्ठान्नरोरुपाणतः, घननिचितस्तत्रलितम्कषः चमेष्टकदुघण  
मुष्टिकममाहगात्रः उरस्यथलसमन्वागतः तलपमत्तपुगमवाहु मङ्गनप्लवन  
मधनप्रमर्दनममय छेद दसः पृष्ठः कुशला मभाषी इत्येतेषां पदानां  
मङ्गलः, निपुमन्निगोपगत एतद्व्याख्या सप्तममुत्रतो बोध्या । एताश्चः  
पुरुषः पञ्चकाण्डक पाणपञ्चक युगपत् पठ्यमक्षयवेचनाय नित्य-प्रक्षेप्तु-  
प्रसू-समर्थो भवेत् ? इति प्रवेष्टिपञ्च-केशीमाह-हे राजन् ! हन्त ! मसुः  
पठ्यकाण्डक प्रक्षेप्तु स समर्थो भवेत् ? प्रवेष्टी कथयति हे भदन्त ! यदि चेत् सञ्च

ग्रहस्तः, प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्नरोरुपरिणतः, घननिचितस्तत्रलितम्कषः,  
चमेष्टकदुघणमुष्टिकममाहगात्रः, उरस्यथलसमन्वागतः तलपमत्तपुगम-  
वाहु, मङ्गनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः छेद दसः पृष्ठः, कुशला, मभाषी”  
इस पाठ का सप्रसङ्ग हुआ है । इन पदों की व्याख्या सातवें सूत्रमें की  
जा चुकी है अतः वहीं से इसे देखना चाहिये ऐसा वह पुरुष पांच  
बाणों को एक साथ पञ्चसमर्थों को वेचन करने के लिये हे भदन्त !  
छोड़ने में समर्थ है सकता है न ? केशीकुमार भ्रमणने तब कहा हे राजन् !  
ऐसा पूर्वोक्त विशेषणों वाला वह युवा पुरुष एक साथ पांचबाणों को  
छोड़ने में समर्थ हो सकता है परन्तु हे भदन्त ! जब वही पुरुष पांच  
पावत् मन्त्रविज्ञानवाला होता है तब पांच बाणों को एक साथ पञ्चसमर्थों  
को वेचन करने के लिय छोड़ने में समर्थ नहीं होता है यदि वह ऐसा  
करने में समर्थ होता तो मैं आपकी इस बातको कि जीव भिन्न है  
और शरीर भिन्न है तथा जीव शरीररूप नहीं है शरीर जीवरूप नहीं

ग्रहस्तः, प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्नरोरुपरिणतः, घननिचितस्तत्रलितम्कषः,  
चमेष्टकदुघणमुष्टिकममाहगात्रः, उरस्यथलसमन्वागतः तलपमत्त  
पुगमवाहु, मङ्गनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः छेद दसः पृष्ठः, कुशला  
मभाषी” आ पाठने सत्र तन्वा त्वाभी आवी देवा प्रयत्न कश्च जेवा ते युव  
कश्चामां आवी छे-साथी जेकश्च लक्ष्यपर छिदीने छे जगत शु ते लक्ष्यने  
ने पात्र-नय ? केशीकुमार भ्रमणे आ साधनीने क्यु के सज्जन जेवा ते  
विशेषवोथी मुक्त ते युवक जेकी साथे पात्र जाजोने छिटवाभां समर्थ बर्ष  
शक्यो. फल छे इत ! जेवा ते युवक जाज पात्र भइ विज्ञान अपन्न देव छे  
त्वाते ते पात्र जाजो. वटे जेकी साथे पात्र लक्ष्येण वेचन कश्चामां भइल कश्च  
नहि जे ते जेव कही शक्यो दोष तो हु तभासी एव भिन्न छे जने शरीर  
भिन्न छे तेमज एव शरीर इय नथी जने शरीर एवइय नथी,

स एव पुरुषः बालः-यावत् यावत्पदेन-अयुगवान् अवलवान्, सातङ्कः अस्थिर-  
संहननः, अस्थिराग्रहस्तः अप्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः अघन  
निचितवृत्तवर्तितस्कन्धः, अचर्मैष्टरुद्रघणमुष्टिकसमाहृतगात्रः उरस्यबलाऽसम  
न्वागतः अतलयमलयुगलबाहुः लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनाममर्यः अच्छेकः अद  
क्षः अपृष्ठः अकुशलः अमेधावी” इत्येषां संग्रहो बोध्यः. एषामपि व्याख्या  
त्रैपरीत्येन सप्तमसूत्रतो बोध्या, मन्दविज्ञानः-अल्पकौशलः, एतादृशः स यदि  
पञ्चकाण्डकं निसृष्टुं-प्रक्षेप्तुं प्रभुः-समर्थो भवेत् तदा खलु अहं श्रद्धायां-  
तत्र वचनं श्रद्धाविषयीकुर्याम्, यथा-अन्यो जीवः तदेव-पूर्वोक्तमेव-अन्यच्छ-  
रीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति, । हे भदन्त ! यस्मात् कारणात्-  
खलु यस्तरुणादिप्रिणोपगविशिष्टः स एव यदा बालः यावद् मन्द  
विज्ञानो भवेत् तदा न पञ्चकाण्डकं निसृष्टुं प्रभुः-समर्थो भवति तस्मात्  
सुप्रनिष्ठिता-समुचिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः, तदेव-पूर्वोक्तमेव तच्छरीरम्  
नो अन्यो जीव अन्यःछरीरम् इति ॥ सू० १३९ ॥

है श्रद्धा का विषय कर लेता “बालः यावत्” में यावत् पद से “अयु-  
गवान्, अवलवान्, सातङ्कः अस्थिरसंहननः, अस्थिराग्रहस्तः, अप्रतिपूर्ण-  
पाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, अघननिचितवृत्तवर्तितस्कन्धः, अचर्मैष्टरुद्रघण-  
मुष्टिकसमन्वागतगात्रः, उरस्यबलासमन्वागतः, अतलयमलयुगलबाहुः,  
लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दना समर्थः अच्छेकः, अदक्षः, अपृष्ठः, अकुशलः, अमेधावी”  
इनपदों का संग्रह हुआ है इसकी व्याख्या सातमें सूत्र से निषेधार्थपरक  
रूप में करनी चाहिये. तात्पर्य कहने का इस सूत्र का यही है कि उस युवा  
पुरुष का और बाल पुरुष का वही शरीर और वही जीव है उसमें कोई  
भिन्नता नहीं है, भिन्नता केवल उपकरणों में है क्यों कि जो बालपुरुष

आ बात पर विचार करी देख ‘बालः यावत्’ भा ‘यावत्’ पदों ‘अयुगवान्,  
अवलवान्, सातङ्कः, अस्थिरसंहननः, अस्थिराग्रहस्तः, अप्रतिपूर्णपाणिपाद-  
पृष्ठान्तरोरुपरिणतः, अघननिचितवृत्तवर्तितस्कन्धः, अचर्मैष्टरुद्रघणमुष्टिक-  
समन्वागतगात्रः, उरस्यबलासमन्वागतः, अतलयमलयुगलबाहुः, लङ्घन-  
प्लवनजवनप्रमर्दनासमर्थः, अच्छेकः अदक्षः, अपृष्ठः अकुशलः, अमेधावी  
“आ पदोनो संग्रह यथे छि आ पदोनी व्याख्या सातमा सूत्रमाथी निषेधार्थक  
करी जेधये. मतलब आ प्रमाणे छे के ते युवा पुरुषने तेमज्ज आद पुरुषने  
एव छे. तेमा केध भिन्नता नथी भिन्नता तो छे केत उपकरणेमा ॥

पूर्वपाणिपादपृष्ठातरोरुपरिणतः घननिश्चितवृत्तवर्तितस्कन्धः चमेष्टकदुघणमुष्टिकममाहमगात्रः उरस्यपलममन्वागतः तलपमस्युगमबाहु सङ्घनप्लवनजवनममर्दनममयः छेद दक्ष पृष्ठः कुशलः मेधारी इत्येतेषां पदानां मङ्गलः, निपुणशिल्पोपगताः, एतद्व्याख्या सप्तमसूत्रतो घोष्या । एतारुः पुरुषः पञ्चकाण्डक पाणपञ्चक युगपत् पठ्यमस्यवेचनाय निसृष्ट-प्रक्षेप्तु-मस्यो-समर्थो भवेत् ? इति प्रवेष्टिपञ्च केष्ठीमाह-हे राजन् ! हत । प्रतुः पठ्यकाण्डक प्रक्षेप्तु स समर्थो भवेत् ! पदेष्टी कथयति हे भद्रन्त ! यदि चेत् स

ग्रहस्तः, प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठातरोरुपरिणतः, घननिश्चितवृत्तवर्तितस्कन्धः, चमेष्टकदुघणमुष्टिकममाहमगात्रः गात्र , उरस्यपलममन्वागत तलपमस्युगम-बाहु , सङ्घनप्लवनजवनममर्दनममयः छेदः दक्ष, पृष्ठः, कुशलः, मेधारी" इस पाठ का सार है। इन पदों की व्याख्या साठवे सूत्रों की जा चुकी है अतः वहीं से इसे देखना चाहिये ऐसा वह पुरुष पांच बाणों को एक साथ पांचसूत्रों को वेधन करने के लिये है भद्रन्त ! छोड़ने में समर्थ है सकता है न ? केष्ठीकुमार अमरने तब कहा है राजन् ! ऐसा पूर्वोक्त विशेषणों वाला वह युवा पुरुष एक साथ पांचबाणों को छोड़ने में समर्थ हो सकता है परन्तु है भद्रन्त ! जब वही पुरुष बाण यावत् मन्विज्ञानवाला होता है तब पांच बाणों को एक साथ पांचसूत्रों को वेधन करने के लिये छोड़ने में समर्थ नहीं होता है यदि वह ऐसा करने में समर्थ होता तो मैं आपकी इस बातको कि नीच भिन्न है और शरीर भिन्न है तथा जीव शरीररूप नहीं है शरीर जीवरूप नहीं

ग्रहस्तः, प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठातरोरुपरिणतः, घननिश्चितवृत्तवर्तितस्कन्धः, चमेष्टकदुघणमुष्टिकममाहमगात्रः, उरस्यपलममन्वागतः तलपमस्युगमबाहुः, सङ्घनप्लवनजवनममर्दनममयः छेदः दक्ष पृष्ठः कुशलः मेधारी" आ पाठने स अमरने तब कहा है राजन् ! ऐसा वह युवा पुरुष पांच बाणों को एक साथ पांचसूत्रों को वेधन करने के लिये छोड़ने में समर्थ नहीं होता है यदि वह ऐसा करने में समर्थ होता तो मैं आपकी इस बातको कि नीच भिन्न है और शरीर भिन्न है तथा जीव शरीररूप नहीं है शरीर जीवरूप नहीं

स एव पुरुषः बालः-यावत् यावत्पदेन-अयुगवान् अवलवान्, सातङ्कः अस्थिर-  
संहननः, अस्थिराग्रहस्तः अप्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः अधन  
निचितवृत्तवलितस्कन्धः, अचर्मैष्टकदुग्धमुष्टिकसमाहतगात्रः उरस्यबलाऽसम  
न्वागतः अतलयमलयुगलबाहुः लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनासमर्थः अच्छेकः अद  
क्षः अपृष्ठः अकुशलः अमेधावी इत्येषां संग्रहो बोध्यः. एषामपि व्याख्या  
वैपरीत्येन सप्तमसूत्रतो बोध्या, मन्दविज्ञानः-अल्पकौशलः, एतादृशः स यदि  
पञ्चकाण्डकं निसृष्टुं-प्रक्षेप्तुं प्रभुः-समर्थो भवेत् तदा खलु अहं श्रद्धायां-  
तव वचनं श्रद्धाविषयीकुर्याम्, यथा-अन्यो जीवः तदेव-पूर्वोक्तमेव-अन्यच्छ-  
रीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति, । हे भदन्त ! यस्मात् कारणात्-  
खलु यस्तरुणादिभिर्जोषगविशिष्टः स एव यदा बालः यावद् मन्द  
विज्ञानो भवेत् तदा न पञ्चकाण्डकं निसृष्टुं प्रभुः-समर्थो भवति तस्मात्  
सुप्रनिष्ठिता-समुचिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः, तदेव-पूर्वोक्तमेव तच्छरीरम्  
नो अन्यो जीवः अन्यः शरीरम् इति ॥ सू० १३९ ॥

है श्रद्धा का विषय कर लेता “बालः यावत्” मे यावत् पद से “अयु-  
गवान्, अवलवान्, सातङ्कः अस्थिरसंहननः, अस्थिराग्रहस्तः, अप्रतिपूर्ण-  
पाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, अप्रतिनिचितवृत्तवलितस्कन्धः, अचर्मैष्टकदुग्धमुष्टिक-  
मुष्टिकसमन्वागतगात्रः, उरस्यबलाऽसमन्वागतः, अतलयमलयुगलबाहुः,  
लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दना समर्थः अच्छेकः, अदक्षः, अपृष्ठः, अकुशलः, अमेधावी”  
इनपदों का संग्रह हुआ है इसकी व्याख्या सातमें सूत्र से निषेधार्थपरक  
रूप में करनी चाहिये. तात्पर्य कहने का इस सूत्र का यही है कि उस युवा  
पुरुष का और बाल पुरुष का वही शरीर और वही जीव है उसमें कोई  
भिन्नता नहीं है, भिन्नता केवल उपकरणों में है क्योंकि जो बालपुरुष

आ वात पर विश्वास करी लेत ‘बालः यावत्’ भा ‘यावत्’ पदार्थी ‘अयुगवान्,  
अवलवान्, सातङ्कः, अस्थिरसंहननः, अस्थिराग्रहस्तः, अप्रतिपूर्णपाणिपाद-  
पृष्ठान्तरोरुपरिणतः, अधननिचितवृत्तवलितस्कन्धः, अचर्मैष्टकदुग्धमुष्टिक-  
समन्वागतगात्रः, उरस्यबलाऽसमन्वागतः, अतलयमलयुगलबाहुः, लङ्घन-  
प्लवनजवनप्रमर्दनासमर्थः, अच्छेकः अदक्षः, अपृष्ठः अकुशलः, अमेधावी  
“आ पदोनी सङ्गु यथे छ आ पदोनी व्याख्या सातमा सूत्रमाथी निषेधार्थक  
करी लेथे भतलण आ प्रभावे छ के ते युवा पुरुषो तेमज्ज गाल पुरुषो  
छ छ. तेमा केछ सिन्नता नथी सिन्नता ते-के छत उपकरणेमा छ.



મૂલમ—તણ ણં કેસીકુમારસમણે પણસિં રાય એવ વયાસી  
 [સે જહાનામણ કેહુપુરિસે તરુણે જાવ નિઝણસિપ્પોવગણ નવણ  
 ઘણુણા નવિયાણ જીવાણ નવણણં હસુણા પમ્ પચકઢગ નિસિરિ  
 સણ ? હંતા પમ્ ! સો ચેવ ણં પુરિસે તરુણે જાવ નિઝણસિપ્પોવગણ  
 કોરિહિણ ધણુણા કોરિહિયાણ જીવાણ કોરિહિણં હસુણા પમ્  
 પચકઢગ ણિસિરિસણ ?] નો હણદે સમદે । કમ્હા ? મતે ! તસ્સ  
 પુરિસસ્સ અપજ્જતાહ ઉવગરણાહ હવતિ, યવામેવ પદેસી !  
 સો ચેવ પુરિસે બાલે જાવ મદવિન્નાણે અપઃજતોવગરણે, ણોપમ્ પવ  
 કઢય નિસિરિસણ, ] ન સદ્દહાહિ ણં તુમ પપસી ! જહા—અન્નો જીવો  
 ત ચેવ ૫ ॥ સૂ. ૧૪૦ ॥

ઘાવા—તણ : જાલુ કેસીકુમારમણ : પદેશિન રામાનમવમચારીત  
 સ યયાનામક કથિત પુરુષ : તરુણ યાવત નિપુણશિલ્પોપગત : નવકેન  
 ઘણુણા નવિકયા જીવયા નવકેન હણુણા પ્રમ્ : પચકઢગ નિસિરિસણ ?

યા જો તો યુવા છુટા છે. મત : તમ જીવ મેં ઓર તમકે ઘારી મેં  
 મિન્નતા કૈસે મામી જા સકતી છે ॥ સૂ. ૧૪૧ ॥

‘તણ ણ કેસીકુમારસમણે’ રૂપાદિ ।

સુધાર્થ—(તણ ણ કેસીકુમારસમણે પણસિં રાય એવ વયાસી) કસક  
 બાદ કેસીકુમારમણને (પણસિં રાય એવ વયાસી) મદેસી રાજા સે સ  
 મકાર કહા (મેં અહામામણ કેહુ પુરિસે તરુણે જાવ નિઝણસિપ્પોવગણ ) હે  
 મદગત ! જેસે પોર યુવા પુરુષ હો ઓર જહ યાવત નિપુણ શિલ્પોપગત હો  
 (જણપણ ઘણુણા નવિયાણ જીવાણ નવણણ હસુણા પમ્ પચકઢગ નિસિરિસણ)

કેમકે બાલ પુરુષ કતો તેજ યુવા થયો છે એથી તે છુટમાં અને તેના શરીરમાં  
 મિન્નતા કેમ કરીને માની થાય ॥ સૂ. ૧૪૧ ॥

તણ કમીકુમારમણ’ રૂપાદિ ।

સુધાર્થ—(તણ કમીકુમારમણે પણસિં રાય એવ વયાસી) ત્યાર  
 પછી કેસી કુમાર મળ્યો (પણસિં રાય એવ વયાસી) પ્રદેશી રાખને આ પ્રમાણે  
 કહ્યું (સે જહાનામણ કેહુ પુરિસે તરુણ જાવ નિઝણસિપ્પોવગણ ) હે બાલ !  
 જેમ કેણ યુવા પુરુષ હોય અને તે યાવત નિપુણ શિલ્પોપગત હોય, (જણપણ ઘણુણા  
 નવિયાણ જીવાણ નવણણ હસુણા પમ્ પચકઢગ નિસિરિસણ) એવો તે

हन्त ! पशुः स एव खलु पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः जिर्णेन धनुषा जीर्णया जीवया जीर्णेन इषुणा पशुः पठव काण्डकं निस्रष्टुम् । नायमर्थः सार्थः । कस्मात् भदन्त । तस्य पुरुषस्य अपर्याप्तानि उपकरणानि भवन्ति, एवमेव प्रदेशिन । स एव पुरुषः बालो यावत् मन्दविज्ञानः अपर्याप्तोपकरणः नो पशुः पठवकाण्डकं निस्रष्टुम् तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् । यथा अन्यो जीवस्तदेव ५ ॥ सू० १४० ॥

ऐसा वह पुरुष नवीन धनुष से, नवीन प्रत्यश्वा से, नवीन बाण से पांच बाणों को एक साथ पांच लक्ष्यों का वेधन करने लिये छोड़ने में समर्थ है क्या ? (हंता पशु) तब प्रदेशीने कहा—हां, समर्थ होना है (सो चेन्नं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए कोरिल्लिएणं धणुणा कोरिल्लिए जीवाए, कोरिल्लिएणं इसुणा पशू पंचकंडगं निसिरित्तए) पुनः केशीने पूछा—हे प्रदेशिन् ! यदि वही युवा पुरुष यावत् निपुणशिल्पोपगत बना हुआ जीर्ण धनुष्य से, जीर्ण प्रत्यश्वासे जीर्ण बाण से पांच बाणों को छोड़ने के लिये समर्थ हो सकता है क्या ? प्रदेशीने कहा—(णो इणट्ठे समट्ठे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । केशीने पूछा—(कम्हा) हे प्रदेशिन् ! इसमें क्या कारण है कि जिससे यह अर्थ समर्थ नहीं है । (भन्ते ! तस्स पुरिसस्स अपज्जत्ताइ उवगरणाइ हवन्ति) प्रदेशी राजाने कहा हे भदन्त ! उस पुरुषके उपकरण अपर्याप्त हैं (एवामेव पएसी ! सो चेन्नं पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे अपज्जत्तोवगरणे, णो पशू पंचकंडयं निसिरित्तए, तं सद्वहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो तं चेन्न ५ )

पुश्प शुं नवीन धनुष वडे, नवीन आणु वडे पाच आणुने ओझी साथे पाच लक्ष्यो ना वेधन साठे छोडवामा समर्थ होय छे ? (हंता पशु) त्यारे प्रदेशिन् राजाओ क्खु-डाए, समर्थ होय छे (सो चेन्नं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए कोरिल्लिएणं धणुणा कोरिल्लिए जीवाए, कोरिल्लिएणं इसुणा पशू पंच कंडगं निसिरित्तए) इरी केशीओ प्रश्न क्यो के डे प्रदेशिन् ! जे ते युवा पुरुष यावत् निपुणशिल्पोपगत थधने एणु धनुषथी, एणु प्रत्यश्वाथी, एणु आणुथी पाच आणुने छोडवामा समर्थ थध थडे तेम छे ? प्रदेशीओ क्खु (णो इणट्ठे समट्ठे) डे लहत ! आ अर्थ समर्थ नथी. (भन्ते ! तस्स पुरिसस्स अपज्जत्ताइ उवगरणाइ हवन्ति) प्रदेशी राजाओ क्खु डे लहत ! ते पुश्पना उपकरणो पर्याप्ति नथी. (एवामेव पएसी ! सो चेन्नं पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे अपज्जत्तोवगरणे, णो पशू पंच कंडयं निसिरित्तए, तं सद्वहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो तं चेन्न ५) त्यारे केशीओ कहा—हे आ प्रमाणे ए दे पट्ठि. . .

‘તપ્ત કેસીકુમારમયણે’ इत्यादि ।

टीका—ततः मलु केशीकुमारमयण मदेछिन राजानम् एवमनादीन्-स ययानामकः कश्चित्-कोऽपि पुरुषः-वरुषः यावत्-यावत्पदेन-“युगयान् गङ्ग यान् अरपावद् स्वरामस्तः पतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः घन निधितव्यवमितस्कधः चर्मज्जकद्रुघणमुष्टिकसमाहतगात्रः उरस्पयमसम न्नागतः तमयमलपुगयवाहूः लङ्घनलङ्घनजवनमर्दनतमर्थः छेक दक्षः

તપ કેસીને કહા-હસો તરદ્દ સે મદછિન । વહી પુરુષ જવ યાલ યાવત મન્દવિજ્ઞાનવાત્મા હોતા હૈ તપ યદ્ અપયાત ઉપકરણવાલા હોતા હૈ અતઃ પાંચ ઘાળોં કો પ્રક્ષિપ્ત કરને કે લિય સમર્થ નહીં હોતા હૈ । હસ કારણ હૈ મદછિન ! તુમ અદ્ધા કરો કિ જીવ અ-ય હૈ ઓર શરીર અ- હૈ જીવ શરીરરૂપ નહીં હૈ ઓર શરીર જીવરૂપ નહીં હૈ । ૫ ।

टीकार्थ—तप केशीकुमार मयणने मदेछी राजा से ऐसा कहा- जैसे अनिर्ज्ञात नामा कोई एक पुरुष हो, जो वह वरुष हो यावत्-युग यान हो, वचनान हो, अरप आठकुवाला हो, स्वर अग्रहाण्याला हो, पाणि पाद, पृष्ठान्तर पर्यं तक ये सब जिसके पतिपूर्ण हो, और परिणत विद्ये कशीम एव ययस्क हो कव दानों जिसके खूब भरे हुए हों गोम हों, शरीर जिसका चर्मज्जक आदि स समाहत होने से विशेषरूप में पुष्ट शारीरिक बल एव मानसिक यस जिसका बड़ा बड़ा हो, तादृहत के जैसे जिसके दोनों बाहू लङ्घने हों, लांघने में, उछलने में, कूदने में दौड़ने

આપે બાળ યાવત મહ વિજ્ઞાનવાળા હોય છે ત્યારે તે અપયાત ઉપકરણવાળા હોય છે એવી જ તે ગાંધ બાણેને પ્રક્ષિપ્ત કરવામાં સમર્થ હોતો નથી આથી છે પ્રદેશિન । તમે મારી વાત પર વિશ્વાસ કરો કે તુમ બિન્ન છે બને શરીર બિન્ન છે તુમ શરીરરૂપ નથી બને શરીર તુલ્યરૂપ નથી । ૫ ।

टीकार्थ—तयारे केशीकुमार मयणने मदेछी राजाने आ मयाछे कसु के नेम कोछ अनिर्ज्ञातनामा कोछ कोछ पुरुष कोय ने तद्वत् कोय यावत्-युगयान् कोय, लङ्घनान कोय, अरपयानात कपाणो स्थिर अग्रहाण्याला कोय पाणि (हाथ) पाद (पद) पृष्ठान्तर बने उह आ गधा नेना प्रतिपुस्त कोय बने परिपुत-निवृत्त मुक्त बने वयस्क कोय, ग ने अक्षको नेना पुष्ट कोय गेण कोय, नेतु शरीर चर्मज्जक बोरेयो समाहत होवाही विशेषरूपभी पुष्ट कोय नेतु शरीर तेमज्ज मननी शक्ति वधारे परिपुष्ट यथेही कोय तादृहत नेवा नेना बने के कोय केण गवाभा उचलवाभा दूधम्ये

મ્લઃ કુશલઃ મેઘાવી' इत्येषां पदानां सग्रहः एषां व्याख्या सप्तमसूत्रे कृता । निपुणशिल्पोपगतः-सम्यग्विज्ञानसमन्वितः एतादृजः पुरुषः नवकेन-नूतनेन धनुषा, नविकया-नूतनया जीवया-धनुर्गुणेन धनुर्द्वरिकयेत्यर्थः नवकेन-नूतनेन इपुणा-वाणेन प्रभुः-समर्थः पञ्चकाण्डकं-वाणपञ्चकं युग-पन् पञ्चलक्ष्यवेधनाय निस्सण्डु-पक्षेतुम् ? । प्रदेशीप्राह-हन्त ! प्रभुः समर्थः । केशी कथयति-यदि स एव खलु पुरुषस्तस्मैः यावत् निपुणशिल्पोपगतः 'कोरिल्लणं' इति देशी शब्दो जीर्णार्थकस्तेन जीर्णेन-घुणखादितेन धनुषा चापेन जीर्णया-प्रत्यञ्चया धनुर्गुणेनेत्यर्थः जीर्णेन इपुणा-वाणेन पञ्चकाण्डक-काण्डरूपञ्चक निस्सण्डु-पक्षेतुं प्रभुः-समर्थः स्यात् ? इति केशिपञ्चः, प्रदेशी-उत्तरयति-नायमर्थः समर्थः, केशी कारणं पृच्छति-कस्मात्कारणात्

આદિ ક્રિયા મેં જો વરાંવર સમર્થ હો, હેક હો, દક્ષ હો મ્લઃ હો, કુશલ હો મેઘાવી હો ઔર નિપુણશિલ્પોપગત-સમ્યગ્જ્ઞાન સમન્વિત હો । इन युग-वान् आदि पदों की व्याख्या सातवें सूत्र में की गई है. सो वहीं से जान लेना चाहिये। ऐसा वह पुरुष नवीन धनुष से, नवीन प्रत्यञ्चा से-धनुषकी डोरीसे एवं नवीन वाण से हे प्रदेशिन् क्या वाण पंचक को युगपत् पांच लक्ष्यों का वेधन करने के लिये छोड़ सकता है ? तब प्रदेशीने कहा-हां, भदन्त ! छोड़ सकता है । पुनः केशीने उससे पूछा-यदि वही पुरुष जो कि तस्मादि पूर्वोक्त विशेषणोंवाला प्रकट किया गया है, कोरिल्ल-जीर्ण-घुण खादित ऐसे धनुष से, जीवा-प्रत्यञ्चा से, तथा जीर्ण वाण से वाण पंचक को छोड़ने में समर्थ हो सकता है ? तब प्रदेशीने कहा-हे भदन्त ! ऐसी स्थिति में वह इस प्रकार से करने में समर्थ नहीं हो सकता है. इस

મારવામા, દોડવામા વગેરે ક્રિયાઓમા જે બરાબર સમર્થ હોય, હેક હોય, દક્ષ હોય પ્રઃ હોય, કુશળ હોય, મેઘાવી હોય અને નિપુણ શિલ્પોપગત-સમ્યક્જ્ઞાનયુક્ત હોય આ યુગવાન્ વગેરે પદોની વ્યાખ્યા સાતમા સૂત્રમાં કરવામાં આવી છે. જિજ્ઞાસુઓએ ત્યાંથી બાણવા પ્રયત્ન કરવો બોધ્યો. એવો તે પુરુષ નવીન ધનુષથી, નવીન પ્રત્ય-થી, ધનુષની દોરીથી અને નવીન બાણથી હે પ્રદેશિન્ ! શુ બાણ પંચકને યુગપત્ પાંચ લક્ષ્યોના વેધન માટે છોડી શકશે । ત્યારે પ્રદેશીએ કહ્યું-હા ભદન્ત ! છોડી શકશે ફરી કેશીએ તેને પ્રશ્ન કરતા કહ્યું-જો તેજ પુરુષ-કે જે તરણ વગેરે પૂર્વો-ક્ત વિશેષણોવાળો છે, 'કોરિલ્લ'-'જીર્ણ'-'ઘેધ' વડે બવાયેલ ધનુષથી 'જીવા'-'પ્રત્ય'-થી તેમજ જીર્ણ બાણથી બાણ પંચકને છોડવામા સમર્થ થઈ શકે તેમ છે ? ત્યારે પ્રદેશીએ કહ્યું-હા ભદન્ત ! એવી પરિસ્થિતિમા તે આ પ્રમાણે કરવામાં સમર્થ થઈ શકશે નહિ. આ પ્રમાણે તેના અસામર્થ્ય'નું કારણ શુ હાઈ શકે !

‘तपन कैसीकुमारभरणे’ इत्यादि ।

टीका—ततः स्वस्त्यु केसीकुमारभरणः प्रदेष्टान राजानम् एवमवादीत्—स  
यथानामकः कश्चित्-कोऽपि पुरुषः—ततः यावत्—यावत्स्वप्नेन—“युगधान् पञ्च  
धान् अस्पातद्भुः स्त्रिराग्रस्तः प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरापरिजितः पञ्च  
निधितुल्यवस्त्रिभूषणः चर्मच्छदुच्चमण्डितकममादृतगात्रः उरस्त्यमसम  
न्तागतः तस्यपञ्चयुगलपादुः लङ्घनच्छन्नजननमर्दनसमर्थः छेक दक्षः

तब केशीने कहा—इसी तरह से प्रदर्शित । वही पुरुष जब बाल था तब  
मन्दविज्ञानवाला होता है तब यह अपर्याप्त उपकरणवाला होता है अतः  
पाँच धानाँ को प्रक्षिप्त करने के लिये समर्थ नहीं होता है । इस कारण  
हे प्रदेष्टान ! तुम अट्टा फरो कि जीव अथ है और शरीर अथ है  
जीव शरीररूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है । ५ ।

टीका—तब केशीकुमार भरणने प्रदेष्टी रामा से ऐसा कहा—  
जैसे अनिर्ज्ञात नामा कोई एक पुरुष हो, जो वह तब हो यावत्-युग  
धान हो, पञ्चधान हो, अस्पातद्भुवाला हो, स्त्रिर अग्रस्तवाला हो, पाणि  
पाद, पृष्ठान्तर पञ्च उर ये सब जिसके प्रतिपूर्ण हो, और परिजित बिचे  
केशीन पञ्च वस्त्र हो वच दोनों जिसके मूष भर हुए हैं गोक हो,  
शरीर जिसका चर्मच्छद आदि से समादृत होन से विभूषण म पृष्ठ  
स्त्रीरिक्त बल पञ्च मानसिक वस्त्र जिसका पदा पदा हो, तादृश के जैसे  
जिसके दोनों हाथ लम्बे हो, माँवने में, उछलने में, बढ़ने में दीर्घने

आदि आठ भावत भव विज्ञानवाला होय है तब ते अपर्याप्त उपकरणवाला होय  
है जोही न ते पाँच आँखोंने प्रक्षिप्त करवायां अथय देखो नहीं आधी है प्रदेष्टान !  
तबे भासी वाव पर निश्वास होय है उर निम्न है अने शरीर निम्न है उर  
शरीररूप नहीं अने शरीर लुप्त रूप नहीं । ५ ।

टीका—तब केशीकुमार भरणने प्रदेष्टी स्वयं का प्रमाण देणु है अथ  
कैसे अनिर्ज्ञातनामा कैसे जो पुरुष होय, जे तबहु पाँच भावत-मुमयान् होय,  
पञ्चधान होय, अस्पातद्भुवाला, स्त्रिर अग्रस्तवाला होय, पाणि (पाद) पाद  
(पञ्च) पृष्ठान्तर अने उर आ लधा जेना प्रतिपूर्ण होय अने परिजित-विचित्र मुक्त  
अने वस्त्र होय, न न अभावा जेना पुट होय योग होय, जेद शरीर  
चर्मच्छद जेदेसो समादृत होयारी विशेषरूपशी पुट होय ननु शरीर  
तेमअ मननी शक्ति वधाये परिपुष्ट मयेती होय । ना पुन नचा जेना  
अने होय । होय, आठ अभावां उरज्यामा इदमो

પ્રઠઃ કુશલઃ મેઘાવી' હત્યેપાં પદાનાં સમગ્રઃ યપા વ્યાખ્યા સપ્તમસૂત્રો  
ક્રુતા । નિપુણશિલ્પોપગતઃ-સમ્યગ્વિજ્ઞાનસમન્વિતઃ યતાદૃશઃ પુરુષઃ નવકેન  
-નૂતનેન ધનુષા, નવિકયા-નૂતનયા જીવયા-ધનુર્ગુણેન ધનુર્દેવરિકયેત્યર્થઃ  
નવકેન-નૂતનેન હપુણા-વાણેન પ્રમુઃ-સમર્થઃ પશ્ચકાઢક-વાણપઞ્ચક યુગ-  
પત્ પશ્ચલક્ષ્યવેધનાય નિસપ્દ-પક્ષેતુમ્ ? । પ્રદેશીપ્રાહ-હન્ત ! પ્રમુઃ સમર્થઃ ।  
કેશી કથયતિ-યદિ સ એવ સ્વત્ પુરુષમ્તરુગઃ યાત્ત નિપુણશિલ્પોપગતઃ  
'કોરિલ્લણ્' ઇતિ દેશી શબ્દો જીર્ણાર્થકસ્તેન જીર્ણેન-ધ્રુણસ્વાદિતેન ધનુષા  
વાણેન જીર્ણયા-પ્રત્યશ્ચયા ધનુર્ગુણેનેત્યર્થઃ જીર્ણેન હપુણા-વાણેન પશ્ચકા  
ઢક-કાઢકપશ્ચક નિસપ્દ-પક્ષેતુમ્ પ્રમુઃ-સમર્થઃ સ્યાન્ ? ઇતિ કેશિપશ્ચઃ,  
પ્રદેશી-ઉત્તરયતિ-નાયમર્થઃ સમર્થઃ, કેશી કારણં પૃચ્છતિ-કસ્માત્કારણાત્

આદિ ક્રિયા મેં જો વરાંવર સમર્થ હો, હેક હો, દક્ષ હો પ્રઠ હો, કુશલ  
હો મેઘાવી હો ઓર નિપુણશિલ્પોપગત-સમ્યગ્જ્ઞાન સમન્વિત હો । હન યુગ-  
વાન્ આદિ પદોં કી વ્યાખ્યા સાતવેં સૂત્ર મેં કી ગઈ હૈ. સો વહીં સે જાન  
હેના ચાહિયો. તેસા વહ પુરુષ નવીન ધનુષ સે, નવીન પ્રત્યઞ્ચા સે-ધનુષકી હોરીસે  
એવં નવીન વાણ સે હે પ્રદેશિન્ વયા વાણ પંચક કો યુગપત્ પાંચ લક્ષ્યોં કા વેધન  
કરને કે ળિયે છોડ સકતા હૈ ? તવ પ્રદેશીને કહા-હાં, અદન્ત ! છોડ  
સકતા હૈ । પુનઃ કેશીને ઉસસે પૂછા-યદિ વહી પુરુષ જો કિ તરુણાદિ  
પૂર્વોક્ત વિશેષણોંવાલા પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ, કોરિલ્લ-જીર્ણ-ધ્રુણ સ્વાદિત  
એસે ધનુષ સે, જીવા-પ્રત્યઞ્ચા સે, તથા જીર્ણ વાણ સે વાણ પંચક કો  
છોડને મેં સમર્થ હો સકતા હૈ ? તવ પ્રદેશીને કહા-હે મદન્ત ! એસી  
સ્થિતિ મેં વહ હસ પ્રકાર સે કરને મેં સમર્થ નહીં હો સકતા હૈ. હસ

મારવામા, દોડવામા વગેરે ક્રિયાઓમા જે બરાબર સમર્થ હોય, છેક હોય, દક્ષ હોય  
પ્રઠ હોય, કુશળ હોય, મેઘાવી હોય અને નિપુણ શિલ્પોપગત-સમ્યક્જ્ઞાનયુક્ત હોય  
આ યુગવાન્ વગેરે પદોની વ્યાખ્યા સાતમા સૂત્રમા કરવામા આવી છે. જિજ્ઞાસુઓએ  
ત્યાંથી બાણવા પ્રયત્ન કરવો બેઠ્યો. એવો તે પુરુષ નવીન ધનુષથી, નવીન પ્રત્ય-  
ઞ્ચથી, ધનુષની દોરીથી અને નવીન બાણથી હે પ્રદેશિન્ ! શુ બાણ પંચકને યુગપત્  
પાંચ લક્ષ્યોના વેધન માટે છોડી શકશે ! ત્યારે પ્રદેશીએ કહ્યું-હા ભદન્ત ! છોડી  
શકશે ફરી દેશીએ તેને પ્રશ્ન કરતા કહ્યું-જો તેજ પુરુષ-કે જે તરુણ વગેરે પૂર્વો  
ક્ત વિશેષણોવાળો છે, 'કોરિલ્લ'-જીર્ણ-ઉપેઠ વડે બવાયેલ ધનુષથી 'જીવા'-પ્રત્ય-  
ઞ્ચથી તેમજ જીર્ણ બાણથી બાણ પંચકને છોડવામા સમર્થ થઈ શકે તેમ છે ?  
ત્યારે પ્રદેશીએ કહ્યું-હે ભદન્ત ! એવી પરિસ્થિતિમા તે આ પ્રમાણે કરવામાં સમર્થ  
થઈ શકશે નહિ. આ પ્રમાણે તેના અસામર્થ્યનું કારણ શુ હાઈ શકે !

स्वच्छ मोऽप्यो न समर्थः ? प्रवेक्षो धाव-भवन्त ! तस्य-पूर्वोक्तपुरुषस्य उप-  
करणानि-चतुरावि साधनानि अपर्याप्तानि जीर्णत्वादसमर्थानि भवन्ति  
एवमेव-उक्तप्रकारेणैव हे प्रवेक्षिन् ! स एष पुरुषः बाल यावत्-याव-  
त्पदेन अयुगलानिस्थादीमामनन्तरमृषे सगृहीतानां पदानां सङ्ग्रहे बोध्य,  
तदर्थंस्तु वैपरीत्येन सप्तमधूमे प्रतिपादित अन्तोऽवसेषः । मन्दविज्ञानः-  
अल्पविज्ञानयुक्तः अत एव अपर्याप्तो करणः-अपर्याप्तम्-असमर्थम्-उपकरणम्  
शरीरेन्द्रियबलबुद्ध्यादिकम् साधन यस्य स तथा, एतादृश पुरुषः पञ्चकाण्डकं  
निस्रष्टु-पक्ष्मस्तु नो प्रभुः-ममर्थो न भवति, तत्त-तस्मात् कारणात् हे  
प्रवेक्षिन् । त्वं भवेहि यथा भवो जीवः तदेव-पूर्वोक्तमेव अयत् शरीरम्  
नो वज्जीव स शरीरम् ॥ सू० १४०॥

मूढम्-तएणं पपसी राया केसिकुमारसमणं एव वयासी-  
अस्थि णं भते । एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेणं नो

प्रकार की उनकी असमर्थता का क्या कारण है । तब प्रवेक्षीने उत्तर दिया  
भवन्त ! उस पूर्वोक्त विशेषण सम्पन्न पुरुषक उपकरण-चतुरादिसाधन  
जीर्ण होने के कारण अपर्याप्त-असमर्थ हैं । अब पुनः केसीप्रमण उससे  
पूछते हैं-हे प्रवेक्षिन् ! यदि ठरुष पुरुष पुण्णाव्आदि विशेषणों से रहित  
है अर्थात् बाल अयुगलान् आदि विशेषणों से निशिष्ट है और शरीर,  
इन्द्रिय, बल, बुद्धि आदि स्व साधन उसके अपर्याप्त हैं, तो क्या वह  
बाणपञ्चक को छोड़ने के लिये समर्थ हो सकता है तब प्रवेक्षीने कहा-  
नहीं हो सकता है । तो हे प्रवेक्षिन् ! इससे तुम्हें यही मानना चाहिये  
शरीर भिन्न है और जीव भिन्न है शरीर जीवव्य नहीं है और जीव  
शरीररूप नहीं है ॥ सू० १४० ॥

त्माहे प्रवेक्षीम्मे वचणं आपत्ता कम्-हे कहत । ते पूर्वोक्त विशेषण युक्त  
पुरुषना उपकरणे-अतए वजेरे साधने-एव केवाणी वक्ष्यवेधनभा असमर्थ  
हे केवे इसी केसीप्रमण तेने प्रश्न करे छे के के प्रवेक्षिन् ! ने ते  
तस्मै पुरुष मुलाना वजेरे विशेषणोधी रहित कोट्ठे के जाण, अयुगवान् वजेरे  
विशेषणोधी युक्त कोव अने शरीर इन्द्रिय, बल, बुद्धि वजेरे रूप साधने तेनी  
पासे अपर्याप्त कोव तो शु ते पाज जाज्जा अधीने वक्ष्यवेधन करी शक्ये । त्माहे  
प्रवेक्षीम्मे कम्-हे नहि ते के प्रवेक्षिन् ! जेथी त्माहे जा नाग मानी देवी नेपुम्मे  
के शरीर भिन्न छे अने एव भिन्न छे शरीर एव रूप नहीं अने एव शरीररूप  
.. ॥ १४० ॥

उवागच्छइ अत्थि णं भंते । से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव  
निउणसिप्पोवगए पभू एगं महं अयभारगं वा तउयभारगं वा  
सीसगभारगं वा परिवहित्तए ? हंता पभू । से चेव णं भंते ! पुरिसे  
जुन्ने जराजज्जरियदेहे सिढिलवलिअतया विणट्ठगत्ते दंडपरिग्गहियग्ग-  
हत्थे पविरलपरिसडियदत्तसेढी आउरे किसिए पिवासिए दुब्बले  
छुहापरिकिलते नो पभू एगं महं अयभारगं वा जाव परिवहित्तए  
जइणं भते ! सच्चेव पुरिसे जुन्ने जराजज्जरियदेहे जावं परिकिलंते  
पभू एगं महं अयभाहं वा जाव परिवहित्तए तो णं सदहेज्जा तहेव,  
जम्हा णं भंते ! से चेव पुरिसे जुन्ने जाव किलते नो पभू एगं  
महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा  
तहेव ॥ सू० १४१ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्—अस्ति  
खलु भदन्त ! एषा प्रज्ञात उपमा अनेन कारणेन नो उपागच्छति, अस्ति  
खलु भदन्त ! स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पो-

‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं पएसी राया) तत्र प्रदेशी राजाने (केसिकुमारसमणं  
एवं वयासी) केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा (अत्थि णं भंते ! एसा  
पण्णाओ उवमा इमेण कारणेणं नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह उपमा प्रज्ञा-  
सेजन्य है अतः वास्तविकी नहीं है, क्यों कि जो कारण मैं प्रदर्शित कर  
रहा हूँ उस कारण से मेरे हृदय में जीव और शरीर का भेद नहीं जम

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं पएसी राया) त्वारे प्रदेशी राजानो (केसिकुमारसमणं  
एवं वयासी) केशीकुमार श्रमणने आ प्रमाणे क्खु—(अत्थि णं भंते ! एसा पण्णा  
ओ उवमा इमेण पुण कारणेणं नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! आ उपमा  
प्रज्ञाथी जन्य छ अथी वास्तविक नथी डेमके जे कारणे हु अतावी रहेछ छुं तेथी  
भारा हृदयमा एव अने शरीरनी किन्तता न्नामनी गथी. (अत्थिणं भंते ! से जहा  
नामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए पभू एगं मं अयभारगं



જાણ્યો ન સમયઃ ? પ્રવેશો યાદ-મદન્ત ! તસ્ય-પૂર્વોક્તપુરુષમ્પ ઉપ  
 કરણાનિ-ધનુરાદિ સાધનાનિ અપર્યાપ્તાનિ શીર્ષત્વાદસમર્થાનિ ભવન્તિ  
 એવમેવ-ઉક્તપ્રકારેણૈષ હૈ પ્રવેશિન્ ! સ એવ પુરુષઃ યાસ્ય યાવત્-યાવ  
 સ્પર્ધેન અયુગવાનિસ્થાત્રીમામનન્તરમુત્તે સમુહીતાનાં પદ્માનાં સર્જિતો મોઘ્ય,  
 તદર્થસ્તુ વૈપરીત્યેન માત્રમદુષ્ટે પ્રતિપાદિત સ્મતોઽવસેયઃ । મ-શિષ્યાનાઃ-  
 અત્યવિજ્ઞાનપુક્તઃ અત એવ અપર્યાપ્તો કરણઃ-અપર્યાપ્તમ્-મત્રમર્થમ્-ઉપકરણમ્  
 શરીરેન્દ્રિયવલ્લભાદિક્ષ્ણ સાધન યસ્ય સ તથા, ય્તાદૈશ્વ પુરુષઃ પશ્ચાન્નકાન્ધકં  
 નિસ્રષ્ટુ-મધ્મેષ્ટુ નો પ્રમુઃ-સમર્થો ન વશતિ, તત્-તસ્માત્ કારણાત્ હૈ  
 પ્રવેશિન્ । ત્વ અદેહિ યથા અ-યો જીવઃ તદેવ-પૂર્વોક્તમય અ-યત્ શરીરમ્  
 નો ઠસ્તીવ સ શરીરમ્ ॥ સુ. ૧૪૦॥

મૂલ્ક-તર્ણ પપ્પસી રાયા કેસિકુમારસમણ એવ વયાસી-  
 અર્થિ ણં મંતે ! એસા પપ્પણાઓ ઉવમા હમેણ પુણ કારણેણં નો

પ્રકાર કી ઠનકી અત્રમર્થતા કા કયાં કારણ હૈ । ત્વ પ્રવેશીને ઉત્તર દિવા  
 મદન્ત ! ત્વ પૂર્વોક્ત વિશેષણ સમ્પન્ન પુરુષકે ઉપકરણ-ધનુરાદિસાધન  
 જીર્ણ હોન કે કારણ અપર્યાપ્ત-મત્રમર્થ હૈ । યપ્ત પુનઃ કેશીમમણ ઉત્તરે  
 પૂછતે હૈ-હૈ પ્રવેશિન્ ! યદિ ત્વમ્ પુરુષ યુગવાન્આદિ વિશેષણોં સે રહિત  
 હૈ અર્થાત્ યાલ અયુગવાન્ આદિ વિશેષણોં સે વિશિષ્ટ હૈ ઓર શરીર,  
 ઇન્દ્રિય, બલ, બુદ્ધિ આદિ રૂપ સાધન ઉત્તરે અર્થાત્ હૈ, તો કયા વદ  
 જાળવણક કો ઓઢને કે સિયે સમર્થ હો સકતા હૈ? ત્વ પ્રવેશીને કદા-  
 મર્થો હો સકતા હૈ । તો હૈ પ્રવેશિન્ । હસ્તમે મુઘ્ધે યહી માનના ચારિયે  
 શરીર મિત્ત હૈ ઓર જીવ મિત્ત હૈ શરીર જીવરૂપ નહી હૈ ઓર જીવ  
 શરીરરૂપ નહી હૈ ॥ સુ. ૧૪૦ ॥

ત્યારે પ્રવેશીએ જાણ આપતાં કહ્યું-કે બાવત ! તે પુરોક્ત વિશેષણ મુક્ત  
 પુરુષના ઉપકરણ-ધનુર વગેરે સાધનો-અર્થ હોવાથી લક્ષ્યવેધનમાં અસમર્થ  
 છે હવે કરી કેશીમમણ તેને પ્રશ્ન કરે છે કે કે પ્રવેશિન્ ! એ તે  
 તરુણ પુરુષ યુગવાન્ વગેરે વિશેષણોથી રહિત એટલે કે બાળ, અયુગવાન્ વગેરે  
 વિશેષણોથી મુક્ત હોય અને શરીર ઇન્દ્રિય, બળ, બુદ્ધિ વગેરે રૂપ સાધનો તેની  
 ખસે અપર્યાપ્ત હોય તો શું તે પાત્ર બાળો ઊઠીને લક્ષ્યવેધન કરી શકશે ? ત્યારે  
 પ્રવેશીએ કહ્યું-કે નહિ તે કે પ્રવેશિન્ ! એથી તમારે આ બાત માની લેવી એટલે  
 કે શરીર મિત્ત છે અને જીવ મિત્ત છે શરીર જીવરૂપ નથી અને જીવ શરીરરૂપ  
 નથી ॥ સુ. ૧૪૦ ॥

उवागच्छइ अत्थि णं भंते ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव  
निउणसिप्पोवगए पभू एगं महं अयभारगं वा तउयभारगं वा  
सीसगभारगं वा परिवहत्तए ? हंता पभू । से चेव णं भंते ! पुरिसे  
जुन्ने जराजज्जरियदेहे सिढिलवलिअतया विणट्ठगत्ते दंडपरिग्गहियग्ग-  
हत्थे पविरलपरिसडियदतसेढी आउरे किसिए पिवासिए दुब्बले  
लुहापरिकिलते नो पभू एगं महं अयभारगं वा जाव परिवहत्तए  
जइणं भंते ! सच्चेव पुरिसे जुन्ने जराजज्जरियदेहे जावं परिकिलंते  
पभू एगं महं अयभाह वा जाव परिवहत्तए तो णं सदहेज्जा तहेव,  
जम्हा णं भंते ! से चेव पुरिसे जुन्ने जाव किलंते नो पभू एगं  
महं अयभारं वा जाव परिवहत्तए, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा  
तहेव ॥ सू० १४१ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केसिकुमारश्रमणमेवमवादीत्—अस्ति  
खलु भदन्त ! एषा प्रज्ञात उपमा अनेन कारणेन नो उपागच्छति, अस्ति  
खलु भदन्त ! स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पो-

‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं पएसी राया) तत्र प्रदेशी राजाने (केसिकुमारसमणं  
एवं वयासी) केसिकुमारश्रमण से ऐसा कहा (अत्थि णं भंते ! एसा  
पण्णाओ उवमा इमेण कारणेणं नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह उपमा प्रज्ञा-  
सेजन्य है अतः वास्तविकी नहीं है, क्यों कि जो कारण मैं प्रदर्शित कर  
रहा हूँ उस कारण से मेरे हृदय में जीव और शरीर का भेद नहीं जम

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं पएसी राया) त्वारे प्रदेशी राजाने (केसिकुमारसमणं  
एवं वयासी) केसिकुमार श्रमणने आ प्रमाणे केइ—(अत्थि णं भंते ! एसा पण्णा  
ओ उवमा इमेण पुण कारणेणं नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! आ उपमा  
प्रज्ञाथी अन्य छ अथी वास्तविक नथी केभडे के कारणे हु गतावी रह्यो छुं तेथी  
भारा हृदयमा एव अने शरीरनी किन्नता न्नामनी गथी (अत्थिणं भंते) से जहा  
नामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए पभू एगं सं अयभारगं

पगते प्रभुः एक महान्तमयोभारक वा प्रभुकभारक वा शीशकभारक वा  
परिषोदुम् ! इत प्रभुः । स एव स्वच्छ भवन्त ! पुरुषः भीमः । मराजनरित  
वेदः शिथिलवस्त्रितत्वाविनष्टगात्रः दण्डपरिसृष्टीताग्रहस्तः प्रचिरलपरिष  
टितवन्तश्रेणिः । आउर कृशः पिपासितः दुर्बलः क्षुधापरिवन्तः । नो मसुरेकं  
पाता है (प्रतिष्ठा मने ! से जहानामप केइ पुरिसे तरुणे जाय निवसि  
प्योषागप पशु पग महं अयभारग वा उठयभारग वा सीसगभारग वा  
परिवहिसप) यह कारण इस प्रकार से है—जैसे कोई एक पुरुष हो, और  
यह—युवा याव निपुणशिशोपगन हो, अर्थात् सम्पन्नज्ञान सम्पन्न हो, तो  
ऐसा वह पुरुष पिशाच लोहे के भार को प्रभु के भार को शीश क  
भार को वहन करने में समर्थ हो सकता है न ! तब केशीकुमारभ्रमण  
ने उससे (इता, पशु) हां, प्रवेशिन् ! ऐसा वह पुरुष उस लोहे भारि  
के विशाल भार को वहन करने में समर्थ हो सकता है (से वेव म  
भते ! पुरिसे जुने जरामज्जरियदेहे सिद्धिलवस्त्रितत्वाविनष्टगात्रसे दंडपरिग  
द्विपगगहृत्वे) अथ प्रवेशी राजाने केशीकुमारभ्रमण से फिर ऐसा पूछा—  
है भवन्त ! वही पुरुष जय वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है और जरा  
से जमरित शरीर वाला होने के कारण शक्ति से शिथिल हो  
जाता है, स्वप्ना जिसकी झुर्रियों से युक्त हो जाती हैं और इसी से  
मिंसको शारीरिक शक्ति प्रतिहत हो चुकी होती है, तथा इतिष्ठ हाथ  
में जो दण्ड लेकर चलने लगता है (परिष परिसद्विपद तसेही, आउरे,  
वा उठयभारग वा सीसगभारग वा परिवहिसप) ते शस्त्र आ प्रभावे ॥ नेम  
केअ ओइ पुत्र होय अने ते युवा याव निपुण शिथोपगत होय जेठे के  
सम्भङ्ग मान पकव होय ते जेवो ते पुत्र विशाण होय अन्त आरने त्रयुक्ता आरने  
शीशाना आरने वदन करवाभा शु समथ यथ शके ॥ त्वाइ केशीकुमार भभवे तेने  
(इता पशु) हाँ, प्रवेशिन् जेवो ते पुत्र ते होय अ बगेरना विशाण आरने  
वदन करवाभा समथ यथ शके ॥ (से वेव मने ! पुरिसे जुने जरामज्जरिय  
देहे सिद्धिलवस्त्रितत्वाविनष्टगात्रसे दंडपरिगद्विपगगहृत्वे) अथ केशी कुमारभभवे  
प्रवेशी अने आ प्रभावे प्रभु केशी के डे अहव । ते अ पुत्र आरने परतो यह  
अथ ॥ अने वृद्धावस्थाने शीष अरित शरीरवाणि होयाथी अशक्त यथ अथ ॥  
आभरी नेनी करवसीओथी मुक्त यथ अथ ॥ अने ओथी नेनी शारीरिक  
शक्ति प्रतिहत यथ अथ ॥ तेमअ अमवादायभा ने लाहरी असीने यावता लावे ॥  
(परिमपरिमद्विपद तसेही, आउरे, किमोण, पिशमिण दुग्गळे पुरा  
परिकिल तेनो पशु पग मह अयभारग वा जाय परिवहिसप) नेनी इव

મહાન્તમયોભારકં વા યાવત્ પરિવોદુમ્, યદિ સ્વલુ ભદન્ત ! સ ણ્વ પુરુષઃ  
જીર્ણઃ જરાજર્જરિતદેહઃ યાવત્ પરિવ્લાન્તઃ પ્રભુઃ એકં મહાન્તમયોભારકં વા  
યાવત્ પરિવોદુમ્. તદા સ્વલુ શ્રદ્ધ્યાં તથૈવ, યસ્માત સ્વલુ ભદન્ત ! સ  
એવ પુરુષઃ જીર્ણો યાવત્ ક્લીન્તઃ નો પ્રશુરેકં મહાન્તમયોભારં વા યાવત્  
પરિવોદું તસ્માત સુપતિષ્ઠતા મે પ્રતિજ્ઞા તથૈવ ॥૪૦ ૧૪૧॥

કિસીએ, પિવાસિએ, દુષ્પણે, છુહાકિલંતે પશૂ ણ્ગં મહં અયભારં વા  
જાવ પરિવહિત્તણે) ઢાંતોં કી પક્તિ જિસકી ચિરલ હો જાતી હૈ. શટિત  
હો જાતી હૈ, તથા કામ, શ્વામ આદિ સે જો સર્વદા પીડિત વનારહના  
હૈ, ઓર હસીસે જો કૃશ ણ્વ અશક્ત વન જોતા હૈં, ઉઠ કરકે પાની પીને  
તક મી શક્તિ જિસસે જાઠી રહતી હૈ, જો વિલકુલ શક્તિ રહિત હો  
જાતા હૈ, મૃત્વ સે જો-પીડિત વન જાતા હૈ ણેસા વહ પુરુષ એક વિશાલ  
લોહે કે માર કો, ત્રપુરુ કે માર કો યા શીશા કે માર કો વહન કરને  
કે લિયે સમર્થ નહોં રહતા હૈ. (જઘ ણં મંતે ! મન્ત્રેવ પુરિસે જુન્ને જરા-  
જજ્જગિયદેહે જાવ પરિકિલંતે પશૂ ણ્ગ મહ અયભારં વા જાવ પરિવહિત્તણ  
તો ણં સદ્દેહજા તહેવ) યદિ હે ભદન્ત ! વહી પુરુષ જીર્ણ હોને પર, જરા  
સે જર્જરિત દેહ હોને પર યાવત્ મુખા સે પરિક્લીન્ત હોને પર એક વિશાલ  
લોહમાર કો યાવત્ વહન કરને કે લિયે સમર્થ વના રહતાં તો મૈં આપકે હસ  
કથન પર કિ જીવ શરીર સે મિત્ર હૈ ઓર શરીર જીવ સે મિત્ર હૈ જીવ  
શરીરરુપ નહીં હૈ, શરીર જીવરુપ નહીં હૈ વિશ્વાસ કર લેતા (જમ્હા ણં

પક્તિ વિરલ થઈ જાય છે, શટિત થઈ જાય છે, તેમજ કાસ, શ્વાસ વગેરેથી જે  
હંમેશા પીડિત રહે છે અને એથી જે કૃશ અને દુર્બલ થઈ જાય છે, હાલ થઈને  
પાણી પીવાની પણ જેનામા તાકાત હોતી નથી જે સાવ અશક્ત થઈ જાય છે, ભૂખથી  
જે પીડિત થઈ જાય છે એવો તે પુરુષ એક મોટા ભોખડના ભારને કે શિયાના  
ભારને વહન કરવામા સમર્થ થઈ શકતો નથી. (જગ્ગં મંતે ! સન્ત્રેવ પુરિસે  
જુન્ને જરાજજ્જગિયદેહે જાવ પરિકિલંતે પશૂ ણ્ગ મહં અયભારં વા  
જાવ પરિવહિત્તણ તો ણં સદ્દેહજા તહેવ) તો હે ભદંત ! જે તે પુરુષ ધરડા  
હોવા છતાં એ ઘડપણથી જર્જરિત શરીરવાળો હોવા છતાં એ યાવત ભૂખથી પરિ-  
ક્રાંત હોવા છતાં એ એક ભારે ભોખડના ભારને યાવત્ વહન કરવામા સમર્થ થઈ  
શકત તો હું તમારા જીવ શરીરથી ભિન્ન છું અને શરીર જીવથી ભિન્ન છું, જીવ  
શરીર રૂપ નથી અને શરીર જીવ રૂપ નથી આ કથન પર વિશ્વાસ કરી લેત.

पगतः प्रभुः एक महान्तमयोभारक वा प्रभुकमारक वा क्षीशकमारक वा परिपोषुम् ? इत प्रभुः । स एव स्वच्छ भवन्त ! पुरुषः भीणः नराजमरित वेदः शिथिमवस्थितस्वपाविनष्टगात्रः दण्डपरिग्रहीताग्रहस्तः प्रविरलपरिष दितवतभ्रेणिः आहुरः कृशः पिपासितः दुषलः क्षुभापरिव्रान्तः नोपमुरेक पाता है (प्रत्येक भवे ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे भाप निउषसि' प्योवगए पभू एग मह अवभारग वा उठयमारग वा सीसगमारग वा परिवहिएए) वह कारण इस प्रकार से है-जैसे कोई एक पुरुष हो, और वह युवा यावत् निपुणशिक्षोपगन हो, अर्थात् सम्पन्नज्ञान सम्पन्न हो, तो ऐसा वह पुरुष विशाल लोहे के भार को प्रभु के भार को क्षीसा क, भार को वहन करने में समर्थ हो सकता है न ! तब केहीकुमारभ्रमण ने उससे (इता, पभू) हां, भदेसिन् ! ऐसा वह पुरुष उस लोहे आदि के विशाल भार को वहन करने में समर्थ हो सकता है (स चेव न, भंते ! पुरिस जुने जराजजरियदेहे सिद्धिलपस्मिमतपाविनष्टगते दण्डपरिग हियगगहस्ये) अव प्रवेशी राजाने केहीकुमारभ्रमण से फिर ऐसा पूछा- है भवन्त ! वही पुरुष जब वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है और जरा से जर्मरित शरीर बाला होने के कारण शक्ति से विधिय हो जाता है, स्वप्ना जिसकी झुर्रियों से युक्त हो जाती हैं और इसी से जिसकी शारीरिक शक्ति प्रतिहत हो चुकी होती है, तथा दक्षिण हाथ में जो दण्ड लेकर चलने लगता है (पविरल परिसद्विपद वसेही, आउरे,

वा उठयमारग वा सीसगमारग वा परिवहिएए) तो इससे आ प्रभावे कि नेमू दोष को पुत्र को दोष होने से युवा यावत् निपुण शिक्षोपगत होय कोटले के सम्भू ज्ञान उक्त होय तो जेवो ते पुत्र निशान दोष बनाकारने प्रयुज्ज कारने सीशाना कारने वदन करवाभा शु सम्भू कथं थके छे ? तयारे केहीकुमार भ्रमणे तेने (इता पभू) हाँ, भदेसिन् जेवो ते पुत्र ते दोष वजेरेन निशान कारने वदन करवाभा सम्भू कथं थके छे (से चेव न भने ! पुरिसे जुन्ने नराजमरिय देहे सिद्धिलपस्मिमतपाविनष्टगते दण्डपरिगहियगगहस्ये) जेवे केही कुमार भ्रमणे भदेसी राजाने आ प्रभावे प्रश्न क्यो के छे भवन्त ! ते न पुत्र क्यारे घररो कथं जय छे जने वृद्धावस्थाने क्षीमे नरजरित शरीरवाभा दोषधी कथकत कथं जय छे, आभरी नेनी करयकीजोधी युक्त कथं जय छे जने जेथी नेनी शारीरिक शक्ति प्रविद्धत कथं जय छे तेमज नमजादायभा जे लाकरी जसने आतवा ताजे छे (पविरलपरिमहियद वसेही, आउरे, किमाए, पिनामिए दम्पछे छुग परिकिल से नो पभू एग मह अवभारग वा जाव परिवहिएए) नेनी इत

स एव भारवाहकः पुरुषो जीर्णः—वृद्धोऽस्थां प्राप्तः अत एव जराजर्जरितदेहः—  
वृद्धावस्थामन्दशरीरशक्तिकः शिथिलबलित्वचाविनष्टगात्रः—शिथिला अतएव  
बलिता—बलियुक्ता त्वचा—चर्म तथा विनष्टगात्रः—प्रतिहतशरीर-  
सामर्थ्यः दण्डपरिग्रहीताग्रहस्त-अग्रहस्तेन-हस्ताग्रभागेन परिग्रहीतः—  
धारितो दण्डो येन तथा, परिरलपरिश्रितदन्तश्रेणिः—प्रविरलो—अत्यन्तालपा  
शटिना च दन्तश्रेणिः—दन्तपर्क्किर्यस्य स तथा, आतुरः कासश्वा-  
सादिपीडितः, कृशः—अशक्तः, पिपासितः उत्थाय जलं पातुमप्यसमर्थः,  
दुर्बलः बलहीनः क्षुधापरिक्लान्त-क्षुधापरिपीडितः, एतादृशः पुरुषः एकं  
महान्तमयोभारकं वा यावत्—‘यावत्’ पदेन—त्रपुकभारकं वा शीशकभारकं  
वा परिवोहुं नो प्रभुः—समर्थो न भवति. पुनः प्रदेशी प्राह—भदन्त ! यदि  
खलु स एव पुरुषो जीर्णः जराजर्जरितः यावत् क्षुधापरिक्लान्तः एतादृशः  
पुरुषः एकं महान्तमयोभारं वा यावत् शीशकभारं वा परिवोहुं प्रभुः  
स्यात् तदा खलु अहं श्रद्धयां तथैव—अन्यो जीवः अन्यच्छरीरम् नो  
तज्जीवः स शरीरम्, इति । अथ पुनः प्रदेशी प्राह—हे भदन्त ! यस्मात्  
कारणात् खलु स एव पुरुषः जीर्णः क्षुधापरिक्लान्तः एकं महान्तमयो-  
भारं वा यावत् शीशकभारं वा’ इत्येतत्कारणात् परिवोहुं नो प्रभुः—समर्थो  
न भवति, तस्मात् कारणात् मे—मम प्रतिज्ञा स्वीकारः, सुप्रतिष्ठिता—स्थिरा,  
तथैव—तज्जीवः स शरीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति ॥सू. १४१॥

मूलम्—तए णं केसीकुमारसमणे पर्णस रायं एवं वयासी-  
से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवियाए विहं-

‘वा जाव परिवहितए’ में आये हुए यावत्पद से ‘तउग भारगं वा’ सीसग  
भारगं वा इन पदों का संग्रह हुआ है। इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि  
युवादि विशेषणों वाला जो जीव है वही जीव अयुवादि विशेषणों वाला  
भी है अतः वह वही जीव है और वही उसका शरीर है ये दोनों भिन्न  
नहीं हैं। यही बात प्रदेशीराजाने इस सूत्र से प्रमाणित की है ॥सू. १४१॥

‘अयभारगं वा जाव परिवहितए’ भा आवेल यावत् पहथी ‘तउगभारग वा  
सीसगभारग वा’ भा पहोने सअहु थये छे भा सूत्रने भावार्थ भा प्रमाणे  
छे के युवा वगेरेथी युक्त विशेषणवाणे ने एव छे तेज एव अयुवा वगेरे विशे-  
षणैथी पणु स पन्न छे. ज्येथी ते तेज एव छे अने तेहुं शरीर पणु तेज छे  
जेओ गन्ने जुदा जुदा नथी प्रदेशी राजने जेज वात भा सूत्रथी प्रमाणित  
करी छे. ॥सू० १४१॥

ટીકા—“તપ્ત ણ પપ્પમી રૂપાદિ—સત્ત્વ સ્વરૂપ પ્રવેશી રાજા કશિકુમાર  
અમમમ્ પૃથ્વમવાદીશ્વ-પપા-રૂપમ્ ઉપમા પ્રજ્ઞાતઃ અસ્તિ અમેન વસ્તુમાણેન  
પુનઃ કારણેન જો ઉપાગચ્છતિ—ન મગચ્છતિ, સદેવાઽઽહ-અથ સ્વલુ રે  
મદન્ત ! સ યથાનામક કશ્ચિત્ પુરુષ ત્ત્વ યાવત્-યાવત્પદેન-અનન્તર  
સૂત્રે સંપ્રદિતાનિ યુગમાન્ પલવાનિત્યાદીનિ પદ્ધાનિ સમ્પ્રદીતમ્પાનિ, ઉદર્પ્ય  
સપ્તમશ્વપ્રતો પોત્તમ, નિપુણશિલ્પોપગતઃ—સમ્યગ્નિજ્ઞાનસમ્પન્ન, પૃથાશ્ચ પુરુષ  
એક મહાન્ત-વિશ્વાલય અયોમારકમ્-લોહમાર મધુકમારક-પાદુચિન્નમાર  
વા ક્ષીણમારક વા પરિજોહુ—નેતુ પ્રમુ-સમર્થઃ સ્પાત્ ? રૂપિ પ્રવેશિપ્રમ્નઃ  
કેશીઅમ્પણઃ કથયતિ—અન્ત—રે રાજન ! પ્રમુ—સમર્થઃ સ્પાત્ । રે અદન્ત !

અતે ! સ એવ પુરિસે જુને જાવ કિયતે જો વધુ પગ મહ અપમાર વા  
જાવ પરિવહિષ્ણ, તમ્હા સુપરિદ્ધિયા મે વહ્ણા તહેવ) મિસ કારણ સે રે  
મદન્ત ! વહી પુરુષ જોઈ યાવત્ હો જામે પર એક વિશ્વાલ લોહમારકો  
યાવત્ વહન કરને કે લિય સમર્થ નહો હોતા રે—હસ કારણ સે મેરાં વા  
મન્તવ્ય જીવ ઓર શરીર કે એક હોને કા સુપતિવિહિત રે અપોત્ વહી  
જીવ ઓર વહી શરીર રે, જીવ મિન્ન નહી રે ઓર શરીર મિન્ન નહી  
રે દેશ્તા મેરા મન્તવ્ય સત્ય રે ।

ટીકાર્થ—હસ મૂર્ખાર્ય કે જૈતા હી રે ‘તત્ત્વઃ યાવત્ નિપુણશિલ્પો  
પગતઃ’ મેં જો યહ યાવત્પદ આગા રે ઉમસે અનન્તર સૂત્ર મેં સંપ્રદીત યુગ  
વાત્ અમ્પવાન્ રૂપાદિ પદ યહી સૂદીત દુગ્ધ હો । इन पदों का अर्थ सप्तम  
अंशकी टीका में लिखा जा चुका है, भल वही से यह जानना चाहिये ‘अयमारण

(અમ્હા ણ અતે ! સ એવ પુરિસે જુને જાવ કિયતે જો વધુ પગ મહ  
અપમાર વા જાવ પરિવહિષ્ણ, તમ્હા સુપરિદ્ધિયા મે વહ્ણા તહેવ) ને કાર  
ણથી હે કારણ । તેજ પુરુષ એવું (પરતો) યાવત્ થઈ જવાથી એક (વશાળ દોષ  
હતા કારણે યાવત્ વહન કરવામાં અમથ થઈ શકતો નથી તે કારણથી જ એવ  
અને શરીર એકજ છે એવી ખાસી ખાસી સુપતિવિહિત જ છે એટલે કે એવ અને  
શરીર બન્ને એકજ છે એવ મિન્ન નથી અને શરીર કિ ન નથી આ ખાસી  
માન્યતા યોગ્યજ છે

ટીકાર્થ—આ સૂત્રનો ટીકાર્થ મૂલ્ય એવો જ છે તત્ત્વઃ યાવત્ નિપુણશિલ્પો  
પગતઃ’માં ને યાવત્ પદ બાબેલ છે તેથી બીજી કોઈ જગ્યાએ સંપ્રદીત યુગવાન્,  
અમ્પવાન્ વગેરે પદો અર્થ સંપ્રદીત થયાં છે આ પદાનો અર્થ : સાતમી  
ટીકામાં ૨૫૪ કથામાં આ બોલે છે એવી ત્યાંથી જ બાબુવા પ્રમત્ત કર્ણે બોલ્યો

સ એવ ભારવાહકઃ પુરુષો જીર્ણઃ-વૃદ્ધાસ્થા પ્રાસઃ અત એવ જરાજર્જરિતદેહઃ-  
 વૃદ્ધાવસ્થામન્દશરીરશક્તિકઃ શિથિલચલિતત્વચાવિનષ્ટગાત્રઃ-શિથિલા અતએવ  
 ચલાતા--વલિયુક્તા ત્વચા--વર્મ તથા વિનષ્ટગાત્રઃ--પ્રતિહતશરીર-  
 સામર્થ્યઃ દણ્ડપરિગ્રહીતાગ્રહસ્ત-અગ્રહસ્તેન-હસ્તાગ્રમાગેન પરિગ્રહીતઃ-  
 ધારિતો દણ્ડો યેન તથા, પ્રચિરલપરિશદિતદન્તશ્રેણિઃ-પ્રચિરલો-અત્યન્તાલ્પા  
 શદિના ચ દન્તશ્રેણિઃ--દન્તપાર્ક્કિયસ્ય સ તથા, આતુરઃ કાસશ્વા-  
 માદિપીડિતઃ, કૃશઃ-અઝાક્તઃ, પિપાસિતઃ ઉત્થાય જલં પાતુમપ્યસમર્થઃ,  
 દુર્બલઃ ચલહીનઃ ક્ષુધાપરિક્લાન્ત-ક્ષુધાપરિપીડિતઃ, એતાદૃશઃ પુરુષઃ એકં  
 મહાન્તમયોભારકં વા યાવત્-‘યાવત્’ પદેન-ત્રપુકભારક વા શીશકભારકં  
 વા પરિવોહું નો પ્રમ્નુઃ-સમર્થો ન ભવતિ. પુનઃ પ્રદેશી પ્રાહ-ભદન્ત ! યદિ  
 ચલુ સ એવ પુરુષો જીર્ણઃ જરાજર્જરિતઃ યાવત્ ક્ષુધાપરિક્લાન્તઃ એતાદૃશઃ  
 પુરુષઃ એક મહાન્તમયોભારં વા યાવત્ શીશકભારં વા પરિવોહું પ્રમ્નુઃ  
 સ્યાત્ તદા ચલુ અહ શ્રદ્ધ્યાં તથૈવ-અન્યો જીવઃ અન્યચ્છરીરમ્ નો  
 તજ્જીવઃ સ શરીરમ્, ઇતિ । અથ પુનઃ પ્રદેશી પ્રાહ-હે ભદન્ત ! યસ્માત્  
 કારણાત્ ચલુ સ એવ પુરુષઃ જીર્ણઃ ક્ષુધાપરિક્લાન્તઃ એક મહાન્તમયો-  
 ભારં વા યાવત્ શીશકભારં વા’ ઇત્યેતત્કારણાત્ પરિવોહુ નો પ્રમ્નુઃ-સમર્થો  
 ન ભવતિ, તસ્માત્ કારણાત્ મે-મમ પ્રતિજ્ઞા સ્વીકારઃ, સુપ્રતિષ્ઠિતા-સ્થિરા,  
 તથૈવ-તજ્જીવઃ સ શરીરમ્, નો અન્યો જીવોઽન્યચ્છરીરમિતિ ॥સૂ. ૧૪૧॥

મૂલમ્—તए णं केसीकुमारसमणे पर्णस रायं एवं वयासी-  
 से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवियाए विहं-

‘વા જાવ પરિવહિતए’ મેં આયે હુए યાવત્પદ સે ‘તઝગ ભારગં વા’ સીસગ  
 ભારગં વા ઇન પદોં કા સંગ્રહ હુएા હૈ। ઇસ સૂત્ર કા ભાવાર્થ એસા હૈ કિ  
 યુવાદિ વિશેષણોં વાલા જો જીવ હૈ વહો જીવ અયુવાદિ વિશેષણોં વાલા  
 મ્હો હૈ અતઃ વહ વહો જીવ હૈ ઓર વહો ડસકા શરીર હૈ યે દોનોં મિન્નર  
 નહીં હૈં। યહી વાત પ્રદેશીરાજાને ઇસ સૂત્ર સે પ્રમાણિત કી હૈ ॥મુ. ૧૪૧॥

‘અયભારગં વા જાવ પરિવહિતए’ મા આવેલ યાવત્ પદથી ‘તઝગભારગ વા  
 સીસગભારગ વા’ આ પદોનો સંગ્રહ થયો છે આ સૂત્રનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે  
 છે કે યુવા વગેરેથી યુક્ત વિશેષણવાળો જે જીવ છે તેજ જીવ અયુવા વગેરે વિશે  
 ષણોથી પણ સંપન્ન છે. એથી તે તેજ જીવ છે અને તેજ શરીર પણ તેજ છે  
 એઓ બન્ને જુદા જુદા નથી પ્રદેશી રાજાએ એજ વાત આ સૂત્રથી પ્રમાણિત  
 કરી છે. ॥સૂ. ૧૪૧॥



ગિયાપ જાવપર્હિ સિક્કપર્હિ જાવપર્હિ પચ્છિયપિંઢપર્હિ પહૂ એગ મહ  
 અયમાર જાવ પરિવહિતપ ? હન્તા પશુ ! પપ્પસી ? સે ચેવ જાં પુરિસે  
 તરુણે જાવ સિપ્પોવગપ જુન્નિયાપ તુવ્વલિયાપ ઘુણક્ષવ્વિયાપ વિહ  
 ગિયાપ જુણપર્હિ તુવ્વલપર્હિ ઘુણક્ષવ્વિયાપર્હિ સિદિલતયાપિણ્ણપર્હિ  
 સિક્કપર્હિ જુણપર્હિ તુવ્વલપર્હિ ઘુણક્ષવ્વિયાપર્હિ પચ્છિયપિંઢપર્હિ પ  
 એગ મહ અયમાર જાવ પરિવહિતપ ? જો હણટ્ટે મમટ્ટે ! કમ્મા  
 જ મત્તે ! તસ્સ પુરિસસ્સ જુણાહિ ઉવગરણાહિ ભવતિ । પપ્પસી ? સે  
 ચેવ પુરિસે જુન્ને જાવ છુદ્ધાકિલસે જુન્નોવગરણે નો પશુ એગ મહ  
 અયમાર જાવ પરિવહિતપ, ત સદ્દહાહિ જાં તુમ પપ્પસી જહા-  
 અન્નો જીવો અન્ન સરીર ॥ સૂ. ૧૪૨ ॥

કાયા-તથા સલ્લુ કેસીકુમારશ્રમણ પ્રદેશિન રાજાનામેયમરાદીદ-વ  
 યથાનામકઃ કથિત્ પુરુષઃ તથાજો યાવત્ શિવપોષગતઃ નવિકયા વિદિક્ષિકયા  
 નવકામ્યાં દિક્ષયકામ્યાં નવકામ્યાં પક્ષિતપિટકામ્યાં પ્રજ્ઞઃ એક મહાત્મ  
 મયોમાર યાવત્ પરિણોષુષ ? હન્ત ? મત્તુ પ્રદેશિન ! સ એવ સલ્લુ પુરુષ

‘તપ જ કેસીકુમારસમણે’ इत्यादि । - ११ ॥ - १

ધુત્રાવ-(તપ જ કેસીકુમારસમણે પપ્પસિં રાય એવ પપ્પાસી) કેસીકુમાર  
 શ્રમણને પ્રદેશી રાજા સે એસા કહ્યા-(સે જહાનામપ કેહ પુરિસે તરુણે  
 જાવ સિપ્પોવગપ જાવિયાપ વિહ ગિયાપ જાવપર્હિ સિક્કપર્હિ જાવપર્હિ પચ્છિય  
 પિંઢપર્હિ પહૂ એગ મહ અયમાર જાવ પરિવહિતપ ?) કેસે કોઈ એક પુરુષ  
 હો ઓર વહ તરુણ યાવત્ શિવપોષગત હો, એસા બહ પુરુષ મહીન વિહ ગિકા

‘तपण कसी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

સન્નપ્પ-(તપ જ કેસીકુમારસમણે પપ્પસિં રાય એવ પપ્પાસી) ત્યાર  
 પછી કેસીકુમારશ્રમણે પ્રદેશી રાજાને આ પ્રમાણે કહ્યું-(સે જહાનામપ કેહ  
 પુરિસે તરુણે જાવ સિપ્પોવગપ જાવિયાપ વિહ ગિયાપ જાવપર્હિ સિક્કપર્હિ  
 જાવપર્હિ પચ્છિયપિંઢપર્હિ પહૂ એગ મહ અયમાર જાવ પરિવહિતપ ?) એમ  
 એમ તે-કેલ પુરુષ એક અને તે તરુણ યાવત્ શિવપોષગત હોય એવો તે પુરુષ

તરુણા યાવત્ શિલ્પોપગતઃ જીર્ણેયા દુર્બલિકયા ઘુળસ્વાદિતયા વિદઙ્ગિકયા  
જીર્ણકાભ્યાં દુર્બલકાભ્યાં ઘુળસ્વાદિતાભ્યાં શિથિલત્વચાપિનદ્વકાભ્યાં સિક્વ  
કાભ્યાં જીર્ણકાભ્યાં દુર્બલિકાભ્યાં ઘુળસ્વાદિતાભ્યાં પક્ષિતપિટકાભ્યાં પ્રભુઃ  
એકં મહાન્તમયોમાર વા યાવત્ પરિવોહુમ્ ? નો અયમર્થઃ સમર્થઃ

સે ભારયષ્ટિકા સે (કાવડ સે), નવીન સિક્વકાઓ સે નવીન પક્ષિતપિટ-  
કાઓ સે એક વિશાલ ઝોહમાર કો યાવત્ ત્રપુમાર કો અથવા શીશક  
માર કો વહન કરને મેં સમર્થ હોતા હૈ ન ? તવ પ્રદેશી રાજાને કહા-  
(હતા, પશૂ) હાં, મદન્ત ! એસો વહ પુરુષ ઉસે વહન કરને મેં મર્થ હોતા હૈ  
(પણી ! સે ચેવળં પુરિસે તરુણે જાવ સિપ્પોવગણ દુવ્વલિયાણ ઘુળક્વ-  
હ્યાણ વિહંગિયાણ જુળ્ણણહિં દુવ્વલિણહિં, ઘુળક્વહ્યાણહિં, સિદ્ધિલતયા પિન-  
દ્વહ્યાણહિં, સિક્વહ્યાણહિં દુવ્વલિણહિં જુળ્ણેહિં ઘુળક્વહ્યાણહિં પક્ષિયપિંડહ્યાણહિં પશૂ  
ણં મહં અયમારં વા જાવ પરિવહિત્તણ) હે પ્રદેશિન્ ! અવ મેં તુમ સે  
પ્રેસા પૂછતા હુંં કિ વહી તરુણપુરુષ જો યાવત્ નિપુણશિલ્પોપગત હૈ જીર્ણ  
દુર્બલ, ઘુન સે ગ્વાઈ હુઈ મારયષ્ટિકા સે, તથા જીર્ણ, દુર્બલ ઓર ઘુન સે  
સ્વાઈ હુઈ તથા શિથિલ ત્વચા સે પિનદ્વ હુઈ એસી સિક્વકાઓ સે, એવં  
દુર્બલિક, ઘુળ સ્વાદિતેમો પક્ષિતપિટકાઓ સે એક વિશાલ ઝોહમાર કો  
અથવા ત્રપુમાર કો યા શીશક માર કો વહન કરને મેં સમર્થ હો  
સકતા હૈ ? પ્રદેશીને કહા-(જો ઇણદ્વે સમદ્વે) હે મદન્ત ! યહ અર્થ સમર્થ

નવીન વિહંગિકાથી ભારયષ્ટિકાથી (કાવડથી) નવીન સિક્વકાથી નવીન પક્ષિતપિટકા-  
ઓથી એક વિશાળ ઝોખડના ભારને યાવત્ ત્રપુભારને અથવા શીશક ભારને વહન  
કરવામા શું સમર્થ થઈ શકે છે ? ત્યારે પ્રદેશી રાજાએ કહ્યું-(હંતા, પશૂ) હા જી,  
લહત ! એવો તે પુરુષ તેને વહન કરવામા સમર્થ થઈ શકે છે. (પણી ! સે ચેવ  
ળં પુરિસે તરુણે જાવ સિપ્પોવગણ, જુનિયાણ, દુવ્વલિયાણ ઘુળક્વહ્યાણ  
વિહંગિયાણ, જુળ્ણણહિં, દુવ્વલિણહિં ઘુળક્વહ્યાણહિં, સિદ્ધિલતયા પિનદ્વહ્યાણહિં,  
સિક્વહ્યાણહિં જુળ્ણેહિં દુવ્વલિણહિં ઘુળક્વહ્યાણહિં પક્ષિયપિંડહ્યાણહિં પશૂ  
મહં અયમારં વા જાવ પરિવહિત્તણ) હે પ્રદેશિન્ ! હવે તમને હું આમ પ્રશ્ન  
કરું છું કે તે જ તરુણ પુરુષ જે યાવત્ નિપુણ શિલ્પોપગત છે એણે દુર્બળ,  
ઉધઈ ખાધેલી ભારયષ્ટિકાથી (કાવડથી) તેમજ એણે, દુર્બળ ઉધઈવટ ખાધેલ તેમજ  
શિથિલ ત્વચાઓથી પિનદ્વ થયેલ એવી સિક્વકાઓથી અને દુર્બલિક, ઉધઈ ખાધેલ એવી  
પક્ષિતપિટકાઓથી એક મોટા ઝોખડના ભારને અથવા ત્રપુભારને કે શીશકભારને વહન  
કરવામા શું સમર્થ થઈ શકે છે ? પ્રદેશીએ કહ્યું (જો ઇણદ્વે સમદ્વે) હે લહત !

कम्मात् ? मदात् ! तस्य पुरुषस्य जीर्णानि उपकरणानि भवति, मदेति ।  
 स एव पुरुष जीर्णो यावत् छुपापरिक्रान्तः जीर्णोपकरणः नो मम एक  
 महान्धमयोभार वा यावत् परिवोहुम्, तव अदेहि खलु त्वं प्रदेसिन् ।  
 यथा-अयो जीवः अन्यतः शरीरम् ६ । ॥ सू० १४२॥

मर्हि हे-अर्थात् वही युवादि विशेषणों वाला पुरुष जीर्णादि विसर्पणोंवाली  
 विशिष्टिकादि (कायक) द्वारा विज्ञात लोहभार को वहन नहीं कर सकता है  
 केशीकुमारश्रमणने पूछा-(कम्हा) वह ऐसा किस कारण से नहीं कर सकता है  
 तब मदेदीने कहा-(भते ! तस्स पुरिसस्स जुण्णाइ उवगरणाइ भवति) हे  
 भइन्त ! लोह भार आदि को वहन करने के जो उसके साधन हैं-वे भी  
 हैं ! (पपमी से वेष पुरिसे जुन्ने जाव छुपापरिक्रित्ते जुन्नोवगरणे पप  
 एगं महं अयमार वा जाव परिबहिस्सए-तं सहहाहि ण तुम पपमी अन्तो  
 जीवो अन्नं सरीरं) पुनः केशी ने मदेदी से पूछा-हे मदेसिन् ! यदि वही  
 पुरुष जीर्ण, वृद्ध यावत् १४१वे सूत्र में कथितविशेषणोंवाला एव छुपा  
 परिक्रान्त हो जाता है वह जीर्णोपकरण वाला होने से-शरीर कम बुद्धि  
 आदि उपकरणों की जीर्णतावाला होने से-एक विज्ञात अयोभार को यावत्  
 शीघ्रक भार को वहन करने में समर्थ नहीं होता है युवावस्था और वृद्ध-  
 वस्था में जीव की समानता होने पर भी उपकरण के अभाव से वृद्ध  
 भार को वहन करने के लिये समर्थ नहीं होता है इस कारण हे मदेसिन् !

आ अर्थ समर्थ नहीं, कोटवे के तेज युवा वजेशे विशेषज्ञोधी भुक्त पुरुष लघु  
 वजेशे विशेषज्ञोधी भुक्त विद्वज्जि (अवक) वजेशे वट विद्याज्ञ बोधका भारने कठिन  
 न करी शके तेम छे केशीकुमार अभवे कसुं (कम्हा) ते आभ या कसुंभी नहि  
 करी शके ? त्वाहे मदेसीजे कसुं (भते ! तस्स पुरिसस्स जुण्णाइ उवगरणाइ  
 भवति) के कहव । बोधका भार वजेशेने वहन कराना के साधनो छे ते लघु छे  
 (पपमी से वेष पुरिसे जुन्ने जाव छुपापरिक्रित्ते जुन्नोवगरणे मो पप  
 एगं महं अयमार वा जाव परिबहिस्सए-तं सहहाहि ण तुम पपमी अन्तो  
 जीवो अन्नं सरीरं) करी केशीजे मदेसीने आ अभवे अभन कसो के के मदेसिन् ।  
 जे ते व पुरुष लघु वृद्ध यावत् १४१ भां सूत्रमां जावत् विशेषज्ञोधी सफल  
 बोध सुधा पदिकर्ताव यथं अय छे तो ते लघोपकरणवालो बोधोधी शरीर लज बुद्धि  
 वजेशे उपकरणो लघु बोधोधी को विद्याज्ञ बोधका भारने भवत् शीघ्रकारने  
 कठिन करणमां समर्थ यथं शके तेम नहीं युवावस्थाभां जने वृद्धावस्थाभां लघुनी  
 समानता बोधो छतां जे उपकरणना अभावसे वृद्ध भारने कठिन करणमां समर्थ यथं

ટીકા—“તેણ કેસી કુમારસમને” इत्यादि—ततः खलु केशी कुमा-  
रश्चमणः प्रदेशिनं राजामम्, एवमवादीत्—स यथानामकः कश्चित्—कोऽपि  
पुरुषः तरुण यावत्—निपुणशिल्पोपगतः, नविकया—नूतनया विहङ्गिकया—भार-  
यष्टिकया—शिक्यावलम्बनदण्डविशेषरूपया नवकाभ्यां—नवीनाभ्यां शिक्यकाभ्यां  
नवकाभ्यां—नूतनाभ्यां पक्षितपिटकाभ्यां—वंशवेत्रादिनिर्मितपात्रविशेषाभ्याम्  
एकं महान्तमयोभारं वा यावत् त्रपुभारं वा शीशकभारं वा एतादृशमयो  
भारादिकं परिचोदुं प्रभुः—समर्थः स्यात् ? इति केशिप्रश्नः, प्रदेशी प्राह—  
हन्त ! प्रभुः—समर्थः स्यात् ! केशीकथयति—प्रदेशिन ! स एव खलु पुरुषः  
तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः, एतादृशः पुरुषः जीर्णया दुर्बलिकया-  
निःसत्त्वया घुणखादितया—काष्ठकीटमक्षितया—विहङ्गिकया—भारयष्टया तथा—  
जीर्णकाभ्यां—दुर्बलिकाभ्यां घुण्खादिताभ्यां शिथिलत्वचापिनद्धकाभ्यां—  
शिथिलदवरिकाचट्टाभ्यां शिक्यकाभ्यां, तथा दुर्बलिकाभ्यां घुण्खादिता-  
भ्यां पक्षितपिटकाभ्याम् एकं महान्तमयोभारं वा यावत् त्रपुभारं वा शीश-  
कभारं वा परिचोदुं प्रभुः—समर्थः स्यात् ? । प्रदेशी प्राह—नो अयमर्थः—  
समर्थः—पूर्वोक्तसाधनैर्भारो वोदुं न शक्यत इत्यर्थः । केशी श्रमणो  
हेतु पृच्छति—कस्मात्कारणात् ? । प्रदेशी कथयति—हे भदन्त ! तस्य पूर्वोक्त-  
स्य तरुणताविशिष्टस्य पुरुषस्य उपकरणानि जीर्णानि भवन्ति सन्ति, उप-  
करणानां जीर्णत्वादिकारणान्नायोभारादिपरिवहनयोग्यता, इतिभाव । केशी

તુમ મેરે વચન મેં વિશ્વાસ કરો કિ જીવ અન્ય હૈ ઓર શરીર અન્ય હૈ,  
વહ જીવરૂપ નહીં હૈ ઓર ન જીવ શરીરરૂપ હૈ.

ટીકાર્થ—સ્પષ્ટ હૈ યહાં જો ‘વિહંગિયાએ, સિક્કાઈ, પચ્છિયપિંડાઈ’  
યે શબ્દ આયે હૈ વે ભાર ઉઠાને કે અર્થ મેં આયે હૈ. વંશ, વેત્ર આદિકો,  
સે નિર્મિત પાત્ર વિશેષકા નામ પક્ષિતપિટક હૈ. તાત્પર્ય ઇસ સૂત્ર કા એસા

શકતો નથી. એથી હે પ્રદેશિન્ ! તમે ભારી વાત પર વિશ્વાસ કરો હે એવ અન્ય  
છે, અને શરીર અન્ય છે, શરીર એવરૂપ નથી અને એવ શરીર રૂપ નથી

ટીકાર્થ—સ્પષ્ટ જ છે. (‘વિહંગિયાએ, સિક્કાઈ, પચ્છિયપિંડાઈ’એ  
શબ્દો આવેલ છે. તે ભાર વહન કરવા માટેના વિશેષ સાધનોના અર્થમાં પ્રયુક્ત  
કરવામાં આવ્યા છે. વંશ, વેત્ર વગેરેથી નિર્મિતપાત્ર વિશેષણનું નામ પક્ષિતપિટક  
છે. આ સૂત્રનો સંક્ષેપમાં ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે કે સમર્થ પુરૂષ જો ઉપકરણો

माह-हे मदेधिन् ! स एष पुरुषो यदि जीर्णः-वृद्धः यावत् त्रिपरवारि  
 अधिकैकशततमसुभोक्त विशेषणविशिष्टः, पुनः क्षुधापरिप्लान्तः क्षुधाम्बुजः,  
 एवमेष पुरुषो, जीर्णोपकरणः शरीरपल्लवुद्धयाद्युपकरणरहितो भवति तदा एव  
 महान्तमयोभारः वा यावत्-शीशकभारः वा परियोहु न प्रभुः-न समर्थो  
 भवति, तावत्वे यार्थव्ये च जीवस्य समानत्वेऽपि उपकरणमावाप्त्यै वृद्धो  
 माह-योहु समर्थो भवतीति भावः । तम्-तस्मात् कारणात् हे मदेधिन् !  
 त्वं भदेहि-मद्वचने विश्वसिद्धि-यथा भयो जीवः अ-पच्छरीरम्, नो  
 तज्जीवः वा शरीरम्, इति ६ । ॥ छ० १४२ ॥

॥ मूलम्—तए णं से पयसी केसिकुमारसमण एवं वयासी-अरिय  
 णं भते ! जाव नो उवागच्छह, एव खलु भते ! जाव विहरामि,  
 तएणं-मम णगरयुत्तिया जाव, चोर, उवणेति, तएणं अह त-पुरिसि  
 जीवतंग-वेव तुलेमि, तुलेत्ता छविच्छेय-अकुब्बमाणे जीवियाओ  
 ववरोधेमि मय तुलेमि णो वेव णं तस्स पुरिसिस्स जीवतस्स वा तुलिय  
 स्स वा सुयस्स वा तुलियस्स केइ आणासे वा, नाणसे वा उम्मक्कसे वा

॥ किं समर्थ पुरुष उपकरणों को बलवत्ता में छोड़े आदिकर्ष भार को उठा  
 सकता है तथा वही समर्थ पुरुष उपकरणों की असमीचीनता में छोड़े  
 आदिकर्ष भार को नहीं उठा सकता है, तथा वही पुरुष वृद्धावस्थापन्न  
 होने पर भी भयोभार को नहीं उठा सकता है, अतः इससे परी मतीत  
 होता है कि जीव की समानता होने पर भी उपकरणों की असमानता में  
 भारवहम् नहीं होता है- इससे यदि मानमा चाहिये कि जीव मिन्न  
 है और शरीर मिन्न है । ६ ॥ छ १४२ ॥

समाप्त होय तो दोष ठ वजोरेना कारणे पढ़न करी शके छ तथा तेज समर्थ पुरुष  
 को उपकरणों समाप्त असमीचीन-दोष तो दोष ठ वजोरे रूप कारणे पढ़न करि  
 शके तेम नहीं तेमज तेज पुरुष वृद्धावस्थापन्न होनाभी दोष ठना कारणे पढ़न  
 करी शके तेम नहीं जेभी आ वात रूप्य भाव छ के लपनी समनता होय छता ।  
 को उपकरणों (साधनों) की असमानताने भी कारण पढ़न करी शक्य तेम नहीं  
 जेभी आ वात भावी वेनी जेधजे के लप निम्न छ जने शरीर निम्न छ । ११४२ ।

तुच्छते वा गुरुयते वा लहुयते वा, जइ णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स होज्जा केइ नाणत्ते वा जाव लहुयते वा तो णं अहं सदहेज्जा तं चेव, जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नन्नत्ते वा जाव लहुयते वा तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा तं जीवो तं चेव ॥सू० १४३ ॥

छाया-ततः खलु स प्रदेशी केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्-अस्ति खलु भदन्त! यावत् नो उपागच्छति, एवं खलु भदन्त! यावद् विहरामि, ततः खलु मम नगरगुप्तिकाः यावत् चोरमुपनयन्ति, ततः खलु अहं तं पुरुषं जीवि, तकमेव तोलयामि तोलित्वा छविच्छेदम् अकुर्वाणः जीविताद् व्यपरोप-

‘तए णं से पएसी इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से पएसी केशिकुमारस्समणं एव वयासी) इसके बाद उस प्रदेशोने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(अत्थि णं भंते! जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह उपमा बुद्धि जन्य है अतः वास्तविक नहीं है। मुझे इस वक्ष्यमाण कारण से जीव और शरीर का भेद प्रतीत नहीं होता है—(एव खलु-भंते ! जाव विहरामि)-वह कारण इस प्रकार से है—एक दिन की बात है कि मैं गणनायक आदिकों के साथ बाह्य उपस्थानशाला में बैठा हुआ था। (तएणं मम नगरगुप्तिया जाव चोर उवणेंति) इतने में मेरे नगररक्षक साक्षियुक्त आदि विशेषण संपन्न किसी एक चोर को पकड़ कर ले आए (तए णं अहं तं पुरिसं जीवितगं चेव तुलेमि)

‘तएणं से पएसी’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—तए णं से पएसी केशिकुमारस्समणं एवं वयासी) तब पक्षी-ते प्रदेशी राज्ञे केशी कुमार श्रमणने आ प्रमाणे छलु। (अत्थि णं भंते! जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! आ उपमा बुद्धि जन्य छे अथी वास्तविक नथी। वक्ष्यमाण कारणथी एव अने शरीरनी लिन्नता भारा मनभा नभती नथी। (एवं खलु भंते ! जाव विहरामि) ते कारण आ प्रमाणे छे—अेक द्विसनी वात छे के हुं गणनायक वगेरे नी साथे आह्य उपस्थानशाला (गुहारनी क्षेत्री)मा गेठा छेतो। (तएणं मम नगरगुप्तिया जाव चोर उवणेंति) ते वणते भारा नगररक्षके साक्षियुक्त वगेरे विशेषणथी संपन्न केछे अेक चोरने पकडी लाव्या। (तएण अहं तं पुरिसं

माह-हे, प्रवेशिन् ! स एव पुरुषो यदि भीर्णः-वृद्धः यावत् त्रिवर्त्तवारि  
 श्वधिकैकशततमसूभोक्त विशेषणविशिष्टः, पुनः सुभापरिवृत्तान्तःसुभामिन्,  
 पञ्चदश पुरुषो, भीर्णोपकरणः शरीरफलमुद्धयाद्युपकरणमरहितो भवति तथा एक  
 महान्तमयोभारं वा यावत्-श्रीशकभारं वा परिषोद्धु न प्रभुः-न समर्थो  
 भवति, तत्काल्ये पार्श्वके च भीरस्य समानरवेऽपि उपकरणमावाप्तं वृद्धो  
 भारं बोद्धु समर्थो भवतीति भावः । तन्-तस्मात् कारणात्, हे प्रवेशिन् !  
 त्वं भूदेहि-मद्वचने विश्वसिद्धि-पथा अयो जीवः अयं शरीरस्य, नो  
 तन्मीयः स शरीरस्य, इति ६ । ॥सू० १४२॥

॥ मूकम—तए णं ते पपसी केसिकुमारसमण एव वयासी-अरिय  
 णं भंते ! जाव नो उवागच्छइ, एव खलु भंते ! जोव विहरामि,  
 तएणं सम णगरयुत्तिया जाव, चो, उवणेत्ति, तएणं अह त-पुरिसि  
 जीवंतंगं चेव तुलेमि, तुलेत्ता छविच्छेयं अकुब्बमाणे जीवियाओ  
 ववरोवेमि मय तुलेमि णो चेव णं तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलिय  
 स्स वा सुयस्स वा तुलियस्स केइ आणात्ते वा नाणात्ते वा उम्मत्ते वा

१ कि समय' पुरुष उपकरणों की बलबत्ता में लोहे आदिकुप भार को उठा सकता है तथा वही समय' पुरुष उपकरणों की असमीचीनता में लोहे आदिकुप भार को नहीं उठा सकता है, तथा वही पुरुष वृद्धोदस्थापन होने पर भी यथोभार को नहीं उठा सकता है. अतः इससे पट्टी प्रतीत होता है कि जीव की समानता होने पर भी उपकरणों की असमानता में भारग्रहण नहीं होता है- इससे यदि मानना चाहिये कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है। ६ ॥ घ १४२ ॥

અસાક્ત હોય તો હોખડ વગેરેના બારને વઢન કરી શકે છે તથા તેજ સમય પુરૂષ  
એ ઉપકરણો અસાક્ત અસુગ્રીવીન-હોય તો હોખડ વગેરે દ્વય બારને વઢન કરિ  
શકે તેમ નથી તેમજ તેજ પુરૂષ વૃદ્ધાવસ્થાપન્ન હોવાથી હોખડના બારને વઢન  
કરી શકે તેમ નથી એથી જ્યાં વાત સ્પષ્ટ થાય છે કે જીવની સમ્માનતા હોવા છતાં  
એ ઉપકરણો (સાધનો)ની અસમ્માનતાને લીધે બારતુ વઢન કરી શકાય તેમ નથી  
એથી જ્યાં વાત માની લેવી એટલે કે જીવ જા ન છે અને શરીર ચિન્તિ છે ૧૬૧૪૨

तुच्छते वा गुरुयते वा लहुयते वा, जइ णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स होजा केइ नाणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा तो णं अहं सदहेजा तं चेव, जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नन्नत्ते वा जाव लहुयत्ते वा तम्हा सुपइट्ठियो मे पइण्णा जहा तं जीवो तं चेव ॥सू० १४३ ॥

छाया-ततः खलु स प्रदेशी केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत-अस्ति खलु भदन्त! यावत् नो उपागच्छति, एवं खलु भदन्त! यावद् विहरामि, ततः खलु मम नगरगुप्तिकाः यावत् चोरमुपनयन्ति, ततः खलु अहं तं पुरुषं जीवितकमेव तोलयामि तोलयित्वा छविच्छेदम् अकुर्वाणः जीविताद् व्यपरोप-

‘तए णं से पएसी इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से पएसी केशिकुमारसमणं एवं वयासी) इसके बाद उस प्रदेशोने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(अत्थि णं भंते!) जीव नो उवागच्छइ हे भदन्त! यह उपमा बुद्धि जन्य है अतः वास्तविक नहीं है। मुझे इस वक्ष्यमाण कारण से जीव और शरीर को भेद प्रतीत नहीं होता है—(एव खलु भंते! जाव विहरामि) वह कारण इस प्रकार से है—एक दिन की बात है कि मैं गणनायक आदिकों के साथ ब्राह्म उपस्थानशाला में बैठा हुआ था। (तएणं मम नगरगुप्तिया जाव चोर उवणेति) इतने में मेरे नगररक्षक साक्षियुक्त आदि विशेषण संपन्न किसी एक चोर को पकड़ कर ले आए (तए णं अहं तं पुरिसं जीवितगं चेव तुळेमि)

‘तएणं से पएसी’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—तए णं से पएसी केशिकुमारसमणं एवं वयासी) (अथ पक्षः) ते प्रदेशी राज्ञे देशी कुमारश्रमणने आ प्रमाणे क्खु (अत्थि णं भंते! जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त! आ उपमा बुद्धि जन्य छि अथी वास्तविक नहीं। वक्ष्यमाण कारणथी एव अने शरीरनी निन्नता भारा मनमा जामती नथी। (एव खलु भंते! जाव विहरामि) ते कारण आ प्रमाणे छि—एक दिवसनी बात छि के हुं गणुनायक वगेदे नी साथे ग्राह्य उपस्थानशाणा (गह्वरनी कचेरी)मा गेठा डतो। (तएणं मम नगरगुप्तिया जाव चोर उवणेति) ते वणते भारा नगररक्षके साक्षियुक्ते वगेदे विशेषणथी संपन्न केछि एक चोरने पकडी लाव्या। (तएण अहं तं पुरिसं



યામિ મૃત-તોલયામિ ને જેવ સ્વલુ તસ્ય પુરુષસ્ય જીવતો, વા તોલિતસ્ય મૃત-  
સ્ય વા તોલિતસ્ય કિઞ્ચિત્ નાનાત્વ વા ઉમાત્રસ્ય વા તુચ્છસ્ય વા દુરુતસ્ય  
વા સપુત્રત્વ વા, યદિ સ્વલુ મવન્તે ! તસ્ય પુરુષસ્ય જીવતો વા તોલિતસ્ય  
મૃતસ્ય વા તોલિતસ્ય મવેત્ કિઞ્ચિત્ નાનાત્વ વા યાત્વ સપુત્ર વા તદા  
સ્વલુ અહ અદૃષ્ટો વદેચ, યસ્માત્ સ્વલુ મવન્તે ! તસ્ય પુરુષસ્ય જીવતો વા

તસે મૈ ને જીવિત હી ! તોચા (તુલેષા ઇવિચ્છેય - અકુરુવમાણે જીવિયામો  
બરોવેમિ, મય તુલેમિ) તોલ કર ફિર મૈ ને હસે મગ મગ કિય વિના  
જીવન સે રક્ષિત કર દિયા ઓર ફિર મરે હુપ હસે તોલા (જો જેવ ન  
તસ્ય પુરિસસ્ય જીવતસ્ય વા તુલિયસ્ય મયસ્ય વા તુલિયસ્ય કેહ માનતે  
વા ઉમ્મત્તરો વા તુચ્છરો વા દુરુતરો વા સપુત્રરો વા) તય જીવિતતુલે હુપ  
હસમે ઓર મરે તુલે હુપ હસમે મુખે કિસી મી મરદ કી ન્યુનાધિકતા  
નહી દિત્વાઈ હી ન હસ મે માર મદા ન મદ હસકા માર કમ હુઆ ન હસમે મરતા  
આઈ ન હસમે સપુત્રા આઈ (અહ જ મરો તસ્ય પુરિસસ્ય જીવતસ્ય વા તુલિયસ્ય  
મયસ્ય વા તુલિયસ્ય વા દોઝા કેઈ નાનસો વા જાવ સપુત્રરો વા) હે મદન્ત !  
જીવિતતુલે હુપ ઓર મરે તુલે હુપ હસ પુરુષ મે યદિ કોઈ ન્યુનાધિકતા  
હો જાતી યાત્વ સપુત્રા હો જાતી (તો જ અહ સદોઝા ત જેવ) તો મે મદા કર હેતા  
કિ જીવ મગ્ય હે, ઓર કરોર મગ્ય હે વહ જીવ કરીર નહી હે વહ કરોર જીવ નહી હે

જીવિતગ જેવ તુલેમિ) મે જ્ઞાતિવસ્થામાં જ વેદ 'વચન ક્યુ' (તુલેષા ઇવિચ્છેય  
અકુરુવમાણે જીવિયામો બરોવેમિ, મય તુલેમિ) તોલીને 'મી' મે 'તેને  
જાજ જાજ ક્યાં વગર જ હવન રક્ષિત જાતી દીધા અને મરો પછી  
કરી વેદ મે વચન કસબ્યુ (જો જેવ જ તસ્ય પુરિસસ્ય જીવતસ્ય વા તુલિ  
યસ્ય મયસ્ય વા તુલિયસ્ય કેહ માનતે વા ઉમ્મત્તરો વા તુચ્છરો વા  
દુરુતરો વા સપુત્રરો વા) ત્યારે હવતાં વચન કસબેલા તેમાં અને મૃત્યુ જામ્યા  
પછી વચન કસબેલા તેમાં અને કોઈ પણ જાતની ન્યુનાધિકતા હોગી નહીં તેમાં જાર  
વધારે પણ થયે નહીં, અને તેમાંથી જાર જોઈએ પણ થયે નહીં  
તેમાં જુસ્તા જાવી નથી તેમ તેમાં સપુત્રા પણ જાવી નથી  
(અહ મે મરે ! તસ્ય પુરિસસ્ય જીવતસ્ય વા તુલિયસ્ય મયસ્ય વા તુલિયસ્ય  
વા દોઝા કેઈ નાનસો વા જાવ સપુત્રરો વા) હે મદન્ત ! જ્ઞાતિવસ્થામાં  
કેલા વચનમાં અને મૃત્યુવસ્થામાં કેલા જો યોગના વચનમાં બે કોઈ, પણ જાતની  
ન્યુનાધિકતા કંઈ જાત યાત્વ સપુત્રા કંઈ જાત (તો જ અહ સદોઝા ત જેવ)

તોલિનસ્ય મૃતસ્ય વા તાલિતસ્ય નામ્નિ ક્ષિત્તિવત્ નાનાત્વ વા યાવત્ લઘુ  
કત્વં વા । તસ્માત્ સુપ્રતિષ્ઠિતા મે પ્રતિજ્ઞા યથા-તજ્જીવઃ તદેવ ॥મૂ. ૧૪૩॥

ટીકા-‘તદ્દેશં સે પદસી’ इत्यादि ततः तदनन्तरं खलु स भदेशी राजा केशि  
कुमारश्रमणम्, एवमवादीत हे भदन्त! अस्ति खलु यावत् यावत्पदेन। ‘एषा प्रज्ञा  
तउपमा अनेन पुनः वक्ष्यमाणेन कारणेन’ इत्येषां पदानां सङ्ग्रहः एतद्वि-वरणं पूर्व  
तर (१४०) चत्वारिंशदधिकैशशततममन्त्रे कृतम्, नो उपाग  
च्छति-जीवशरीरयोः परस्परं भेदो मे-मम मनसि न संगच्छते । तदे

जम्हा णं भ ते ! तस्स पुमिस्स जीवंतरसं वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स  
नत्थि केइ नन्नत्थे वा जाव लहुयसो वा, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा-  
तं जीवो तं चेव) जिस कारण हे भदन्त ! जीते हुए तोले गये उस  
पुरुष में और मरे हुए तोले गये उसी पुरुष में जब कोई भिन्नता—  
न्यूनाधिकता यावत् लघुता मैं नहीं देखता हूं—उस कारण से मेरा यह  
मन्तव्य कि वही पूर्वोक्त जीव है और वही शरीर है, न अन्य जीव है,  
और न अन्य शरीर है सुस्थिर है ।

टीकार्थ—केशीकुमारश्रमण का जीव शरीर भिन्नता-विषयक कथन  
सुनकर भदेशी राजाने उनसे इस प्रकार कहा—हे भदन्त ! आपने जो यह  
उपमा जीव शरीर की भिन्नता प्रकट करने के लिये प्रकट की है वह  
केवल उपमामात्र है-बुद्धिजन्य होने से वास्तविक नहीं है. अतः जो बात

તો હું આ વાત પર શ્રદ્ધા કરી શકત કે એવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે તે એવ-શરીર  
નથી અને શરીર એવ નથી. (जम्हा णं भ ते ! तस्स पुमिस्स जीव-  
तस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नन्नत्थे वा जाव  
लहुयसो वा, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा, तं जीवो तं चेव) એથી હું  
ભદન્ત ! એવીતાવસ્થામાં વળને કરાયેલ તે પુરુષમાં અને મૃતતાવસ્થામાં વળને કરાયેલ  
તેજ પુરુષમાં જ્યારે કોઈ પેણુ જીવંતની ભિન્નતા-ન્યૂનતાધિકતા યાવત્ લઘુતા મોરો  
ધ્યાનમાં આવતી નથી તેથી મારી એવી માન્યતા છે કે જે એવ છે તેજ શરીર છે.  
એવ અન્ય નથી તેમજ શરીર પણ અન્ય નથી.

ટીકાર્થ—કેશી કુમારશ્રમણેનુ એવ શરીર ભિન્નતા સંબંધી કથન સાંભળીને  
પ્રદેશી રાજાએ તેમને આ પ્રમાણે-કહ્યું કે હું ભદત્ ! તમે એવ અને શરીરની  
ભિન્નતા સ્પષ્ટ કરવા માટે જે ઉપમા આપી છે તે માત્ર ઉપમા જ છે. તે બુદ્ધિ-

यामि मृत-तोलयामि, ने चैन खलु तस्य पुण्यस्य जीवतो वा तोलितस्य मृत  
स्य वा तोलितस्य किञ्चित् नानात्वं वा उन्मापत्वं वा तुच्छत्वं वा गुरुत्वं  
वा लघुत्वं वा, यदि खलु भवन्ति । तस्य पुण्यस्य जीवतो वा तोलितस्य  
मृतस्य वा तोलितस्य भवेत् किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघुत्वं वा तथा  
खलु अहं श्रद्धया तवेव, यस्मात् खलु भवत् । तस्य पुण्यस्य जीवतो वा

। ठसे मैने जीवित ही। तोला (तुलेषा छविच्छेप अकुन्वमाणे जीवियामो  
वपरोवेमि, मय तुलेमि) तोल कर फिर मैंने उसे भग, भग किये बिना  
जीवन से रहित कर दिया और फिर मरे हुए उसे तोला (नो चैन नं  
तस्स पुरिसस्स जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स केइ नाणत्ते  
वा उम्मत्तत्ते वा तुच्छत्ते वा गुरुत्तत्ते वा लघुत्तत्ते वा) तब जीविततुछे हुए  
उसमें और मरे तुछे हुए उसमें कुछ किसी भी तरह की न्यूनाधिकता  
नहीं दिखाई दी न उस में भार बड़ा न बद उसका भार कम हुआ न उसमें गुरुता  
आई न उसमें लघुता आई (नइ न भवेत् तस्स पुरिसस्स जीवतस्स वा तुलियस्स  
मयस्स वा तुलियस्स वा होज्जा केइ नाणत्ते वा जाव लघुत्तत्ते वा) हे भवन्त !  
जीविततुछे हुए और मरे तुछे हुए उस पुरुष में यदि कोई न्यूनाधिकता  
हो जाती यावत् लघुता हो जाती (तो न अहं श्रद्धया त वेव) तो मैं श्रद्धा कर लेता  
कि जीव भव है और शरीर अन्य देवद जीव शरीर नहीं है वह शरीर जीव नहीं है

जीवितया चैव तुलेमि) मे अनित्यवस्थाभां न तेदं वचनं क्खु (तुलेषा छविच्छेप  
अकुन्वमाणे जीवियामो वपरोवेमि, मय तुलेमि) तोलीने भूमी 'मे' तेने  
अज सज क्खं वचनं न एवम श्रुति जनायी दीया अने भवो भूमी  
हरी तेदं मे वचनं क्खं (नो चैव न तस्स पुरिसस्स जीवतस्स वा तुलि  
यस्स मयस्स वा तुलियस्स केइ नाणत्ते वा उम्मत्तत्ते वा तुच्छत्ते वा  
गुरुत्ते वा लघुत्ते वा) त्थरे एवतां वचनं क्खमेत्ता तेमां अने भूत्तु चम्मा  
भूमी वचनं क्खमेत्ता तेमां अने ठाई पणु जतणी न्यूनाधिकता लायी नहीं, तेमां काए  
वधाए पणु वधो नहीं अने तेमांणी काए ज्वां पणु वधो नहीं  
तेमां श्रुता आवी नहीं तेमां तेमां लघुता 'पणु' आनी 'नहीं'  
(नइ नं भवेत् ! तस्स पुरिसस्य जीवतस्य वा तुलियस्य मयस्य वा तुलियस्य  
वा होज्जा केइ नाणत्ते वा जाव लघुत्तत्ते वा) हे भवन्त ! एवीतावस्थाभां  
कहेत्ता वचनभां अने भूतावस्थानां कहेत्ता ते स्थावरा वचनभां नो ठाई, पणु जतणी  
न्यूनाधिकता यत् जत नावत् लघुता यत् जत, (तो न अहं श्रद्धया त वेव)

તોલિનસ્ય મૃતસ્ય વા તાલિતસ્ય નાસિ કિલ્લિવત્ નાનાત્વ વા યાવત્ લઘુ  
કત્વં વા । તસ્માત્ સુપ્રતિષ્ઠિતા મે પ્રતિજ્ઞા યથા-તજ્જીવઃ તદેવ ॥મૂ૦ ૧૪૩॥

ટીકા-‘તદ્દેશં સં પદસી’ इत्यादि ततः तदनन्तरं ग्वलु स प्रदेशी राजा केशि  
कुमारश्रमणम्, एवमवादीत हे भदन्त! अस्ति ग्वलु यावत् यावत्पदेन ‘एषा प्रज्ञा-  
तउपमा अनेन पुनः वक्ष्यमाणेन कारणेन’ इत्येषां पदानां संग्रहः एतद्वि-वरणं पूर्व  
तर (१४०) चत्वारिंशदधिकैशशततममुत्रे कृतम्, नो उपाग  
च्छति-जीवशरीरयोः परस्परं भेदो मे-मम मनसि न संगच्छते । तदे

जम्हा णं भते । तस्स पुरिसस्स जीवंतरस वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स  
नत्थि केड नन्नत्थे वा जाव लहुयचो वा, तम्हा सुपइड्डिया मे पडण्णा जम्हा-  
तं जीवो तं चेव) जिस कारण हे भदन्त ! जीते हुए तोले गये-उस  
पुरुष में और मरे हुए तोले गये उसी पुरुष में जब कोई भिन्नता—  
न्यूनताधिकता यावत् लघुता मैं नहीं देखता हूं-उस कारण से मेरा यह  
मन्तव्य कि वही पूर्वोक्त जीव है और वही जारी है, न अन्य जीव है,  
और न अन्य शरीर है सुस्थिर है ।

टीकार्थ—केशीकुमारश्रमण का जीव शरीर भिन्नता-विषयक कथन  
सुनकर प्रदेशी राजाने उनसे इस प्रकार कहा-हे भदन्त !-आपने जो यह  
उपमा जीव शरीर की भिन्नता प्रकट करने के लिये प्रकट की है-वह  
केवल उपमा मात्र है-बुद्धिजन्य होने से वास्तविक नहीं है. अतः जो बात

તો હું આ વાત પર શ્રદ્ધા કરી શકત કે જીવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે તે જીવ શરીર  
નથી અને શરીર જીવ નથી. (જમ્હા ણં ભતે ! તસ્સ પુરિસસ્સ જીવ-  
તસ્સ વા તુલિયસ્સ મયસ્સ વા તુલિયસ્સ નત્થિ કેડ નન્નત્થે વા જાવ  
લહુયચો વા, તમ્હા સુપઇડ્ડિયા મે પડણ્ણા જમ્હા, તં જીવો તં ચેવ) એથી છે  
સદ્ધત ! જીવીતાવસ્થામાં વળને કરાયેલ તે પુરુષમાં અને મૃતાવસ્થામાં વળને કરાયેલ  
તેજ પુરુષમાં બંન્ધારે કોઈ પણ બદલાની ભિન્નતા-ચ્છેનતાધિકતા યાવત્ લઘુતા મારા  
ધ્યાનમાં આવતી નથી તેથી મારી એવી માન્યતા છે કે જે જીવ છે તેજ શરીર છે  
જીવ અન્ય નથી તેમજ શરીર પણ અન્ય નથી.

ટીકાર્થ—કેશી કુમારશ્રમણુ જીવ શરીર ભિન્નતા સંબંધી કથન સાંભળીને  
પ્રદેશી-રાજાએ તેમને આ પ્રમાણે કહ્યું કે હું જાણતું નથી કે જીવ અને શરીરની  
ભિન્નતા સ્પષ્ટ કરવા માટે જે ઉપમા આપી છે, તે માત્ર ઉપમા જ છે. તે બુદ્ધિ-

बाइडह-एव स्वच्छ है भद्रत ! यावत्-यावत्पदेन वाष्पायामुपरधानशाला  
 यामनेकगणनायक-दण्डनायक-राजेश्वर-तलवर-माहन्विक-चौदुम्बिकम्प  
 भेष्टि-सेनापति-सार्धबाह-मन्त्रि-महामन्त्रि गणक-दौवारिकामात्य-वेद  
 पीठमर्दनगरनिगमदूतसन्धिपालैः सार्ध सपरिवृतः" इत्येतां पदानां सङ्गो  
 बोध्यः, एषां व्याख्या पदविंशदधिकप्रत्ययमवशेषे गता । विररामि-निष्ठादि

मैं कह रहा हूँ उससे इन दोनों की अभिन्नता ही प्रकट होती है, या  
 बात इस प्रकार मे है-मैं एक दिन गणनायक आदिकों के साथ अपनी  
 यात्रा उपस्थान शाला में बैठे हुआ था नगर रसक एक चोर को पकड़  
 कर मेरे समक्ष लाये-मैंने उसे पछिछे हो नीरितावस्था में तोला, बाद में  
 उसे मार कर तोला तोलने पर उसके मार में कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं  
 आई अतः इससे मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उस चोर का वही  
 नीर है और वही शरीर है न नीर अथ है आरत शरीर अथ है यहाँ  
 'आव नो उवागच्छह' में जो यावत्पद आया है उससे 'एषा प्रज्ञात उपमा,  
 अनेन पुनः वक्ष्यमाणकारणेन' इस पाठका समग्र हुआ है। इनका विवरण  
 १३८वें सूत्र में किया जा चुका है। 'माव विररामि' में आये हुए यावत्पद  
 से 'वाष्पायामुपरधानशालायां अनेक गणनायक-दण्डनायक, राजेश्वर, तलवर  
 माहन्विकेभ्य-भेष्टि-सेनापति-सार्धबाह-मन्त्रि-महामन्त्रि गणक-दौवारिका  
 मात्य-वेद-पीठमर्दनगर निगम-दूतसन्धिपालैः सार्ध सपरिवृतः' इस पाठका

अन्व होताभी अवास्तविक है जो नीर के वात हूँ कहूँ छू लेती जेजो जन्मेनी  
 अभिन्नता है अतः यावत् है जो वात आ प्रभावे छू हूँ जेके विषय। अणुनायक  
 वजेश्वरी आये भारी व्याख्या उपस्थानशालायां बैठे 'कतो त्वां नजशक्षोः जेके शरीर  
 पकड़ने भारी आये व्याख्या में पकड़ता तो एवतां न वचन कहूँ 'त्यार-प्यनी  
 तेने भासने पछी तो वचन कहूँ तो तेना वचनमां हाँ पक्ष आतनी नक्ष-  
 भिक्षा वक्ष्यतां नहि जेधी हूँ आ निष्कर्ष पर आये छू है ते आरत एव छे  
 शरीर छे अनेशरीर छे तो एव छे एव अन्व नहीं अने शरीर अन्व नहीं जहाँ  
 'माव नो उवागच्छह' मां के यावत् पद आये छे तेधी (एषा प्रज्ञात उपमा,  
 अनेन पुनः वक्ष्यमाणकारणेन' आ पाठो स अह अयो छे आतु स्पष्टीकरण  
 १३८ भा सूत्र व्याख्या आये छे। (वाष्पायामुपरधानशालायां अनेकगण  
 नायक-दण्डनायक, राजेश्वर, तलवर माहन्विक, चौदुम्बिकम्प, भेष्टि-  
 सेनापति-सार्धबाह-मन्त्रि-महामन्त्रि गणक-दौवारिकामात्य-वेद पीठ मर्द

તતઃ-તદા खलु मम नगरगुप्तिकाः-नगररक्षकाः ससाक्ष्यं-साक्षियुक्तं यथा  
 तथा यावत्-सहोदादिविशेषणविशिष्टं चौरमुपपद्यन्ति-मत्समीपे समानः  
 यन्ति, ततः खलु अहं तं चौरं पुरुषं जीवितकमेव तोलयामि, तोलयित्वा  
 छविच्छेदम्-अङ्गादिभङ्गम् अकुर्वाणः अकुर्वन्नेव जीविताद् व्यपरोपयामि-  
 मारयामि, मारयित्वा पुनस्त मृतं तोलयामि, नैव च खलु तस्य मारित  
 चोरपुरुषस्य जीवतः-मृतः तोलितस्य वा-अथवा मृतस्य च तोलितस्य किञ्चित्-  
 किमपि नानात्वं-न्यूनाधिकत्वं पश्यामि, नानात्वस्य रूपं दर्शयति-उन्मात्रत्वं-  
 भारोधिक्यं, वा-अथवा, तुच्छत्वं-भाराल्पत्वं वा गुरुकत्वं-गुरुता वा, लघु  
 कत्वं-लघुता वा, यदि खलु हे भदंत ! तस्य पुरुषस्य जीवतो वा तोलितस्य  
 मृतस्य वा तोलितस्य किञ्चित् नानात्वं यावत् लघुकत्वं वा भवेत्, तदा  
 खलु अहं श्रद्धया तदेव-अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, नो तज्जीवः स शरीरम्  
 इति । हे भदन्त ! यस्मात् कारणात् खलु तस्य पुरुषस्य जीवतो वा  
 तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चिद् नानात्वं लघुकत्वं  
 वा, तस्मात् मे सुप्रतिष्ठिता-सुस्थिरा प्रतिज्ञा यथा तज्जीवः, तदेव-पूर्वे-  
 कमेव-तज्जीवः स शरीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, इति ॥सू० १४३॥

મૂલમ્--તए णं केसीकुमारसमणे पएस्सिं रायं एवं वयासी-  
 अत्थि णं पएसी ! तुमे कयाइ वत्थी धंतपुव्वे वा धमावियपुव्वे वा ?  
 हंतो अत्थि । अत्थि णं पएसी ! तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा  
 तुलियस्स अपुण्णस्स वा तुलियस्स केइ नाणत्ते वा जाव लघुयत्ते वा  
 णोइणट्ठे समट्ठे एवामेव पएसी ! जीयस्स अगुरुलहुयत्तं पडुच्च जीवं  
 तस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि કેइ નાળત્તે વા જાવ  
 લહુયત્તે વા, તં સદ્દહાહિ ણં તુમ પએસી ! તં ચેવ ७ ॥ સૂ૦ ૧૪૪ ॥

સંગ્રહ हुआ है इन पदों की व्याख्या १३५वे सूत्रमें की जा चुकी है। 'जाव चोरं उवणेति' मैं ससाक्षी सहोदादि विशेषणोंका यावत् पदसे ग्रहण हुआ है ॥सू. १४३॥

-नगर-निगम दूतसंधिपालैः सार्धं संपरिवृत्तः" आ पाठनो सग्रह थये छे.  
 आ पढेनी व्याख्या १३५ भा सूत्रभा उक्ताभा आवी छे 'जाव चोरं उवणेति'  
 भा ससाक्षी-सहोदादि विशेषणोक्त यावत् पदथी ग्रहण थयुं छे ॥सू० १४३॥

॥ છાયા—તત સ્વલ્પ કક્ષીકુમારશ્રમણા પ્રદર્શન રાજાનમયમંદાદીત્  
અસ્તિ સ્વલ્પ પ્રદેશિન્ । તથ કદાચિદ્ યસ્મિન્ ધ્માતપૂર્વે ધ્માવિતપૂર્વો વા !  
હત અસ્તિ । અસ્તિ સ્વલ્પ પ્રદેશિન્ । તસ્મ યસ્મેઃ પૂર્વસ્ય વા તાલિતમ્  
અપૂર્વસ્ય વા તોલિતસ્ય વિશિષ્ઠ નાનાસ્ય વા યાવત્, સપ્તકરવ વા ! ।  
નાયમર્થઃ સમર્થઃ । એવમેવ પ્રદેશિન્ જીવસ્યાશુચ્છધુકરસ્ય પ્રતીત્ય, ખીચતો

‘તથ ણ સં કેસીકુમારસમણે’ રૂપાદિ ।

૭ રૂપાર્થ—‘તથ ણ સં કેસીકુમારસમણે પપસિ રાયં ગર્ભે (વચામી)’  
‘સકે’ પાદ ઉત્ત કિચીકુમારશ્રમણને પ્રવંચી રાજા સં રૂપ પ્રકાર કહા—  
(અર્થિ જ પપસી ! તુમે કયાઈ વત્તી ચતપુરુવે વા ધમાવિયપુરુવે વા !)  
હે પ્રદેશિન્ ! તુમને જમ્મી મન્નિકા કો વાયુ સે પુરિત કી હે ? ગા કિચી  
સો કરવાઈ હે ? (હતા અર્થિ) તથ પ્રદેશિને કહા—હા, અવન્ત ! કી હે ચીર  
કાઠે હે ? (અર્થિ ણ પપસી ! તસ્મ યત્થિસ્સ પુણ્ણસ્સ વા તુમિયસ્સ અપુ  
ણ્ણસ્સ વા તુલિયસ્સ કેહ નાખને વા જાવ ત્થુયસે વા) પુનઃ કેસીકુમાર  
શ્રમણને ઉત્તસે કહા—હે પ્રદેશિન્ ! જય તુમને ઉત્ત મન્નિકા કો વાયુ સે  
પુરિત કરકે તોવા તથ, ઔદયાયુ સે અરિતારસ્યા મેં તોલા તથ ઉત્તમેં તુમે  
કુલ પુનાપિકતા પાવત્ સપ્પતા, રુટ્ઠિગત હૈ ? પ્રવંચીને કહા—(જો રૂપ  
સમજે) હે મદત ! યદ્ અર્થ સમર્થ નહીં હે—અર્થાત્ ઉત્તમેં પુનાપિકતા પાવત્  
સપ્પતા કુલ મી રુટ્ઠિગત નહીં હૈ હે (વચામય પપસી જીવસ્સ અશુચ્છધુ

‘તથ ણ કેસીકુમારસમણે’ રૂપાદિ ।

૮ રૂપાર્થ—(તથ ણ કેસીકુમારસમણે, પપસિ રાયં ગર્ભે વચામી) ત્થાર  
પપ્પી સે કેસીકુમારશ્રમણે પ્રવંચી રોબ્બને આ પ્રમાણે કહ્યું—(અર્થિ જ પપસી !  
તુમે કયાઈ વત્તી ચતપુરુવે વા ધમાવિયપુરુવે વા !) હે પ્રદેશિન્ ! તમે કેઈ  
પપ્પ દિવસે મન્નિકા (ધમાજી) માં હવા બરી છે કે કેઈની ખસેથી રૂપાવવી છે ?  
(હતા અર્થિ) ત્થાર પ્રદેશી રોબ્બને કહ્યું, જા બદત ! હવા બરી છે અને બરાબ  
બધી છે, (અર્થિ ણ પપસી ! તસ્મ યત્થિસ્સ પુણ્ણસ્સ વા તુમિયસ્સ અપુણ્ણસ્સ  
વા તુમિયસ્સ કેહ નાખનો વા જાવ ત્થુયસી વા) ફરી કેસીકુમારશ્રમણે તેને  
કહ્યું—હે પ્રદેશિન્ ! ત્થારે તમે તે ધમાજીનું હવા બરીને વજન કય અને પપ્પી હવા  
બહાર કાઢીને તેનું વજન કય ત્થારે તમને માં કેઈક મૂનાપિકતા પાવત્ ત્થુવા  
અપ્પાઈ ? પ્રદેશીએ કહ્યું (જો રૂપ હે સમજે) હે બદત ! આ અર્થ સમર્થ નહીં  
બેઠે હે મૂનાપિકતા પાવત્ સપ્પતા કય પપ્પ કજાઈ નહિ (વચામય પપસી)

वा तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघुकत्वं वा, तत्र श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिनः । तदेव ७ । सू० १४४॥

टीका—“तए णं केसी कुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशीकुमार-  
श्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवमवादीत्—हे प्रदेशिन ! तत्र कदाचित्—अस्मि-  
न्स्थितकाले चमित्रः—दृतिः—चर्मपुटहाभन्निहो ध्मातूः—पूर्वः ध्मातुः—वायुभिः  
पूरितः, वा—अथवा ध्मापितपूर्वः पर्ववेनापि ध्मापितः—वायुभिः पूर्णः कारितः  
इति केशिप्रश्नः, तत्र प्रदेशी प्राह—इत्त ! अस्ति । पुनः केशी पृच्छति  
हे प्रदेशिन ! तस्य वस्तेः पूर्णस्य वायुभृतस्य तोलितस्य, वा—अथवा अपू-  
र्णस्य—वायुभिरपूरितस्य वा तोलितस्य मतः किञ्चित् किमपि नानात्वं वा यावत् लघु-  
कत्वं वा अस्ति ? इति केशिप्रश्नः प्रदेशी प्राह—नायमर्थः समर्थः—  
नानात्वसद्भावरूपोऽर्थो न विद्यते । वेशी कथयति—एवमेव हे प्रदेशिन !  
जीवस्य अगुरुलघुत्व—गुरुत्वलघुत्वग्रहितत्व प्रतीत्य—आश्रित्य जीवतो वा  
तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघु-  
कत्वं वा, तत् तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन ! त्वं श्रद्धेहि मद्ब्रवणे श्रद्धां कुरु,  
तदेव—यथा—नो तज्जीवः स शरीरम्, अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति, । सू. १४४।

यत्तं पडुच्च जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नाणंते  
वा जाव लहुयत्ते वा, तं मदहाहि णं तुमं पएसी तं चेव ७) तो इमी प्रकार  
से हे प्रदेशिन ! जीव के अगुरुलघुत्व रहितपने को प्रतीत करके जीवित  
अवस्था में तोले गये वाद में मृत अवस्था में तोले गये उस चोर के  
शरीर में कुछ भी नानात्व अथवा लघुत्व नहीं है । इस कारण हे प्रदेशिन !  
तुम मेरे वचन में श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है ।

टीकार्थ इसका स्पष्ट है ॥ सू० १४४ ॥

जीवस्स अगुरुलघुयत्त पडुच्च जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स  
नत्थि केइ नाणंते वा जाव लहुयत्ते वा, तं मदहाहि णं तुमं पएसी तं  
चेव ७) तो आ प्रमाणे हे प्रदेशिन ! एवमो अगुरुलघुत्व शुद्धेन—शुद्धलघुत्व  
रहितावस्थाने सामे राणीने एवितावस्थामा कस्येवा ते चोरना वज्जनामा अने मृता-  
वस्थामा कस्येवा ते चोरना वज्जनामा केअ पणु ज्ञातुं नानात्व हे लघुत्व नथी.  
अथी हे प्रदेशिन ! तमे मारी आ वात पर विधासु करी हो हे एव अन्य छ  
अने शरीर अन्य छ. आ सूत्रेनो टीकार्थ स्पष्ट अ छ. ॥१४४॥





वा तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघुत्वं वा, तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिनः । तदेव ७ । सू० १४४॥

टीका—“तए णं केसी कुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशीकुमार-  
श्रमणः प्रदेशिनं राजानम् पञ्चमवादीत्—हे प्रदेशिन ! तव कदाचित्—अग्नि-  
धित्काले चम्पिः—इतिः—चर्म मुद्रा मञ्जिहा धमात्तुः—पूर्व धमात्तुः—वायुभिः  
पूरितः, वा—अथवा धमापितपूर्व पर्ववेनापि धमापितः—वायुभिः पूर्णः कारितः  
इति वेशिप्रश्नः, तत्र प्रदेशी प्राह—इत्त । अस्ति । पुनः केशी पृच्छति  
हे प्रदेशिन ! तस्य वस्तेः पूर्णस्य वायुभृतस्य तोलितस्य, वा—अथवा अपू-  
र्णस्य—वायुभिरपूरितस्य वा तोलितस्य मृतः किञ्चित् किमपि नानात्वं वा यावत् लघु-  
त्वं वा अस्ति ? इति कशिप्रश्नः प्रदेशी प्राह—नायमर्थः समर्थः—  
नानात्वसद्भावरूपोऽर्थो न विद्यते । वेशी कथयति—एवमेव हे प्रदेशिन !  
जीवस्य अगुरुलघुत्व—गुरुत्वलघुत्वगहितत्वं प्रतीत्य—आश्रित्य जीवतो वा  
तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघु-  
त्वं वा, तत् तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन ! त्वं श्रद्धेहि मद्बचने श्रद्धा कुरु,  
तदेव—यथा—नो तज्जीवः स शरीरम्, अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति, । सू. १४४॥

यत्तं पटुच्च जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नाणत्ते  
वा जाव लहुयत्ते वा, तं सदहाहि णं तुमं पपसी तं चेव ७) तो इसी प्रकार  
से हे प्रदेशिन ! जीव के अगुरुलघुत्व रहितपने को प्रतीत करके जीवित  
अवस्था में तोले गये वाद में मृत अवस्था में तोले गये उस चोर के  
शरीर में कुछ भी नानात्व अथवा लघुत्व नहीं है । इस कारण हे प्रदेशिन !  
तुम मेरे वचन में श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है ।

टीकार्थ इसका स्पष्ट है ॥ सू० १४४ ॥

जीवस्स अगुरुलघुयत्तं पटुच्च जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स  
नत्थि केइ नाणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा, तं सदहाहि णं तुमं पपसी तं  
चेव ७) तो आ प्रभावे हे प्रदेशिन ! एवमो अशुद्धलघुत्व शुणेन—शुद्धलघुत्व  
रहितत्वस्थाने साधे शण्डीने एवितावस्थाभा करायेता ते चोरना पञ्चनभां अने भूता-  
वस्थाभां करायेता ते चोरना पञ्चनभां कोष्ठ पणु ज्ञातुं नानात्व हे लघुत्व नथी  
कोथी हे प्रदेशिन ! तसे भारी आ वात पर विश्वास करी दो हे एव अन्य छे  
अने शरीर अन्य छे आ सुत्रेनो टीकार्थ स्पष्ट छे ॥ १४४॥

मू५५—तए ण पणसा राया केसिं कुमारसमण गय पयासी  
 —अस्थि णं भते। गसा जाय नो उयागच्छइ, एय म्यल्ल भते। अहं  
 अन्नया जाय घोर उघणेति, तण्णं अहं स पुरिस सयओ सन्ता  
 समभिलोणमि, नो चेय णं तरथ जीय पासामि, तण्णं अहं स पुरिसं  
 बुहा फालिय फरेमि करिंता सव्यओ समंता समभिलोणमि, नो  
 चेय णं तरथ जीयं पासामि, गयं तिहा चउहा संखेज्झहा फालिय  
 फरेमि, नो चेय णं तरथ जीय पासामि, जइ णं भते। अहं तमि  
 पुरिसंसि बुहाया तिहा या चउहा या संखेज्झहा या फालियसि जीय  
 पामेज्जा, तो णं अहं सएहेज्जा तं चेय, जम्हा णं भते। अहं तसि  
 बुहा या तिहा या चउहा या संखिज्झहा या फालियसि जीयं न पासामि  
 तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा, जहा त जीओत सरोर त चेय। (सू. १४/५)

गाथा—तदा राजा प्रदेही राजा जडिनि कुमारभगवन्नेयमवादीद-  
 भगिन् तालु मद्गत्। एया गायद् नो उयागच्छति एवं लालु भद्गत्।

‘तए णं पयसी राया’ इत्यादि।

प्रमाण—(तए णं पयसी राया केसिं कुमारसमण एव पयासी) इसके  
 बाद प्रदेही राजा के ही कुमारभगवन्नेयमवादीद—(अस्थि णं भते। एता  
 जाय नो उयागच्छइ) हे मद्गत्। यह उपमा बुद्धिजन्य होने से वारतविक्र नहीं  
 है इस लक्ष्यमान कारण से सुझे जीव और शरीर का मोक्ष प्रतीत नहीं  
 होता है यह लक्ष्यमान कारण (एवं भते।) हे मद्गत्। इस प्रकार से है

‘तएव पयसी राया’ इत्यादि।

प्रमाण—(तए णं पयसी राया केसिं कुमारसमण एव पयासी)  
 तदा राजा प्रदेही राजा के ही कुमारभगवन्नेयमवादीद—(अस्थि णं भते।  
 एता जाय नो उयागच्छइ) हे मद्गत्। आ उपमा बुद्धि भरीन देवता की बात  
 विक्र नहीं। आ निम्न कारणों की भावात्मिका लक्ष्य होने से शरीर की निम्न की बात  
 अभिप्रेत नहीं (एवं भते) हे मद्गत्। तो आ प्रमाण है (अहं अग्नया जाय

अहमन्यदा यावत् चोरमुपनयन्ति, ततः खलु अहं तं पुरुषं मर्वतः समन्तात् समभिलोके नैव खलु तत्र जीवं पश्यामि, ततः खलु अहं तं पुरुषं द्विधा स्फाटितं करोमि, कृन्वा सर्वतः समन्तात् समभिलोके, न चैव खलु तत्र जीवं पश्यामि, एवं त्रिधा चतुर्धा संख्येयधा स्फाटितं करोमि न चैव तत्र जीवं पश्यामि, यदि खलु भदन्त ! अहं तस्मिन् पुरुषे द्विधा वा त्रिधा वा चतुर्धा वा

(अहं अन्नया जाव चोर उवणेति) मैं एक दिन १३५वें सूत्र में कथित अनेक गणनायक आदिकों के साथ उपस्थानशाला में बैठा हुआ था वहाँ पर मेरे नगर रक्षक मुमकिया वन्धन से बांधकर एक चोर को लाया (तएणं अहं तं पुरिसं सव्वओ समंता समभिलोएमि) मैंने उस पुरुष को मस्तक से लेकर चरणपर्यन्त अच्छी तरह से देखा (नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि) परन्तु मुझे वहाँ पर जीव देखने में नहीं आया (तएणं अहं तं पुरिसं दुहा फालियं करेमि) इसके बाद मैंने उस चोर के दो टुकड़े कर दिये. (करित्ता सव्वओ समंता समभिलोएमि) दो टुकड़े करने के बाद फिर मैंने उसका अच्छी तरह से सब ओर से निरीक्षण किया (नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि) परन्तु फिर भी वहाँ पर मुझे जीव देखने में नहीं आया (एवं तिहा, चउहा, संखेज्जहा फालियं करेमि—नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि) तदनन्तर मैंने उसके तीन टुकड़े किये, चार टुकड़े किये, यावत् संख्यात (सैंकडे) टुकड़े किये परन्तु फिर भी वहाँ मुझे जीव नहीं दिखा (जहं णं भंते ! अहं तंसि पुरिसंसि दुहा वा तिहा वा चउहा

चोरं उवणेति) हुं ओक द्विसे १३५ भा सूत्रभा कथित धण्डा गण नायकोवगेरे- नी साथे भाइय उपस्थान शाला में बैठा हुआ था। तब मेरा नगररक्षक ओक चोरने भुशुंटाट भाधिने भारी साथे लाव्या. (तएणं अहं तं पुरिसं सव्वओ समंता समभिलोएमि) मैंने पुरुषने भरतकथी भांडीने पण सधी सारी रीते जेथो. (नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि) पणु भने तेभां एव देभायो नडीं. (तएणं अहं तं पुरिसं दुहा फालियं करेमि) त्थार पछी मैंने चोर पुरुषना जे ककडा करी नाय्या. (करित्ता सव्वओ समंता समभिलोएमि) जे ककडाओ करीने पछी मैंने तहुं सारी रीते निरीक्षण कयुं. (नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि) पणु भने त्यां एव देभायो नडीं. (एवं तिहा, चउहा, संखेज्जहा फालियं करेमि—नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि) त्थार पछी मैंने तेना पणु ककडा कया, चार ककडा कया यावत् सख्यात (सैंकडे) ककडा कया पणु छता ओ त्यां भने एव देभायो नडीं.

सूच्य—तए ण पपसा राया केसि कुमारसमण एव वयासी  
 -अत्थि णं भत्ते। एसा जाव नो उवागच्छइ, एव खलु भत्ते। अहं  
 अन्नया जाव चोर उवणेत्ति, तएणं अहं त पुरिस सव्वओ समता  
 समभिलोएमि, नो चेव णं तरथ जीव पासामि, तएणं अइ त पुरिस  
 दुहा फालिय करेमि करित्तो सव्वओ समता समभिलोएमि, नो  
 चेव णं तरथ जीव पासामि, एव तिहा चउहा सखेज्जहा फालिय  
 करेमि, नो चेव णं तरथ जीव पासामि, जइ णं भत्ते। अहं तत्ति  
 पुरिसंसि दुहावा तिहा वा चउहा वा सखेज्जहा वा फालियत्ति जीव  
 पामेज्जा, तो गे अहं सखेज्जहा त चेव, जम्हा णं भत्ते। अहं तत्ति  
 दुहा वा तिहा वा चउहा वा सखेज्जहा वा फालियत्ति जीव न पासामि  
 तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा, जहा-त जीवो त सरोर त चेव। सू. १४५।

छाया—तठः खलु प्रदेही राजा कञ्चिन् कुमारसमणवेवमवादीत्-  
 अस्ति खलु मदन्त। एषा यावद् नो उवागच्छति एवं खलु मदन्त।

‘तए णं पपसी राया’ इत्यादि।

सूच्य—(तए ण पपसी राया केसि कुमारसमण एव वयासी) इसके  
 बाद प्रदेही राजाने केसीकुमारसमण से ऐसा कहा—(अत्थि णं भत्ते। एसा  
 जाव नो उवागच्छइ) हे मदन्त। यह उपमा बुद्धिमान होने से वास्तविक नहीं  
 है इस व्यपमान कारण से मुझे जीव और शरीर का सेव्य मतोत्त नहीं  
 होता है वह व्यपमान कारण (एव भत्ते।) हे मदन्त। इस प्रकार से है

तएण पपसी राया’ इत्यादि।

सूच्य—(तए ण पपसी राया केसि कुमारसमण एव वयासी)  
 तथैव तठी प्रदेही राजाने केसीकुमारसमणसे अथवा अथवा (अत्थि णं भत्ते।  
 एसा जाव नो उवागच्छइ) हे मदन्त। यह उपमा बुद्धिमान होने से वास्तविक नहीं  
 है इस व्यपमान कारण से मुझे जीव और शरीर का सेव्य मतोत्त नहीं  
 होता है वह व्यपमान कारण (एव भत्ते।) हे मदन्त। इस प्रकार से है

કિન્તુ તથા જીવ નૈવ સ્વલુ પશ્યામિ-અનેન પ્રકારેણ ત્રિધા-ત્રયસ્વલુ સ્ફાટિતં, ચતુર્ધા-ચતુઃસ્વલુ સ્ફાટિતં સંખ્યેયધા-સંખ્યાતત્ત્વઃ સ્ફાટિતં કરોમિ, કિન્તુ તંત્ર તસ્મિન્ દ્વિત્રચતુઃસંખ્યેયધા સ્ફાટિતે ચોરે જીવ નૈવ પશ્યામિ, હે ભદન્ત! યદિ સ્વલુ અહં તસ્મિન્-ચોરપુરુષે દ્વિધા વા ત્રિધા વા ચતુર્ધા વા સંખ્યેયધા વા સ્ફાટિતે જીવં પશ્યેયં તદા-જીવદર્શને સ્વલુ અહં શ્રદ્ધ્યાં ભવતોક્તે વિશ્વ-સ્યામ્ તદેવ-નો તજ્જીવઃ સ શરીરમ્ અન્યો જીવોઽન્યચ્છરીરમ્. હિતિ, યસ્માત્ સ્વલુ હે ભદન્ત! અહં તસ્મિન્ ચોરે દ્વિધા વા ત્રિધા વા ચતુર્ધા વા સંખ્યે-યધા વા સ્ફાટિતે જીવં ન પશ્યામિ, તસ્માત્-જીવાદર્શનકારણાત્ મે-મમ પ્રતિજ્ઞા-સીકારઃ, સુપ્રતિષ્ઠિતા-સુસ્થિરા યથા--તજ્જીવઃ સ શરીરં તદેવ--નો અન્યો જીવોઽન્યચ્છરીરમિતિ । ॥ સૂ૦ ૧૪૫ ॥

મૂઠ્ઠ-તણ પાં કેસિકુમારસમણે પણસિ રોયં એવં વયાસી-મૂઠ્ઠતણ પાં તુમં પણસી તાંઓ કટ્ટહારાઓ, કે પાં મંતે કટ્ટહારણ ? પણસી! સે જહાણામણ કેહપુરિસો વળત્થી વળોવજીવી વળગવેસણયાણ જોઈં ચ જોઈમાયણં ચ ગહાય કટ્ટાણં અડવિં અણુપવિટ્ટા, તણ પાં તે પુરિસા તીસે અગામિયાણ અડવીણ-કિંચિદેસં અણુપત્તા સમાણા એગં પુરિસં એવં વયાસી-અમ્હે પાં દેવાણુપ્પિયા! કટ્ટાણં અડવિં પવિસામો, એત્તો પાં તુમં જોઈમાયણાઓ જોઈં ગહાય અમ્હ અસણં સાહેજ્ઞાસિ, અહ તં જોઈમાયણે જોઈં વિજ્ઞવેજ્ઞા એત્તો પાં તુમં કટ્ટાઓ જોઈ ગહાય

ઉસંકે દો તોન ચાર અગા સંખ્યાત ટુકડે કર દેને પર મી જીવ નહીં દેલા ઉમ કારણ સે મેરા મન્તવ્ય કિ જીવ શરીરરૂપ હૈ ઓર શરીર જીવરૂપ હૈ. જીવ મિન્ન નહીં હૈ, શરીર મિન્ન નહીં હૈ સુસ્થિર હૈ. ।

ટીકાર્થ સ્પષ્ટ હૈ ॥ સૂ૦ ૧૪૫ ॥

તેના બે ત્રણ ચાર અથવા સંખ્યાત ટુકડાઓ ક્યાં પછી પછી એવ બેયો નહિ તે તે કારણથી મારી એવ શરીરરૂપ છે અને શરીર એવરૂપ છે, એવ બિન્ન નથી અને શરીર બિન્ન નથી એવી માન્યતા સુસ્થિર છે.

ટીકાર્થ સ્પષ્ટ જાય છે. ॥ સૂ૦ ૧૪૫ ॥

સંવ્યવધા યા સ્ફાટિતે જીવ પડયેયં, તદા સ્વલુ અહ મરણી તદેવ,  
યસ્માત્ સ્વલુ।મદ્ન। અહ તસ્મિન્ દ્વિત્વા યા ત્રિત્વા યા ચતુર્થી યા સંસ્પે  
મયા યા સ્ફાટિતે જીવ ન પડયામિ, તસ્માત્ સુપ્રતિષ્ઠિતા મે પ્રતિજ્ઞા યથા-  
શ્રીયઃ સ શરીરં તદેવ। ॥૫૦ ૧૪૫॥

ટીકા—‘તેષાં ણં પપસી રાયા’ इत्यादि-ततः तल्लु प्रवेणी रामा कश्चिन्  
कुमारश्चमगद्य, एवमशास्त्री-हे मदन्त। अस्ति स्वेच्छ यथा इयम् यावत्-पा-  
स्वदेन-‘प्रदात उपमा, अनेन पुन कारणेन’ इत्येषां पदानां संग्रहः, प्रज्ञाः-  
बुद्धिबिज्ञेयाद् उपमाऽस्ति किन्तु अनेन वक्ष्यमाणेन कारणेन मयदुक्तो  
जीवस्यारम्भो नो तथागच्छति, -न संगच्छते। तत्कारणं दर्शयितुमुप-  
मते-एव तल्लु हे मदन्त। एव-वक्ष्यमाणरीत्या अहम् अग्रदा-मन्यमिन्  
काये यावत्-पास्वदेन-वाङ्मायावुपस्थानतात्पादां पदविशदार्थिकैकज्ञानस्य  
सूचकानेकगवनापकादिपदादारभ्य ‘अवकोटकप-पनपद’ इति पर्यन्त-  
‘पाठोक्तबिज्ञेयमविज्ञिष्ट’ चोगमुपनयति, ततः तल्लु अह त पुरुष सर्वदा-  
ओपादमस्तक, समन्तात् साङ्गोपाङ्ग सममिच्छोके सञ्चय आनिमिष्येन पश्य-  
मि किन्तु तव-तस्मिन्-स्योरे जीव नैव पश्यामि, ततः तल्लु अह त-चोर  
द्विधा-द्विस्तग्न स्फाटित-त्रेदारित कतेमि कृष्ण सर्वेन सम-तात् सममिच्छोके,

યા સલેઝાદા યા કાલિયસિ જીવં પાસેઝા તો બ મદ સરહેઝા તે સેવ)  
મત યદિ મદન। મુઝે ઉત પુરુષ ક દો, તોવં પાર, અધરા સરુગાન  
દુહડે કરને પર ઉતકા જીવ દિલ્લના તો મે આરકે સમ ફેવન પર તિશાસ  
કર હેતા કિ જીવ અ-વ હે ઓર શરીર અ-વ હે જીવ શરીરરુપ નહી  
હે, શરીર જીવરુપ નહી હે (અમ્હા ણ મતે। અહ તેસિં દુહા યા તિહા યા  
ચઠહા યા સલેઝા યા કાલિયસિ જીવ ન પાસામિ-તમ્હા સુપરદિયા મે  
પડ્યા-જહા ત જીવો સં સરીર ત લેવ) મિત કારણ સે હે મદન। મે ને

(અમ્હા મેવે। અહ તસિ પુરિસમિ દુહા યા તિહા યા ચઠહા યા સલેઝા યા  
કાલિયસિ જીવ પાસેઝા તો બ અહ સરહેઝા ત સેવ) એથી બે બહવા  
અને તે પુરુષના બે ત્રણ આર અધરા યા આત કહાયો કસાયો તે ને છવ બેવામાં આબીહોત  
તે દુ વધારા આ કથન પર વિશ્વાસ કરી લેત હે છવ અ-વ છે અને શરીર અ-વ છે છવ  
શરીરરુપ નથી અને શરીર છવરુપ નથી (અમ્હા ણ મતે। અહ તોમિ દુહા યા  
તિહા યા ચઠહા યા સલેઝા યા, કાલિયસિ જીવ ન પાસામિ-તમ્હા સુપર-  
દિયા મે પડ્યા-જહા ત જીવો સં સરીર ત લેવ) એ મરણથી હે બહવા મે

કિન્તુ ત્વં જાવ નૈવ સ્વલુ પશ્યામિ-અનેન પ્રકારેણ ત્રિધા-ત્રિચ્છંડ સ્ફાટિતં, ચતુર્ધા-ચતુઃચ્છંડં સ્ફાટિતં સંખ્યેયધા-સંખ્યાતચ્છંડં સ્ફાટિતં કરોમિ, કિન્તુ તત્ર તસ્મિન્ દ્વિત્રિચતુઃસંખ્યેયધા સ્ફાટિતે ચોરે જીવ નૈવ પશ્યામિ, હે ભદન્ત! યદિ સ્વલુ અહં તસ્મિન્-ચોરપુરુષે દ્વિધા વા ત્રિધા વા ચતુર્ધા વા સંખ્યેયધા વા સ્ફાટિતે જીવં પશ્યેયં તદા-જીવદર્શને સ્વલુ અહં શ્રદ્ધ્યાં ભવતોક્તે વિશ્વ-સ્વામ્ય તદેવ-નો તજ્જીવઃ સ શરીરમ્ અન્યો જીવોઽન્યચ્છરીરમ્, હિતિ, યસ્માત્ સ્વલુ હે ભદન્ત! અહં તસ્મિન્ ચોરે દ્વિધા વા ત્રિધા વા ચતુર્ધા વા સંખ્યે-યધા વા સ્ફાટિતે જીવ ન પશ્યામિ, તસ્માત્-જીવાદર્શનકારણાત્ મે-મમ પ્રતિજ્ઞા-સ્વીકારઃ, સુપ્રતિષ્ઠિતા-સુસ્થિરા યથા--તજ્જીવઃ સ શરીરં તદેવ--નો અન્યો જીવોઽન્યચ્છરીરમિતિ । ॥ સૂ૦ ૧૪૫ ॥

મૂલ-તણે પં કેસિકુમારસમને પણસિ રોયં એવં વયાસી-મૂઢતરાણે પં તુમં પણસી તાંઓ કટ્ટહારાઓ, ! કે પં ભંતે કટ્ટહારણે ? પણસી! સે જહાણામણે કેડપુરિસો વળત્થી વળોવજીવી વળગવેસળયાણે જોઈં ચ જોડભાયણં ચ ગહાય કટ્ટાણં અડવિં અણુપવિટ્ટા, તણે પં તે પુરિસા તીસે અગામિયાણે અડવીણે-કિંચિદેસં અણુપત્તા સમાણા એગં પુરિસં એવં વયાસી-અમ્હે પં દેવાણુપ્પિયા! કટ્ટાણં અડવિં પવિસામો, એત્તો પં તુમં જોડભાયણાઓ જોઈં ગહાય અમ્હે અસણં-સાહેજ્ઞાસિ, અહં તં જોડભાયણે જોઈં વિજ્ઞવેજ્ઞા એત્તો પં તુમં કટ્ટાઓ જોડ ગહાય

ઉસંકે દો તોન ચાર અથવા સંખ્યાત કુકડે કર દેને પર મી જીવ નહીં દેલા ઉમ કારણ સે મેરા મન્તવ્ય કિ જીવ શરીરરૂપ હૈ ઓર શરીર જીવરૂપ હૈ. જીવ મિન્ન નહીં હૈ, શરીર મિન્ન નહીં હૈ સુસ્થિર હૈ. ।

ટીકાર્થ સ્પષ્ટ હૈ ॥ સૂ૦ ૧૪૫ ॥

તેના બે ત્રણ ચાર અથવા સંખ્યાત કુકડાઓ કયા પછી પછી જીવ જોયો નહિ તે તે કારણથી મારી જીવ શરીરરૂપ છે અને શરીર જીવરૂપ છે, જીવ મિન્ન નથી અને શરીર મિન્ન નથી એવી માન્યતા સુસ્થિર છે

ટીકાર્થ સ્પષ્ટ જાણે. ॥ સૂ૦ ૧૪૫ ॥



अम्ह असण साहेजासित्ति कहु कट्टाण अढवि अणुपविट्टा । तए णं  
 से पुरिसे तओ मुहुत्ततराओ तेसिं पुरिसाण असण साहेमिति कहु  
 जेणेव जोइभायणे तेणेव उवागच्छइ जोइभायणे जोइ विज्झायमेव  
 पासइ, तएण से पुरिसे जेणेव से वट्टे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता  
 त कट्ट सव्वओ समता समभिलोणइ नो चेव ण तत्थ जोइ पासइ,  
 तए ण से पुरिसे परियर वधइ परसु गिणहइ न वट्टु दुहा फालिय  
 करेइ सव्वओ समता समभिलोणइ नो चेव ण तत्थ जोइ पासइ  
 एव जाव सखेज्जहा फालिय करेइ सव्वओ समता समभिलोणइ  
 नो चेव ण तत्थ जोइ पासइ, तए ण से पुरिसे तसि दुहा फालिय  
 वा जाव सखेज्जहा फालिय वा जोइ अपासमाणे भते तते परितते  
 निव्विण्णे समाणे करसु एगते ण्ढेइ, परियर मुयइ एव वयासी-  
 अहो! मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहियत्ति कहु ओहयमण-  
 सकप्पे चिंता सोगसागरसपविट्टे करयलपहत्थमुहे अट्टज्झाणोवगण  
 भूमिगयदिट्ठिण क्षियायइ तए णं ते पुरिसा कट्टाइ छिट्ठति जेणेव से  
 पुरिसे तेणेव उवागच्छति, त पुरिसं ओहमयणसंकप्प जाव क्षियायमाण  
 पासंति एव वयासी किं णं तुमं देवाणुप्पिया । ओहयमणसकप्पे जाव  
 क्षियायसि? तए णं से पुरिसे एव वयासी-हुज्जे णं देवाणुप्पिया!  
 कट्टा णं अढवि अणुपविसमाणा मम एव वयासी-अहे णं देवाणु  
 प्पिया । कट्टाणं अढवि जाव अणुपविट्टा, तए णं अह तत्तो मुहुत्तत  
 मओ सज्ज असणं साहेमिति जेणेव जोइभायणे जीव क्षियामि, तए णं

तेसि पुरिसाणं एगे पुरिसे छेए दक्खे पत्तट्टे जाव उवएसलद्धे ते पुरिसे  
 एवं वयासी—गच्छह णं तुज्झे देवाणुप्पिया ! णहाया कयवलिकम्मा  
 जाव हव्वमागच्छेह जा णं अहं असणं साहेमिच्छि कट्टु परियरं बंधइ  
 फरसुं गिणहइ सरं करेइ सरेण अरणिं महइ जोइं पाडेइ जोइ संशु-  
 वखेइ तेसि पुरिसाणं असणं साहेइ, तए णं ते पुरिसा णहाया कय-  
 बलिकम्मा जाव पोयच्छित्ता जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छंति,  
 तए णं से पुरिसे तेसि पुरिसाणं सुहामणवरगयाणं त विउलं अ-  
 रुणं पाणं खाइमं साइमं उवणेइ। तए णं ते पुरिसा तं विउलं असणं  
 पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा वीसाएमाणा जाव विहरंति ।  
 जिमियभुत्तुतरागयात्रि य णं समाणा आयंता चोक्खा परममुइभूया  
 तं पुरिसं एवं वयासी—अहो ! णं तुमं देवाणुप्पिया जड्डे मूढे अप-  
 ङिए णिव्विण्णाणे अणुवएसलद्धे जे णं तुमं इच्छसि कट्टुसि दुहा  
 फालियसि वा जाव जोइ पासित्तए, से एएणट्टेणं पएसी ! एवं वुच्चइ  
 मूढतराए ण तुमं पएसी ! ताओ कट्टुहाराओ ८ । सू० १४६ ।

छाया—ततः खलु केशिकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्—  
 मूढतरकः खलु त्वं प्रदेशिन् ! ततः काष्ठहारात्, कः खलु भदन्त ! काष्ठ-

‘तए णं केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केसिकुमारसमणे पएसि राय एवं वयासी) इसके  
 बाद केशीकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा से हम प्रकार कहा (मूढतराए णं  
 तुमं पएसी । ताओ कट्टुहाराओ) हे प्रदेशिन् ! तुम उस काष्ठहर से भी

‘तएणं केसिकुमारसमणं’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केसिकुमारसमणं पएसि राय एवं वयासी) त्याह आह  
 केशीकुमारश्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रभाण्णे कट्टु (मूढतराए णं तुमं पएसी !  
 ताओ कट्टुहाराओ) हे प्रदेशिन् ! तमे भने पेला काष्ठहर करतां पणु वधारे

अहं असणं साहेजासिस्ति फट्टु फट्टाण अट्ठिं अणुपविट्ठा । तण णं  
 से पुरिसं तओ मुट्ठत्ततराओ तेसिं पुरिसाण असण साहमिस्ति फट्टु  
 जेणेय जोइभायणे तेणेय उवागच्छइ जोइभायणे जोइ विज्झायमेव  
 पासइ, तणण से पुरिम जेणेय स फट्टे तेणेय उवागच्छइ उवागच्छिता  
 त फट्टु सव्यओ समता समभिलोणइ नो चेय ण तरथ जोइ पासइ,  
 तण ण से पुरिसं परियर पयइ पयसु गिणइ नं फट्टु दुहा फालिय  
 करेइ सव्यओ समता समभिलोणइ नो चेय ण तरथ जोइ पासइ  
 एय जाय सखेज्झा फालिय करेइ सव्यओ समता समभिलोणइ  
 नो चेय ण तरथ जोइ पासइ, तण ण से पुरिम तसि दुहा फालिय  
 या जाय सखेज्झा फालिय या जोइ अपासमाणे भंते तंन परित्ते  
 निवियण्णे समाणे करसु गगते ण्ढेइ, परियर मुयइ पय पयासी-  
 अहो! मग तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहमिस्ति फट्टु ओहयमण-  
 सक्खे चित्ता सोगसागरसपथिठ्ठे करयलपत्तमुदे अट्ठज्झाणोयगए  
 धमिगयदिट्ठिणं श्रियायइ तए णं ते पुरिसा फट्टाइ छिंदति जेणेय से  
 पुरिसं तेणेय उवागच्छति, त पुरिसं ओहयमणसक्खे जाय श्रियायमाए  
 पासंति पय पयासी किं णं हुंम दयाणुप्पिया । ओहयमणसक्खे जाय  
 श्रियायसि? तए णं से पुरिस पय पयासी-हुज्जे णं दयाणुप्पिया!  
 फट्टु णं अट्ठिं अणुपविसमाणा मम पय पयासी-अहं णं दयाणु  
 प्पिया । फट्टाणं अट्ठिं जाय अणुपविट्ठा, तण णं अहं सत्तो मुट्ठत्त  
 राओ हुज्ज असणं साहेमिस्ति जेणेय जोइभायणे जीव श्रियामि, तए णं

शन साधयेः इति कृत्वा काष्ठानामटवीमनुप्रविष्टाः. ततः खलु स पुरुषः  
ततो मुहुर्नान्तरात् तेषां पुरुषाणामग्नौ माधयामीति कृत्वा यत्रैव ज्योति-  
र्भाजनं तत्रैव उपागच्छति, ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यात्मेव पश्यति, ततः  
खलु स पुरुषः यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत्

यहीं पर रह कर अग्नि के इस पात्र से अग्नि को लेकर हम लोगों के  
लिये भोजन तैयार करलो (अह तं जोह भायणे जोई विज्जवेत्ता) यदि  
उस पात्र में अग्नि बुझ जावे (एतो णं तुमं कट्ठाओ जोई गहाय अम्हं  
असणं साहेज्जासि तिकट्ठुं कट्ठाण अडविं अणुपविट्ठा) तो देखो जो यह  
लकड़ी पड़ी है सो इसमें से आग्न को उत्पन्न कर लेना और हम-  
लोगों के लिये भोजन बना लेना इस प्रकार कह कर वे उस इन्धन  
वाली अटवी में आगे प्रविष्ट हो गये (तएणं से पुरिसे तओ मुहुत्त-  
तराओ तेसिं पुरिसाणं असणं साहेमिस्सि कट्ठुं जेणेव जोइभायणे तेणेव  
उवागच्छइ) उनके चले जाने पर उस पुरुषने ऐसा विचार किया—कि  
चलो जल्दी से उन लोगों के लिये भोजन तैयार करलूँ—ऐसा विचार  
करके वह जहाँ पर वह अग्नि का पात्र रखा था वहाँ पर गया (जोह-  
भायणे जोई विज्जायमेव पासइ) वहाँ जाकर उसने उस ज्योतिपात्र में  
अग्नि को बुझा हुआ ही देखा. (तएणं से पुरिसे जेणेव से कट्ठे तेणेव

गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि) त्या सुधी तमे अही\* रहीने अग्निना आ  
पात्रमांथी अग्निने वध अमारा माटे लोअन तैयार करे. (अह तं जोइभायणे  
जोई विज्जवेत्ता) ने आ पात्रमा अग्नि ओणवाध नय. (एतो णं तुमं कट्ठा  
ओ जोइ गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि त्ति कट्ठुं कट्ठाणं अडविं  
अणुपविट्ठा) तो बुझ्यो, आ लाकडु पड्यु छि, तेगाथी अग्नि उत्पन्न करी देखे  
अने अमारा माटे लोअन तैयार करेने. आ प्रमाणे नधी विगत समनवीने तेओ  
ते पुच्छण लाकडावाणी अटवीमा आगण प्रविष्ट थइ गया. (तएणं से पुरिसे  
तओ मुहुत्ततराओ तेसिं पुरिसाणं साहेमिस्सि कट्ठुं जेणेव जोइभायणे  
तेणेव उवागच्छइ) तेओ नधा न्यारे त्याथी जता रक्षा त्यारे तेणे आ प्रमाणे  
विचार करी है—साइं जल्दी तेओ नधा माटे नभवात्तं तैयार करी लडं. आभ  
विचार करीने ते न्या अग्नि पात्र डपुं त्या गयो. (जोइभायणे जोइ विज्जाय-  
मेव पासइ) त्या नधने तेणे ते अग्निपात्रमा अग्निने ओणवाध गयेव न नेथो.  
तएणं से पुरिसे जेणेव से कट्ठे तेणेव उवागच्छइ) त्यार पछी ते पुच्छ

हारक ! मदाक्षन् ! ते यथानामहाः सेवित्पुरुषाः वनार्थिनः वनोपजीविनः । वनगवेषणया ज्योतिश्च । ज्योतिर्माजन च गृहीत्या काष्ठानामग्नीमनुप्र-  
विष्टा , ततः प्लवु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकायाः पात्रम् किञ्चिरेवम  
नुनीता मन्तः एक पुरुषमेवमरादिषु—पय स्वर्ग्येभानुप्रिय ! काष्ठाना-  
मटवीं प्रविशामः, इमः प्लवु एव ज्योतिर्माजनान् ज्योतिर्गृहीत्याऽस्माकम्

मुझे अधिक मूर्ख मसीत होते हो (कृष्ण मन ! कटहरण) मे मदन !  
वह काष्ठहर केसा या, इस प्रकार जब मदेवीने कहा—तय (पयसी)  
केजीकुमारअमणने कहा—हे मदेविन् ! मुनो (स उहा नामए केइ पुरिसो  
वणस्प्री वनोपजीवी वनगवेषणयाए जोइ च जोइमायण च गहाय कट्ठाए  
अटवीं अणुपविष्टा) कितनेन वनार्थी और वनोपजीवी काष्ठहारक पुरुष पो  
वन की गवेषणा करतेरे किसी एक अटवी में प्रविष्ट हो गये, साथ में  
उन्होंने अग्नि — रत्नन का आधारभूत पात्र ले रखा था उस अटवी  
में इधन बहुत था (तएव ते पुरिसा तीसे अग्रमियाए अटवीए  
किञ्चि देस अणुपस्ता समाणा) जब व पुरुष उस आभरहित अटवी में कुछ  
दूर तक पहुच चुके तय (एव पुरिस एव वणासी) उन्होंने एक पुरुष  
म पेसा कहा—(अग्ने भ देवाणुप्पिया ! कट्ठाणं अटवीं पवितामी) हे देवानु-  
प्रिय ! हममोग इस काष्ठमयान अटवी में आगे प्रविष्ट होते हैं (एतो-  
णं तुम जोइमायणाओ जोइ गहाय अट्ट अस्तर्ण मादेगजासि) तबतक हम

भूम बाजे छे, (के व मंते ! कटहरण) के जहत ते काम्हरे डेवे हते ! आ  
अभाजे अगरे अदेसी राजके कटु—त्यारे (पयसी ! ) केसीकुमारअभाजे अट्ट के के  
अदेयन् ! सांभजे । स जहानामए कई पुरिसा वणस्प्री वनापजीवी वनग-  
वेषणयाए जोइ च जोइमायण च गहाय कट्ठाए अटवीं अणुपविष्टा) केटवा  
वनार्थी अने वनोपजीवी काष्ठाहारक पुरुषे हवा तेजे वनमां योधनां गोधनां  
डोष के अटवीमां प्रविष्ट कर्ष अथा, तेभजे पितानी साथे अग्नि तगए अग्निने  
हवामां आटे आधारभूत पात्र लप राख्मां हवा, ते अटवीमां काष्ठयजे पुंज  
अभक्ष्यमां हवा, (तय व व पुरिसा तीसे अग्रमियाए अटवीए किञ्चिदेस  
अणुपस्ता समाणा) अगरे ते जभाते आभरहित निजंन अटवीमां भेदी हरण  
त्यारे (एव पुरिस एव वणासी) तेभजे के पुंजने आ अभाजे कसु (अग्ने  
व देवाणुप्पिया ! कट्ठाणं अटवीं पवितामी) के देवादेप्रिय ! अग्ने, जभा का  
प्रधान अटवीमां वपु आभण अनेसीके छीके, (एतो व तुम जोइमायणाओ जोइ

शनं साधयेः इति कृत्वा काष्ठानामपटवीमनुप्रविष्टाः. ततः खलु स पुरुषः  
ततो मुहुर्नान्तरात् तेषां पुरुषाणामग्नं माधयामीति कृत्वा यत्रैव ज्योति-  
र्भाजनं तत्रैव उपागच्छति. ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यातमेव पश्यति, ततः  
खलु स पुरुषः यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत्

यहीं पर रह कर अग्नि के इस पात्र से अग्नि को लेकर हम लोगों के  
लिये भोजन तैयार करलो (अहं तं जोड़ भायणे जोड़ विज्ञवेत्ता) यदि  
उस पात्र में अग्नि बुझ जावे (एणं णं तुमं कट्ठाओ जोड़ं गहाय अम्हं  
अस्मणं साहेज्जासि तिकट्टुं कट्ठाण अडविं अणुपविट्ठा) तो देखो जो यह  
लकड़ी पड़ी है सो इसमें से आग को उत्पन्न कर लेना और हम-  
लोगों के लिये भोजन बना लेना इस प्रकार कह कर वे उस इन्धन  
वाली अटवी में आगे प्रविष्ट हो गये (तएणं से पुरिसे तओ मुहुत्त-  
तराओ तेसिं पुरिसाणं अस्मणं साहेमिन्ति कट्टुं जेणेव जोड़भायणे तेणेव  
उवागच्छइ) उनके चले जाने पर उस पुरुषने ऐसा विचार किया—कि  
चलो जल्दी से उन लोगों के लिये भोजन तैयार करलूँ—ऐसा विचार  
करके वह जहाँ पर वह अग्नि का पात्र रखा था वहाँ पर गया (जोड़-  
भायणे जोड़ विज्ञायमेव पामइ) वहाँ जाकर उसने उस ज्योतिपात्र में  
अग्नि को बुझा हुआ ही देखा. (एणं से पुरिसे जेणेव से कट्टे तेणेव

गहाय अम्हं अस्मणं साहेज्जासि) त्या सुधी तमे अही" रहीने अग्निना आ  
पात्रमाधी अग्निने लछ अमारा भाटे लोअन तैयार करो. (अहं तं जोड़भायणे  
जोड़ं विज्ञवेत्ता) ने आ पात्रमा अग्नि ओणवाछं नथ. (एत्तो णं तुमं कट्ठा  
ओ जोड़ं गहाय अम्हं अस्मणं साहेज्जासि त्ति कट्टुं कट्ठाण अडविं  
अणुपविट्ठा) तो लुओ, आ लाकडुं पड्युं छ, तेगाथी अग्नि उत्पन्न करी लेने  
अने अमारा भाटे लोअन तैयार करने. आ प्रमाहे नधी विगत समनवीने तेओ  
ते पुच्छण लाकडावाणी अटवीमा आगण प्रविष्ट थइ गया. (तएणं से पुरिसे  
तओ मुहुत्ततराओ तेसिं पुरिसाणं साहेमिन्ति कट्टुं जेणेव जोड़भायणे  
तेणेव उवागच्छइ) तेओ नधा न्यारे त्याथी जता रक्षा त्यारे तेहे आ प्रमाहे  
विचार करीं के—साइं नट्टी तेओ नधा भाटे नभवातुं तैयार करी लउं. आभ  
विचार करीने ते न्या अग्नि पात्र डतुं त्या गथो. (जोड़भायणे जोड़ विज्ञाय-  
मेव पासइ) त्या नधने तेहे ते अग्निपात्रमा अग्निने ओणवाछं गथेव न लेथो.  
तएणं से पुरिसे जेणेव से कट्टे तेणेव उवागच्छइ) तार पछी ते पुश्य

દારકાઃ । પ્રદાશન્ । તે વધાનામદાઃ ચેદ્વિત્ પુરુષાઃ વનાર્થિનઃ વનોપગ્રીવિનઃ ।  
 વનગરેષ્વણયા ઝગોતિશ્ચ , ઝગોતિર્માત્રન ચ મૃદીરથા કાષ્ટાનામટીવનુપ-  
 શિષ્ટાઃ, સતઃ સ્વાત્તુ તે પુરુષાઃ મત્યાઃ અગ્રામિકાયાઃ યાવત્ કિઠિવરેશમ  
 નુત્રીતાઃ સતઃ એક પુરુષમેવમસાદિપુઃ-વય સ્વદ્ સ્વનુપ્રિય । કાષ્ટાના  
 મટરી પ્રયિશામઃ, હમઃ સ્વાત્તુ તદ ઝગોતિર્માત્રમાન્ ઝગોતિર્મૃદીત્વાસ્માકમ

સુખે અધિક પૂર્વ પ્રતીત હાતે હો (કે જ મંતે ! કહારણ) જે મદન ।  
 વદ કાષ્ટદર કેવા થા, હમ પ્રકાર અવ પ્રદેશન વદા-તથ (વગસી)  
 કઞ્ઞીકુમારશ્રમણને કરા-હ પ્રદેશન । સુનો (સે જા નાવવ કદ પુરિસો  
 વળાત્થી વળાવર્તીથી વળગવસવગાવ જોઈ વ જોઈમાવળં વ ગદાય કહાવ  
 અઢર્શિ અનુપવિદ્ધા) કિતનન વનાર્થી ઔર વનોપગ્રીવી કાષ્ટદારક પુરુષ યો  
 વન કી ગવણા કરતેર કિસી એક મટરી મેં પ્રવિષ્ટ હો ગય તાવ મેં  
 સન્દોને અગ્નિ - રાવન વા આધારભૂત પાત્ર સે રસા થા ઉમ મટરી  
 મેં રાવન વદુત થા (તવ જ સે પુરિસા તીસે અગ્નિમિશાવ અઢવીવ  
 કિંચિ દેસ અનુવસા સમાણા) જવ વ પુરુષ ઉમ ધામરદિત અટવી મેં કુષ  
 દૂર તવ વદુત ચુકે, તથ (વગ પુરિસ વથ વગસી) ઉઠોને એક પુરુષ  
 મ વેમા કરા-(અરે જ દેવાણુપિવા ! કહાવ અઢર્શિ વરિસામો) હ દેવાણુ  
 પિય ! હમલોગ હા કાષ્ટમણન અટવી મેં આગે પ્રવિષ્ટ હોતે હેં (વગસી,  
 જં તુમ જોઈમાવળામો જોઈ ગદાય અદ્ અસર્ગ આદેગ્નામિ) તવતક તુમ

મુખ લાગે છે (કે જ મંતે ! કહારણ) હે અદત તે કાષ્ટદર કેવો હતો ? આ  
 પ્રમણે અપાર પ્રદેશી શાલને કહુ-તથા (વગસી) કેશીકુમારઅમણે કહુ કે હે  
 પ્રદેશન । આંખણે (સ અદાનામદા કદ પુરિસા વળાત્થી વળાવર્તીથી વગ-  
 વેસળયાવ જોઈ વ જોઈમાવળં વ ગદાય કહાવ અઢર્શિ અનુપવિદ્ધા) કેટલાક  
 વળાથી અને વનોપગ્રીવી કાષ્ટદારક પુરુષે હતા તેઓ વનમાં ચોખનાં ચોખનાં  
 કોઈ એક અટવીમાં પ્રવિષ્ટ થઈ ગયા. તેમણે પાતાની સાથે અગ્નિ તોગવ અગ્નિને  
 વળામાં માટે આધારભૂત પાત્ર તથા શાખાં હતા તે અટવીમાં કાષ્ટદરે પુરુષ  
 પ્રમણુમાં હતા. (તવ જ ત પુરિસા તીસે અગ્નિમિશાવ અઢવીવ કિંચિદેસ  
 અનુવસા સમાણા) અપાર તે અપારે અમરદિત નિર્જન અટવીમાં કોઈ દુરત્રય  
 તથા (વગ પુરિસ વથ વગસી) તેમણે એક પુરુષને આ પ્રમણે કહુ (અરે  
 જ દેવાણુપિવા ! કહાવ અઢર્શિ વરિસામો) હે દેવાણુમિ ! અથ ,અથ કાષ  
 પ્રમણ અટવીમાં વયુ આમળ પ્રવેશીએ છીએ. (વગસી અ હુમે જોઈમાવળામો જોઈ

शुमेकान्ते एडति (मुळचति) परिकरं मुळचति एवमवादीत् अहो ! मया  
तेषां पुरुषाणामशनं नो साधितमिति अपहनम्नःसंकल्पचिन्ताशोकसागरस-  
पविष्टः करनलपर्यस्तमुखः आर्तध्यानोपगतः भूमिगतदृष्टिको धार्याति ततः  
खलु ते पुरुषाः काष्ठानि छिन्दन्ति, यत्रैव स पुरुषः तत्रैवोपागच्छन्ति,

माणे संते परितंते निविण्णे समाणे परसु एगंते एडेइ) इसके बाद जब  
उम पुरुष को उस काष्ठ के दो टुकड़े यावन संख्यात टुकड़े करने पर  
भी जब अग्नि दिखाई नहीं दी, तब वह थक कर, क्लान्त होकर, परितान्त  
होकर विशेष दुःखित हुआ और उसने उम कुल्हाड़ी को किसी एकान्त स्थान  
में रख दिया (परियरं मुयड) कमर का बधन भी खोल दिया (एव  
वयासी) इस प्रकार कहने लगा (अहो मए तेसिं पुरिसाण असणे नो  
साहिण्णि कट्ठु ओहयमणसंकप्पे चिन्तासोगसागरसंपांद्धे करतलपलत्थमुहे  
अट्टझाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! मैं उन पुरुषों के लिये  
भोजन तैयार नहीं कर सका अब क्या करूं ! इस प्रकार विचार कर वह  
बड़ा ही दुःखित हुआ उसकी सामान्य मानसिक अभिलाषाएँ नष्ट हो गई  
और वह चिन्ता, एव शोक रुपी समुद्र में निमग्न हो गया. कपोल पर  
हथेली रख कर आर्तध्यान करने लगा दृष्टि उसकी नीचे जमीन की ओर  
हो गई - इस प्रकार वह चिन्ता में फँस गया (तएणं ते पुरिसा कट्ठाइं  
छिदंति) अब उन पुरुषों ने जब लकड़ियों को काटलिया- तब वे (जेणेव

वा जोइ अपासमाणे संते तंते निविण्णे समाणे परसु एगंते एडेइ)  
त्यार पछी ज्यारे ते पुइने ते काठना जे कडाओ यावत् सख्यात कडाओ कथो  
पछी पछु ज्यारे अग्नि जेवामा आओये नहि, त्यारे ते थाकीने, क्लान्त थकीने,  
परितान्त थकीने विशेष दुःखित थये अने तेहे ते कुल्हाडीने केँध ओकांत स्थाने भूँडी  
दीधी (परियरं मुयड) कमरु बधन पण जेाली नाथुं (एव वयासी) पछी  
ते आ प्रभाणे कट्टा लाओ (अहो मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहिण्णि  
त्ति कट्ठु ओहयमणसंकप्पे चिन्तासोगसागरसपविष्टे करतलपलत्थमुहे  
अट्टझाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! हुं ते भाणुसो भाटे लोअन  
भनावी शक्यो नहि हुवे शुं कउ ? आ प्रभाणे विचार करीने ते भूण ज दुःखी  
थये तेनी पछी मानसिक छिन्नओ नष्ट थई गछ, अने ते चिन्ता अने शोकरूपी  
समुद्रमा निमग्न थई गये कपाल पर हुथेली भूँडीने ते आर्तध्यान करवा लाव्हे  
तेनी नजर जमीन तरई नीचे थई गछ, आभ ते चितामां डूबी गये. (तएण  
ते पुरिसा कट्ठाइं छिदंति) हुवे ते भाणुसोओ लाकडाओ कापी दीधा त्यारे तेओ



काष्ठ मर्वतः समन्तात् समभिन्नोक्तं, नो यच्च खलु तत्र उच्यते। पश्यति,  
ततः खलु स पुरुषः परिकरं यन्नाति, एकाति, एवं काष्ठं द्विधा स्फाटितं  
करोति सर्वतः समन्तात् समभिन्नोक्ते नो यच्च खलु तत्र उच्यते। पश्यति,  
एष यावत् सख्येषा स्फाटितं करोति सर्वतः समन्तात्  
समभिन्नोक्ते नो यच्च खलु तत्र उच्यते। पश्यति, ततः खलु  
स पुरुषः तस्मिन् काष्ठे द्विधा स्फाटितं वा यावत् संख्येषा  
स्फाटितं वा ज्योतिरपश्यन् आन्तः तातः परितान्तः निर्दिष्टाः सप्त पर

उभागच्छ। इसके बाद वह पुरुष वहाँ गया जहाँ वह काष्ठ पड़ा हुआ  
था (उभागच्छ। त कठं सख्यं समता समभिन्नोक्तं) वहाँ जाकर क  
उसने उस काष्ठ की चारों ओर से अच्छी तरह से देखा (नो यच्च न  
जोड़ पासइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि दिखाई नहीं दी (तए न से पुरिसे  
परियर यच्च) तब उस पुरुषने अपनी कमर बाँधी (करसु गिरइ) कुत्ताड़ी  
उठाई और (त कठं दृष्ट्वा फालिह करेइ) उस काष्ठ के दो टुकड़े कर दिये  
(सख्यं समता समभिन्नोक्तं) फिर उसे चारों ओर से अच्छी तरह  
से उसने देखा (नो यच्च न तस्य जोड़ पासइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि  
दिखाई नहीं दी (एव जाय सख्येज्जरा फालिह करेइ) इसी प्रकार से  
फिर उसके यावत् संख्यात टुकड़े तक कर दिये (सख्यं समता समभि-  
न्नोक्तं) परन्तु सब तरफ से अच्छी तरह देखने पर भी (नो यच्च न  
तस्य जोड़ पासइ) उसे उसमें अग्नि दिखाई नहीं दी (तए न से पुरिसे  
न सि बहमि दृष्ट्वा फालिह वा जाय सख्येज्जरा फालिह वा जोड़ अपात

त्वा जमे जवा पेक्षु ॥५६ (॥५६) ५६६ ननु (उभागच्छ। त कठं सख्यं  
समता समभिन्नोक्तं) त्वा ५६६ ने तेजे ते ५६६ ने आरे आगुभी आरी शीते नेपु  
(नो यच्च न जोड़ पासइ) पञ्च तेभां तेने अग्नि देखाये नदि (तए न से पुरिसे  
परियर यच्च) त्वा ते पुरुषे पीत्वाणी देखायी। (करसु गिरइ) कुत्ताड़ी हाथमें  
लीधी अने (त कठं दृष्ट्वा फालिह करेइ) ते ५६६ ने ५६६ ५६६ ५६६ ५६६  
(सख्यं समता समभिन्नोक्तं) पञ्च तेजे आरे तस्य भी तेने नेपु (नो यच्च न  
तस्य जोड़ पासइ) पञ्च तेभां तेने अग्नि देखायी आग्ने नदि (एव जाय  
सख्येज्जरा फालिह करेइ) आ प्रभाजे पञ्च तेजे तेना यावत् से ५६६ ५६६ ५६६  
५६६ ५६६ (सख्यं समता समभिन्नोक्तं) पञ्च तेने आरे तस्य आरी शीते  
नेपु ५६६ (नो यच्च न तस्य जोड़ पासइ) तेने तेभनभां अग्नि देखाये नदि  
(तए न से पुरिसे सर्विं दृष्ट्वा फालिह वा जाय सख्येज्जरा फालिह

शुमेकान्ते एडति (मुठचति) परिकरं मुठचति एवमवादीत् अहो ! मया  
तेषां पुरुषाणामशनं नो साधितमिति अपहतमनःसंकल्पचिन्ताशोकसागरस-  
प्रविष्टः करतलपर्यस्तमुखः आर्तध्यानोपगतः भूमिगतदृष्टिको धार्यात् ततः  
खलु ते पुरुषाः काष्ठानि छिन्दन्ति, यत्रैव स पुरुषः तत्रैवोपागच्छन्ति,

माणे संते परितंते निविण्णे ममाणे परसुं एगंते एडेइ) इसके बाद जब  
उम पुरुष को उस काष्ठ के दो टुकड़े यावन संख्यात टुकड़े करने पर  
भी जब अग्नि दिखाई नहीं दी, तब वह थक कर, क्लिप्त होकर, परितान्त  
होकर विशेष दुःखित हुआ और उसने उम कुल्हाड़ी को किसी एकान्त स्थान  
में रख दिया (परियरं सुयइ) कमर का बंधन भी खोल दिया (एव  
चयासी) इस प्रकार कहने लगा (अहो मए तेसिं पुरिसाण असणे नो  
साहिं त्तिक्हु ओहयमणसंकप्पे चिन्तासोगसागरसंपाच्छे करतलपलत्थमुहे  
अट्टझाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! मैं उन पुरुषों के लिये  
भोजन तैयार नहीं कर सका अब क्या करूं ! इस प्रकार विचार कर वह  
बड़ा ही दुःखित हुआ उसकी गमन मानसिक अभिलाषाएँ नष्ट हो गई  
और वह चिन्ता, एव शोक रूपी समुद्र में निमग्न हो गया. कपोल पर  
हथेली रख कर आर्तध्यान करने लगा दृष्टि उसकी नीचे जमीन की ओर  
हो गई - इस प्रकार वह चिन्ता में फँस गया (तएणं ते पुरिसा कट्ठाइं  
छिंदंति) अब उन पुरुषों ने जब लकड़ियों को काटलिया- तब वे (जेणेव

वा जोइ अपासमाणे संते तंते निविण्णे ममाणे परसुं एगंते एडेइ)  
त्यार पछी ज्यारे ते पुइधने ते काठना जे कडाओ यावत सख्यात कडाओ क्यो  
पछी पणु ज्यारे अग्नि जेवामा आये नहि, त्यारे ते थाकीने, क्लान्त थकने,  
परितान्त थकने विशेष दुःखित थये अने तेहे ते कुल्हाडीने काष्ठ अंकात स्थाने भूमी  
दीधी (परियरं सुयइ) कमर छु बंधन पण फोडी नाथुं (एव चयासी) पछी  
ते आ प्रभाणे कट्टा लाये (अहो मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहिं  
त्ति कहु ओहयमणसंकप्पे चिन्तासोगसागरसंपाच्छे करतलपलत्थमुहे  
अट्टझाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! हुं ते भाणुसो भाटे खोजन  
भनावी शक्यो नहि हवे शुं कउ ? आ प्रभाणे विचार करीने ते भूण ज दुःखी  
थये तेनी पछी मानसिक छ्छाओ नष्ट थछ गछ, अने ते चिन्ता अने शोकइपी  
समुद्रमा निमग्न थछ गये कपाण पर हथेली भूमीने ते आर्तध्यान करवा लाये  
तेनी नजर जमीन तरइ नीचे थछ गछ, आभ ते चितामां झूमी गये. (तएण  
ते पुरिसा कट्ठाइं छिंदंति) हवे ते भाणुये कडाओ कापी दीधा त्यारे तेओ

काण्ड मर्वतः समन्तात् सममिलोक्ते, नो वैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, ततः खलु स पुरुषः परिकरं बध्नाति, वृद्धाति, तस्य काण्डे द्विधा स्फाटितं करोति सर्वतः समन्तात् सममिलोक्ते नो वैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, एव यावत् सख्येयथा स्फाटितं करोति सर्वतः समन्तात् सममिलोक्ते नो वैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, ततः खलु स पुरुषः तस्मिन् काण्डे द्विधा स्फाटिते वा यावत् संख्येयथा स्फाटिते वा ज्योतिरपश्यन् भ्रान्तः शान्तः परितान्तः निर्दिष्टाः सन् पर

उभागच्छइ) इसके बाद वह पुरुष बड़ा गया जहाँ वह काण्ड पड़ा हुआ था (उभागच्छिता त कट्टं सख्यभो समता सममिलोएइ) वहाँ जाकर व उसने उस काण्ड को चारों ओर से अच्छी तरह से देखा (नो वैव न जोइ पासइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि दिखाई नहीं दी (तएण से पुरिसं परियर वचइ) तब उस पुरुषने अपनी कमर बांधी (करसु गिणइइ) कुल्हाड़ी उठाई और (त कट्टं दुइहा फामिइ करइ) उस काण्ड के दो टुकड़े कर दिए (सख्यभो समता सममिलोएइ) फिर उसे चारों ओर से अच्छी तरह से उसने देखा (नो वैव न तस्य जोइ पासइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि दिखाई नहीं दी (एव जाव सखेज्जहा फालिइ करइ) इसी प्रकार से फिर उसके यावत् सख्यात टुकड़े तक कर दिये (सख्यभो समता सममिलोएइ) परन्तु सब तरफ से अच्छी तरह देखने पर भी (नो वैव न तस्य जोइ पासइ) उसे उनमें अग्नि दिखाई नहीं दी (तएण से पुरिसं नंसि वडंसि दुइहा फालिए वा भाव सखेज्जहा फालिए वा जोइ अपास

त्वां भवे भवां पेहु भांइ (ताइइ) पडेहु कतु (उभागच्छिता त कट्टं सख्यभो समता सममिलोएइ) त्वां भवने तेजे ते वाइवने आरे भागुधी सारी रीते नेहु (नो वैव न जोइ पासइ) पण तेभां तेने भज्जि देणायो नहि. (एण से पुरिसं परियर वचइ) त्वां ते पुरुषे पात्तानी देइयांभी. (करसु गिणइइ) कुल्हाड़ी दावभां भीभी भने (त कट्टं दुइहा फामिइ करइ) ते वाइवने भे इइइ करी नाप्पा. (सख्यभो समता सममिलोएइ) पणी तेजे आरे तरइभी तेने नेहु (नो वैव न तरव जोइ पासइ) पण तेभां तेने भज्जि नेवाभां आण्यो नहि (एव जाव सखेज्जहा फामिइ करइ) आ प्रभाजे पणी तेजे तेना यावत् खेइये इइइ करी नाप्पा (सख्यभो समता सममिलोएइ) पण तेभने आरे तस्य सारी रीते नेवा उवांये (नो वैव न तस्य जोइ पासइ) तेने तेभनाभां भज्जि देणायो नहि. (तएण से पुरिसं नंसि वडंसि दुइहा फालिये वा भाव सखेज्जहा फालिए

ततः खलु अहं ततो मुहुर्तान्तरात् युष्माकमशनं साधयामि' इति कृत्वा  
यत्रैव ज्योतिर्भाजनं यावत् ध्यायामि, ततः खलु तेषां पुरुषाणामेकः पुरुषः

हैं—सो तुम तब तक अग्नि के पात्र से अग्नि को लेकर हम लोगों के  
लिये भोजन बनाना. यदि उस पात्र में अग्नि बुझ जावे तो तुम इस  
काष्ठ से-ज्योति-अग्नि को तैयार कर लेना और हम लोगों के लिये भोजन  
बनाना, हम प्रकार कह कर आपलोग अटवी में प्रविष्ट हो गये, (तएणं  
अहं ततो मुहुत्तरात्रो तुज्झे असणं साहेमि त्ति कट्टु जेणेव जोइभायणे  
जाव झियामि) इसके बाद मैंने ऐसा विचार किया कि चलो बहुत जल्दी  
आप लोगों के लिये भोजन बनादूँ—ऐसा विचार कर ज्यों ही मैं जहाँ  
वह ज्योति भाजन (अग्निपात्र) रखा था, वहाँ पर गया—तो क्या देखता हूँ कि  
उसमें अग्नि बुझी पड़ी है. फिर मैं जहाँ वह काष्ठ था—वहाँ पर गया, वहाँ  
जाकर मैंने उस काष्ठ को अच्छी तरह से सब ओर से देखा, परन्तु मुझे वहाँ  
अग्नि दिखाई नहीं दी, फिर मैंने अपनी कमर कसी और कुठार को  
लेकर उस काष्ठ के दो टुकड़े किये फिर मैंने उसे सब ओर से अच्छी  
तरह देखा परन्तु फिर भी मुझे वहाँ अग्नि के दर्शन नहीं हुए इस तरह  
फिर मैंने उसके तीन चार यावत् सैकड़ों तक टुकड़े कर डाले और  
उन सब को अच्छी तरह से चारों ओर से देखा, परन्तु वहाँ कहीं भी

अमारा भाटे लोअन तयार करे ते पात्रमा अग्नि ओणवधं नय तो तमे ते  
काष्ठमाथी अग्नि उत्पन्न करी लेने अने अमारा भाटे लोअन तयार करने आम  
कडीने तमे पधा अटवीमा प्रविष्ट थध गया हुता (त एणं अहं ततो मुहुत्त-  
तरात्रो तुज्झे असणं साहेमि त्ति कट्टु जेणेव जोइभायणे जाव झियामि)  
त्यार पछी मे आ नतने विचार कर्यो के आलो, गहु न जलही तमारा भाटे  
लोअन तयार करी लव आम विचार करीने हु न्यारे अग्निपात्र नया राप्पु  
हुतुं त्या गये तो तेमा भने अग्नि ओणवधं गयेल देभाये. त्यार पछी हुं नया  
लाकडुं हुतु त्या गये त्या नधने मे ते काष्ठने सारी रीते नेथुं, यारे तरक्षु नेथुं  
पणु भने तेमा अग्नि देभाये नहि पछी मे कम्मर गाधी अने कुडाडी लधने ते  
काष्ठ (लाकडा)ना मे ककडाओ कर्या पछी ते ककडाओने यारे तरक्षु सारी रीते  
नेथा भने तेमा पणु अग्नि देभाये नहि. आम मे तेना त्रणुयार त सप्पयात  
ककडाओ करी नाप्प्या पधा ककडाओने यारे तरक्षु सारी रीते नेथा पणु त्या भने  
नरा पणु अग्नि देभाये नहि त्यारे ह थार्क्षने, तान्त. परितान्त थधने अने जेह

त पुरुषमपहतमनःसकल्प यावत् ध्यायन्त पश्यन्ति, एवमवादिषु—किं  
 स्मरु त्व देवानुमिय ! अपहतमनःसकल्प यावत् ध्यायाम ? ततः स  
 स पुरुष एवमवादिषु—युय स्मरु देवानुमियाः। कण्डानामदशोमनुपविशन्तः।  
 मम एवमवादिषुः—यय स्मरु देवानुमिय। कण्डानामन्त्री यावत् भुजपविष्टाः।

म पुरिसे तणेव उवागच्छति) मरां यह पुरुष था, वहाँ पर भाये त  
 पुरिस ओहयमणसकल्प जाव सिंयायमाण पामति) बड़ा आकरके उठोमे  
 उस पुरुष को मानसिक अभिलाषाओं से रहित हुआ और शोक तथा  
 विन्तारूपों सागर में निमग्न हुआ, कणों पर हथेली रख कर आर्तव्याज  
 करता हुआ, यह नीचे दृष्टि किए हुए देखा, हल्कर फिर उन्होंने  
 (एव बयासी) उससे ऐसा कहा—(किं वंतुम देवाणुपिया ! ओहयमणसकल्पे  
 जाव सिंयायसि) हे देवानुमिय ! तू किस कारण से अपहतमनः सकल्प  
 बाधे बन हुए ? और यावत् विन्ता कर रह हो (तएण से पुरिस एव बयासी)  
 तब उस पुरुषने उनसे ऐसा कहा—(तुज्जे ण देवाणुपिया ! कट्ठाण भट्ठविं  
 अनुपविसमाणा मम एव बयासी) हे देवानुमियों ! आपलाग सब सकल  
 काठने के लिये अटवी में प्रविष्ट होने के लिये तैयार हुए थे—तब मुझसे  
 ऐसा कहा था—(अग्गे ण देवाणुपिया ! कट्ठाण भट्ठविं जाव अनुपविट्ठा)  
 हे देवानुमिय हम लोग सकल काठने के लिये इस जंगल में जागे जाते

(जेणेव से पुरिसे तणेव उवागच्छति) क्या ते पुरुष होते, त्वां भव्य (त  
 पुरिस ओहयमणसकल्प जाव सिंयायमाण पामति) त्वां भव्य तेभ्यो ते  
 पुरुषने मानसिक धृष्टिओं जेनी नष्ट चाभी छि ज्योने जने थोड़े तेभ्यो सिंटा  
 इपी समुद्रमा निमग्न यथेह कथित पर कथेनी भुजिन आर्तव्याज करते जने नीची  
 दृष्टि कथेने ज्योने ज्योने पली तेभ्यो (एव बयासी) तेने ज्यो प्रभावे भू-  
 (किं ण तुम देवाणुपिया ! ओहयमणसकल्पे जाव सिंयायसि) हे देवानुमिय !  
 तमि थो अरुथीअचकत भन.अकल्पकाणा यम जयाजि जने यावत् सिंटा करी रकटि  
 (तएण से पुरिसे एव बयासी) त्वाहे ते पुरुषने तेभने ज्यो प्रभावे भू- (तुज्जे  
 ण देवाणुपिया ! कट्ठाण भट्ठविं अनुपविसमाणा मम एव बयासी)  
 हे देवानुमियों ! तमि सी ज्योने काठकाजो आपका भाटे अटवीमा प्रविष्ट यथा तैयार  
 तथा कता त्वाहे जने ज्यो प्रभावे भू- कत—(अग्गेण देवाणुपिया ! कट्ठाण  
 भट्ठविं जाव अनुपविट्ठा) हे देवानुमिय ! जमि जमा काठकाजो आपका भाटे ज्यो  
 अटवीमा आपका जमि छीजि. तो तमि त्वां सुधी जमि यात्रांभी जमि तमिने

ततः खलु अहं ततो मुहुर्तान्नरात् युष्मकमशनं साधयामि' इति कृत्वा  
यत्रैव ज्योतिर्भाजनं यावत् ध्यायामि, ततः खलु तेषां पुरुषाणामेकः पुरुषः

हैं—सो तुम तब तक अग्नि के पात्र से अग्नि को लेकर हम लोगों के  
लिये भोजन बनाना. यदि उस पात्र में अग्नि बुझ जावे तो तुम इस  
काष्ठ से-ज्योति-अग्नि को तैयार कर लेना और हम लोगों के लिये भोजन  
बनाना, हम प्रकार कह कर आपलोग अटवी में प्रविष्ट हो गये, (तएणं  
अहं ततो मुहुत्तरात्रो तुज्जे अस्मण साहेमि त्ति कट्टु जेणेव जोइभायणे  
जाव झियामि) इसके बाद मैंने ऐसा विचार किया कि चलो बहुत जल्दी  
आप लोगों के लिये भोजन बनादूँ—ऐसा विचार कर ज्यों ही मैं जहाँ  
वह ज्योति भाजन (अग्निपात्र) रखा था, वहाँ पर गया—तो क्या देखता हूँ कि  
उसमें अग्नि बुझी पड़ी है. फिर मैं जहाँ वह काष्ठ था—वहाँ पर गया, वहाँ  
जाकर मैंने उस काष्ठ को अच्छी तरह से सब ओर से देखा, परन्तु मुझे वहाँ  
अग्नि दिखाई नहीं दी, फिर मैंने अपनी कमर कसी और कुठार को  
लेकर उस काष्ठ के दो टुकड़े किये फिर मैंने उसे सब ओर से अच्छी  
तरह देखा परन्तु फिर भी मुझे वहाँ अग्नि के दर्शन नहीं हुए इस तरह  
फिर मैंने उसके तीन चार यावत् सैकड़ों तक टुकड़े कर डाले और  
उन सब को अच्छी तरह से चारों ओर से देखा, परन्तु वहाँ कहीं भी

अमारा भाटे लोअन तैयार करे. ते पात्रमा अग्नि ओणवाधं नय तो तमे ते  
काष्ठमाधी अग्नि उत्पन्न करी लेने अने अमारा भाटे लोअन तैयार करेने आम  
कडीने तमे अधा अटवीमा प्रविष्ट थइ गया छता (त एणं अहं ततो मुहुत्त-  
तरात्रो तुज्जे अस्मण साहेमि त्ति कट्टु जेणेव जोइभायणे जाव झियामि)  
त्यार पछी मे आ नतने विचार कर्यो हे थावे, गहुं न नलदी तमारा भाटे  
लोअन तैयार करी लउ आम विचार करीने हुं न्यारे अग्निपात्र नया राअ्युं  
हुतुं त्यां गये तो तेमां मने अग्नि ओणवाधं गयेल हेभाये. त्यार पछी हुं नया  
लाकडुं हुतुं त्यां गये त्या नधने मे ते काष्ठने सारी रीते नेथुं. यारे तरइ नेथुं  
पणुं मने तेमा अग्नि हेभाये नहि पछी मे कम्मर गाधी अने कुडाडी लधने ते  
काष्ठ (लाकडा)ना जे ककडाओ कर्या पछी ते ककडाओने यारे तरइथी सारी रीते  
नेया मने तेमा पणु अग्नि हेभाये नहि. आम मे तेना त्रणुयार त सअयात  
ककडाओ करी नाअ्या अधा ककडाओने यारे तरइथी सारी रीते नेया पणु त्या मने  
नरा पणु अग्नि हेभाये नहि त्यारे हुं धार्जने, तान्त, परितान्त थधने अने जेह

छेकः दक्षः प्राप्तार्थं यावत् उपदेशस्तथाः तान् पुरुषान् एवमादीन्--  
गच्छत खलु यूय देवानुमियाः । स्नाताः कृतचलिक्रमाणिः यावत् क्षीवमा-  
गच्छत यावत् खलु ब्रह्ममथान साधयामीति कृत्वा परिकरं यज्ज्नाति परमु

सुप्तं अग्निं का नामतक मी नही पाया तब मैंने बककर तान्त, परि-  
तान्त होकर और खेद लिख होकर कुल्हाड़ी को एकाम्भ में एक ओर  
रख दिया और कमर को खोख दिया-फिर मैंने ऐसा पिचार किया-मैं  
अपहतमनः सङ्कल्पनाया बना हुआ होकर एक चिन्तारूपी समुद्र में डूबा  
हूँ कपोल पर हथेली रखकर बैठा हुआ हूँ, आस-प्यान बर रहा हूँ  
और लक्षा के भारे जमीन की ओर देख रहा हूँ (तएव तेमिं पुरि-  
माण एगे पुरिसे प्रेण दृश्ये पतडे जाय उय सलदे ते पुरिस एव  
ययासी) इस के बाद उन पुरुषों के बोध में एक पुरुष ऐसा भा तो  
छेक-अवसर का ज्ञाता था, दक्ष-कार्यकाल था, प्राप्तार्थ-अपनी कुशलता  
से जिसने साधयार्थ-को अधिगत कर लिया था, यावत् गुरुपदेश जिनने  
प्राप्त किया था उसने उन वाङ्मयक पुरुषों से ऐसा कहा-(गच्छत य  
सुप्तं देवानुमिया । जाया कृतचलिक्रमा एव ब्रह्ममागच्छत जा ग  
अह भमय माहमि सि कटु परिकर ययइ) हे देवानुमिया ! माय लोग  
ज इय, स्नान कीजिये, चमिकर्म-काक आदि का भस्माद का माग दने

भिन्न दक्ष ने कुल्हाड़ीने केक तरह भूत दीपी जने गंधिली केक जोखी नाथी खी  
मैं का बचता विचार क्यो हूँ त भजसा भटे ब्रह्मन् जनायो छये नकि  
आ देवी रूप जने आदेवनी वात छ आ प्रभावे विचार कसेने हूँ अपहत  
मना सङ्कल्पनाया बान होक जने चित्ताक्षी समुद्रमां भान धधने कपोल पर  
कहेला भडिने बैठे छू जने आस-प्यान की रखे छू धर्मवी भारी नकर नीची  
बभोन रह बनी अछ छ (तएव तेमिं पुरिमाण एगे पुरिस प्रेण दृश्ये,  
पतडे जाय उययम सट न पुरिसे एव ययासी) तब पछी ते भावसेमां जेक भावसे  
ज्येवा पय जतो के के छे बोध सभधने प्रिधानार दक्ष-दक्षकृष्ण प्राप्तार्थ-  
येताथी कुशलताथी-जेजे साधयार्थ प्राप्त करि लीपि छ ज्येवा यावत् गुरुपदेश जेजे  
प्राप्त क्यो छ ज्येवा जतो। तजे का ब्रह्मादक भावसेने आ प्रभावे दक्ष (गच्छत य  
सुप्तं देवानुमिया । जाया, कृतचलिक्रमा जाय ब्रह्ममागच्छत, जा ग भट  
भतण साधमि सि कटु परिकर ययइ) हे देवानुमियो (तमिं देहा स्नान करि,  
वस्त्रिभ भाजय नगेरे ज । नगेरेना भाज आपीने निजिन्त दक्ष ज्येवा यावत्

गृह्णाति गृहीत्वा शरं कराति शरेण अरारिण मध्नाति ज्योतिः पातयतिः ज्योतिः  
संयुक्षते तेषां पुरुषाणामशनं साधयति. ततः खलु ते पुरुषाः स्नाताः  
कृतवलिकर्माणः यावत् प्रायश्चित्ताः यत्रैव स पुरुषः तत्रैव उपागच्छन्ति, ततः  
खलु स पुरुषः तेषां पुरुषाणां सुखासनवरगतानां तद् विपुलमशनं पान खादिमं

रूप कार्य से निश्चिन्त हो जाइये, यावत् कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त कर  
लीजिये और फिर जल्दी आज्ञाइये तबतक मैं आपलोगों के लिये भोजन  
तैयार करता हूँ। ऐसा कहकर उसने अपनी कमर कसी और (फरसुं  
गिण्ड) कुल्हाड़ी को उठाया (मरं करेइ, सरेण अरणिं महेइ) उससे  
पहिले उसने लडकी को इतना छोला कि जिससे वह बाण के जैसी  
शलाई के रूप में हो गई. फिर उससे उसने अरणिक्काष्ठ का मथन किया  
(जोइ पाडेइ) मथन करने से अग्नि उसमें प्रकट हो गई (जोइ संयुक्खेइ)  
प्रकट हुई उस अग्नि को उसने पवन वगैरह आदि साधनों से विशेष  
चैतन्य किया. अर्थात् भोका (तेमि पुरिसाणं असणं साहेइ) अग्नि के  
तैयार हो जाने पर फिर उसने उन सब ऋषियों का भोजन बना दिया (तएण  
ते पुरिमा ण्हाया कयवलिकम्मा जाव पायच्छित्ता जेणेव से पुरिसे तेणेव  
उवागच्छइ) इतने में वे पुरुष स्नान करके, वलिकर्म-काकभादि को अन्नादि का  
भाग दे करके यावत्-कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त करके उस स्थान पर आये-

कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त करी दो. अने पछी जलदी अड़ी उपास्थित थछ भव.  
आटलाभा हुं तभारा भाटे लोअन तेथार कइ छु आम कहीने तेहे पोतानी डेठ  
गाधी अने (फरसु गिण्ड) कुहाड़ी हाथमा लीधी (मरं करेइ सरेण अरणिं  
महेइ) तेहे सौ पडेला लाकडाने ओवी रीते छिद्यु डे ओथी ते भाषु ओत्री शलाका  
ओषु थयु पछी तेनाथी तेहे अरणि कष्टु मथन कथुं (जोइ पाडेइ) मथन  
करवाथी तेमाथी अग्नि प्रकट थछ गयो (जोइ संयुक्खेइ) प्रकट थयेल ते अग्निने  
पवन वगर साधेनाथी तेने सविशेष प्रज्वलित कथी (तेमि पुरिसाण असणं  
साहेइ) अग्नि ज्यारे प्रज्वलित थछ गयो त्यारे तेहे ते गधा बोके भाटे लोअन  
तेथार कथुं. (तएण ते पुरिमा ण्हाया कयवलिकम्मा जाव पायच्छित्ता जेणेव  
से पुरिसे तेणेव उवागच्छइ) आटलाभा ते गधा भाषुसे स्नान करीने, वलिकर्म-  
काकडा वगेरेने अन्न वगेरेनो लाग आपीने यावत् कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त करीने  
ते जय्याओ आवी गया जयां ते पुंइ डतो. तएणं से पुरिसे तेमि पुरिमाणं  
सुहासनवरगयाणं तं विउलं असण पाणं खरइमं माइमं उवणेइ तएणं ते पुरिमा



स्वादिमम् उपनयति, ततः स्वलु ने पुरुषाः तद् विपुलमन्नं पानं स्वादिमं  
 स्वादिमम् आस्वाद्यन्तो विस्वाद्यन्तो यावत् विहरन्ति, जिमितसुक्तो, त  
 रागता अपि च स्वलु सन्तः आशान्ता चाक्ष्णाः परमशुचिभूताः त पुरुष-  
 मेवमवादिपु-महो ! ! स्वलु च देवानुपिया ! जहः मूढः अपष्टितः निर्भिन्नाः  
 अनुपदेशमन्त्रः च स्वलु त्वामन्त्रमि काव्यं द्विषा स्फाटितं वा यावत्

जहाँ कि वह पुरुष या (तएण से पुरिस नहिं पुरिस्ताव सुहासणपरगया नं  
 तं विठल असण पाण स्वाइमं साइम उवणेइ, तएण ने पुरिमा त विठल असण  
 पाण साइम साइम आसाएमाणा विसाएमाणा जाव विहरति) जहाँ  
 आकरके व सयके सब पुरुष अपन सुखासन पर बैठ गये उनके बैठ  
 जाने पर फिर उस पुरुष न उस मन्त्र स्वाण आदि सामग्री को लाकर  
 उनके समक्ष रख दिया और परोस दिया, उन सबने उस मोजन सामग्री  
 चारों प्रकार के आहार को-उसका स्वाद जानम कं मिये पहिले तो  
 खम्बा रुनि से उसे खाया (जिमियसुखतरागया वि य ण समाणा आयता  
 चोक्खा परमसुइयूया त पुरिस एव ययासी) खापीकर जब वे निर्भिन्ना  
 हो गये-तब वहाँ से उठे और उठकर आचमन किया, आचमन-कुछा  
 करने के बाद फिर उन्होंने अपन हाथ मुह आदि को अच्छे प्रकार  
 से धोकर साफ किया इस तरह परम शुचियुक्त होकर फिर उन्होंने  
 उस परिष्ठ पुरुष से ऐसा कहा-(अहो न तुम देवानुपिया ! जहः, मूढ,  
 अपष्टिर् निर्भिन्नाणे अनुपदेशमन्त्रे, जे ण तुम इच्छसि कहुंसि वुहा  
 त विठल असण पाणे स्वाइमं साइम आसाएमाणा विसाएमाणा जाव  
 विहरति) त्यों करने तेजो नया पुत्रो पेटपेटान्ता खाने मुखासन पर बैठी  
 नया, तेजो नयाई बैठी नया त्वाहे ते पुत्रो ते प्रभुर जाव नयेरे सामग्रीने खापीने  
 तमनी सामे भूषी हीपी खाने पीरसी हीपी, तेजो नयाखे तं चोक्ख सामग्रीने  
 खाए प्रभान्ता आइरने-तेन स्वाइने नखुणा भाटे खेला तो तेने पाच्छे पछी  
 भूल इच्छिपूवठ तेने नया, ('जिमियसुखतरागया वि य ण समाणा आयता  
 चोक्खा परमसुइयूया त पुरिस एव ययासी) पाछ-पीने नयाहे तेजो निश्च-  
 यं नया त्वाहे तेजो त्वापी उला नया खाने उला खाने आचमन-हाथ-हरीने  
 पछी तेभले पेटान्ता हाथ में नयेरेने सारी शीते पीछने स्वच्छ कर्वा न्या प्रभामे  
 परम शुचियुक्त भवने पछी तेभले ते पढेला पुत्रने न्या प्रभामे न्या (महो न  
 तुम देवानुपिया ! जहः, मूढ अपष्टिर् निर्भिन्नाणे अनुपदेशमन्त्रे, जे ण

ज्योतिर्द्रष्टुम्, तदेतेनार्थेन प्रदेशिन् ! एवमुच्यते मूढतरकः खलु त्वं  
प्रदेशिन् ! ततः काण्ठहारकात् । ॥ सू० १४६ ॥

टीका--'तए णं केसिकुमारसमणे' इत्यादि-ततः खलु केशिकुमारश्र-  
मणः प्रदेशिन राजानमेवमवादीत्-हे प्रदेशिन ! ततः-तस्मात् काण्ठहारात्  
पुरुषात् त्वं मूढतरकः-अतीव मूर्खः खलु प्रतिभासि ! तत्र प्रदेशी हेतुं  
पृच्छति-हे भदन्त ! कः खलु असौ काण्ठहारकः ? केशी प्राह-हे प्रदेशिन् !

फालियंसि वा जाव जोइं पामित्तए) हे देवानुप्रिय ! तुम जड़ हो, अग्नि  
का उत्पन्न करने के साधन से अनभिज्ञ हो, मूर्ख हो-विवेक रहित हो,  
अपण्डित हो-प्रतिभा से युक्त नहीं हो, निर्विज्ञान-कुशलता तुम में नहीं  
है, अनुपदेशलब्ध-तुम ने इस विषय में गुरु का उपदेश प्राप्त नहीं किया  
है, अर्थात् अशिक्षित हो, इसीलिये लकड़ी में अग्नि को पाने के लिये  
तुमने उसे फाड़ा है, दो टुकड़े किये हैं, तीन टुकड़े किये हैं, चार टुकड़े  
किये हैं. यावत् संख्यात टुकड़े किये हैं, फिर भी तुम उसमें अग्नि  
नहीं देख सके-अतः तुम सन्चेष्टप में मूढत्वाद पूर्वोक्त विशेषणों से शून्य  
नहीं हो. (से एएणट्ठेणं पएसी ! एवं बुच्चइ मूढतराए णं तुमं पएसी !  
ताओ कट्टहाराओ) इस प्रकार से मूढतरत्वसाधक दृष्टान्त का कथन कर  
उपसंहार करते हुए अब केशी प्रदेशी से कहते हैं-हे प्रदेशिन् ! तुम  
इस दृष्टान्तोक्त पुरुष की अपेक्षा भी अधिक मूर्ख हो जो तुम पुरुष के  
शरीर को छिन्न भिन्न करके उसके जीव को देखने के लिये अभिलाषी बने हो ।

तुमं इच्छसि कट्टंसि दुहा फालियंसि वा जाव जोइं पामित्तए) हे देवानु-  
प्रिय ! तमे जड छी, अग्नि उत्पन्न करवाना साधनथी अनभिज्ञ छी, मूर्ख छी,  
विवेक रहित छी, अपण्डित छी, प्रतिभा रहित छी, निर्विज्ञान-कुशलता रहित छी,  
अनुपदेशलब्ध-तमोअये आ जाणतमा सुइनी उपदेश प्राप्प कर्यो नथी, ओटले के तमे  
आशिक्षित छी, ओथी ज लाकडीमाथी अग्नि भेजववा भाटे तमे तेना ककडा करी  
नाअया छे. जे ककडा करी नाअया छे त्रखु ककडा करी नाअया छे, चार ककडाओ करी  
नाअया छे यावत् संख्यात ककडाओ करी नाअया छे. छता अये तमने तेमां अग्नि  
देआये नछि. ओथी तमे भरेभर मूढत्व वगेरे पूर्वोक्त विशेषणोथी रहित नथी  
(से एएणट्ठेणं पएसी ! एवं बुच्चइ मूढतराए णं तुमं पएसी ! ताओ कट्ट-  
हाराओ) आ प्रमाणे मूढतरत्व साधक दृष्टात कडीने उपसंहार करता केशी प्रदेशीनि  
कहेवा लाज्या के हे प्रदेशिन् ! तमे आ दृष्टान्तमा आवेल पुइय करता पणु वधारे  
मूर्ख छी केभडे तमे भाषुसना शरीरना ककडा करीने तेमना छुवने जेवा तत्पर थया हुता,

ते यथानामकाः अनिर्दिष्टनामान कृत्स्न पुरुषाः वनार्थिन-वनमेवार्थोऽ-  
 स्त्यपामिति वनार्थिनः-वनमयोमनयुक्तः। वनापभीक्ष्ण वनेन वन्यकाष्ठादिना  
 उपजीविनःजीवननिर्वाहकारिणः काष्ठहारका इत्यर्थः, वनगवेषणया-वनमिक्षा  
 सया ज्योतिः-अग्निं च ज्योतिर्माजनाम्-अग्निपात्रं च गृहीत्वा काष्ठानाम्-  
 इन्धनानाम् स्थानमूढाम् अग्नीम् अनुमविष्टाः, ततः-तदनन्तरम् ते पुरुषा  
 वस्थाः अग्नौ यिकाया-जनवसतिरहितायाः, अटव्याः क्तिबिदेन-स्वल्पदे-  
 शम् अनुमाप्याः-क्रमेण गता सन्त एक पुरुषम् एवमपाशिपुः-हे दशाश्विन्यः।  
 वयं काष्ठानामटवीं यविशामः, इतः स्वस्त्ये ज्योतिर्माजनात्-अग्निपात्रात्  
 ज्योतिः अग्निं गृहीत्वा अस्माकमश्नन् साधये-निष्पादयः अथ-भोजन  
 निष्पादनसमयं ज्योतिर्माजने तत-पूषतो रक्षिण ज्योतिः विध्यायेत्-  
 शान्येत् तदा इतः-एतस्मात् काष्ठात् स्वस्त्ये ज्योति-अग्निं गृहीत्वा  
 अस्माकमश्नन् साधये इति कृत्वा-इत्यादिप्येते काष्ठहारकाः काष्ठानां  
 मटवीमनुमविष्टाः, ततः-तेषां गमनानन्तरं स्वस्त्ये स पुरुषः ततः-मुहूर्ता-  
 न्तरात्-क्तिबिदेनानन्तरम् तेषां-वनं प्रविष्टानां पुरुषाणाम् अश्नन् साध-  
 यामीति कृत्वा-इत्यभिधेयं यथा-यग्निस्तेन स्थाने ज्योतिर्माजनामासीत्  
 तत्रैव-तस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छति, परन्तु ज्योतिर्माजने-अग्निपात्रं ज्योतिः-  
 अग्निम् विध्यातमेव-प्रशान्तमेव पश्यति, ततः स्वस्त्ये सः-अश्नन्निष्पादनार्थी  
 पुरुषः यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छति उपागत्वा तत् काष्ठं सर्वतः  
 समन्तात् सममिमोक्तते नो वैव-नैव स्वस्त्ये ततः-काष्ठे ज्योति-बहिं पश्यति  
 ततः-तदनन्तरम् स पुरुषः परिकरं क्तिबिदेन बध्नात् पराशु-कृत्वा गृह्णाति तत्  
 काष्ठं त्रिधा स्फाटितं-विदारितं करोति-सर्वतः समन्तात् सममिमोक्तते नो  
 वैव स्वस्त्ये ततः-काष्ठे ज्योति-बहिं पश्यति, एवम्-अनेन प्रकारेण यावत्-  
 यावत्स्यदेन 'त्रिधा स्फाटितं चतुर्धा स्फाटितम्' इत्येषां पदानां सर्वत्रो-  
 बोध्यः, सम्प्रयेयथा-सकृयात्स्वस्त्ये स्फाटितं करोति कृत्वा सर्वतः सम-  
 न्तात् सममिमोक्तते, नो वैव तत् ज्योतिः पश्यति, ततः-तदनन्तरम् स्वस्त्ये  
 स पुरुषः तस्मिन्-कृतकृत्वापरिकरे काष्ठे त्रिधा स्फाटिते यावत् संप्रयेयथा-  
 सकृयात्स्वस्त्ये स्फाटिते वा ज्योतिः अपश्यन् शान्तः-धर्मं यासः, शान्त-  
 -वशान्तः, परितान्तः-विशेषतःकृत्वा-तः, मिर्विणा-स्निग्धः सन् पराशु-कृ-  
 तारम् एकान्ते-रहसि पृच्छति-वेष्टीयोऽप्यमेवपातुर्मोचनायः, तेन 'मुञ्चति'  
 इत्यर्थः मुक्त्या परिकरं-क्तिबिदं गृह्णाति, मुक्त्या एवमपाशोत्-भोजी-।

विस्मयोऽत्र यत् मया मन्दभागेन तेषां पुरुषाणामशन-भोजनं नो साधि-  
तम्, इति कृत्वा-इति विचिन्त्य आहतमनःसंकल्पः-नष्टमनोऽभिलाषः,  
चिन्ताशोकसागरसंप्रविष्टः-चिन्ताशो रूपमुद्रनिपग्नः, करतलपर्यस्तमुखः-  
कातरुनिहितकोलः, मुखशब्दस्य सुवाचयवकपोलपरत्वात्, आर्तध्यानो-  
पगतः-आर्तध्यानयुक्तः, भूमिगतदृष्टिक-पृथिवीतलनिरीक्षणतत्परः-अधो-  
मुखः, ध्यायति-चिन्तां करोति. तत इतश्च ते-अटवीमनुप्रविष्टाः पुरुषा-  
काष्ठानि छिन्दन्ति, छित्त्वा यत्रैव सः अठाननिष्पादनार्थी पुरुषः तत्रैव उपा-  
गच्छन्ति, उपागत्य तं पुरुषम् अपहतमनःसंकल्पं यावत्-यावत्पदेन  
“चिन्ताशोकसागरसंप्रविष्टः, करतलपर्यस्तमुखः, आर्तध्यानोपगतः, भूमि-  
गतदृष्टिकम्” इत्येषां पदानां सङ्गृहो बोध्यः, ध्यायन्त-चिन्तां कुर्वन्त

टीकार्थ स्पष्ट है-इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है-कि जिस प्रकार  
प्रथम पुरुष को काष्ठ में अग्नि के दर्शन नहीं हुए और द्वितीय पुरुष  
को हो गये. उसी प्रकार तुम्हे भी उस चोर पुरुषके शरीर में छिन्नभिन्न  
करने पर भी उसको जीव के दर्शन नहीं हो सके एतावता यह कैसा  
कहा जा सकता है कि जीव दिखाई नहो देने से जीव नाम का कोई  
स्वतंत्र पदार्थ नहीं है. इसलिये जीव और शरीर एक हैं ऐ गीतुम अपनी मान्यता  
का पगियाग कर यह मानो कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है. ये  
दोनों एक नहीं हैं. यहां सूत्र में जो ‘करतलपर्यस्तमुखः’ ऐसा पद आया  
है -उनमें मुखशब्द मुख के अवयवभूत कपोल अर्थ में आया है ‘अपहत-  
मनःसंकल्प जाव’ में जो यह यावत् पद आया है-उससे ‘चिन्ताशोक-  
सागरसंप्रविष्टः, करतल पर्यस्तमुखः, आर्तध्यानोपगतः, एव भूमिगतदृष्टिकः’

टीकार्थ आ सूत्रनी स्पष्ट न छि आ सूत्रनी भावार्थ आ प्रमाण छि के  
जेम पड़ेला भाष्यसने काष्ठमां अग्निना दर्शन थया नथी अने भीम भाष्यसने थया  
तेमज ते चोर पुड़ना शरीरना कडके कडका करवा छताये तेना एवना  
दर्शन तमने थया नथी अनाथी आ डेवी रीते कही शकय के एव देखातो नथी.  
तेथी एव नामने काष्ठ स्वतंत्र पदार्थ नथी- अथी एव अने शरीर अेक न छि.  
अेवी तमारी जे मान्यता छि तेने तमे छोडी हो अने आ वात स्वीकारी होके एव  
भिन्न छि अने शरीर भिन्न छि अेयो भन्ने अेक नथी. अही सूत्रमा जे ‘करतल  
पर्यस्तमुखः’ आ गतनुं पद छि तेमा मुअ शब्द मुअना अवयवभूत कपोल  
अर्थमा आवेल छि “अपहतमनः संकल्प जाव”-मां जे यावत् पद आवेल छि,  
तेथी ‘चिन्ताशोकसागरसंप्रविष्टः करतलपर्यस्तमुखः आर्तध्यानोपगतः एवं

ते यथानामकाः अनिर्विष्टनामान कृत्स्न पुरुषाः वनार्थिनः-वनमेवार्थो  
 स्येषामिति वनार्थिनः-वनमयोमनयुक्ता वनापजीविनः वनेन वन्यकाष्ठादिना  
 उपजीविनः जीवननिर्वाहकारिणः काष्ठहारका इत्यर्थः, वनगणेष्वप्यप्य-वनमिक्षा  
 स्या ज्योतिः-अग्नि च ज्योतिर्मात्रमम्-अग्निपात्र च गृहीत्वा काष्ठानाम्-  
 इषानाम् स्थानभूताम् अग्नीम् अनुमण्डिताः, ततः-तदनन्तरम् ते पुरुषा  
 वस्याः अग्रोमिकाया-अननसतिरहिताया, अटव्याः कठिष्ठेष्वेव-मध्यवे  
 शम् अनुमाप्ताः-क्रमेण गताः सन्तः एक पुरुषम् एवमवाशिपुः-इदं द्वावपि।  
 वय काष्ठानामटवीं प्रविष्टावः, इतः स्वस्त्य उच्यते-मार्जनात्-अग्निपात्रात्  
 ज्योतिः अग्नि गृहीत्वा अस्माकमश्ननं साधये-निष्पादये। अथ-मोमम  
 निष्पादनसमये ज्योतिर्मार्जने तत्-पृथक् तो रसि च ज्योतिः विष्पायेद्-  
 श्वाप्येत् तदा इत-एतस्मात् काष्ठान् स्वस्त्य उच्यते-अग्निं गृहीत्वा  
 अस्माकमश्ननं साधये इति कृत्वा-इत्याशाप्य ते काष्ठहारकाः काष्ठाना  
 मटवीमनुमण्डिताः, ततः-तेषां गममानन्तरं स्वस्त्य स पुरुषः ततः-मुहूर्त-  
 न्तरात्-कठिष्ठकामोन्तरम् तेषां-वनं प्रविष्टानां पुरुषाणाम् अश्ननं साध  
 यामीति कृत्वा-इत्यपिमेव यत्रैव-यग्मिन्नेव स्थाने ज्योतिर्मात्रममासीत्  
 तत्रैव-तस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छति, परन्तु ज्योतिर्मात्रमे-अग्निपात्र ज्योतिः-  
 अग्निम् विष्पातमेव-प्रशान्तयेव पश्यति, ततः स्वस्त्य सः-अश्नननिष्पादनार्थं  
 पुरुषः यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य तत् काष्ठं सर्वतः  
 समन्तात् सममिम्लोकते नो धैव-नैव स्वस्त्य नत्-काष्ठे ज्योतिः-बहिः पश्यति  
 तत्-तदनन्तरम् स पुरुषः परिकरं कटिक्पनं गृह्णाति परशु-कृडारं गृह्णाति तत्  
 काष्ठं विषा स्फाटितं-विदारितं करोति-सर्वतः समन्तात् सममिम्लोकते नो  
 धैव स्वस्त्य तत्-काष्ठे ज्योतिः-बहिः पश्यति, एवम्-अनेन प्रकारेण यावत्-  
 यावत्स्यदेन 'विषा स्फाटितं चतुर्धा स्फाटितम्' इत्येषां पदानां सर्वत्रो  
 च्यते, सकृदेव-सकृदात्स्वस्त्य स्फाटितं करोति कृत्वा सर्वतः सम  
 न्तात् सममिम्लोकते, नो धैव तत् ज्योतिः पश्यति, ततः-तदनन्तरम् स्वस्त्य  
 स पुरुषः तस्मिन्-कटिक्पनमहारे काष्ठं विषा स्फाटितं यावत् सकृदेव-  
 सकृदात्स्वस्त्यः स्फाटितं वा ज्योतिः अपश्यन् आन्तः-अन्तः प्रासः, तन्तः  
 -वसान्तः, परितान्तः-विशेषतः-वला-तः, निर्दिष्टः-स्विन्नः सन् परशु-क  
 डारम् एकान्ते-रहसि एव-वेष्टीयोऽप्येवमाप्तुर्मोचमायः, तेन 'मुञ्चति'  
 इत्यर्थः मुञ्चति परिकरं-कटिक्पनं गृह्णाति, मुञ्चति एवमवादीत्-मो॥-

परिकरं मुञ्चामि एवमवादिषु-अहो ! ! मया तेषां पुरुषाणामशनं नो साधितमिति कृत्वा अपहतमनः संकल्पः चिन्नाशोकसागरसंप्रविष्टः वरतल पर्यस्तमुख आर्ध्यानोपगतो भूमिगतदृष्टकः” इत्येषां सङ्ग्रहो बोध्यः, एषां व्याख्याऽस्मिन्नेव सूत्रे पूर्व कृता. ध्यायामि-चिन्तां करोमि, ततः-तदनन्तरं तेषां पुरुषाणां मध्याद् एकः कोऽपि पुरुषः लेकः-अवसरज्ञः, दक्षः-कार्य-कुशलः, प्राप्तार्थः-निजकौशलेनाधिगतसाध्यरूपार्थः, यावत्-यावत्पदेन-“बुद्धः, कुशलः, महामतिः विनीतः विज्ञानप्राप्तः” इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, एषां व्याख्या पूर्व गता, तथा उपदेशलब्धः-प्राप्तगुरुपदेशः, शिक्षित इति यावत्, एतादृश एकः पुरुषः तान्-काष्ठहारकान् पुरुषान् एवमवा दोत्-हे देवानुप्रियाः ! गृय गच्छत खलु स्नाताः-कृतस्नानाः कृतवलि-कर्माणः-कृतवायमादिनिमित्तान्नदानाः, यावत्-प्रायश्चित्ताः-यावत्पदेन-कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः” इत्येतत्पदसङ्ग्रहो बोध्यः, एतादृशः सन्तः शीघ्रमागच्छत, कियता कालेन ? इति जिज्ञासायामाह-यावत्-यावत्कालेन खलु अहम् अशन-भोजनं साधयामि-नष्टपादयामि. इति कृत्वा-इत्युक्त्वा परिकरं बध्नाति-कटिवन्धनं करोति, पशु-कुठारं गृह्णाति, गृहीत्वा शरं-चाणसदृशं प्रतनुकाष्ठं करोति तेन शरेण-तनूकृतकाष्ठेन अरणिं-काष्ठ विशेषं म ध्नाति-संघर्षति, ज्योतिः-अग्निं पातयति-निष्काशयति, पातयित्वा जयतिः-बहिः संपुक्षते-संदीपयति, संदीप्य तेषां पुरुषाणामशनं साधयति, ततः-अशननिष्पादनानन्तरम् खलु ते पुरुषाः स्नाताः कृतवलिकर्माणः यावत् प्रायश्चित्ताः-कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः सन्तः यत्रैव स पुरुष आसीत् तत्रैव उपागच्छन्ति, ततः खलु स पुरुषः तेषां पुरुषाणाम्, सुखासनवरगतानां-

हैं इसमें एह धातु मोचन अर्थ में है। ‘अहो’ शब्द विस्मयार्थक है। ‘पत्तद्वे जाव’ में जो यावत्पद आया है-उससे यहाँ ‘बुद्धः, कुशलः, महामतिः, विनीतः, विज्ञानप्राप्तः’ इन पदों का संग्रह हुआ है। इन पदों की व्याख्या पहिले की जा चुकी है। ‘कयवलिकम्मा जाव’ में आये हुए यावत् पद से ‘कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः’ इस पद का संग्रह हुआ है। ‘दुहा फालियंसि

शब्द देशीय छे. आभा “एह” धातु “मोचन” अर्थभ. छे. “अहो” शब्द विस्मया-र्थक छे. “पत्तद्वे जाव” भा ने यावत् पद आवेल छे. तेथी अडी “बुद्धः, कुशलः, महामतिः विनीतः, विज्ञानप्राप्तः,” भा पढेनो संग्रह थये छे. भा पढेनी ध्याध्या पढेलो करवाभा आवी छे. “कयवलिकम्मा जाव” भा आवेल यावत् पदथी “कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः” भा पढेनो संग्रह थये छे. “दुहा फालियंसि

पश्यन्ति, इष्टो एषम् अनुपद् वक्ष्यमाण वचनम् अवादिषु—किं—  
कारणं स्वस्तु ? हे देवानुमिय ! त्वम् अपष्टलमनःसहस्यः यावत्—यावत्  
सि ?—चिन्तां करोषि ? ततः—तदनन्तरम् स्वस्तु स पुरुषः एषमवादीत—  
देवानुमिया ! यम् स्वस्तु काष्ठानामटवीमनुपविशन्तः मम एवमवादिष्ट—कथं  
तवन्तः, किमिह्याह—हे देवानुमिय ! यम् स्वस्तु काष्ठानामटवीं यावत्—यावत्  
त्वदेन “प्रविशामः, इतः स्वस्तु त्व ज्योतिर्माजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माकमशन  
साधये, अथ तज्ज्योतिर्माजने ज्योतिर्विध्यायेत् इतः स्वस्तु त्व काष्ठान् ज्यो  
तिर्गृहीत्वाऽस्माकमशन साधयेरिति कृत्वा काष्ठानामटवीम्” इत्येषां  
पदानां सर्वेहो धोष्यः, अनुपविष्टाः, ततः—तदनन्तरं स्वस्तु अहं ततो—मुहं  
तन्तिराहं युष्माकमशन साधयामीति कृत्वा यथैव ज्योतिर्माजनं यावत्—यावत्  
त्वदेन “तत्रैव उपागच्छामि ज्योतिर्माजने ज्योतिर्विध्यायमेव पश्यामि, ततः  
स्वस्तु अहं यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छामि, उपागम्य तत् काष्ठं  
सर्वतः समन्तात् सममिलोके नो वैव तत्र ज्योतिः पश्यामि, ततः स्वस्तु अहं  
परिकरं वदामि परशुं गृह्णामि तत् काष्ठं त्रिधा स्फाटितं करामि कृत्वा  
सर्वतः समन्तात् सममिलोके नो वैव तत्र ज्योतिः पश्यामि, एव यावत्  
त्रिधा चतुर्धा संख्येयया स्फाटितं करोमि सर्वतः समन्तात् सममिलोके नो  
वैव तत् ज्योतिः पश्यामि, तत् स्वस्तु अहं तस्मिन् काष्ठे त्रिधा स्फाटिते  
वा यावत् त्रिधा चतुर्धा संख्येयया वा स्फाटिते ज्योतिरपश्यन् आन्तः  
तान्तः परितान्तः निर्विघ्नं सन् परश्वयकान्ते (एकामिदे०) वृक्षामि वृक्षत्वा

इन पदों का प्रथम हुआ है। ‘काष्ठानामटवीं यावत्’ में आये हुए यावत्पद से  
‘प्रविशामः इतः स्वस्तु त्व ज्योतिर्माजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माकमशन साधये’,  
अथ तज्ज्योतिर्माजने ज्योतिर्विध्यायेत्—इतः स्वस्तु त्व काष्ठान् ज्योतिर्गृहीत्वा  
अस्माकमशन साधयेरिति कृत्वा काष्ठानामटवीम् इस पाठ का समग्र हुआ  
है। ‘एव यावत् संख्येयया’ में आये हुए यावत्पद से त्रिधा स्फाटित,  
चतुर्धा स्फाटितम्’ इन पदों का समग्र हुआ है। एकति’ यह शब्द देवीय

युमिगत इष्टिक” आ पद्येत् अहं अहं है ‘काष्ठानामटवीं यावत्’ में आये  
यावत् पद की ‘प्रविशामः इतः स्वस्तु त्व ज्योतिर्माजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माक  
मशन साधये, अथ तज्ज्योतिर्माजने ज्योतिर्विध्यायेत्—इतः स्वस्तु त्व  
काष्ठान् ज्योतिर्गृहीत्वा अस्माकमशन साधयेरिति कृत्वा काष्ठानामटवीम्’  
आ पद्येत् अहं अहं है। ‘एव यावत् संख्येयया’ में आये  
यावत् पद की ‘त्रिधा स्फाटितं चतुर्धा स्फाटितम्’ आ पद्येत् अहं अहं है। ‘एकति’ आ

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत—युतः  
खलु भदन्त ! युत्मावम् अतिच्छेकानां दक्षाणां बुद्धानां कुशलानां महाम  
तीना विनीतानां विज्ञानप्राप्तानाम् उपदेशलब्धानाम् अहम् अस्याः महाति  
महालयाः परिषदो मध्ये उच्चावचैः आक्राशैः अक्रोष्टुम्, उच्चावचोभिरुद्ध-  
र्षणाभिरुद्धर्षितुम्, उच्चावचामिर्निर्भर्त्सनामिर्निर्भर्त्सयितुम्, उच्चावचा  
मिर्निःछोटनामिर्निःछोटयितुम् ? । सू० १४७।

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केशिकुमारसमणं एवं वयासी) इमके  
बाद प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(जुत्तएणं भंते !  
अइदक्खाणं बुद्धाणं कुमलाणं महामईणं विणीयाणं, विण्णाणपत्ताणं, उव  
एसलद्धाणं) हे भदन्त ! अतिच्छेक-अवसरज्ञ, दक्ष-चतुर, बुद्ध-तत्त्वज्ञ, कुशल-  
कर्तव्या-कर्तव्य निर्णायक, महामति औत्पत्तिको आदिवुद्धियों से युक्त,  
विनीत-शिष्ट, विज्ञानप्राप्त-सत् असत् के विवेक से संपन्न, एवं उपदे-  
शलब्ध-गुरु के उपदेश को प्राप्त करने वाले ऐसे आपके लिये (अहं इमी  
साए महइमहालियाए परिसाए मज्जे) मुझ से इस अतिविशाल परिपदा  
के बोच में (उच्चावएहिं आउसेहिं आउमित्तए, उच्चावयाहिं उद्धमणाहिं  
उद्धमित्तए) उच्चावच-नाना प्रकार के कठिनवचनरूप आक्रोशों से संजाप  
करना नानाप्रकार की अनादर सूचक वचनरूप उद्धर्षणाओं से मुझे उद्ध-  
र्षित करना, (एवं उच्चावयाहिं निव्वंछणाहिं निव्वंछित्तए, उच्चावयाहिं

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—तए णं पएसी राया केशिकुमारसमणं एवं वयासी) त्थार  
पणी प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाणे क्खु—(जुत्तएणं भंते ! अइद-  
क्खाणं बुद्धाणं कुमलाणं महामईणं विणीयाणं, विण्णाणपत्ताणं, उवएसलद्धाणं)  
हे भदन्त ! अतिच्छेक-अवसरज्ञ, दक्ष-चतुर, बुद्ध-तत्त्वज्ञ, कुशल-कर्तव्याकर्तव्य निर्णाय-  
क, महामति-औत्पत्तिकी वजोरे बुद्धीबोधी युक्त, विनीत-शिष्ट, विज्ञान प्राप्त-  
सत् असत्तना विवेकधी युक्त अने उपदेशलब्ध-गुरुना उपदेशने प्राप्त करनेवाले बोवा  
तभारा वडे (अहं इमीसाए महइमहालियाए परिसाए मज्जे) भारी साथे  
आ अतिविशाल परिपदानी वच्चे (उच्चावएहिं आउसेहिं आउमित्तए, उच्चावयाहिं  
उद्धमणाहिं उद्धमित्तए) उच्चावच-अनेक जतना करीर वचनरूप आ-केशोथी  
संजाप करवु-अनेक प्रकारना अपमान सूचक वचनरूप उद्धर्षणाओथी उद्धर्षित करवु



मुम्बदोषमासनोऽविष्टानाम्, सताम् पुरतः तत्-माचित, विपुल-पुष्पमय,  
अशन पान स्वादिम स्वादिमम् उपनयति-परिवेष्टायति, तताः सद्य ते  
पुरुषा तद्विपुलमञ्जन पान स्वादिम स्वादिमम् आस्थादयन्तः-सामान्यतः  
स्थादयन्त, विम्यादयन्तः-विद्योषण स्वादयन्तः, यावत् यावत्पदेन-“परिमा-  
जयम् परिमुञ्जाना’ इत्यनयो-पदयो सङ्गो पाठ्य, तथ परिमात्रयन्त-  
परितो यज्यन्तः, परिमुञ्जाना-परित-आर्क्षन् मुञ्जाना, विहरन्ति-तिष्ठन्ति।  
निमित्तमुक्तोत्तरागता-निमित्त-चतुर्विधमञ्जन तस्य चतुर्विध-भोजन तदुत्तरं  
तदनन्तर कालम् आगता-प्राप्ता अपि च मन्तः आवाता-कृताऽऽवमनाः  
शोका सामान्यतः शुद्धा, परमशुचिमृताः-गण्डपादिमिर्मिर्जयतः शुद्धा तप  
पुत्रयम्, पश्य-अनुपद्वयस्यमाण वक्ष्यम अवातिपुः-अहो ! ! त्रेकानुप्रिय !  
।य सद्य ऊह अक्षसदृशः-विशिष्टचेतनारहितत्वात्, मूढः-सर्व, अपरिहितः  
मदसमिधेकविकल्पात् निर्विश्रान्त कौटल्यरहितः अनुपदेयस्य अमात  
गुरुपदेष्ट-अभिक्षिप्तमासि, गणयम् सद्य द्विषा स्फटिते काष्ठे यावत् त्रिषा  
चतुर्षा समयेयथा वा स्फटिते काष्ठे ऋणोति बहिर्द्रष्टुमिच्छामि इति मूढ  
तरत्नसाधकदृष्टान्तमुक्त्वोपसहरति हे पदधिम् तदेतेन-अनन्तरोक्तन मर्त्येन-  
दृष्टान्तरूपेण, एवम् इत्यम् उच्यते कथ्यते यद् हे पदधिन् ! तस्मात्  
अपावकात् काष्ठहारात् मूढतरः-अतिमूलः अस्ति । सू० १४५॥

मूलम्-तद्य णं पयसी राया केसिकुमारसमण एव वयासी-  
नुस्य ण मते ! अद्दस्खाणं बुद्धाणं कुसलाणं महामई ण विण  
याण विण्णाणपत्ताण उवएसलद्धाणं अह इमीसाए महइ महालयाए  
परिमाए मज्जे उच्चावएहिं आउसेहिं आउसित्तए, उच्चावयाहिं  
उउसणाहिं उउसित्तए, एव उच्चावयाहिं निब्भसुणाहिं निब्भ  
छत्तए, उच्चावयाहिं निच्छोदणाहिं निच्छोदित्तए ? ॥ सू० १४७॥

या आर’ में यावत् पद से ‘त्रिषा, चतुर्षा संकयेयथा वा स्फटिते काष्ठे’  
इम पदों का स प्रसङ्ग हुआ है ॥ सू० १४६॥

वा जाय’ भा आयेत यावत् मयी ‘त्रिषा, चतुर्षा, समयेयथा वा स्फटिते काष्ठे’  
भा चेतोने स अद्द अथे छ ॥ सू० १४६॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत-युतः  
खलु भदन्त ! युत्मायम् अतिच्छेकानां दक्षणां बुद्धानां कुशलानां महाम  
त्तीना विनीतानां विज्ञानप्राप्तानाम् उपदेशलब्धानाम् अहम् अस्याः महाति  
महालयाः परिषदो मध्ये उच्चावचैः आकाशैः अक्रोष्टुम्. उच्चावचोभिरुद्ध-  
र्षणाभिरुद्धर्षयितुम्, उच्चावचाभिर्निर्भर्त्सनाभिर्निर्भर्त्सयितुम्, उच्चावचा  
भिर्निःछोटनाभिर्निःछोटयितुम् ? । सू० १४७॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केशिकुमारसमणं एवं वयासी) इमके  
चाद प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से ऐमा कहा—(जुत्तएणं भंते !  
अइदक्खणं बुद्धाणं कुमलाणं महामईणं विणीयाणं, विण्णाणपत्ताणं, उव  
एमलद्धाणं) हे भदन्त ! अतिच्छेक-अवमगज, दक्ष-चतुर, बुद्ध-तत्त्वज्ञ, कुशल-  
कर्तव्या-कर्तव्य निर्णायक. महामति औत्पत्तिको आदिवुद्धियों से युक्त,  
विनीत-शिष्ट, विज्ञानप्राप्त-सत् असत् के विवेक से संपन्न, एव उपदे  
शलब्ध-गुरु के उपदेश को प्राप्त करने वाले ऐसे आपके लिये (अहं इमी  
साए महइमहालियाए परिसाए मज्झे) मुझे से इस अतिविशाल परिपदा  
के बीच में (उच्चावएहिं आउसेहिं आउमित्तए, उच्चावयाहिं उद्धमणाहिं  
उद्धमित्तए) उच्चावच-नाना प्रकार के कठिनवचनरूप आक्रोशों से संश्लेष  
करना नानाप्रकार की अनादय मूचक वचनरूप उद्धर्षणाओं से मुझे उद्ध-  
र्षित करना, (एवं उच्चावयाहिं निवमंछणाहिं निवमंछित्तए, उच्चावयाहिं

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केशिकुमारसमणं एवं वयासी) त्थार  
पणी प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रमाणे क्खु—(जुत्तएणं भंते ! अइद-  
क्खणं बुद्धाणं कुमलाणं महामईणं विणीयाणं, विण्णाणपत्ताणं, उवएसलद्धाणं)  
हे भदन्त ! अतिच्छेक-अवसरज, दक्ष-चतुर, बुद्ध-तत्त्वज्ञ, कुशल-कर्तव्याकर्तव्य निर्णाय  
क, महामति-औत्पत्तिकी वगेरे बुद्धीयोगी युक्त, विनीत-शिष्ट, विज्ञान प्राप्त-  
सत् असत्तना विवेकशी युक्त अने उपदेशलब्ध-गुरुना उपदेशने प्राप्त करनेवाले ऐमा  
तभारा वडे (अहं इमीसाए महइमहालियाए परिसाए मज्झे) मारी साथे  
आ अतिविशाल परिपदानी वच्चे (उच्चावएहिं आउसेहिं आउमित्तए, उच्चावयाहिं  
उद्धमणाहिं उद्धमित्तए) उच्चावच-अनेक मतना प्रकार वचनरूप आ-क्रोशो  
संश्लेष करवु-अनेक प्रकारना अपमान सुयक वचनरूप उद्धर्षणायोगी उद्धर्षित करवु

सुखदोषमासनोरविष्टानाम्, सताम् पुरतः तत्-माश्रित, विभुत-पुष्टसम,  
 भोजन पान स्वादिम स्वादिमम् उपनयति-परिवेष्टायति, ततः सद्य ते  
 पुरुषाः तद्विपुलमन्नं पान स्वादिम स्वादिमम् आस्थादयन्तः-सामान्यतः  
 स्नादयन्त, विस्मादयन्तः-चिदोपण स्वादय-तः, यावत् यावत्पदेन-‘परिमा  
 जयन्तः परिमुञ्जामा’ इत्यनयो पदयो सङ्गो बोध्य, तत्र परिमाजयन्त-  
 परितो वक्ष्यन्तः, परिमुञ्जाना-परित-भार्तासि मुञ्जाना, विहरन्ति-तिष्ठन्ति ।  
 विमित्तमुक्तोत्तरागता-निमित्त-वस्तुविषयज्ञान तस्य द्रष्टु-भोजन तदुत्तरं  
 तदनन्तर कालम् आगत-प्राप्ता अपि व मन्तः आकांक्षा-कृताऽऽचमनाः  
 बोक्षा सामान्यतः शुद्धाः, परमशुचिभूताः-गङ्गापादिमिर्मिश्रेणतः शुद्धाः तत्र  
 पुरुषम्, पश्य-अनुपद वक्ष्यमाण वक्षः म अवादिपुः-अहो ! ! देवानुमिष ।  
 य सद्य नष्टः नष्टसदृशः-विशिष्टचेतनारहितत्वात्, मूढः-सुखः, अपश्चितः  
 महसमिषेकविकल्पात्, निर्विज्ञान-कौटल्यरहितः, वस्तुपदेनसम्भ्रम आमात्र  
 एकपदेन अपश्चितत्वात्, गम्यमानं स्वयं विद्या स्फटिते काष्ठे यावत् त्रिषा  
 वतुर्षा सस्येयया वा स्फटिते काष्ठे-उपोतिः वह्निं द्रष्टुमिच्छामि इति मूढ  
 वरत्नसाधकदृष्टान्तमुपान्वोपसहरति हे प्रदक्षिन् वदेतेन-अनन्तरोत्तम वर्धेन-  
 दृष्टान्तस्येव, एवम् हरयम् उच्यते कथ्यते यद् हे प्रदक्षिन् ! तस्मात्  
 अवाचकात् काष्ठहारात् सूक्ष्म-अतिमूलः अस्ति ।। सू० १४६॥

सूत्रम्-तत्र ण पयसी राया केसिकुमारसमर्ण एव वयासी-  
 नुत्तप णं भते । अद्दमस्त्राणं नुद्धाणं कुसलाणं महामई ण विण  
 याण विण्णाणपत्ताण उवएसलद्धाणं अह इमीसाएमहइ महालयाए  
 परिमाए मज्जे उच्चावएहिं आउसेहिं आउसित्तए, उच्चावयाहिं  
 उरुसणाहिं उरुसित्तए, एव उच्चावयाहिं निब्भछणाहिं निब्भ  
 छित्तए, उच्चावयाहिं निच्छोदणाहिं निच्छोदित्तए ? ॥सू० १४७॥

वा जाव' में यावत् पद से 'त्रिषा, वतुर्षा सस्येयया वा स्फटिते काष्ठे'  
 इन पदों का समग्र कुभा है ॥ सू० १४६॥

वा जाव' में आवेक यावत् यथी 'त्रिषा, वतुर्षा, सस्येयया वा स्फटिते काष्ठे'  
 आ पदेना संश्लेष यथो छे ॥सू० १४६॥

पायच्छिण्णए वा सीसच्छिण्णए वा सूलाइए वा एगाहच्चै<sup>(१)</sup> कूडा-  
हच्चै जीवियाओ ववरोविज्जइ ? । जे णं गाहावइपरिसाए अवरज्जइ  
से णं तएण वा वेढेण वा पलालेणं वा वेढित्ता अगणिकाएणं झामि-  
ज्जइ २ । जे णं माहणपरिसाए अवरज्जइ से णं अणिट्ठाहिं अकं-  
ताहि जाव अमणामाहिं वग्गूहिं उवालेभित्ता कुंडियालंछणए वा  
सुणगलंछणए वा कीरइ, निव्विसए वा आणविज्जइ ३ । जे णं  
इसिपरिसाए अवरज्जइ से णं णाइअणिट्ठाहिं जाव णाइ अमणा-  
माहिं वग्गूहिं उवालेभइ ४ । एवं च, ताव पएसी ! तुमं जाणासि  
तहावि णं तुम ममं चान वामेणं, दंडं दडेणं, पडिकूलं पडिकूलेणं,  
पडिलोमं पडिलोमेणं विवज्जासं विवज्जासेणं वट्ठसि ? ॥सू० १४८॥

छाया—ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्—  
जानामि खलु त्वं प्रदेशिन् । एतिपरिषदः प्रज्ञप्ताः ? । जानामि चतस्रः परि-  
षदः प्रज्ञप्ताः, तत्रैव—क्षत्रियपरिषत् १, गार्थापतिपरिषत् २, ब्राह्मणपरिषत्

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केसी कुमारसमणे) केशीकुमारश्र-  
मणने (पएसिं राय एव वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(जाणासि णं  
तुम पएसी ! कइ परिसाओ पणत्ताओ १, ) हे, प्रदेशिन् ! तुम जानते हो-  
कितनी परिषदाँ कही गई हैं ? प्रदर्शने कहा—(जाणामि चत्तारि परिसाओ  
पणत्ताओ) हाँ भदन्त ! जानता, दू—चार परिषदा कही गई हैं, (तुं जहा-

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएण) त्थार पछी (केसी कुमारसमणे) केशी कुमार श्रमण  
(पएसिं राय एव वयासी) प्रदेशी राजने आ प्रभावे कछु. (जाणासि णं तुमं  
पएसी ! कइ परिसाओ पणत्ताओ १) हे प्रदेशिन् ! तमे न्हावे छे के परिषदा-  
ओ केटवी कहेवाय छे ? प्रदेशीओ कछु. (जाणामि चत्तारि परिसाओ पणत्ताओ)  
हाँ, भदन्त ! हु न्हावे छुं के चार नतनी परिषदाओ कहेवाया आवी छे.  
(त जहा, क्षत्रियपरिसा १, गाहावइपरिसा २, माहणपरिसा ३, इसि-  
परिसा ४) ने आ प्रभावे छे—क्षत्रिय परिषदा, १ गार्थापति परिषदा २, ब्राह्मण

नीका—“तए व पणसी” इत्यादि—ततः प्यालु म प्रदेक्षी रामा केचि  
 कुमारभ्रमणमेवमवादीत्—हे मन्दन्त । भ्रमिन्नेकानाम्—अधमरज्ञानां, दक्षामाम्—  
 चतुराणां, बुद्धानाम्—तपस्विज्ञानां, कुशामाम्—कस व्यावृत्तधर्मापकानां,  
 मरामनीनाम्—मौल्यसिन्धुपादिपुद्गियुक्तानां विनीतानाम् शिष्यानां, विद्वानमात्र-  
 नाम्—सर्वमद्विषेकमभ्यन्तानाम्, उपदेशलक्षणां पातगुरुपदेशानाम्, युष्माकम्  
 अह्याः उपस्थिताया, महति महामयायाः भ्रमविश्रामाया परिपशुः समापामये  
 उदवाचैः—नानाविधैः, भोक्रोचैः—कठिनवचनरूपैः, भाक्रोद्गुम्—सम्पितुम्,  
 उदवाचचाभिः—नानाविधाभिः उदर्पणामि—अनादर सचकवचनलक्षणाभिः,  
 उदर्पयितुम्—वक्तुम्, उदवाचचाभिः—नानाविधाभिः निर्मत्स्यनाभिः—अश्वे-  
 मनाभिः, निर्मत्स्ययितुम् अश्वेवदितुम्—उदवाचचाभिः—नानाप्रकाराभिः निभोटना  
 मि—नीरसवचनावलीभिः, निभोटयितुम्—समापितुम्, यह किं युक्तकः—  
 युक्तोऽस्मि—योग्योऽस्मि ? सभासमसमेताश्च कथं व्यवहारो मत्कृत  
 भवाद्वानां महापुरुषाणां नोचित इति भाव ॥ सू० १४७ ॥

सूत्रम्—तए णं केसी कुमारसमणे पयसिं राय एव वयासी-  
 जाणासि णं तुम पयसी । कह परिसाओ पणत्ताओ ? । जाणामि  
 चत्तारि परिसाओ पणत्ताओ, त जहा—स्वत्तियपरिसा १, गाहावह  
 परिसा २, माहणपरिसा ३, इसिपरिसा ४ । जाणासि णं तुम पयसी !  
 एयासि चउण्हं परिसाणं कस्स का ददणीई पणत्ता ? हुता ।  
 जागामि—जे णं स्वत्तियपरिसाए अवस्सइह से जं हत्थच्छिण्णए वा

निष्ठाद्वयार्थि निष्ठाद्विस्तार) नामा प्रकार की अश्वेखनारूप निर्मत्स्यमाभों  
 द्वारा मेरी निर्मसना कना तथा नानाप्रकार की नीरसवचनरूप निभोटनाओं  
 द्वारा मुझ से चामना क्या योग्य है ? अर्थात् भाष जैम महापुरुषों को सभा  
 के समक्ष ऐसा वचनरूप व्यवहार मेरे साथ करना उचित नहीं है।  
 टीकार्थ—स्पष्ट है ॥ सू० १४७ ॥

(एव उदवाचयार्थि निष्ठाद्वयार्थि निष्ठाद्विस्तार, उदवाचयार्थि निष्ठाद्वयार्थि निष्ठा  
 द्विस्तार) अनन्त प्रकारना अश्वेखनारूप निर्मत्स्यमाभोंवत् भारी कर्त्तव्य करणी तोमर अनन्त  
 प्रकारनी नीरसवचनरूप निभोटनाओं वत् भने अर्थे तोम माहण ॥ येअ छ ?  
 ओटवे के तमारा जेवा महापुरुषोंने सभानी वचने आ व्यवना वचने। उदवाच  
 का मत नहीं है उदवाच. टीकाके स्पष्ट व छ. ॥ सू० १४७ ॥

પાયચ્છિળ્ળણ વા સીસચ્છિળ્ળણ વા સૂલાઈણ વા એગાહચ્ચે<sup>૧</sup> કૂડા-  
હચ્ચે જીવિયાઓ વવરોવિજ્જઈ ? । જે ણં ગાહાવહપરિસાણ અવરજ્જઈ  
સે ણં તણ વા વેદેણ વા પલાલેણં વા વેદિત્તા અગણિકાણં જ્ઞામિ-  
જ્જઈ ૨ । જે ણં માહણપરિસાણ અવરજ્જઈ સે ણં અણિટ્ટાહિં અકં-  
તાહિ જાવ અમણામાહિં વગ્ગૂહિં ઉવાલેભિત્તા કુંડિયાલંછણ વા  
સુણગલંછણ વા કીરઈ, નિવિસણ વા આણવિજ્જઈ ૩ । જે ણં  
ઈસિપરિસાણ અવરજ્જઈ સે ણં ણાઈઅણિટ્ટાહિં જાવ ણાઈ અમણા-  
માહિં વગ્ગૂહિં ઉવાલભમ્મઈ ૪ । એવં ચ, તાવ પણસી ! તુમં જાણાસિ  
તહાવિ ણં તુમં મમં વામ વામેણં, દંદં દંદેણં, પઢિકૂલં પઢિકૂલેણં,  
પઢિલોમં પઢિલોમેણં વિવજ્ઞાસં વિવજ્ઞાસેણં વટ્ટસિ ? ॥ સૂ. ૧૪૮ ॥

છાયા—તતઃ સ્વલુ કેન્દ્રી કુમારશ્રમણઃ પ્રદેશિનં રોજાનમેવમવાદીત-  
જાનામિ સ્વલુ ત્વં પ્રદેશિન્ । પતિપરિષદઃ પ્રવ્રતાઃ ? । જાનામિ ચતસ્રઃ પરિ-  
ષદઃ પ્રજ્ઞમાઃ, ત્રયથા—ક્ષત્રિયપરિષત્ ૧, ગાથાપતિપરિષત્ ૨, બ્રાહ્મણપરિષત્

‘તણ ણં કેસીકુમારસમણે’ इत्यादि ।

સૂત્રાર્થ—(તણ ણં) હસકે વાદ । (કેસી કુમારસમણે) કેસીકુમારશ્ર-  
મણને (પણિં રાય એવ વચામો) પ્રદેશી રાજા સે એસા કહા—(જાણાસિ ણં  
તુમ પણસી ! કહ પરિસાઓ પળ્ણત્તાઓ ?) હે પ્રદેશિન્ ! તુમ જાનતે હો-  
કિતની પરિષદાઈ કહી ગઈ હૈં ? પ્રવ્રજાને કહા—(જ્ઞાણામિ ચત્તારિ પરિસાઓ  
પળ્ણત્તાઓ) હાં મદન્ત ! જાનતા, હ—ચાર પરિષદા કહી ગઈ, હૈં, (તં) જહા-

‘તણં કેસીકુમારસમણે’ इत्यादि ।

સૂત્રાર્થ—(તણ) ત્યાર પછી (કેસી કુમારસમણે) કેસી કુમાર શ્રમણે  
(પણિં રાય એવં વચાસી) પ્રદેશી રાજાને આ પ્રમાણે કહ્યું. (જાણાસિ ણં તુમં  
પણસી ! કહ પરિસાઓ પળ્ણત્તાઓ ?) હે પ્રદેશિન્ ! તમે જાણો છો કે પરિષદા-  
ઓ કેટલી કહેવાય છે ? પ્રદેશીએ કહ્યું (જાણામિ ચત્તારિ પરિસાઓ પળ્ણત્તાઓ)  
હા છ, સદત ! હું જાણું છું કે ચાર જાતની પરિષદાઓ કહેવામા આવી છે.  
(ત જહા, ત્વત્તયપરિસા ૧, ગાહાવહપરિસા ૨, માહણપરિસા ૩, ઈસિ-  
પરિસા ૪) એ આ પ્રમાણે છે—ક્ષત્રિય પરિષદા, ૧ ગાથાપતિ પરિષદા ૨, બ્રાહ્મણ

गीता—‘तप ण पण्णो’ इत्यादि—ततः खलु न मदेधी राजा केचि  
 कुमारभ्रमणमेवमवादीत—हे भद्र ! अतिच्छेदानाम्—स्वमरजानां, दक्षिणाम्—  
 गुरुराणां, पुद्धानाम्—तपयज्ञानां, कुषाणाम्—यत्स्थायतश्चनिर्वापकानां,  
 मरामनीनाम्—औषधिरथादिषुद्धियुक्तानां पिनीतानाम् क्षिप्यानां, विद्वानमात्र-  
 नाम्—मदमद्विद्येकमप्यनानाम्, उपदेशमन्थानां प्राप्तरूपदेशानाम्, युष्माकम्  
 अस्याः उपस्थिताया, महाति महाभयायाः भ्रातृविशयाया परिवहः समापामप्ये  
 उच्चावचैः—नानाविधैः, भोकोष्ठैः—कृत्स्नवचनरूपैः भाकोष्ठम्—सम्पितुम्,  
 उच्चावचामिः—नानाविधामिः उद्वर्पणामि—धनादयः स्ववचनसंज्ञणामिः,  
 उद्वर्पयितुम्—वक्तुम्, उच्चावचामिः—नानाविधामिः, निर्भर्त्सनामिः—अवह-  
 मनामिः, निर्भर्त्सयितुम्—अवहमस्त्वितुम्—उच्चावचामिः मानापकारामि—निधोटना-  
 मिः—नीरसवचनान्वलीमिः, निधोटयितुम्—संभाषितुम्, अहं किं पुच्छकः—  
 पुच्छोऽस्मि—योग्योऽस्मि ? संभाषणमेलारूपेण कथं व्यवहारो मङ्गल  
 भवाद्विज्ञानां महापुरुषाणां मोचित इति भावः ॥ सू० १४७ ॥

मूकम्—तए णं केसी कुमारसमणे पणसिं राय एव वयासी-  
 जाणासि णं तुम पणसी ! कह परिस्ताओ पणत्ताओ ? । जाणामि  
 चत्तारि परिस्ताओ पणत्ताओ, त जहा—स्वत्तियपरिस्ता १, गाहावड  
 परिस्ता २, माहणपरिस्ता ३, इसिपरिस्ता ४ । जाणासि णं तुम पणसी !  
 एयासि चउण्ह परिस्ताणं कस्स का द ढणीई पणत्ता ? इता ।  
 जागामि—जे णं स्वत्तियपरिस्ताए अवस्सुह से जं हरथच्छिण्णय वा

निष्ठाद्वयार्ति निष्ठाद्विज्ञान) नामा प्रकार की अवहमनाकप निर्भर्त्सनाओं  
 द्वारा मेरी निर्भर्त्सना करना तथा मानापकार की नीरसवचनरूप निष्ठाद्विज्ञानों  
 द्वारा मुझ से वादना क्या योग्य है ? अर्थात् आप जैसे महापुरुषों को समा-  
 के समक्ष ऐसा वचनरूप व्यवहार मेरे साथ करना उचित नहीं है।

टीकार्थ—स्पष्ट है ॥ सू० १४७ ॥

(एव उच्चावचार्ति निष्ठाद्विज्ञानं निष्ठाद्विज्ञान, उच्चावचार्ति निष्ठाद्विज्ञानं निष्ठा  
 द्विज्ञान) अनन्त प्रमाणना अवहमनाकप निष्ठाद्विज्ञानको बड़े भारी उत्तरना करनी तेमने अने  
 प्रमाणनी नरिसवचनरूप निष्ठाद्विज्ञानको बड़े अने जेमे तेम निष्ठपु सु थेअ ७ ।  
 कोटवे हे तमास जेवा महापुरुषोने सभानी वचने आ अवतना वचनोय उच्चावच  
 वाचत नहि कोटवाय टीकार्थ स्पष्ट है ॥ सू० १४७ ॥

અપરાધ્યતિ સ ચલુ અનિષ્ટામિઃ અકાન્તામિઃ યાવત્ અમનોઽમામિઃ વાગ્મિઃ  
ઉપાલભ્ય કુઠિલાઠછનકો વા શુન્વલાઠછનકો વા ક્રિયતે, નિર્વિષયો વા  
આજ્ઞાપ્યતે ૩ । ય. ચલુ ઋષિપરિષદિ અપરાધ્યતિ સ ચલુ નાત્યનિષ્ટામિઃ  
યાવત્-નાત્યમનઆમામિઃ વાગ્મિઃ ઉપલભ્યતે ૪ । એવં ચ તાવત્ પ્રદેશિન્ !

મી અપરાધ કરતા હૈ, વહ વૃક્ષાદિ કી છાલ સે અથવા તૃણાદિનિર્મિત રસ્સી  
મે, યા પલાલ સે પરિવેષ્ટિત કિયા જાકર અગ્નિ મે જલા દિયા જાતા હૈ-  
(જે જ માહણપરિમાણ અવરજ્ઞહ, સે જં અણિદ્વ્યાર્હિ અકંતાર્હિ જાવ અમણા-  
માર્હિ વગ્મૂર્હિ ઉવાલભિત્તા કુંડિયાલંછણા વા સુણગલંછણા વા કીરહ, નિવ્વિસણ વા આણવિજ્ઞહ) વ્રાહ્મણ પરિપદા મેં જો વ્રાહ્મણ જિસ કિસી કા  
મી અપરાધ કરતા હૈ, વહ અનિષ્ટ-સામાન્યરૂપ સે અનમિલપિત, અકાન્ત-  
વિશેષરૂપ સે અનમિલપિત-અપ્રિય-પ્રેમવર્જિત, અમનોજ્ઞ અસુન્દર એવં અમન  
આમ-મનઃ, પ્રતિકૂલ એમી વાણિયો સે ઉપાલંભ યુક્ત કિયા જાતા હૈ,  
તથા તમ્ભોહે કે તક્રુયે દ્રાગ કમળ્હલુ કે જૈસે આકાર વાલે લાંછન સે  
લલાટ મેં ચિહ્નિત કિયા જાતા હૈ, અથવા કુને કે પગ કે જૈસે આકારવાલે  
ચિહ્ન સે લાંછિત કિયા જાના હૈ, અથવા દેશ સે બાહર નિકાલ દિયા જાતા હૈ.  
તુમ હમારે દેશ સે નિકલ જાઓ એમી આજ્ઞા ઉસકે લિયે દી જાતી હૈ૩.  
(જે જ હિસિપરિમાણ અવરજ્ઞહ સે જં જાહ અણિદ્વાર્હિ જાવ જાહ અમણામાર્હિ  
વગ્મૂર્હિ ઉવાલભ્મહ ૪) તથા જો ઋષિ પરિપદા મેં-ઋષિવર્ગ મેં-ઋષિ

ગાથાપતિ પરિપદામાં-ગૃહપતિ વર્ગમાં જે કોઇ ગાથાપતિ ગમે તેનો અપરાધ કરે  
તો તે વૃક્ષ વગેરેની છાલથી અથવા તૃણ વગેરેથી નિર્મિત દોરી કે પલાલથી પરિ-  
વેષ્ટિત કરાઇને અગ્નિવડે સળગાવવામાં આવે છે. (જે જં માહણપરિમાણ અવર-  
જ્ઞહ, સે જં અણિદ્વ્યાર્હિ અકંતાર્હિ જાવ અમણામાર્હિ વગ્મૂર્હિ ઉવાલભિત્તા કુંડિયા  
લંછણા વા સુણગલંછણા વા કીરહ નિવ્વિસણ વા આણવિજ્ઞહ) બ્રાહ્મણ પરિ-  
પદામાં જે બ્રાહ્મણ ગમે તેનો અપરાધ કરે છે તો તે અનિષ્ટ-સામાન્ય રૂપથી અન-  
ભિલાષિત, એકાત-વિશેષરૂપથી અનભિલાષિત, યાવત્ અપ્રિય-પ્રેમવર્જિત, અમનોજ્ઞ-  
અસુન્દર અને અમન આમ મનઃપ્રતિકૂલ એવી વાણીઓથી ઉપાલંભયુક્ત કરવામાં  
આવે છે તેમજ તૈત થયેલ લોખંડના સળિયા વડે કમંડલું જેવા આકારથી યુક્ત  
ચિહ્નથી લલાટમાં ચિહ્નિત કરવામાં આવે છે અથવા ફતરાના પગ જેવા આકારવાળા  
ચિહ્નથી લાંછિત કરવામાં આવે છે અથવા દેશ બહાર કરવામાં આવે છે. તમે અમારા  
દેશથી જતા રહો. એવી આજ્ઞા તેને આપવામાં આવે છે. ૩, (જેજં હિસિપરિમાણ  
અવરજ્ઞહ સે જં જાહ અણિદ્વાર્હિ જાવ જાહ અમણામાર્હિ વગ્મૂર્હિ ઉવાલભ્મહ ૪)





અપરાધ્યતિ સ્વલુ અનિષ્ટાભિઃ અકાન્તાભિઃ યાવત્ અમનોઽમામિઃ વાગ્મિઃ  
ઉપાલભ્ય કુણ્ડિલાઠ્ઠનકો વા શુન્વલાઠ્ઠનકો વા ક્રિયતે, નિર્વિષયો વા  
આજ્ઞાપ્યતે ૩ । ય. સ્વલુ ઋષિપરિષદિ અપરાધ્યતિ સ્વલુ નાત્યનિષ્ટાભિઃ  
યાવત્-નાત્યમનઆમામિઃ વાગ્મિઃ ઉપલભ્યતે ૪ । એવં ચ તાવત્ પ્રદેશિન્ !

મી અપરાધ કરતા હૈ, વહ વૃક્ષાદિં કી છાલ સે અથવા તૃણાદિનિર્મિત રસ્સી  
મે, યા પલાલ સે પરિવેષ્ટિત કિયા જાકર અગ્નિ મે જલા દિયા જાતા હૈ-  
(જે ણ માહણપરિસાએ અવરજ્ઞહ, સે ણં અણિટ્ટ્યાહિં અકતાહિં જાવ અમણા-  
માહિં વગ્ગૂહિં ઉવાલમિત્તા કુંહિયાલંછણે વા સુણગલંછણે વા કીરહ,  
નિવ્વિસણે વા આણવિજ્ઞહ) વ્રાહ્મણ પરિષદા મેં જો વ્રાહ્મણ જિસ કિસી કા  
મી અપરાધ કરતા હૈ, વહ અનિષ્ટ-સામાન્યરૂપ સે અનમિલપિત, અકાન્ત-  
વિશેષરૂપ સે અનમિલપિત-અપ્રિય-પ્રેમવર્જિત, અમનોજ્ઞ અસુન્દર એવં અમન  
આમ-મનઃ પ્રતિકૂલ એમી વાણિયોં સે ઉપાલંભ યુક્ત કિયા જાતા હૈ,  
તથા તમ્ભલોહે કે તકુયે દ્રાગ કમ્પડલુ કે જૈસે આકાર વાલે લાંછન સે  
લલાટ મેં ચિહ્નિત કિયા જાતા હૈ, અથવા કુને કે પગ કે જૈસે આકારવાલે  
ચિહ્ન સે લાંછિત કિયા જાના હૈ, અથવા દેશ સે બાહર નિકાલ દિયા જાતા હૈ.  
તુમ હમારે દેશ સે નિકલ જાઓ એસી આજ્ઞા ઉસકે લિયે દી જાતી હૈ૩.  
(જે ણ હસિપરિસાએ અવરજ્ઞહ સે ણં ણાહ અણિટ્ટ્યાહિં જાવ ણાહ અમણામાહિં  
વગ્ગૂહિં ઉવાલભ્મહ ૪) તથા જો ઋષિ પરિષદા મેં-ઋષિવર્ગ મેં-ઋષિ

ગાથાપતિ પરિષદામાં-ગૃહપતિ વર્ગમાં જે કોઈ ગાથાપતિ ગમે તેના અપરાધ કરે  
તો તે વૃક્ષ વગેરેની છાલથી અથવા તૃણ વગેરેથી નિર્મિત દોરી કે પલાલથી પરિ-  
વેષ્ટિત કરાઈને અગ્નિવડે સળગાવવામાં આવે છે. (જે ણં માહણપરિસાએ અવર-  
જ્ઞહ, સે ણં અણિટ્ટ્યાહિં અકતાહિં જાવ અમણામાહિં વગ્ગૂહિં ઉવાલમિત્તા કુંહિયા  
લંછણે વા સુણગલંછણે વા કીરહ નિવ્વિસણે વા આણવિજ્ઞહ) બ્રાહ્મણ પરિ-  
ષદામાં જે બ્રાહ્મણ ગમે તેના અપરાધ કરે છે તો તે અનિષ્ટ-સામાન્ય રૂપથી અન-  
મિલપિત, એકાન્ત-વિશેષરૂપથી અનમિલપિત, યાવત્ અપ્રિય-પ્રેમવર્જિત, અમનોજ્ઞ-  
અસુન્દર અને અમન આમ મનઃપ્રતિકૂલ એવી વાણીઓથી ઉપાલંભયુક્ત કરવામાં  
આવે છે તેમજ તરત થયેલ લોખંડના સળિયા વડે કમડલું જેવા આકારથી યુક્ત  
ચિહ્નથી લલાટમાં ચિહ્નિત કરવામાં આવે છે. અથવા ફતરાના પગ જેવા આકારવાળા  
ચિહ્નથી લાંછિત કરવામાં આવે છે અથવા દેશ બહાર કરવામાં આવે છે તમે અમારા  
દેશથી જતા રહો. એવી આજ્ઞા તેને આપવામાં આવે છે. ૩, (જે ણં હસિપરિસાએ  
અવરજ્ઞહ સે ણં ણાહ અણિટ્ટ્યાહિં જાવ ણાહ અમણામાહિં વગ્ગૂહિં ઉવાલભ્મહ ૪)



त्वं ? एताभ्यां चतसृणां प रषदां मध्ये कस्य अपराधिनः का-विप्रकारा  
दण्डनीतिः-दण्डविधानरूपा ज्ञात-वधिता ? । प्रदेशी प्राह-हन्त ! जानामि  
तदेवाह-क्षत्रियपरिपदि-क्षत्रियवर्गे यः खलु कश्चित् क्षत्रियः स्ववर्गे परवर्गे-  
वा-स्य कस्यापि अपराध्यति-अपराधं करोति स खलु हस्तच्छिन्नकः-  
छिन्नहस्तः क्रियते. वा-अथवा पादच्छिन्नकः, अथवा शीर्षच्छिन्नकः, वा  
अथवा शूलाघित-शूलागोपितः वा-अथवा एकाहत्यम्-एकाघातेन, कृटाहत्य-  
पर्वतपातेन जीवितात-प्राणेभ्यः व्यपगम्यते-पृथक् क्रियते १ । गाथापतिपरिपदि  
गृहपतिवर्गे यः खलु कश्चिद् गाथापति रस्य कस्यापि अपराध्यति स खलु  
त्वचा-वृक्षादिच्छलिना वा अथवा वेष्टेन तृणादिनिर्मितरज्ज्वा. वा अथवा  
पलालेन-प्रसिद्धेन वेष्टयित्वा-पणिवेष्टय अग्निकायेन-अग्निना ध्माप्यते-ज्वा-  
त्यते २ । ब्राह्मणपरिपदि-ब्राह्मणवर्गे यः खलु कश्चिद् ब्राह्मणो यस्य कस्यापि  
अपराध्यति स खलु अग्निष्ठाभिः-सामान्यतोऽनामिलपिताभिः अकान्ताभिः-  
विशेषतोऽनामिलपिताभिः, यावच्छब्देन-“अप्रियाभि-मेमवर्जिताभिः-असु-  
न्दरीभिः” इति संग्राह्यम्. अमनोऽमाभिः मनप्रतिकूलाभिः वाग्भिः-  
वाणीभिः उपालभ्य उपालम्भं दत्त्वा, कुण्डिकालाञ्छनकः-कुण्डिका-कमण्डलुः  
तदाकारकं लाञ्छनक-तप्तशलाकया ललाटे चिह्न यस्य स तथाभूतः, वा  
अथवा शुनकलाञ्छनकः-ललाटे शुनकपदाकारक चिह्न यस्य स तथाभूतः  
क्रियते, वा-अथवा निर्ऋपयः-निर्वासितो यथा भवेत्तथा आज्ञाप्यते-‘त्वम-  
स्मादेशान्निर्गच्छ’ इत्याज्ञा तस्मै दीयते इति भावः । ३ । ऋषपरिपदि-  
ऋषिवर्गे यः खलु कश्चित् ऋषिरस्य कस्यापि अपराध्यति स खलु ‘नात्य  
निष्ठाभिः यावत्-यावच्छब्देन-नात्यवान्ताभिः नात्यप्रियाभिः, नात्यमन-  
ज्ञाभिः’ इति संग्राह्यम्. नात्यमनोऽमाभिः वाग्भिः-वाणीभिः उपालभ्यते-  
तस्मै उपालम्भो दीयते इति भावः ४ । केशी कुमारश्रमणः कथयति-हे  
प्रदेशिन एव-पूर्वोक्तप्रकारां दण्डनीतिं तावत्-निश्चयेन त्वं जानासि तथापि  
त्वं मां प्रति वामचामेन-अनिशयचामेन-अतिविरुद्धेन व्यवहारेण. एवं दण्ड-  
दण्डेन-अतिदण्डरूपेण-दण्डवत्स्तम्भरूपेण-अत्यहं रयुक्तेनेत्यर्थः प्रतिकूलं  
प्रतिकूलेन-अप्रतिकूलेन-विपक्षीभूतेनेत्यर्थः प्रतिलोमप्रतिलोमेन-अतिप्रतिलो-  
मेन-अतिविपरीतेनेत्यर्थः विपर्यासविपर्यासेन अतिविपर्यासेन-सर्वथा विरु-  
द्धेनेत्यर्थः, एतादृशेन व्यवहारेण वर्तसे ॥ सू० १४८ ॥

स्व भानासि तथापि सुखं कुरु ॥ मां नामधामेन, दण्डदण्डेन प्रतिदुःखति-  
कुलेन मलिलोम प्रतिलोमेन, ॥ १४८ ॥

टीका—“तप न केसी” अर्थात्—तन। तदनन्तर स्वसु केसी कुमा  
अमणः मदेशिन राजासि मरु-अक्षममणप्रका। वचनम्, मबादीत्—कपि  
नाम—हे मदेशिन ! स्व भानासि किं परिपद्य—बगौं कति, कतिसम्यक्ता  
प्रकाशः ? मदेशी राजा प्राह—भानासि—प्रापदभूदसु, ननु स्यका मत्तप  
तद्यथा—ता यथा—क्षत्रियपरिपत्त १, गुणपतिपरिपत्त २, म सुवर्णपरिपत्त ३,  
कपिपरिपत्त ४। केसी कुमाअमणः प्रकृति—हे मदेशिन ! भानासि स्वसु

निस किसी का भी अपराध' कौश' है वह' न अति' न नष्ट' धार' न  
अति' अकांत, न अति' अप्रिय, न अति' ममनोऽह' और न अति' अमन  
धाम' ऐसी' बाणियों द्वारा उपालमयुक्त' किया जाता' है (पूर्व' शो' पंसी !  
तुम भानासि—तदा वि ण तुम मम वाम वामेण दह दहेण, पडिहूँ  
पडिहूँसे, पडिहूँसे पडिहूँसे विपज्जास विपज्जासेयं वदसि' हे मदेशिन  
तुम इस' पूर्वोक्त' प्रकारवासी नीति को—दण्ड नीति को—निर्दिष्ट' से जानते  
हो फिर भी' तुम मेरे प्रतिवामवामरूप से अति' विद्वेद' विद्वेद' से  
दण्डरूप से—दण्ड' से स्तब्धरूप व्यवहार से—अति' अहङ्कार' युक्त' अहङ्कार'  
से, प्रतिकूल' प्रतिकूलरूप से और विपक्षी भूत व्यवहार से, प्रतिमोम' प्रति  
मोम से—अतिरिप' रीतिरूप' व्यवहार से और विपक्षी विपक्षी से—सब  
विरुद्धरूप व्यवहार से प्रवृत्त हो रहे हो।

टीकाय स्पष्टं है ॥ १४८ ॥

तेभ्य न कपि पस्मिन्नामो—कविभर्मां केवलं पद्य कपि अपराध करे छ ते न अति  
अनिष्ट वाचन न अति कोकिल' न अति काननेश' अने न अति कानन' कानन केवी  
वाणीके नटे उपास कयुक्त करवाभा आव छ (एव ताव पत्नी ! तुम भानासि  
—तदा वि ण तुम मम वाम वामेण दह दहेण पडिहूँ, पडिहूँसे,  
पडिहूँसे पडिहूँसे, विपज्जास विपज्जासेयं वदसि हे मदेशिन ! तं  
आ पूर्वोक्त नीतिने—दण्डनीतिने—आशी दीते अलो छ, छता के तमे भारा प्रति वाम  
वामरूपी—अति विद्वेद व्यवहारयो दण्ड' विद्वेदरूपी—दण्डरूप' व्यवहार' से  
अति अहङ्कारयुक्त व्यवहारयो प्रतिपूण, अनिपूणरूपी अति विपक्षी व्यवहार' से  
प्रतिमोम प्रतिमोमयी—अति विपक्षीरूप व्यवहार' से अति विपक्षीरूप' से—सब  
विरुद्धरूप प्रवृत्त वरु वरु छ टीकाय स्पष्टं न छ ॥ स १४८ ॥

एतस्य पुरुषस्य वामवामेन <sup>प्रवर्तते</sup> विपर्यासविपर्यासेन वर्तित्ये तथा नथ खलु अहं ज्ञानं च ज्ञानोपालम्भं च चरणं च चरणोपालम्भं च दर्शनं च दर्शनोपालम्भं च जीवं च जीवोपालम्भं च उपलभ्ये, तत् एतेनाहं कारणेन देवानुप्रियाणा वामवामेन यावद् विपर्यासविपर्यासेन वर्तितः ॥सू० १४९॥

टीका—‘तए णं पएसी’ इत्यादि—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिन कुमारश्रमणमेवमवादीत्—एष खलु अहं देवानुप्रियैः—भवद्भिः प्राथमिकेनैव—व्याकरणेन—संलापेन, संलपिनः—संभाषितः, तदा—खलु—मम अयमेन्द्रप—

आप मुझ से सर्व प्रथम इस प्रकार से बोलेतो मेरे मन में यह इस प्रकार का यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि (जहा २ णं एयस्स पुरिसस्स वामं वामेण जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिस्सामि, तहा २ णं अहं नाणं च नाणोवलंभं च चरणोलंभं च, दंसणं च दमणोवलंभं च जीवं च जीवोवलंभं च उवलंभिस्सामि) मैं जैसा इस पुरुष के साथ वाम वामरूप से यावत्—दण्ड दण्डरूप से, प्रतिकूल प्रतिकूलरूप से प्रतिलोम प्रतिलोमरूप से एवं विपर्यास विपर्यासरूप से व्यवहार करूंगा, वैसा वैसा २ मैं ज्ञान को—पदार्थ ज्ञान को ज्ञानोपालम्भको—ज्ञान की प्राप्ति को, चारित्र को, चारित्रके लाभ को, तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व को, दर्शनलाभ को जीव के स्वरूप को, और जीव के स्वरूपकी प्राप्ति को पा जाऊंगा (तं एएण अहं कारणेण देवानुप्रियाणं वामं वामेण जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए) अतः इसी कारण से आप देवानुप्रिय के साथ मैं अतिविरुद्धरूपव्यवहार से यावत् सर्वथा विरुद्धरूप व्यवहार से प्रवर्तित हुआ हू ।

जोत्या ते भारा मनभां आगततो यावत् संकल्प उत्पन्न थयो के (जहा २ णं एयस्स पुरिसस्स वामं वामेण जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिस्सामि, तहा २ णं अहं नाणं च नाणोवलंभं च चरणं च चरणोवलंभं च, दंसणं च दंसणोवलंभं च जीवं च जीवोवलंभं च उवलंभिस्सामि) हु जेम जेम आ पुरुषणी साथे वाम वाम इपथी यावत्—दंड डंड इपथी प्रतिकूल प्रतिकूल इपथी, प्रतिलोम प्रतिलोम इपथी अने विपर्यास विपर्यास इपथी व्यवहार करीश—आयच्छु करीश तेम तेम हु ज्ञानने, पहार्थ ज्ञानने, ज्ञानोपलभने, ज्ञानप्राप्तिने चारित्रने, चारित्र लाभने, तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त्वने, दर्शनलाभने, एवना स्वइपने अने एवना स्वइपनी प्राप्तिने भेजवीश (त एएण अहं कारणेण देवानुप्रियाणं वामं वामेण जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए) गेटला भाटे आप देवानुप्रियनी साथे भें अति विरुद्धरूप व्यवहारथी यावत् सर्वथा विरुद्धरूप व्यवहारथी प्रवर्तित थयो हुं

मूल—तए णं पयसी राया केसि कुमारसमणं एव वयासी-  
एव खलु अहं देवाणुप्पिण्हि पडमिस्सिणं चेव वागरणेणं सल्ले  
तए णं मम इमेयारुवे अज्झरिथण जाव सकप्पे समुप्पज्जिथा—जहा  
जहा णं पयस्स पुरिसस्स वाम वामेणं जाव विवच्चासं विवच्चासेणं  
वट्ठिस्सामि तहा तहा णं अहं नाणं च नाणोवल्लभं च चरणं च  
चरणोवल्लभं च दमणं च दसणोवल्लभं च जीव च जीवोवल्लभं च  
उवल्लभिस्सामि, त एणं अहं कारणेणं देवाणुप्पिण्णं वामं वामेणं  
जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्ठिण ॥सू० १४९॥

छाया—ततः खलु मदञ्जी राजा केसिन कुमारभमममेववयासीत्  
एव खलु अहं देवानुप्रियैः पदमिस्सिणैश्च वागरणेन समपतः तदा खलु  
मम अवयवे रूप आरुणमिका यावत् सकल्पः समुपपन्नः यथा यथा खलु

तए णं पयसी राया इत्यादि ।

अन्वय—(तए णं) इसके बाद (पयसी राया) पदेछी राजाने केसि  
कुमारसमम एव वयासी) कभी कुमारभमम से ऐसा कहा—(एव खलु  
अहं देवाणुप्पिण्हि पडमिस्सिणं च वागरणेणं सल्ले) हे मदन्त ! आप  
देवानुप्रिय क हारा में सब, प्रथम घोषा गया ह अर्थात्—आप देवानु  
प्रिय ! मुझ से सब से पहिले बोल ई—आप क माथ मेरी यह सब से  
प्रथम भेट ई, इसके पहिले हमारा आपका कोई विषय नहीं हुआ है  
(तए णं मम इमेयारुवे अज्झरिथण जाव सकप्पे समुप्पज्जिथा) अतः अब

‘तए णं पयसी राया’ इत्यादि ।

समाधि—(तए णं) त्वादेशी (पयसी राया) भदेशी राजाने (केसि कुमार  
समम एव वयासी) देशीकुमार भममने आ प्रभावे कहे—(एव खलु अहं  
देवाणुप्पिण्हि पडमिस्सिणं च वागरणेणं समपते) हे मदन्त ! आप देवा-  
नुप्रिय हे दु माथी पहिले मिलायी है ओटवे के आप देवानुप्रिय ! भरी साथे  
सोनी परवां मिली है आपनी साथे आ भरी पड़ेली मुलाकात है जेना पड़ेनां  
आपनी भरी साथे भेट नटोली गय (तए णं मम इमेयारुवे अज्झरिथण जाव  
सकप्पे समुप्पज्जिथा) ओथी तारे तने भरी साथे अब प्रथम आ प्रभावे

एतस्य पुरुषस्य वामवामेन यद्विषयविपर्यासेन वर्तिष्ये तथा नथ  
खलु अहं ज्ञानं च ज्ञानोपालम्भं च चरणं च चरणोपालम्भं च दर्शनं च  
दर्शनोपालम्भं च जीवं च जीवोपालम्भं च उपलप्स्ये, तत एतेनाहं का-  
णेन देवानुप्रियाणा वामवामेन यावद् विपर्यासविपर्यासेन वर्तितः ॥मृ० १४९॥

टीका—‘तए णं पएसी’ इत्यादि—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिन  
कुमारभ्रमणमेवमवादीत्—एव खलु अहं देवानुप्रियैः—भवद्भिः प्राथमिकेनैव—  
व्याकरणेन—संलापेन, संलपिनः—संभाषितः, तदा खलु मम अयमेतद्रूप—

आप मुझ से सर्व प्रथम इस प्रकार से बोलेतो मेरे मन में यह रूप  
प्रकार का यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि (जहा २ णं एयस्स पुरिसस्सं  
वामं वामेण जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिस्सामि, तहा २ णं अहं  
नाणं च नाणोवलंभं च चरणोवलंभं च, दंसणं च दंसणोवलंभं च जीवं च  
जीवोवलंभं च उवलंभिस्सामि) मैं जैसा इस पुरुष के साथ वाम वामरूप से  
यावत्—दण्ड दण्डरूप से, प्रतिकूल प्रतिकूलरूप से प्रतिलोम प्रतिलोमरूप  
से एवं विपर्यास विपर्यासरूप से व्यवहार करूंगा, वैसा वैसा २ मैं ज्ञान  
को—पदार्थ ज्ञान को ज्ञानोपालम्भको—ज्ञान की प्राप्ति को, चारित्र्य को, चारि-  
त्र्यके लाभ को, तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व को, दर्शनलाभ को जीव के  
स्वरूप को, और जीव के स्वरूपकी प्राप्ति को पा जाऊंगा (तं एएणं  
अहं कारणेण देवानुप्रियाणं वामं चाणेणं जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए)  
अतः इसी कारण से आप देवानुप्रिय के साथ मैं अतिविरुद्धरूपव्यवहार  
से यावन सर्वथा विरुद्धरूप व्यवहार से प्रवर्तित हुआ हूँ।

ओल्या ते भारा मनमा आ नततो यावत् संकल्प उत्पन्न थयो हे (जहा २ णं एयस्स  
पुरिसस्स वामं वामेण जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिस्सामि, तहा २  
णं अहं नाणं च नाणोवलंभं च चरणं च चरणोवलंभं च, दंसणं च दंसणो-  
वलंभं च जीवं च, जीवोवलंभं च उवलंभिस्सामि) हु जेम जेम आ पुश्वनी  
साथे वाम वाम रूपथी यावत्—द डहं डइयथी, प्रतिकूल प्रतिकूल रूपथी, प्रतिलोम प्रतिलोम  
रूपथी अने विपर्यास विपर्यासरूपथी व्यवहार करीश—आयस्सु करीश तेम तेम हु  
ज्ञानने, पदार्थ ज्ञानने, ज्ञानोपालभने, ज्ञानप्राप्तिके आरित्रने, आरित्र लाभने,  
तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त्वने, दर्शनलाभने, एवना स्वइयने अने एवना स्वइयनी  
प्राप्तिके भेजवीश, (तं एएणं अहं कारणेण देवानुप्रियाणं वामं वामेण जाव  
विवच्चासं विवच्चासेण वट्टिए) ओटला भाटे आप देवानुप्रियनी साथे मेँ अस्ति  
विरुद्धरूप व्यवहारथी यावत् सर्वथा विरुद्धरूप व्यवहारथी प्रवर्तित थयो हुं.





सण्णवेइ ४ । जाणासि णं तुमं पएसी ? एएसिं चउण्हं पुरिसाणं  
के ववहारी के अववहारी ? ! हंता ! ! जाणामि तत्थ णं जे से पुरिसे  
देइ णो सण्णवेइ सेणं पुरिसे ववहारी, तत्थ णं जे से पुरिसे  
णो देइ सण्णवेइ से णं पुरिसे ववहारी २, तत्थ णं जे से पुरिसे  
देइ वि सण्णवेइ वि से पुरिसे ववहारी ३, तत्थ णं जे से पुरिसे  
णो देइ णो सण्णवेइ से णं अववहारी ४ । एवामेव तुमंपि ववहारी,  
णो चेव णं तुमं पएसी ! अववहारी ॥सू० १५०॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिराजमेवमवादीत्—जा-  
नासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! कति व्यवहारकाः प्रज्ञप्ताः ? । हन्त ! ! जानामि-  
चत्वारो व्यवहारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ददाति नामैकः नो संज्ञापयति १,  
संज्ञापयति नामैको नो ददाति २, एको ददाति अपि संज्ञायति अपि ३,

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केसी कुमारसमणे) केशीकुमारश्रमणने  
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(जाणासि णं तुमं  
पएसी ! कइ व्यवहारगा पण्णत्ता ?) हे प्रदेशिन् ! व्यवहार कितने होते हैं,  
क्या तू इस बात को जानते हो ? (हंता, जाणामि) हां, भदंत ! जानता  
हूं (चत्तारि व्यवहारगा पण्णत्ता) व्यवहार चार कहे गये हैं । (तं जहा—देइ,  
नामेगे, णो सण्णवेइ १ सण्णवेइ नामेगे णो देइ २, एगे देइ वि, सण्णवेइ

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) त्थार पथी (केसीकुमारसमणे) देशी कुमार श्रमणे-  
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजने आ प्रभावे कहुं—(जाणासि णं तुमं  
पएसी ! कइ व्यवहारगा पण्णत्ता ?) हे प्रदेशिन् ! तू तमे ज्ञेय छे के व्यवहार  
केटली जतना होय छे ? (हता, जाणामि) हां, भदंत ! ज्ञेय छे (चत्तारि वव-  
हारगा पण्णत्ता) व्यवहार चार कहेवाय छे । (तं जहा देइ, नामेगे, णो सण्ण-  
वेइ १, सण्णवेइ नामेगे णो देइ २, एगे देइ वि, सण्णवेइ वि ३, एगे

एकी नो ददाति नो सहाययति ४ । नामाणि व्याख्या मन्त्रिषु । एतर्था पदार्थो  
 । पुरुषाणां को व्यवहारी ? कोऽव्यवहारी ? इति ॥ नामाणि । तत्र स्य  
 या स पुरुषो ददाति नो सहाययति स अल्ल पुरुषा व्यवहारी । तत्र स्य  
 या स पुरुषो नो ददाति सहाययति स अल्ल पुरुषा व्यवहारी । तत्र  
 स्य या स पुरुषा ददात्यपि सहाययत्यपि स पुरुषो व्यवहारी । तत्र स्य  
 वि ३, एव नो ददाति नो सहाययति ४, जा इमं प्रकार स है-एव, को  
 पुरुष किसी पदार्थ को किसी क स्थिति तथा तो है पर उसके साथ वह  
 मिष्ट भाषण द्वारा अच्छा सतोपमद्वयवहार नहीं करता है १, एक पुरुष  
 मिष्ट भाषण द्वारा दूसरे क प्रति सतोपमद्वयवहार तो करता है, पदार्थ  
 देता कुछ भी नहीं है २, एक पुरुष देता भी है और कने बाँटने के प्रति  
 मिष्टभाषणद्वारा सतोपमद्वयवहार भी करता है ३, एक पुरुष देता होता  
 है जो न दता है और न मिष्टभाषण द्वारा सतोपमद्वयवहार भी करता  
 है ४, (जाणाति न तुम पयसी । एवमि अउण्ह पुरिगणं क व्यवहारी । क  
 व्यवहारी ?) केही न मक्की से पूछा-हे, मक्कीन, तुम जानता  
 हो इन पार व्यवहारी पुरुषों के बीच में कौन व्यवहारी, और  
 कौन व्यवहारी है। तब मक्कीन केन्द्रिकुमार भ्रमण से कहा-(हृत्वा, जाणामि-  
 तत्थं न जे से पुग्गिन्ने देह गो सण्णयइ से, पुरिसं व्यवहारी) हाँ, जानता  
 हूँ, इसमें जो पुरुष देता है और सम्यग्, आत्मार्थ, स, सतोप उद्वलन नहीं  
 कराता है वह पुरुष व्यवहारी कहा जाता है (तत्थं ए जं से, पुरिसो गो),

गो देह को सम्भव ४) के आ प्रमाण है कि आत्मा पुरुष है। पुरुष न तो  
 आप तो है पदार्थ तो है आप तो मिष्ट स-व्यवहार । अर्थात् सतोपमद्वयवहार  
 करता नहीं । कि आत्मा गिरा आपत्तुं जीवन्ती साध सतोपमद्वयवहार तो  
 करे है पदार्थ आपतो करे नहीं है, कि आत्मा आप पदार्थ है अने सतोपमद्वयवहार  
 मिष्ट नवनो बटे अतोप पदार्थ आप है ३, कि आत्मा आप पदार्थ है अने  
 के करे पदार्थ आपतो नहीं अने गिरा नवनोधी सतोपमद्वयवहार पदार्थ करे नहीं  
 (जाणामि तुम पयसी । एवमि अउण्ह पुरिगणं क व्यवहारी । क  
 क व्यवहारी ?) केही न प्रदीपि प्रदन कों है दे प्रदीपि । तब अतोप जं है  
 आ सार व्यवहारी है । त्वाहे प्रदीपि कं (हृत्वा, जाणामि, तत्थं न जे से  
 पुरिसो तह गो सण्णयइ स क पुरिसं व्यवहारी ?) हाँ, आप है आप  
 आप पदार्थ आप है अने साध नवनोधी सतोप आपतो नहीं तो पुरुष व्यवहारी है  
 कि (अउण्ह गो से गो पुरिसं गो सण्णयइ गो स पुरिसं व्यवहारी ?)

यः स पुरुषो नो ददाति नो संज्ञापयति स खलु अव्यवहारी । एवमेव  
त्वमपि व्यवहारी, नो चैव खलु त्वं प्रदेशिन् ! अव्यवहारी ॥ सू० १५० ॥

टीका—“तएणं केसीकुमारसमणे” इत्यादि—ततः—अनन्तरोक्त-  
प्रकारेण वृत्तानानन्तरं खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजम् एवमवादीत-

देह सण्णवेइ से ण पुरिसे व्यवहारी२) तथा जो पुरुष देता नहीं है किन्तु  
सम्यग् आलाप से संतोष उत्पन्न करता है वह पुरुष व्यवहारी है।  
(तत्थ णं जे से पुरिसे देइ वि, सण्णवेइ वि, से पुरिसे व्यवहारी३) तथा जो  
पुरुष देता भी है और सम्यक् आलाप द्वारा संतोष भी उत्पन्न कराता  
है वह पुरुष व्यवहारी है। (तत्थ णं जे से पुरिसे णो देइ णो सण्णवेइ से  
पुरिसे से णं अव्यवहारी) तथा जो पुरुष न देता है और न सम्यक् संभा-  
षणं द्वारा संतोष उत्पन्न करता है वह पुरुष अव्यवहारी है। (एवामेव  
तुमं पि व्यवहारी णो चैव णं तुमं पएसी ! अव्यवहारी) इसी तरह से अर्थात्  
भङ्गत्रयोक्त पुरुष, के बीच में एक भंग विशेष की तरह हे प्रदेशिन् !  
तुम भी व्यवहारी हो, चतुर्थ भङ्गोक्त पुरुष की तरह तुम अव्यवहारी नहीं  
हो—तात्पर्य कहने का यह है कि यद्यपि हे प्रदेशिन् ! तुमने सम्यक् आलाप  
द्वारा सन्तुष्ट कर मुझसे व्यवहार नहीं किया है—फिर भी मेरे विषय में भक्ति  
और बहुमान तो किया ही है—अतः तुम आद्यभङ्गोक्त पुरुष की तरह  
व्यवहारी ही हो—अव्यवहारी नहीं हो।

तेमं णे पुरुष आपतो नथी पणु सारा सभाषणुथी संतोष उत्पन्न करे छ ते  
व्यवहारी छे। (तत्थ णं जे से पुरिसे देइ, वि, सण्णवेइ वि, से पुरिसे व्यवहारी, ३)  
तेमं णे पुरुष आपे पणु छ अने सम्यक् आलापवडे संतोष पणु उत्पन्न करे  
छ ते पुरुष व्यवहारी छे। (तत्थ णं जे से पुरिसे णो देइ णो सण्णवेइ से पुरिसे णं  
अव्यवहारी) तेमं णे पुरुष आपतो नथी तेमं सम्यक् आलाप पणु करतो नथी  
ओटवे के सारा सभाषणुथी संतोष उत्पन्न करतो नथी ते पुरुष अव्यवहारी छे।  
(एवामेव तुमं पि व्यवहारी णो चैव णं तुमं पएसी ! अव्यवहारी) आ प्रमाणे  
छे प्रदेशिन् तमे पणु व्यवहारी छे।

चतुर्थ भङ्गमा क्छा मुञ्ज तमे अव्यवहारी नथी। तात्पर्य आ प्रमाणे छे के छे  
प्रदेशिन् ! तमाये सम्यक् आलापइय सारा व्यवहार भारी साथे कर्यो नथी छतांये  
भारा विषयमा लक्षित अने गहुमान तो तमे कर्यो छे ओथी तमे आद्यभङ्गोक्त पुरुष-  
नी जेम व्यवहारी न छे। अव्यवहारी नथी।

एको नो ददाति नो म द्वापयति ४ । जानासि स्वस्त्यस्य मदेष्टिन् । एतेषां चतुर्णां  
 पुरुषाणां को व्यवहारी ? कोऽव्यवहारी ? इत्यतः ॥ जानामि । तत्र सन्तु  
 यः स पुरुषो ददाति नो स द्वापयति स स्वस्त्यस्य व्यवहारी । तत्र सन्तु  
 यः स पुरुषो नो ददाति स द्वापयति स स्वस्त्यस्य व्यवहारी । तत्र सन्तु  
 यः स पुरुषो ददात्यपि स द्वापयत्यपि स पुरुषो व्यवहारी । तत्र सन्तु

वि ३, एते णो देह णो सण्णवेह ४, जो इस प्रकार से हैं—एक को  
 पुरुष किसी वस्तु को किसी क लिये देता तो है पर उसके साथ वह  
 मिष्ट भाषण द्वारा अन्धा सतोपमदव्यवहार नहीं करता है १, एक पुरुष  
 मिष्ट भाषण द्वारा दूसरे के प्रति सतोपमद व्यवहार तो करता है परन्तु  
 देता कुछ भी नहीं है २, एक पुरुष देता भी है और देने वाले के प्रति  
 मिष्टवचनद्वारा सतोपमद व्यवहार भी करता है ३ एक पुरुष ऐसा होता  
 है जो न देता है और न मिष्टवचन द्वारा सतोपमद व्यवहार नहीं करता  
 है ४, (जानासि ण तुम पणमी ! एपि चत्थं पुरिसं के व्यवहारी ? के  
 व्यवहारी ?) केशी ने मदेशी से पूछा—हे मदेशिन् ! तुम जानते  
 हो इन चार व्यवहारी पुरुषों के बीच में कौन व्यवहारी है और  
 कौन अव्यवहारी है ? तब मदेशीने केशिकुमार अग्रज से कहा—(हता, जानामि—  
 तत्र मं जे से पुरिसे देह णो सण्णवेह से ण पुरिसे व्यवहारी ?) हाँ, जानता  
 हूँ, इनमें जो पुरुष देता है और सम्मय, आलाप से, सतोप उत्पन्न नहीं  
 कराता है वह पुरुष व्यवहारी कहा जाता है (तत्र ण जे से पुरिसो णो)

णो देह णो सण्णवेह ४) के आ प्रभावे छि. जोक भाष्यस डोह पद्य वस्तु इसमें  
 आपे तो छि पद्य तेनी आपे ते भिष्ट सतोपमदवे अन्धा सतोपमद व्यवहार  
 करता नहीं ? जोक भाष्यस भिष्ट भाष्यमदो जीवनी आपे सतोपमद व्यवहार तो  
 करता छि पद्य आपतो कथं नहीं २ जोक भाष्यस आपे पद्य छि जाने सेनार भाष्यते  
 भिष्ट वचनो वडे सतोप पद्य आपे छि ३, जोक भाष्यस ज्येष्ठ पद्य छि छे ४  
 के कथं पद्य आपतो नहीं जाने भिष्ट वचनोभी सतोपमद व्यवहार पद्य करता नहीं  
 (जानासि तुम पणमी ! एपि चत्थं पुरिसं के व्यवहारी के  
 क व्यवहारी ?) केशीने मदेशीने प्रश्न कथें के के मदेशिन् । तब ज्येष्ठ छि के  
 आपे व्यवहारी छि । तब मदेशीने कथें (हता, जानामि, तत्र मं जे से  
 पुरिस देह णो सण्णवेह से ण पुरिस व्यवहारी ?) हाँ, जानता हूँ  
 भाष्यस आपे छि जाने साथ वचनोभी सतोप आपतो नहीं ते पुरुष व्यवहारी के  
 नाथ छि (तत्र मं जे से पुरिसे णो देह सण्णवेह से ण पुरिसे व्यवहारी २)

યઃ સ પુરુષો નો દદાતિ નો સંજ્ઞાપયતિ સ સ્વત્વ અવ્યવહારી । એવામેવ ત્વમપિ વ્યવહારી, નો ચૈવ સ્વત્વ ત્વં પ્રદેશિન્ ! અવ્યવહારી ॥૨૫૦॥

વીકા—“તદ્દેશં કેસીકુમારસમગ્ને” इत्यादि—ततः—अनन्तरोक्त-  
प्रकारेण वर्तमानान्तरं स्वतु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजम् एवमवादीत्—

દેહ સ્પર્શવેદ સે ન પુરિસે વ્યવહારી૨) તથા જો પુરુષ દેતા નહીં હૈ કિન્તુ સમ્યક્ આલાપ સે સંતોષ ઉત્પન્ન કરતા હૈ વહ પુરુષ વ્યવહારી હૈ । (તત્થ નં જે સે પુરિસે દેહ વિ, સ્પર્શવેદ વિ, સે પુરિસે વ્યવહારી૩) તથા જો પુરુષ દેતા મી હૈ ઓર સમ્યક્ આલાપ દ્વારા સંતોષ મી ઉત્પન્ન કરાતા હૈ વહ પુરુષ વ્યવહારી હૈ । (તત્થ નં જે સે પુરિસે નો દેહ નો સ્પર્શવેદ સે પુરિસે સે નં અવ્યવહારી) તથા જો પુરુષ ન દેતા હૈ ઓર ન સમ્યક્ આલાપ દ્વારા સંતોષ ઉત્પન્ન કરતા હૈ વહ પુરુષ અવ્યવહારી હૈ । (એવામેવ તુમ પિ વ્યવહારી નો ચૈવ નં તુમં પણી ! અવ્યવહારી) હસી તરહ સે અર્થાત્ મહોત્તરોક્ત પુરુષ, કે બીચ મેં એક મંગ વિશેષ કી તરહ હે પ્રદેશિન્ ! તુમ મી વ્યવહારી હો, ચતુર્થ મહોત્તર પુરુષ કી તરહ તુમ અવ્યવહારી નહીં હો—તાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ કિ યદ્યપિ હે પ્રદેશિન્ ! તુમને સમ્યક્ આલાપ દ્વારા સંતુષ્ટ કર મુશ્કેલ વ્યવહાર નહીં કિયા હૈ—ફિર મી મેરે વિષય મેં ભક્તિ ઓર વહુમાન તો કિયા હી હૈ—અતઃ તુમ આદ્યમહોત્તર પુરુષ કી તરહ વ્યવહારી હી હો—અવ્યવહારી નહીં હો ।

તેમજ જે પુરુષ આવતો નથી પણ સારા સલાખણથી સંતોષ ઉત્પન્ન કરે છે તે વ્યવહારી છે. (તત્થ નં જે સે પુરિસે દેહ, વિ, સ્પર્શવેદ વિ, સે પુરિસે વ્યવહારી.૩) તેમજ જે પુરુષ અ.પે પણ છે અને સમ્યક્ આલાપવડે સંતોષ પણ ઉત્પન્ન કરે છે તે પુરુષ વ્યવહારી છે. (તત્થ નં જે સે પુરિસે નો દેહ નો સ્પર્શવેદ સે પુરિસે નં અવ્યવહારી) તેમજ જે પુરુષ આવતો નથી તેમજ સમ્યક્ આલાપ પણ કરતો નથી એટલે કે સારા સલાખણથી સંતોષ ઉત્પન્ન કરતો નથી તે પુરુષ અવ્યવહારી છે. (એવામેવ તુમં પિ વ્યવહારી નો ચૈવ નં તુમં પણી ! અવ્યવહારી) આ પ્રમાણે હે પ્રદેશિન્ તમે પણ વ્યવહારી છો.

ચતુર્થ ભગમા કહ્યા મુજબ તમે અવ્યવહારી નથી. તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે કે હે પ્રદેશિન્ ! તમે સમ્યક્ આલાપરૂપ સારો વ્યવહાર મારી સાથે કર્યો નથી છતાં મારા વિષયમાં લક્ષિત અને ગહુમાન તો તમે કર્યા છો એથી તમે આદ્યભગોક્ત પુરુષની જેમ વ્યવહારી જ છો. અવ્યવહારી નથી.

हे प्रदेक्षिन् त्वं जानासि खलु यत् कति-कियन्तो व्यवहारका-भ्यः  
 हारोः-मवृत्तयः प्रकृताः ?" इति प्रश्नानन्तरं प्रदेक्षी प्राह-हन्त ! जानामि,  
 तत्र शायमानविषय प्रकाशयति-अन्वय-अन्तु ! सरूपका-व्यवहाराः प्रकृताः,  
 तेषां-एका-कश्चित् पुरुषः ददाति-किञ्चित् वस्तु कस्मैचित् समर्पयति  
 किन्तु न स ज्ञापयति-सम्यग्गालापेन सतोप नोत्पादयति ? । एका स ज्ञा  
 पयति किन्तु नो ददाति २ । एको ददात्यपि स ज्ञापयत्यपि ३ । एको नो  
 ददाति नो स ज्ञापयति ४ । इति चत्वारो मन्त्राः । ४ प्र केसी प्रदेक्षिन् पृच्छ-  
 ति-हे प्रदेक्षिन् ! त्वं जानासि खलु एतेषां चतुर्णां पुरुषाणां दान-उद्  
 स ज्ञापनं १-स ज्ञापनाऽदान २-दानस ज्ञापनोभय ३-उद्भयपरावित्येक ४  
 एतिसम्पन्नानां मध्ये कः पुरुषो व्यवहारी ? इति जानासि ? इति प्रश्ने  
 प्रदेक्षी प्राह-हन्त ! जानामि-तदेव दर्शयति "तस्य च" इत्यादिना-तत्र-  
 मन्त्रचतुष्टये खलु यः सः-मध्यममन्त्रोक्तः पुरुषः 'ददाति नो स ज्ञापयति' सः-  
 दान-तदस ज्ञापनसम्पन्नः अष्ट पुरुषः व्यवहारी कथयते ? । एव तत्र खलु  
 पः सः-द्वितीयमन्त्रोक्तः, 'नो ददाति, नो स ज्ञापयति'-स ज्ञापनाऽदानसम्प

टीका—प्रश्न के सिद्धिप्रकार भ्रमणने प्रदेक्षी राजा से ऐसा प्रश्न कि है  
 प्रदेक्षिन् ! तुम जानते हो कि व्यवहार कितने प्रकार का होता है ? इस  
 प्रकार से पूछने का कारण यह हुआ कि प्रदेक्षी राजाने १४९ वे सूत्र में  
 अपने द्वारा कृत व्यवहार के विषय में सपाई उपस्थित की है केचोक्त-  
 प्रारम्भण के प्रश्न को सुनकर उसने कहा हाँ, भवन्त ! जानता हूँ व्यव-  
 हार चार प्रकार का होता है एक व्यवहार में देनेवाला पुरुष किसी के  
 विदे कोई वस्तु देता है परन्तु अपने सम्यक् आलाप से-वातचीत से  
 यह समके, मिय सताप उत्पन्न नहीं कराता है, दूसरे व्यवहार में देनेवाला

टीका—प्रश्न के सिद्धिप्रकार भ्रमणने प्रदेक्षी राजाने आ प्रभावे प्रश्न कथों के  
 के प्रदेक्षिन् ! तुम जानते हो कि व्यवहार कितने प्रकार का होता है ? इस  
 प्रकार से पूछने का कारण यह हुआ कि प्रदेक्षी राजाने १४९ वे सूत्र में  
 अपने द्वारा कृत व्यवहार के विषय में सपाई उपस्थित की है केचोक्त-  
 प्रारम्भण के प्रश्न को सुनकर उसने कहा हाँ, भवन्त ! जानता हूँ व्यव-  
 हार चार प्रकार का होता है एक व्यवहार में देनेवाला पुरुष किसी के  
 विदे कोई वस्तु देता है परन्तु अपने सम्यक् आलाप से-वातचीत से  
 यह समके, मिय सताप उत्पन्न नहीं कराता है, दूसरे व्यवहार में देनेवाला

નનઃ સઃ સ્વલ્લુ પુરુષો વ્યવહારી ૨, એવ તત્ર યઃ સઃ તૃતીયમ્બ્રોક્તઃ પુરુષઃ  
દદાત્યપિ સંજ્ઞાપયત્યપિ' સઃ-દાન-તત્સંજ્ઞાપનસમ્પન્નઃ પુરુષો વ્યવહારી ૩ ।

પુરુષ અપની મિષ્ટ ભાષણરૂપ પ્રવૃત્તિ સે દૂસરે કો સંતોષ તો ઉત્પન્ન કરા  
દેતા હૈ, પરન્તુ અપની વસ્તુ ઉસે દેતા નહીં હૈ. તૃતીય વ્યવહાર મેં દેને-  
વાલા અપની વસ્તુ દે મી દેતા હૈ ઓર અપની મિષ્ટ ભાષણરૂપ પ્રવૃત્તિ સે  
ઉસે સંતોષ મી ઉત્પન્ન કરદેતા હૈ, ચતુર્થ વ્યવહાર મેં-કોઈ દેતા મી  
નહીં-હૈ ઓર સંતોષ મી ઉત્પન્ન નહી કરાતા હૈ. હસ પ્રકાર યે ચાર મંત્ર  
હૈ. હન મેં કેશીકુમારશ્રમણ પ્રદેશી રાજા સે પૂછતે હૈ-હે પ્રદેશિન્ ! તુમ  
જાનતે હો કિ હન ચાર-દાન-તદસંજ્ઞાપન, સંજ્ઞાપન દાને સંજ્ઞાપન ઉમય  
એવં તદુમય રહિતરૂપ વૃત્તિસંપન્ન પુરુષોં કે મધ્ય મેં કૌન પુરુષ વ્યવહારી  
હૈ ? તથ પ્રદેશીને કહા હાં, મદન્ન ! જાનતા હું, હસ મંત્રચતુષ્ટય મેં જો  
પ્રથમ મંત્રોક્ત પુરુષ હૈ-દેતા તો હૈ મિષ્ટભાષણ દ્વારા સંતોષ ઉત્પન્ન નહીં  
કરાતા હૈ-વહ દાન તદસંજ્ઞાપન સમ્પન્ન પુરુષ વ્યવહારી કહા જાતા હૈ  
અર્થાત્ જો 'દદાતિ નો સંજ્ઞાપયતિ' હસ મંત્રવાલા હૈ વહ વ્યવહારી હૈ હસી  
તરહ જો દ્વિતીયમંત્ર મેં કહા ગયા હૈ સંજ્ઞાપયતિ, નો દદાતિ' વહ સંજ્ઞાપના  
અદાન સંપન્નપુરુષ વ્યવહારી હૈ. હસી પ્રકાર જો તૃતીય મંત્ર મેં કહા ગયા  
હૈ 'દદાત્યપિ' સંજ્ઞાપયત્યપિ' એસા વહ દાન તત્સંજ્ઞાસમ્પન્ન પુરુષ વ્યવહારી

સંતોષ આપી દે છે પણ પોતાની વસ્તુ સામેવાળા માણસને આપતો નથી. તૃતીય  
વ્યવહારમા દાનકર્તા પોતાની વસ્તુ આપી પણ દે છે અને પોતાની મધુર ભાષણરૂપ  
પ્રવૃત્તિથી તે સામેના માણસને સંતુષ્ટ પણ કરી દે છે. ચતુર્થ વ્યવહારમાં તે કોઈ  
પણ વસ્તુ યાચકને આપતો પણ નથી અને મધુર સંલાપથી સામેના માણસને સંતુષ્ટ  
પણ કરતો નથી. આ પ્રમાણે આ ચાર ભંગ છે. એના સંબંધમા કૈશી કુમારશ્રમણ  
પ્રદેશી રાજાને પ્રશ્ન કરે છે કે હે પ્રદેશિન્ ! તમે જાણો છો કે આ ચાર-દાન તદ-  
સંજ્ઞાપન, સંજ્ઞાપન, દાને સંજ્ઞાપન ઉભય અને તદુભય રહિતરૂપ વૃત્તિ સંપન્ન પુરુ-  
ષોમા કોણ વ્યવહારી છે ? ત્યારે પ્રદેશીએ કહ્યું-હા ભદ્રત ! જાણ્યું છું. આ ભંગ  
ચતુષ્ટયમાં જે પ્રથમ ભગોક્ત પુરુષ છે-તે આપે તો છે પણ મિષ્ટ ભાષણવડે સંતોષ  
ઉત્પન્ન કરતો નથી તે દાન તદસંજ્ઞાપન સમ્પન્ન પુરુષ વ્યવહારી કહેવાય છે. એટલે  
કે જે 'દદાતિ નો સંજ્ઞાપયતિ' આ ભગવાણો છે તે વ્યવહારી છે આ પ્રમાણે  
જે દ્વિતીય ભગ કહેલ છે 'સંજ્ઞાપયતિ, નો દદાતિ' તે સંજ્ઞાપના અદાન સંપન્ન  
પુરુષ વ્યવહારી છે. આ પ્રમાણે જે તૃતીય ભગમા કહેલ છે-'દદાત્યપિ સંજ્ઞાપ-  
યત્યપિ' એવો તે દાન તત્સંજ્ઞાપના સમ્પન્ન પુરુષ વ્યવહારી છે પણ જે ચતુર્થ



हे मदेशिन् त्वं जानासि खलु यत् कति-कियन्तो व्यवहारकाः-मरु-  
होराः-महत्तयः मञ्जुताः ?" इति प्रश्नानन्तरं प्रदेष्टी प्राह-हन्त ! जानामि,  
तं प्रज्ञायमानविषय मकोशयति-चत्वारः-चतुः स रूपकाः व्यवहाराः मञ्जुताः,  
तदेषा-एकः-कश्चित् पुरुषः ददाति-किञ्चिद् यस्तु कस्मैचित् समर्पयति  
किन्तु न स ज्ञापयति-सम्पत्त्यालापेन सतोप नोत्पादयति ? । एकः संज्ञा  
पयति किन्तु नो ददाति २ । एको ददात्यपि स ज्ञापयत्यपि ३ । एको नो  
ददाति नो मज्ञापयति ४ । इति चत्वारो मन्त्राः । तत्र केचि मदेशिम पृच्छ-  
ति-हे मदेशिन् ! त्वं जानासि खलु एतेषां चतुर्णां पुरुषाणां दान-वद्  
संज्ञापनं ?-संज्ञापनाऽदान २-दानसंज्ञापनोभय ३-सदुभयराहित्यरूप ४  
वृत्तिसम्पन्नानां मध्ये कः पुरुषो व्यवहारी ? इति जानासि ? इति प्रश्ने  
प्रदेष्टी प्राह-हन्त ! जानामि-सदेव दर्शयति "तत्त्वम्" इत्यादिना-तत्र-  
मञ्जुतुष्टये खलु यः सः-प्रथममश्लोक पुरुषः 'ददाति नो संज्ञापयति', स-  
दान-तदसंज्ञापनसम्पन्नः खलु पुरुषः व्यवहारी कथयते ? । एव तत्र खलु  
यः सः-द्वितीयमश्लोकः, 'नो, ददाति, नो, संज्ञापयति'-संज्ञापनाऽदानसम्पन्न

टीका—प्रथम केचिङ्कुमारभ्रमजने प्रदेष्टी राजा से ऐसा पूछा कि हे  
मदेशिन् ! तुम जानते हो कि व्यवहार कितने प्रकार का होता है ? इस  
प्रकार से पूछने का कारण यह हुआ कि प्रदेष्टी राजाने १४९वें सूत्र में  
अपने द्वारा कृतव्यवहार के विषय में सफाई उपस्थित की है केचिङ्कु-  
मारभ्रमण के मन्त्र को सुनकर उसने कहा हाँ, महन्त ! जानता हूँ व्यव-  
हार चार प्रकार का होता है एक व्यवहार में देनेवाला पुरुष किसी के  
मिये कोई वस्तु देता है परन्तु अपने सम्पत्त आलाप से-बातचीत से  
बिना उनके मिये सत्ताप उत्पन्न नहीं कराता ६, दूसरे व्यवहार में देनेवाला

टीका—ज्यादे ठेरी कुमार भ्रमजे प्रदेष्टी राजाने आ प्रभावे प्रश्न कर्त्त  
हे मदेशिन् ! तमि ज्ञेयुं छ। हे, व्यवहार कितना प्रकारना होय छ ? आ प्रभावे ने  
प्रश्न कर्त्तना आये छ तेतु क्षण्य को छ हे प्रदेष्टी राजाने १४९ भा सूत्रभा  
ने जततु आवरणु कर्त्तुं छ तेना सणधमां सण्योक्षणु कर्त्तनां आ पु छ। ठेरी  
कुमार भ्रमजना प्रश्नने सत्तापने तेजे कर्त्तुं दां कहत । जतु ॥ व्यवहार चार  
प्रकारना होय छ। प्रथम व्यवहारभां दानकर्त्ता पुरुष कर्त्तना आटे कर्त्तुं वस्तु आपे  
छ, पणु पीताना सम्पत्त आलापणी-सारी भीडी वातपीतपी ते सार्थना भाषणने  
सतोप आपतो नथी द्वितीय व्यवहारभां दानकर्त्ता पुरुष पीतानी भीडी वातपीती पीतने

નન: સઃ સ્વલ્લ પુરુષો વ્યવહારી ૨, એવ તત્ર યઃ સઃ તૃતીયમ્નોક્તઃ પુરુષઃ  
દદાત્યપિ સંજ્ઞાપયત્યપિ' સઃ-દાન-તત્સંજ્ઞાપનસમ્પન્નઃ પુરુષો વ્યવહારી ૩ ।

પુરુષ અપની મિષ્ટ ભાષણરૂપ પ્રવૃત્તિ સે દૂસરે કો સંતોષ તો ઉત્પન્ન કરા  
દેતા હૈ, પરન્તુ અપની વસ્તુ ઉસે દેતા નહીં હૈ. તૃતીય વ્યવહાર મેં દેને-  
વાલા અપની વસ્તુ દે ભી દેતા હૈ ઓર અપની મિષ્ટ ભાષણરૂપ પ્રવૃત્તિ સે  
ઉસે સંતોષ ભી ઉત્પન્ન કરદેતા હૈ, ચતુર્થ વ્યવહાર મેં-કોઈ દેતા ભી  
નહીં-હૈ ઓર સંતોષ ભી ઉત્પન્ન નહી કરાતા હૈ. હસ પ્રકાર યે ચાર મંત્ર  
હૈ. હન મેં કેશીકુમારશ્રમણ પ્રદેશી રાજા સે પૂછતે હૈં-હે પ્રદેશિન્ ! તુમ  
જાનતે હો કિ હન ચાર-દાન-તદસંજ્ઞાપન, સંજ્ઞાપન દાને સંજ્ઞાપન ઉભય  
એવં તદુભય રહિતરૂપ વૃત્તિસંપન્ન પુરુષોં કે મધ્ય મેં કૌન પુરુષ વ્યવહારી  
હૈ ? તથ પ્રદેશીને કહા હાં, મદન્ત ! જાનતા હું, હસ મંત્રચતુષ્ટય મેં જો  
પ્રથમ મંત્રોક્ત પુરુષ હૈ-દેતા તો હૈ મિષ્ટભાષણ દ્વારા સંતોષ ઉત્પન્ન નહીં  
કરાતા હૈ-વહ દાન તદસંજ્ઞાપન સમ્પન્ન પુરુષ વ્યવહારી કહા જાતા હૈ  
અર્થાત્ જો 'દદાતિ નો સંજ્ઞાપયતિ' હસ મંત્રવાલા હૈ વહ વ્યવહારી હૈ હસી  
તરહ જો દ્વિતીયમંત્ર મેં કહા ગયા હૈ સંજ્ઞાપયતિ, નો દદાતિ' વહ સંજ્ઞાપના  
અદાન સંપન્નપુરુષ વ્યવહારી હૈ. હસી પ્રકાર જો તૃતીય મંત્ર મેં કહા ગયા  
હૈ 'દદાત્યપિ' સંજ્ઞાપયત્યપિ' એસા વહ દાન તત્સંજ્ઞાસમ્પન્ન પુરુષ વ્યવહારી

સંતોષ આપી દે છે પણ પોતાની વસ્તુ સામેવાળા માણસને આપતો નથી. તૃતીય  
વ્યવહારમા દાનકર્તા પોતાની વસ્તુ આપી પણ દે છે અને પોતાની મધુર ભાષણરૂપ  
પ્રવૃત્તિથી તે સામેના માણસને સતુષ્ટ પણ કરી દે છે. ચતુર્થ વ્યવહારમાં તે કોઈ  
પણ વસ્તુ યાચકને આપતો પણ નથી અને મધુર સંલાપથી સામેના માણસને સતુષ્ટ  
પણ કરતો નથી. આ પ્રમાણે આ ચાર ભાગ છે એના સંબંધમા દેશી કુમારશ્રમણ  
પ્રદેશી રાજાને પ્રશ્ન કરે છે કે હે પ્રદેશિન્ ! તમે જાણો છો કે આ ચાર-દાન તદ-  
સંજ્ઞાપન, સંજ્ઞાપન, દાને સંજ્ઞાપન ઉભય અને તદુભય રહિતરૂપ વૃત્તિ સંપન્ન પુરુ-  
ષોમા કોણ વ્યવહારી છે ? ત્યારે પ્રદેશીએ કહ્યું-હા ભદ્રત ! જાણુ છું. આ ભગ  
ચતુષ્ટયમા જે પ્રથમ ભગોક્ત પુરુષ છે-તે આપે તો છે પણ મિષ્ટ ભાષણવડે સંતોષ  
ઉત્પન્ન કરતો નથી તે દાન તદસંજ્ઞાપન સમ્પન્ન પુરુષ વ્યવહારી કહેવાય છે. એટલે  
કે જે 'દદાતિ નો સંજ્ઞાપયતિ' આ ભાગવાળો છે તે વ્યવહારી છે આ પ્રમાણે  
જે દ્વિતીય ભગ કહેલ છે 'સંજ્ઞાપયતિ, નો દદાતિ' તે સંજ્ઞાપના અદાન સંપન્ન  
પુરુષ વ્યવહારી છે. આ પ્રમાણે જે તૃતીય ભગમા કહેલ છે-'દદાત્યપિ સંજ્ઞાપ-  
યત્યપિ' એવો તે દાન તત્સંજ્ઞાપના સમ્પન્ન પુરુષ વ્યવહારી છે પણ જે ચતુર્થ

तत्र खलु य स - चतुर्थमश्लोक पुरुषः। नो ददाति नो सञ्जाययति' सः-  
अज्ञानासञ्जापनोभयसंस्पन्न पुंस्त्व उभयविषयव्यवहाररहिततया अन्य-  
वहारी। एवमेव-मश्लोकपुरुषाणां मध्ये एकमश्लोकपुरुषवत्त्वं हे। प्रदेष्टिन।  
एव खलु अन्यवहारी चतुर्थमश्लोकपुरुषवत्त्वं नो धेय-नयासि। यद्यपि स  
सम्यक्कर्मापेन सा सतोप्य न वर्तते, तथापि प्रम, विषये भक्ति-बहुमाने  
च करोपि अतस्त्वमाथमश्लोकपुरुषवत्त्वं व्यवहार्यं प्रनस्त्वव्यवहारीति भावः॥ १५०॥

मूलम-तए जे पएसी राया केसिकुमारसमणं एव वयासी

-तुम्हेणं भते। अइच्छेया दक्खा जाव उवणमलद्धा समुत्थाणं  
भते। मम करयलसि वा आमलय जीव, सरीराओ, अभिनिवडित्ता  
ण उवदसित्तए ?

[तेण कालेणं तेणं समणं पएसिस्म रणणो अदूरसीमते वडिं  
याए संवुत्ते, तणवणस्सइकाण एयइ वेयइ चलइ, पदइ घेहइ उदी-  
रइ त त भाव परिणमइ, तए णं कसीकुमारसमणे, पएसि राय  
एव वयासी-याससि, णं तुम पणसिराया। एय तणवणस्सइ एयत

है। परन्तु जो चतुर्थमश्लोकपुरुष है 'नो ददाति नो सञ्जाययति' वह  
आदान असञ्जापनारूप उभयवृत्ति संपन्न पुंस्त्व उभयविषयव्यवहार रहित होने  
के कारण अन्यवहारी है। इसी तरह से है प्रदेष्टिन। इन तीन भगो  
में कहे गए पुरुषों के बीच एकमश्लोक पुरुष विशेष की तरह तुम  
भी हैं। चतुर्थमश्लोक पुरुष की तरह अन्यवहारी नहीं हो यद्यपि तुमने  
सम्यक् आलाप द्वारा मुझे सतोप उत्पन्न कराकर प्रशंसित व्यवहार नहीं  
किया है फिर भी मेरे विषय में भक्ति और बहुमान सा। किया ही है इसलिये तुम,  
माथमश्लोक पुरुष की तरह व्यवहारी ही हो, अन्यवहारी नहीं हो ॥ १५०॥

अश्लोक उ३५ छ 'नो ददाति नो सञ्जाययति' से आदान अज्ज्ञापना रूप  
उभयवृत्ति संपन्न पुंस्त्व उभयविषय व्यवहार रहित एवासी अन्यवहारी छ। आ  
प्रमाण से प्रदेष्टिन। आ तत्र अश्लोकों केवल पुद्गलों में प्रथम अश्लोक पुद्गल विशेष  
पत्नी जेभ तमि पणु छ। अतए अश्लोक पुद्गलनी जेभ तमि अन्यवहारी नथी तमि  
अन्य अज्ञापदारा भने सतोप आधीने अश्लोक व्यवहार कथी नथी छ। आ  
भास निषर्मा अहित अन अनुमान तो तमाके कथी व छ अथी तमि आथ,  
अश्लोक पुद्गलनी जेभ व्यवहारी व छ। अन्यवहारी नथी ॥ १५ ॥

जाव त त भोव परिणमंत ? ] हंता । । पासामि । जाणासि णं तुमं  
 पएसी ! एय तणवणस्सइं कायं । क देवो चालेइ असुरो वा चालेइ  
 णागो चालेइ किंनरो वा चालेइ किंपुरिसो वा चालेइ महोरगो वा  
 चालेइ गंधव्वो वा चालेइ ? हंता जाणासि—णो देवो चालेइ जाव णो  
 गंधव्वो चालेइ । वाउकाए चालेइ पाससि णं तुमं पएसी ! एयस्स  
 वाउकायस्स सरूविस्स सकम्मस्स सरागस्स समोहस्स सवेयस्स सलेसस्स  
 ससरीरस्स रूव ? । णो इणट्ठे समट्ठे । जइ गं तुमं पएसिराया । एयस्स  
 वाउकायस्स सरूविस्स जाव ससरीरस्स रूवं न पाससि तं कह णं  
 पएसी ! तवं करयलं सि वा आमलगं जीव उवदंसिस्सामि ? । एव खल्ल  
 पएसी ! दसट्ठाणाइं छउमत्थे मणुस्से सव्वभावेणं न जाणइ न पासइ,  
 तं जहा—धम्मत्थिकायं १, अधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकायं ३, जीवं  
 असरीरवडं ४, परमाणुपोग्गलं ५, सइं ६, गंधं ७, वायं अयं जिणे भवि-  
 स्सइ वा णो भविस्सइ ९, अय सव्वदुक्खाणं अंतं करिस्सइ वा नो  
 वा करिस्सइ १० । एयाणि चेव उप्पन्ननाणदसणधरे अरहा जिणे  
 केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा धम्मत्थिकायं जाव नो वा  
 करिस्सइ, तं सइंहाहि ण तुम पएसी । जहां अन्नो जीवो तं चेव ? । सू १५१

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्—यय खलु  
 भदन्त ! अतिच्छेदाः, दक्षाः यावत् उपदेशलब्धाः समर्थाः खलु भदन्त !

‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशीने (केशिकुमार-  
 समण एव वयासी) केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(तुम्हे णं भंते ! अइच्छेया

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

(सूत्रार्थ—(तए णं) त्थार पथी (पएसी राया) प्रदेशी राजा (केशिकुमार  
 समण एव वयासी) केशी कुमार श्रमण ने आ प्रमाणे कथ्य—(तुम्हे णं भंते !

तत्र खट्वं पञ्च - चतुर्थमङ्गात्कः पुरुषो नो ददाति नो सजापयति, स -  
 भदानाम् सजापनाभ्यसम्पन्नं पुण्यः उभयविधभ्यवहाररहिततया अस्य -  
 यवहारी । एवमेव - मङ्गप्रयोगपुरुषाणां मध्य एकमङ्गप्रयोगवद्वय इव प्रदेति ।  
 तत्र खट्वं अन्वयवहारी चतुर्थमङ्गोक्तपुरुषवत् नो ददाति नो सजापयति । यद्यपि स  
 शब्दकर्मलापेन मा समोप्य न वर्मस्य, तथापि प्रम विषये मक्ति - बहुमाने  
 च करोति अनुस्वभावाय मङ्गात्कपुरुषवद् व्यवहारमन्वयवहारीति भाष्य ॥ १५० ॥

मूलम् - तत्र णं पणसी राया क्रैसिकुमारममणं एव वयासी  
 - तुल्ये णं भते । अहच्छेया टक्त्वा जान उवणमलद्धा समुत्था णं  
 भते । मम करयलसि वा आमलय जीव सरीगओ अभिनिवडित्त  
 ण उवडसित्तण ?

[तेणं कालेणं तेणं समएण पणसिस्म गणो अदुरेसामते वड  
 याण संवुत्त, तणवणस्सड्काण एयइ वेयइ चल्ड, फंदइ घेइ उदो  
 रइ त त भाव परिणमड, तए णं कसीकुमारसमणे पणसि राय  
 एव वयासी - पाससि णं तुमं पणसिरया ! एय तणवणस्सइ एयत

इ परन्तु जो चतुर्थ मङ्गोक्तपुरुष है 'नो ददाति नो सजापयति' वह  
 भदान् भ्रमज्ञापनार्थ उभयवृत्ति संपन्न पुण्य उभयविधभ्यवहार रहित होने  
 के कारण अव्यवहारी है । इसी तरह स ह प्रवेतिन । इन तीन मङ्गों  
 में वहे शय पुरुषों के बीचमें एकमङ्गात्क पुण्य विशेष की तरह तुम  
 भी हो चतुर्थ मङ्गोक्त पुण्य की तरह अव्यवहारी नहीं हो यद्यपि तुमने  
 सम्यक् आलाप द्वारा मुझे सतीत उत्पन्न कराकर प्रशस्तिरूप व्यवहार नहीं  
 किया है फिर भी मम विषय में मक्ति और बहुमान सा । क्या ही है इगमिय तुम,  
 आद्यमङ्गात्क पुण्य की तरह व्यवहारी ही हो, अव्यवहारी नहीं हो ॥ १५० ॥

लोकत पुत्र छ 'नो ददाति नो सजापयति' तो आदान भ्रमज्ञापना इस  
 उभयवृत्ति संपन्न पुत्र उभयविध भ्यवहार रहित एवमयी अव्यवहारी छ । आ  
 प्रभावे छ प्रवेतिन । यह त्रय लोकता कल्ल पुत्राभा भ्रमलोकत पुत्र चिं  
 पनी भ्रम तम पण छ । चतुर्थ लोकत पुत्राणी भ्रम तमि न च ददाती नथी तमि  
 अभ्रम आलापना मने सतीत आगिने भ्रुत्तिरूप भ्यवहार कया नथी छ । अ  
 भास विषयमा भवित अने जलभान तो तमिअमे कया न छ भेथी तमि अ  
 लोकत पुत्राणी भ्रम भ्यवहारी न छ, अव्यवहारी नथी, ॥ १५० ॥

जाव तं त भोव परिणमंत ? ] हंता ! ! पासामि । जाणासि णं तुमं  
 पएसी । एयं तणवणस्सइं कायं । क देवो चालेइ असुरो वा चालेइ  
 णागो चालेइ किंनरो वा चालेइ किंपुरिसो वा चालेइ महोरगो वा  
 चालेइ गंधवो वा चालेइ ? हंता जाणामि—णो देवो चालेइ जाव णो  
 गंधवो चालेइ । वाउकाए चालेइ पाससि णं तुमं पएसी ! एयस्स  
 वाउकायस्स सरूविस्स सकम्मस्स सरागस्स समोहस्स सवेयस्स सलेसस्स  
 स सरीरस्स रूव ? । णो इणट्ठे समट्ठे । जइ णं तुमं पएसिराया । एयस्स  
 वाउकायस्स सरूविस्स जाव स सरीरस्स रूवं न पाससि तं कह णं  
 पएसी ! तव करयेलं सि वा आमलगं जीव उवदंसिस्सामि ? । एव खल्ल  
 पएसी ! दसट्ठाणां छउमत्थे मणुस्से सव्वभावेणं न जाणइ न पासइ,  
 तं जहा—धम्मत्थिकायं १, अंधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकायं ३, जीवं  
 असरीरवच्छं ४, परमाणुपोग्गल ५, सइं ६, गंधं ७, वायं अयं जिणे भवि  
 स्सइ वा णो भविस्सइ ९, अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करिस्सइ वा नो  
 वा करिस्सइ १० । एयाणि चेव उप्पन्ननाणदसणधरे अरहा जिणे  
 केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा धम्मत्थिकायं जाव नो वा  
 करिस्सइ, तं सदहाहि ण तुम पएसी । जहा अन्नो जीवो तं चेव ? । सू १५१ ।

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्—यूयं खलु  
 भदन्त ! अतिच्छेकाः, दक्षाः यावत् उपदेशलब्धाः ममर्थाः खलु भदन्त !

‘तएणं पएसी, राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशीने (केशिकुमार-  
 समण एव वयासी) केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(तुम्हे णं भंते ! अइच्छेया

‘तए णं पएसी, राया’ इत्यादि ।

(सूत्रार्थ—(तए णं) त्थार प्रधी (पएसी राया) प्रदेशी राजान्ने (केशिकुमार  
 समण एव वयासी) केशी कुमार श्रमण ने आ प्रभाण्णे क्खु—(तुम्हे णं भंते !

मम करतले वा आमसक जीव श्रीराद् अमिनिवर्त्य सल्ल उपदर्शयितुमा  
तस्मिद् काळे तस्मिन् समये प्रदेक्षिमो राज्ञः अहूरसामन्ते वायुकावः  
संहतः, तृणवनस्पतिकायः एजते स्पजते व्यसति स्पन्दते पङ्कते उदीते च त  
मात्र परिणमते । ततः खलु केशीकुमारभ्रमणः प्रदेक्षिराजमेवमनादीत्-यस्वसि

दृष्ट्वा प्राप उपदेसलब्धा समस्था न भवे ! मम कारयसि वा मां  
 कथं जीव सरीराओ अभिनिषष्टिन्ता न उपदसिष्ये) हे मदन्त ! आप  
 अवसर के ज्ञान में अतिनिपुण हैं दस हैं—कार्य के सम्पादन में कुशल  
 हैं, यावत् उपदेसलब्ध हैं—शुक्र के उपदेस को प्राप्त किये हुए हैं इसलिये  
 हे मदन्त ! शरीर से जीव को निकाल कर क्या आप इच्छतछ में स्थित  
 आँखों की तरह उसे मुझे दिखा सकते हैं ? (तेज काञ्चन तेज समपन्न पद ॥  
 सिस्स रण्णो भदूरसाम ते बाउयाए स बुचे) इस काल और उस समय  
 में प्रवेशी राजा के नजदीक—न अतिदूर और न अतिपास स्थान पर  
 वायुकायप्रवृत्त हुआ (तज्जवणस्सइकाए एयई, वेयई, बळेई, फइई, चइई,  
 उदीरई, त न भाव परिणमइ) इससे तज्जवनस्पतिकाय सामान्यतः एव  
 विक्षोपतः कपित होने लगा, इधर से उधर झुकने लगा परस्पर में संपर्कित होने  
 लगा एव कोईर जमीन ऊपर ही झुक गया इस तरह वह तज्जवनस्पति-  
 काय एवनादिरूप भिन्न प्रकार के व्यापार में परिणत हो गया (एव न-

માણેપા દક્ષા જાય ઉપસસદ્ધા સમસ્થા જાં મલે ! મમ કરયસંસિ  
 શા આમલય જીવ સરીરામો મમિનિવહિસા જ ઉપસંસિવપ) દેશવતી આપ  
 અવસરને સરસ રીતે બાધવામા અતિ નિયુષ્ઠ છે કાચના સપ્તકનમાં કુશળ છે,  
 યાવત્ ઉપદેશ લખ્ય છે, છુદ્ધના ઉપદેશને ખેત કચેલ છે. જોથી જ દે મહન્ત !  
 શરીરમાંથી લખને બહાર કઢાડીને શુ તને હસ્તામલકવ મને બતાવી શકે છે ?  
 (તે જ કાછેળ તેણ સમણ પવસિસ્સ રણો મદરસામતે વાઠપાવ સચુવે)  
 તે કાળે અને તે સમયે પ્રદેશી સજ્જની પાસે ન અતિ દૂર અને ન અતિ પાસેના  
 સ્થાન પર વામુકાચ પ્રવૃત્ત થયો. (તળાવનસ્સરકાપ પચ્છ, લેપહ, બલહ ફંદહ,  
 ઘટહ, ઉદીરહ, ત ત માવ પરિનમહ) જોનાથી તુષુવનસ્પતિક્રમ સામાન્યતઃ  
 અને વિશેષતઃ કપિત થવા માંડ્યો. આમથી તેમ નમવા માંડ્યો, પરપર સમપિત  
 થવા માંડ્યો, અને ઠોઠક જમીન પર જ નમી ગયો. આ મ્હાણે તે તુષુ વનસ્પતિ  
 ક્રમ જોવાનાદિશ્ય બિન્ન બિન્ન જાતના ન્યાપારમાં પરિણત થઈ ગયો. (તજ જ

खलु त्वं प्रदेशिराज ! एतं तृणवनस्पतिकायम् एजमानं यावत् तत् भावं परिणममानम् ! हन्त ! पश्यामि । जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! एतं तृणवनस्पतिकायं किं देवश्चालयति असुरो वा चालयति नागो वा चालयति किन्नरो वा चालयति किंपुरुषो वा चायति महोरगो वा चालयति गन्धर्वो वा चालयति ! हन्त ! जानामि-नो देवश्चालयति जाव नो गन्धर्वश्चालयति

केशीकुमारसमणे पएसिरायं एवं व्यासी-पाससि णं तुमं पएसी राया ! एयं तणवणस्सइं एयंतं जाव तंतं भाव परिणमतं) तव केशीकुमारश्च मणने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा-हे प्रदेशिन् ! तुम इस तृणवनस्पतिकाय को सामान्य विशेषरूप से कपित होते हुए यावत् एजनादिरूप भिन्नरूप प्रकार के व्यापार में परिणत होते हुए देख रहे होन ? तव प्रदेशी राजाने कहा (हंता, पासामि) हां, भदन्त ! देख रहा हूं (जाणासि णं तुमं पएसी ! एयं तणवणस्सइकायं किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ, नागो वा चालेइ, किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधर्वो वा चालेइ) तव केशीकुमारश्चमणने उससे कहा हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो कि इस तृणवनस्पतिकाय को कौन चलाता है ? क्या देव चलाता है, या नाग चलाता है या किन्नर चलाता है, या किंपुरूप चलाता है, या महोरग चलाता है या गंधर्व चलाता है ? प्रदेशीने कहा-(हंता, जाणामि) हां, भदन्त ! जानता हूं (णो देवो चालेइ जाव णो गंधर्वो चालेइ वाउकाए

केशी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं व्यासी-पाससि णं तुमं पएसि राया ! एयं तणवणस्सइं एयंतं जाव तंतं भाव परिणमंति) त्वारे देशी कुमार श्रमणे प्रदेशी राजाने आ श्रमणे उल्लुं के डे प्रदेशिन् ! तमे आ तृणवनस्पतिकायने सामान्य विशेषरूपथी कपित थता यावत् ऐजनादिरूप भिन्न प्रकारना व्यापारमां परिणत भुत्थो छे ? त्वारे प्रदेशी राजाने उल्लुं (हंता पासामि) हां भदंत ! जेधं रह्यो छुं (जाणासि णं तुमं पएसी ! एयं तणवणस्सइकायं किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ, नागो वा चालेइ, किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधर्वो वा चालेइ) त्वारे देशी कुमार श्रमणे तेने उल्लुं के डे प्रदेशिन् ! तमे जाल्लो छे के आ तृणवनस्पतिकायने केएय थलावे छे ? शु देव थलावे छे ? के असुर थलावे छे ? के नाग थलावे छे ? के किन्नर थलावे छे ? के किंपुरूप थलावे छे, के गंधर्व थलावे छे ? प्रदेशी राजाने उल्लुं-(हंता, जाणामि) हां भदंत ! जाल्लु छुं. (णो देवो चालेइ, जाव णो गंधर्वो चालेइ वाउकाए



मम कारुण्ये वा आमलक जीव सरीराद् अभिनिवर्त्य स्वस्त्युपदर्शयितुमी  
 तस्मिन् काले तस्मिन् समये मदेक्षितो राज्ञः अवृत्तसामंते बाधुकाय।  
 संवृत्तः, वृषवनस्पतिकायः एतत्ते व्यजते व्यसति स्पन्दते घटते उदीते त त  
 भाष परिणमते। ततः स्वस्त्यु केसीकुमारभ्रमणः मदेक्षिराममेयमवादीत्-व्यसति

द्वस्वा जाय उपसलद्धा समस्या न भवे ! मम करयसंसि वा आम  
 कय जीव सरीराद् अभिनिवर्त्तित्वा न उवदसिचप) हे मवन्त ! भाष  
 अवसर के ज्ञान में अतिनिपुण हैं दस हैं-कार्य के सम्पादन में कुशल,  
 हैं, यावत् उपदेशकत्व हैं-शुक्र के उपदेश को प्राप्त किये हुए हैं इसलिये  
 हे मवन्त ! शरीर से जीव को निकाल कर क्या आप इस्ततः में स्थित  
 आपछे की तरह उसे मुझे दिखा सकते हैं ? (तेण कालेन तेन समयेन पद  
 सिस्स रण्णो अवृत्तसामंते बाधुपाए सवुचे) इस काल और उस समय  
 में मदेक्षी राजा के नज्दीक-न अतिदूर और न अतिपात स्थान पर  
 बाधुकायमवृत्त हुआ (तणवणस्सइकाए एयइ, वेयइ, बलेइ, फइइ, घटइ,  
 उदीरइ, त न भाष परिणमइ) इससे वृषवनस्पतिकाय सामान्यतः वह  
 विशेषतः कपित होने लगा, इधर से उधर बढ़ने लगा परस्पर में संपर्क होने  
 लगा एव कोईर जमीन ऊपर ही रुक गया इस तरह वह वृषवनस्पति-  
 काय एमनादिक्रम विभिन्न प्रकार के व्यापार में परिणत हो गया (तए न

मवृत्तेया द्वस्वा जाय उपसलद्धा समस्या न भवे ! मम करयसंसि  
 वा आमलक जीव सरीराद् अभिनिवर्त्तित्वा न उवदसिचप) हे मवन्त ! भाष  
 अवसर के ज्ञान में अतिनिपुण हैं दस हैं-कार्य के सम्पादन में कुशल,  
 हैं, यावत् उपदेशकत्व हैं-शुक्र के उपदेश को प्राप्त किये हुए हैं इसलिये  
 हे मवन्त ! शरीर से जीव को निकाल कर क्या आप इस्ततः में स्थित  
 आपछे की तरह उसे मुझे दिखा सकते हैं ? (तेण कालेन तेन समयेन पद  
 सिस्स रण्णो अवृत्तसामंते बाधुपाए सवुचे) इस काल और उस समय  
 में मदेक्षी राजा के नज्दीक-न अतिदूर और न अतिपात स्थान पर  
 बाधुकायमवृत्त हुआ (तणवणस्सइकाए एयइ, वेयइ, बलेइ, फइइ, घटइ,  
 उदीरइ, त न भाष परिणमइ) इससे वृषवनस्पतिकाय सामान्यतः वह  
 विशेषतः कपित होने लगा, इधर से उधर बढ़ने लगा परस्पर में संपर्क होने  
 लगा एव कोईर जमीन ऊपर ही रुक गया इस तरह वह वृषवनस्पति-  
 काय एमनादिक्रम विभिन्न प्रकार के व्यापार में परिणत हो गया (तए न

खलु त्वं प्रदेशिराज ! एतं तृणवनस्पतिकायम् एजमानं यावत् तं तं भावं परिणममानम् ! हन्त ! पश्यामि । जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! एतं तृणवनस्पतिकायं किं देवश्चालयति असुरो वा चालयति नागो वा चालयति किन्नरो वा चालयति किंपुरुषो वा चायति महोरगो वा चालयति गन्धर्वो वा चालयति ! हन्त ! जानामि-नो देवश्चालयति जाव नो गन्धर्वश्चालयति

केसीकुमारसमणे पएसिरायं एवं वयासी-पाससि णं तुमं पएसी राया ! एयं तणवणस्सइं एयंतं जाव तं तं भावं परिणमंतं) तव केशीकुमारश्च मणने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा-हे प्रदेशिन् ! तुम इस तृणवनस्पतिकाय को सामान्य विशेषरूप से कपित होते हुए यावत् एजनादिरूप भिन्न-प्रकार के व्यापार में परिणत होते हुए देख रहे होन ? तव प्रदेशी राजाने कहा (हंता, पासामि) हां, भदन्त ! देख रहा हूं (जाणासि णं तुमं पएसी ! एयं तणवणस्सइकायं किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ, नागो वा चालेइ, किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधवो वा चालेइ) तव केशीकुमारश्चमणने उससे कहा हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो कि इस तृणवनस्पतिकाय को कौन चलाता है ? क्या देव चलाता है, या नाग चलाता है या किन्नर चलाता है, या किंपुरुष चलाता है, या महोरग चलाता है या गंधर्व चलाता है ? प्रदेशीने कहा-(हंता, जाणामि) हां, भदन्त ! जानता हूं (णो देवो चालेइ जाव णो गंधवो चालेइ वाउकाए

केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-पाससि णं तुमं पएसि राया ! एयं तणवणस्सइं एयंतं जाव तं तं भावं परिणमंति) त्वारे देशी कुमार श्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रमाणे क्खुं के के प्रदेशिन् ! तमे आ तृणवनस्पतिकायने सामान्य विशेषरूपी कपित थता यावत् एजनादिरूप भिन्न प्रकारना व्यापारमां परिणत भुत्थो छे ? त्वारे प्रदेशी राजाये क्खुं (हंता पासामि) हां भदन्त ! जेध रह्यो छुं (जाणासि णं तुम पएसी ! एयं तणवणस्सइकायं किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ, नागो वा चालेइ, किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधवो वा चालेइ) त्वारे देशीकुमार श्रमणे तेने क्खुं के के प्रदेशिन् ! तमे ज्ञात्तो छे के आ तृणवनस्पतिकायने कोषु यत्तावे छे ? शु देव यत्तावे छे ? के असुर यत्तावे छे ? के नाग यत्तावे छे ? के किन्नर यत्तावे छे ? के किंपुरुष यत्तावे छे, के गंधर्व यत्तावे छे ? प्रदेशी राजाये क्खुं-(हंता, जाणामि) हां भदन्त ! ज्ञात्तो छुं (णो देवो चालेइ, जाव णो गंधवो चालेइ, वाउकाए

वायुकायं चालयति । पश्यन्ति खलु त्वं प्रवेक्षिन् ! एतस्य वायुकायस्य सरु-  
पिणं सकम्पनं सरागस्य समोहस्य सवेदस्य सखेदस्य रूपम् । नायमर्थः समर्थः ।  
यदि खलु त्वं मध्विराज एतस्य वायुकायस्य सरुपिणो यावत् सद्यरीरस्य रूपं  
न पश्यसि तत् त्वं कथं खलु प्रदेक्षिन् ! त्वं करतले इव आमलकं नीचमुप-  
दर्शयिष्यामि । एव खलु प्रदेक्षिन् ! दश स्थानानि छद्मस्यो मनुष्यः सर्वभावेन  
न जानाति, न पश्यति, तथा-पर्याप्तिकायम्, अधर्मास्तिकायम्, आकाश-

वालेह) इसे न देव बलात्ता है, यावत् न ग घर्षं बलात्ता है । (पासति न  
तुम पश्यसि ! एतस्य वायुकायस्य सरुविस्त सरागस्य समोहस्य सवेदस्य  
सखेदस्य ससरीरस्य रूपं) केहीकुमारभ्रमणने तब उससे कहा-हे प्रदेक्षिन् !  
तुम इस सरूपी, सकम्प, सराग, समोह, सवेद, सखेद, सद्यरीर वायुकाय  
के रूप को देखते हो ! (जो इन्हें समझे) तब प्रदेक्षीने कहा-हे मन्त्र !  
यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वायुकाय के रूप को मैं नहीं देखता हूँ  
तब उससे केहीकुमारभ्रमणने कहा-(अहं न तुम पश्यसि राया ! एतस्य वायु-  
कायस्य सरुविस्त जाय ससरीरस्य रूपं न पासति त्वं कथं न पणसी !  
त्वं करतलसि वा आमलग जीव उवदसिस्सामि) हे मध्विराजन् ! जय-  
तुम इसे सरूपी यावत् सद्यरीर वायुकाय के रूप को नहीं देख पा रहे  
हो-तो फिर मैं हे प्रदेक्षिन् ! कैसे तुम्हें करतलस्थित आमले की तरह  
नीच दिखा सकता हूँ । (एव खलु पणसी ! दसहाण छदमस्ये मणुस्से

वालेह) आने न देव बलात्ता है यावत् न ग घर्षं बलात्ता है वायुकाय बलात्ता है ।  
(पासति न तुम पश्यसि ! एतस्य वायुकायस्य सरुविस्त सकम्पस्य  
सरागस्य समोहस्य सवेदस्य सखेदस्य ससरीरस्य रूपं) केहीकुमार भ्रमणे  
त्यार तेने भ्रं के प्रदेक्षिन् । तब आ सरूपी, सकम्प, सराग, समोह, सवेद, सखेद  
सद्यरीर, वायुकायना इधने बुद्धि आ ! (जो इन्हें समझे) तब प्रदेक्षीने भ्रं-  
के कहाव ! आ अब समर्थ नहीं, कैसे हे वायुकायना इधने तुं नेतो नहीं  
त्यार पछी देही केही कुमार भ्रमणे तेने भ्रं । (अहं न तुम पश्यसि राया ! एत-  
स्य वायुकायस्य सरुविस्त जाय ससरीरस्य रूपं न पासति त्वं कथं न पणसी !  
त्वं करतलसि वा आमलग जीव उवदसिस्सामि) के प्रदेक्षि-  
सन् । तब आ सरूपी यावत् सद्यरीर वायुकायनाइधने नेउ करता नहीं  
तो भ्रं के प्रदेक्षिन् हूँ केही नीते तबने करतल स्थित आमलानी नेम एधने  
देखायी गइ छ । (एव खलु पणसी ! दसहाणा छदमस्ये मणुस्से सम्-  
भावेण न जानइ न पासइ) केगके के प्रदेक्षिन् । एतस्य एव आ इय स्थानेने

स्तिकायं ३, जीवमशरीरवद्धम् ४ परमाणुपुद्गल ५, शब्द ६, गन्ध ७, वात ८, अयं जिनो भविष्यति वा नो भविष्यति ९, अयं सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति वा नो वा करिष्यति १०। एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा-धर्मास्तिकायं यावत् नो वा करिष्यति, तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् ! यथा-अन्यो जीवः तदेव ९ ॥ सू० १५१ ॥

सर्वभावेणं न जानइ, न पासइ) क्यों कि हे प्रदेशिन ! छद्मस्थ जीव इन इन दश स्थानों को सर्वभाव से नहीं जानता है और नहीं देखता है (त जहा) वे दशस्थान इस प्रकार से हैं (धम्मत्थिकायं १, अधम्मत्थिकाय २, आगासत्थिकायं ३, जीव असरीरवद्ध ४, परमाणुपुद्गल ५, सद्दं ६, गंधं ७, वायं ८ अयजिणे भविस्सइ वा णो भविस्सइ ९, अयं सर्वदुक्खाणं अंतो करिस्सइ नो वा करिस्सइ १०) धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, अशरीर वद्ध जीव ४, परमाणुपुद्गल ५, शब्द ६, गंध ७, वात ८ यह जिन होगा, या नहीं होगा ९, और यह समस्त दुखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा १० (एयाणि चैव उत्पण्णानाणदं सणधरे अरहा जिणे केवली सर्वभावेण जानइ पासइ) इन्हें तो उत्पन्न ज्ञान दर्शन धारी अर्हन्त जिन केवली सर्वभाव से जानते हैं। (त जहा धम्मत्थिकायं जाव नो वा करिस्सइ-तं सहहाहि णं तुम पएसी ! जहा अन्नो जीवो तं चैव) अतः जब अर्हन्त जिन केवली धर्मास्तिकायादि १० स्थानों को जानते देखते हैं

सर्वभावथी जणुतो नथी अने जेतो नथी (तं जहा) ते दशस्थानो आ प्रमाणे छे (धम्मत्थिकायं १, अधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकायं ३, जीव असरीरवद्धं ४, परमाणुपुद्गल ५, सद्दं ६ गंधं ७ वायं ८, अय जिणे भविस्सइ वा णो भविस्सइ ९, अयं सर्वदुक्खाणं अतो करिस्सइ १०) धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, अशरीर वद्ध जीव ४, परमाणु पुद्गल ५, शब्द ६, गंध ७, वात ८, आ जिन थशे के नहि थशे ९, अने आ समस्त दुःखोना अन्त करशे के नहि करशे १०. (एयाणि चैव उत्पण्णानाणदं सणधरे अरहा जिणे केवली सर्वभावेणं जानइ पासइ) એમને તો ઉત્પન્ન જ્ઞાન દર્શનધારી અહંત જિન કેવલી સર્વભાવથી જાણે છે અને જુવે છે. (તં જહાં ધમ્મત્થિકાય જાવ નો વા કરિસ્સઈ તં સહહાહિ ણં તુમં પપ્પસી ! જહા અન્નો જીવો તં ચૈવ) એથી જ્યારે અહંત જિન કેવલી ધર્માસ્તિકાય વગેરે ૧૦ સ્થાનો ને જાણે છે જુવે છે અને છદ્મસ્થ એમને જાણુતા નથી તેમજ જોતા પણ નથી. તો હે પ્રદેશિન ! તમે શ્રદ્ધા કરો કે જીવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે. ઇત્યાદિ.

वायुकायः आसपति । पश्यन्ति स्वच्छं त्वं प्रवेक्षिन् । एतस्य वायुकायस्य सरु-  
पिणः सकर्मणः सरागस्य समोहस्य सवेदस्य सछेदस्य रूपम् । नायमर्थः समर्थः ।  
यदि स्वच्छं त्वं प्रवेक्षिराज एतस्य वायुकायस्य सरुपिणो यावत् सशरीरस्य रूपं  
न पश्यसि तत्तु कथं खलु प्रदेक्षिन् । त्वं फलच्छेद इव आमलक जीवमुप-  
दर्शयिष्यामि । । एव खलु प्रवेक्षिन् । दश स्थानानि छेदस्यो मनुष्यः सर्वमात्रेण  
न आमाति, न पश्यति, तथा-धर्मास्तिकायम् १, अधर्मास्तिकायम् २, आकाश

आच्छेद) इसे न देव अलाता है, यावत् न ग धर्मा अलाता है । (पासति न  
तुम् पपसि ! एतस्य वायुकायस्य सरुपिस्त सरागस्त समोहस्त सवेदस्त  
सछेदस्त सशरीरस्त रूप) केशीकुमारभ्रमणने तब उससे कहा-हे प्रवेक्षिन्  
तुम् इस सरूपी, सकर्मा, सराग, समोह, सवेद, सछेद, सशरीर वायुकाय  
के रूप को देखते हो ! (जो इच्छे समझे) तब प्रवेक्षीने कहा-हे भवन्त !  
यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वायुकाय के रूप को मैं नहीं देखता हूँ,  
तब उससे केशीकुमारभ्रमणने कहा-(अहं न तुम् पपसि राया ! एतस्य वायु-  
कायस्य सरुपिस्त जाय सशरीरस्त रूपं न पासति) तब कह न पपसी !  
तब करयलसि वा आमलग जीव उपद सिस्सामि) हे प्रवेक्षिराजन् ! जब  
तुम् इस सरूपी यावत् सशरीर वायुकाय के रूप को नहीं देख पा रहे  
हो-तो फिर मैं हे प्रवेक्षिन् ! कैसे तुम्हें करतलस्थित आंखों की तरह  
जीव दिखा सकता हूँ । (एव खलु पपसी ! दसद्वान् छेदमस्य मनुस्ते

आच्छेद) आने न देव अलावे छे यावत् न ग धर्मा अलावे छे वायुकाय अलावे छे  
(पासति न तुम् पपसि ! एतस्य वायुकायस्य सरुपिस्त सकर्मस्त  
सरागस्त समोहस्त सवेदस्त सछेदस्त सशरीरस्त रूप) केशीकुमार भ्रमणे  
त्यारे तेने भूम् हे प्रवेक्षिन् ! तब आ सद्गी, सकर्मा सराग, समोह, सवेद सछेद  
सशरीर, वायुकायना रूपने बुज्यो छे ? (जो इच्छे समझे) तब प्रवेक्षीने भूम्-  
हे देखत ! आ अर्थ समर्थ नहीं. कोटवे हे वायुकायना रूपने हूँ जेतो नर्थ  
त्यार पछी हरी केशी कुमार भ्रमणे तेने भूम्. (अहं न तुम् पपसि राया ! एत-  
स्य वायुकायस्य सरुपिस्त जाय सशरीरस्त रूपं न पासति) तब कह न  
पपसी ! तब करयलसि वा आमलग जीव उपद सिस्सामि) हे प्रवेक्षि-  
राजन् ! तब तब आ सद्गी यावत् सशरीर वायुकायना रूपने जेथ शब्द नहीं  
तो पछी हे प्रवेक्षिन् हूँ केशी शीते तबने करतल स्थित आभयनी जेथ अपने  
देखादी शब्द छे (एव खलु पपसी ! दसद्वान् छेदमस्य मनुस्ते सध-  
मायेन न माण्ड न पासत) केशी हे प्रवेक्षिन् ! छेदस्य एव आ स्थ स्थानोने

સ્તિકાયમ્૩, જીવમશરીરવદ્૪ પરમાણુપુદ્ગલ૫, શબ્દ૬, ગન્ધ૭, વાતમ્૮, અયં જિનો મ્ભવિષ્યતિ વા નો મ્ભવિષ્યતિ૯, અયં સર્વદુઃસ્વાનામન્તં કરિષ્યતિ વા નો વા કરિષ્યતિ૧૦। એતાનિ ચૈવ ઉત્પન્નજ્ઞાનદર્શનધરઃ અર્હન્ જિનઃ કેવલી સર્વભાવેન જાનાતિ પશ્યતિ, તદ્વથા-ધર્માસ્તિકાય યાવત્ નો વા કરિષ્યતિ, તત્ શ્રદ્ધેહિ સ્વલુ ત્વ પ્રદેશિન્ । યથા-અન્યો જીવઃ તદેવ૯ ॥ સૂ૦ ૧૫૧॥

સર્વભાવેણ ન જાણઈ, ન પાસઈ) વર્ગોં કિ હે પ્રદેશિન । હ્રસ્વસ્થ જીવ ફન ફન દશ સ્થાનોં કો સર્વભાવ સે નહીં જાનતા હૈ ઔર નહીં દેખતા હૈ (ત જહા) વે દશસ્થાન ફસ પ્રકાર સે હૈ (ધમ્મત્થિકાય ૧, અધમ્મત્થિકાય ૨, આગાસત્થિકાય ૩, જીવ અસરીરવદ્ ૪, પરમાણુપોગલ ૫, સદ્ ૬, ગંધ ૭, વાય ૮ અય જિણે મ્ભવિસ્સઈ વા ણો મ્ભવિસ્સઈ૯, અય સર્વદુઃસ્વાણં અંતો કરિસ્સઈ નો વા કરિસ્સઈ૧૦) ધર્માસ્તિકાય ૧, અધર્માસ્તિકાય ૨, આકાશ સ્તિકાય ૩, અશરીર વદ્ જીવ ૪, પરમાણુપુદ્ગલ ૫, શબ્દ ૬, ગંધ ૭, વાત ૮ યહ જિન હોગા, યા નહીં હોગા૯, ઔર યહ સમસ્ત દુઃખોં કા અન્ત કરેગાં યા નહીં કરેગાં૧૦ (एग्गणि चैव उप्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेण जाणइ पासइ) इन्हे तो उत्पन्न ज्ञान दर्शन धारी अर्हन्त जिन केवली सर्वभाव से जानते हैं। (त जहा धम्मत्थिकायं जाव नो वा करिस्सइ-तं सद्वहाहि णं तुम पएसी। जहा अन्नो जीवो तं चैव) अतः जब अर्हन्त जिन केवली धर्मास्तिकायादि १० स्थानों को जानते देखते हैं

સર્વભાવથી જાણુતો નથી અને જોતો નથી. (ત જહા) તે દશસ્થાનો આ પ્રમાણે છે (ધમ્મત્થિકાય ૧, અધમ્મત્થિકાય ૨, આગાસત્થિકાય ૩, જીવ અસરીરવદ્ ૪, પરમાણુપોગલ ૫, સદ્ ૬ ગંધ ૭ વાય ૮. અય જિણે મ્ભવિસ્સઈ વા ણો મ્ભવિસ્સઈ ૯, અયં સર્વદુઃસ્વાણં અંતો કરિસ્સઈ ૧૦.) ધર્માસ્તિકાય ૧, અધર્માસ્તિકાય ૨, આકાશસ્તિકાય ૩, અશરીર વદ્ જીવ ૪, પરમાણુ પુદ્ગલ ૫, શબ્દ ૬, ગંધ ૭, વાત ૮. આ જિન થશે કે નહિ થશે. ૯ અને આ સમસ્ત દુઃખોનો અન્ત કરશે કે નહિ કરશે ૧૦. (एग्गणि चैव उप्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेण जाणइ पासइ) એમને તો ઉત્પન્ન જ્ઞાન દર્શનધારી અહ ત જિન કેવલી સર્વભાવથી જાણુ છે અને જુવે છે. (ત જહા ધમ્મત્થિકાય જાવ નો વા કરિસ્સઈ ત સદ્વાહિ ણં તુમં પપ્પસી। જહા અન્નો જીવો ત ચૈવ) એથી જ્યારે અહ ત જિન કેવલી ધર્માસ્તિકાય વગેરે ૧૦ સ્થાનો ને જાણુ છે જુવે છે અને છદ્મરથ એમને જાણુતા નથી તેમજ જોતા પણ નથી. તો હે પ્રદેશિન્ । તમે શ્રદ્ધા કરો કે જીવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે. ઇત્યાદિ.

ટીકા-‘તથ જ પપ્પમી રાયા’ इत्यादि-तत खलु प्रदेशी राजा केचि  
कुमारभमणम् एवमवादीत्-हे मदन्त ! यूय खलु अतिच्छेकाः-अपसरश-  
नातिनिषुणाः, दुक्षा-कार्यसम्पादनकुशलाः, यावत्-यावत्पदं ‘मासार्थाः पुद्गाः  
कुशलाः महामतय विनीता विज्ञानमाप्ताः’ इत्येषां पदानां सङ्ग्रहः एषां  
व्याख्या पूर्वं गता । उपदेशखण्डो-प्राप्तशुरुपदेशाः, अतो हे भदन्त यूय  
शरीराद् जीवमभिनिर्धार्य-निर्वाण्य करछे-हरतछे रिपतम् आमह-  
मिव मम उपदेशयितु समर्थाः-शक्ताः ।

और छद्मस्य इहे जानता देखता नहीं है तो हे प्रदेशिन् ! तुम मन्त्रा  
करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है. इत्यादि ।

ટીકાર્થ સ્પષ્ટ છે-‘દુક્ષ્ણા જાણ ઉપપસદ્ધા’ માં જો યાવત્ પદ આવા  
હૈ તમસે યહાં ‘માસાર્થાઃ, પુદ્ગાઃ, કુશલાઃ, મહામતયા, વિનીતાઃ, વિજ્ઞાન  
માપ્તાઃ’ इन पदों का संग्रह हुआ है, इन पदों की व्याख्या पहिलेकी जा  
चुकी है । उस काळ और उस समय में का तात्पर्य है जब प्रदेशी राजाने  
केछीकुमारभमण स शरीर से निकालकर जीव को इस्तामलकरव दिताने  
की बात कही तब । ‘एयत जाय त त में जो यावत् पद आया है तससे  
यहां ‘व्येजमान, वसन्तःस्पन्दमान, घटमानम्’ इन पदों का संग्रह हुआ है ।  
इन पदोंकी व्याख्या इसी क्षत्र में पहिले की जा चुकी है इन पदों में वायुकाय एके  
न्द्रिय जीव है-अतः यह रूप युक्त है, कर्मसहित है, रागसहित है, मोहसहित  
है, मनुसकवेद सहित है, औदारिक, वैक्रिय, तेजस और कर्मण इस चार

टीકાથ ૨૫૫ જ ઊ દુક્ષ્ણા જાણ ઉપપસદ્ધા’ માં જે યાવત્ પદ આવેલ  
છે તેથી બહી માસાર્થાઃ પુદ્ગાઃ કુશલાઃ મહામતય, વિનીતાઃ વિજ્ઞાન  
માપ્તાઃ આ પદોનો સંગ્રહ થયો છે આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં કરવામાં આવી  
છે તે કાળે અને તે સમયે જે કહેવામાં આ તુ છે તેની સ્થાત્તા આ પ્રમાણે છે કે  
આપે પ્રદેશી રાજાએ કેથી કુમાર ભમણને શરીરમાંથી બહાર કાઢીને એવને હસ્થ  
મલકવત્ બતાવવાની વાત કહી ત્યારે (પર્યંત જાણ ત ત) માં જે યાવત્ પદ છે  
તેથી બહી “વ્યેજમાન વસન્ત સ્પન્દમાન, ઘટમાનમ્” આ પદોનો સંગ્રહ  
થયો છે આ પદોની વ્યાખ્યા આ જ સુત્રમાં પહેલાં કરવામાં આવી છે આ પદોમાં  
પ્રત્યક્ષરૂપ જ વિશેષતા છે સાત્ત્વક રૂપ વિશેષતા નથી વાયુકાય એકેન્દ્રિય એવ છે  
એથી તે રૂપયુક્ત એવ છે કર્મસહિત છે રાગસહિત છે મોહસહિત છે મનુસક  
વેદ સહિત છે ઔદારિક, વૈક્રિય, તેજસ અને કાર્મણ આ ચાર શરીરનાળો છે. રૂપ

तस्मिन् काले-केशिकुमारश्रमण प्रति जीवस्य शरीरान्निष्काशनपूर्वकं कराऽऽमलकवदुपदर्शनमार्थनाकाले तस्मिन् समये-अवसरे प्रदेशिनो राज्ञः अदूरसामन्ते नातिदूरे-नातिमभीषे वायुकायः संवृत्तः-प्रवृत्तोऽभवत्, तेन तृणवनस्पतिकायः एजते-सामान्यतः कम्पते, ततो व्येजते-विशेषतः कम्पते, चलति-चपली भवति, स्पन्दते-ईषन्चलति, घट्टते-परस्परं संघर्षं प्राप्नोति, उदीर्ते-उत्कम्पते एवं तं तं भावम्-एजनादिरूपं व्यापारं परिणमते-प्राप्नोति, ततः-वायुकायसंवर्तनवशात् तृणवनस्पतिकायस्यैजनादिभावोपगमनानन्तरम् खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-हे प्रदेशिराज! त्वं पश्यसि-चक्षुर्गोचरं करोषि खलु एतम्-इमम् तृणवनस्पतिम्, एजमानं यान्तु-यावत्पदेन-‘व्येजमानं चलन्तं स्पन्दमानं घट्टमानम् उदीराणम्’ इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः एषां व्याख्याऽत्रैव सूत्रे पूर्वं कृता, तत्र प्रत्ययकृतो विशेषः, धात्वर्थस्त्वविशेष एव द्रष्टव्यः। तं तं भावं परिणममानम् ?। इति केशिप्रश्ने प्रदेशी प्राह-हन्त ! पश्यामि। पुनः केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजं पृच्छति-हे प्रदेशिन् ! त्वं खलु जानासि एतं वनस्पतिकायं किं देवश्चालयति ? किं वा असुरश्चालयति ? किं वा नागः-नागदेवश्चालयति ! किं वा किन्नरः-तदाख्यदेवविशेषश्चालयति ! किं वा किंपुरुषश्चालयति ! किं वा महोरगः-व्यन्तरविशेषो देवश्चालयति । किं वा गन्धर्वश्चालयति ! । प्रदेशी प्राह-हन्त ! जानामि-नो देवश्चालयति, यावत्-नो गन्धर्वश्चालयति, तर्हि क्रश्चालयति ! इति जिज्ञासायामह-वायुकायश्चालयति । केशी पृच्छति-हे प्रदेशिन् ! त्वमेतस्य स्वकीयेऽदूरसामन्ते संप्रवृत्तस्य वायुकायस्य रूपं पश्यसि, तस्य कीदृशस्येत्यत्राऽऽह सरूपिणः-रूपयुक्तस्य सकर्मणः-कर्मसहितस्य सरागस्य-गगसहितस्य समोहस्य-मोहसहितस्य सवेदस्य-नपुंसक वेदसम्पन्नस्य सलेश्यस्य-कृष्णनीलकापोतलेश्यात्रययुक्तस्य सशरीस्य-औदारिकवैक्रियतैजसकर्मणः शरीरचतुष्टययुक्तस्य एतादृशस्य वायुकायस्य रूपं किं पश्यसि। इति पूर्वोक्तान्वयः। इति प्रश्ने प्रदेशी प्राह-नायमर्थः समर्थः-तादृशस्य वायुकायस्य दर्शनरूपोऽर्थः न समर्थः-न तस्य रूपं पश्यामीति भावः। केशीकुमार-

शरीरोंवाला है. कृष्ण, नील, एवं कापोत इन तीन लेश्याओंवाला है यही धातु सरूपी आदि विशेषणों द्वारा वायुकाय में प्रकट की गई है। अब शिष्ट सूत्रस्थ पदों का अर्थ स्पष्ट है ॥ सू. १५१ ॥

नील अने क्षपोत आ त्रयु लेश्याओंवाला छे ओ ओ वात सङ्गी वगेरे विशेषणों वटे वायुकायभा प्रकट इरवाभा आवी छे गाडी रडेला पहोने अर्थ स्पष्ट छे ॥१५१॥



ટીકા-‘તપ્ત ણ પપ્પમી રાયા’ इत्यादि-ततः खलु प्रदेशी राजा केचि  
कुमारभ्रमणम् एवमवादीत्-हे मद-त ! युय खलु अतिच्छद्वाः-भरसरस-  
मातिनिपुणाः, वृक्षा-कार्यसम्पादनकुशला, यावत्-यावत्पदेन ‘मासार्थाः बुद्धाः  
कुशलाः महामतयः विनीताः विज्ञानमाप्ताः’ इत्येषां पदानां संग्रहः एषा  
व्याख्या पूर्ण गता । उपदेशलक्षा-प्राप्तगुरुपदेशाः, अतो हे भवन्त युय  
धरीरात् जीवममिनिधार्य-निर्वाह्य करतले-हरतले स्थितम् आमसह-  
मिव मम उपदक्षयितु समर्थाः-शक्ताः ।

और छद्मस्य इहे जानता देखता नहीं है तो हे प्रदेशिन् ! तुम भ्रष्टा  
करो कि जोष अन्य है और धरीर अन्य है, इत्यादि ।

टीकार્थ स्पष्ट है-‘दुषळा જાણ ઉપપસસદ્ધા’ મેં જો યાવત્ પદ આપા  
હે તસસે યહાં ‘માપ્તાર્થાઃ, બુદ્ધાઃ, કુશલાઃ, મહામતયાઃ, વિનીતાઃ, વિજ્ઞાન-  
માપ્તાઃ’ इन पदों का संग्रह हुआ है, इन पदों की व्याख्या पहिले की जा  
चुकी है । उस काळ और उस समय में का तात्पर्य है जय प्रदेशी राजाने  
केशीकुमारभ्रमण से धरीर से निकालकर जीव का इस्तामनरूप दिखान  
को पात कही तब । ‘एयत्त जाव त त’ मેં જો યાવત્ પદ આપા હે તસસે  
યહાં ‘જ્યેજમાન, ચક્ષ્ન્તાસ્પન્દમાન, ઘટ્ઠમાનમ્’ इन पदों का संग्रह हुआ है ।  
इम पदोंकी व्याख्या इसी सूत्र में पहिले की जा चुकी है इन पदों में वायुकाय एके  
न्द्रिय जीव है-अतः यह रूप युक्त है, कम सहित है, रागसहित है, मोहसहित  
है, नपुसकवेद सहित है, औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मम इस चार

टीકાથ ૨૫૪ જ છે ‘દુષલા જાણ ઉપપસસદ્ધા’ માં જે યાવત્ પદ આવેલ  
છે તેથી જાહી માપ્તાર્થાઃ બુદ્ધાઃ કુશલાઃ મહામતયાઃ, વિનીતાઃ વિજ્ઞાન  
માપ્તાઃ આ પદોનો સંગ્રહ થયો છે આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં કરવામાં આવી  
છે તે કાલે અને તે સમયે જે કહેવામાં આ કુ ૩૩ તેની સ્પષ્ટતા આ પ્રમાણે છે કે  
આરે પ્રદેશી રાજાએ કેશી કુમાર ભ્રમણને શરીરમાંથી બહાર કાઢીને એવને કરતા  
મહાવત્ જતાવવાની વાત કહી ત્યારે (એયત્ત જાવ ત ત) માં જે યાવત્ પદ છે  
તેથી જાહી “જ્યેજમાન ચક્ષ્ન્તા સ્પન્દમાન, ઘટ્ઠમાનમ્” આ પદોનો સંગ્રહ  
થયો છે આ પદોની વ્યાખ્યા આ જ સૂત્રમાં પહેલાં કરવામાં આવી છે આ પદોમાં  
પ્રત્યક્ષત્વ જ વિશેષતા ૩૩ ધાતવ્ય કૃત વિશેષતા નથી વાયુકાય એકેન્દ્રિય એવ છે  
એથી તે ક્ષયયુક્ત એવ છે કમસહિત છે રાગસહિત છે મોહસહિત છે નપુસક  
વેદ સહિત છે, ઔદારિક, વૈક્રિય તૈજસ અને કાર્મમ આ ચાર શરીરવાળો છે, કૃષ્ણ

पदी च गहाय त कूडागारसाल अंतो२ अणुपविसइ, तीसे कूडा-  
गारसालाए सव्वओ समंता घणनिचियनिरंतराई णिच्छिड्डाई दुवा-  
रवयणाइ पिहेइ, तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए तं पईवं  
पलीवेज्जा, तए णं से पईवे तं कूडागारसालं अंतो२ ओभासइ उज्जो  
वेइ तावइ पभासइ, णो चेव णं बाहिं। अह णं से पुरिसे तं पईवं  
इडुरएणं पिहेज्जा, तए णं से पईवे त इडुरयं अंतो२ ओभासेइ४,  
णो चेव णं इह्मरगस्स बाहिं णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं। एवं  
गोकिलिंजेणं, पच्छियपिडएणं गंडमणियाए, आढएणं, अच्चाढएणं,  
पत्थएणं, अद्धपत्थएणं, कुलवेणं चाउव्भाइयाए, अट्ठभाइयाए, सोल-  
सियाए, बत्तीसियाए, चउसट्ठियाए, दीवचंपएण, तए णं से पईवे  
दीवचंपगस्स अंतो२ ओभासेइ४, नो चेव णं दीवचंपगस्स बाहिं नो  
चेव णं चउसट्ठियं नो चेव णं चउसट्ठियाए बाहिं, णो चेव णं कूडा-  
गारसालं णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं, एवामेव पएसी ! जीवे  
वि जं जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोदिं णिवत्तेइ तं असांखेज्जेहिं  
जीवपएसेहिं सचित्तं करेइ खुड्डियं वा महालिय वा, तं सदहाहि  
णं तुमं पएसी ! जहा—अण्णो जीवो तं चेव णं १०॥ सू. १५२ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत—  
स नून भदन्त ! हस्तिनः कुन्थोः वा सम एव जीवः ? हन्त ! ! प्रदेशिन !

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (ते पएसी राया केषिं कुमारसमणं  
एव वयासी) उस प्रदेशी राजाने (केसिं कुमारसमणं एवं वयासी) केशी-

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थार पद्धी (ते पएसी राया केषिं कुमारसमणं एवं  
वयासी) ते प्रदेशी राजाने केशी कुमार श्रमणने आ प्रमाणे उद्धु (से नून

समणो वायुकास्यान्नकपर्शनत्वे प्रवेशिनमाह—हे प्रवेशिराम । यदि त्वं स्वप्न  
एतस्य वायुकायस्य सकृपिणः पावत—सशरीरस्य रूपं न पश्यसि तत्—तदा  
कथं—केन प्रकारेण मनु करतले आमलकं वा—इव नीय तव उपदर्शयि  
ष्यामि? वायुकायस्य तत्र जीवस्य च समानरूपत्वादेकस्या श्रवणदर्शनवेत्त-  
रस्यापि अश्रवणदर्शनत्वात् । वक्ष्यमाणस्त्वन्मनुष्यस्य जीवादिस्थानानां सर्वं  
मात्रेण ज्ञानद्वयनाऽयोग्यत्वात् कथं अक्षुर्गोचरं कारयिष्यामीति भावः । तदेव  
ब्रूयति—हे प्रवेशिन । एषम् वक्ष्यमाणप्रकारेण स्वप्नं छद्मरूपं मनुष्यः दर्श-  
यानानि वक्ष्यमाणानि धर्मास्तिकायादीनि सर्वं भावेन सम्पुर्णतया न जानाति,  
न पश्यति । कानि तानीत्याह तद्यथा—धर्मास्तिकायम् १, अयमर्मास्तिकायम् २,  
आकाशास्तिकायम् ३, जीवशरीरवद्भूमि—शरीरतोऽसस्पृष्टम् ४, परमाणुपुण्ड्रकम् ५,  
संस्कृम् ६, गन्धम् ७, वात—वायुम् ८, अयं जिनो मविध्यति वा—अथवा नो—न  
मविध्यतीति? ९ अयं सर्वदुःस्वानामन्तं करिष्यति वा नो करिष्यतीति? १०  
एतानि दशस्यानानि उत्पन्नज्ञानवर्धनपरं । अहं जिनः केषली एव सर्वं  
मात्रं—साकरूपं न जानाति तथा पश्यति तद्यथा—धर्मास्तिकायं वातं—नो वा  
करिष्यति तत्तत्स्मात्कारणात् हे प्रवेशिन । एव अदेहि, यथा—अन्यो जीवा  
तदेवपूर्वोक्तमेव—अयच्छरीरम् नो तज्जीवःस्तं शरीरम् इति ॥ सू० १५१ ॥

मूलम्—तए णं से पएसी रायां केसिं कुमारसमणं एव वयासी से  
नूणं भते । हत्थिस्स य कुपुस्स य समे चेव जीवे ? हता पयसी हत्थि  
स्स य कुपुस्स य ममे चेव जीवे । से णूणभते । हत्थिउ कुपु अप्प-  
कम्मतराए चेव अप्पकिरियतराए चेव अप्पासवतराए चेव एव अप्पा-  
हारनीहारउम्मासनीसासङ्गितराए अप्पजुइयतराए चेव, एव कुपुओ  
हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव जाव ? महज्जुइ  
यतराए चेव । हत ? हत्थीओ कुपु अप्पकम्मतराए चेव कुंपुओ  
वा हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव त चेव । कम्हा  
ण भते । हत्थिस्स कुपुस्स य समे चेव जीवे ? पयसी से जहाणामए  
कट्ठागारसाला सिया जाव निवायगभीरा, अट्ठ णं केइ पुरिसे जोइ च

पदीषं च गहाय त कूडागारसाल अंतोः अणुपविसइ, तीसे कूडा-  
गारसालाए सव्वओ समंता घणनिचियनिरंतराई णिच्छिड्डाई दुवा-  
खयणाइ पिहेइ, तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए तं पईवं  
पलीवेज्जा, तए णं से पईवे तं कूडागारसालं अंतोः ओभासइ उज्जो  
वेइ तावइ पभासइ, णो चेव णं बाहिं। अह णं से पुरिसे तं पईवं  
इड्डुरएणं पिहेज्जा, तए णं से पईवे त इड्डुरयं अंतोः ओभासेइ४,  
णो चेव णं इड्डुरगस्स बाहिं णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं। एवं  
गोकिर्लिजेणं, पच्छियपिडएणं गंडमणियाए, आढएणं, अच्चाढएणं,  
पत्थएणं, अद्धपत्थएणं, कुलवेणं चाउब्भाइयाए, अट्ठभाइयाए, सोल-  
सियाए, बत्तीसियाए, चउसट्ठियाए, दीवचंपएण, तए णं से पईवे  
दीवचंपगस्स अंतोः ओभासेइ४, नो चेव णं दीवचंपगस्स बाहिं नो  
चेव णं चउसट्ठियं नो चेव णं चउसट्ठियाए बाहिं, णो चेव णं कूडा-  
गारसालं णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं, एवामेव पएसी ! जीवे  
वि जं जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोदिं णिव्वत्तेइ तं असंखेज्जेहिं  
जीवपएसेहिं सचित्तं करेइ खुड्डियं वा महालिय वा, तं सदहाहिं  
णं तुमं पएसी ! जहा—अण्णो जीवो तं चेव णं १०॥ सू. ११५२ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्—  
स नूनं भदन्त ! हस्तिनः कुन्धोः वा सम एव जीवः ? हन्त ! ! प्रदेशिन् !

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तए ण) इसके बाद (ते पएसी राया केषिं कुमारसमणं  
एवं वयासी) उस प्रदेशी राजाने (केसिं कुमारसमणं एवं वयासी) केशी-

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थार पछी (ते पएसी राया केषिं कुमारसमणं एवं  
वयासी) ते प्रदेशी राजाने केशी कुमार श्रमणने आ-प्रमाणे कल्ल (से नून

समणो वायुकास्याश्वयदर्शनस्ये प्रदेक्षिनमाह—हे प्रदेक्षिराज ! यदि त्वं स्वप्न  
एतस्य वायुकायस्य सकृपिणः पावत-महारीरस्य कर्पं न पश्यसि तत्-तदा  
कथं-केन प्रकारेण स्वप्न पश्यसे आमलक व्या-ह्व जीव त्वं उपदर्शयि-  
ष्यामि? वायुकायस्य तत्र जीवस्य च समानरूपत्वादेकस्या श्वयदर्शनत्वेऽपि  
रस्यापि अश्वयदर्शनत्वात् । पश्यमानश्चक्षुष्यमनुप्यस्य जीवादित्थानानां सर्वं  
मात्रेण ज्ञानद्वयनाऽप्योग्यत्वात् कथं चक्षुर्गोचरं कारयिष्यामीति भावः । तदेव  
दर्शयति-हे प्रदेक्षिन ! एषम् वक्ष्यमाणप्रकारेण स्वप्न छद्मस्थो मनुष्यः दृष्ट-  
स्यानानि वक्ष्यमाणानि धर्मास्तिकायादीनि सर्वं भावेन सम्पूर्णतया न जानाति,  
न पश्यति । कानि तानीत्याह तद्यथा-धर्मास्तिकायम् १, अधर्मास्तिकायम् २,  
आकाशास्तिकायम् ३, जीवधारीरम् ४-धारीरतोऽसस्पृष्टम् ४, परमाणुपुण्ड्रम् ५  
सम् ६ गन्धम् ७, वात-वायुम् ८, भयं जिनो भविष्यति वा-अथवा नो-न  
भविष्यतीति? ९ अथ तावदुःखानामन्तः करिष्यति वा ना करिष्यतीति? १०  
एतानि दृष्टानानि उत्पन्नज्ञानदर्शनपरः अर्था न जिनः केवली एव सर्वं  
मात्रेण-साक्षर्येण जानाति तथा पश्यति-तद्यथा-धर्मास्तिकायं यावद्-नो वा  
करिष्यति तत्त्वस्मात्कारणात् हे प्रदेक्षिन ! त्वं अदेहि, यथा-अम्यो जीवः  
तदेवपूर्वोक्तमेव-अ-धारीरम् नो तज्जीवस्स धारीरम् इति ॥ सू० १५१ ॥

मूलम्-तए णं से पएसी रायां केसिं कुमारसमणं एव वयासी से  
नूर्णं भन्ते ! हरिथस्स यं कुथुस्स यं ममे चेव जीवे ? हता पपसी हरिथ  
स्स यं कुथुस्स यं ममे चेव जीवे । से पूर्णं भन्ते ! हरिथउ कुथु अप्प  
कम्मतराए चेव अप्पकिरियतराए चेव अप्पासवतराए चेव एव अप्पा  
हारनीहारउस्सासनीसासइङ्गितराए अप्पजुइयतराए चेव, एव कुथुओ  
हरिथी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव जाव ? महज्जुइ  
यतराए चेव । हत ? हरिथीओ कुथु अप्पकम्मतराए चेव कुथुओ  
वा हरिथी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव त चेव । कम्हा  
णं भन्ते ! हरिथस्स कुथुस्स यं ममे चेव जीवे ? पपसी से जहाणामए  
कूडागारसाला सिया जाव निवायगभीरा, अहं णं केइ पुरिसे ओइ च

હસ્તિતઃ કુન્થુશ્ચ અલ્પકર્મતર એવ, કુન્થુતો યા દત્તી મહાકર્મતર એવ તદેવા ।  
કસ્માત્ સ્વલુ મદન્ત ! હસ્તિનશ્ચ કુન્થોશ્ચ સમ એવ જીવઃ । પ્રદેશિન્ ! તદ્  
યથાનામકં કૂટાઽઽકારશાલા સ્યાત્, યાવત્ નિર્વાતગમ્भीરા, અથ સ્વલુ કશ્ચિત્  
પુરુષઃ ય્યોતિર્વા પ્રદોપં વા ગૃહીત્વા તાં કૂટાઽઽકારશાલામ્ અન્તરન્તરનુપ-

કુન્થુ કી અપેક્ષા હાથી વ્યા મહાકર્મતર હી હોતા હૈ, મહાક્રિયાતર હી હોતા હૈ? યાવત્ મહાધૃતિતર હી હોતા હૈ? હસ પ્રદેશી કે પ્રશ્ન કે ઉત્તર મેં કેશી કુમારશ્રમણને કહા-(હત, પપ્પસી! હત્થિઓ કુન્થૂ અપ્પકર્મતરાણ ચેવ, કુન્થુઓ વા દત્તી મહાકર્મતરાણ ચેવ મહાક્રિયતરાણ ચેવ-તં ચેવ) હાં, પ્રદેશિન્! એસી હી વાત હૈ-હાથી સે કુન્થુ અલ્પતર કર્મવાલા હી હોતા હૈ, ઇત્યાદિ ઇસી પ્રકાર કુન્થુ કી અપેક્ષા સે હાથી મહાકર્મતરવાલા હી હોતા હૈ, મહાક્રિયાવાલા હી હોતા હૈ ઇત્યાદિ। (કમ્હાળં મંતે! હત્થિસ્સ ય કુંથુસ્સ ય સમે ચેવ જીવે) અવ પ્રદેશી ઇસ પ્રકાર પૂછતા હૈ કિ-હે મદન્ત! આપને જો હાથી ઓર કુન્થુ કે જીવ કો સમાનપરિમાણવાલા કહા હૈ સો ઇસકા વ્યા કારણ હૈ? કેશીકુમારશ્રમણને ડાસમે કહા-(પપ્પસી! સે જહા નામણ કૂટાગારસાલા સિયા જાવ નિવાયગંમ્भीરા) હે પ્રદેશિન્! જૈસે એક કૂટાકારવાલી પર્વત કે ગિરર કે આકાર જૈસી ઝાલા હો ઓર યાવત્ વહ નિર્વાત-વાયુપ્રવેશ રહિત હોને કે કારણ ગ મ્भीર હો. (કહં ણં કેઙ્ગ પુરિસં જોઈ પદોવ ચ ગહાય ત કૂટાગારસાલં અતોર અણુપવિસહ) અવ કોઈ

મહાક્રિયાતર હોય છે? યાવત્ મહાધૃતિતર જ હોય છે? પ્રદેશીના આ પ્રશ્નના ઉત્તરમા કેશી કુમાર શ્રમણે કહ્યું-(હંતા પપ્પસી! હત્થિઓ કુન્થૂ અપ્પ કર્મ-તરાણ ચેવ, કુન્થુઓ વા દત્તી મહાકર્મતરાણ ચેવ મહાક્રિયતરાણ ચેવ તંચેવ) હા, પ્રદેશિન્! વાત એવી જ છે હાથી કરતા કુન્થુ અલ્પતર કર્મકર્તા હોય છે. વગેરે આ પ્રમાણે કુન્થુ કરતા હાથી મહાકર્મ કર્તા હોય છે, મહાક્રિયા યુક્ત હોય છે વગેરે. (કમ્હાળં મંતે! હત્થિસ્સ ય કુંથુસ્સ ય સમે ચેવ જીવે) હવે પ્રદેશીના પ્રમાણે પ્રશ્ન કરેછે કે હે ભદ્રંત! તમે જે હાથી અને કુન્થુના જીવને સમાન પરિણામવાળો કહ્યો છે તો એનું શું કારણ છે? કેશી કુમાર શ્રમણે તેને કહ્યું-(પપ્પસી! સે જહાનામણ કૂટાગારસાલા સિયા જાવ નિવાયગંમ્भीરા) હે પ્રદેશિન્! જેમ કે કોઈ એક કૂટાકારવાળી-પર્વતના શિખરના આકૃતિ જેવી-શાળા હોય અને યાવત્ તે નિર્વાત-વાયુ પ્રવેશ રહિત હોવાથી ગ મ્भीર હોય, (અહં ણં કેઙ્ગ પુરિસે જોઈં ચ પહવ ચ ગહાય તં કૂટાગારસાલં અંતોર અણુ-

इतिनश्च कुण्योश्च सम एव जीव । मय मून मदन्त ! इतिनः कुण्यु भवा  
कर्मतर एव अल्पक्रियतर एव अल्पासवतर एव एवम् अस्पाहारनीहारो  
प्रीतिनिः श्वासकृत्तिकतरः अल्पपुतिकतर एव, एव च कुन्युत इत्सी  
महाकर्मतर एव महाक्रियतर एव यावत् महापुतिकतरएव ! इन्त ! प्रदेक्षिन !

कुमारश्चमण से ऐसा कहा—(से पूर्ण मते ! इत्थिस्स य कुण्युस्स य समे  
वेव जीवे) हे भदन्त ! हायी का जीव और कुण्यु का जीव क्या तुल्य  
रिमाण वाला है या न्यूनाधिकपरिमाणवाला है ? तब केशीकुमारश्चमण  
ने उससे कहा—(इत्ता, पपसी ! इत्थिस्स य कुण्युस्स य समे वेव जीवे)  
हां प्रदेक्षिन ! हायी का और कुण्यु का जीव तुल्यपरिमाणवाला है, न्यूना-  
धिक परिमाणवाला नहीं है । (से पूर्ण मते ! इत्थिठ कुण्यु अप्पकम्मतराए  
वेव, अप्पकिरियतराए वेव, अप्पासवतराए वेव) हे भदन्त ! इत्सी की  
अपेक्षा कुण्यु क्या अल्पकर्मवाला ही होता है ? अत्यल्प कायिकादि क्रिया  
वाला ही होता है ? अत्यल्प आस्रव वाला ही होता है ? (एव अप्पाहार  
नीहारउत्सासनीसासहिपतराए, अप्पजुइयतराए वेव ) अल्पतर आहार  
वाला ही होता है ? अल्पतर नीहार वाला ही होता है ? अल्पतर उच्छ्वास  
निश्वास वाला ही होता है ? अल्पतर कृत्तिवाला ही होता है ? अल्पतर  
पुति शरीर की कान्ति वाला ही होता है । (एव कुण्युमो इत्सी महाकम्म  
तराए वेव, महाक्रियतराए वेव जाव महज्जुइयतराए वेव) इत्सी प्रकार से

मते ! इत्थिस्स य कुण्युस्स य समे वेव जीवे) हे भदन्त ! दाधीने लु  
कुण्युने लु य तुल्य परिमाणवाणे छि के न्यूनाधिक परिमाणवाणे छि ? त्वाहे केशी  
कुमार अभक्षे तेने कहु—(इत्ता, पपसी ! इत्थिस्स य कुण्युस्स य समे वेव  
जीवे) हां प्रदेक्षिन ! दाधीने आने कुण्युने लु य तुल्य परिमाणवाणे छि । न्यूना-  
धिक परिमाणवाणे नहीं (से पूर्ण मते ! इत्थिठ कुण्यु अप्पकम्मतराए वेव,  
अप्पकिरियतराए वेव, अप्पासवतराए वेव) हे भदन्त ! दाधीनी अपे-  
क्षाये शु कुण्यु अप्पकर्मवाणु न दोष छि ? अत्यल्पक्रिये वगेरे किंवापच्छु केव  
छि ? अत्यल्प आस्रवमुक्त दोष छि ? ( एव अप्पाहारमोहारउत्सासनीसास-  
हिपतराए, अप्पजुइयतराए वेव ) अल्पतर आहारवाणु न दोष छि । अल्प-  
तर नीहारवाणु न दोष छि ; अल्पतर उच्छ्वास निश्वास प्रकट केव छि । (एव  
कुण्युमो इत्सी महाकम्मतराएवेव, महाक्रियतराए वेव जाव महज्जु-  
इयतराए वेव) आ अभक्षे कुण्युनी अपेक्षाये शु दाधी महाकर्मतर केव छि ।

हस्तितः कुन्थुश्च अल्पकर्मतर एव, कुन्थुतो वा हत्ती महाकर्मतर एव तदेव ।  
कस्मात् खलु भदन्त ! हस्तितश्च कुन्थोश्च सम एव जीवः । प्रदेशिन ! तद्  
यथानामकं कूटाऽऽकारशाला स्यात्, यावत् निर्वातगम्भीरा, अथ खलु कश्चित्  
पुरुषः ज्योतिर्वा प्रदोषं वा गृहीत्वा ता कूटाऽऽकारशालाम् अन्तरन्तरनुप-

कुन्थु की अपेक्षा हाथी क्या महाकर्मतर ही होता है, महाक्रियातर ही होता है?  
यावत् महाधृतितर ही होता है ? इस प्रदेशी के प्रश्न के उत्तर में केशी  
कुमारश्रमणने कहा—(हंत, पणसी ! हत्थिओ कुन्थू अप्प कम्मतराए चेव,  
कुंथुओ वा हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव—तं चेव) हां,  
प्रदेशिन ! ऐसी ही बात है—हाथी से कुन्थु अल्पतर कर्मवाला ही होता है,  
इत्यादि इसी प्रकार कुन्थु की अपेक्षा से हाथी महाकर्मतरवाला ही होता  
है, महाक्रियावाला ही होता है इत्यादि । (कम्हा णं भंते ! हत्थिस्स य  
कुंथुस्स य समे चेव जीवे) अब प्रदेशी इस प्रकार पूछता है कि—हे  
भदन्त ! आपने जो हाथी और कुन्थु के जीव को समानपरिमाणवाला कहा  
है सो इसका क्या कारण है ? केशीकुमारश्रमणने उससे कहा—(पणसी !  
से जहा नामए कूडागारसाला सिया जाव निवायगंभीरा) हे प्रदेशिन !  
जैसे एक कूटाकारवाली पर्वत के शिखर के आकार जैसी शाला हो और यावत्  
वह निर्वात—वायुप्रवेश रहित होने के कारण गंभीर हो. (कहं णं केइ पुरिसं  
जोई पदीव च गहाय त कूडागारसालं अतो २ अणुपविसइ) अब कोई

महाक्रियातर होय छे ? यावत् महाधृतितर न होय छे ? प्रदेशीना आ प्रश्नना  
उत्तरमा केशी कुमार श्रमणे कथुं—(हता पणसी ! हत्थिओ कुंथू अप्प कम्म-  
तराए चेव, कुंथुओ वा हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव  
तंचेव) हां, प्रदेशिन ! बात ऐसी न छे हाथी करता कुंथु अल्पतर कर्मकर्ता होय  
छे. वगेरे. आ प्रमाणे कुन्थु करता हाथी महाकर्म कर्ता होय छे, महाक्रिया युक्त  
होय छे वगेरे (कम्हाणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे) हे  
प्रदेशी आ प्रमाणे प्रश्न करेछे हे हे भदन्त ! तमे न छे हाथी अने कुन्थुना एवने समान  
परिमाणवाला कह्यो छे तो ओनु शुं कारण छे ? केशी कुमार श्रमणे तेने कथुं—  
(पणसी ! से जहानामए कूडागारसाला सिया जाव निवायगंभीरा)  
हे प्रदेशिन ! जेभ के कोष्ठ ओक कूटाकारवाणी—पर्वतना शिखरना आकृति जेवी-  
शाला होय अने यावत् ते निर्वात—वायु प्रवेश रहित होवाथी गंभीर होय, (अहं  
णं केइ पुरिसे जोइ च पइव च गहाय तं कूडागारसालं अतो २ अणु-





स प्रदीपः तद् इडुरकम् अन्तरन्तः अवभासयति४, नो चेव खलु इडुरकस्य वहिः,  
नो चेव खलु कूटाऽऽकारशालायाः वहिः। एवं गोकिलिञ्जेन. पक्षिपिण्ड-  
केन, गण्डमाणिक्या. आढकेन, अर्धाढकेन, प्रस्थकेन, अर्धप्रस्थकेन, कुडवेन,  
अर्धकुडवेन, चतुर्भागिकया, अष्टभागिकया, षोडशिकया, द्वात्रिंशत्कया,

दिखाने से उसे प्रभासित करता है। (अहं णं से पुरिसे तं पईवं इडुरएणं  
पिहेज्जा, तएण से पईवे तं इडुरयं अंतोर ओभासेइ४) यदि वह पुरुष  
उस दीपक को किसी बड़े ढक्कन से ढंक देता है—तो वह दीपक उस  
बड़े ढक्कन के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करता है यावत् उसे प्रभासित  
करता है (णो चेव णं इडुरगस्स चाहिं णो चेव णं कूडागारसालाए चाहिं)  
उस बड़े ढक्कन के बाहिरी भाग को एवं कूटाकारशाला के बाह्यदेश को  
प्रकाशित यावत् प्रभासित नहीं करता है। (एवं गोकिलिञ्जेन, पच्छि-  
पिण्डएणं, गण्डमाणियाए, आढएण, अर्धाढएण, प्रस्थएणं, अर्धप्रस्थएणं  
कुलवेण, चाउव्माइयाए, अट्टमाइयाए, सोलसियाए) इसी तरह उस दीप  
को गोकिलिञ्ज से—गाय को खाना जिसमें रखा जाता है ऐसी कुण्डिका  
से, तथा पक्षी के आकरवाले वंशशलाका निर्मित पात्र विशेष से, गण्ड-  
माणिका से—धान्य नापनिका से, आढक से, अर्धाढक से, प्रस्थक से,  
अर्धप्रस्थक से, कुडवसे, अर्धकुडव से, न सत्र देश विशेष में प्रसिद्ध  
धान्यमापक पात्र विशेषों से ढंक देता है तथा चतुर्भागिका से, अष्टभागिका

(धटपट वगेरे पक्षिणेने भतावीने तेभने-प्रतिभासित पणु करतो नथी. (अहं णं से  
पुरिसे तं पईवं इडुरएणं पिहेज्जा, तए ण से पईवं तं इडुरयं अंतोर  
ओभासेइ ४) छे जे ते पुरुष ते दीपकने मोटा ढक्खणी ढकी दे तो ते दीपक  
ते मोटा ढक्खणाना अदरना लागने न प्रकाशित करे छे, यावत् तेने प्रतिभासित करे  
छे (णो चेव णं इडुरगस्स चाहिं णो चेव णं कूडागारसालाए चाहिं)  
ते मोटा ढक्खणाना अदरना लागने तेभन ते कूटाकारशालाना बाह्य प्रदेशने प्रकाशित  
यावत् तेने प्रतिभासित करतो नथी (एवं गोकिलिञ्जेन, पच्छिपिण्डएणं, गण्ड-  
माणियाए, आढएण, अर्धाढएण, प्रस्थएण, अर्धप्रस्थएणं, कुलवेण, चाउ-  
व्माइयाए, अट्टमाइयाए, सोलसियाए) आ प्रभासे ते माणुस ते दीपकने गोकि-  
लिञ्जथी—गायने जेमा माणु भूवामा आवे छे जेवी कुंडीथी, तेभन पक्षीना  
आकरवाणा वंश शलाकानिर्मित पात्र विशेषथी, गण्ड मण्डिकाथी—धान्य मापनिकाथी,  
आढकथी, अर्धाढकथी, प्रस्थकथी, अर्धप्रस्थकथी, कुडवथी, अर्धकुडवथी, आ अष्टा देश  
विदेशमा प्रसिद्ध धान्यमापक पात्र विशेषथी तेने ढकी दे छे तेभन चतुर्भागिकाथी,



स मदीपः तद् इड्डाकम् अन्तरन्तः अवभासयति४, नो चैव खलु इड्डुरकस्य वहिः,  
नो चैव खलु कूटाऽऽकारशालायाः वहिः। एवं गोकिलिञ्जेन, पक्षिपिट-  
केन, गण्डमाणिक्या, आढकेन, अर्धाढकेन, प्रस्थकेन, अर्धप्रस्थकेन, कुडवेने,  
अर्द्धकुडवेन, चतुर्भागिक्या, अष्टभागिक्या, पोटशिक्या, द्वात्रिंशत्क्या,

दिखाने से उसे प्रभासित करता है। (अहं णं से पुरिसे तं पईवं इड्डुरएणं  
पिहेज्जा, तएणं से पईवे तं इड्डुरयं अंतोरे ओभासेइ४) यदि वह पुरुष  
उस दीपक को किसी बड़े ढकन से ढक देता है—तो वह दीपक उस  
बड़े ढकन के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करता है यावत् उसे प्रभासित  
करता है (णो चैव णं इड्डुरगस्स बाहिं णो चैव णं कूडागारसालाए बाहिं)  
उस बड़े ढकन के बाहिरी भाग को एवं कूटाकारशाला के बाह्यदेश को  
प्रकाशित यावत् प्रभासित नहीं करता है। (एवं गोकिलिञ्जेन, पच्छि-  
पिण्डएणं, गण्डमणियाए, आढएणं, अद्धाढएणं, पत्थएणं, अद्धपत्थएणं  
कुलवेणं, चाडम्माइयाए, अट्टमाइयाए, सोलसियाए) इसी तरह उस दीप  
को गोकिलिञ्ज से—गाय को खाना जिसमें रखा जाता है ऐसी कुण्डिका  
से, तथा पक्षी के आकरवाले वृक्षशलाका निर्मित पात्र विशेष से, गण्ड-  
मणिका से—धान्य नापनिका से, आढक से, अर्धाढक से, प्रस्थक से,  
अर्धप्रस्थक से, कुडवसे, अर्धकुडव से, न सब देश विशेष में प्रसिद्ध  
धान्यमापक पात्र विशेषों से ढक देता है तथा चतुर्भागिका से, अष्टभागिका

(घटपट वगैरे पदार्थोनि जतावीने तेमने—प्रतिभासित पणु करतो नथी। (अहं णं से  
पुरिसे तं पईवं इड्डुरएणं पिहेज्जा, तए ण से पईवं तं इड्डुरयं अंतोरे  
ओभासेइ ४) ढवे ने ते पुरुष ते दीपकने मोटा ढकणुथी ढाडी दे तो—ते दीपक  
ते मोटा ढकणुना अंदरना लागने ज प्रकाशित करे छे, यावत् तेने प्रतिभासित करे  
छे) (णो चैव णं इड्डुरगस्स बाहिं णो चैव णं कूडागारसालाए बाहिं)  
ते मोटा ढकणुना अंदरना लागने तेमज ते कूटाकारशालाना बाह्य प्रदेशने प्रकाशित  
यावत् तेने प्रतिभासित करतो नथी। (एवं गोकिलिञ्जेन, पच्छिपिण्डएणं, गण्ड-  
मणियाए, आढएणं, अद्धाढएणं, पत्थएणं, अद्धपत्थएणं, कुलवेणं, चाड-  
म्माइयाए, अट्टमाइयाए, सोलसियाए) आ प्रमाणे ते भाणुस ते दीपकने गोकि-  
लिज्जथी—गायने जेमा भाणु भूक्वामा आवे छे जेवी कुंडीथी, तेमज पक्षीना  
आकरवाणा वंश शलाकानिर्मित पात्र विशेषथी, गण्डमणिकाथी—धान्य मापनिकाथी,  
आढकथी, अर्धाढकथी, प्रस्थकथी, अर्धप्रस्थकथी, कुडवथी, अर्धकुडवथी, आ जथा देश  
विदेशमां प्रसिद्ध धान्यमापक पात्र विशेषोथी तेने ढाडी दे छे तेमज चतुर्भागिकाथी,

चतुष्पष्टिका, दीपचम्पकेन, ततः खलु स मद्योपः दीपचम्पकस्य अन्तरन्तः  
 आवेमासयति४, नो वैष खलु दीपचम्पकस्य बहिः नो वैष खलु चतुष्पष्टिका,  
 नो वैष खलु चतुष्पष्टिकाया परि, नो वैष खलु कूटाऽऽकारशाखां, नो  
 वैष खलु कूटाऽऽकारशाखाया परि, एवमेष मदेक्षिन् । जीवोऽपि यां बाह्वी  
 पूर्वकर्मनिषदां बोर्दि निर्देष्टयति तामममयेचैर्मीषपदेक्षेः सचिर्षा करोति घृष्टिकां  
 महतीं वा, तत् भद्रेहि खलुस्व मदेक्षिन् । यथा म-पो जीवः तदेव खलु १० । १५२

। से, षोडशमागिका से इन मध्य चतुर्मागिका से चतुष्पष्टिकापत्र के  
 मगचदेशप्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषों से ढक देता है तथा दीप के ढकने  
 से ढंक देता है (तएण से पईवे दीपचगस्ता अतो २ ओमासेह) तो  
 वह मदीप मिन २ से ढंका गया है उर्हीं २ के भीतरी को ही प्रका-  
 शित करता है, उनके बाहिरी भाग को नहीं इसी तरह से वह दीपच-  
 म्पक के हो भीतरी भाग को प्रकाशित करता है, (नो चेव ण दीपच-  
 गस्त बाहिं नो चेव ण अउमद्विप, नो चेव ण अउसद्विपाए- बाहिं, नो  
 चेव ण कूडागारसाम, कूडागारसामाए बाहिं) दीपचम्पक के बाहिरी  
 भाग को नहीं-या दीपक के बाहिर के प्रदेश को नहीं, चतुष्पष्टिका  
 को नहीं, चतुष्पष्टिका के बाहिर के प्रदेश को नहीं, कूटाकारशाखा को,  
 और कूटाकारशाखा के बाहर के प्रदेश को नहीं प्रकाशित करता है  
 । (एवमेष पपसी ! जीवे वि जे जारितप पुण्यकम्मनिषदं बोर्दि निम्मेसेह)

अष्टमागिका, षोडशमागिका (चरुसिपाए, अउसद्विपाए दीपचपपस)  
 अन्तीसिका, चतुष्पष्टिका आ नदी चतुर्मागिका चतुष्पष्टिका पत्र-पत्रा मगच-  
 देश प्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषों को ढंकी दे छे तेमज दीपच पछी-दीपकन ढंकी  
 बांधी दे छे (तएण से पईवे दीपचगस्ता अतो २ ओमासेह)  
 तो ते मदीप के के वस्तुथी ढंकवाभां आ ये छे ते ते वस्तुना अइरना आउने  
 के प्रकाशित करे छे तमना अइरना आउने प्रकाशित करतो नहीं, आ अगले ते  
 दीपचपत्रना अइरना आउने के प्रकाशित करे छे (नो चेव ण दीपचगस्ता  
 बाहिं, नो चेव ण अउसद्विप, नो चेव ण अउमद्विपाए बाहिं नो चेव  
 ण कूडागारसाम, नो चेव ण कूडागारसामाए बाहिं) दीपचपत्रना  
 अइरना आउने नहीं, के दीपक अपकना अइरना प्रदेशने नहीं, चतुष्पष्टिकाने नहीं,  
 चतुष्पष्टिकाया अइरना प्रदेशने नहीं, कूटाकार शाखाने नहीं, के कूटाकारशाखना  
 अइरना प्रदेशने प्रकाशित करतो नहीं, एवमेष-पपसी ! जीवे वि जे जारि-  
 तप पुण्यकम्मनिषदं बोर्दि निम्मेसेह) आ अगले छे प्रदेशिन् एव पय पूर

ટીકા—‘તણ્ પં સે પણ્સી રાયા’ इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशी राजा  
‘केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत—हे भदन्त ! स शरीराद्धिन्नः जीवः नूनं—  
‘निश्चयेन हस्तिनः कुन्थोः—त्रीन्द्रियक्षुद्राणि विशेषस्य च समः—तुल्यपरिमाण  
एव न न्यूनाधिकपरिमाणः’ इति प्रश्नः । केशी माह—‘हन्त ! हे प्रदेशिन !

इसी तरह से हे प्रदेशिन् ! जीव भी पूर्वभवोपाजित कर्मद्वारा निषद्ध  
जैसे शरीर को उत्पन्न—प्राप्त करता है (तं असंखेज्जेहि जीवपण्सेहिं सचित्त  
‘करेह खुड्डियं वा महालियं वा) चाहे वह छोटा हो या बड़ा उसे अपने  
असंख्यात प्रदेशों से सचित्त—जीव युक्त कर लिया करता है. (तं सद्वहाहि  
णं तुमं पण्सी ! जहा अण्णो जीवो तं चेव ण १०) इसलिये हे प्रदेशिन् ! तुम  
इस बात पर विश्वास करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है इत्यादि।

टीकार्थ—इस मूलार्थ के ही अनुरूप है—परन्तु जो विशेषता है—वह  
‘इस प्रकार से है—कुन्थु वह तीन इन्द्रियों वाला—ते इन्द्रिय जीव है. और  
‘हाथी पांच इन्द्रियों वाला—पंचेन्द्रिय जीव है. जबकेशीकुमार श्रमणने १५१वे  
सूत्र में प्रदेशी से ऐसा कहा कि वायुकायिक जीव में और तुम्हारे जीव  
में समानता है—तो प्रदेशी के चित्त में ऐसी आशका का उठना स्वभाविक  
‘ही है कि कुन्थु के जीव में और हाथी के जीव में समानता  
‘है या असमानता है ? इसीलिये उसने ऐसा प्रश्न पूछा है. इसके समा-  
‘धान में केशीने उससे ऐसा कहा कि हे प्रदेशिन् ! जीव में—चाहे वह

‘लवोपाजित कर्मद्वारा निषद्ध शरीरને ઉત્પન્ન—પ્રાપ્ત કરે છે (તં અસંખેજ્જેહિં  
‘જીવપણ્સેહિં સચિત્ત—કરેહ ચુદ્ધિયં વા મહાલિયં વા) પછી લહે તે પછી  
‘નાનું હોય કે મોટું—લઘુ હોય કે મહાન તેને પોતાના અસંખ્યાત પ્રદેશોથી સચિત્ત  
‘જીવયુક્ત કરી લે છે (તં સદ્વહાહિ ણ ત્વમં પણ્સી ! જહા અણ્ણોજીવો તં ચેવ  
‘ણં ૧૦) એટલા માટે હે પ્રદેશિન્ ! તમે મારી આ વાત પર વિશ્વાસ કરો—કે  
‘જીવ અન્ય છે અને શરીર અન્ય છે વગેરે !

ટીકાર્થ—આ સૂત્રનો ટીકાર્થ મૂલાર્થ પ્રમાણે જ છે પણ સવિશેષ સ્પષ્ટતા  
આ—પ્રમાણે છે—કુન્થુ—એ ત્રણ ઇન્દ્રિયો યુક્ત—તે ઇન્દ્રિય જીવ છે અને હાથી પાંચ  
ઇન્દ્રિયો યુક્ત પચ્ચેન્દ્રિય જીવ છે બન્નારે કેશી કુમાર શ્રમણે ૧૫૧ માં સૂત્રમાં પ્રદે-  
શીને આ પ્રમાણે કહ્યું કે વાયુકાયિક જીવમાં અને તમારા જીવમાં સમાનતા છે તો  
પ્રદેશીને ચિત્તમાં એવી આશકા ઉદ્ભવે કે કુન્થના જીવમાં અને હાથીના જીવમાં  
સમાનતા છે કે અસમાનતા ? એ વાત સ્વાભાવિક છે એટલા માટે જ તેણે આ  
‘નાતનો પ્રશ્ન કર્યો છે એના સમાધાનમાં કેશીએ તેને આ પ્રમાણે કહ્યું કે હે પ્રદેશિન્,

चतुष्पटिका, दीपचम्पकेन, ततः खलु त मदीप दीपचम्पकस्य अन्तरन्तः  
अर्धमासयसिद्ध, नो वैष खलु दीपचम्पकस्य बहिः नो वैष खलु चतुष्पटिका,  
नो वैष खलु चतुष्पटिकाया बहिः, नो वैष खलु कूटाऽऽकारशाखां, नो  
वैष खलु कूटाऽऽकारशाखाया बहिः, एवमेव मदेक्षिन्। जीवाऽपि यां यादृशी  
पूर्वकर्मनिबद्धां योर्दि निर्वर्तयति तामसक्येयैर्जीवपदेक्षैः सचिर्चा करोति छत्रिकां  
महतीं वा, तत् मदेक्षि खलु एव मदेक्षिन्। यथा अयो जीवः तदेव खलु १०। १५ १५२।

इत्थे, पोद्दशमागिका से इन मय चतुर्भांगिका से चतुष्पटिकापत्र के  
मगपदेशप्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषों से ढक देता है तथा दीप के ढकने  
से ढक देता है (तएण से पईवे दीपचगस्त अतो २ ओमासेह) तो  
यह मदीप मिन २ से ढका गया है उर्हीं २ के भीतरी को ही प्रका-  
शित करता है, उनके बाहिरी भाग को नहीं इसी तरह से वह दीपच-  
म्पक के ही भीतरी भाग को प्रकाशित करता है, (जो चेव न दीपच  
गस्त चाहिं नो चेव न चउसद्विय, नो चेव न चउसद्वियाए- चाहिं, जो  
चेव न कूडागारसाळ, कूडागारसालाए चाहिं) दीपचम्पक के बाहिरी  
भाग को नहीं-या दीपक के बाहिर के प्रदेश को नहीं, चतुष्पटिका  
को नहीं, चतुष्पटिका के बाहिर के प्रदेश को नहीं, कूटाकारशाखा को,  
और कूटाकारशाखा के बाहिर के प्रदेश को नहीं प्रकाशित करता है  
। (एवामेव पणसी। जीवे पि जे जारिसय पुम्यपम्पनिबद्ध योर्दि निब्वसेह)

अष्ट भागीक्षधी, दोध भागीक्षधी (चत्तीसियाए, चउसद्वियाए दीपचपण)  
अत्तीसिद्धधी, चतुष्पटिकाधी आ जभीःचतुर्भांगिकाधी चतुष्पटिका पत्रन्तान् अत्र  
देश प्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषों से ढक दे छ तेमच दीपच पक्षी-दीपक. छं-  
छाधी छंछी छ छ (तएण से पईवे दीपचगस्त अतो २ ओमासेह)  
तो ते मदीप के के चतुर्थी छंछाभा आच्छे छ ते ते चतुर्था अद्विधा आग्ने  
व प्रकाशित करे छ तेमना अद्विधा आग्ने प्रकाशित करते नहीं. आ प्रभावे छे  
दीपच पक्षी अद्विधा आग्ने प्रकाशित करे छ (जो चेव न दीपचगस्त  
चाहिं, नो चेव न चउसद्विय, नो चेव न चउसद्वियाए चाहिं जो चेव  
न कूडागारसाळ, जो चेव न कूडागारसालाए चाहिं) दीपच पक्षी  
अद्विधा आग्ने नहीं छे दीपच पक्षी अद्विधा अद्विधा अद्विधा नहीं,  
चतुष्पटिकाना अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा  
अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा अद्विधा  
सय पुम्यपम्पनिबद्ध योर्दि निब्वसेह) आ प्रभावे छे अद्विधा अद्विधा अद्विधा

गम्भीरा, अथ खलु कोऽपि पुरुषः 'ज्योतिः-अग्निं च दीपं' च गृहीत्वा  
 तां-कूटाकारशालाम्, अन्तरतः-अत्यन्ताभ्यन्तरे अनुप्रविशति । तस्याः कूटा  
 कंरिशालायाः-सर्वतः-सर्वदिक्षु, समन्तात्-सर्वविदिक्षु घननिचितनिरन्तराणि-  
 घन-निविड-यथा स्यात्तथा निचितानि-संघातितानि निरन्तराणि-अन्तरर  
 हितानि तानि तथा, अस्य-द्वारवदनानी'-त्यनेन सम्बन्धः, पुनः निश्छिद्राणि छिद्र-  
 हितानि द्वारवदनानि-द्वारमुखानि, पिदधाति-आच्छादयति, तस्याः-कूटाऽऽ  
 काटशालायाः बहुमध्यदेशभागे-अत्यन्तमध्यपदेशे तं प्रदीपं प्रदीपयेत्-प्रज्वा-  
 लयेत्, ततः खलु सः प्रदीपः तां कूटाकारशालाम् अन्तरन्तः-सर्वान्तभागे-  
 सर्वान्तभागावच्छेदेनेति भावः- अवभासयति-प्रकाशयति, उद्द्योतयति-  
 उत्कर्षेण प्रकाशयति, तापयति-संतप्तां करोति प्रभासयति-घटपटादि  
 दर्शनया प्रकर्षेण प्रकाशमानां करोति, किन्तु बहिः-कूटाकारशालाया-बहि-  
 भागं-नो चैव-नैव-अवभासयति-उद्द्योतयति-तापयति प्रभासयति । अथ  
 खलु स पुरुषः तं प्रदीपम् इडुरकेण-महापिटकेन-आवरणविशेषेण पिद-  
 ध्यात्-आच्छादयेच्चेत्, ततः खलु सः-पिहितः प्रदीपः तत्-प्रदीपविधानभू-  
 तम् इडुरकम् अन्तः आभ्यन्तरावच्छेदेन अवभासयति किन्तु इडुरकस्य  
 बहिः-बहिःपदेशं नो चैव-नैव खलु अवभासयति तथा कूटाकारशालायाः  
 बहिः-नो-चैव-अवभासयति, एवम्-अनेन प्रकारेण गोकिर्लिजेन-गोकिर्लि-  
 व्जं-गवां भक्ष्यस्थापनकुण्डिका, तेन, तथा पक्षिपिटकेन-पक्षिपिटक-पक्ष्या-  
 कारो वंशशिलाकानिमितपात्रविशेषः, तेन, तथा गण्डमाणिकाया-गण्डमा-  
 णिका-धान्यमापनिका, तथा, आढकेन, अर्धाढकेन, प्रस्थकेन, अर्धप्रस्थकेन,  
 कुडवेन, अर्धकुडवेन, आढकादारभ्यार्धकुडवपर्यन्तानि धान्यमापकानि देश  
 विशेषप्रसिद्धानि पात्रविशेषाणि तैः प्रदीपं पिदध्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः,  
 तथा चतुर्भागिकया, अष्टभागिकया, षोडशिकया, द्वात्रिंशत्कया चतुष्पष्टिकया-  
 चतुर्भागिकादि-चतुष्पष्टिकापर्यन्ता मगधदेशप्रसिद्धा एव रसमापकपात्र-  
 विशेषास्तैः, प्रदीपं पिदध्यादिति पूर्वेणान्वयः, एवं-दीपचम्पकेन-दीपविधा-  
 नेन प्रदीपं पिदध्यादिति पूर्वेणान्वयः, ततः खलु सः-पिहितः प्रदीपः दीप-

जैसे दीप का एक कोड़े (एक घर) में रख दिया जावे तो वह उस कोड़े  
 भर को जहाँ तक उसका प्रकाश फैल सकता है प्रकाशित करता है और  
 उसी दीपक को यदि मिट्टी के छोटे बर्तन के अन्दर बन्द कर रख दिया

॥ दीपके एक घरमा भूकेवाभा आवे तो ते संपूर्ण घरने जथा सुधी सनी प्रकाश  
 ॥ जहाँ शके सधी प्रकाशित करे छ अने तेन दीपकेने जे भीटीना नामा वंशिलुमी  
 ॥ अर्धर भूकेवाभा आवे तो ते तेना अर्धरना लागने न प्रकाशित करे छे, वगेरे वगेरे,



इस्तिन कुन्योश्च जीवः सम एव । प्रदेष्टी कथयति-हे भवन्त ! तम-इस्ति-  
 कुन्योर्मध्ये इस्तिव-इस्तिनमपेक्ष्य, 'अथ यद्यस्योपे' कर्मणि पठवमी कुन्तुः  
 'नून-निश्चयेनात्यकर्मतर-अत्यस्याऽऽपुरादिरूपकर्मधान एव, अत्यक्रियतरः-  
 अत्यस्यापिकादिक्रियाशान एव, अत्यास्रवतरः-अत्यस्यामाणातिपातादिक्रिया  
 स्रववान् एव, एवम्-अमेन प्रकारेण अस्याऽऽहारनीपारोक्षीसमिःश्वासकृदि  
 कृतरः अत्यपुतिकृतरः अत्यष्टाभ्यस्य सर्वत्र सम्पन्नात् अत्याहारतर एव अत्य-  
 नोहारतर एव अत्योक्षीसतर एव अत्यश्रुदिकृतर एव, अथ कृदिः परि-  
 वारादिक्रिया प्राज्ञा, अत्यपुतिकृतर एवेत्यथा, पुतिश्च-शरीरकामिक्रिया ।  
 एव-पथा-इस्तिनमपेक्ष्य कुन्तुः अत्यतरकर्मस्वादिभिर्निष्ठ उक्तस्तथा, कुन्तुः-  
 कुन्तुमपेक्ष्य इस्ती-महाकर्मतरः-अपिकापुरादिकल्पकर्मधान एव, महाक्रि-  
 यतर याव यावत्-यावत्स्वदेन-महास्रवतर एव महानीहारतर एव महोक्षी-  
 सतर एव महद्विकृतर एव महापुतिकृतर एव, इत्येतां सर्वान् बोध्यम् । इति  
 मन्ने केष्टी प्राह-इन्त । मदेक्षिन् । इस्तिनः कुन्तुः अत्यकर्मतर एव कुन्तुतो  
 वा इस्ती महाकर्मतर एव, तदेव-पूर्वोक्तमेव-कुन्तुपक्षे अत्यक्रियतर एव  
 अत्यास्रवतरः इस्तिपक्षे-महाक्रियतर एव महास्रवतर एवेत्यदि बोध्यम् । इति  
 इस्ति-कुन्तुः परस्पर कर्मादिभेद भुत्वा प्रदेष्टी तयोर्भेदिसाम्ये कारण  
 प्रच्छति-'कस्मात् अस्तु भवन्त ! इत्यादि-हे भवन्त । कस्मात् कारणात् अस्तु  
 इस्तिनः, कुन्योश्च जीवः, सम एव, केष्टी प्राह-हे मदेक्षिन् । तद् यथाना  
 मक'-पथादष्टान्तम् कृताऽऽकारशास्त्रा-पथेऽस्त्रिनराकारा स्यात्, यावत्-याव  
 त्स्वदेन द्विपालो लिप्ता गुप्ता गुप्तद्वारेति पदानां सर्वान् बोध्यम्, निर्वात-

कुन्तु का हो जाहे हाथी का हो सब में समानता है एक जीव में जस  
 एपात प्रदेश होते हैं इन प्रदेशों की अपेक्षा सब समान है । कोई भी  
 जीव ऐसा नहीं है कि जिसमें इन प्रदेशों की समानता न हो पूर्वो-  
 पार्जित शरीर नाम कम भादि क द्वारा जिस जीव को जैसा शरीर प्राप्त  
 होता है वह जीव उसमें अपने प्रदेशों को स कोष विस्तारशाला बना छेता है

एवमा-पछी भवे ते कुन्तु ने दाव के क्षमिने समानता है जे एवमा अथ  
 म्यात प्रदेशो दाव है आ प्रदेशानी अपेक्षाके आपने विचार करीने तो जभा  
 एवो समान है है केप पथ आवे नही है जेमा आ प्रदेशानी समानता एव  
 नहि पूर्वोपार्जित शरीर नामक कम भादि क द्वारा जिस जीव को जैसा शरीर प्राप्त  
 होता है वह जीव उसमें अपने प्रदेशों को स कोष विस्तारशाला बना छेता है

વિ એસા સપ્પણા જાવ સમોસરણં, ત નો ચલુ અહ વહુપુરિસ-  
પરપરાગયં કુલનિસ્સિયં દિટ્ઠિં છંડેસ્સામિ ॥ સૂ. ૧૫૩ ॥

છાયા—તતઃ ચલુ પ્રદેશી રાજા કેશિનં કુમારશ્રમણમ્—એવમવાદીત્ એવ  
ચલુ ભદન્ત ! મમ આર્યકસ્ય એપા સંજ્ઞા યાવત્ સમવસરણં યથા—તજ્જીવસ્તચ્છ-  
રીરમ્, નો અન્યો જીવોઽન્યચ્છરીરમ્, તદનન્તરં ચ ચલુ મમ પિતુરપિ એપા સંજ્ઞા  
યાવત્ સમવસરણમ્ । તદનન્તરં મમાપિ એપા સંજ્ઞા યાવત્ સમવસરણમ્, તત્ નો  
ચલુ અહં વહુપુરુષપરમ્પરાગતાં કુલનિશ્રિતાં દૃષ્ટિં મોક્ષમામિ ॥ સૂ. ૧૫૩ ॥

‘તણ્ઠં પણ્ણી રાયા’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ—(તણ્ઠં) ઇસકે વાદ (પણ્ણી રાયા) પ્રદેશી રાજાને (કેસિં કુમાર-  
સમણં એવં વયાસી) કેશીકુમારશ્રમણ સે એસા કહા (એવં ચલુ મંતે ! મમ અજ્જગસ્સ  
એસા સન્ના જાવ સમોસરણં જહા તજ્જીવો તં સરીરં, નો અન્નો જીવો અન્નં સરીરં)  
હે ભદન્ત મેરે આર્યક—પિતામહ કી યહ સંજ્ઞાથી, યાવત્ સમવસરણ થા—કિ  
વહી જીવ હૈ વહી શરીર હૈ—જીવ શરીર સે ભિન્ન નહીં હૈ શરીર જીવ સે ભિન્ન  
નહીં હૈ (તયાણંતરં ચ ણં મમ પિણ્ણો વિ એસા સપ્પણા જાવ સમોસરણં,) ડનકે વાદ મેરે  
પિતાકી મી એસી હી સંજ્ઞા યાવત્ એસા હી સમવસરણ રહા, (તયાણંતરં  
ચ ણં મમ વિ એસા સપ્પણા જાવ સમોસરણ તં નો ચલુ વહુપુરિસપરપરાગયં  
કુલનિસ્સિયં દિટ્ઠિં છંડેસ્સામિ) વાદ મેં મેરી મી યહી સંજ્ઞા યાવત્ એસા હી  
સમવસરણ હૈ—અતઃ અનેક પુરુષ પરમ્પરા સે ચલી આઈ હુઈ ઇસ કુલાધીનમાન્યતા  
કો નહી છોડુંગા, ઇસલિયે જીવ ઓર શરીર એક હી હૈ ભિન્ન ૨ નહીં હૈ ।

‘તણ્ઠં પણ્ણી રાયા’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ—(તણ્ઠં) ત્યારબાદ (પણ્ણી રાયા) પ્રદેશી રાજાએ (કેસિં કુમાર-  
સમણં એવં વયાસી) કેશીકુમાર શ્રમણને આ પ્રમાણે કહ્યું—(એવં ચલુ મંતે !  
મમ અજ્જગસ્સ એસા સન્ના જાવ સમોસરણં જહા તજ્જીવો તં સરીરં, નો  
અન્નો જીવો અન્નં સરીરં) હે ભદ્રત ! મારા આર્યક—પિતામહની આ સંજ્ઞા  
હતી યાવત્ સમવસરણ હતુ કે તેજ એવ છે, તેજ શરીર છે, એવ શરીર કરતા  
ભિન્ન નથી. (તયાણંતરં ચ ણં મમ પિણ્ણો વિ એસા સપ્પણા જાવ સમોસરણં)  
ત્યાર પછી મારા પિતાની પણ એવી જ સંજ્ઞા યાવત્ એવુ જ સમવસરણ રહ્યું  
(તયાણંતરં ચ ણં મમ વિ એસા સપ્પણા જાવ સમોસરણ તં નો ચલુ વહુપુરિસ-  
પરપરાગયં કુલનિસ્સિયં દિટ્ઠિં છંડેસ્સામિ) ત્યાર પછી મારી પણ એવી જ સંજ્ઞા  
યાવત્ સમવસરણ છે એટલા માટે અનેક પુરુષ પરપરાથી આવી આવતી આ કુલા-  
ધીન માન્યતા ને હું ત્યજીશ નહીં એથી એવ અને શરીર એકજ છે ભિન્નભિન્ન નથી.

धर्मकर्म्य अन्तः-मध्यमागम्-अथमागमयति उद्योतयति तापयति-प्रमासयति नो  
 चैव सल्ल दीपधर्मकर्म्य-यहिः, नो चैव सल्ल चतुष्पिका नो चैव सल्ल  
 चतुष्पटिकाया यहिः, एव दीपधर्मकाच्छादिता दीपः, नो चैव सल्ल द्वात्रिं  
 सिका, नो चैव सल्ल द्वात्रिंशिकायाः यहिः, इत्यादि पञ्चादानुपूर्वक्रमेण यावत्  
 नो चैव कृत्वा सारशालाम्, नो चैव कृत्वा कारशालाया यहिः अथमागमयति उद्यो  
 तयति तापयति प्रमासयति इति योजना कार्या एवमेव-मशीपदष्टान्तानु  
 सारैव हे प्रवेक्षिन् ! जीवोऽपि यां कांचित्-यानृषीं-पूषकर्मनिषद्धां-पूर्व  
 मशीपार्जितकर्मनिषद्धां वोन्दि-तत्त्व-निर्वर्तयति-उत्पादयति तां वोन्दिम  
 असम्भयेयै अक्षरुपातैः जीवप्रवेक्षे । सन्निष्ठा-जीवयुक्तां करोति-सम्पादयति,  
 तां वोन्दि-कीदृशीम् । इति जिज्ञासायामाह-धूम्रिकाम्-अनिलंजीम्, महतीं  
 विशालाम् वा सचितां करोति इति पूर्वोक्तान्वये । तत्-तस्मात्-दीपदष्टा  
 न्तेन जीवस्य पूर्वमवकृतकर्मनिषद्धांतिलघुमहोदारीरानुप्रवेशानकारिणा, त्वं हे  
 प्रवेक्षिन् ! त्वं अदेहि-मद्वचने अद्वो ह्य, यथा-अन्यो जीवः तद्वत्-पूर्वोक्त  
 मेव अन्यच्छरीरम् नो तज्जीवः स चारीरम्, इति । ॥ सू० १५२ ॥

॥ मूलम—तथा, एषा राया केसि कुमारसमणं, एव वयासी-एव  
खलु भते । मम अज्जगस्स एसा सन्ना जाव ममोसरणं जहातज्जीवो  
त, सरीर, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीर । तथाणंतरं च, णं, मम  
पिउणो वि ष्सा सण्णा जाव समोसरणं । तथाणंतरं च णं मम

जाता है तो वह उसके भीतरी भाग को ही प्रकाशित करता है। यदि तो जिस प्रकार से दीपक के प्रकाश में सकोष विस्तार करने का स्वभाव है उसी प्रकार से जीव में भी अपने प्रदेशों को सकोष विस्तार करने का स्वभाव है यही मध्य विषय इस सूत्र में स्पष्ट किया गया है 'इत्थीठ कुयु' इसका अर्थ है हस्ती की अपेक्षा करके। अर्थात् 'जम्बू से' या 'परिवारादिरूप अर्थात् शरीर हुई है'। पृ० १५० ॥

તે જેમ દીપકના પ્રગ્લભમાં સકોમ વિસ્તાર કરવાનો સ્વભાવ છે તેમજ જીવમાં પણ પાતાના પ્રદેશોને સકુચિત્તે તે વિસ્તાર કરવાનો સ્વભાવ છે આ જાણી જાતો આ સૂત્રમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે દશમી કે પુષ્પ' એનો અર્થ 'દ્વાર્ધાની અપેક્ષાએ' એવો છે કારણકે અન્ધરી અદી પત્તિવાસદિય અદિત મધ્યમ થયુ છે ૥૧૮ ૧૫૨૫

वि एसा सण्णा जाव समोसरणं, त नो खलु अह बहुपुरिस-  
परंपरागयं कुलनिस्सियं दिट्ठि छंडेस्सामि ॥ सू० १५३ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम्—एवमवादीत् एव  
खलु भदन्त ! मम आर्यकस्य एषा संज्ञा यावत् समवसरणं यथा—तज्जीवस्तच्छ-  
रीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, तदनन्तरं च खलु मम पितुरपि एषा संज्ञा  
यावत् समवसरणम् । तदनन्तरं ममापि एषा संज्ञा यावत् समवसरणम्, तत् नो  
खलु अहं बहुपुरुषपरम्परागतां कुलनिश्रितां दृष्टिं मोक्षामि ॥ सू० १५३ ॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसिं कुमार-  
समणं एवं वयासी) केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा (एवं खलु भंते ! मम अज्जगस्स  
एसा सन्ना जाव समोसरणं जहा तज्जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं)  
हे भदन्त मेरे आर्यक—पितामह की यह संज्ञा थी, यावत् समवसरण था—कि  
वही जीव है वही शरीर है—जीव शरीर से भिन्न नहीं है शरीर जीव से भिन्न  
नहीं है (तयाणंतरं च णं मम पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं,) उनके बाद मेरे  
पिताकी भी ऐसी ही संज्ञा यावत् ऐसा ही समवसरण रहा, (तयाणंतरं  
च णं मम वि एसा सण्णा जाव समोसरणं तं नो खलु बहुपुरिसपरंपरागयं  
कुलनिस्सियं दिट्ठि छंडेस्सामि) बाद में मेरी भी यही संज्ञा यावत् ऐसा ही  
समवसरण है—अतः अनेक पुरुष परम्परा से चली आई हुई इस कुलाधीनमान्यता  
को नहीं छोड़ुंगा, इसलिये जीव और शरीर एक ही है भिन्न २ नहीं है ।

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) त्थारणाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसिं कुमार-  
समणं एवं वयासी) केशीकुमार श्रमणसे आ प्रभाषे कथं—(एवं खलु भंते !  
मम अज्जगस्स एसा सन्ना जाव समोसरणं जहा तज्जीवो तं सरीरं, नो  
अन्नो जीवो अन्नं सरीरं) हे भदन्त ! मेरा आर्यक—पितामह की आ संज्ञा  
इती यावत् समवसरण इतु के तेज एव छे, तेज शरीर छे, एव शरीर करता  
भिन्न नथी. (तयाणंतरं च णं मम पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं)  
त्थार पछी मेरा पितानी पणु ओवीज सज्ञा यावत् ओवुं ज समवसाणु रह्युं.  
(तयाणंतरं च णं मम वि एसा सण्णा जाव समोसरणं तं नो खलु बहुपुरिस-  
परंपरागयं कुलनिस्सियं दिट्ठि छंडेस्सामि) त्थार पछी मेरी पणु ओवीज सज्ञा  
यावत् समवसरण छे ओटला भाटे अनेक पुरुष पर पठाथी आही आवती आ कुला-  
धीन मान्यता ने हुं त्यएथनहीं ओथी एव अने शरीर ओकज छे भिन्नभिन्न नथी.

ध्वजस्य अन्तः-प्रध्वजगामम्। अथ गामपति उच्यते यति तापयति ममासयति नो  
 चैव स्वलु दीपचम्यस्य। यहिः, नो चैव स्वलु चतुष्पिका। नो चैव स्वलु  
 चतुष्पष्टिकाया यहिः, एष दीपचम्यकाष्ठावित्तो दीपः, नो चैव स्वलु द्वात्रिं  
 शिकां, नो चैव स्वलु द्वात्रिंशिकायाः यहिः, इत्यादि पश्चादानुपूर्वक्रमेण यावत्  
 नो चैव कृत्वा गामालाम्, नो चैव कृत्वा गामालाया यहिः अथ मोक्षयति उच्यते  
 यति तापयति ममासयति इति योजना कार्या एवमेव-पक्षीपक्षान्तात्  
 सारजैव हे। मदेक्षिन्। जीवोऽपि यां काचित्-यावृक्षी-पूर्वकर्मनिबद्धा-पूर्व  
 मवोपाजितकर्मनिबद्धा योन्दि-तनुः। निर्वर्तयति-उत्पादयति। तां योन्दिम्  
 अंसलयेयै असंख्यातैः जीवमवेक्ष्यैः। सचिषा-जीवयुक्ता करोति-सम्पादयति,  
 तां योन्दि-कीदृशीम्। इति जिज्ञासायां माह धृष्टिकाम्-मतिलक्ष्मीम्, महतीं  
 -विशालाम् वा सचिषा करोति इति पूर्वोक्तान्वयः। तत्-तस्मात्-दीपदृष्टा  
 न्तेन जीवस्य पूर्वमवकृतकर्मनिबद्धातिलक्ष्मणशरीरानुप्रवेशनकारिणां त्वे  
 मदेक्षिन्। त्वे मदेक्षिन्-मदेक्षिन् अर्द्धो दुग्धे, यथा-अन्नो जीवः तदेव-पूर्वोक्तं  
 मेव अन्वेषणीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति। ॥ घ० १५२ ॥

१०१ मम-तय, ण पएसी राया केसिं कुमारसमणं एव वयासी-एव  
 स्वलु भते। मम अज्जगस्स एसा सन्ना जाव ममोसरणं जहातजीवो  
 त, सरीर, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं। तयाणंतरं, च, णं, मम  
 पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं। तयाणंतरं च णं मम

जाता है तो वह उसका मीतरी भाग को ही प्रकाशित करता है। यदि  
 तो जिस प्रकार से दीपक के प्रकाश में सकोच विस्तार करने का स्वभाव  
 है उसी प्रकार से जीव में भी अपने मदेक्षों को सकोच विस्तार करने  
 का स्वभाव है यही सब विषय इस सूत्र में स्पष्ट किया गया है। 'इत्थीउ  
 कुपू' इसका अर्थ है हमारी की अपेक्षा करके। क्वचि 'शब्द' से 'घात'  
 परिवारादिक क्वचि सूचित हुई है। ॥ घ० १५२ ॥

ते तेन दीपकना प्रकाशमा सकोच विस्तार करवाने स्वभाव छ तेमच उपमा पय  
 पोताना प्रदेशेने सकृच्च ते विस्तार करवाने स्वभाव छ आ जधी वातो आ  
 सूत्रमा स्पष्ट करवायां आवी छ 'इत्थीउ कुपू' जेना ज्व 'आमीनी अपेक्षा' जे  
 ज्व छ क्वचि शब्दधी ज्व 'परिवारादिक क्वचि सूचित भवतु यत्तु छ ॥ घ० १५२ ॥

तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए अडवीए जाव कंचिदेसं अणुप्पत्ता  
समाणा एगं महं अयागरं पासंति, अ<sup>य</sup>णं सव्वओ समंता आइण्णं  
वित्थिणं सच्छडं उवच्छडं फुड अणुगाढं पासंति, पासित्ता हट्ठा तुट्ठा  
जाव हियया अन्नमन्नं सदावेति, एव वयासी-एस णं देवाणुप्पिया !  
अयागरे इहे कंते जाव मणामे, तं सेयं खल्ल देवाणुप्पिया ! अम्हं  
अयभारग बंधित्तएत्ति कट्ठे अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेति, अय-  
भार बंधंति अहाणुपुव्वीए संपत्थिया । तए णं से पुरिसा अगामि  
याए जाव अडवीए किंचिदेसं अणुप्पत्ता समाणा एगंमहं तउआगरं  
पासंति, तउएणं सव्वओ समंता आइण्णं तं चेव जाव सदावेत्ता एवं  
वयासी-एस णं देवाणुप्पिया ! तउआगरे इहे जाव मणामे, अप्पेणं  
चेव तउएणं सुबहुं अए लब्भइ, तं सेयं खल्ल अम्हं देवाणुप्पिया  
अयभारगं छड्ढेत्ता तउयभारग बधित्तएत्तिकट्ठे अन्नमन्नस्स अंतिए  
एयमट्ठं पडिसुणेति अयभारं छड्ढेत्ति तउयभारं बंधंति । तत्थ  
एगे पुरिसे णो संचाएइ अयभार छड्ढेत्तए तउयभार बधित्तए, तए  
णं ते पुरिसा त पुरिसं एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया ! तउ-  
आगरे जाव सुबहु अए लब्भइ, तं छड्ढेहि, णं देवाणुप्पिया ! अय-  
भारग, तउयभारगं बधाहि । तए णं से पुरिसे एवं वयासी-दूरा-  
हडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए,  
अइगाढबंधणबद्ध मए देवाणुप्पिया ! अए, असिढिलबधणबद्धे मए  
देवाणुप्पिया ! अए, धणियबंधणबद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए णो  
संचाएमि अयभारगं छड्ढेत्ता तउयभारगं बधित्तए । तए णं ते

टीका—‘तए ण पपसी राया’ इत्यादि ततः खलु प्रदेशी राजा केजिन कुमारभम्मम्, एवमवादीत्—एव खलु हे मदन्त ! मम आर्यकस्य—पिता महस्य एषा संज्ञा यावत्—यावत्पदेन एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः एषा हेतु एष उपदेश एष सकल्पः एषा तुला एतद् मानम् एतत् प्रमाणम्” इत्येषां पदानां सप्रहो बोध्यः समवसरणमासीत् । एषां व्याख्या—एकत्रिंशदधिकैकशततमसप्ततो विज्ञेया । यथा—तज्जीव तच्छरीरम् नो अन्यो जीवोऽप्यच्छरीरम्, इति मम पितामहस्य मन्तव्यमासीत् । तदनन्तरं च खलु मम पितुरपि एषा—अनन्तरोक्ता संज्ञा यावत् समवसरणमासीत् । तदनन्तरं च खलु ममापि एषा संज्ञा यावत् समवसत्यमस्ति, तत्—तस्माः कारणात् खलु अहं बहुपुत्रपरम्परगतं—पितामहादिपरम्परसमागतं कुलनिभितं कुलनिभया समागतं दृष्टिम् नो मोक्षयामि—न स्पृश्यामि—अपि तु तज्जीव स शरीरं नो अन्यो जीवोऽप्यच्छरीरमिति मत्तमेव स्वीकरिष्यामि । ॥२०१५३॥

मूलम्—तए ण केसी कुमारसमणे पर्पसि राय एव क्यासी—मा ण तुमं पपसी । पच्छाणुताविष भवेज्जासि, जहा व से पुरिसे अयहारए । के ण भते ! से अयहारए ? । पपसी ! मे जहाणामए केई पुरिसा अत्थत्थिया अत्थगवेसिया अत्थलुद्धया अत्थकखिया अत्थपिवासिया अत्थगवेसणयाए विउल पणिमभटमायाए सुवहु भत्तपाण पत्थयण गहाए एग मह अगामिय छिन्तावाय दीहमरु अहविं अणुपविट्ठा ।

टीकार्थ—स्पष्ट है—‘सन्ना जाव समोसरणं’ में जो यह यावत् पद आया है उस से यहाँ—एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः एषा रुचिः, एष हेतु, एषा उपदेश, एषा संकल्प, एषा तुला, एतद् मानम् एतत् प्रमाणम्) इन पदों का सप्रहं हुआ है इन सब पदों की व्याख्या तथा ‘समवसरणं’ इस पद की व्याख्या १३० वें घट्ट में की जा चुकी है । अतः मैं जीव शरीर की अमिन्नता को ही स्वीकार करूँगा, मिन्नता को नहीं ॥ २० १५३ ॥

टीका—१५४ वं छे. ‘सन्ना जाव समोसरणं’ भां ने यावत् पद छे तेधी भकी ‘एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः एष उपदेशः एषा सकल्पः एषा तुला, एतद् मानम् एतद् प्रमाणम्” भां पढोने सभळ बोधे छे. भां सब पढोनी भां १३० भां सुत्रभां कथाभां भावी छे. जेधी दु एव तेमए यरीन्ती अलिन्नवाने व स्वीकारीय लिन्नवाने नहि. ॥२० १५३॥

तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए अडवीए जाव कंचिदेसं अणुप्पत्ता  
समाणा एगं महं अयागरं पासंति, अणुणं सव्वओ समंता आइण्णं  
वित्थिणं सच्छडं उवच्छडं फुड अणुगाढं पासंति, पासित्ता हट्ठा तुट्ठा  
जाव हियया अन्नमन्नं सदावेति, एव वयासी-एस णं देवाणुप्पिया !  
अयागरे इहे कंते जाव मणामे, तं सेयं खल्ल देवाणुप्पिया ! अम्हं  
अयभारगं बंधत्तएत्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, अय-  
भार बंधंति अहाणुपुव्वीए संपत्थिया । तए णं से पुरिसा अगामि  
याए जाव अडवीए किंचिदेसं अणुप्पत्ता समाणा एगं महं तउआगरं  
पासंति, तउएणं सव्वओ समंता आइण्णं तं चेव जाव सदावेत्ता एवं  
वयासी-एस णं देवाणुप्पिया ! तउआगरे इहे जाव मणामे, अप्पेणं  
चेव तउएणं सुबहुं अए लब्भइ, तं सेयं खल्ल अम्हं देवाणुप्पिया  
अयभारगं छड्ढेत्ता तउयभारगं बधित्तएत्तिकट्टु अन्नमन्नस्स अंतिए  
एयमट्ठं पडिसुणेंति अयभारं छड्ढेंति तउयभारं बंधंति । तत्थ  
एगे पुरिसे णो संचाएइ अयभारं छड्ढेत्तए तउयभारं बधित्तए, तए  
णं ते पुरिसा त पुरिसं एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया ! तउ-  
आगरे जाव सुबहुं अए लब्भइ, तं छड्ढेहि, णं देवाणुप्पिया ! अय-  
भारगं, तउयभारगं बधाहि । तए णं से पुरिसे एवं वयासी-दूरा-  
हडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए,  
अङ्गाढवंधणवच्चे मए देवाणुप्पिया ! अए, असिढिलवधणवच्चे मए  
देवाणुप्पिया ! अए, धणियवधणवच्चे मए देवाणुप्पिया ! अए णो  
संचाएमि अयभारगं छड्ढेत्ता तउयभारगं बधित्तए । तए णं ते



पुरिस्ता त पुरिस जाहे णो सचायति षट्ठहिं आधवणाहि य पणव  
 णाहि य परूवणाहि य आधत्तिस्सए वा पणवित्तए वा परूवित्तए वा  
 तया अहाणुपुव्वीण सपत्थिया । एव तवागरं रुप्यागरं, सुवण्णागरं  
 रयणागरं, वहरागरं । तए णं ते पुरिस्ता जेणेव सया जणवया जेणेव  
 साइ साइ नगराइ तेणेव उवागच्छति, वयरविक्किणण करेति, सुवट्ठ  
 दासीदासगोमहिसगवेलग गिण्हति, अट्ठसलमूसिय पासायवहिंसगे,  
 कारावेति, ण्हायो कयवलिकम्मा कायकोउयमगलपायच्छित्ता उप्पि  
 पासायवरगया फुट्टमाणेहिं सुइगमत्थएहिं षत्तीसइषद्धएहिं नाढएहिं  
 वरतरुणीसपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणा उवंगिज्जमाणा उवलालिज्ज  
 माणा इट्ठे सदफरित्तरसरूव-गधे पच्चविहे माणुस्सए कामभोगे पच्च  
 णुभवमाणा विहरति । तए णं से पुरिसे अयभारेण जेणेव सए  
 नयरे तेणेव उवागच्छइ, अयमारग गहाय अयविक्किणण करेइ  
 तसि अप्पमोहसि निट्ठियसि खीणपरिव्वए ते पुरिसे उप्पि पासाय  
 वरगए जाव विहरमाणे पासइ, पासिस्ता एव वयासी-अहो! णं  
 अह अघण्णो अपुन्नो अकयस्थो अकयलक्खणो हिरिसिरिव्वज्जिओ  
 हीणपुण्णचाउइमे दुरसपतलक्खणे । जइ णं अह मित्ताण वा णाईण,  
 वा नियगाण वा वयणं सुणे तओ तो णं अहपि एव चेव उप्पि  
 पासायवरगए जाव विहरे तओ । से तेणट्ठेणं पएसी ! एव बुच्चइ  
 मा तुम पपसी ! पच्छाणुताविए भविज्जासि, जहा व से पुरिसे  
 अयभारए ॥ सू० १५४ ॥

छाया—ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिं गजानमेवमवार्त्तात् मा खलु त्वं प्रदेशिन् ! पश्चादनुतापिको भवेः, यथा वा स पुरतोऽयोहाकः । कः खलु भदन्त ! सोऽयो-  
हारकः ? । प्रदेशिन् ! ते यथा नामकाः केचिः । पुरुषा अर्थार्थिकाः अर्थगवेपकाः  
अर्थलुब्धकाः अर्थकांक्षिनः अर्थपिपासिताः अर्थगवेपणाय विपुलं पणितभा ड-  
माढाय सुबहुभक्तपातपण्यदनं गृहीत्वा एका महतीम् अग्रामिकां छिन्नाऽऽपाता  
दीर्घाध्वान् अर्ध्यामनुप्रविष्टाः । ततः खलु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकाया याव ।

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केशीकुमारसमणे) केशीकुमार श्रमणने (परसि-  
राय एवं वयासी) प्रदेशी गजा से ऐसा कहा (माणं तुमं परसी ! पञ्चाणुता-  
विण भवेज्जासि—जहा व से पुरिसे अयहारण) हे प्रदेशिन् ! तुम पश्चात्तापयुक्त  
मत बनो जैसा कि वह अयोहाक—लोहवणिक—पश्चात्तापयुक्त बना,

अब प्रदेशी उससे परिचय को जानने के अभिप्राय से पृच्छता है (के णं  
मंते ! से अयहारण) हे भदन्त ! वह अयोहाक कौन था ? इस पर  
केशीकुमारश्रमण कहते हैं—(परसी ! से जहाणामए केई पुरिसा अत्यत्थिया  
अत्यगवेसिया अत्यलुब्धया, अत्यकरिखाया, अत्यपिवासिया, अत्यगवेमणयाए विउलं  
पणियमंडमायाए सुवहुं भत्तपाणपत्थयणं गहाय एणं महं अग्गामियं छिन्नावायं  
दीहमट्ठं अडावि अणुपविट्ठा) हे प्रदेशिन् ! अनिर्दिष्ट नामवाले कितनेक पुरुष जो  
कि धन के अर्थी थे, धन के गवेपक थे, धन के लोलुप थे, धनकी कांक्षा  
से युक्त थे, धनकी प्यासवाते थे, धनकी गवेपणा के लिये विपुल क्रयागक-

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थार पक्षी (केशीकुमारसमणे) देशी कुमारश्रमणे  
(परसि रायं एवं वयासी) प्रदेशी गजाने आ प्रभाणु कछु (मा णं तुमं परसी !  
पञ्चाणुताविण भवेज्जासि—जहाव से पुरिसे अयहारण) हे प्रदेशिन् ! तम  
पेटा अथोहारक—ढोह वणिक्—नी जेम, पश्चात्ताप न करे। हवे प्रदेशी तेना सब धमा  
पक्षी विगत जणुवा माटे आ प्रभाणु पूछे छि—(किं णं मंते ! से अयहारण) हे  
भदन्त ते अथोहारक ढोण्डोना बोपागी कोणु हुतो ? तेना जवागमा देशी  
कुमार श्रमण कहे छि—(परसी ! से जहाणामए केई पुरिसा अत्यत्थिया अत्य-  
गवेसिया अत्यलुब्धया, अत्यकरिखाया, अत्यपिवासिया, अत्यगवेमणयाए विउलं  
पणियमंडमायाए सुवहुं भत्तपाणपत्थयणं गहाय एणं महं अग्गामियं  
छिन्नावायं दीहमट्ठं अडावि अणुपविट्ठा) हे प्रदेशिन् ! अनिर्दिष्ट नामवाला  
केटलाक पुश्चो के जेओ धनार्थी हुता, धनना गवेपक हुता, धनना लोलुप हुता

अटव्या कश्चित् दशमनुप्राप्ताः सन्तः एक महान्तम् अयथाकार पश्यति, अयसा सर्वस समन्ताद् आकीर्णं विस्तीर्णं सञ्छन् उपच्छट स्फुटम् अनुगाढ पश्यन्ति, दृष्ट्वाऽनुप्राप्ताः यावत् हृदया अन्योऽन्यं क्षुब्धयन्ति, एवमवादिषु—एष स्तु देवानु-  
प्रियाः ! अयथाकारः इष्टं कान्तः यावत् मनत्राप, तत्र येन स्तु देवानुप्रिया

यस्तु समूह को लेकर तथा साथ में पर्याप्त अन्नपानरूप पाकेपलेकर एक विशाल अटवी में जो कसति से रहित थी, जिसके जंतुओं के मय से मनुष्यों का गमनागमनरूप संचार जिसमें किलकूल नहीं था और कीर्णमार्गयुक्त थी या पहुँचे (एषण से पुरिसा तीसे अम्मामियाए अटवीए कश्चिदेस अनुपपत्ता समाप्ता एगं मह अयागार पासति) इसके बाद वे पुरुष जब उस अद्यामिक्ष, छिन्नापात-युक्ता एव दीर्घाध्वावली अटवी के और आगेके प्रदृश्य में आ चुके तब उन्होंने वहाँ पर एक लोहे की स्नान को दत्ता (अएण सच्चजो समता आइए सच्छड उवच्छड फुहं अनुगाढ पासति) यह स्नान सब तरफ से लोहेस आकीर्ण बनी हुई थी स्पष्टरूप में नहीं थी बहुत विस्तारवाली थी समीचीन छटा—चाक-चिक्कवाली थी छटायुक्त थी स्पष्टरूप में नहीं थी (पासिता इहत्तुहा जाव दिपया अन्नमन्नं सहावेति) इस लोहे की स्नान दत्तकर वे बहुत अधिक हुए एवं सुप्त यावत् हृदयवाले हुए और फिर उन्होंने आपस में एक दूसरे को बुलाया (एव बयासी) बुलाकर बैसा कहा (एस मं देवानुप्रिया ! अयागरे इहे कंते,

धननी हाँक्याथी पुक्त हवा, धननी परस्परण हवा धननी जवेषण भाटे विपुल व्यावृत्त वस्तु समूहने लपने तेमजे साथे पर्याप्त अन्नपानरूप पाकेप लपने को विद्याण अटवीमां—हे के जेष्ठम निबन हवी, कि सके वस्तुजोना अयधी भावुसोनी अवस्वरण जेमां सडतर जव हवी जने दीध भाजं मुक्त हवी जव पछोन्ना (त एणं त पुरिसा तीसे अम्मामियाए अटवीए कश्चिदेस अनुपपत्ता समाप्ता एगं मह अयागार पासति) त्वाए पछी ते भावुसोने अत्रा-मिडा छिन्नापात मुक्त जने दीर्घाध्वावली अटवीनी अहरे जव आभण लता रह्य त्वा तेमजे सोपलनी भाटी भावु जेष्ठ (अएणं सच्चजो समता आइए विट्पिप्प सच्छड उवच्छड फुहं अनुगाढ पासति) आ जव जेष्ठ सोप लवी आहीव हवी बहुत विस्तार मुक्त हवी समीचीन छटा जेठसे देवाक्षिप्प बनी हवी, छटायुक्त हवी स्पष्टरूपधी देवाली हवी जने जेष्ठ पुत्र इपमां हवी छिन्नमिन्न इपमां न हवी (पासिता इहत्तुहा जाव दिपया अन्नमन्नं सहावेति) ते सोपलनी भावुने जेष्ठने जेष्ठव बयारे इहत्तुहा यावत् हृदयवाले बया जने पछी तेमजे परस्पर जेष्ठनीजने गिहाव्या (एव बयासी) गिहावीने आ प्रभावे इह-  
(एम न दयानुप्रिया ! अयागरे इह, कंते, जाव मगामे)

अस्माकम् अयोभारकं बद्धम्, इति कृत्वा अन्योऽन्यस्य एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, अयो-  
भारं वधन्ति, यथाऽनुपूर्विं प्रस्थिताः । ततः खलु ते पुरुषाः अग्रामिकाः यावत् अटव्याः  
किञ्चिद्देशम् अनुप्राप्ताः सन्तः एकं महान्तं त्रचाकरं पश्यन्ति, त्रपुणा सर्वतः  
समन्तात् आकीर्णं तदेव यावत् शब्दयित्वा एवमवादिषुः—एष खलु देवानुग्रियाः !  
त्रचाकरः इष्टः यावत् मनओमः, अल्पेनैव त्रपुणा सुबहु अयो लभ्यते, तत्र श्रेयः

जाव मणामे] हे देवानुग्रियो ! यह लोहे की खान इष्ट है, यावत् मनोज्ञ है (तं सेयं खलु  
देवानुग्रिया । अहं अयभारं वधित्त ए त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडि-सुणेति) अतः  
उचित है कि हम लोग इस लोहे के भार यहां से ले लेवें इस प्रकार विचार  
करके उन्होंने आपसके इस विचार को निश्चय का रूप दे दिया (अयभारं  
वधेति) और लोहे को वहां से ले लिया (अहाणुपुव्विए संपत्थिया) और लेकर  
वहां से क्रमशः चल दिया (तए ण से पुरिसा अगामियाए जाव  
अडवीए कंचिदेस अणुपत्ता समाणा एगं महं तउआगरं पासंति) इसके बाद  
वे चलते २ जव और अधिक आगे निकल गये तब उन्होंने उस अग्रामिक  
आदि विशेषणवाली अटवी में एक बहुत बड़ी त्रपु-रांगा की खान को देखा (तएणं  
सच्चओ समंता आइण्णं तं चेव जाव सदावेत्ता एवं वयासी) संतुष्ट यावत् हृदय वाले  
हुए बाद में उन्होंने आपस में एक दूसरे को बुलाया बुलाकर ऐसा कहा—  
(एस णं देवानुग्रिया ! तउआगारे इट्ठे जाव मणामे] हे देवानुग्रिया ! यह रांगा

ते लोअडनी णाणु धण्ट छि, कात यावत् मनोअ छि. (तं सेयं खलु देवानु-  
ग्रिया ! अहं अयभारं वधित्त ए त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिसुणेति)  
येथी अभारा भाटे आ वात पत्ताणर छि हे अमे पधा आ लोअडना कारने अडी थी  
लध जधये आ प्रभाणु विचार करीने तेमणु परत्पर करेव आ विचारने निश्चया-  
त्मकइय आइयु (अयभारं वधेति) अने लोअडने त्याथी लध लीधुं (अहाणु-  
पुव्विए संपत्थिया) अने लधने त्याथी क्रमशः आगण आलता थया. (तए णं से  
पुरिसा अगामियाए जाव अडवीए कंचिदेस अणुपत्ता समाणा एग मह  
तउआगर पासंति) त्थार पछी तेओ जता जता ज्यारे भूण हर नीकणी गया  
त्थारे तेमणु अग्रामिका वगेरे विशेषण्ठाथी युक्त अटवीमा ओक भहु विशाण त्रपु  
रागा (कथीरनी णाणुने नेध. (त एणं सच्चओ समंता आइण्णं तं चेव-  
जाव सदावेत्ता एवं वयासी) ते रागानी णाणु ओमेर रागाथी आडीणुं रडी, यावत्  
ओक पुज इपमां लुती. आ णाणुने नेठने तेओ सर्वे भूणज हृष्ट अने संतुष्ट  
यावत् हृदयवाणा थया त्थार पछी तेमणु ओक भीजने जोलाव्या अने जोलावीने  
आ प्रभाणु कहुं—(एस णं देवानुग्रिया ! तउआगारे इट्ठे जाव मणामे) हे देवा-

अथवा कश्चित् देवमनुष्यान् सन्त एक महान्तम् अयमाकार पश्यति, अयस्य सर्वतः समन्ताद् आकीर्णं विस्तीर्णं सञ्छन् उपच्छिद्य स्फुटम् अनुगाहं पश्यन्ति, दृष्ट्वा हृष्टास्तुष्टाः यावत् हृदया अन्योज्यं शब्दयन्ति, एवमवादिषु—एष स्तु देशानुप्रिया ! अयमाकारः इष्टं कन्तं यावत् मनआम, स न धेयं स्तु देशानुप्रिया

वस्तु ममूह को लेकर तथा साथ में पर्याप्त अन्नपानरूप पाशेयलेख एक विशाल अरबी में ओ बसति से रहित थी, जिसके अंतुओं के मय से मनुष्यों का गमनागमनरूप संचार जिसमें विकसल नहीं था और दीर्घमार्गयुक्त भी आ पहुँचे (एष न से पुरिसा तीसे अगमिष्यात् अडवीए कश्चिदेस अणुषत्ता समाना एगं मह अयागर पासति) इसके बाद वे पुरुष अब उस अग्रामिका, छिन्नापात-युक्ता एवं दीर्घाच्चावल्ली अरबी के और आगेके प्रदक्ष में आ चुके तब उन्होंने वहाँ पर एक लोहे की स्नान को दृष्ट्वा (अण न सत्रओ समता आदय्य सच्छड उवच्छड फुड अणुगाहं पासति) यह स्नान सब तरफ से लोहेसे आकीर्ण बनी हुई थी स्वरूप में नहीं थी बहुत विस्तारवाली थी समीचीन छटा—वाक-चिक्यवाली थी छायायुक्त भी स्वरूप में नहीं थी (पासित्ता इदुतुडा जाव हियया अन्नमन्नं सरावेति) इस लोहे की स्नान दस्तकर वे बहुत अधिक इष्ट एवं तुष्ट यावत् हृदयवाले हुए और फिर उन्होंने आपस में एक दूसरे को घुलाया (एव वयासी) युक्ताकर ऐसा कहा (एष न द्वाणुप्रिया ! अयागर इहं कंते,

धननी कांथाधी युक्त दत्ता धननी तरेधवाण्य दत्ता धननी अवेधयु भाते विपुल क्वावुक वस्तु समूहने लपने तेमध आधे पक्षोप अशनचनदप चाधे लक्ष्मी के विद्याण अटवीर्ण—के ले कोकम निर्वन दत्ती, दिसक अतुज्जोना अथधी भावुसेनी अवस्थानर केमा अदतर नध दत्ती अने दीध भाज युक्त दत्ती अथ फेडोन्ना (त एष न पुरिसा तीसे अगमिष्यात् अडवीए कश्चिदम अणुषत्ता समाना एगं मह अयागारं पासति) त्वाधे पक्षी ते भावुसेने अथ मिता छिन्नापात युक्त अने दीधाम्बावल्ली अटवीनी अदर भूज आभन नय्य रक्ष्य त्वा तेमदे दोषधनी भाटी आण जोध (आण मय्यओ समता आदय्य पित्तिष्म मरुड उवच्छड फुड अणुगाहं पासति) आ आण धाधेर दोष धधी आधीन दत्ती अणु न विस्तार युक्त दत्ती समीचीन छटा कोटवे ठे जाव अथ्य वागी दत्ती, उदयुक्त दत्ती रक्षदधधी देभावी दत्ती अने कंक पुन इधमी दत्ती छिन्नामन्न इधम न दत्ती (पासित्ता इदुतुडा जाव हियया अन्नमन्नं सरावेति) ते दोष नी भावने लेपने अणु न वधारे दृष्टतुष्ट यावत् दृष्टवधाय्य दध अने पक्षी तेमदे परस्पर कोशीलने बोधोन्ना (एव वयासी) धेधानी अथ मय्यदे इध (एष न द्वाणुप्रिया ! अयागर इहं कंते, जाव प्रगामे)

સુવોધિની ટીકા સ. ૧૫૪ સૂર્ગમંદેવસઃ પૂર્વમંરજીગ્રપ્રદેશિરાજવર્ણનમ્

અસ્માકમ્ અયોમારકં વદ્ધમ્, ઇતિ કૃત્વા અન્યોઽન્યસ્ય એતમર્થં પ્રતિશૃણ્વન્તિ, અયો-  
મારં વદ્ધન્તિ, યથાઽનુપૂર્વિં પ્રસ્થિતાઃ । તતઃ સ્વલુ તે પુરુષાઃ અગ્રામિકાઃ યાવત્ અટવ્યાઃ  
કિઞ્ચિદ્દેશઃ અનુપ્રાપ્તાઃ સન્તઃ એકં મહાન્તં ત્રવાકર પશ્યન્તિ, ત્રપુણા સર્વતઃ  
સમન્તાત્ આકીર્ણં તદેવ યાવત્ શબ્દયિત્વા એવમવાદિપુઃ-૫૫ સ્વલુ દેવાનુપ્રિયાઃ !  
ત્રવાકરઃ ઇષ્ટઃ યાવન્ મનઃશ્રોમઃ, અલ્પેનૈવ ત્રપુણા સુવહુ અયો લભ્યતે, તત્ શ્રેયઃ

જાવ મળામે] હે દેવાનુપ્રિયો ! યહ લોહે કી સ્વાન ઇદ્દ હૈ, યાવત્ મનોઝહૈ(તં સેયં સ્વલુ  
દેવાણુપ્રિયા । અમ્હં અયમારગં વંધિત્ત્વે ત્તિ કઠ્ઠુ અન્નમન્નસ્સ એમઠ્ઠં પડિ-સુણેતિ) અતઃ  
ઉચિત્ત હૈ કિ હમ લોગ ઇસ લોહે કે માર યહાં સે લે લેવેં ઇસ પ્રકાર વિચાર  
કરકે ઉન્હેને આપસકે ઇસ વિચાર કો નિશ્ચય કા રૂપ દે દિયા (અયમારં  
વંધેતિ) ઓર લોહે કો વહાં સે લે લિયા (અહાણુપુવ્વિણ સંપત્થિયા) ઓર લેકર  
વહાં સે દ્રમણઃ ચલ દિયા (તેણ સે પુરિસા અગામિયાણ જાવ  
અડવીણ કંચિદેસ અણુપત્તા સમાણા એગં મહં તઝઆગરં પાસંતિ) ઇસકે વાદ  
વે ચલતે ૨ જવ ઓર અધિક આગે નિકલ ગયે તવ ઉન્હેને ઉસ અગ્રામિક  
આદિ વિશેષણવાલી અટવી મેં એક વહુત વડી ત્રપુ-રાંગા કી સ્વાન કો દેસા (તેણં  
સવ્વઓ સમંતા આણ્ણં તં ચેવ જાવ સદાવેત્તા એવં વયાસી) સંતુષ્ટ યાવત્ હૃદય વાલે  
હુણ વાદ મેં ઉન્હેને આપસ મેં એક દસરે કો બુલાયા બુલાકર એસા કહા-  
(એસ ણં દેવાનુપ્રિયા ! તઝઆગારે ઇદ્દે જાવ મળામે] હે દેવાનુપ્રિયા ! યહ રાંગા

તે લોખડની ખાણુ ઇદ્દ છે, કાત યાવત્ મનોઝ છે (તં સેયં સ્વલુ દેવાણુ-  
પ્રિયા ! અમ્હં અયમારગં વંધિત્ત્વે ત્તિ કઠ્ઠુ અન્નમન્નસ્સ એમઠ્ઠં પડિસુણેતિ)  
એથી અમારા માટે આ વાત બરાબર છે કે અમે બધા આ લોખડના ભારને અડીથી  
લઈ જઈએ આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તેમણે પરસ્પર કરેલ આ વિચારને નિશ્ચયા-  
ત્મકરૂપ આપ્યું (અયમારં વંધેતિ) અને લોખડને ત્યાથી લઈ લીધું. (અહાણુ-  
પુવ્વિણ સંપત્થિયા) અને લઈને ત્યાથી ક્રમશઃ આગળ ચાલતા થયા. (તેણં સે  
પુરિસા અગામિયાણ જાવ અડવીણ કંચિદેસં અણુપત્તા સમાણા એગ મહ  
તઝઆગર પાસંતિ) ત્યાર પછી તેઓ જતા જતા જયારે ખૂબ દૂર નીકળી ગયા  
ત્યારે તેમણે અગ્રામિકા વગેરે વિશેષણોથી યુક્ત અટવીમા એક બહુ વિશાળ ત્રપુ  
રાંગા (કથીરની ખાણુને જોઈ. (તેણં સવ્વઓ સમંતા આણ્ણં તં ચેવ-  
જાવ સદાવેત્તા એવં વયાસી) તે રાંગાની ખાણુ ચોમેર રાંગાથી આકીર્ણ રહી, યાવત્  
એક પુજ રૂપમા હતી. આ ખાણુને જોઈને તેઓ સર્વે ખૂબજ હૃષ્ટ અને સંતુષ્ટ  
યાવત્ હૃદયવાળા થયા ત્યાર પછી તેમણે એક ધીબળે બોલાવ્યા અને બોલાવીને  
આ પ્રમાણે કહ્યું-(એસ ણં દેવાણુપ્રિયા ! તઝઆગારે ઇદ્દે જાવ મળામે] હે દેવા-

સ્તુ દવાનુપ્રિયા ! અસ્માકં અયોમારક મુષ્ત્વા પ્રપુકમારક મદુષ, શ્વિકૃતા  
અન્યોઽન્યમ્પ અન્નિક ગતમય પ્રતિઘ્વાન્તિ, અયોમાર મુષ્વન્તિ, પ્રપુકમાર મ-  
ધન્તિ ! તત્ર મ્હુ એક પુરુષા નો લક્ષ્નોતિ અયોમાર મોક્ષતુમ્ પ્રપુકમાર મદુષ ।  
તતઃ સ્તુ ત પુરુષા ત પુરુષમયમશ્વત્પિ-અપ મ્હુ દવાનુપ્રિય ! શ્વાકર યાવત્  
સુબહુઅયો લમ્યત, તત્ મુષ્વ સ્તુ દવાનુપ્રિય ! અયોમારકમ, પ્રપુકમારક મધાન ।  
તત સ પુરુષ પયમવાદીત્-દુરાઽઽઽત મયા દવાનુપ્રિયા ! અપ ચિરાઽઽઽત મયા

સ્વાન ઇ યાવત્ મન આમ-અર્સિદ્ધ હોન સ મન ગમ્ય હૈ [અપ્પ ન શ્વે ત  
ઉણ સુપહ અપ લમ્ય] થોડ સ હી ગંગા સ મ્હુત અધિક લોહા હમે મિલ  
મક્તા હૈ (ત સય મ્હુ અમ્હ દવાપુષિ ! ! અયમારગ છહેતા તડપમારગ  
મધિતપ સિ કહે અમમમ્મસ અતિપ પયમદ્ધ પદિસુમેતિ) અત હમારી મહાઈ  
અપ ઇતી મેં હૈ કિ હમ હમ લોહ ક માર કો છોઢકર હસ રાંગા કો યદાં  
સ શાંષ લ, હસ મકાર કા દિશાર કરક ઉન્દાન આપ્સ કે હસ કૃત વિચાર  
કો નિષપ કા સ્વાન ટ દિરા (અયમાર છહેતિ, તડપમાર મધેતિ) અત  
લોહક માર કો છોઢકર રાંગા ક માર કા શાંષ લિ । (તત્ત્વ ન પગ પુરિસ  
ળો સંવાપદ, અયમાર છહેતપ, તડપમાર મધપતપ) યન્તુ હનમેં એક પુરુષ પમા  
મી યા-જો લોહ ક માર કા છોઢન મેં ઓર રાંગા ક માર કો ગ્રહણ કરન મેં  
શાંષને મેં અસપ્પા, અર્થાત્ મ્હુ એસા કરના નહીં ચાહતા યા (તણ ત પુરિમા

તુપ્રિય ! આ રાંજાની ખાણ છે ઇષ્ટ શાવત મન આમ-અર્સિદ્ધ હોવા બદલ મનઃમ્મ છે.  
(અપ્પ ન શ્વે તડપણ સુપહ અપ લમ્ય) મેઘા રાંજાથી અમને મ્હુ લોખ  
મળી શકે છે (ત સેય મ્હુ અમ્હ દવાપુષિયા ! અયમારગ, છહેતા તડપ-  
મારગ મધિતપ સિ કહે અનમન્નસ અતિપ પયમદ્ધ પદિસુમેતિ) એથી  
અમારા મોઢે એ જ આજ છે કે અમે લોખ હતા ભારને ત્વજને આ રાંજાને બહી શી  
બાપી લઈએ આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તેમણે પરસ્પર હજ આ વિચારને નિષ્ક્રા-  
ત્મકરૂપ આપી દીધુ (અયમાર છહેતિ, તડપમાર મધેતિ) અને લોખ હતા ભારને મૂરીને  
વાળાના ભારને આજે લઈ લીધે । (તત્ત્વ ન પગે પુરિસ ણો મવાપદ, અયમાર છહેતપ,  
તડપ માર મધિતપ) પણ તેમજામા એક માણસ એકો પણ હતો કે જે લોખ હતા  
ભારને ત્વજને રાંગાને ગ્રહણ કરવાની યાતને ઉચિત માનનો ન હતો. (તણ  
ત પુરિમા ત પુર્મિ પય વપાસી) ત્યારે તે પુરુષોએ તેને આ પ્રમાણે કવ-  
(પસ ન દવાપુષિયા ! તડપમાર ગામ સુપહ અપ લમ્ય) કે દવાપુષિ ।  
આ રાંજાની ખાણ છે ઇષ્ટ કાંત વજેરે વિશેષજ્ઞોથી મુક્ત છે મેઘા રાંજાથી પણ  
આપ્તે મ્હુ લોખ ટ મેળવી શકીએ તેમ છીએ. (ત છહેદિ ન દવાપુષિયા !

देवानुप्रियाः ! अयः, अतिगाढवन्धनवद्धं मया देवानुप्रियाः ! अयः, अशिथिल-  
वन्धनवद्धं मया देवानुप्रियाः ! अयः, अत्यन्तगाढवन्धनवद्धं देवानुप्रियाः ! अयः,  
नो शक्नोमि अयोभारकं त्यक्त्वा त्रपुकभारकं बद्धुम् । ततः खलु ते पुरुषाः तं

तं पुरिसं एवं बयासी) तव उन पुरुषोंने उस पुरुष से ऐसा कहा—(एस णं  
देवाणुप्पिया ! तउ आगरे जाव सुवहुं अए लब्भइ) हे देवानुप्रिय ! यह रांगे की  
खान है. इष्ट कान्त आदि विशेषणोंवाली है. थोड़े से रांगा से ही बहुत अधिक  
लोहा प्राप्त किया जा सकता है । (तं छड्ढेहि ण देवाणुप्पिया ! अयभारगं,  
तउयभारगं वंधाहि) इसलिये ! तुम हे देवानुप्रिय ! इस लोहे के भार को छोड़  
दो और रांगा के भार को बांध लो—लेलो (तएणं से पुरिसे एवं बयासी) तव  
उस पुरुषने ऐसा कहा (दूराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए, देवा-  
णुप्पिया ! अए अडगाढवंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, असिढिलवंधणवद्धे  
मए देवाणुप्पिया ! अए, धणियवंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, णो संचाएमि  
अयभारगं छड्ढेत्ता तउयभारगं वधित्तए) हे देवानुप्रियो ! इसलोहके भारको मैं  
बहुत दूर से लाया हू, बहुत समय से इसे लादे हुए हू, हे देवानुप्रियो !  
मैंने इसे बहुत ही गाढ बंधन से बांधा है अर्थात् बहुत अधिक कसकर बांधा  
हुआ है. अशिथिल बंधन से—अब खुल सके ऐसे बन्धन से नहीं बांधा है  
किन्तु हे देवानुप्रियो ! मैंने इस लोहे को प्रचुर बंधन से बांधा है, अतः अब  
मैं अयोभार को छोड़कर त्रपुक भारको ग्रहण करने के लिये समर्थ नहीं हूँ  
अर्थात् लोहे के भार को छोड़ कर रांगा के भार को नहीं लूँ । (तएणं ते

अयभारगं, तउयभारगं वंधाहि) ओटला भाटे तमे डे देवानुप्रियो ! आ लोअ'उना  
लारने भूझी डे। आने रागाना लारने भाधी लो. (त एणं से पुरिसे एवं बयासी)  
त्यारे ते पुरिसे आ प्रभाण्णे कल्लु—(दूराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए,  
देवाणुप्पिया अए गाढवंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, धणिय-  
वंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, णो संचाएमि अयभारगं छडेत्ता तउय-  
भारगं वधित्तए) डे देवानुप्रियो । आ लोअ'उना लारने डु अडु ञ इरथी लाव्ये  
छु, धण्णा समयधी मे आने उपाडी राण्ये छ डे देवानुप्रियो ! आने मे सणत्त  
गाढ अंधन भाध्थे छ ओटले डे मे आने कसीने भाध्थे छ डवे जोली शकथ  
ओवा अंधनथी भाध्थे नथी पणु डे देवानुप्रियो ! मे' आ लोअ'उना लारने प्रचुर  
अंधनथी भाध्थे छ ओटला भाटे डवे डु आ लोअ'उना लारने त्यछने त्रपुकभारने  
अडणु करवाभा समर्थ नथी ओटले डे लोअ'उना लारने भूझीने रागाना लारने डवे  
डु उपाडीथ नही. (तए ण ते पुरिसा तं पुरिसं जाहे णो सचाएंति बह्वाह



स्तु देवानुप्रिया ! अस्माकम् अयोमारक मुक्त्वा प्रपुष्कारक बद्धम्, इति कृत्वा  
 अन्योऽन्यस्य अन्तिके पथमयं प्रतिस्पर्धन्ति, अयोमार मुञ्चन्ति, प्रपुष्कार ब-  
 धन्ति ! तत्र स्तु एकं पुरुषो नो शक्नोति अयोमार मोक्तुम् प्रपुष्कार बद्धम् ।  
 ततः स्तु ते पुरुषाः त पुरुषमवमवादिषु—एष स्तु दवानुप्रिय ! प्रपुष्कार यावत्  
 सुबहुअयो लभ्यते, तद् मुञ्च स्तु देवानुप्रिय ! अयोमारकम्, प्रपुष्कारक बधनम् ।  
 ततः स पुरुष पथमवादीत्—इराऽऽहृत मया दवानुप्रिया ! अयं चिराऽऽहृत मया

स्नान इष्ट यावत् मन आम-अर्तिहर होने से मन गम्य है [अप्ये न केव त  
 तएव सुबह अप लम्भ] थोड़े से ही गंगा से बहुत अधिक लोहा हमें मिल  
 सकता है (तं सेय स्तु अम्ह देवानुप्रिया ! ! अयोमारग छड़ेता तउयमारग  
 बधितए त्ति कहुँ अन्नमन्नस्स अतिए एयमद्द पडिसुणेंति) अतः हमारी मलाई  
 अब इसी में है कि हम इस लोहे के मार को छोड़कर इस गंगा को पकड़  
 से बांध ले, इस प्रकार का विचार करके उन्होंने आपस के इस कृत विचार  
 को निश्चय कर स्थान दे दिा (अयोमार छड़ेंति, तउयमार बंधेंति) और  
 लोहके मार को छोड़कर गंगा के मार को बांध लिा (तन्व न एगे पुरिसे  
 णो संचायद्द, अयोमार छड़ेंतए, तउयमार बधितए) परन्तु इनमें एक पुरुष पमा  
 भी था—जो लोहे के मार का छोड़ने में और गंगा के मार को ग्रहण करने में  
 बांधने में असुर्यथा, अर्थात् वह ऐसा करना नहीं चाहता था (तएव ते पुरिसा

तुप्रिया ! अयं राज्ञानी आद्य एष्ट नावत् मन आम-अर्तिहर देवा लोहा मनत्रस्य छ  
 (अप्ये न केव तउयण सुबहु अप लम्भ) योदा राजाधी अभने धत्तु होय  
 भणी शके छ (तं सेय स्तु अम्ह दवानुप्रिया ! अयोमारग, छड़ेता तउय  
 मारग बधितए त्ति कहुँ अन्नमन्नस्स अतिए एयमद्द पडिसुणेंति) ओही  
 आभाश भाटे के न साइ छ के अभे होय जा आरने तल्लने अयं रांगाने अदी धी  
 आधी छल्ले आ प्रभावे विचार करीने तेमळे पश्यपर हुन आ विचारने निश्चय-  
 त्ताइए आधी धीयु (अयोमार छड़ेंति, तउयमार बधितति) अने होय जा आरने मूडीने  
 ताजाना आरने साधे छल्ल बीषा (तन्व न एगे पुरिसे णो संचायद्द, अयोमार छड़ेंतए,  
 तउय मार बधितए) पक्ष तेमथाभा ओड भाषय ओरो पक्ष कनेर के ने होय लता  
 आरने मल्लने रांमने अक्षय अश्वानी वातने उचित मानने न कते। (तएत  
 त पुरिसा त पुरिस एव वयासी) त्वाते ते पुत्रोळे तेने अयं प्रभावे कस-  
 (एस न दवानुप्रिया ! तउयमारग आद्य सुबहु अप लम्भ) के देवानुप्रिय !  
 अयं राज्ञानी आद्य छ एष्ट कांत नजेर विशेषोभायी सुकत छ योदा राजाधी पक्ष  
 आपळे पक्ष होय अ भेजवी शकीने तेम छीळे (त छड़ि न दवानुप्रिया !

देवानुप्रियाः ! अयः, अतिगाढबन्धनवद्धं मया देवानुप्रियाः ! अयः, अशिथिल-  
बन्धनवद्धं मया देवानुप्रियाः ! अयः, अत्यन्तगाढबन्धनवद्धं देवानुप्रियाः ! अयः,  
नो शक्नोमि अयोभारकं त्यक्त्वा त्रपुकभारकं बद्धुम् । ततः खलु ते पुरुषाः तं

तं पुरिसं एवं बयासी) तब उन पुरुषोंने उस पुरुष से ऐसा कहा—(एस णं  
देवाणुप्पिया ! तउ आगरे जाव सुवहुं अए लब्भइ) हे देवानुप्रिय ! यह रांगे की  
खान है, इष्ट कान्त आदि विशेषणोंवाली है, थोड़े से रांगा से ही बहुत अधिक  
लोहा प्राप्त किया जा सकता है । (तं छुट्ठेहि ण देवाणुप्पिया ! अयभारगं,  
तउयभारगं बंधाहि) इसलिये ! तुम हे देवानुप्रिय ! इस लोहे के भार को छोड़  
दो और रांगा के भार को बांध लो—लेलो (तएणं से पुरिसे एवं बयासी) तब  
उस पुरुषने ऐसा कहा (दूराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए, देवा-  
णुप्पिया ! अए अइगाढबन्धनवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, असिद्धिलव धनवद्धे  
मए देवाणुप्पिया ! अए, धणियवन्धनवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, णो संचाएमि  
अयभारगं छुट्ठेत्ता तउयभारगं वधित्तए) हे देवानुप्रियो ! इसलोहेके भारको मैं  
बहुत दूर से लाया हू, बहुत समय से इसे लादे हुए हूँ, हे देवानुप्रियो !  
मैंने इसे बहुत ही गाढ बंधन से बांधा है अर्थात् बहुत अधिक कसकर बांधा  
हुआ है, अशिथिल बंधन से—अब खुल सके ऐसे बन्धन से नहीं बांधा है  
किन्तु हे देवानुप्रियो ! मैंने इस लोहे को प्रचुर बंधन से बांधा है, अतः अब  
मैं अयोभार को छोड़कर त्रपुक भारको ग्रहण करने के लिये समर्थ नहीं हूँ  
अर्थात् लोहे के भार को छोड़ कर रांगा के भार को नहीं लूँ । (तएणं ते

अयभारगं, तउयभारगं वधाहि) ओटला भाटे तमे छे देवानुप्रियो । आ बोअ'उना  
भारने भूझी हो आने रागाना भारने भाधी बो. (त एणं से पुरिसे एवं बयासी)  
त्याहे ते पुग्गे आ प्रभाणे क्खु—(दूराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए,  
देवाणुप्पिया अए गाढबन्धनवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, धणिअ-  
वधनवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, णो संचाएमि अयभारगं छुट्ठेत्ता तउय-  
भारगं वधित्तए) छे देवानुप्रियो ! आ बोअ'उना भारने हु णहु न इरथी लाव्यो  
छु, धणु समथयी मे' आने उपाडी राण्यो छे छे देवानुप्रियो ! आने मे' सणत  
गाढ बंधन भाध्ये छे ओटले के मे' आने कस्तीने भाध्ये छे हुवे जोली शक्य  
ओवा बंधनथी भाध्ये नथी यणु छे देवानुप्रियो । मे' आ बोअ'उना भारने प्रचुर  
बंधनथी भाध्ये छे ओटला भाटे हुवे हु आ बोअ'उना भारने त्यल्लने त्रपुकभारने  
अल्लु करवामा समर्थ नथी ओटले के बोअ'उना भारने भूझीने रागाना भारने हुवे  
हुं उपाडीश नही. (तए ण ते पुरिसा तं पुरिसं जाहे णो सचाएंति वहुहाह

पुरुष यदा नो शक्नुवन्ति षड्भि आस्थापनाभिश्च प्रस्थापनाभिश्च प्रस्पृगाभिश्च  
आस्थापयितु वा प्रस्थापयितु वा प्ररूपयितु वा तदा यथाऽऽनुपूर्वि सप्रस्थिताः।  
एष ताम्राऽऽफर रूप्याऽऽफर सुवर्णाऽऽफर वज्राऽऽफर । तत खलु त पुरुषा  
घर्षं च स्वानि स्थानि नगराणि तत्रैव उपागच्छन्ति, वज्रविक्षिपणं कुर्वन्ति, सुवर्णं

पुरिसा त पुरिस आहे जो सचायति षड्भि आघवणादि य, पण्यवणादि य, पद  
वणादि य, आघविसण वा पण्यविसण वा परुविसण वा तथा अहाणुपुष्पीए संप-  
त्तिया) तब उन पुरुषों ने जब कि उसे अनेक दृष्टान्तरूप आगम्यापनाओं द्वारा,  
हेयोपादय-प्रतिबोशक प्रस्थापनाओं द्वारा, तथा यथार्थ स्वरूपनिर्णयक प्रस्पृगाओं  
द्वारा समझाया परन्तु वह नहीं समझा, वहाँ से आगे क्रमशः प्रयास करना  
आरम्भ कर दिया (एष तत्रागर, रूप्यागर, सुवर्णागर, वज्रागर) ज्यों २ वे आगे  
चले उन्होंने वैसे २ ताम्र की खान को, रूप्य की खान को सुवर्ण की खान  
को, रत्न की खान को और हीर की खान को दखा (तएव ते पुरिसा जेष्व  
सया जणवया जेष्व साह साह नगराह तेज्व उवागच्छति) वहाँ २ से अल्प  
मूल्य की उन २ ताम्रादिरूप वस्तुओं का परित्याग करत हुए और लोह मार  
ग्रहण करने में ही आदर बुद्धिवाले बने हुए उस पुरुष को उन २ वस्तुओं का  
मरने के विषय में समझाने पर भी उसकी हठावस्था को दुरुवाने में असमर्थ  
बने हुए वे सब पुरुष जहाँ अपने २ जनपद-द्वय थे और उनमें वहाँ २ अपने  
२ नगर थे वहाँ पर वज्रमणियों को लिये हुए आये (वज्रविक्षिपणं करेति) वहाँ

आघ गाहि य पण्यवणाहि य, पद गाहि य आघविसण वा पण्यविसण वा  
परुविसण वा, तथा अहाणुपुष्पीए सपत्तिया) त्वां च पुरीषो जे वहाँ द्वात  
इय आगम्यापनाओ द्वारा हेयोपादय प्रतिबोशक प्रस्थापनाओ द्वारा, तेमच अहाणु  
स्वर्ण निर्वण प्ररूपयितु द्वारा समझाओ पण्य ते मान्यो नहि त्वां की जणवयाओ  
क्रमेण आदय माउठ (एष तत्रागर, रूप्यागर, सुवर्णागर, वज्रागर, वज्रागर)  
क्रमेण तेओ आगम्य वधता जया तेम तेम तेमजे तांजानी जाओने भाषीनी  
जाओने, सुवर्णनी जाओने रत्ननी जाओने अने हीराओनी जाओने जेथ  
(तएव ते पुरिसा जेष्व सया जणवया जेष्व साह साह नगराह तेष्व  
उवागच्छति) त्वां की जणवयाओनी ते ताम्रादि वस्तुओने भूतिने अने वेदकाए  
अद्वय इत्यामां च प्रवृत्त भवेत्ता ते भाष्यने तेओओ मुखवान वस्तुओने बीया मां  
आश्रय करी छताओ तेना दक्षिणादिताने आकाशवागां अते निरुण जया अने आभ  
तेओ जया जया पितृपिताना जणपद-देश छते अने तेमां पण्य जया पितृपिता  
नगर छतु त्वां जणवयाओ वनेइ लक्ष पदोनी जया (वज्रविक्षिपणं करेति)

दासीदासगोमहि-गवेलकं गृह्णन्ति, अष्टतलोच्छ्रितप्रासादावत सकान् कारयन्ति, स्नाताः कृतवलिर्कर्मणः कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः उपरिप्रासादवरगताः स्फुटद्भि-  
मृदङ्गमस्तकैः द्वात्रिंशद्वद्वकैर्नाटकैर्वरतरुणीसं प्रयुक्तैरुपनर्त्यमाना उपगीयमानाः उपलाल्य-  
मानाः इष्टान् शब्द-स्पर्श-रसरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष कान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो

आकरके उन्होंने वज्रमणियों का विक्रय किया. (सुबहुदासीदासगोमहिस-  
गवेलकं गिण्हन्ति) और उसे प्राप्त द्रव्य से अनेक दासी, दास, गो महिष तथा  
गवेलको को खरीदा अर्थात् इनका संग्रह किया (अष्टतलमूसियपासायवडि-  
सगे कारावेति) और आठ खण्डों से सुशोभित ऊँचे २ श्रेष्ठ प्रासादों का  
निर्माण कराया (पहायाकयवलिक्कम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करके वलि-  
कर्म—वायसादिको अन्नादि का भाग देने रूप वलिकर्म करके एवं कौतुक, मंगलरूप  
प्रायश्चित्त करके वे उन (उप्पि पासायवरगया) प्रासादों के ऊपर ही रहते (फुट्टमाणेहिं,  
मुद्दगमत्थएहिं, बत्तीसइवद्वएहिं नाडएहिं, वरतरुणी संपउत्तेहिं) और वहीं रहकर  
वे अतिवेग से ताड़ित किये गये मृदङ्गों के निनादों से तथा सुन्दर २ तरुणियों  
द्वारा अभिनीत किये गये बत्तीस प्रकार के नाटकों से (उवणच्चिज्जमाणा) उप-  
नर्त्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा) उपगीयमान और उपलाल्यमान होते  
हुए (इद्वे सदफरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विह-  
रति) दृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच प्रकार के मनुष्यसंबन्धी काम-  
भोगों को भोगते २ आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे (तएणं से

त्या पडोत्थीने तेमण्णे वज्रमणिओनु वेत्थाण्णं कथुं (सुबहुदासीदासगोमहिस-  
गवेलकं गिण्हन्ति) अने जे द्रव्य भउथुं तेनाथी धण्णा दासी, दास, गो, महिष  
तेमण्ण गवेलकोनी खरीदी करी. अष्टले के अेभने संग्रह कथे. (अष्टतलमूसिय-  
पासायवडिसगे कारावेति) अने आठ भाणाओथी सुशोभित जिया जिया श्रेष्ठ  
प्रासादोनु निर्माण करावूँ (पहाया कयवलिक्कम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता)  
स्नान करीने, वलिकर्म-कागडा वगेरेने अन्न वगेरेने लाग आपीने अने कौतुक मंगल  
इप प्रायश्चित्त करीने तेओ ते (उप्पि पासायवरगया) प्रासादोनी उपर ज  
रहेवा लाओ (फुट्टमाणेहिं, मुद्दगमत्थएहिं, बत्तीसइवद्वएहिं नाडएहिं, वर  
तरुणी संपउत्तेहिं) अने त्याण्ण रहीने तेओ अतिवेगथी प्रताड़ित करेला मृदुगोना  
निनादोथी तेमण्ण सुंदर सुंदर तडण्ण ओओ द्वारा अभिनीत करायेल बत्तीस प्रकारना  
नाटकोथी (उवणच्चिज्जमाणा) उपनर्त्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा)  
उपगीयमान अने उपलाल्यमान थता (इद्वे सद फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे  
माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरति) दृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप,  
गंध आ पाय प्रकारना मनुष्य संबंधी कामभोगोने उपभोग करता आनंदपूर्वक

पुरुष यदा नो वृन्नुवन्ति बहुमि आम्प्यापनाभिश्च प्रप्रापनाभिश्च प्ररुपगामिश्च  
आम्प्यापयितुं वा प्रप्रापयितुं वा प्रम्पयितुं वा तदा यथाऽऽनुपूर्विं सप्रस्थिता ।  
एष ताम्राऽऽकर म्प्याऽऽकर सुवर्णाऽऽकर वस्त्राऽऽकर । ततः रन्तु तं पुरुषा  
यत्रैव स्थानि स्थानि नगराणि तत्रैव उपागच्छन्ति, वस्त्रविक्रयणं कुर्वन्ति, सुवहू

पुरिसा त पुरिस जाइ गो सचायति यहिं आववणाहि य, पणवणाहि य, पर  
वणाहि य, आवविस्सण वा पणवित्ताण वा परुविस्सण वा तथा अहाणुपुब्बीए सप-  
त्थिया) तब उन पुर्यों ने जब कि उस अनक दृष्टान्तरूप आम्प्यापनाओं द्वारा,  
इयेत्यादय-प्रतिबोरक प्रप्रापनाओं द्वारा, तथा ययार्थ स्वरूपनिरूपक प्ररुपणाओं  
द्वारा समझाया परन्तु वह नहीं समझा, वहाँ स आग क्रमशः प्रयाण करना  
प्रारम्भ कर दिया (एष तबागर, रुप्यागर, सुवर्णागर, वस्त्रागर) ज्यों २ व आग  
चले इन्होंने वैसे २ ताम्र की स्नान को, रूप्य की स्नान को सुवर्ण की स्नान  
को, रत्न की स्नान को और हीर की स्नान का दत्ता (तएव त पुरिसा जयव  
सया जणवया जणव साइ साइ नगराइ तेणव उपागच्छति) वहाँ २ से अल्प  
मूल्य की उन २ ताम्रादिरूप वस्तुओं का परित्याग करत हुए और लोह मात्र  
ग्रहण करने में ही आदर बुद्धिबाल बनने हुए उस पुरुष को उन २ वस्तुओं का  
भरने का विषय में समझान पर भी उसकी इबाग्राहिता को छुड़वाने में असमर्थ  
बने हुए वे सब पुरुष जहाँ अपने, २ जनपद-द्वय व और उनमें जहाँ २ अपने  
२ नगर व वहाँ पर वस्त्रमणियों को लिये हुए आय (वस्त्रविक्रयणं करोति) वहाँ

आव नाहि य पणवणाहि य, परु नाहि य आवविस्सण वा पणवित्ताण वा  
परुविस्सण वा, त । अहाणुपुब्बीए सपत्थिया) तथा पक्षी ते पुश्चोत्ते वस्त्रां द्वाव  
इय आम्प्यापनाभ्यो द्वारा हेयोपादेय प्रतिगोभक्त प्रप्रापनाभ्यो द्वारा, तेभ्य वयार्थ  
स्वरूप निरूपक प्रप्रापयितुं द्वारा समझान्यो, यस्तु ते मान्यो नहि त्वांभी जणवोत्ते  
क्रमशः आवया भाव्य (एष तबागर, रुप्यागर, सुवर्णागर, वस्त्रागर, वस्त्रागर)  
जेम जेम तेजो जाजण वधता जया तेम तेम तेमहे तांथानी जाछेने, आरीनी  
जाछेने, सुवहूनी जाछेने, रत्ननी जाछेने जने हीरजोनी जाछेने जेम-  
(तएव त पुरिसा जेणेव सया जणवया जणव साइ साइ नगराइ तेणव  
उपागच्छति) त्वांभी जणवभुत्थनी ते ताम्रादि वस्तुजोने भुज्जिने जने छेदव्यार  
प्रदणु करवाभां व प्रवृत्त यथेष्टा ते भाव्यजने तेजोत्ते भुत्थनान वस्तुजोने सेवा भां  
आज्जुं कर्यो छताजो तेना वस्त्राद्विताने प्रववयाभां जते निहण मया जने जयम  
तेजो जया जयां पोतपोतानो जनपद देश वतो जने तेमां यस्तु जया पोतपोतान  
नगर वतु त्वा पणवज्जो वजेइ छत्त पक्षोत्ती जया (वस्त्रविक्रयणं करोति)

दासीदासगोमहि-गवेलकं गृह्णन्ति, अष्टतलोच्छ्रितप्रासादावत सकान् कारयन्ति, स्नाताः कृतबलिकर्मणः कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः उपरिप्रासादवरगताः स्फुटदम्भि-मृदङ्गमस्तकैः द्वात्रिंशद्वक्त्रैर्नाटिकैर्वरतरुणीसं प्रयुक्तैरुपनर्त्यमाना उपगीयमानाः उपलाल्य-मानाः इष्टान् शब्द-स्पर्श-रसरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष कान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्ती

आकरके उन्होंने वज्रमणियों का विक्रय किया. (सुबहुदासीदासगोमहिस-गवेलगं गिण्हन्ति) और उसे प्राप्त द्रव्य से अनेक दासी, दास, गो महिप तथा गवेलको को खरीदा अर्थात् इनका संग्रह किया (अष्टतलमूसियपासायवडि-सगे कारावेति) और आठ खण्डों से सुशोभित ऊचे २ श्रेष्ठ प्रासादों का निर्माण कराया (प्रायाकयवलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करके बलि-कर्म—वायसादिको अन्नादि का भाग देने रूप बलिकर्म करके एवं कौतुक, मंगलरूप प्रायश्चित्त करके वे उन (उर्पि पासायवरगया) प्रासादों के ऊपर ही रहते (फुटमाणेहिं, मुङ्गमत्थएहिं, बत्तीसइवद्वएहिं नाडएहिं, वरतरुणी संपउत्तेहिं) और वहीं रहकर वे अतिवेग से ताडित किये गये मृदङ्गा के निनादों से तथा सुन्दर २ तरुणियों द्वारा अभिनीत किये गये बत्तीस प्रकार के नाटकों से (उवणच्चिज्जमाणा) उप-नर्त्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा) उपगीयमान और उपलाल्यमान होते हुए (इष्टे सदफरिस-रसरूवगंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विह-रति) इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच प्रकार के मनुष्यसंबन्धी काम-भोगों को भोगते २ आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे (तएणं से

त्या पडोथीने तेमणे वणभणुओतुं वेथाणु इथुं (सुबहुदासीदासगोमहिस-गवेलगं गिण्हन्ति) अने जे द्रव्य भणुं तेनाथी धणु दासी, दास, गो, महिप तेमण गवेलकोनी खरीदी करी. ओटवे के अभने संग्रह कर्यो. (अष्टतलमूसिय-पासायवडिसगे कारावेति) अने आठ भाणाओथी सुशोभित ओथा ओथा श्रेष्ठ प्रासादोतु निर्माण कराव्युं (प्राया कयवलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करीने, बलिकर्म-कागडा वगेरेने अन्न वगेरेना भाग आपीने अने कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित्त करीने तेओ ते (उर्पि पासायवरगया) प्रासादोनी ऊपर ज रहवा लाय्या (फुटमाणेहिं, मुङ्गमत्थएहिं, बत्तीसइवद्वएहिं नाडएहिं, वर तरुणी संपउत्तेहिं) अने त्याज रहीने तेओ अतिवेगथी प्रताडित करेला मृद गोनो निनादोथी तेमण सुंदर सुंदर तणु स्त्रीओ द्वारा अभिनीत करायेला बत्तीस प्रकारना नाटकोथी (उवणच्चिज्जमाणा) उपनृत्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा) उपगीयमान अने उपलाल्यमान थता (इष्टे सद फरिस-रसरूव गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरति) छष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध आ पांच प्रकारना मनुष्य संबन्धी कामभोगोना उपभोग करता आनंदपूर्वक

पुरुष यदा नो शक्नुवन्ति बहुभि आरूपापनाभिष प्रस्थापनाभिष प्ररूपाभिष  
आरूपापयितु या प्रस्थापयितु वा प्ररूपयितु वा तदा यथाऽऽनुपूर्वि सप्रस्थिताः॥  
एष ताम्राऽऽकर रूप्याऽऽकर सुवर्णाऽऽकर वज्राऽऽकर । ततः स्तु त पुराः  
यत्रैव म्वानि म्वानि नगराणि सयत्र उपागच्छन्ति, वज्रविप्रपणं कुर्वन्ति, सुनः

पुरिस्ता त पुरित आहे णो मचायति बहहि आधवणाहि य, पणवणाहि य, पर  
वणाहि य, आधविस्तण वा पणविस्तण वा परुविस्तण वा सया अहाणुपुष्ठीए सप-  
त्थिया) तत्र उन पुरुषों ने जब कि उसे अनेक दृष्टान्तरूप आरूपापनाओं द्वारा,  
हेयोपादय-प्रतिबो रक प्रस्थापनाओं द्वारा, तथा यथार्थ स्वरूपनिरूपक प्ररूपनाओं  
द्वारा समझाया परन्तु वह नहीं समझा, वहाँ से आग क्रमशः प्रयाप्त करना  
आरम्भ कर दिया (एष तत्रागर, रूप्यागर, सुवर्णागर, वज्रागर) ज्यों २ वे आग  
पत्ते इन्होंने वैसे २ ताम्र की स्नान को, रूप्य की स्नान को सुवर्ण की स्नान  
को, रत्न की स्नान को और हीर की स्नान को दत्ता (तएव ते पुरिस्ता जेष्व  
सया जणवया जणव साइ साइ नगराइ तेणेष उवागच्छति) वहाँ २ स अत्य  
सूक्ष्म की उन २ ताम्रादिरूप वस्तुओं का परित्याग करत हुए और लोह भास्-  
प्रद्वेष करने में ही आदर बुद्धिवाले बने हुए उस पुरुष को उन २ वस्तुओं का  
मरन का विषय में समझाने पर भी उसकी इरादाहिता को छुड़वान में असमर्थ  
बने हुए व सप्त पुरुष वहाँ अपने २ जनपद-द्वय थे और उनमें जहाँ २ अपने  
२ नगर थे वहाँ पर यज्ञमणियों को लिये हुए आये (वज्रविप्रिण करंति) वहाँ

आध वाहि य पणवणाहि य, पर वाहि य आधविस्तण वा पणविस्तण वा  
परुविस्तण वा, तथा अहाणुपुष्ठीए सपत्थिया) तत्र ५३१ ते पुरुषोक्ते वक्ष्यं दृष्टांत  
इष आरूपापनाभ्यो दाश हेयोपादेय प्रतिबो रक प्रस्थापनाभ्यो दाश, तेभ्य वज्राकर्  
स्वरूप निरूपक प्ररूपण्यो दाश समव्यव्यो, पञ्च ते भान्यो नदि त्वांथी लधाभ्यो  
भमया आहवा माउड (एष तत्रागर, रूप्यागर, सुवर्णागर, वज्रागर, वज्रागर)  
नेम नेम तेभ्यो आजण वधता गथा तेम तेम तेमहे तांभानी आहोने आदीनी  
आहोने सुवर्णनी आहोने रत्ननी आहोने जाने हीराभ्योनी आहोने जेधं  
(तत्र य ते पुरिस्ता जेष्व सया जणवया जेष्व साइ साइ नगराइ तेणेष  
उवागच्छति) त्वांथी लधपमृक्षनी ते ताम्र दि वस्तुभ्योने भूमिने जाने वेधभार  
अहव्य इस्वाभां न प्रवृत्त वधेता ते भाव्यने तेभ्यो मूखयान वस्तुभ्योने देवा भा  
आभक्त इधो छटांते तेन्य वज्रप्रद्विताने अहवयवार्थ न ते नि ह्य वध जाने आभ  
तेभ्यो लधा न्यां पेतपेतापोने जनपद द्वेय कृतो जाने तेभ्य पञ्च न्यां पेतपेतापो  
नगर कृत त्वां पणमण्यो बगेरे वधं पदेथी गथा (वज्रविप्रिण करंति)

दासीदासगोमहि-गवेलकं गृह्णन्ति, अष्टतलोच्छ्रितप्रासादावतंसकान् कारयन्ति, स्नाताः कृतवलिकर्माणः कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः उपरिप्रासादवरगताः स्फुटद्भिर्मृदङ्गमस्तकैः द्वात्रिंशद्द्वकैर्नाटकैर्वरतरुणीसंप्रयुक्तरूपनर्त्यमाना उपगीयमानाः उपलाल्यमानाः इष्टान् शब्द-स्पर्श-रसरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष कान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो

आकरके उन्होंने वज्रमणियो का विक्रय किया. (सुबहुदासीदासगोमहिस-गवेलगं गिण्हन्ति) और उसे प्राप्त द्रव्य से अनेक दासी, दास, गो महिष तथा गवेलको को खरीदा अर्थात् इनका संग्रह किया (अष्टतलमूसियपासायवर्डिसगे कारावेति) और आठ खण्डों से सुशोभित ऊचे २ श्रेष्ठ प्रासादों का निर्माण कराया (प्रायाकयवलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करके बलि-कर्म-वायसादिको अन्नादि का भाग देने रूप बलिकर्म करके एवं कौतुक, मंगलरूप प्रायश्चित्त करके वे उन (उपि पासायवरगया) प्रासादों के ऊपर ही रहते (फुट्टमाणेहि, मुङ्गमत्यएहि, बत्तीसइवद्वएहि नाडएहि, वरतरुणी संपउत्तेहि) और वहीं रहकर वे अतिवेग से ताड़ित किये गये मृदङ्गा के निनादों से तथा सुन्दर २ तरुणियों द्वारा अभिनीत किये गये बत्तीस प्रकार के नाटकों से (उवणच्चिज्जमाणा) उपनर्त्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा) उपगीयमान और उपलाल्यमान होते हुए (इदं सदफरिस-रसरूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरति) इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच प्रकार के मनुष्यसंबन्धी काम-भोगों को भोगते २ आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे (तएणं से

त्या पडोअग्निं तेमण्णं वज्रमणियो वैयाण्णं कथं (सुबहुदासीदासगोमहिस-गवेलगं गिण्हन्ति) अने जे द्रव्य भण्णुं तेनाथी धण्णुं दासी, दास, गो, महिष तेमण्णं गवेलकोनी खरीदी करी. अष्टवे के अभने संअड् कथी. (अष्टतलमूसिय-पासायवर्डिसगे कारावेति) अने आठ भाणाओथी सुशोभित ओआ ओआ श्रेष्ठ प्रासादोनु निर्माण करोअण्णं (प्राया कयवलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करीने, बलिकर्म-कागडा वगेरेने अन्न वगेरेने भाग आपीने अने कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित्त करीने तेओ ते (उपि पासायवरगया) प्रासादोनी उपर ज रहैवा लाओ (फुट्टमाणेहि, मुङ्गमत्यएहि, बत्तीसइवद्वएहि नाडएहि, वर तरुणी संपउत्तेहि) अने त्याज रहीने तेओ अतिवेगथी प्रताड़ित करैवा मृद गेना निनादोथी तेमण्णं सुहर सुहर तण्णुं ओओ द्वारा अभिनीत करैव पत्तीस प्रकारना नाटकोथी (उवणच्चिज्जमाणा) उपनर्त्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा) उपगीयमान अने उपलाल्यमान थता (इदं सद फरिस-रसरूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरति) इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध आ पांच प्रकारना मनुष्य संबन्धी कामभोगोना उपभोग करैवा अने आनन्दपूर्वक



पुरुष यदा नो वस्तुवन्ति पशुमि आख्यापनामिष प्रज्ञापनामिष प्रसूयामिष  
आख्यापयितु वा प्रज्ञापयितु वा प्रसूययितु वा तदा यथाऽऽनुपूर्विं सप्रस्थिताः।  
एव ताम्राऽऽकर रूपाऽऽकर सुवर्णाऽऽकर वज्राऽऽकर । ततः स्तु ते पुरुषा  
यत्रैव स्थानि स्वानि नगराणि तत्रैव उपागच्छन्ति, वज्रविक्रमणं कुर्वन्ति, सुषु

पुरिसा तं पुरिसं बाहे नो संघायति बह्विं आवयणाहि य, पण्यवणाहि य, परु  
वणाहि य, आघविस्वण वा पण्यविस्वण वा परुविस्वण वा तथा अद्यापुपुष्पीण सप-  
त्विष्या) तत्र उन पुरुषों ने जब कि उसे अनेक दृष्टान्तरूप आख्यापनाओं द्वारा,  
हेयोत्पादेय—प्रसिद्धीयक प्रज्ञापनाओं द्वारा, तथा यथार्थ स्वरूपनिरूपक प्रसूयमाओं  
द्वारा समझाया परन्तु वह नहीं समझा, वहां से आगे कमल प्रयाण करना  
आरंभ कर दिया (एव तवागर, रुपागर, सुवर्णागर, वज्रागर) ज्यों २ वे आगे  
चले उन्होंने वैसे २ ताम्र की स्नान को, रूप्य की स्नान को सुवर्ण की स्नान  
को, रत्न की स्नान को और हीर की स्नान को देखा (तएव ते पुरिसा जेष्व  
सया जष्वया जेष्व साइ साइ नगराइ तेष्व उपागच्छन्ति) वहां २ स अन्य  
मूल्य की उन २ ताम्रादिरूप वस्तुओं का परित्याग करत हुए और छोड़ मार  
ग्रहण करने में ही आदर बुद्धिवाले बने हुए उस पुरुष को उन २ वस्तुओं के  
भरने के विषय में समझाने पर भी उसकी इरादाहिता को छुड़वाने में असमर्थ  
बने हुए वे सब पुरुष वहां अपने, २ जनपद-वृक्ष वे और उनमें वहां २ अपने  
२ नगर व वहां पर वज्रमणियों को लिये हुए आये (वज्रविक्रमणं करन्ति) वहा

आघ नाहि य पण्यवणाहि य, परु नाहि य आघविस्वण वा पण्यविस्वण वा  
परुविस्वण वा, तथा अद्यापुपुष्पीण सपत्विष्या) तत्र २ पथी ते पुरुषो वे यथा द्वांत  
इय आख्यापनामो द्वारा हेयोत्पादेय प्रतिष्ठापक प्रज्ञापनामो द्वारा तेभ्य वयाव  
स्वरूप निरूपक प्रसूयमाओ द्वारा समझाने पशु ते भान्यो नहि त्वांथी नपाओओ  
कमल व्यावसायिक (एव तवागर, रुपागर, सुवर्णागर, वज्रागर, वज्रागर)  
नेम नेम तेओ आभण वधता गया तेम तेम तेमओ ताभानी आओने आदीनी  
आओने, सुवर्णनी आओने स्तनी आओने अने हीराओनी आओने ओं  
(तएव ते पुरिसा जेष्व सया जष्वया जेष्व साइ साइ नगराइ तेष्व  
उपागच्छन्ति) त्वांथी नपापमृगनी ते ताम्रादि वस्तुओने भूजने अने वेदस्थार  
भक्त्यु कर्त्तव्यतां व प्रवृत्त धर्मता ते भाव्यने तेओओ भूवधवान वस्तुओने सेवा भा  
आभक्त कर्त्तव्यतां तेना वज्रमणिताने आभवाभार्त्त अने निष्ठा नवा अने अम  
तेओ नपा न्मां पातयेताने अनपद देश कृतो अने तेमां पशु वन्मां पातयेतान  
नगर कृतु त्वां वज्रमण्यो वज्रे वधं पदोंथी गया (वज्रविक्रमणं करन्ति)

दासीदासगोमहि-गवेलकं गृह्णन्ति, अष्टतलोच्छ्रितप्रासादावतंसकान् कारयन्ति, स्नाताः कृतवलिर्कर्मणः कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः उपरिप्रासादवरगताः स्फुटद्भिर्मृदङ्गमस्तकैः द्वात्रिंशद्वद्वकैर्नाटिकैर्वस्तरुणीसं प्रयुक्तरूपनर्त्यमाना उपगीयमानाः उपलाल्यमानाः इष्टान् शब्द-स्पर्श-रसरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुषान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो

आकरके उन्होंने वज्रमणियों का विक्रय किया. (सुबहुदासीदासगोमहिस-गवेलगं गिण्ठति) और उसे प्राप्त द्रव्य से अनेक दासी, दास, गो महिष तथा गवेलको को खरीदा अर्थात् इनका संग्रह किया (अष्टतलमूसियपासायवर्डिसगे कारावेति) और आठ खण्डों से सुगोमित ऊँचे २ श्रेष्ठ प्रासादों का निर्माण कराया (प्रायाकयवलिक्कम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करके वलिकर्म—वायसादिको अन्नादि का भाग देने रूप वलिकर्म करके एवं कौतुक, मंगलरूप प्रायश्चित्त करके वे उन (उर्षि पासायवरगया) प्रासादों के ऊपर ही रहते (फुट्टमाणेहि, मुङ्गमत्थएहि, बत्तीसइवद्वएहि नाडएहि, वस्तरुणी संपउत्तेहि) और वहीं रहकर वे अतिवेग से ताड़ित किये गये मृदङ्गा के निनादों से तथा सुन्दर २ तरुणियों द्वारा अभिनीत किये गये बत्तीस प्रकार के नाटकों से (उवणच्चिज्जमाणा) उपनर्त्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा) उपगीयमान और उपलाल्यमान होते हुए (इद्वे सदफरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरति) इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच प्रकार के मनुष्यसंबन्धी कामभोगों को भोगते २ आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे (तएणं से

त्या पडोय्थिने तेमण्णे वज्जमणिओनु वेयाणु क्खुं (सुबहुदासीदासगोमहिस-गवेलगं गिण्ठति) अने जे द्रव्य भण्युं तेनाथी धण्ण दासी, दास, गो, महिष तेमण्ण गवेलकोनी भरीही करी. अष्टले के अभने सङ्ग्रह कर्यो. (अष्टतलमूसिय-पासायवर्डिसगे कारावेति) अने आठ भाणाओथी सुशोभित जिया जिया श्रेष्ठ प्रासादोनु निर्माण कराव्युं. (प्राया कयवलिक्कम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करीने, वलिकर्म-कागडा वगेरेने अन्न वगेरेने लाग आपीने अने कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित्त करीने तेओ ते (उर्षि पासायवरगया) प्रासादोनी उपर ज रहेवा लाओ (फुट्टमाणेहि, मुङ्गमत्थएहि, बत्तीसइवद्वएहि नाडएहि, वस्तरुणी संपउत्तेहि) अने त्याज रहीने तेओ अतिवेगथी प्रताड़ित करेवा मृद गेना निनादोथी तेमण्ण सुन्दर सुन्दर तण्ण स्त्रीओ द्वारा अभिनीत करायेल भत्तीस प्रकारना नाटकोथी (उवणच्चिज्जमाणा) उपनृत्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा) उपगीयमान अने उपलाल्यमान थता (इद्वे सद फरिस-रस-रूव गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरति) छष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध आ पाय प्रकारना मनुष्य सभन्धी कामभोगोना विषभोग भवता आनन्दपूर्वक

विहरन्ति । ततः स्वतः स पुरुषः अयोमारणं पत्रैश्च स्वं नगरं तत्रैव उवागच्छन्ति,  
अयोमारकं गृहीत्वा योर्विक्रयणं करोति, तस्मिन् अन्यमूख्यनिष्ठिनं धीमं  
परिच्ययः तान् पुरुषान् उपरि प्रासादवरगस्थान् यावद् विहरतः पश्यति, इत्यादि

पुरिसे अयमारेण जेषेव सए नयरे तेणैव उवागच्छइ) अब वह पहिला पुत्र्य कि जिसने दित वचनों की अबहेसना की और लोह के भार को ही अच्छा समझा उस लोहमार के साथ ही अपने नगर में आया (अयमारगं गहाय अय-विद्विषण करइ) वहां आकारके उसने उस लोहे के भार को लेकर बेचना प्रारंभ किया (तसि अयमोहसि निठियसि, हीणपरिव्वए ते पुरिसे उप्पि पासाय वरगए जाव विहरमाणे पासइ) जब वह पूरा बिक चुका—तो उससे जो उसे द्रव्य प्राप्त हुआ, वह बहुत थोड़ा सा प्राप्त हुआ—क्यों कि वह लोह उसके अल्पमूल्य में बिका अतः उससे प्राप्त द्रव्य आहार वस्त्र आदि क लाने में ही समाप्त हो गया इस तरह क्षीणपरिव्वयवाले बने हुए उस पुत्र्य ने उन बज्र-विक्रयी पुर्यों को जो कि अपने २ रम्य पासादां में रहकर याक्त्—अतिवेग से तादित (बधात) हुए सुदङ्गों के निनादां से एव ३२ प्रकार के सुन्दर २ तरुण युवतियों द्वारा अमिनीत किये गये नाटके से उपनर्त्यमान य और उपलाव्यमान थे—एवं इष्ट छन्द-स्पष्ट रस, रूप, गद्य, इत्यादिप्रकार के मनुष्य-मव सर्वेची काममोगों को भोगत हुए आनन्द के साथ अपना समय व्यतीत

પોતાનો સમય પસાર કરના લાગ્યા (તેમ જ સે પુરિસ અયમારેણ એવજ સર્ગ  
નયર તેણેવ ઠા ગામજી) જે તે પેલો લોખળા કારવાળા મારુક કે જેણે બીજા  
લોકોના ક્રિત વચનો સાંભળ્યા નહિ અને લોખળા કારને ઉત્તમ માન્યો હતો—  
નમરમા આપ્યો. (અવમાનગ ગદાય અયવિકિર્ણ કરે) ત્યાં આવીને તેણે તે  
લોખળા કારને લઈને વેચાણ પ્રારંભ કર્યું (તેંસિ અપમોલ્લસિ નિદિયંસિ  
હીણપરિવર્ણ તે પુરિસે કાપ્પિ પાસાવરગાઝ આર વિદરમાય પાસજી)  
આરે તે લોખળા કાર વેચાઈ ગયો ત્યારે તેનાથી જે દુબ્બ મળ્યું હતું તે અત્યંત  
હવે કેમકે તે લોખળા કારથી મૂલ્યમાં જ વેચાણ હતું તેનાથી જે અલ્પમન  
પ્રાપ્ત થયું હતું તે તો આદ્યાર વસ્ત્ર વગેરેની ખરીદીમાં જ પર થઈ ગયું હતું  
આ પ્રમાણે તે હીણ પત્તાપવાળા તે પુરુષા તે વજ્ર વિક્રમો પુરુષાને કે જેણે પોતા  
પોતાના રમ્ય પ્રાસારોમાં રહીને આવતી જાતિવેશથી પ્રતાકિત થયેલા મુદ્દે બેળા ત્યાગી  
અને ડર પ્રકરના સુદર સુદર વસ્ત્રો શીઝો દ્વારા અભિનીત કરાવેલા નાટકોથી ઉપ-  
મર્ત્યમાન હતા, ઉપમિતમાન હતા અને ઉપલાલ્ભમાન હતા અને છૂટ શબ્દ, રપ્ત  
રપ્ત થયા. બીજા, આ પાંચ જાતના મનુષ્ય કાલ સુખથી કામ લોભિની ઉપસોગ કરતા  
જ્ઞાનદ્રવ્ય પોતાનો સમય પસાર કરી રહ્યા હતા એવા (પાસિવા પર વપાસી

एवमवादीत्-अहो !! खलु अहम् अधन्यः अपुण्यः अकृतार्थः अकृतलक्षणः हीन-  
वर्जितः हीनपुण्यचातुर्दशो दुर्न्तप्रान्तलक्षणः । यदि खलु अह मित्राणां वा ज्ञातीनां  
वा निजकानां वा वचनम् अश्रोष्यं तदा खलु अहमपि एवमेव उपरि प्रासादवर-  
गतः यावद् व्यहरिष्यम् । तत् तेनार्थेन प्रदेशिन् ! एवमुच्यते-मा त्वं ! प्रदेशिन् !  
पश्चादनुतापितो भवेः, यथा वा स पुरुषोऽयोहारक । ॥ सू० १५४ ॥

कर रहे थे देखा(पासित्ता एवं वयासी-अहोणं अहं अधन्नो, अपुन्नो, अकयत्था,  
अकयलक्खणो हिरिसिरिवज्जिओ हीणपुण्णचाउदसे दुरंतपंतलक्खणे) तो देखकर  
इस प्रकार विचार किया-अरे ! मैं कितना अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं, अकृतार्थ  
हूं, शुभलक्षण रहित हूं, लज्जा लक्ष्मी दोनों से वर्जित हूं, हीनपुण्यचातुर्दश हूं  
अर्थात् हीनपुण्यवाला हूँ सी लिये कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में जन्मा हूँ, दुर्न्त  
प्रान्तलक्षणवालाहूँ-दुष्टावसानवाले अमनोज्ञ लक्षणों से युक्त हूँ (जइ णं अहं भित्ताण  
वा णाईण वा णियगाण वा वयणं सुणेत्तओ तो णं अहं पि एवं चेव उप्पि  
पासायवरगए जाव विहरेत्तओ) यदि मैं साथ गये हुए मित्रों के, अथवा पितृ-  
व्यादि ज्ञातिजनों के वा अपने हितैषियों के वचनों को मान लेता, तो मैं भी  
इन्हीं साथ के आये हुए वज्रविक्रेता पुरुषों की तरह ही प्रासादों में रहता  
हुआ विविध सुख सम्पन्न बनकर अपने समय को आनन्दपूर्वक व्यतीत करता  
(से तेणट्ठेणं पएसी ! एवं वुच्चइ, मा तुमं पएसी ! पच्छाणुताविए भविज्जासि,  
जहा वं से पुरिसे अयभारए) इसी कारण हे प्रदेशिन् ! मैंने ऐसा कहा है कि  
अहो णं अहं अधन्नो, अपुन्नो अकयत्था, अकयलक्खणो हिरिसिरिव-  
ज्जिओ हीणपुण्णचाउदसे दुरंतपंतलक्खणे) तेमने नेधने आ प्रभाणे विचार  
क्यों के अरे ! हे देखा आलागियो हूं अधन्य छु, पुण्यहीन छु, अकृतार्थ  
छु शुभलक्षण रहित छु, लज्जा लक्ष्मी अन्नेथी वर्जित छु हीनपुण्यचातुर्दश  
छु, अटल के हीन पुण्यवाणो छु अथी न कृष्ण पक्षनी चतुर्दशीना द्विसे-जन्म  
पाये छु, दुरंत प्रान्त लक्षणवाणो छु, दुष्टावसाववाणा अमनोज्ञ लक्षाणोथी युक्त छु  
(जइण अह भित्ताण वा णाईण वा णियगाण वा वयणं सुणेत्तओ तो णं अहं  
पि एवं चेव उप्पि पासायवरगए जाव विहरेत्तओ) ने हूँ साथवाणा मित्रेना  
के पितृव्यादि ज्ञातिजनाना के पोताना हितैष्योनाना वचनो मानी लेता तो हूँ  
हूँ पण भारी साथे आवेल वज्रविक्रेता पुरुषोनी जेम न प्रासादोमा रहिने विविध  
सुख संपन्न णनीने पोताना समयने आनंद पूर्वक पसार करत (से सेणट्ठेणं  
पएसी ! एवं वुच्चइ, मा तुमं पएसी ! पच्छाणुताविए भविज्जासि, जहाव से  
पुरिसे अयमाने)

विहरन्ति । तत स्कन्धे स पुरुष अयोमारेण यत्रैव स्व नगरं तत्रैव उवागच्छन्ति,  
अयोमागच्छ गृहीत्वा योचिक्कयण करोति, तस्मिन् अल्पमृत्युनिष्ठित क्षीम  
परिष्वय तान् पुरुषान् उपरि प्रासादवरागताम् यावत् विहरत पश्यति, तद्वा

पुरिसे अयोमारेण जेषेव स ए नयनं तेषेव उवागच्छति) अब वह पहिला पुरुष  
कि जिसने हित वचनों की अवहेलना की और लोहक मार को ही अच्छा  
समझा उस लोहमार के साथ ही अपने नगर में आया (अयोमारगं गहाय अय-  
विक्किण कर) वहाँ आकारक उसने उस लोहे के मार को लेकर बचना प्रारंभ  
किया (तसि अयमोच्छसि निद्वियसि, हीणपरिष्वय ते पुरिसे उप्पि पासाय  
वरगए जाव विहरमाणे पासइ) जब वह पूरा बिक चुका—ता उससे जो उसे  
द्रव्य प्राप्त हुआ, वह बहुत थोड़ा सा प्राप्त हुआ—क्यों कि वह लोह टसका  
अल्पमृत्यु में बिका अतः उससे प्राप्त द्रव्य आहार वस्त्र आदि के लाने में ही  
समाप्त हो गया इस तरह क्षीमपरिष्वयवाले बने हुए उस पुरुष ने उन वज्र-  
विक्की पुरुषों को जो कि अपने २ रम्य प्रासादों में रहकर यावत्—अतिवेग  
से ताड़ित (बजाते) हुए मुदङ्ग के निनादों से एव ३२ प्रकार के सुन्दर २  
तरुण युवतियों द्वारा अभिनीत किये गये नाटकों से उपनर्त्यमान वे और  
उपलब्धमान वे—एव इष्ट छन्द-स्पष्ट रस, रूप, गंध, इत्यादिप्रकार के मनुष्य  
सब सर्वाधी काममोगों को मोगत हुए आनन्द के साथ अपना समय व्यतीत

पेटानो समथ पसार इवां लोन्ना (तए व स पुरिसे अयोमारेण जेषेव स ए  
नयने तेषेव उवागच्छ) वे ते पेटो लोण्डना कारवाणे मवुध के केहे श्रीव  
लोण्डना हित वचने सांशान्ता नदि जाने लोण्डना कारने उत्तम भाव्यो हतो—  
नगरमा अये (अयोमारग गहाय अयविक्किण करे) त्वां आवीने तेहे ते  
लोण्डना कारने लधने वेवाधु प्रारंभ इत्थं तसि अयमोच्छसि निद्वियसि  
हीणपरिष्वय ते पुरिसे उप्पि पासावरगए जाव विहरमाणे पासइ)  
कारने ते लोण्डना कार वेवाधु अये त्वाते तेनाथो के द्रव्य भव्य इत्थं १ अल्पमृत्यु  
इत्थं केमके ते लोण्डना अल्प मृत्युमा अ वेवाधु इत्थं तेनाथो के अल्पमृत्यु  
प्राप्त वधु इत्थं ते तो आहार वस्त्र वज्रेनी जरीदीमां अ पुर वधु अत्थं  
आ प्रभावे ते क्षीम पतितापवाणा ते पुत्रा ते वज्र निक्षेपी पुत्रोने के केहे पोट-  
पेटाना २२२ प्रासादोंमां रक्षीने यावत् अतिवेगधी प्रताडित वपेव मुदङ्गाना निनादोधी  
जने ३२ प्रकारना सुन्दर सुन्दर तपस्वी श्रीमां द्वारा अभिनीत इत्येव नाटकोधी उप-  
नर्त्यमान इत्थं, उपजीवमान इत्थं जने उपलब्धमान इत्थं जने छन्द, स्पष्ट रस  
रस, रूप, गंध, आ गंध आदना मनुष्य सब सर्वाधी काम मोहोनी उपलब्ध इत्थं  
आनन्दपूर्वक पेटानो समथ पसार इवी रक्ष्य इत्थं जेया. (पासिण एव वपासी

महती-विशालाम् अग्रामिकाम्-वसतिगहितां, छिन्नाऽऽपाता-छिन्न-हिंसकजन्तु-  
भयेनोपहत आपात-मनुष्याणां गमनागमनं यत्र ताम् दीर्घाध्वा-दीर्घमार्गाम्, अट-  
वी, अनुप्रविष्टाः । ततः खलु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकायाः यावत् छिन्ना-  
ऽऽपातायाः दीर्घाध्वाया अटव्याः कंचिद्देशम्-अटवीविभागम्, अनुप्राप्ताः सन्तः  
तत्र एकम् अयआकरं-लोहखनिम्, पश्यन्ति-दृष्टवन्तः, तमाकरम् अयसा-लोहेन  
सर्वत्र-सर्वदिक्षु, समन्ता-सर्वविदिक्षु आकीर्णं-व्याप्तं, विस्तीर्ण-विस्तारप्राप्तम्, सच्छटं-  
सती-समीचीना छटा-चाक्रचिचयं यत्र तम्, उपच्छटं-छटायुक्तम्, स्फुटं-प्रकटम्,  
अनुगाढं-पुञ्जरूपं पश्यति-दृष्टवन्तः, दृष्ट्वा हृष्टतुष्ट यावत्-यावत्पदेन “चित्तान-  
न्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्” इत्यां सङ्गो बोध्यः, हर्षवशविस-  
र्पद्” इत्यस्य “हृदया” इत्यनेन योगाद् “हर्षवशविसर्पद्दयाः” इति, एत-  
द्व्याख्या प्राग्वत्, एतादृशाः सन्तः अन्योन्यं-परस्परं, शब्दयन्ति-आवृन्ति,  
शब्दयित्वा एवमत्रादिपुः-उक्तवन्तः—हे देवानुप्रियाः ! अपः-अयं खलु अयआकरः-  
लोहाऽऽकरः इष्टः कान्तः यावत् यावत्पदेन-“प्रियः, मनोज्ञः मनआम” इति  
पदानां संग्रहः, तत्र इष्टः-मनोस्थपूरकः, कान्तः सहायकारित्वाद्भिलाषीयः, प्रियः-  
उपकारिकत्वेन प्रेमोत्पादकः, मनोज्ञः-हितकारित्वान्मनोहरः. मनआमः-आर्तिहर-  
त्वान्मनोगम्यः, अस्ति तत्र-तस्मात् कारणात् हे देवानुप्रियाः । अस्माकम् अयो-  
भारं-लोहभारं वञ्चं ग्रहीतुं श्रेयः-प्रशस्तम् इतिकृत्वा-इति निश्चित्य अन्योन्यस्य-  
परस्परस्य एतम्-अयोभारग्रहणरूपम् अर्थम्-प्रतिभृण्वन्ति-कर्तव्यतया स्वीकुर्वन्ति  
प्रतिश्रुत्य अयोभारं-लोहभारं वधन्ति, वद्ध्वा यथानुपूर्वि-यथाक्रमं संग्रस्थिताः-अग्रे  
गन्तु प्रवृत्ताः । ततः खलु ते पुरुषाः अग्रामिकायाः यावत्-“छिन्नाऽऽपातायाः  
दीर्घाध्वायाः अटव्याः किञ्चिद्देशं-किञ्चिद्देशम् अनुप्राप्ताः सन्तः एकं महान्तं  
त्रिआकरं-त्रिपु-धातुविशेषस्तम्-ऽऽकरं, पश्यन्ति-दृष्टवन्तः तम् त्रिपुकेण सर्वतः  
समन्ताद् आकीर्णं तदेव-पूर्वोक्तमेव “विस्तीर्णं, सच्छटम्, उपच्छटं स्फुटं गाढं  
पश्यन्ति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टाः. चित्तानन्दिताः. परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः

हैं। ‘अगामियाए जाव’ में जाये हुए इस यावत्पद से “छिन्नापातायाः दीर्घाध्वायाः” इन पदों का संग्रह हुआ है. “त चेव” इस पाठ से “विस्तीर्णः सच्छटम् उपच्छटं स्फुटं गाढं पश्यन्तिः दृष्ट्वाहृष्टतुष्टाः, चित्तानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः अन्योन्यं शब्दयन्ति” इस पाठ का यहाँ ग्रहण

गम्य भवेत् थाय छे. ‘अगामियाए, जाव’ भा आवेल आ यावत् पद्धी छिन्ना-  
पातायाः, दीर्घाध्वायाः, आ पढोनो सअछ थये छे ‘तंचेव’ आ पाठथी ‘विस्तीर्णं  
सच्छटम्, उपच्छटम्, स्फुटं, गाढं पश्यन्ति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टाः, चित्तानन्दिताः,  
परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः अन्योन्यं शब्दयन्ति” आ पाठ अछथु

नीका—“तए ण कस्सिकुमारममणे” इत्यादि—सत ग्गु कस्सिकुमार भमणः प्रदक्षिणं पञ्चमवार्दत्—हे प्रदक्षिण ! त्व खलु पञ्चादनुतापिक—पञ्चाता-पयुक्तो मा भवः, यथा—येन प्रकारेण स—वक्ष्यमाणः अयोहारक—लोहवपिक पञ्चादनुतापिकोऽभूत् ।, प्रवेष्टी सत्परिचय पृच्छति—का ग्गु इ भदन्त ! सः अपोहारक ? इति प्रश्न । कस्सिकुमारभमण आह—ते यथातामका—अनिर्विष्ट-नामान कचित् पुरुषा अर्थायिका—धनार्थिन, अर्थगवेयिका—धनान्वयिण अर्थलुब्धका—धनलोलुपा अर्थकाङ्क्षिताः—धनकाङ्क्षायुक्ता, अर्थपिपासिता—धन-पिपासायुक्ताः, अयगवेपणाय—धनगवेपणार्थं विपुल पणितमाण्ड—क्रयणवस्तुजातम् आदाय तथा—सुपहु—पर्याप्त मत्तपानपथ्यदनम् अन्नपानरूप पाथेय गृहीत्वा एकं

जसा यह अयोहारक पुरुष पञ्चातापयुक्त हुआ है—इसी प्रकारस तुम्ह न जाना पड़े अतः तुम मेरे कहे हुए पर धडा कनो और मानो किमीर और क्षीर मिल हैं इत्यादि ।

टीका—इसी मूलार्थ क जसा है—परन्तु जहाँ पर विशुद्धता है वह इस प्रकार स है “इदुत्तुहा जाप द्विपा” में जो यावत् पद आया है उसमें “चित्तानन्दिताः, परमप्रामाण्यता, हर्षप्रविशसर्पत्” इन पदों का समझ हुआ है इन पदों की व्याख्या पूर्णतः सही ही है “इह, कन जाप” में जो यह यावत्-पद आया है उसमें यहाँ पर “प्रिय, मनोप्र” मन आमः” इन पदों का ग्रहण हुआ है इस प्रश्न का अर्थ-मनोरथ को पूरा करनेवाला है कान्त प्रश्न का अर्थ-महायकारी हान स अमिलपणीय है, प्रिय प्रश्न का अर्थ उपकारक हान स प्रेम का उत्पादक है, तथा-मनोप्र प्रश्न का अर्थ हितकारी हान स मनाहर ऐसा है और मन आम प्रश्न का अर्थ आतिहर हान स मनागम एमा

का ३ पुत्र पञ्चाताप-युक्त थे—तेम तभारी प्रश्न स्थिति था नदि, जेथी तमे भारी बात पर सदा राजे अने भारी बात भारी थे ३ एव अने शरीर जिल्ल जिल्ल ३ इत्यादि ।

टीका—आ मूलार्थ  
‘इदुत्तुहा जाप द्विपा’  
मनप्रिया हर्षप्रविशसर्पत् आ परोने सञ्च, थेथे ३ आ परोनी व्याख्या परोने भुञ्ज ४ ॥ ‘इह कन जाप’ में जो यावत् पद ३ थेथे अर्थात् ‘प्रिय मनोप्र मनः आम’ आ परोने प्रदण्य ययु ३ ३ इह शब्दने अर्थ मनोरथ ने पूरना ३ ३ इह शब्दने अर्थ महायकारी दोषाधी अनिलपणीय ३ प्रिय शब्दने अर्थ द्विपारी दोषाधी प्रभने दोषाधी ३ तथा मनोप्र शब्दने अर्थ-द्विपारी दोषाधी मनोहर थेथे थाथ ३ मन आम शब्दने अर्थ आतिहर दोषाधी मनो-

महती-विशालाम् अग्रामिकाम्-वसतिरहितां, छिन्नाऽऽपाताया-छिन्न-हिंसकजन्तु-  
भयेनोपहत आपात-मनुष्याणां गमनागमनं यत्र ताम् दीर्घाध्वा-दीर्घमार्गाम्, अट-  
वीऽ अनुप्रविष्टाः । ततः खलु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकायाः यावत् छिन्ना-  
ऽऽपातायाः दीर्घाध्वाया अटव्याः कंचिद्देशम्-अटवीविभागम्, अनुप्राप्ताः सन्तः  
तत्र एकम् अयआकरं-लोहखनिम्, पश्यन्ति-दष्टवन्तः, तमाकरम् अयसा-लोहेन  
सर्वत्र-सर्वदिक्षु, समन्ता-सर्वविदिक्षु आकीर्णं-व्याप्तं, विस्तीर्णं-विस्तारप्राप्तम्, सच्छटं-  
सती-समीचीना छटा-चाक्रचिब्यं यत्र तम्, उपच्छटं-छटायुक्तम्, स्फुटं-प्रकटम्,  
अनुगाढं-घुञ्जरूपं पश्यति-दष्टवन्तः, दृष्ट्वा हृष्टतुष्ट यावत्-यावत्पदेन “चित्तान-  
न्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्” इत्यां सङ्गो बोध्यः, हर्षवशविस-  
र्पद्” इत्यस्य “हृदया” इत्यनेन योगाद् “हर्षवशविसर्पद्दयाः” इति, एत-  
द्व्याख्या प्राग्वत्, एतादृशाः सन्तः अन्योऽन्यं-परस्परं, शब्दयन्ति-आह्वयन्ति,  
शब्दयित्वा एवमत्रादिपुः-उक्तवन्तः-हे देवानुप्रियाः ! एषः-अयं खलु अयआकरः-  
लोहाऽऽकरः इष्टः कान्तः यावत् यावत्पदेन-“प्रियः, मनोज्ञः मनआम” इति  
पदानां संग्रहः, तत्र इष्टः-मनोस्थपूरकः, कान्तः सहायकारित्वादभिलाषीयः, प्रियः-  
उपकारित्वेन प्रेमोत्पादकः, मनोज्ञः-हितकारित्वान्मनोहरः. मनआमः-आर्तिहर-  
त्वान्मनोगम्यः, अस्ति तत्र-तस्मात् कारणात् हे देवानुप्रियाः । अस्माकम् अयो-  
भारं-लोहभारं वञ्चं ग्रहीतु श्रेयः-प्रशस्तम् इतिकृत्वा-इति निश्चित्य अन्योऽन्यस्य-  
परस्परस्य एतम्-अयोभारग्रहणरूपम् अर्थम्-प्रतिभृष्यन्ति-कर्तव्यतया स्वीकुर्वन्ति  
प्रतिश्रुत्य अयोभारं-लोहभारं वञ्चन्ति, वञ्चा यथानुपूर्वि-यथाक्रमं संग्रस्थिताः-अग्रे  
गन्तु प्रवृत्ताः । ततः खलु ते पुरुषाः अग्रामिकायाः यावत्-“छिन्नाऽऽपातायाः  
दीर्घाध्वायाः अटव्या किञ्चिद्देशं-किञ्चिद्दूरप्रदेशम् अनुप्राप्ताः सन्तः एकं महान्तं  
त्रपाकरं-त्रपु-धातुविशेषस्तथाऽऽकरं, पश्यन्ति-दष्टवन्तः तम् त्रपुकेण सर्वतः  
समन्ताद् आकीर्णं तदेव-पूर्वोक्तमेव “विस्तीर्णं, सच्छटम्, उपच्छटं स्फुटं गाढं  
पश्यन्ति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टाः. चित्तानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः.

हैं। ‘अग्रामियाए जाव’ में जाये हुए इस यावत्पद से “छिन्नापातायाः” दीर्घा-  
ध्वायाः” इन पदों का संग्रह हुआ है. “त चेव” इस पाठ से “विस्तीर्णः  
सच्छटम् उपच्छटम् स्फुटं गाढं पश्यन्ति: दृष्ट्वाहृष्टतुष्टाः, चित्तानन्दिताः, परम-  
सौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः अन्योन्यं शब्दयन्ति” इस पाठ का यहां ग्रहण

गम्य भवेत् थाय छे. ‘अग्रामियाए, जाव’ भा आवेल आ यावत् पदथी छिन्ना-  
पातायाः, दीर्घाध्वायाः, आ पदोने संग्रह थयो छे ‘त चेव’ आ पाठथी ‘विस्तीर्ण  
सच्छटम्, उपच्छटम्, स्फुटं, गाढं पश्यन्ति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टाः, चित्तानन्दिताः,  
परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः अन्योन्यं शब्दयन्ति” आ पाठ भक्ष



ટીકા—“તથ ણ કેસીકુમારસમખે” इत्यादि—तस्य स्वसु केसरीकुमार  
 भ्रमणः प्रदक्षिणाम् एवमवादीत्—हे प्रदेक्षिन् ! त्वं स्वसु पश्चादनुतापिकः—पश्चात्ता-  
 प्युक्तो मा मवः, यथा—येन प्रकारेण सः—वक्ष्यमाणः अयोहारक—लोहचपिक  
 पश्चादनुतापिकोऽभूत् ।, प्रदेक्षी तत्परिचयं पृच्छति—कं स्वसु हे मदन्त ! स  
 अयोहारकः ? इति प्रश्नः । केसरीकुमारभ्रमण आह—ते यथानामका—अनिर्दिष्ट-  
 नामान केचित् पुरुषा अर्थाधिक्य—अनार्यिनः, अथगवेपिका—अनार्येण,  
 अर्थलुब्धका—अनार्येण अथका कृताः—अनार्येण कृताः, अर्थपिपासिता—अन-  
 पिपासायुक्ताः, अथगवेपणार्य—अनार्येणार्य विपुल पणितमाण्ड—अनार्येणार्यस्तुजातम्  
 आदाय तथा—सुखम्—पर्याप्तं मत्तमानपभ्यदनम् अन्नपानरूपं पाथेयं गृहीत्वा एकं

जैसा यह अयोहारक पुरुष पश्चात्तापयुक्त हुआ है—इसी प्रकार तुम्हें न हाना  
 पड़े—अतः तुम मेरे कहे हुए पर भ्रमा करो और माना किजीव और शरीर मिन  
 है इत्यादि ।

टीકાર્થ—इसी मूलार्थ के जैसा है—परन्तु जहाँ पर विज्ञप्ता है—वह इस  
 प्रकार से है “इष्टुष्टा आब हियया” में जो या-न पद आया है उससे  
 “विचानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, इपवश्विसर्पव” इन पदों का संग्रह हुआ  
 है इन पदों की व्याख्या पूर्णतः तैसी ही है “इष्ट, कते जाय” में भी यह  
 यावत्-पद आया है उससे यहाँ पर “प्रिय, मनोः” मन आमः” इन पदों का  
 ग्रहण हुआ है इष्ट शब्द का अर्थ-मनोरथ को पूरा करनेवाला है कान्त शब्द  
 का अर्थ-सहायकारी होने से अभिलषणीय है, प्रिय शब्द का अर्थ-उपकारक  
 होने से प्रेम का उत्पादक है, तथा-मनोः शब्द का अर्थ हितकारी होने से  
 मनोहर प्रेता है और मन आम शब्द का अर्थ आर्तिहर होने से मनोगम्य प्रेता

કાંક પુરુષ પશ્ચાત્તાપ-યુક્ત સખે છે—તેમ તમારી પક્ષ સ્થિતિ થાય નહિ, જોથી  
 તમે મારી વાત પર ભ્રમા શખે અને મારી વાત માની લેા કે છવ અને શરીર  
 મિનન મિનન છે. ઇત્યાદિ.

ટીકાર્થ—આ મુલાથ  
 “इष्टुष्टा आब हियया”  
 मनस्मिता इपवश्विसर्पव” आ पदोनो सञ्च भवे। आ पदोनी व्याख्या पढेता  
 मुल्य न छ “इष्टे, कते जाय” आ न जावत् पद छ तेभी अर्था “प्रिया  
 मनोः, मनः आम” आ पदोत्त अक्षय भवु छ. इष्ट शब्दने अर्थ मनोरथ ने  
 पूरना छ. कान्त शब्दने अर्थ सहायकारी होवाथी अभिलषणीय छ. प्रिय शब्दने  
 अर्थ-हितकारी होवाथी प्रेमने उत्पादक छ तथा मनोः शब्दने अर्थ-हितकारी  
 होवाथी मनोहर भवे। जाय छ. मन आम शब्दने अर्थ आर्तिहर होवाथी मनो

प्ररूपणामिः—यथार्थस्वरूपानिरूपिकामिश्च आख्यापयितुं वा प्रज्ञापयितुं वा प्ररूपयितुं वा नो शक्नुवन्ति—समर्था-नामवचन, तदा यथानुपूर्वि-यथाक्रमम्, संग्रस्थिताः—ततोऽग्रे प्रयाताः । एवम्—अनेन प्रभारेण ताम्राऽऽकरं, रूप्याऽऽकरं, सुवर्णाऽऽकरं, रत्नाऽऽकरं, वज्राऽऽकरं, हीरकखनि पश्यन्ति इत्यादि लोहवज्राकरदर्शनवदेव सर्ववर्णनं बोध्यम् । ततः—लोहभारग्रहणकृताऽऽदरदुर्बुद्धिपुरुषस्यानेकवृथा-प्रबोधक-वाक्यप्रपञ्चैः प्रबोधनाः सामर्थ्यान्तरं खलु ते अल्पमूल्यकपूर्वपूर्ववस्तुपरित्याग-पूर्वकबहुमूल्योत्तरोत्तरवस्तुग्रहणवद्वाऽऽदरतया गृहीतवज्रमणिभाराः पुरुषाः यत्रैव स्वाः—स्वकीयाः जनपदाः—देशाः, यत्रैव स्थानि स्थानि—निजानि निजानि नगराणि तत्रैव उपागच्छन्ति । वज्रविद्रव्यणं—वज्रमणिविक्रयं कुर्वन्ति—कृतवन्तः । तद्विक्रयेण लब्धबहुद्रव्यैः सुबहुदासीदासगोमहिषगवेलकं—सुबहु—अतिप्रचुरं यद्दासी—दास—गो—महिष—गवेलकः—तत्र दासी—दास—गो—महिषाः प्रसिद्धाः, गवेलकाः—मेषाद्येत्येषां समाहारस्तथा, तत् गृह्णति, अष्टतलोन्मिद्धत प्रासादावन्तंसकान—अष्टौ तलानि यत्र ते अष्टतलाः—अष्टभूमिकाः, ते च ते उच्छिन्ताः—उन्मिताः गगनचुम्बिनः प्रासादावन्तसमाः—श्रेष्ठप्रासादास्तान् कारयन्ति, तत्र च स्नाताः कृतस्नानाः, कृतवलिर्माणः—कृतवायसादिनिमित्तान्नविभागाः, कृतकौतुलमङ्गलप्राश्चित्ताः दुःस्वप्नादिफलविधाताय धृतदध्यक्षताश्रयाः सन्तः उपरि—ऊर्ध्वं प्रासादवरगताः—मनोहर प्रासादस्थिताः विहरन्तीत्युत्तरेणान्वयः, किं कुर्वन्तो विहरन्तीत्याह—स्फुटद्भिः—अतिरभसा स्फालनात् स्फुटद्भिरिवः, मृद्भ्रमस्तकैः मृद्भ्रमुखपुटैः, द्वात्रिंशद्भ्रुकैः—द्वात्रिंशत्प्रकारगचना युक्तैः नाटकैः, तै कीदृशैः ? इत्यत्राऽऽह—वरतरुणीसंग्रयुक्तैः—विशिष्ट स्त्रीसम्पादितैः, उपनर्त्यमानाः, नृत्यं दृश्यमानाः, उपगीयमानाः गानं श्राव्यमाणाः, उपलाल्यमानाः विलास्यमानाः, इष्टान् अभिलषितान्, शब्दस्पर्शस्वरूपगन्धान्, पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवतो विहरति तिष्ठन्ति । ततः खलु इतश्च सः—अवहेलितहितवचनो लोहभारवाहकः पुरुषः अयोभारेण सह यत्रैव स्वं निज नगरं, तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत्र अयोभारकं गृहीत्वा अयोविक्रयणं करोति । तस्मिन्—लोहविक्रयलब्धे, अल्पमूल्ये-स्वल्पद्रव्ये आहार-वस्त्राद्यानयनेन निष्ठिते-समाप्ते सति स लोहवणिक् पुरुषः क्षीणपरिव्ययः—क्षीणः—मन्दः परिव्ययः—परितो व्ययः—द्रव्योपयोगो यस्य तथाभूतः, तान् वज्रविक्रयिण-पुरुषान् उपरि—ऊर्ध्वं भागे, प्रासादवरगतान्—स्म्यप्रासादस्थितान् यावद् विहरमाणान् स्फुटद्भिर्मृद्भ्रमस्तकैः द्वात्रिंशद्भ्रुकैः नाटकैः वरतरुणीसंग्रयुक्तैः उपनर्त्यमानान् उपगीयमानान् उपलाल्यमानान् इष्टान् — — — — — धान् मानु-

अन्योज्य श्रयन्ति, श्रयित्वा एवम अथादिपुः-ह दधानुप्रियाः ! एष स्तु  
 श्रयापर यावत्-यावत्पदन "इष्ट, कान्त, प्रियः, मनोज्ञ" मप्राप्तम् मनआम  
 अत्यन्तं प्रपुङ्गव सुबहु-अतिप्रचुरम् अय-लोहः लम्पत-प्राप्यत, तत्-तस्मात्  
 कारणात् ह दधानुप्रिया ! अयोभार मुक्त्वा-विहाय प्रपुङ्गव पटुं भ्रेग इति  
 कृत्वा अज्योऽन्यस्य अन्तिक-समापि न्तम-प्रपुङ्गवग्रहणरूपम् अथम् इति श्रुन्ति  
 कर्तव्यतया स्वीकुर्वन्ति, प्रतिभृत् अयोभार मुञ्चन्ति त्यजन्ति प्रपुङ्गव बध्नन्ति  
 -गच्छन्ति तत्र-प्रपुङ्गवग्रहणवपय स्तु एक-कथित् पुरुष अयोभार मोक्षु-  
 यक्तु नो शक्नोति, तथा-प्रपुङ्गव बटु-ग्रहीतु नो शक्नोति, तत् स्तु त  
 पुरुषाः तम्-लोहमारबन्त पुरुषम् एवमवादिषु-ह दधानुप्रिया ! एष स्तु श्रया  
 पर यावत्-यावत्पदेन-इष्ट, कान्त प्रिय, मनोज्ञ, मनआम, अत्यन्तं  
 प्रपुङ्गव" इत्यपि स हो योष्यः, सुबहु अतिप्रचुरम् अय लोहः लम्पत तत्  
 तस्मात् कारणात् हे दधानुप्रिया ! अयोभारक-लोहमार मुञ्च-त्यज तथा प्रपु-  
 ङ्गवमारक बध्नान-गृहाय, ततः एतु सः लोहमारवाहकः पुरुष एवमवादी-हे  
 दधानुप्रियाः-मया अय-लोहः द्राष्टु-द्रा-द्रवदेष्टा आहृतम् आनीतम्,  
 हे दधानुप्रिया ! मया अय-पिगा-हृतम् पिता-बहुकालाद् आहृतम् उडम्, हे  
 दधानुप्रियाः ! मया अय अतिगाह-बध्ननपदम् अत्यन्तदुःखन्धनन पदम् अत एव  
 हे दधानुप्रियाः ! मया अयः अक्षिधिलघ-धनपदम्-अक्षिधिलघन्धनेन दुःखन्धनन  
 बटुम् हे दधानुप्रियाः ! मया अय प्रचुरबन्धनपदम्-"धम्मिय" इति प्रचुरार्था  
 दक्षीयः श्रुत्, अतोऽहम् अयोभार एवक्त्वा प्रपुङ्गवमारक बटु-ग्रहीतुं नो यय  
 शक्नोमि । तत् स्तु त पुरुषाः तम्-लोहमारवाहक पुरुषं यदा बहुमि-बद्धीमि  
 आम्पापनामिः-इत्यन्तरूपामि" च पुन प्रज्ञापनामि हयापादप्रतिष्ठाभिकामिभ

किया गया है। "इह आव मयाम" में आव हुए यावत्पद से 'इष्ट कान्तः  
 प्रिय, मनोज्ञः" इन पदों का समग्र हुआ है। "तउ आगर आव" पद से भी  
 इष्ट कान्त, प्रिय, मनोज्ञ मन आम" इन पदों का समग्र किया गया है।  
 'धम्मिय' यह श्रुत् दक्षीय है और प्रचुर अर्थ का वाचक है ॥ १५४ ॥

धम्मिय उ "इह आव मयाम" भा आवेत् यावत् पदधी 'इष्ट, कान्तः, प्रियः, मनोज्ञः  
 आ पदोने स श्रुत् धम्मिय उ 'तउ आगरे आव' पदधी पद 'इष्ट, कान्त, प्रिय,  
 मनोज्ञ, मन आम' आ पदोने श्रुत् धम्मिय उ 'धम्मिय' आ श्रुत् दक्षीय उ अने  
 धम्मिय अर्थने वाचक उ ॥ १५४ ॥

प्ररूपणामिः—यथार्थस्वरूपनिरूपिणामिश्च आख्यापयितुं वा प्रज्ञापयितुं वा प्ररूपयितुं वा नो शक्नुवन्ति—समर्था—नामवचन, तदा यथानुपूर्वि—यथाक्रमम्, संप्रस्थिताः—ततोऽग्रे प्रयाताः । एवम्—अनेन प्रकारेण ताम्राऽऽकरं, रूप्याऽऽकरं, सुवर्णाऽऽकरं, रत्नाऽऽकरं, वज्राऽऽकरं, हीरकखनि पश्यन्ति इत्यादि लोहत्रय्याकरदर्शनवदेव सर्ववर्णनं बोध्यम् । ततः—लोहभारग्रहणकृताऽऽदरदुर्बुद्धिपुरुषस्यानेकवधा प्रबोधक-वाक्यप्रपञ्चैः प्रबोधनाः सामर्थ्यानिन्तरं खलु ते अल्पमूल्यकपूर्वं पूर्ववस्तुपरित्याग-पूर्वं कवहुमूल्योत्तरोत्तरवस्तुग्रहणवद्वाऽऽदरतया गृहीतवज्रमणिभाराः पुरुषाः यत्रैव स्वाः—स्वकीयाः जनपदाः—देशाः, यत्रैव स्वानि स्वानि—निजानि निजानि नगराणि तत्रैव उपागच्छन्ति । वज्रविद्रावणं—वज्रमणिविक्रयं कुर्वन्ति—कृतवन्तः । तद्विक्रयेण लब्धवहुद्रव्यैः सुबहुदासीदासगोमहिषगवेलकं—सुबहु—अतिप्रचुरं यद्दासी—दास—गो महिष—गवेलकः—तत्र दासी—दास—गो—महिषाः प्रसिद्धाः, गवेलकाः—मेघाश्चेत्येषां समाहारस्तथा, तत् गृह्णाति, अष्टतलोच्छ्रित प्रासादावन्तंसकान—अष्टौ तलानि यत्र ते अष्टतलाः—अष्टभूमिभाः, ते च ते उच्छ्रिताः—उन्नताः गगनचुम्बिनः प्रासादावन्तं सकाः—श्रेष्ठप्रासादास्तान् कारयन्ति, तत्र च स्नाताः कृत्स्नानाः, कृतबलिर्कर्माणः—कृतवायसादिनिमित्तान्नविभागाः, कृतकौतुलमङ्गलप्राश्निताः दुःस्वप्नादिकलविधाताय धृतदध्यक्षताश्रयाः सन्तः उपरि—ऊर्ध्वं प्रासादवरगताः—मनोहर प्रासादस्थिताः विहरन्तीत्युत्तरेणान्वयः, किं कुर्वन्तो विहरन्तीत्याह—स्फुटद्भिः—अतिरभसा स्फालनात् स्फुटद्भिरिव, मृद्भ्रमस्तकैः मृद्भ्रमुखपुटैः, द्वात्रिंशद्भ्रुकैः—द्वात्रिंशत्प्रकाररचनायुक्तैः नाटकैः, तै कीदृशैः ? इत्यत्राऽऽह—वस्तुरूपीसंप्रयुक्तैः—विशिष्टस्त्रीसम्पादितैः, उपनर्त्यमानाः, नृत्यं दृश्यमानाः, उपगीयमानाः गानं श्राव्यमाणाः, उपलाल्यमानाः विलास्यमानाः, इष्टान् अभिलषितान्, शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान्, पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवतो विहरति तिष्ठन्ति । ततः खलु इतश्च सः—अवहेलितहितवचनो लोहभारवाहकः पुरुषः अयोभारेण सह यत्रैव स्वं-निजं नगरं, तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत्र अयोभारकं गृहीत्वा अयोविक्रयणं करोति । तस्मिन्—लोहविक्रयलब्धे, अल्पमूल्ये—स्वल्पद्रव्ये आहार-वस्त्राद्यानयनेन निष्ठिते—समाप्ते सति स लोहवणिक् पुरुषः क्षीणपरिव्ययः—क्षीणः—मन्दः परिव्ययः परितो व्ययः द्रव्योपयोगो यस्य तथाभूतः, तान्—वज्रविक्रयिण-पुरुषान् उपरि—ऊर्ध्वं भागे, प्रासादवरगतान्—रम्यप्रासादस्थितान् यावद् विहरमाणान् स्फुटद्भिर्मृद्भ्रमस्तकैः द्वात्रिंशद्भ्रुकैः नाटकैः वस्तुरूपीसंप्रयुक्तैः उपनर्त्यमानान् उपगीयमानान् उपलाल्यमानान् इष्टान् शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् पञ्चविधान् मानु-

અન્યઽન્ય ઇદ્યદન્તિ, ઇષ્ટયિત્વા ઇષમ અથાદિપુ - હ દેવાનુમિયા ! ઇષ સ્તુ  
 પ્રપ્યાપરઃ યાવત્-યાવત્પદન “ઈષ્ , કાન્ત , મિય , મનોઘ ” સપ્રાપ્તમ્ મનપ્રાપ્ત  
 અન્વર્તનમ્ પ્રપુક્તમ્ મુચ્ચુ-અતિપ્રચુરમ્ અવ-લોહ લમ્પત-પ્રાપ્ત, તત્-તસ્માત્  
 કારણાત્ હ દેવાનુમિયા ! અગોમાર મુચ્ચવા-વિદ્યાગ પ્રપુક્તમાર વદુ ધેગઃ ઇતિ  
 કૃત્વા અગોઽન્યસઃ અન્તિક-સમપિ ન્દતમ-પ્રપુમારપ્રદર્શનરૂપમ્ અર્થમ્ ઇતિદ્યુષ્ણન્તિ  
 કર્તવ્યતયા સ્વીકૃન્વન્તિ, પતિધૃતઃ અગોમાર મુચ્ચન્તિ ત્યજન્તિ પ્રપુક્તમાર વદન્તિ  
 -મુચ્ચન્તિ, તત્ર-પ્રપુમારપ્રદર્શનવિષય સ્તુ ઇષ્ -ચચિત્ પુરુષ અગોમાર મોતુ-  
 ત્યજતુ નો ઇક્ષ્નોતિ તયા-પ્રપુક્તમાર વદુ-પ્રદીતુ નો ઇક્ષ્નોતિ, તત્ સ્તુ ત  
 પુરુષાઃ તમ્-લોહમારવન્ત પુરુષામ્ ઇષમવાદિપુ — હ દેવાનુમિયા ! ઇષ સ્તુ પ્રપ્યા  
 કર યાવત્-યાવત્પદન-“ઈષ્, કાન્તઃ મિયઃ, મનોઘઃ, મનપ્રાપ્તઃ, અન્વર્તનમ્  
 પ્રપુક્તમ્” इत्येषां स ईहो बोध्य, मुच्यु अतिप्रचुरर अरः लोहः लम्पत तत्  
 तस्मात् कारणात् ह देवानुमिग ! अगोमार-लोहमार मुच्य-त्यज्ञ तया प्रपु-  
 क्तमारक वधान-गृहाण, तत् स्तु स लोहमारवाहक पुरुष इषमवादीन-इ  
 देवानुमिग -मया अयःलोह दूराऽऽकृत-दूरा-दूरपदेशाद् आकृतम आनीतम,  
 ह देवानुमिगः ! मया अयःचिराऽऽहतम चिरा-बहुकालाद् आकृतम उद्धम, ह  
 देवानुमिग ! मया अयः अतिगा-बन्धनवद्धम अत्यन्तदृढबन्धनेन बद्धम अत एव  
 हे देवानुमिग ! मया अयः अग्निधिलबन्धनवद्धम् अग्निधिलबन्धनेन दृढबन्धनेन  
 बद्धम् ह देवानुमिगः ! मया अयः प्रचुरस्त्वनन्यदम्-“यणिय” इति प्रचुरार्थो  
 देशीय छन्द, अतोऽयम् अगोमार त्यक्त्वा प्रपुक्त्मारक वदु-प्रदीतु नो चैव  
 इक्ષ्मोमि । तत् स्तु त पुरुषाः तम-लोहमारवाहक पुरुष यदा बहुमि-बह्वीभि  
 आगम्यापनामि-इष्टान्तरूपाभि” च पुन प्रह्लापनामि ह्योपादयप्रतिवाभिकामिभ

કિયા ગયા છે । “ઈષ્ટ જાણ મળામ” મેં આપે હુણ યાવત્પદ સ ‘ઈષ્ટ કાન્ત  
 મિય, મનોઘા” इन पदां का समग्र हुआ है ! “तउ आगर जाव” पद से भी  
 इष्ट कान्त, मिय, मनोघ मन आम” इन पदों का समग्र किया गया है ।  
 ‘यणीय’ यह शब्द देशीय है और प्रचुर अर्थ का वाचक है ॥ १५४ ॥

અગો ॥ “ઈહે જાણ મળામ” આ આવેલ યાવત્ પદથી ‘ઈષ્ટ, કાન્ત, મિય, મનોઘ  
 આ પદોનો સમગ્ર અર્થ છે. ‘તઉઆગરે જાવ’ પદથી પણ ‘ઈષ્ટ, કાન્ત, મિય,  
 મનોઘ, મન આમ’ આ પદોના અર્થ મળે છે ‘યણિય’ આ શબ્દ દેશીય છે અને  
 પ્રચુર અર્થનો વાચક છે. ॥૧૫૪॥

प्ररूपणामिः—यथार्थस्वरूपानिरूपिकाभिश्च आख्यापयितुं वा प्रज्ञापयितुं वा प्ररूपयितुं वा नो शक्नुवन्ति—समर्था—नाभवन्, तदा यथानुपूर्वि—यथाक्रमम्, संग्रस्थिताः—ततोऽग्रे प्रयाताः । एवम्—अनेन प्रकारेण ताम्राऽऽकरं, रूप्याऽऽकरं, सुवर्णाऽऽकरं, रत्नाऽऽकरं, वज्राऽऽकरं, हीरकखनिं पश्यन्ति इत्यादि लोहत्रय्याकरदर्शनवदेव सर्ववर्णनं बोध्यम् । ततः—लोहभारग्रहणकृताऽऽदरदुर्बुद्धिपुरुषस्यानेकवधाः प्रबोधकैर्वाक्यप्रपञ्चैः प्रबोधनाः सामर्थ्यानिन्तरं खलु ते अल्पमूल्यकपूर्वपूर्ववस्तुपरित्यागपूर्वकबहुमूल्योत्तरोत्तरवस्तुग्रहणवद्वाऽऽदरतया गृहीतवज्रमणिभाराः पुरुषाः यत्रैव स्वाः—स्वकीयाः जनपदाः—देशाः, यत्रैव स्वानि स्वानि—निजानि निजानि नगराणि तत्रैव उपागच्छन्ति । वज्रविक्रयणं—वज्रमणिविक्रयं कुर्वन्ति—कृतवन्तः । तद्विक्रयेण लब्धबहुद्रव्यैः सुबहुदासीदासगोमहिषगवेलकं—सुबहु—अतिप्रचुरं यद्दासी—दास—गोमहिष—गवेलकः—तत्र दासी—दास—गो—महिषाः प्रसिद्धाः, गवेलकाः—मेघाश्चेत्येषां समाहारस्तथा, तत् गृह्णति, अष्टतलोन्निहृत प्रासादावन्तंसमान—अष्टौ तलानि यत्र ते अष्टतलाः—अष्टभूमिकाः, ते च ते उच्छ्रिताः—उन्नताः गगनचुम्बिनः प्रासादावन्तस्काः—श्रेष्ठप्रासादास्तान् कारयन्ति, तत्र च स्नाताः कृतस्नानाः, कृतवलिर्माणः—कृतवायसादिनिमित्तान्नविभागाः, कृतकौतुलमङ्गलप्राश्चित्ताः दुःस्वप्नादिकलविधाताय धृतदध्यक्षताश्रयाः सन्तः उपरि—ऊर्ध्वं प्रासादवरगताः—मनोहरा प्रासादस्थिताः विहरन्तीत्युत्तरेणान्वयः, किं कुर्वन्तो विहरन्तीत्याह—स्फुटद्भिः—अतिरभसा स्फालनात् स्फुटद्भिरिव, मृद्भ्रमस्तकैः मृद्भ्रमुखपटैः, द्वात्रिंशद्भ्रमस्तकैः—द्वात्रिंशत्प्रकारगचनायुक्तैः नाटकैः, तैर्कीदृशैः ? इत्यत्राऽऽह—वर्तरुणीसंप्रयुक्तैः—विशिष्टस्त्रीसम्पादितैः, उपनर्त्यमानाः, नृत्यं दृश्यमानाः, उपगीयमानाः गानं श्राव्यमाणाः, उपलाल्यमानाः विलास्यमानाः, इष्टान् अभिलषितान्, शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान्, पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवतो विहरति तिष्ठन्ति । ततः खलु इतश्च सः—अवहेलितहितवचनो लोहभारवाहकः पुरुषः अयोभारेण सह यत्रैव स्वनिजं नगरं, तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत्र अयोभारकं गृहीत्वा अयोविक्रयणं करोति । तस्मिन्—लोहविक्रयलब्धे, अल्पमूल्ये—स्वल्पद्रव्ये आहारवस्त्राधानयनेन निष्ठिते—समाप्ते सति स लोहवणिक् पुरुषः क्षीणपरिव्ययः—क्षीणः—मन्दः परिव्ययः—परितो व्ययः—द्रव्योपयोगो यस्य तथाभूतः, तान् वज्रविक्रयिणपुरुषान् उपरि—ऊर्ध्वं भागे, प्रासादवरगतान्—रम्यप्रासादस्थितान् यावद् विहरमाणान् स्फुटद्भिर्मृद्भ्रमस्तकैः द्वात्रिंशद्भ्रमस्तकैः नाटकैः वर्तरुणीसंप्रयुक्तैः उपनर्त्यमानान् उपगीयमानान् उपलाल्यमानान् इष्टान् शब्द—स्पर्श—रस—रूप—गन्धान् पञ्चविधान् मानु-

अन्यऽन्यं श्रद्धयन्ति, श्रद्धयित्वा एवम अत्रादिषु - हे देवानुमिया ! एष स्तु  
 श्रद्धाकरः यावत्-यावत्पदन "इष्ट", कान्तः, प्रिय, मनोमय "सम्राज्यं मनआम  
 अन्पेनैव प्रपुकेम सुबहु-अतिप्रचुरम् अय -लोह लम्पत-प्राप्य, तत्-तस्मात्  
 कारणात् हे देवानुमियाः ! अयोमार मुक्त्वा-विहाय प्रपुक्रमार बहु भेगः इति  
 कृत्वा अन्गोऽन्यः अन्तिक-सर्मापि न्यतम-प्रपुमारग्रहणरूपम् अयम् इति श्रुन्ति  
 कृतवन्ततया स्वीकृषन्ति, पतिधृत् अयोमार मुञ्चन्ति त्यजन्ति प्रपुक्रमार व्रजन्ति  
 -गृह्णन्ति, तत्र-प्रपुमारग्रहणं विषयं स्तु एकः-कश्चित् पुरुष अयोमार मोक्ष-  
 त्यक्तु नो शक्नोति, तथा-प्रपुक्रमार बहु-ग्रहीतु नो शक्नोति, तत् स्तु ते  
 पुरुषाः तद्-लोहमारवन्त पुरुषां एवमवादिषु - हे देवानुमिया ! एष स्तु श्रद्धा  
 करः यावत्-यावत्पदन-“इष्ट”, कान्तः प्रियः, मनोमयः, मनआम, अन्पेनैव  
 प्रपुक्रमार” इत्येषां सर्वो बोध्यः, सुबहु अतिप्रचुरम् अयः लोहः लम्पत तत्  
 तस्मात् कारणात् हे देवानुमिया ! अयोमारक-लोहमार मुञ्चन्त्यत्र तथा प्रपु-  
 क्रमारकं वधान-गृहाण, ततः स्तु स लोहमारवाहकः पुरुष एवमवादी-हे  
 देवानुमियाः-मया अय -लोहः दूराऽऽहृत-दूरा-दूरपदेशाद् आहृतम् आनीतम्,  
 हे देवानुमिया ! मया अय -चिराऽऽहृतम् चिरान्-बहुकालाद् आहृतम् उद्धम्, हे  
 देवानुमियाः ! मया अय अतिगहन-बन्धनपदम्-अत्यन्तदृढबन्धनेन बद्धम् अत एव  
 हे देवानुमियाः ! मया अय अक्षिधिलबन्धनपदम्-अक्षिधिलबन्धनेन दृढबन्धनेन  
 बद्धम् हे देवानुमिया ! मया अय प्रचुरबन्धनबद्धम्-“धनिज” इति प्रचुरार्थो  
 दक्षीयः शब्दः, अतोऽहम् अयोमार त्यक्त्वा प्रपुक्रमारक बहु-ग्रहीतु नो च  
 शक्नोमि । ततः स्तु त पुरुषा तद्-लोहमारवाहक पुरुष यदा बहुभिः-बह्विभि  
 आगम्याप्तामि-दृष्टान्तरूपामि” च पुन श्लापनाभिः इयापादपप्रतिबोधिकाभिश्च

किया गया है। “इष्टं वाच मणाम” में आय इष्ट यावत्पद से ‘इष्ट’ कान्तः  
 प्रिय, मनोमय” इन पदों का संग्रह हुआ है। “तत् आगरे जाव” पद स भी  
 इष्ट कान्त, प्रिय, मनोमय मन आम” इन पदों का संग्रह किया गया है।  
 ‘धनीय’ यह शब्द देखीय है और प्रचुर अय का वाचक है ॥ १५४ ॥

अथै ॐ “इष्टं वाच मणाम” भा आवेक यावत् पदभी ‘इष्टः, कान्त, प्रियः, मनोमयः  
 भा पदोने सञ्च अथै ॐ. ‘तत् आगरे जाव’ पदभी पञ्च ‘इष्ट’ कान्त, प्रिय,  
 मनोमय, मन आम’ भा पदोने सञ्च अथै ॐ ‘धनीय’ भा शब्द देखीय ॐ अने  
 प्रचुर अर्थने वाचक ॐ ॥ स. १५४ ॥

प्ररूपणामिः—यथार्थस्वरूपनिरूपिकाभिश्च आख्यापयितुं वा प्रज्ञापयितुं वा प्ररूपयितुं वा नो शक्नुवन्ति—समर्था—नाम्बन्, तदा यथानुपूर्वि—यथाक्रमम्, संप्रस्थिताः—ततोऽग्रे प्रयाताः । एवम्—अनेन प्रकारेण ताम्राऽऽकरं, रूप्याऽऽकरं, सुवर्णाऽऽकरं, रत्नाऽऽकरं, वज्राऽऽकरं, हीरकस्वनि पश्यन्ति इत्यादि लोहत्रय्याकरदर्शनवदेव सर्ववर्णन बोध्यम् । ततः—लोहभारग्रहणकृताऽऽदरदुर्बुद्धिपुरुषस्यानेकव्याप्रबोधके-वाक्यप्रपञ्चैः प्रबोधनाः सामर्थ्यान्तरं खलु ते अल्पमूल्यकपूर्वपूर्ववस्तुपरित्यागपूर्वकबहुमूल्योत्तरोत्तरवस्तुग्रहणवद्वाऽऽदरतया गृहीतवज्रमणिभाराः पुरुषाः यत्रैव स्वाः—स्वकीयाः जनपदाः—देशाः, यत्रैव स्वानि स्वानि—निजानि निजानि नगराणि तत्रैव उपागच्छन्ति । वज्रविक्रयणं—वज्रमणिविक्रयं कुर्वन्ति—कृतवन्तः । तद्विक्रयेण लब्धबहुद्रव्यैः सुबहुदासीदासगोमहिषगवेलकं—सुबहु—अतिप्रचुरं यद्दासी—दास—गो महिष—गवेलकः—तत्र दासी—दास—गो—महिषाः प्रसिद्धाः, गवेलकाः—मेघाश्चेत्येषां समाहारस्तथा, तत् गृह्णाति, अष्टतलोच्छ्रित प्रासादावन्तंसकान्—अष्टौ तलानि यत्र ते अष्टतलाः—अष्टभूमिकाः, ते च ते उच्छ्रिताः—उन्नताः गगनचुम्बिनः प्रासादावन्तंसकाः—श्रेष्ठप्रासादास्तान् कारयन्ति, तत्र च स्नाताः कृतस्नानाः, कृतवलिर्माणः—कृतवायसादिनिमित्तान्नविभागाः, कृतकौतुलमङ्गलप्राश्चिन्ताः दुःस्वप्नादिफलविधाताय धृतदध्यक्षताश्रयाः सन्तः उपरि—ऊर्ध्वं प्रासादवर्गताः—मनोहर प्रासादस्थिताः विहरन्तीत्युत्तरेणान्वयः, किं कुर्वन्तो विहरन्तीत्याह—स्फुटद्भिः—अतिरभसा स्फालनात् स्फुटद्भिरिवः, मृदङ्गमस्तकैः मृदङ्गमुखपुटैः, द्वात्रिंशद्भक्तैः—द्वात्रिंशत्प्रकारसंज्ञा युक्तैः नाटकैः, तै कीदृशैः ? इत्यत्राऽऽह—वर्तारुणीसंप्रयुक्तैः—विशिष्ट स्त्रीसम्पादितैः, उपनर्त्यमानाः, नृत्यं दृश्यमानाः, उपगीयमानाः गानं श्राव्यमाणाः, उपलाल्यमानाः विलास्यमानाः, इष्टान् अभिलषितान्, शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान्, पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवतो विहरति तिष्ठन्ति । ततः खलु इतश्च सः—अवहेलितहितवचनो लोहभारवाहकः पुरुषः अयोभारेण सह यत्रैव स्वनिज नगरं, तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत्र अयोभारकं गृहीत्वा अयोविक्रयणं करोति । तस्मिन्—लोहविक्रयलब्धे, अल्पमूल्ये—स्वल्पद्रव्ये आहारवस्त्राद्यानयनेन निष्ठिते—समाप्ते सति स लोहवणिक् पुरुषः क्षीणपरिव्ययः—क्षीणः—मन्दः परिव्ययः—परितो व्ययः—द्रव्योपयोगो यस्य तथाभूतः, तान् वज्रविक्रयिणपुरुषान् उपरि—ऊर्ध्वभागे, प्रासादवर्गताम्—रम्यप्रासादस्थितान् यावद् विहरमाणान् स्फुटद्भिर्मृदङ्गमस्तकैः द्वात्रिंशद्भक्तैः नाटकैः वर्तारुणीसंप्रयुक्तैः उपनर्त्यमानान् उपगीयमानान् उपलाल्यमानान् इष्टान् शब्द—स्पर्श—रस—रूप—गन्धान् पञ्चविधान् मानु-



प्यकान काममोगान इत्थं नुमन्तो विहरमाणान् पश्यन्ति । दृष्ट्वा एवम्-अनुपद  
वक्ष्यमाणं वचनम् अवार्दन्-अहो ! विस्मयं स्वतु अहम् अक्षयं-धन्यो न, अपुण्य  
पुण्यहीन, अकृतार्थे अकृतसिद्धिः, अकृतलक्षण-शुभलक्षणहीन, स्त्रीप्रीतिवर्धित-  
लज्जालक्ष्मीहीन, हीनपुण्य चातुर्दश-हीनपुण्य-स्त्रीपुण्य-अत एव चातुर्दश-  
कृष्णचतुर्दशं ज्ञात, दुरन्तदान्त लक्षण-दुग्ध-दुष्टास्त्रान् अत एव मान्तरं  
अमनोज्ञ लक्षण यस्य स तथा-कुलक्षणयुक्त, अहममि । यदि-चेत् स्वतु  
अह मित्राणां-सहस्रानां वा-अथवा ज्ञातीनां-पितृश्रीणां वा निजकानां-  
हितिणां वा वचनम् अभोऽस्य-भक्षणपथमानेभ्यम् उदा तर्हि स्वतु अहमपि एव-  
मव-मत्प्रहागतवज्रमणिबिम्ब-पुलकदश, उगिरि-ऊर्ध्वभाग, भासादवरगतः-सुन्दर  
भासादरिषत-वज्रमणिबिम्बपिच्छो भूत्वा यावत्-इतिरिष्यम्-अस्यास्यम् विविध-  
सुखसम्पन्नोऽस्मिन्निष्यम् । तत्-त मादृशो, तन-अन्तरोक्तन अर्धन-सोऽहनिगूरूप  
रूपान्तन, इ प्रदक्षिन् । एवम-इत्यम्, उग-ते-कल्पत-यत् इ प्रदक्षिन् ! तं  
पश्चादनुतापिको मा मवे, यथा-यन प्रकारेण स-अन्तरोक्त अपोहारक यथा  
दनुतापिकोऽभूत् । ॥ अ० १५४ ॥

मृष-तए णं से पयसी राया सवुद्धे केसिकुमारसमणं वदइ  
जाव एव वयासी-णो खल्ल भते । अह पच्छाणुताविण भविस्सामि  
जहा चेव से पुरिमे अयभारए । त इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं  
अतिए केवलपन्नत्त धम्मं निसामित्तए । अहासुहं देवाणुप्पिया ।  
मा पडिबध करेह । धम्मकहा, जहा चित्तस्स तहेव जाव गिहिधम्म  
पडिबडजइ, जेणेव सेयविया नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए । १५५ ॥

अथा-ततः श्वेतु स प्रेक्षी राजा सवुद्धं कसिकुमारभक्त्य बन्धत यावत्  
एवमवार्दन्-नो श्वेतु मयन्त ! अहं पश्चादनुतापिको भविष्यामि यथैव स पुनो

‘तए णं से पयसी राया’ इत्यादि ।

मृषाय-‘तएण से पयसी राया सवुद्धे’ इति तद्वत् स बहुत सममान  
एव वद प्रेक्षी राजा यात्र को प्राप्त हा गया (कसिकुमारभक्त्य आत्र वदइ

‘तए णं से पयसी राया’ इत्यादि ।

सत्राय-‘तएण से पयसी राया सवुद्धे’ आ प्रभवे नहु ए समानवयाधी  
ते प्रेक्षी राजने जेथ प्राप्त भये । (कसि कुमारभक्त्य आत्र वदइ एव वयासी) पछी तेजे

अयोहारकः । तदिच्छामि खलु देवानुप्रियाणामन्तिके केवलप्रज्ञप्त धर्मं निशम-  
यितुम् । यथासुखं देवानुप्रियाः ! मा प्रतिवन्धं कुरुत धर्मकथा, यथा चित्रस्थ  
तथैव यावत् गृहिधर्मं प्रतिपद्यते, तत्रैव श्वेताम्बिका नगरी तत्रैव प्राधारयद्  
गमनाय ॥ स० १५५ ॥

एवं वयासी) फिर उसने वंदना की यावत् केशिकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(णो  
खलु भंते । अहं पञ्छाणुताविए भविस्सामि, जहा चेव से पुरिसे अग्रहारए)  
हे भदंत ! मैं उस अयोहारक-लोहवणिक पुरुष की तरह पश्चादनुतापित नहीं  
होऊंगा (तं इच्छामि णं देवानुप्पियाणं अंतिए केवलपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए)  
अतः मैं आप देवानुप्रिय से केवलप्रज्ञप्त धर्म सुनने का अभिलाषी हो रहा  
हूँ (अहा सुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवन्धं करेह) तब केशीकुमारश्रमण ने उससे  
कहा—हे देवानुप्रिय ! आप को जिससे सुख उपजे ऐसा करो परन्तु इस विषय  
में विलम्ब करना उचित नहीं है । (धम्म कहा) प्रदेशी राजाको तब केशी-  
कुमारश्रमण ने मुनिधर्म और गृहस्थधर्म का उपदेश दिया, (जहा चित्तस्स तहेव  
गिहिधम्मं पडिवज्जइ) यहां वह धर्मकथा १११वे सूत्र में जैसी कही गई है  
वैसी जाननी चाहिये, तब प्रदेशी राजाने द्वादशविधरूप गृहीधर्म स्वीकार कर-  
लिया (जेणेव सेयंविद्या णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए) इस प्रकार गृहिधर्म  
धारणकर वह प्रदेशी राजा जहां श्वेताम्बिका नगरी थी उस ओर चलदिया—

केशी कुमारश्रमणने वंदना करी यावत् केशिकुमार श्रमणने आ प्रभाण्णे कल्लु—(णो खलु भंते !  
अहं पञ्छाणुताविए भविस्सामि, जहा चेव से पुरिसे अग्रहारए) हे भदंत !  
हूँ ते अयोहारक लोहवणिक पुरुषनी जेभ पश्चादनुतापिक थयंथ नडि. (तं इच्छामि  
णं देवानुप्पियाणं अंतिए केवलपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए) अथी हूँ आप देवा-  
नुप्रिय पासैथी केवलि प्रज्ञप्त धर्मने सालणवानी असिद्धापा राखुं छु. (अहासुहं  
देवानुप्पिया ! मा पडिवन्धं करेह) त्थारे केशीकुमार श्रमण्णे तेने कल्लुं छे देवानुप्रिय !  
तमने जेभा आनद थयं तेभ करे. पणु आ विषयभा विलण उचित नथी.  
(धम्मकहा) प्रदेशी राजने त्थारे केशी कुमार श्रमण्णे मुनिधर्म अने गृहस्थधर्मने  
उपदेश आण्थे. (जहा चित्तस्स तहेव गिहिधम्म पडिवज्जइ) अर्द्ध ते धर्मकथा  
११ भा सूत्र प्रभाण्णे कडेवाभा आवी छे. त्थारे प्रदेशी राजन्थे द्वादश विधरूप  
गृहीधर्मने स्वीकार कथी. (जेणेव सेयंविद्या णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए)  
आ प्रभाण्णे गृहीधर्म धारण करीने ते प्रदेशी राजा न्थां श्वेताम्बिका नगरी छती  
ते तरइ रवाना थय गथे.

प्यकान काममोगान इत्यनुमथन्तो विहरमाणान् पश्यन्ति । दृष्ट्वा एवम्-अनुपद  
 बन्धमाणं घनम् अवादीत्-अहो ! विष्णवे खलु अहम् अघ्नय -घ-पो न, अपुण्यः-  
 पुण्यहीनः, अकृतार्थः अकृतसिद्धिः, अकृतलक्षण -शुभलक्षणाहीनः, द्विधीवर्जित -  
 लज्जालक्ष्मीहीनः, हीनपुण्य चातुर्दश -हीनपुण्य -क्षीणपुण्य अत एव चातुर्दशः-  
 कृष्णकृतदंष्ट्रा आतः, दुरन्तमान्त लक्षण -दुरन्त-दुष्टास्त्रान् अत एव मान्तम्  
 अमनोह लक्षण यस्य स तथा-कुलक्षणयुक्तः, अहमस्मि । -यदि-येत् खलु  
 अहं मित्राणां-सहस्रानां वा-अथवा ज्ञातीनां-पितृव्यादीनां वा निजकानां-  
 हितैरिष्यां वा वचनम् अभोष-भक्षणपथमानेभ्यम् तदा तर्हि खलु अहमपि एव  
 मेव-मत्सहागतवज्रमणिविक्रयिपुरुषवदथ, उरि-ऊर्ध्वमागे, मासादवरगत -सुन्दर  
 मासादरिष्यतः वज्रमणिविक्रयिसदृशो भूत्वा यावत् उरिष्यम्-अस्त्रास्यम् विविच-  
 सुत्सम्पन्नोऽभविष्यम् । तत् स मादेतो, तेन-अन्तरोक्तन अर्धेन-लोहवर्णिरूपेण  
 दृष्टान्तेन, हे प्रदक्षिन् ! एवम्-इत्थम्, उर्यसे-कथ्यते यत् हे प्रदक्षिन् ! त्वं  
 पश्चादनुतापिको मा भवेः, यथा-यन प्रकारेण स-अन्तरोक्त अरोहारक पश्चा  
 दनुतापिकोऽभूत् । ॥१००॥ १५४॥

मृगम्-तए णं से पयसी रायां सवुद्धे कैसिकुमारसमणं वदइ  
 जाव एव वयासी-णो खलु भते । अहं पण्छाणुताविए भविस्सामि  
 जहा चिव से पुरिमे अयभारए । त इच्छामि गं देवाणुप्पियाणं  
 अतिए केवलपन्नत्त धम्मं नित्तमित्तए । अहासुह देवाणुप्पिया !  
 मा पडिधध करेह । धम्मकहा, जहा चित्तस्स तहेव जाव गिहिधम्मं  
 पडिधजइ, जेणेव सेयविया नयरी तेणेव पहारेस्थ गमणाए । १५५॥

छाया-ततः खलु स प्रदक्षी राजा सपुत्रः कसिकुमारभग्नं वन्दत यावत्  
 पश्चादनुतापिनोऽभूत् । अहं पश्चादनुतापिको भविष्यामि यद्यपि स पुण्यो

‘तए णं से पयसी रायां’ इत्यादि ।

मृगाथ-(तए णं से पयसी रायां सपुत्रः) इत्येवमत्र से बहुत सम्मान  
 पर इह प्रदक्षी राजा जाव को-मात्र हा गया (कसिकुमारभग्नं जाव वदइ

‘तए णं से पयसी रायां’ इत्यादि ।

मृगाथ-(तए णं से पयसी रायां सपुत्रः) अथ प्रभवे-अहं एव सम्मानवशादी  
 ते प्रदक्षी राजाने जाव प्राप्त भवे । (कसि कुमारभग्नं जाव वदइ एव वयासी) एते तेने

अयोहारकः । तदिच्छामि खलु देवानुप्रियाणामन्तिके केवलप्रज्ञप्त धर्म निशम-  
यितुम् । यथासुखं देवानुप्रियाः ! मा प्रतिबन्धं कुरुत धर्मकथा, यथा चित्रस्य  
तथैव यावत् गृहिधर्मं प्रतिपद्यते, तत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव प्राधारयद्  
गमनाय ॥ स्र० १५५ ॥

एवं वयासी) फिर उसने वंदना की यावत् केशिकुमारश्रमण से ऐसा कहा-(णो  
खलु भंते । अहं पञ्छाणुताविण भविस्सामि, जहा चेव से पुरिसे अयहारण)  
हे भदंत ! मैं उस अयोहारक-लोहवणिक पुरुष की तरह पश्चादनुतापित नहीं  
होजंगा (तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं अंतिए केवलपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए)  
अतः मैं आप देवानुप्रिय से केवलप्रज्ञप्त धर्म सुनने का अभिलाषी हो रहा  
हूँ (अहा सुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह) तब केशीकुमारश्रमण ने उससे  
कहा-हे देवानुप्रिय ! आप को जिससे सुख ऊपजे ऐसा करो परन्तु इस विषय  
में विलम्ब करना उचित नहीं है । (धम्म कहा) प्रदेशी राजाको तब केशी-  
कुमारश्रमण ने मुनिधर्म और गृहस्थधर्म का उपदेश दिया. (जहा चित्तस्स तहेव  
गिहिधम्मं पडिवज्जइ) यहां वह धर्मकथा १११वें सूत्र में जैसी कही गई है  
वैसी जाननी चाहिये. तब प्रदेशी राजाने द्वादशविधरूप गृहीधर्म स्वीकार कर-  
लिया (जेणेव सेयंविद्या णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए) इस प्रकार गृहिधर्म  
धारणकर वह प्रदेशी राजा जहां श्वेतांशिका नगरी थी उस ओर चलदिया-

केशी कुमारश्रमणने वंदना करी यावत् केशिकुमार श्रमणने आ प्रभाणु कलु -(णो खलु भंते !  
अहं पञ्छाणुताविण भविस्सामि, जहा चेव से पुरिसे अयहारण) हे भदंत !  
हूँ ते अयोहारक लोहवणिक पुरुषनी जेम पश्चादनुतापिक थय्य नडि. (तं इच्छामि  
णं देवाणुप्पियाणं अंतिए केवलपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए) अथी हूँ आप देवा-  
नुप्रिय पासैथी केवलि प्रज्ञप्त धर्मने सालणवानी असिलापा राधुं छु (अहासुहं  
देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह) त्पारे केशीकुमार श्रमणु तेने कलुं हे देवानुप्रिय !  
तमने जेमा आनद थायं तेम करे. पणु आ विषयमा विदण उचित नथी.  
(धम्मकहा) प्रदेशी राजाने त्पारे केशी कुमार श्रमणु मुनिधर्म अने गृहस्थधर्मने  
उपदेश आभ्यो. (जहा चित्तस्स तहेव गिहिधम्म पडिवज्जइ) अर्थात् ते धर्मकथा  
११ मा सूत्र प्रभाणु कहेवामा आवी छ. त्पारे प्रदेशी राजाने द्वादश विधरूप  
गृहीधर्मने स्वीकार कथी (जेणेव सेयंविद्या णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए)  
आ प्रभाणु गृहीधर्म धारण करीने ते प्रदेशी राजा जहां श्वेतांशिका नगरी छती  
ते तरङ्ग खाना थय गयो.

प्यकान काममोगात् ॥ तन्मन्त्रो विहरमाणान् पश्यन्ति । इष्टा एवम्-अनुपद  
 मक्ष्यमाण वचनम् अवार्त्तात्-अहो ! वित्तम् ॥ खलु अहम् अक्षयः-यद्येन, अपुण्य  
 पुण्यहीन, अकृतार्थ अकृतसिद्धिः, अकृतलक्षण-श्रुतलक्षणहीनः, द्विधीवर्जित-  
 लज्जालक्ष्मीहीन, हीनपुत्र चतुर्दशः-हीनपुण्य-क्षीणपुण्य-अत एव चातु-  
 कृष्णचतुर्दश्यां जात, दुर्गन्तान्त लक्षण-दुर्गन्त-दुष्टा सानम् अत-एव  
 अमनोज्ञ लक्षण यस्य स तथा-कुलधनपुत्रः, अहमस्मि । यदि-ये  
 अह मित्राणां-सहस्रानां वा-अथवा ज्ञातीनां-पितृव्यादीनां वा  
 द्विर्दश्यां वा वचनम् अभो-य-अवगणयमानेष्वम् तदा तर्हि खलु  
 मेव-मत्सहागतवज्रमणिविक्रयिपुत्रवदव, ठारि-कर्षमाणे, माम-  
 प्रासादरिषत वज्रमणिविक्रयिसङ्घो भूत्वा यावत् ॥ हरिप्यम्-  
 सुतसम्पन्नोऽभविष्यम् । तत्-त मास्तेतोः, तन-अनन्तरोत्तन  
 दृष्टान्तन, हे प्रदक्षिन् ! एवम्-इत्यम्, उच्यते-कथ्यत  
 पश्चादनुतापिको मा भवे, यथा-यन प्रकारेण सः-  
 दनुतापिकोऽभूत् । ॥ १५४ ॥

सूत्र-तए णं से पपसी राया सवु

जाव एव वयासी-णो खलु भते । अह  
 जहा चेव से पुरिमे अयमारण । त  
 अतिप केवलपन्नत्त धम्मो निसामि  
 मा पडिवध करेह । धम्मकहा, जहा  
 पडिवज्जह, जेणेव सेयविया नयरी

भाषा-ततः खलु स प्रदक्षी रा-

एवमवादीत्-नो खलु मदन्त । अह पश्चा-

‘तए णं से पपसी राया’ इत्यादि ।

सूत्राध-(तएण से पपसी राया रं

पर वह मदक्षी राया को-मात हो

‘तए णं से पपसी राया’ इत्यादि ।

सूत्राध-(तएण से पपसी राया सवु

ते प्रदेशी राजाने जेव प्राप्त भये । (किसि इमाण-

तओ आयरिआ पणत्ता, तं जहा-कलायरिए१, सिप्पायरिए२,  
धम्मायरिए३ । जाणासि ण तुम पएसी ! तेसिं तिण्ह आयरियाणं  
कस्स का विणयपडिवत्ती पउंजियव्वा ? । हंता ! जाणामि, कला-  
यरियस्स सिप्पायरियस्स उवलेवणं संमज्जणं वा करेज्जा, पुरओ  
पुप्फाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा भोयावेज्जा वा विउलं जीवियारिहं  
पीइदाणं दलएज्जा पुत्ताणुपुत्तियं वित्ति कप्पेज्जा२ जत्थेव धम्मायरियं  
पासिज्जा तत्थेव वंदेज्जा णमंसेज्जा सक्कारेज्जा सम्माणेज्जा कल्लाणं मंगलं  
देवय चेत्थं पज्जुवासेज्जा फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं  
पडिलाभेज्जा , पाडिहारिएणं पीढफलगसिज्जासंथारएणं उवनि  
भंतेज्जा३ । एवं जाणासि तहावि णं तुमं मम वाम वामेणं जाव वट्ठि-  
त्ता ममं एयमट्ठं अक्खामित्ता जेणेव सेयविया णयरी तेणेव पहा  
रत्थ गमणाए ॥ सू० १५६ ॥

छाया-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवम् अवादीत्-  
जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! कति आचार्याः प्रज्ञप्ताः १, हन्त ! जानामि त्रय

“तएण केसी कुमारसमणे” इत्यादि ।

सूत्रार्थ-“तएण” इसके बाद “केसी कुमारसमणे” केशीकुमारश्रमणने  
“पएसिं” रायं एवं वयासी” प्रदेशी राजा से ऐसा कहा “जाणासि णं तुमं  
पएसी ? कइ आयरिया पणत्ता-” हे प्रदेशिन्-! तुम जानते हो कितने  
आचार्य कहे गये हैं-? प्रदेशीने कहा-“हंता ? जाणामि-तओ आयरिया

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ-“तएणं” त्वां पछी ‘केसी कुमारसमणे’ देशी कुमार श्रमणे ‘पएसिं  
रायं एवं वयासी’ प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कछु ‘जाणासि णं तुमं पएसी ! कइ  
आयरिया पणत्ता’ हे प्रदेशिन् तमे जणु छै हे आचार्यों केटला प्रश्नना कछे-  
वाय छै ? प्रदेशीके कछु-‘हंता ? जाणामि-तओ आयरिया पणत्ता’ छै । अहंता !

ટીકા—‘તથા -સે પયસી ગયા’ શ્વાદિ—તત સ્વલ્પસ પ્રદેશી રાજા સબુદ્ધ બોધ પ્રાપ્તઃ, સન્ કશિકુમારધમમણ્ વન્દતે—મ્તૌતિ, યામત્-યામ રસદન ‘નમસ્પતિ સત્કરોતિ સમ્માનયતિ કલ્યાણ મજ્જલ દેવત ચૈત્ય પર્યુ-પાસ્ત’ શ્લોકેનાં પદાનાં સંજ્ઞાં બોધ્યઃ । પર્વા વ્યાख्या ગતા । વન્દનાધનન્તરમ્ યથમવાદીત્-હ મદન્ત ! અહ સ્વલ્પ પશ્ચાદનુતાપિકો નો મવિધ્યામિ યથા ધન પ્રકારણ મ -અન્તરોક્ત અપોહારકઃ—લોહણિક, પુત્ર્ય પશ્ચાદનુતાપિકોઽમક્ત, તત્ તરમાત્ કારણાદ્ અહ સ્વલ્પ દેવાનુશિષ્યાણાં મવનામ્ અન્તિક પાત્રે કેવલિ પ્રદ્ધપ્ત, ધર્મ મવસાગરનિમજ્જત્રાણિગજોદ્ધરણધુરીણં મુતપરિવ્રતશ્ચ નિશ્ચમયિતુ મ્નોતુમ્ શ્ચ્છામિ અમિલપામિ । કક્ષી પ્રાઽઽહ—હે દેવાનુશિષ્ય ! યથામુત્ત્વ યથા-તુમ્ય રોષતે યથા કુલ્લ શ્ચિ માષ કિન્તુ પ્રતિવર્ત્ત્વ વિસમ્મ મા કુલ્લ । ધર્મક્રમા અનગારાગારધર્મક્રમા યથા ચિત્રસ્ય દ્વાદશાનિકૈકલ્યતતમપ્રત્યગ્રોક્તા તથૈવ તદ્ નુસા રિપ્યવ વિશ્વયા । તત્ પ્રદેશી ગૃહિષ્મ દ્વાદશવિધ પ્રતિપદ્યતે સ્વીકરોતિ, પ્રતિપદ્ય સ યત્રવ શ્વતાંવિકા નગરી તત્રવ ગમ્મનાય પ્રાચારયત્ મનસિ નિશ્ચિતવાન । ॥૨૦૧૫૫॥

મૂલમ—તથા ણં કેસી કુમારસમણે પયસિં રાય એવ વયાસી-  
જાણાસિ ણં તુમ પયસી ! કહ આચરિયા પન્નત્તા ? હતા જાણામિ,

ટીકાર્થ—સ્પષ્ટ છે—‘વદહ જાવ એવ વયાસી’ મેં જો-યાવત્પદ આપા છે તસે—‘નમસ્પતિ-સત્કરોતિ-સમ્માનયતિ રશાણ મજ્જલે દેવત-ચૈત્ય-પર્યુપાસ્ત’ इन पर्व का सप्रह हुआ है, तात्पर्य—कहने का यह है कि—जब प्रदेशी राजा बोध का प्राप्त हो ग । तब उसने कक्षी कुमार धम्म की स्तुति की, वन्दे नमस्कार किया उनका सत्कार किया सम्मान किया और-कल्यणरूप मज्जरूप एव देवस्वरूप उन चतुष क्षान प्रदाता गुल्लव की उत्तरे पर्युपासना की, फिर उमन मवसागर में डूबत हुआ प्राणियों का उद्धार करने में समर्थ एत भुत चारित्ररूप धम को मुनन की अपनी अमिलापा प्रक की ॥ छ १५५ ॥

टीका—२५०८७ ॥ ‘वदह जाव एव वयासी’ भां ने यावत् पर आनेस ॥ तेधी ‘नमस्पति-सत्करोति सम्मानयति कल्याण-मज्जल-देवत-चैत्य-पर्युपास्त’ भां बोलने स श्रद्धा धरो ॥ तात्पर्य भां ॥ हे व्यास प्रदेशी राजान व्यास प्राप्त पर्व ज्यो त्वारे तेजे देयी कुमार धम्मणी स्तुति करी. तेभने नमस्कार क्वां तेभने सकार क्यो सम्मान क्यु भने कल्याणरूप मज्जरूप आने देवस्वरूप ते चैतयान प्रदाता गुल्लवनी तेभने पर्युपासना करी. त्वार पडी तेभजे जवसागरभां इनवा प्राणीजोना उद्धारभां समर्थ जेवा भुत चारित्ररूप धर्मेने साधनगानी पतानी

तओ आयरिआ पणत्ता, तं जहा-कलायरि१, सिप्पायरि२,  
धम्मायरि३ । जाणासि ण तुम पएसी ! तेसिं तिण्ह आयरियाणं  
कस्स का विणयपडिवत्ती पउंजियच्चा ? । हंता ! जाणामि, कला-  
यरियस्स सिप्पायरियस्स उवलेवणं संमज्जणं वा करेज्जा, पुरओ  
पुप्फाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा भोयावेज्जा वा विउलं जीवियारिहं  
पीइदाणं दलएज्जा पुत्ताणुपुत्तियं वित्ति कप्पेज्जा । जत्थेव धम्मायरियं  
पासिज्जा तत्थेव वंदेज्जा णमंसेज्जा सक्कारेज्जा सम्माणेज्जा कल्लाणं मंगलं  
देवय चेर्य पज्जुवासेज्जा फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं  
पडिलाभेज्जा , पाडिहारिणं पीढफलगसिज्जासंधारणं उवनि  
भंतेज्जा । एवं जाणासि तहावि णं तुमं मम वाम वामेणं जाव वट्ठि-  
त्ता ममं एयमट्ठं अक्खामित्ता जेणेव सेयविया णधरी तेणेव पहा  
रत्थ गमणाए ॥ सू० १५६ ॥

छाया-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवम् अवादीत्-  
जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! कति आचार्याः प्रज्ञप्ताः १, हन्त ! जानामि त्रय

“तएण केसी कुमारसमणे” इत्यादि ।

सुत्रार्थ—“तएण” इसके बाद “केसी कुमारसमणे” केशीकुमारश्रमणने  
“पएसि” रायं एवं वयासी” प्रदेशी राजा से ऐसा कहा “जाणासि णं तुमं  
पएसी ? कड आयरिया पणत्ता-” हे प्रदेशिन्-! तुम जानते हो कितने  
आचार्य कहे गये हैं-? प्रदेशीने कहा—“हंता ? जाणामि-तओ आयरिया

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—‘तएणं’ त्थार पछी ‘केसी कुमारसमणे’ केशी कुमार श्रमणे ‘पएसि  
रायं एवं वयासी’ प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कहु ‘जाणासि णं तुमं पएसी ! कड  
आयरिया पणत्ता’ हे प्रदेशिन् तमे न्हा । छ । के आचार्यो केटला प्रकारना कहु-  
वाय छ ? प्रदेशीने कहु-‘हंता ? जाणामि-तओ आयरिया पणत्ता’ छ । लक्ष्य ।



आचार्याः प्रहृष्टाः, तद्यथा-कलाऽऽचार्यः १, शिल्पाऽऽचार्यः २, धर्माऽऽचार्यः ३ ।  
जानासि म्लु त्वं प्रदेक्षिन् । तर्षा त्रिपाणामाचार्याणां कस्य का विनयप्रसिद्धिः  
प्रयोक्तव्या ? इन्त । जनामि-कलाऽऽचार्यस्य शिल्पाऽऽचार्यस्य उपलेखनं समार्जनं  
वा कुर्यात्, पुरतः पुण्याणि वा जानयत् माञ्जयत् मादयेत् मोजयेत् वा विपुलजीभिः  
तार्क्ष्यं प्रीतिदानं वद्यात् पौत्रानुपुत्रिणीं शर्करां वन्दयत् २ । यत्रैव धर्माऽऽचार्यः पश्येत्

पण्यता-” हां मन्दन्त-! जानता ह-तीन आचार्य कहे गये हैं । “त अहा-  
कलायरिय-सिप्पायरिय-धम्मायरिय” जो इस प्रकार से हैं-कलाचार्य-१ शिल्पा-  
चार्य-२ और तीसरा धर्माचार्य । ‘जानामि ण तुम पणसी-” तसिं तिप्प  
आ रिण्ण कस्स का विणयविविधं पठजियन्वा-” हे मन्दिन्-! तुम जानत  
हो इन तीन आचार्यों में किस आचार्यका कैसा विनय प्रकार करने का कहा  
गया है-” प्रदेक्षीने अहा-”इता ? जानामि हां मन्दन्त ३ जानता ह कला  
यरियस्स सिप्पायरियस्स उपलेखनं समन्जसं वा करञ्जा पुरजो पुण्याणि वा  
आमवेज्जा मदावेज्जा मोयाविज्जा वा विउल जीवियारिह पीडदाण दलएज्जा  
पुत्तामुपुत्तिय विसिं कप्येज्जा-” कलाचार्य और-शिल्पाचार्य का क्षीर में तल  
का मदन करना, उन्हें स्नान कराना, तथा-उनके सम्मुख पुष्पों । ला रंगोंके  
रूपमें रक्ता, पुष्पमाला आदिस उन्हें अलङ्कृत करना मोक्षन कराना उनकी  
आत्मीयिका के योग्य सहर्ष प्रीतिदान देना वस्त्रादि प्रदान करना एवं-पुत्र

अल् ४-त्रय आचार्यो ब्रह्मवाक् ३ “त अहा-कलायरिय सिप्पायरिय धम्मायरिय”  
ते आ प्रभावे ३ ब्रह्मवाक् १ शिल्पाचार्य २ जने, धर्माचार्य ३ “जानासि ण  
तुम पणसी तसिं तिप्प आयरिण्ण कस्स का विणयविविधं पठजियन्वा”  
हे प्रदेक्षिन् तमे अल् ४ ३ ते आ त्रय आचार्योर्मा अहा आचार्येने अर्ध अतने  
विनय प्रकार कस्वा ब्रह्मवाक् आ वे ३ १ प्रदेक्षीने अल् ४-“हा ? जानामि”  
हां मन्दन्त ! अल् ४ “कलायरियस्स सिप्पायरियस्स उपलेखनं समन्जसं  
वा करञ्जा पुरजो पुण्याणि वा आमवेज्जा मदावेज्जा मोयावेज्जा वा  
विउल जीवियारिह पीडदाण दलएज्जा पुत्तामुपुत्तिय विसिं कप्येज्जा  
कलाचार्य जने शिल्पाचार्यना शरीरमां देखती आत्मीय कस्वी  
तेभने स्नान करवपु तेभन् तेभनी साथे पुष्पानी कोट भूक्षी पुष्पमाण्य वपेक्षी  
तेभने अलङ्कृत कस्वा वेगज्ज करवपु तेभनी आलुविज्जा भागे योग्य सहर्ष प्रीति  
दान आपु जने पुत्र-पौत्र वपेक्षेना करवपु-पावपु योग्य आलुविज्जानी व्यवस्था

तत्रैव वन्देत् नमस्येत् सत्कुर्यात् सम्मानयेत् कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पशुपा-  
सीत्, प्रासुकैपणीयेन अशन पान खादिमस्वादिमेन प्रतिलम्भयेत्, प्रातिहारिकेण  
पीठफलकगङ्गासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयेत्, एवं च तावत् त्वं प्रदेशिन ! एवं जानासि  
तथापि खलु त्वं मम वामदामेन यावद् वर्तित्वाऽमम एतमर्थम् अक्षामि त्वा  
यत्रैव श्वेतविका नगरी तत्रैव प्राधारयत् गमनाय । ॥ सू० १५६ ॥

पौत्रादि के निर्वाह योग्य आजीविका लगा देना. इस प्रकार से यह कलाचार्य ७२-प्रकार की बलाओं को सिखानेवालों की, और—शिल्पाचार्य विज्ञान सिखानेवालों का विनयप्रतिपत्ति है। “जत्थेव धम्मायरिय पासिज्जा, तत्थेव वंदेज्जा, णमंसेज्जा, सक्कारेज्जा, सम्माणेज्जा, कल्लाणं—मंगलं—देवय चेइयं पज्जुवासे ज्जा—’ तथा—धर्माचार्य की विनय प्रतिपत्ति इस प्रकारसे है—जहाँ पर भी धर्माचार्य को देखलिया जावे, वही पर उनकी वन्दना करना, नमस्कार करना, सत्कार करना, सम्मान करना. जलयाण—मङ्गल—देवस्वरूप उन चेत्य ज्ञानदायक की पर्युपासना करना, तथा—“फासुएसणिज्जेण असण—पाण—खाडम—साडमेणं पडि—लामेज्जा, पाडिहारिणं पीढ—कलग—सिज्जा संथारएणं उवनिमंतेज्जा—” फासु एसणीय अन्न पान खादिम स्वादिम रूप चारा प्रभारके आहार से उन्हें प्रति लामित करना, पडिहारिपीठकलक शय्या संस्तारक को ग्रहण करने के लिये उनसे प्रार्थना करना—३ इस प्रकार की यह धर्माचार्य की विनयप्रतिपत्ति है—

“एव ताव तुम पएसी—? एव जाणासि तहाविण तुमं मम वामं वामेण

કરવી. આ પ્રમાણે આ કલાચાર્ય કે જે ૭૨ પ્રકારની કલાઓનું શિક્ષણ આપે છે અને શિષ્યાચાર્ય-વિજ્ઞાનનું શિક્ષણ આપનારની વિનયપ્રતિપત્તિ છે “જત્યેવ ધમ્માય-રિયં પાસિજ્ઞા, તત્યેવ વદેજ્ઞા, ણમંસેજ્ઞા સવકારેજ્ઞા, સમ્માણેજ્ઞા, કલ્લાણ મગલં દેવયં ચેદયં પજ્જુવાસેજ્ઞા” તેમજ ધર્માચાર્યની વિનયપ્રતિપત્તિ આ પ્રમાણે છે—જ્યા ધર્માચાર્ય દ્વારા કે તરતજ ત્યા તેમને વન્દન કરવા, નમસ્કાર કરવા સત્કાર કરવો, સન્માન કરવો, કલ્યાણ-મગળ દેવસ્વરૂપ તે જ્ઞાનદાયકની પર્યુવાસના કરવી તે. જ “પાસુણસણિજ્ઞેણ અસણપાણવાહમસાહમેણ પહિલામેજ્ઞા, પાહિહારિણ પીઠફલગસિજ્ઞા-સંચારણ ઉવનિમંતેજ્ઞા” પ્રાસુક એષણીય અચન-પાન આદિમ સ્વાદિય રૂપ ચાર પ્રકારના આહારથી તેમને પ્રતિલાભિત કરવા, સમ-પણીય પીઠફલક, શય્યાસ સ્તાર ને ગ્રહણ કરવા માટે તેમને વિનંતી કરવી ૩, આ બાતની આ ધર્માચાર્યની વિનય પ્રતિપત્તિ છે “एवं ताव तुम एसी ? एव जा-णासि त्हावि णं तुमं ममं वामं वामेणं जाव वड्ढित्ता मम एसमट्ठ अक्खामित्ता जेणेव सेयविया णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए” હે પ્રદેશિન! જ્યારે તમે આ પ્રમાણે

आचार्याः प्रपन्ताः, तद्यथा-कलाऽऽचार्यः १, शिष्याऽऽचार्यः २, धर्माऽऽचार्यः ३ ।  
जानासि मनु स्य प्रश्विन । तया श्रमणामाचार्याणां कस्य का विनम्रप्रतिपत्तिः  
प्रयाक्तव्या ? हन्त ! जानामि-कलाऽऽचार्यस्य शिष्याऽऽचार्यस्य उपलेपनं समार्जनं  
वा कुर्यात्, पुरतः पुष्पाणि वा आनयेत् मार्जयन् माद्वयत् भोजयत् वा विपुलं जीवि-  
ताहं प्रीतिदानं दद्यात् पौत्रानुपुत्रिणीं पूर्वा पश्यत् २ । यद्यपि धर्माचार्यं पश्यत्

पण्चा-” हां मदन्त-! जानता ह-तीन आचार्य कह गय हैं । “तं ब्रह्म-  
कलापरिण-सिष्यापरिण-धर्मापरिण” जो इस प्रकार से हैं-कलाचार्य-१ शिष्या-  
चार्य-२ और तीसरा धर्माचार्य । जानामि अ तुम पण्सी-” तसि तिष्ठ  
आचारिण परम वा विणम्रद्विषती पठञ्जियया-” ॥ पश्यन्-! तुम जानत  
हो इन तीन आचार्यों में किम आचार्यका फंसा विनय प्रचार करने का बड़ा  
गण है-! प्रदेशीन ब्रह्म-”हंता ? जानामि हां मदन्त ३ जानता ह कला  
परियस्त सिष्यापरियस्त उपलेपनं गमञ्जय वा । रेज्जा पुरओ पुष्पाणि वा  
भ्राजयज्जा मढावेजा मोयाविज्जा वा विउल जीविपारिह पीइदाण दल्लज्जा  
पुष्पाणुपुत्तिय विसिं वप्पज्जा-” कलाचार्य और-शिष्याचार्य के छरीर में तेल  
वा मदन करना, उन्हें स्नान कराना, रागा-उनके समक्ष पुरा । ला र भक्त  
रूप में रक्ता, पुष्पमाला आदिस उन्हें अलङ्कृत करना भोजन कराना उनकी  
आजीविता का योग्य महर्ष प्रीतिदान दना वगैरह प्रदान करना एवं-पुत्र

अतः १३-अथ आचार्यो ब्रह्मणः ॥ “तं ब्रह्म-कलापरिण सिष्यापरिण धर्मापरिण”  
ते आचार्यो ३ ब्रह्मणः १ शिष्यापरिण २ धर्मापरिण ३, “जानामि अ  
तुम पण्सी तसि तिष्ठ आचारिण परम वा विणम्रद्विषती पठञ्जियया”  
ह प्रदेशीन तसि जानो ॥ ३ है आचार्य आचार्योभां ह्या आचार्यो ३ अतः  
विनय प्रकार करना ब्रह्मणः आचार्यो ३, प्रदेशीन ३-“ह १ ? जानामि”  
हां मदन्त ? अतः १३ “कलापरियस्त सिष्यापरियस्त उपलेपनं गमञ्जय  
वा करज्जा पुरओ पुष्पाणि वा आणवेज्जा मढावेज्जा  
मोयावेज्जा वा विउल जीविपारिह पीइदाण दल्लज्जा पुष्पाणुपुत्तिय  
विसिं वप्पज्जा ब्रह्मणः आचार्यो ३ शिष्यापरिण शरीरमां तेलनी आदीय करना,  
तेजने रक्त रक्तवत् तेजस्व तेजनी रागी पुष्पानी कोट भुज्जी, पुष्पमाला वगैरह  
तेजने अलङ्कृत ह्या भोजन करवत्, तेजनी आलुबिका भाटे योग्य महर्ष प्रीति  
दान आदि अने पुत्र-पौत्र वगैरह करवत्-पापयुग्म आलुबिकानी व्यवस्था

तत्रैव वन्देत नमस्येत सत्कुर्यात् सम्मानयेत् कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपासीत, प्रासुकैषणीयेन अशनं पानं खादिमस्वादिमेन प्रतिलम्भयेत्, प्रातिहारिकेण पीठफलकशय्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयेत्, एवं च तावत् त्वं प्रदेशिन ! एवं जानासि तथापि खलु त्वं मम वामं वामेन यावद् वर्तित्वा मम एतमर्थम् अक्षामि त्वा यत्रैव श्वेतविका नगरी तत्रैव प्राधारयत् गमनाय । ॥ सू० १५६ ॥

पौत्रादि के निर्वाह योग्य आजीविका लगा देना. इस प्रकार से यह कलाचार्य ७२ —प्रकार की कलाओं को सिखानेवालों की, और—शिल्पाचार्य विज्ञान सिखानेवालों का विनयप्रतिपत्ति है । “जत्थेव धम्मायरिय पासिज्जा, तत्थेव वंदेज्जा, णमंसेज्जा, सक्कारेज्जा, सम्माणेज्जा, कल्लाणं—मंगलं—देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा—” तथा—धर्माचार्य की विनयप्रतिपत्ति इस प्रकारसे है—जहां पर भी धर्माचार्य को देखलिया जावे, वही पर उनकी वन्दना करना, नमस्कार करना, सत्कार करना, सम्मान करना, कल्याण—मङ्गल—देवस्वरूप उन चैत्य ज्ञानदायक की पर्युपासना करना, तथा—“प्रासुएसणिज्जेण असण—पाण—खाइम—साइमेण पडिलामेज्जा, पाडिहारिणं पीठ—फलक—सिज्जा संथारणं उवनिमंतेज्जा—” प्रासुकैषणीय अशन पान खादिम स्वादिम रूप चारां प्रकारके आहार से उन्हें प्रति लामित करना, पडिहारिपीठफलक शय्या संस्तारक को ग्रहण करने के लिये उनसे प्रार्थना करना—३ इस प्रकार की यह धर्माचार्य की विनयप्रतिपत्ति है—। “एवं ताव तुम एससी—? एवं जानासि तहाविण तुमं मम वामं वामेण

करवी. आ प्रभाणु आ कलाचार्य के ७२ प्रकारकी कलाओंतु शिक्षणु आपे छे अने शिक्षाचार्य—विज्ञानतु शिक्षणु आपनारनी विनयप्रतिपत्ति छे ‘जत्थेव धम्मायरिय पासिज्जा, तत्थेव वंदेज्जा, णमंसेज्जा सक्कारेज्जा, सम्माणेज्जा, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा’ तेभण धर्माचार्यनी विनयप्रतिपत्ति आ प्रभाणु छे—तथा धर्माचार्य दृष्टाय के तरतण त्या तेभने वन्दन करवा, नमस्कार करवा सत्कार करवा, सम्मान करवा, कल्याण—मङ्गल देवस्वरूप ते ज्ञानदायकनी पर्युपासना करवी तेभण “प्रासुएसणिज्जेण असणपाणखाइमसाइमेण पडिलामेज्जा, पाडिहारिणं पीठफलकसिज्जा संथारणं उवनिमंतेज्जा” प्रासुकैषणीय अशन—पान खादिम स्वादिम रूप चारा प्रकारकरवा अह्दरथी तेभने प्रतिलामित करवा, सम्पर्षणीय पीठफलक, शय्यासंस्तार ने ग्रहण करवा माटे तेभने विनती करवी उ, आ ज्ञातनी आ धर्माचार्यनी विनय प्रतिपत्ति छे. “एवं ताव तुम एससी ? एवं जानासि तहाविण तुमं मम वामं वामेण जाव वड्ढितो मम एवमट्ठ अक्खामित्ता जेणेव सेयविया णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए” छे प्रदेशिन ! तथादे तेभ आ प्रभाणु

टीका—“सग ण केसीकुमारसमणे” इत्यादि—तत स्तु कथाकुमारभरण  
 प्रदेक्षिन् रानानम् एवमथादीत्—हे पदक्षिन् ! त्व जानासि यत् कति—कियन्त  
 आचार्याः प्रज्ञताः ? इति प्रश्ने प्रवृत्त्या प्राह इन्त ! जानामि, यत् त्रया—त्रिस  
 स्यकाः आचार्याः प्रज्ञताः, तथया—कलाऽऽचार्य—शाससति प्रकारकलाशिक्षकः १,  
 शिल्पाऽऽचार्यः—विज्ञानशिक्षक २, धर्माऽऽचार्यः—धर्मोपदेशक ३ । पुन केसी  
 पृच्छति—हे प्रदेक्षिन् ! त्व जानासि स्तु यत् तेषाम्—अनन्तरोक्तानां त्रयाणामा  
 चार्याणां मध्ये कस्याऽऽचार्यस्य—का—कीदृशा ? विनयप्रतिपत्ति—विनयप्रकार  
 प्रयोक्तव्या कस्यस्या ? । इन्त ! ज्ञानामि, तत्र कलाऽऽचार्यस्य शिल्पाऽऽचार्यस्य  
 च उपलेपन तैलाम्यङ्ग, तथा—समञ्जन—स्नपन कुर्यात्—स्नपये दित्यर्थः, तथा पुनैत —  
 तयोरे, पुण्याणि वा समानयेत्, मण्डयेत्—पुष्पमास्यादिनाञ्जल्युर्वात्, मौञ्जयेत्—  
 मौञ्जिन कारयेत्, विपुल—बहु जीविताह—जीवनयोग्य प्रीतिदान सहय वस्त्रादिदान  
 दद्यात्, तथा पुनातुपौत्रिकी—पुत्रपौत्रादि निर्वाहयोग्यां दृष्टि जीविकं कल्प  
 येत्—सम्पादयेत् २ । इति कलाऽऽचार्य—शिल्पाऽऽचार्ययोर्विनयप्रतिपत्तिस्तु कथा  
 धर्माऽऽचार्यस्य तां कथयितु प्रक्रमत—यत्रैव—यस्मिन्तत्र स्थले धर्माऽऽचार्य पश्येत्

आव वक्षिषा मम एयमह अस्त्वामित्ता जेषेव सेपविया ययरी तेषेव पदारेभ्य  
 गमथाए—’ हे प्रदेक्षिन् ३ अथ तुम इस प्रकार से विनयप्रतिपत्ति की जानत  
 हो तब भी तुमने मेरे प्रति प्रतिकूल रूप व्यवहार से यावत् प्रवृत्ति करके उस  
 प्रतिकूल व्यवहार जनित अपराध को क्षमा कराये बिना अर्थात्तबिका नगरीकी  
 वहीं पर जाने का निश्चय किया ॥ सू० १५६ ॥

टीका—स्पष्ट है, “कल्लाणं मगलं देवयं वेइय पञ्जुवासेऽजा—” इन पदों  
 की व्याख्या कर्तुं सूत्रमें की जा चुकी है । “वासं वामेज—” इस यावत् पदसे—  
 “दण्डं दण्डेन—प्रतिकूल प्रतिकूलेन—प्रतिलोम प्रतिलोमेन—विपर्यास विपर्यासेन” इन  
 पदों का समग्र हुवा है, इन पदों की व्याख्या पीछे की जा चुकी है ॥ सू० १५६ ॥

विनय प्रतिपत्ति ने आये कि कर्ता को तभी को भास अथे प्रतिकूल रूप व्यव  
 हारकी यावत् प्रवृत्ति करीने प्रतिकूल व्यवहार जनित अपराधने क्षमा कसोभा वज  
 र्था तबेताजिका नगरी से त्वा व्याने तभी निश्चय करी ॥ सू. १५६ ॥

टीका—स्पष्ट है “कल्लाण मगलं देवयं वेइय पञ्जुवासेऽजा” आ पढोनी  
 व्याख्या बोधा सूत्रमा आनी है “वासं वामेज” भा व्यानेत यावत् पदकी “दण्ड  
 दण्डेन प्रतिकूलप्रतिकूलेन प्रतिलोम प्रतिलोमेन विपर्यास विपर्यासेन” आ पढोनी  
 समग्र बोधा है आ पढोनी व्याख्या पढेता करवाता आनी है ॥ १५६ ॥

तत्रैव-तस्मिन्नेव स्थले वन्देत नमस्येत सत्कुर्यात् सन्मानयेत् कल्याणं मङ्गलं दैवतं  
 चैत्यं पर्युपासीत” एतेषां व्याख्या चतुर्थसूत्रतो बोध्या, तथा तं धर्माचार्यं प्रासुकै  
 पणीयेन-अचित्तकल्पनीयेन अशन-पान-ग्वादिम-खादिमेन-अशनादि चतुर्विंशधाहारेण  
 प्रतिलभ्येत्-चतुर्विधाहार तस्मै दद्यादिति भावः, तथा तं प्रातिहारिकेण-पुनः  
 समर्पणीयेन पीठफलकशय्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयेत्-तद्ग्रहणे प्रार्थयेत् ३ । एवं  
 तावत् प्रथमं प्रदेशिन् ! २ मेवम्-अनन्तरोक्तप्रकारां विनयरूपां प्रतिपत्तिं जानासि,  
 तथाऽपि खलु त्वं मम वामवामेन-प्रतिकूलतरेण व्यवहारेण यावत्-यावत्पदेन  
 “दण्डदण्डेन, प्रतिकूलप्रतिकूलेन, प्रतिलोम-प्रतिलोमेन विपर्यासविपर्यासेन”  
 इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, व्याख्याऽपि तत्रैव विलोकनीया, वर्तित्वा-उक्तव्य-  
 वहारेण युक्तो भूत्वा मम एत-मया सह प्रतिकूलव्यवहारजनितम् अर्थम-  
 अपराधम् अक्षामयित्वा यत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव गमनाय प्राधारयत्-  
 निश्चय कृतवान् । ॥ सू० १५६ ॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया केसि कुमारसमणं एवं वयासी  
 एवं खलु भंते ! मम एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-  
 एवं खलु अहं देवाणुप्पियाणं वासंवामेणं जाव वट्ठिए तं सेयं  
 खलु मे कल्लं पाउप्पभाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमल्लुम्मिलिय-  
 म्मि अहापंडुरे पभाए रत्तासोगकिसुय-सुयमुह-गुज्झ-रागसरिसे  
 कमलागरनलिणिसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे  
 तेयसा जलंते अंतेउरपरियालसद्धि संपरिवुडे देवाणुप्पिए वंदि-  
 तए नमंसित्तए एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएणं खामित्तएत्ति  
 कट्ठु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

तए णं से पएसी राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव  
 तेयसा जलंते हट्ठुट्ठु जाव हियए जहेव कूणिए । तहेव निग्गच्छइ,  
 अंतेउरपरियालसद्धि संपरिवुडे पचविहेणं अभिगमेणं वंदइ नमं-  
 सइ, एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएणं खामेइ ॥ सू० १५७ ॥

छाया—तत् स्मृतं स प्रदेष्टी राजा कश्चिन् कुमारभक्षणमेवमवादीत्—ए।  
स्मृतं मन्त ! मम एतदृष आध्यात्मिकं यावत् समुद्रपयत—एव स्मृतं अह दश  
नुप्रियाणां वामवामन यावत् वर्तित, तत् भयं स्मृतं मे कृतं। प्रादुष्यमातायां  
रजन्यां पुष्पोत्पलकमलकोमलोन्मीलित अयाऽऽप्याङ्गुर पमात रक्ताशोक किञ्चु-  
कुम्भुल-गुजार्द्रागसरश्चे कमलाकरनलिनीपण्ड-बोधक उत्थित धर महसगम्भं।  
दिनकर तमसा न्वलति अन्त पुष्परिचारे सार्द्धं सपरिपुतो ठधानुविधानं नन्दि

मूलार्थ—“तएण स पणसी गया—” इत्यादि

“तएण से पणसी गया कसि कुमारसमग एव वयासी—” ३५९

इसक बाद—प्रदेष्टी राजाने केष्टी कुमारसमग स सा कहा—“एव स्मृतं मत !—  
मम दयारुच अक्षस्थिण जाव समुपपज्जित्वा” इ मदन्त—३ मुस एसा  
आध्यात्मिक यावत् सन्द्य उत्पन्न हुवा “एव स्मृतं अह दशानुप्रियाणा वाम  
वामन जाव बद्धिण त सेय स्मृतं मे कल्ल पाउण्णमायाण रयणीण पुत्तुप्पलकमल  
कामनुम्मिलिपम्मि अहा पाङ्गुर पमायाण रत्ता सा। सिमु—सुपमुह गुज्जगा-  
सरिसे, कमलाकरनलिनिपण्डबोद्ध—” मैने आप दधानुप्रिय क साथ प्रति  
कल रूप स यावत् व्यवहार किया है, अत—मुस यही भेयस्सर है कि—मैं  
कल जब रजनी प्रमात्पुक्त हो जावगी, अर्थात्—रात्रि समाप्त हो जावगी  
और कमल तथा—हरिणविशुपक नत्र ये दोनों विकसित हो जावगे, अर्थात्  
कमल जय खिल जावना, और—हरिणविशुप की आँखें छपन कलने क बाद  
खुल जावगी तथा—प्रमातका रङ्ग अब पीन पकड़ हो जावगा रक्ताशोक किञ्चु-

‘तएव स पणसी गया इत्यादि।

मूलार्थ—‘तएण स पणसी गया कसि कुमारसमग एव वयासी ॥३५७॥  
त्या ५७१ प्रदेष्टी राजाने केष्टीकुमार अभक्षने आ प्रमाने कश्चि ‘एव स्मृतं मत !  
मम दयारुच अक्षस्थिण जाव समुपपज्जित्वा’ के भाव। केवे आध्यात्मिक  
यावत् सन्द्य उत्पन्न भये। “एव स्मृतं अह दशानुप्रियाणा वाम वामन जाव  
बद्धिण त सेय स्मृतं मे कल्ल पाउण्णमायाण रयणीण पुत्तुप्पलकमलकोमल  
नुम्मिलिपम्मि अहापाङ्गुरे पमाण रत्तामोपकिमु सुपमुहगुज्जगासरिस  
कमलाकरनलिनिपण्डबोद्ध य” मै आप देधानुप्रियनी साथ प्रतिदूषणया यावत्  
अवधार भये। तेही भास माटे केवल बाद अगस्तर के ते हु आपनी हाथ  
व्यापरे रात्रि प्रभाव मुक्त भयं भये, केहे के रात्रि, पुरी भयं भये अने कमल  
तथा दक्षिण विरोचना नेत्रे विकसितं भयं भये, के हे के कमल व्यापरे विभिन्न  
भयं भये अने दक्षिण विरोचनी आँखें निद्रा त्याग भयं गहर उषरी भये तेमच  
प्रभाने २४ व्यापरे चेत भयं (पीणे अने अँधे) भयं भये, रक्ताशोक किञ्चु

त्वा नमस्यित्वा एतमर्थं भूयो भूयः सम्यग् विनयेन क्षामयितुम्, इति कृत्वा यामेव दिशं प्रादुर्भूतः, तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ततःखलु स प्रदेशी राजा कल्य प्रादुप्रभातायां रजन्यां यावत् तेजसा ज्वलति हृष्टतुष्ट यावद् हृदयः यथैव कूणिकः तथैव निर्गच्छति अन्तःपुरपरि-

पलाश-शुकमुख एवं-गुञ्जा-रुत्ती के अघस्तन का अर्धभाग जैसा लाल. तथा-सरो-वरो में कमलिनी कुल का विकाशक, “उट्टियम्मि सूरें सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते—” ऐसा सहस्रकिरणोंवाला एवं-दिनकर्ता सूर्य जब अपने तेज से प्रज्वलित होता हुआ आकाश में उदित हो जावेगा, तब—“अते उर परियाल-सद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पिए वंदित्तए नमंसित्तए एयमट्ठ भुज्जो-२ सम्मं विण-एणं-खामित्तए त्ति कट्ठुं जामेव दिसिं पाउब्भूए. तामेव दिसिं पडिगए” मैं अन्तःपुर परिवार से युक्त होकर आप देवानुग्रिय की वन्दना-नमस्कार और-पूर्वोक्त अपराध रूप अर्थ को विनय के साथ प्रशस्त नम्र भावसे बार-२ क्षमापना के लिये आऊंगा. इस प्रकार केशी स्वामी से निवेदन कर वह जिस दिशा से आया था-उसी दिशा की ओर चला गया. “तएणं से पएसी राया कल्लं पाउप्प-मायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते—” इसके बाद दूसरे दिन जब रजनी रात्री प्रभातप्राय-समाप्त हो चुकी और-१ भात हो गया यावत् सूर्य अपने तेज से देदीप्यमान हो उठा-तब वह-“हट्ठ तुट्ठ जाव हियए जहेव कूणिए तहेव निग्गच्छ—” हृष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाला होकर कूणिक नरेश की तरह अपने स्थान से निकला

पलाश, शुकमुख અને શુભના નીચેના અર્ધા ભાગ જેવો લાલ તેમજ સરોવરોમાં કમલીની કુલને।  
વીનાશક ‘ઉટ્ટિયમ્મિ સૂરે સહસ્રસ્રસિમ્મિ દિણયરે તેયસા જલંતે’ એવા સહસ્ર  
કીરણોવાળો અને દીનકર્તા સૂર્ય જ્યારે પોતાના તેજથી પ્રજ્વલીત થતો આકાશમાં  
ઉદય પામશે, ત્યારે અંતેરપરિયાલસદ્ધિ સંપરિવુડે દેવાણુપ્પિયે વંદિત્તએ નમ  
સિત્તએ એયમટ્ઠ ભુજ્જો ૨ સમ્મન વિણેણં સ્વામિત્તએ ત્તિ કટ્ઠું જામેવ દિસિં  
પાઉબ્ભૂએ તામેવ દિસિં પડિગએ” ત્યારે અંતઃપુર પરિવારની સાથે આપ દેવાનુ-  
ગ્રિયને વદન અને નમસ્કાર કરવા માટે અને પૂર્વેકત અપરાધરૂપ અર્થને સવિનય  
પ્રશસ્ત નમ્ર ભાવથી વાર વાર ક્ષમાપના માટે આવીશ. આ પ્રમાણે કેશીકુમારને  
વિનંતી કરીને તે જે દિશા તરફથી આવ્યો હતો તેજ દિશા તરફ જતો રહ્યો.  
“તણ સે પએસી રાયા કલ્લ પાઉપ્પમાયાએ રયણીએ જાવ તેયસા જલંતે”  
ત્યારબધી બીજા દિવસે જ્યારે રાત્રિ પૂરી થઈ અને પ્રભાત થયું યાવત સૂર્ય પોતાના  
તેજથી પ્રકાશિત થઈ ગયો. ત્યારે તે “હટ્ઠતુટ્ઠ જાવ હિયએ જહેવ કૂણિએ તહેવ  
નિગ્ગચ્છ” હૃષ્ટ તુષ્ટ યાવત હૃદયવાળો થઈને કુણિક રાજાની જેમ પોતાના સ્થાનથી



छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा कश्चिन् कुमारसमणमेवमवादीत्—ए।  
खलु मदन्त ! मम एतद्रूप आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत—एव खलु अहं दवा-  
नुप्रियाणां वामवामेन यावत् वर्तितः, सन् धेय खलु मे कृतः। प्रादुशमातायां  
रजन्यां फुल्लोत्पलकमलकोमलोन्मीलिते अयाऽऽप्याम्हुर प्रभाते रक्ताशोक-किञ्चु-  
क्षुक्लुक्-गुआर्द्धरागसदृशे कमलाकरनलिनीपण्ड-बोधके उत्पिते घरे सरसरस्र-  
दिनकर तेजसा ज्वलति अन्तःपुरपरिवारे सादं सपरिप्लुते देवानुप्रियाय वदि

मूलार्थ—“तएण से पणसी राया—” इत्यादि

‘तएण से पणसी राया केसि कुमारसमण एव वयासी—’ ३५९

इसक बाद—प्रदेशी राजाने केसी कुमारसमण से सा कहा—“एव खलु मत !—  
मम एयान्वे अङ्गत्थिए जाव समुप्पज्जित्वा” इ मदन्त—३ सुख प्रसा  
आध्यात्मिक यावत् सत्त्व उत्पन्न हुआ “एवं खलु अहं दवानुप्रियाण वाम  
वामेण जाव वदिए त सेय खलु मे कल पाउप्पमायाए रयणाए फुल्लुत्पलकमल  
कामलुम्मिलियम्मि अहा पाहुरे प्रभायाए रसा सा। सुय—सुयमुह गुज्जराग  
सरिसे, कमलागरनलिणिसद्वोहए—” मैंने आप देवानुप्रिय के साथ प्रति-  
कूल रूप से यावत् व्यवहार किया है, अतः—सुख यही भेयम्बर है कि—मैं  
कल जब रजनी प्रभातयुक्त हो जावेगी, अर्थात्—रात्रि समाप्त हो जावेगी  
और कमल तथा—हरिणविशेषके नेत्र य दोनों विकसित हो जावेगे, अर्थात्  
कमल जब खिल जावेगा, और—हरिणविशेष की आंखें ध्यान करलेने के बाद  
खुल जावेगी तथा—प्रभातका रङ्ग जब पीत पवन हो जावेगा रक्ताशोक-किञ्चु-

‘तएण से पणसी राया इत्यादि।

मूलार्थ—‘तएण से पणसी राया केसि कुमारसमण एव वयासी ॥३५९॥  
तार पछी प्रदेशी राजाने केसी कुमार समणने अ प्रभाते अहं ‘एव खलु मत !  
मम एयान्वे अङ्गत्थिए जाव समुप्पज्जित्वा’ के अवत ! मेरे आध्यात्मिक  
यावत् सत्त्व उत्पन्न भये “एव खलु अहं देवानुप्रियाण वाम वामेण जाव  
वदिए त सेय खलु मे कमल पाउप्पमाया ए रयणीए फुल्लुत्पलकमलकोम-  
लुम्मिलियम्मि अहापाहुरे प्रभाए रसासोगन्धिसुसुयमुहगुज्जरागसरिस  
कमलागार नलिणिसद्वोह ए” मैं आप देवानुप्रियानी साथे प्रतिद्वन्द्वयता यावत  
व्यवहार भये छ। तेरी आरा भाटे मेरे वात अन्तर छ है हूँ आपकी अह  
व्यारे रात्रि प्रभात युक्त अर्थ करी, ओहवे के रात्रि, पुरी धर करी, अने कमल  
तथा हरिण विशेषनी नेत्रो विकसित धर करी ओहवे के कमल व्यापे विकसित  
धर करी अने हरिण विशेषनी आंखो निरा त्याग करी जाह उघरी करी तेमअ  
प्रभातने कमल व्यापे पीत पवन (पीला अने सहेर) धर करी, रक्ताशोक किञ्चु

त्वा नमस्यित्वा एतमर्थं भूयो भूयः सयगं विनयेन क्षामयितुम्, इति कृत्वा यामेव दिशं प्रादुर्भूतः, तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ततःखलु स प्रदेशी राजा कल्य प्रादुप्रमातायां रजन्यां यावत् तेजसा ज्वलति हृष्टतुष्ट यावद् हृदयः ग्रथैव कूणिकः तथैव निर्गच्छति अन्तःपुरपरि-

पलाश-शुकमुख एवं-गुञ्जा-गत्ती के अघस्तन का अर्धभाग जैसा लाल. तथा-सरो-  
वरों में कमलिनी कुल का विकासक, “उद्विगमि स्ररे सहस्सरस्सिमि दिणयरे  
तेयसा जलंते—” ऐसा सहस्रकिरणोंवाला एवं-दिनकर्ता सूर्य जब अपने तेज  
से प्रज्वलित होता हुआ आकाश में उदित हो जावेगा, तब—“अते उर परियाल-  
सद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पिए वंदित्तए नमंसित्तए एयमट्ठ भुज्जो—२ सम्मं विण-  
एणं—खामित्तए त्ति कट्ठुं जामेव दिस्सिं पाउब्भूए. तामेव दिस्सिं पडिगए” मैं  
अन्तःपुर परिवार से युक्त होकर आप देवानुग्रिय की वन्दना-नमस्कार और-  
पूर्वोक्त अपराध रूप अर्थ को विनय के साथ प्रशस्त नम्र भावसे बार-२ क्षमापना  
के लिये आऊंगा. इस प्रकार केशी स्वामी से निवेदन कर वह जिस दिशा से  
आया था-उसी दिशा की ओर चला गया. “तएणं से पएसी राया कल्लं पाउप्प-  
भायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते—” इसके बाद दूसरे दिन जब रजनी रात्री  
प्रभातप्राय-समाप्त हो चुकी और-१ भात हो गया यावत् सूर्य अपने तेज से देदीप्यमान  
हो उठा-तब वह—“हट्ठ तुट्ठ जाव हियए जहेव कूणिए तहेव निग्गच्छ—” हृष्ट-  
तुष्ट यावत् हृदयवाला होकर कूणिक नरेश की तरह अपने स्थान से निकला

पलाश, शुकमुख અને ગુળના નીચેના અર્ધા ભાગ જેવો લાલ તેમજ સરોવરોમાં કમલીની કુલને  
વીનાશક ‘ઉદ્વિગમિ સ્રરે સહ’સરસ્સિમિ દિણયરે તેયસા જલંતે’ એવા સહસ્ર  
કીરણોવાળો અને દીનકર્તા સૂર્ય જ્યારે પોતાના તેજથી પ્રજ્વલીત થતો આકાશમાં  
ઉદય પામશે, ત્યારે અંતેરપરિયાલસદ્ધિ સંપરિવુડે દેવાણુપ્પિય વંદિત્તએ નમ  
સિત્તએ એમટ્ઠ ભુજ્જો ૨ સમ્મં વિણેણં’ ખામિત્તએ ત્તિ કટ્ઠું જામેવ દિસિં  
પાઉબ્ભૂએ તામેવ દિસિં પડિગએ” ત્યારે અંતઃપુર પરિવારની સાથે આપ દેવાનુ-  
ગ્રિયને વદન અને નમસ્કાર કરવા માટે અને પૂર્વેકત અપરાધરૂપ અર્થને સવિનય  
પ્રશસ્ત નમ્ર ભાવથી વારંવાર ક્ષમાપના માટે આવીશ. આ પ્રમાણે કેશીકુમારને  
વિનંતી કરીને તે જે દિશા તરફથી આવ્યો હતો તેજ દિશા તરફ જતો રહ્યો.  
“તેણ” સે પએસી રાયા કલ્લ પાઉપ્પભાયાએ રયણીએ જાવ તેયસા જલંતે”  
ત્યારપછી ખીજ દિવસે જ્યારે રાત્રિ પૂરી થઇ અને પ્રભાત થયું’ યાવત સૂર્ય પોતાના  
તેજથી પ્રકાશિત થઇ ગયો. ત્યારે તે “હટ્ઠતુટ્ઠ જાવ હિયએ જહેવ કૂણિય તહેવ  
નિગ્ગચ્છ” હૃષ્ટ તુષ્ટ યાવત હૃદયવાળો થઇને કુણિક રાજાની જેમ પોતાના સ્થાનથી

बारै सार्द्धं सपरिवृतं पञ्चविधन अभिगमन वन्दते नमस्पति, एतमर्थं भूयोभूय  
सम्यग विनयन धामपति ॥ सू० १५७ ॥

टीका—“तए ण पएसी राया” इत्यादि—तत् खलु स प्रदक्षी राजा कश्चिन्  
कुमारभ्रमणम्, एवमवादात्—हे मदन्त ! एव खलु मम एतद्रूपाः—अनुपद बह्वभाष  
स्वरूप आध्यात्मिक—आत्मगत धर्मापनारूपोर्ध्वोर्ध्व इव, यावत्—यावत्पदेन “चि  
न्तितः, कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः सकल्पः” इत्येषां पदानां सङ्गो हो बोधः, तत्र  
“अतएउपरियालसाद्धि सपरिवुड पञ्चविहण अभिगमेण वदइ-नमसइ—” निकल  
ते ही वह अन्तःपुर परिवार से परिवेष्टित हो गया इस तरह से प्रदक्षी राजाने  
पाँच प्रकारक अभिगम से केक्षीकुमार भ्रमण की वन्दनाकी उनकी स्तुति की  
“एगमइ भुज्जो भुज्जो-सम्म विणएण त्थामेइ—” स्तुति नमस्कार करके फिर उसने  
अपने प्रतिवृत्त आचरण से जनित अपराध की बार-बार अच्छी तरह से विनय  
भावसे युक्त हो कर क्षमा कराई, अर्थात्-क्षमा मांगी—

टीकार्थ—प्रदक्षी राजाने केक्षीकुमारभ्रमण से इस प्रकार कहा—हे मदन्त !  
अब सुन इस प्रकार का यह आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुआ कि—मैं अपने  
प्रतिवृत्त आचरण से जनित अपराध की आप से बार-बार क्षमा करावे, यह विचार  
आत्मगत होन से पहले तो अर्द्ध की तरह उत्पन्न हुआ अतः—उस आध्या-  
त्मिक रूपसे प्रकट किया गया है बाद में यावत् पदसे चिन्तित-कल्पित—  
प्रार्थित-मनोगत इन विषयों का लक्षा हुआ है कि—यह विचार स्मरणरूप बन

नीकल्ले “अतएउपरियालसाद्धि सपरिवुड पञ्चविहण अभिगमेण वदइ-  
नमसइ” नीकल्ले ज ते पेटाना अतएउपर परिवारधी वीटणां जये आ  
प्रभावे तेषां जये आ प्रदेसी राजाके केक्षी कुमारभ्रमणनी पास जेधने पाँच प्रकारका  
अभिगमधी केक्षी कुमारभ्रमणनी वन्दना करी तेमनी स्तुति करी नमस्कार कये  
“एगमइ भुज्जो २ सम्म विणएण त्थामेइ” स्तुति तेमज नमस्कार करीने पछी  
तेजे पेटाना प्रतिवृत्त आचरणधी जयेत अपराधनी बारबार सारी रीते विनय  
भावधी युक्त कएने क्षमा माग्री

टीका—प्रदेसी राजाके केक्षीकुमारभ्रमणने आ प्रभावे बहुत—दे कहत ! जये  
मने आ जतने आ आध्यात्मिक विचार उत्पन्न कये छे के दु भास प्रतिवृत्त आचर-  
णधी जयेत अपराध जइत आपकी पासधी बारबार क्षमा मागु आ विचार  
आत्मगत होलाधी जइत ते अ कुरनी जेअ उत्पन्न कये। जेधी तेने आ आध्यात्मिक  
रूपे प्रकट करवाभा आये छे त्थार पछी यावत् पदधी “चिन्तितः, कल्पितः  
प्रार्थित मनोगत”, आ विधेयधी युक्त कये छे, विचारने जे चिन्ति पदधी

चिन्तितः-पुनः पुनः स्मरणरूपो विचारो द्विपत्रित इव, ततः कल्पितः स एव व्यवस्थायुक्तः 'क्षामधेगम्' इति परिणतो विचारः पल्लवित इव, स एव प्रार्थितः- इष्टरूपेण स्वीकृतः पुष्पित इव, मनोगतः मनसि दृढरूपेण निश्चयः "इत्थमेव मया कर्तव्यम्" इति विचारः फलित इव समुदपद्यत-समुत्पन्नः-एवं खलु अहं देवानुप्रियाणां-भक्तां वामवामेन यावत्-यावत्पदेन "दण्डदण्डेन प्रतिकूलप्रतिकूलेन प्रलोलोम प्रतिलोमेन विपर्यासविपर्यासेन" इत्येषां सर्वे हो बोध्यः, एषां व्याख्यानं पूर्व गता, वर्तितः-प्रवृत्तः तत्-तस्मात्कारणात् मे मम श्रेयः-प्रशस्तं यत्

गया. अर्थात्-मुझे अपने अपराध की आपसे क्षमा कराना है. ऐसी स्मृति मुझे बार-बार आने लगी. इसलिये-यह विचार द्विपत्रित अङ्कुर की तरह प्रथम अवस्था की अपेक्षा कुछ विशेष पुष्ट होने से चिन्तित प्रकट किया गया है। तथा वही विचार जब व्यवस्थायुक्त हो गया. कि मुझे अवश्य ही इस रूपसे क्षमा कराना है तो द्वितीय अवस्था की अपेक्षा और-अधिक पुष्ट हो जाने के कारण यह पल्लवित हुवे अङ्कुर की तरह कल्पित पद से विशेषित किया गया है. तथा जब वही विचार इष्ट रूप से स्वीकृत कर लिया गया. तो वह पुष्पित हुवे अङ्कुर की तरह हो गया. और जब वही विचार मनमें दृढ रूपसे निश्चय की स्थिति में परिणत हो गया के ऐसा ही मुझे करना है. तो फलित हुवे अङ्कुर की तरह वह हो गया. क्या विचार उत्पन्न हुवा इसी बात को वह अत्र प्रकट करता है कि हे भदन्त-! मैंने आप देवानुप्रिय के साथ बहुत अधिक प्रतिकूलरूपसे. यावत् दण्ड दण्डरूपसे. अतिशय प्रतिकूलरूपसे व्यवहार किया है.

विशेषित करवाभा आये। छ तेनु करणु आ छ के ते विचार स्मरणरूप थछ गये। इतो ओटले के मने मारा अपगधनी आपश्रीना पासेथी क्षमा कराववी छे, जेवी स्मृति बार-बार आववा लागी, जेथी आ विचार द्वि पत्रित अङ्कुरनी जेम प्रथम अवस्था करता उधक विशेष पुष्ट होवाथी चिन्तित रूपमा प्रकट करवाभा आये छे. तथा तेज विचार न्यारे व्यवस्थायुक्त थछ गये-के मारे ओछस आविने क्षमा याचना करवी छे तो द्वितीय अवस्था करता वधारे ते विचार पुष्ट थछ नवाथी जे पल्लवित थयेला अङ्कुरनी जेम कल्पित पदथी विशेषित करवाभा आये छे. तेमज न्यारे ते ज विचार इष्ट रूपथी स्वीकृत थछ गये। तो ते पुष्पित थयेल अङ्कुरनी जेम थछ गये। अने न्यारे ते विचार मनमा दृढरूपथी निश्चयनी स्थितिमा परिणत थछ गये। के जेपुं ज मारे करवु छे तो इलित थयेल अङ्कुरनी जेम ते थछ गये। शे। विचार उत्पन्न थये।? जेज वातने हुवे स्पष्ट करता कहे छे के-छे लहत। मे आप देवानुप्रियनी साथे जहुज प्रतीकूल रूपथी यावत् दंड दंड रूपथी-अतिशय प्रतीकूलरूपथी

बारै साद सपरिहृता पञ्चविधन अभिगमन वन्दन नमस्यति, एतमर्थं भूयोभूय सन्ध्या विनयन धामयति ॥ सू० १५७ ॥

टीका—“तथा पयसी राया” इत्यादि—ततः स्तुतुः स प्रदक्षी गत्वा कश्चिन् कुमारभक्षणम्, एवमवादात्—इ मन्त ! एव स्तुतुः सम एतदूपाः—अनुपद बहुमान स्वरूपः आध्यात्मिकः—आत्मगत धामापनारूपोर्ध्वरश्मि, चावत् यात्यदेन “चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत सकल्पः” इत्येषां पदानां समूहो हो बोधः, तत्र “अंतउपरियालसाद सपरिवुह पञ्चविहण अभिगमण वदह-नमस्य—” निरुक्त ते ही वह अन्तःपुर परिवार स परिवर्धित हो गया इस तरह स प्रदक्षी राजान पांच प्रकारक अभिगम से केन्हीकुमार भक्षण की वन्दनाकी जनकी स्तुति की “एवमदं भुज्जो भुज्जो-सम्म विणण स्वाग—” स्तुति नमस्कार करके फिर उसने अपने प्रतिष्ठल आचरण स अनित अपराध की बार-बार अच्छी तरह स विनम्र भावसे पुक्त हो कर क्षमा कराई, अपात्-क्षमा मांगी—

टीका—प्रदक्षी राजान केन्हीकुमारभक्षण से इस प्रकार कहा-इ मन्त ! अब मुझ इस प्रकार का यह आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुआ कि—मैं अपने प्रतिष्ठल आचरण स अनित अपराध की आप से बार-बार क्षमा करावे, यह विचार आमगत होने स पहले तो अर्धुर की तरह उत्पन्न हुआ अतः—उस आध्यात्मिक रूपस दक्ष किया गया है बाद में यावत् पदस चिन्तित-कल्पितः—प्रार्थित-मनोगत इन विधरणों वाला हुआ है कि—यह विचार स्मरणरूप बन

नीकले, “अंतउपरियालसाद सपरिवुह पञ्चविहण अभिगमेण वदह-नमस्य” नीकणवां व ते पोताना अतःपुर परिवारधी वीटणाय अथे आ प्रभावे तीवार धमेत्त प्रदक्षी राजाके ठेशी कुमारभक्षणणी पासे अथि पात्र प्रभारना अकिममधी ठेशा कुमारभक्षणणी वन्दना करी तेमनी स्तुति करी नमस्कार करी “एवमदं भुज्जो भुज्जो-सम्म विणण स्वाग—” स्तुति तेमथ नमस्कार करीने पछी तेजे पोताना प्रतिष्ठल आचरणधी अथेत्त अपराधनी बार-बार आरी रीते वितम आपधी मुक्त करीने क्षमा मांगी.

टीका—प्रदक्षी राजाके ठेशीकुमारभक्षणने आ प्रभावे बहुत-दे कहत । अब मने आ अतने आध्यात्मिक विचार उत्पन्न भयो छ के छु भास प्रतिष्ठल आचरणधी अथेत्त अपराध अहल आपधी पासेधी बार-बार क्षमा मांगु आ विचार आत्मगत होवाधी पढेवां ते अर्धुरनी नेम उत्पन्न भयो अथि तेने आध्यात्मिक रूपे प्रकट करवाभां आ यो छ त्वार पछी यावत् पढथी “चिन्तितः, कल्पितः, प्रार्थित मनोगत”, आ चिन्तितधी मुक्त भयो छ, विचारने ने चिन्तित पढथी

ચિન્તિત:-પુનઃ પુનઃ સ્મરણરૂપો વિચારો દ્વિપત્રિત ઇવ, તતઃ કલ્પિતઃ સ એવ  
વ્યવસ્થાયુક્તઃ 'ક્ષામયેગમ્' ઇતિ પરિણતો વિચારઃ પલ્લવિત ઇવ, સ એવ પ્રાર્થિતઃ-  
ઇષ્ટરૂપેણ સ્વીકૃતઃ પુષ્પિત ઇવ, મનોગતઃ મઃ સિ દૃઢરૂપેણ નિશ્ચયઃ "ઇથમેવ  
મયા કર્તવ્યમ્" ઇતિ વિચારઃ ફલિત ઇવ સમુદપદ્યત-સમુત્પન્નઃ-એવં સ્વલુ અહં  
દેવાનુપ્રિયાણાં-મત્રતાં વામવામેન યાવત્-યાત્પદેન "દણ્ડદણ્ડેન પ્રતિકૂલપ્રતિ-  
કૂલેન પ્રલિભ પ્રતિલોમેનપિપર્યાસપિપર્યાસેન" ઇત્યેષાં સર્વે હો બોધ્યઃ, એષાં  
વ્યાસઃ । પૂર્વ ગતા, વર્તિતઃ-પ્રવૃત્તઃ તત્-તસ્માલ્કારણાત્ મે મમ શ્રે :પ્રશસ્તં યત્

ગયા. અર્થાત્-મુझे अपने अपराध की आपसे क्षमा कराना है. ऐसी स्मृति मुझे  
बार-बार आने लगी. इसलिये-यह विचार द्विपत्रित अङ्कुर की तरह प्रथम अव-  
स्था की अपेक्षा कुछ विशेष पुष्ट होने से चिन्तित प्रकट किया गया है । तथा  
वही विचार जब व्यवस्थायुक्त हो गया. कि मुझे अवश्य ही इस रूपसे क्षमा  
कराना है तो द्वितीय अवस्थाकी अपेक्षा और-अधिक पुष्ट हो जाने के कारण  
यह पल्लवित हुवे अङ्कुर की तरह कल्पित पद से विशेषित किया गया है.  
तथा जब वही विचार इष्ट रूप से स्वीकृत कर लिया गया. तो वह पुष्पित हुवे  
अङ्कुर की तरह हो गया. और जब वही विचार मनमें दृढ रूपसे निश्चय की  
स्थिति में परिणत हो गया के ऐसा ही मुझे करना है. तो फलित हुवे  
अङ्कुर की तरह वह हो गया. क्या विचार उत्पन्न हुवा इसी बात को वह अब  
प्रकट करता है कि हे भदन्त-! मैंने आप देवानुप्रिय के साथ बहुत अधिक  
प्रतिकूलरूपसे. यावत् दण्ड दण्डरूपसे. अतिशय प्रतिकूलरूपसे व्यवहार किया है.

વિશેષિત કરવામા આવ્યો છે તેનુ કારણ આ છે કે તે વિચાર સ્મરણરૂપ થઈ ગયો  
હતો એટલે કે મને મારા અપરાધની આપશ્રીના પાસેથી ક્ષમા કરાવવી છે, એવી સ્મૃતિ  
વારંવાર આવવા લાગી, એથી આ વિચાર દ્વિ પત્રિત અંકુરની જેમ પ્રથમ અવસ્થા  
કરતા કંઈક વિશેષ પુષ્ટ હોવાથી ચિત્તિત રૂપમા પ્રકટ કરવામા આવ્યો છે. તથા તેજ  
વિચાર જ્યારે વ્યવસ્થાયુક્ત થઈ ગયો-કે મારે ચોક્કસ આવિને ક્ષમા યાચના કરવી  
છે તો દ્વિતીય અવસ્થા કરતા વધારે તે વિચાર પુષ્ટ થઈ જવાથી એ પલ્લવિત થયેલા  
અંકુરની જેમ કલ્પિત પદથી વિશેષિત કરવામા આવ્યો છે તેમજ જ્યારે તે જ  
વિચાર ઇષ્ટ રૂપથી સ્વીકૃત થઈ ગયો તો તે પુષ્પિત થયેલ અંકુરની જેમ થઈ ગયો  
અને જ્યારે તે વિચાર મનમાં દૃઢરૂપથી નિશ્ચયની સ્થિતિમા પરિણત થઈ ગયો કે  
એવું જ મારે કરવું છે તો ફલિત થયેલ અંકુરની જેમ તે થઈ ગયો. શેા વિચાર  
ઉત્પન્ન થયો ? એજ વાતને હવે સ્પષ્ટ કરતા કહે છે કે-હે ભદ્રત ! મેં આપ દેવા-  
નુપ્રિયની સાથે બહુજ પ્રતીકૂળ રૂપથી યાવત્ દંડ દંડ રૂપથી-અતિશય પ્રતીકૂળરૂપથી  
અતિશય પ્રતિલોભરૂપથી અને અતિશય વિપરીત રૂપથી વ્યવહાર કર્યો છે, એથી મારા

કલ્પ-ચ: પ્રાદુષ્યમાશર્વા પ્રકાશપ્રકાગિતાયામ્, રજ્જ્વાં રાત્રી પુષ્કોત્તલકમલકામ  
 લાન્મીલિત-કુર્જ નિક્ષિપ્ત યદ્ ઉત્પલ-કમલ, સ્વપ્ન કરલ ચ દરિણચિન્નયતિ  
 પુષ્કોત્તલકમલો, તયાયન કામલ મૃદુ ઉર્મીન્ન તથા પુષ્કોત્તલપત્રાણાં નિક્ષિપ્ત  
 દરિણનયનયાઃ ધ્રુવ નનન્તર પૃથ્વોપનમ્ ચ યસ્મિન્ન મન્ પુષ્કોત્તલકમલકમલસા  
 ચીન્તિત્વં તસ્મિન્, અથ પ્રમાણાનન્તર આ-મમન્નાન વાપ્તર પીનધવલ પ્રમાણ  
 પ્રાપ્તકામ રક્તાગ્રોદ્ધકિન્નુક શુક્રમુખ ગુઆદગમમદ્ય તથા રક્તાગ્રાક: રક્તર્ણા  
 ગ્રાક:, િન્નુક: પન્નાદ, ગુક્રમુખ, ગુઆદગમ ગુઆયાપ્રપન્નાદિત્વ ગગા, પ્ત  
 રક્તર્ણ: મદ્ય તુલ્ય, અસ્ય "ધર" ઇતિ વર્ણમમ્મધ, તામપ્રાપ્તાનામપિ,  
 વચ્ચા: ર્ણલિનીપટ્ટવાક્ક મુગલગગાદ્ધલિનીકુન્દિચાન્નક ધર ધર ઉચ્ચિત

શ્મલિય મગ કલ્યાણ અથ ર્ણા મ હૈં કિમ દુમર નિન ત્વકિ ગત્રિ પ્રમાણ ક  
 રૂપ મં પરિણત હા ભાય અર્થાન્ પ્રાપ્તકાલ હા ગાય ઐશ્વર્ય કમલ ઉત્પન્ન  
 ધ્યં દરિણ ચિન્નય કી આન્વ નિષ્ઠાધિગમ ક ર્ણ પ્રપુસ્મિત હા ગાય કમલ  
 ચિન્નયિત હા ભાય ધ્રુવ દરિણા ક નમ્ર અર્ચી તદ્દ મ મુલ ગાય તયા વદ  
 પ્રમાણ મમન્નાત પીત ધવલ પ્રકાશવાલા હા ભાય, ધ્ય મદ્યકિન્ન: મ સમન્ન  
 તયા દિપમધિધાયક ધ્ય તા કિ કમલાકર મગેય મં નલિની કુન્દાવાધક વિ  
 પન્નાદ કમલવાલા હોના હૈં ર્ણ રક્તાગ્રાક: કુન્નુક શુક્રમુખ ઐશ્વર્ય ગુઆદ ગુઆદ ક મદ્ય  
 ઉદિત હા ગાય તયા ધ્રુવકા પ્રકાશ અર્ચી તદ્દ મ પેલ કાય રૂપ મ અન્નાપુર  
 પરિણત મ પરિણત હાકર આપ ત્થાનુધિય, કી ર્ણના ક સિય નમસ્કાર ક  
 નિય આઠ ઐશ્વર્ય પુષ્કિતિ અવગમ્ય અર્ચી આપમ ધાર ૨ વિનમ્ર માત્ર  
 યુક્ત હા કમ સમા માર્ગ, શ્મ પ્રકાર મ વદ પ્રત્તી ગુઆ કર્ણધમલકુમાર ક પ્રતિ  
 નિપન્ન કમ અપ્ત ર્થાન પર ગયા । દુમર નિન અથ પુષ્કિત્તરૂપ મ પ્રમાણ

ગા. ૬૫ આ. ૨ મેચરક છે કે હૈં આવની કાલ ર્ણારે શા. પ્રમાણમાં પરિણત થઈ  
 ભાય કોલ છે ર્ણારે થઈ ભાય કમલ ઉત્પન્ન અને દરિણ ચિન્નયની આંજો નિહા  
 દિત થઈને પ્રસરિત થઈ ભાય, કમલો નિક્ષિપ્ત થઈ ભાય અને દરિણના મેચ  
 આરી રીત વેપરી ભાય તથા પ્રમાણ અમલાત પીનધવલ પ્રકાશવાલા થઈ ભાય  
 અને મદ્ય કિન્નયો મપ્ત તોમજ દિવસ વિધાયક રૂપ કે જે કમલાકર સંધ્યાર  
 માં નલિની કુલને નિક્ષિપ્ત ર્ણારે છે રક્તાગ્રોદ્ધ, કિન્નુક, શુક્ર મુખ અને કુલાધની  
 મદ્ય તે ઉદિત થઈ ભાય તેમજ તેના પ્રકાશ શાત્રી રીતે પ્રસરી ભાય, ત્યારે હૈં  
 અન્નાપુર પરિણતો પરીણત થઈને આપ ર્ણાત્પ્રિયને વદત તેમજ નમસ્કાર કરના  
 માટે અર્ધો આપ અને પૂર્વોક્ત અવસાધ બદલ આપથી જાસેથી વિનમ્ર થઈને વારંવાર  
 શભા ચાલના હૈં આ પ્રમાણ તે પ્રદેશી શભા કેશીપુઆશ્વમ્યુને વિન વી કરીને સ્વરૂપને  
 મધ્યે ભીલા દિવસે જ્યારે પુરોહિતપદી પ્રમાણ પુરુષે નિક્ષિપ્ત થઈ પ્રમુ ત્યારે તે

उदिते सति, पुनः कीदृशे तस्मिन् ? सहस्ररश्मौ-किरणसहस्रसम्पन्ने दिनकरे-  
दिवसकरणशीले तेजसादीप्या ज्वलति-देदीप्यमाने सति, अन्तःपुरपरिवारैः  
राज्ञीपरिवारैः संपरिवृतः-युक्तः सन् अहं देवानुप्रियान् वन्दितुं नमस्यितुम्.  
एतमर्थं-पूर्वोक्तापराधरूपमय भूयोभूयः-पुनः पुनः सम्यग्र विनयेन-प्रशस्तनम्रभावेन  
क्षामयितुम् । इतिकृत्वा-केशिस्वामिने इति निवेद्य यामेव दिशं समाश्रित्य प्रादुर्भूतः  
तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ततः खलु स प्रदेशी राजा कल्य-श्वः प्रादुप्रभाताया रजन्यां यावत्-  
यावत्पदेन अनन्तरप्रोक्तोरितनपदानां फुल्लोत्पलादीनां सङ्गो हो बोध्यः, तदर्थश्च  
तत्रैव ज्ञेयः । तेजसा ज्वलति दृष्टुष्ट यावत्-यावत्पदेन चित्तानन्दितः, परम-  
सौम स्यितः, हर्षवश विसर्पद्भूतः । इत्येतत्पदसङ्गो हो बोध्यः । यथा-येन प्रकारेण  
कूणिकः-तन्नामा श्रेणिकराजपुत्र औपपातिकसूत्रे वर्णितो निर्गतः, तथैव-तेनैव  
प्रकारेण निर्गच्छति-स्वभवनान्निःसरति, तन्निर्गमनवर्णनमौपपातिकसूत्रतो  
बोध्यमिति तात्पर्यम् । निर्गत्य अन्तःपुरपरिवारैः संपरिवृतः-वेष्टितः पञ्चविधेन-  
पञ्चप्रकारेण सूचितानां द्रव्याणां व्युत्सर्जनेन १, अचित्तानां द्रव्याणामव्युत्सर्जनेन २,

काल का सूर्य उदित हो गया. तब वह दृष्टुष्ट यावत् चित्तानन्दित हुआ. परमसौम-  
यिन हुआ हर्षवश विसर्पत् हृदयवाला (पत्त आनंदयुक्त हुआ) औपपातिकसूत्र में वर्णित  
श्रेणिक राजपुत्र कूणिक नरेशकी तरह अपने भवन से निकला. कूणिक नरेश के निक-  
लने का वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है । निकलते ही वह अन्तःपुर परि-  
वार जनों से परिवेष्टित कर लिया गया. और पांच प्रकार के अभिगम से  
युक्त हो कर वह प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणकी वन्दना आदि करने के  
लिये चल दिया. वहां पहुंचकर उसने उनका वन्दना की नमस्कार किया. और  
स्वकृत तिक्रल आचरणजनित अपराध की बड़े विनम्रभावयुक्त होकर क्षमा  
मांगी. । पांच प्रकारके अभिगम इस प्रकारसे ? सचित्तद्रव्योंका परित्यागकर

दृष्टुष्ट यावत् चित्तानन्दित थयो, परमसौमनाम्बित थयो, हर्ष विसर्पत् हृदयवाणो  
थयो औपपातिकसूत्रमा वर्णित श्रेणिक राजपुत्र कूणिक नरेशना जेम पोताना भवनथी  
ते नीकण्यो. कूणिक नरेशना नीकणवातुं वर्णन औपपातिक सूत्रमा करवामा आच्यु  
छे गडार नीकणता ज ते अन्तःपुर परिवार जनेथी वी टणाछ गयो-वेराछ गयो अने  
पाय प्रकारना अभिगमथी युक्त थधने ते प्रदेशी राजा केशी कुमारश्रमणनी वदन  
वगेरे करवामा माटे नीकणी पड्यो त्या पडोच्योने तेछे तेमने वदन अने नमस्कार  
क्यो अने स्वकृत प्रतिकृण आचरणज नित अपराधो गदल तेछे विनम्रभाव युक्त  
थधने क्षमा मागी पाये प्रकारना अभिगमो आ प्रमाणे छे १, सचित्त द्रव्योने



कल्प-यः प्रादुष्यमाणायां प्रकाशप्रकाशितायाम्, रज-र्णं रात्रौ फुल्लोत्पलकमलकाम  
लोन्मीलित-फुल्ल विकसित यव उत्पल-कमल, तच्च कमल च हरिषविशेषमेति  
फुल्लोत्पलकमलौ, तयोयत् फोमल मृदु उन्मीलन तत्र फुल्लोत्पलपत्राणां विकसन  
हरिजनपनयोः स ननन्तर पुष्पोचनम् च यस्मिन् मत फुल्लोत्पलकमलकेतवसो  
न्मीलित तस्मिन्, अथ प्रयातान्तरम् आ-समन्तात् यादृश यौनधवल प्रमात  
प्रा-प्रकाले रक्ताश्लोककिशुक शुक्लमुख गुजार्द्धगगमद्वय तत्र रक्ताश्लोक रक्तशर्मा  
श्लोकः, किशुकः पलाशा, शुक्लमुख, गुजार्द्धरागः गुजायाप्रघमनाद्वय रागः, एत  
रक्तशर्माः सद्यश्च तुल्य, अस्य "धूर" इति परण सम्बन्ध, एतमप्रानानामपि,  
कमलाग्निनिनीपण्डचोषक सरोवरगगमलिनीकुलविकाशक धूर ध्व उल्लिखित

इसलिखे मरा कन्याण अथ इसी म है कि म दूसर दिन जबकि रात्रि प्रमात के  
रूप में परिणत हो जावे अर्थात् प्रातः काल हो जाय और हममें कमल उत्पन्न  
एव हरिष विशप की आंखें निष्ठाविगम क बाद प्रफुल्लित हो जाय कमल  
विकसित हो जाय एव हरिषों के नत्र अच्छी तरह से खुल जाय तथा वह  
प्रमात समन्तात् पीत धवल प्रकाशवाला हो जावे, एव सहस्रकिरणों से सम्पन्न  
तथा दिवसविधायक ध्वज का कि कमलाकर सरोवर में नलिनी कुलकाबाधक वि  
काश करनेवाला होता है तब रक्ताश्लोक किशुक शुक्लमुख और गुजार्द्ध गुज्या के सद्यश्च  
उदित हो जाय तथा उसका प्रकाश अच्छी तरह से फैल जावे तब में अन्तःपुर  
परिचर्यों से परिपूर्ण होकर आप उषानुभिय, की कन्दना के लिय नमस्कार के  
लिय आऊ और अपने पूर्वोक्त अपराधरूप अर्थकी आपसे बार २ विनम्र माव  
युक्त हो कर क्षमा मांगू, इस प्रकार स वह प्रदयी गंगा केडीभमणकुमार के प्रति  
निवेदन कर अपने स्थान पर गया । दूसर दिन जब पूर्वोक्तरूप से प्रमान

१७ दुवे को १ मोबरकर छ के दु आवनी अवे ब्याह राने प्रभातभां परिपुष्ट वर्ध  
आम कोटसे के सवार कथ आम कभण उत्पल आने दुखिबु विशेषेनी आंचो निद्रा  
रहित बधने प्रसुखित बध आय. कभण विकसित बध आय आने दुखिबुना नेत्रा  
सारी रीते उधरी आय तथा प्रभात समयात् पीतधवल प्रकाशयुक्त बध आय  
आने सद्यश्च हरिषोषी सम्पन्न तेमज दिवस विधायक सूय के के कभलाकर सरोवर  
भां नलिनी कुलने विकसित करनार छ. रक्ताश्लोक किशुक, शुक्ल मुख आने शुक्लधनी  
अद्य ते उदित बध आय तेमज तेने प्रकाश सारी रीते प्रसारी आय त्वारे दु  
अन्तःपुर परिक्रमोषी परीवृत्त कथनि आप देवातुप्रबने बदन तेमज नमस्कार करवा  
भां अच्छी आपु आने पूर्वोक्त अपराध नद्वय आपसी पासेधी विनम्र कथनि बार बार  
क्षमा मायना कर आप प्रगच्छे ते अर्थो सज्ज केशीकुमारआमयने विन वी कथने स्वस्थाने  
अथ. भीला दिवसे ब्याह पुगेकित्थपरी प्रभात पूर्वोक्षे विकसित बध अमु त्वारे ते

उदिते सति, पुनः कीदृशे तस्मिन् ? सहस्ररश्मौ-किरणसहस्रसम्पन्ने दिनकरे-  
दिवसकरणशीले तेजसा-दीप्त्या ज्वलति-देदीप्यमाने सति, अन्तःपुरपरिवारैः  
राज्ञीपरिवारैः संपरिवृतः-युक्तः सन् अहं देवानुग्रियान् वन्दितुं नमस्यितुम्.  
एतमर्थं-पूर्वोक्तापराधरूपमय भूयोभूयः-पुनः पुनः सम्यग् विनयेन-प्रशस्तनम्रभावेन  
क्षामयितुम् । इति कृत्वा-केशिस्वामिने इति निवेद्य यामेव दिशं समाश्रित्य प्रादुर्भूतः  
तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ततः खलु स प्रदेशी राजा कल्य-श्वः प्रादुष्प्रभाताया रजन्यां यावत्-  
यावत्पदेन अनन्तरप्रोक्तोरितनपदानां फुल्लोत्पलादीनां सङ्गो हो बोध्यः, तदर्थश्च  
तत्रैव ज्ञेयः । तेजसा ज्वलति हृष्टतुष्ट यावत्-यावत्पदेन चित्तानन्दितः, परम-  
सौम स्थितः, हर्षवश विसर्पद्भुदः । इत्येतत्पदसङ्गो हो बोध्यः । यथा-येन प्रकारेण  
कूणिकः-तन्नामा श्रेणिकराजपुत्र औपपातिकसूत्रे वर्णितो निर्गतः, तथैव-तेनैव  
प्रकारेण निर्गच्छति-स्वभवनान्निःसरति, तन्निर्गमनवर्णनमौपपातिकसूत्रतो  
बोध्यमिति तात्पर्यम् । निर्गत्य अन्तःपुरपरिवारैः संपरिवृतः-वेष्टितः पञ्चविधेन-  
पञ्चप्रकारेण सूचितानां द्रव्याणां व्युत्सर्जनेन १, अचित्तानां द्रव्याणामव्युत्सर्जनेन २,

काल का सूर्य उदित हो गया. तब वह हृष्टतुष्ट यावत् चित्तानन्दित हुवा. परमसौम-  
यिन हुवा हर्षवश विसर्पत हृदयवाला (पद्म आनन्दयुक्त हुवा) औपपातिकसूत्र में वर्णित  
श्रेणिक राजपुत्र कूणिक नरेशकी तरह अपने भवन से निकला. कूणिक नरेश के निक-  
लने का वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है । निकलते ही वह अन्तःपुर परि-  
वार जनों से परिवेष्टित कर लिया गया. और पांच प्रकार के अभिगम से  
युक्त हो कर वह प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणकी वन्दना आदि करने के  
लिये चल दिया. वहां पहुंचकर उसने उनका वन्दना की नमस्कार किया. और  
स्वकृत तिकूल आचरणजनित अपराधों की वडे विनम्रभावयुक्त होकर क्षमा  
मांगी. । पांच प्रकारके अभिगम इस प्रकारसे ? सचित्तद्रव्योंका परित्यागकर

हृष्ट तुष्ट यावत् चित्तानन्दित थयो, परमसौमनसिभूत थयो, हर्ष विसर्पत हृदयवाणो  
थयो औपपातिकसूत्रमा वर्णित श्रेणिक राजपुत्र कूणिक नरेशना जेम पोताना भवनथी  
ते नीक्ष्यो, कूणिक नरेशना नीक्षणवास्तु वर्णन औपपातिक सूत्रमा करवामा आच्यु  
छे गहार नीक्षणता न ते अन्तःपुर परिवार जनोथी वीटणाह गयो-वेराह गयो अने  
पाच प्रकारना अभिगमथी युक्त थधने ते प्रदेशी राजा केशी कुमारश्रमणनी वन्दना  
वगेरे करवामा माटे नीक्षणी पड्यो त्या पड्योथीने तेथे तेमने वन्दन अने नमस्कार  
किया अने स्वकृत प्रतिकूल आचरणजनित अपराधो गहल तेथे विनम्रभाव युक्त  
थधने क्षमा मागी पाच प्रकारना अभिगमो आ प्रमाणे छे १, संचित्त द्रव्योने।

एकश्रुतिकोत्तरासङ्क्रमणेन३, चतुःस्पशे अजलिपरणन४, मनस एकत्वकरणन५,  
धयत्ररूपेण अमिगमेन-विनयविधिविधियेग, वन्दन-स्तौति नमस्पति-नमस्करोति  
वन्दित्वा नमस्पतिना च पतमर्व-प्रतिकूलचरणजनितापराधस्य भूयोभूय-भार  
शाम्भ सम्पद्य विनयन-प्रश्रुतातृषितप्रभावन धामपति-धर्मा कारयति । ॥ १५७ ॥

धर्म-तए ण केसी कुमारसमणे पणसिम्म रण्णो सूरिक  
तप्पमुहाणं देवीणं तीसे य महइमहाज्या र परिताप चाउज्जाम  
धम्म परिकहेइ । तए णं मे पणसी राया धम्म माग्घा निसम्म  
उट्ठाए उट्ठे केसिकुमारसमणं वट्ठइ नमसड जेणेव सेयविया नपरी  
तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० १५८ ॥

छाया-तत् त्वत्तु कसी कुमारभमण प्रशिनो राज धूर्धकान्ता यन्माना  
न्वीनां तस्यां च महाऽतिमहात्त गणं परिगति चातुर्गम धम परिक्रमयति ।  
तत् त्वत्तु म प्रदक्षी राजा धम धृत्वा निश्रम्य उन्वगा उत्तिष्ठति कश्चिकुमार-  
धर्मं वन्दत नमस्पति यत्रैव श्वेतविका नगरी तत्रैव प्राचारयत्तु गमनाय ॥ १५८ ॥

ना, ण अचेत्त इत्थ्या का पदिन्याग नहीं करना, २ एक छाटिका उत्तरा  
यङ्ग काना-बिना सीय बलसे उत्तरागमन करना, है-इत्थन ही हाथ जोड़ लना,  
और- मनकी एकप्रज्ञा करना ॥ १५७ ॥

धर्म-“तए ण कसीकुमारसमणे-” इत्यादि-॥ १५८ ॥

मूलार्थ-“तए ण” इसकामा “कसीकुमारसमण” कसीकुमारभमणने “प  
सिम्म रण्णोसूरिकतप्पमुहाण श्वीय तीमय महइमहात्तणपरिमाण-” प्रदक्षी  
राजा क ममक्ष एव उमकी मयकान्ता आति प्रमुत्त गविया क समग्र उम  
विशाल परिपत्ता में “चाउज्जामधम्म” अहिंसा-मन्य-अन्य, एवं-अपरिग्रह  
एव चातुर्गम धमका उपदेश दिया “तए ण म पणसी राया धम्म सोत्था

पगित्ताग ४२वे, २ अविज ५ येनो परिताप नाहि ४२वे, ३ अके शाटिका  
उत्तरास ४ ४२वे, ४ वत्त अवेत्ता वत्तोत्थो उत्तरासउत्त ४२वे, जेतानी आये ४  
६५ जेडी वथा अने ५, मननी अवेत्ता ४२वी ॥ सू १५७ ॥

सुत्रार्थ-“तए ण कसीकुमारसमणे इत्यादि”

मूलार्थ-“तए ण” त्थार ५७ ॥ “कसीकुमारसमण” देवी कुमार भमणे  
“पणसिम्म रण्णो सूरिकतप्पमुहाण श्वीय तीसय महइमहात्तणपरिमाण”  
प्रदेशी राजनी आगे तेमच तेनी धूर्धकान्ता वजेइ अमुण राजीयेनी आगे ते  
विशाल परिपत्तामें “चाउज्जाम धम्म” अहिंसा, सत्य, अस्तेय अने अपरिमृश्य  
चातुर्गम धर्मने उपदेश आये “तए ण म पणसी राया धम्म साध्या निसम्म

टीका—“तए णं केशिकुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशिकुमार-  
श्रमणः प्रदेशिनो गङ्गः सूर्यकान्ता प्रमुखानां देवीनां तस्यां तत्र स्थितायां च  
महाऽतिमहालयायाम् अतिवृहत्याम्, परिपदि चातुर्यामम्—अहिंसा-सत्याऽऽस्त्येया-  
ऽपरिग्रहैर्विभक्तचतुर्मुद्रावतरूपं धर्मं परिकथयति—प्ररूपयति । उपलक्षणाद् द्वादश-  
विधं गृह्यधर्मं परिकथयति ततः खलु स प्रदेशी राजा धर्मम् अनगारागारधर्मं श्रुत्वा  
सामान्ततः श्रवणगोचरं कृत्वा निश्चय-विशेषतो हृद्यवधार्य उत्थया-उत्थान-  
प्रयासेन उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिकुमारश्रमणं वन्दते—स्तौति, नमस्यति—नम-  
स्करोति, वन्दित्वा नमस्सित्वा च यत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव गमनाय  
पाधारयत्—निश्चितवान् । ॥ सू. १५८ ॥

मूलम्—तएणं केसी कुमारसमणे पएसिराय एवं वयासी—मा  
णं तुमं पएसी ! पुठ्वि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवि-  
ज्जासि, जहा से वणसंडेइ वा णट्टसालाइ वा इक्खुवाडएइ वा  
खलवाडएइ वा । कहं णं भंते ! वणसंडे पुठ्वि रमणिज्जे भवि-  
त्ता पच्छा अरमणिज्जे भवइ ? पएसी ! जहा णं वणसंडे पत्तिए

निसम्म उट्ठाए उट्ठेइ—” इसके बाद प्रदेशी राजा धर्म सुन कर और उसे हृदय में  
धारण कर अपने आप वहां से उठा—“केसीकुमारसमणं वंदइ नमंसइ—” उठार  
उसने केशीकुमार श्रमण की वन्दना की उन्हें नमस्कार किया, “जेणेव सेयंविया  
नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए—” वन्दना-नमस्कार कर फिर वह अपनी नगरी  
की ओर चल दिया । टीका—स्पष्ट है—केशीकुमारश्रमणने चातुर्याम धर्म के उपदेश  
और—साथ-साथ १२ प्रकाररूप गृहस्थ धर्म का भी उपदेश दिया, ऐसा कथन  
उपलक्ष्य से जान लेना चाहिये ॥ सू. १५८ ॥

उट्ठाए उट्ठेइ” त्थार पट्ठी प्रदेशी राजा धर्म साधुजीने अने तेने हृदयमा धारण  
करीने पोतानी भेणे न त्थाथी—उल्लो थये। “केसीकुमारसमणं वंदइ नमंसइ  
उल्लो थधने तेणे देशी कुमारश्रमणुनी वदना करी तेभने नमस्कार कया, “जेणेव  
सेयविया नयरी तेत्रैव पहारेत्थ गमणाए” वदना तेभन नमस्कार करीने पट्ठी  
ते पोतानी नगरी तरइ स्वाना थध जये।

टीका—स्पष्ट छेदेशीकुमारश्रमणे चातुर्याम धर्मने उपदेश अने तेनी साथे  
साथे १२ प्रकाररूप गृहस्थधर्मने पण उपदेश आदियो हतो, ओवु कथन उपलक्ष्युथी  
नएणी लेवुं लेधजे. ॥ सू. १५८ ॥

एकश्राटिकोत्तरासङ्करणेन४, चतुःस्पश अञ्जलिकरणेन४, मन्स एकस्वकरणेन५, पेत्यव रूपेण अमिगमेन-विनयविधिबिधेयेग, घन्त-स्तौति नमस्त्यनि-नमस्त्योति वन्दित्वा नमस्त्यत्वा च एतमर्थ-प्रतिकृताचरणजनितापराधस्य भूयोभूय-चार वारम् सम्पद्य विनयन-प्रशस्ततरविनयभावेन क्षामयति-धर्मा कारयति । ॥स्र १५७॥

मूलम्—तए ण केसी कुमारसमणे पयसिस्स रण्णो सूरिक तप्पमुद्वाण देवीण तोमे य महइमहालयार परिताए चाउज्जाम धम्म परिकहेइ । तए णं से पयसी राया धम्म सोच्चा नितम्म उट्ठाए उट्ठेइ केसिकुमारसमण वदइ नमसइ जेणेअ सेयविद्या नयरी तेणेअ पहारेअ गमणाए ॥ सू० १५८ ॥

छाया—उतः स्वतु कंशी कुमारभमणः प्रदक्षिणो गच्छ सूर्यकान्ता-गुह्यानां देवीनां तस्यां च महाऽतिमहालयं गच्छं परिगदि चातुर्गम धम्म परिक्रमयति । ततः स्वतु स प्रदक्षी राजा धर्मं धृत्वा निष्कस्य उन्वगा उत्तिष्ठति कश्चिकुमार-भमणं वन्दते नमस्त्यति यत्रैव श्वतविका नगरी तत्रैव प्राचापवु गमनाय ॥स्र १५८॥

ना, ण अवेच इन्वा का पदित्याग नहीं करना, २ एक श्राटिका उत्तरा यङ्ग करना-विना सीधे वक्त्रसे उत्तरागम करना, है-देखने ही हाथ जोड़ लेना, और-५ मनकी एकप्रथा करना ॥स्र १५७॥

सूत्र—“तए ण केसीकुमारसमणे—” इत्यादि—॥१५८॥

मूलार्थ—“तएण” इसके बाद “केसीकुमारसमणे” केसीकुमारभमणन “पयसिस्स रण्णो छरिकप्य मुद्वाण देवीण तीसेय महइ महालयार परिताए—” प्रदक्षी राजा के समक्ष एव उसकी धर्मकान्ता आदि प्रमुक्त भाविया के समक्ष उस विद्याल परिपदा में “चाउज्जाम धम्म” अहिंसा-सत्य-अस्तेय, एव-अपरिग्रह रूप चातुर्गम धर्मका उपदेश दिया “तएण से पयसी राया धम्म सोच्चा

परित्याग करवे २ अधिल इ योना परित्याग नहीं करवे ३ ओठ याटिका उत्तरासङ्ग करवे ४ चतुः सीधेसा पञ्चोथो उत्तरासङ्ग करवे ५ ओठानी साथे च ६ च ओठो लेवा जाने ७, मननी ओठाप्रथा करनी ॥ स्र १५७ ॥

अन्वार्थ—“तए ण केसीकुमारसमणे इत्यादि”

मूलार्थ—“तए ण” तथा पक्षी “केसी कुमारसमणे” इयो कुमार भमणे “पयसिस्स रण्णो छरिकप्य मुद्वाण देवीण तीसेय महइ महालयार परिताए” प्रदक्षी राजानी साथे तोमच तेनी सुभङ्ग-वा चोरे अमुज सङ्कीर्णानी साथे ते विद्याल परिपदाभा “चाउज्जाम धम्म” अहिंसा सत्य, अस्तेय अने अपरिग्रह रूप चातुर्गम धमने उपदेश आये “तएण से पयसी राया धम्म सोच्चा नितम्म

टीका—“तए णं केशिकुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशिकुमार-  
श्रमणः प्रदेशिनो राज्ञः सूर्यकान्ता प्रमुखानां देवीनां तस्यां तत्र स्थितायां च  
महाऽतिमहालयायाम् अतिबृहत्याम्, परिपदि चातुर्यामम्—अहिंसा-सत्या ऽस्त्येया-  
ऽपरिग्रहैर्विभक्तचतुर्मावतरुपं धर्मं परिकथयति—प्ररूपयति । उपलक्षणाद् द्वादश-  
विधं गृहिर्धर्मं परिकथयति ततः खलु स प्रदेशी राजा धर्मम् अनगारागारधर्मं श्रुत्वा  
सामान्तः श्रवणगोचरं कृत्वा निशम्य—विशेषतो हृद्यवधार्य उन्धया—उत्थान-  
प्रयासेन उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिकुमारश्रमणं वन्दते—स्तौति, नमस्यति—नम-  
स्करोति, वन्दित्वा नमस्यित्वा च यत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव गमनाय  
प्राधारयत्—निश्चितवान् । ॥ सू. १५८ ॥

मूलम्—तएणं केसी कुमारसमणे पएसिराय एवं वयासी—मा  
णं तुमं पएसी ! पुब्बि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवि-  
ज्जासि, जहा से वणसंडेइ वा णट्टसालाइ वा इक्खुवाडएइ वा  
खलवाडएइ वा । कहं णं भंते ! वणसंडे पुब्बि रमणिज्जे भवि-  
त्ता पच्छा अरमणिज्जे भवइ ? पएसी ! जहा णं वणसंडे पत्तिए

निसम्म उट्ठाए उट्ठेइ—” इसके बाद प्रदेशी राजा धर्म सुन कर और उसे हृदय में  
धारण कर अपने आप वहां से उठा—“केशीकुमारसमणं वंदइ नमंसइ—” उठकर  
उसने केशीकुमार श्रमण की वन्दना की उन्हें नमस्कार किया, “जेणेव सेयंविया  
नयरी तेणेव पहात्तेय गमणाए—” वन्दना-नमस्कार कर फिर वह अपनी नगरी  
की ओर चल दिया । टीकार्थ—स्पष्ट है—केशीकुमारश्रमणने चातुर्याम धर्म के उपदेश  
और—साथ-साथ १२ प्रकाररूप गृहस्थ धर्म का भी उपदेश दिया, ऐसा कथन  
उपलक्षण से जान लेना चाहिये ॥ सू. १५८ ॥

उट्ठाए उट्ठेइ” त्थार पछी प्रदेशी राजा धर्म सावणीने अने तेने हृदयमा धारण  
करीने पोतानी भेणे ज त्थाथी—उत्थाय थयो “केशीकुमारसमण वंदइ नमंसइ  
उत्था थधने तेणे केशी कुमारश्रमणुनी वंदना करी तेभने नमस्कार कयो “जेणेव  
सेयविया नयरी तेत्रैव पहात्तेय गमणाए” वंदना तेभज नमस्कार करीने पछी  
ते पोतानी नगरी तरइ रवाना थछ गथे।

टीकार्थ—स्पष्ट छेदेशीकुमारश्रमणे-चातुर्याम धर्मने उपदेश अने तेनी साथे  
साथे १२ प्रकाररूप गृहस्थधर्मने पण उपदेश आथे। हतो, अेषु कथन उपलक्षणुथी  
नाणी देवुं नेधये ॥ सू. १५८ ॥

पुष्पिण फलिण हरिण हरियगरेरिज्जमाणे सिरीण अईव उवसोमेमाणे  
 चिट्ठइ, तया णं वणसडे रमणिज्जे भवइ, जया णं वणसडे नो  
 पत्तिण नो पुष्पिण नो फलिण नो हरिण नो हरियगरेरिज्जमाणे णो  
 सिरीण अईव उवसोमेमाणे चिट्ठइ जया णं जुन्ने इडे परिसदिय  
 पइपत्ते सुक्कल्लवे इव मिलायमाणे चिट्ठइ तयाणं वणसडे अर  
 मणिज्जे भवइ १। जया णं णट्टसाला वि गिज्जइ वाइज्जइ नच्चि  
 ज्जइ होसज्जइ रमिज्जइ तयाणं णट्टसाला रमणिज्जा भवइ, जया णं  
 नट्टसाला णो गिज्जइ जाव णो रमिज्जइ, तया णं णट्टसाला अरमणि  
 ज्जा भवइ २। जया ण इक्खुवाडे छिज्जइ भिज्जइ पीलिज्जइ खज्जइ  
 पिज्जइ दिज्जइ तया णं इक्खुवाडे रमणिज्जे भवइ, जया णं इक्खु  
 वाडे णो छिज्जइ जाव तया इक्खुवाडे अरमणिज्जे भवइ ३,  
 जयाणं खलवाडे उच्छुब्भइ मलिज्जइ खज्जइ दिज्जइ तया णं  
 खलवाडे रमणिज्जे भवइ, जयाणं खलवाडे नो उच्छुब्भइ जाव  
 अरमणिज्जे भवइ ४। से तेणहेणं पयसी। एव बुच्चइ मा णं तुम  
 पयसी। पुब्बि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवित्तासि  
 जहा वणसडेइ वा जाव खलवाडेइ वा ॥ सू० १५९ ॥

अया—ततः स्तु कश्चिद्भारभ्रमण प्रदेशिराजमेवमवादीत्—मा स्तु त  
 प्रवेक्षिन् । पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चात् अरमणीयो भवेत्, यथा स वनपञ्च इति

“तए णं केत्तीकुमारसमणे—” इत्यादि—॥ सू. १५९ ॥

मूलार्थ—“तए णं—” इसके बाद “केत्ती कुमारसमणे—” केत्ती कुमारभ्रमणे  
 पयसी रायं एवं वयासी—” प्रवेक्षी राजा से ऐसा कहा—“मा णं तुम पयसी ?

अर्थ—“तए णं केत्तीकुमारसमणे” इत्यादि ॥ सू. १५९ ॥

मूलार्थ—“तए णं” त्वां रमणी “केत्तीकुमारसमणे” देशे कुभार भ्रमणे “पयसी  
 रायं एवं वयासी” प्रदेशी राजाने आ प्रभाषे अर्थ—“मा णं तुम पयसी ! पुब्बि

વા નાટ્યશાલા इति वा इक्षुवाटकम् इति वा खलवाटकम् इति वा कथं खलु  
भदन्त ! वनपण्डः पूर्व रमणीयो भूत्वा पश्चाद् अरमणीयो भवति ? । प्रदेशिन् !  
यथा खलु वनपण्डः । पत्रितः पुत्पितः फलितः हरितः हरितकराराज्यमानः श्रिया  
अतीव उपशोभमानः तिष्ठति, तदा खलु वनपण्डो रमणीयो भवति, यदा खलु

પુત્તિ રમણીય ભવિત્તા પચ્છા-અરમણિજ્જે ભવિજ્જાસિ—” હે પ્રદેશિન્—! તુમ  
પહેલે રમણીય હોકર વાદ મેં અરમણીય મત વનના. અર્થાત્—ધાર્મિક હોકર  
અધાર્મિક મત વન જાના “જહા સે વણસંઢેઢવા-ળટ્ટસાલાઢવા-ઇક્ષુવાડાઢવા-  
ખલવાડાઢવા—” જૈસે પૂર્વ મેં રમણીય હોકર વનપણ્ડ અરમણીય વન જાતા  
હૈ, અથવા નાટ્યશાલા, યા ઇક્ષુ પીડન સ્થાન યા—ખલવાટક પૂર્વ મેં રમણીય હોકર  
અરમણીય વનજાતે હૈ. અવ પ્રદેશી પૂછતા હૈ—“કહં ણં મંતે ? વણસંઢે પુત્તિ  
રમણિજ્જે ભવિત્તા પચ્છા અરમણિજ્જે ભવઈ—” હે ભદન્ત ? વનપણ્ડ પૂર્વ મેં રમ-  
ણીય હોકર વાદ મેં અરમણીય કિસ પ્રવાર સે હો જાતા હૈ—૩ “ઉત્તર મેં પ્રશ્ન  
કહતે હૈ—“પણસી જહા ણં વણસંઢે પત્તિ-પુત્તિ-ફલિ-હરિયગરેરિજ્જમાણે સિરીય  
અઈવ ઉવસોમેમાણે—તયાણં વણસંઢે રમણિજ્જે ભવઈ—” હે પ્રદેશિન્ ? વનપણ્ડ  
જવ પત્રાં સે યુક્ત હોતા હૈ—પુષ્પ સમ્પન્ન હોતા હૈ—ફલિત ફલાં સે સહિત હોતા  
હૈ, હરિયાલી સે યુક્ત હોતા હૈ. હરે હરે પત્તે આદિ સે અતિશય સુહાવના  
હોતા હૈ તવ વનપણ્ડ અપની શાભાસે સુશોભિત હોતા હુવા રમણીય હોતા હૈ,

“રમણીય ભવિત્તા પચ્છા અરમણિજ્જે ભવિજ્જાસિ” હે પ્રદેશિન્ ! તમે પહેલા રમ-  
ણીય થઈને પછી અરમણીય બનશો નહિ, એટલે કે ધાર્મિક થઈને અધાર્મિક બનશો  
નહિ, “જહા સે વણસંઢે વા ણટ્ટસરલાઢવા ઇક્ષુવાડાઢવા ખલ વાડાઢવા” જેમ પહેલા  
રમણીય થઈને વનખંડ પછી અરમણીય થઈ જાય છે અથવા નાટ્યશાળા કે ઇક્ષુ-  
પીડનસ્થાન કે ઇક્ષુનાટક પહેલા રમણીય થઈને પછી અરમણીય થઈ જાય છે. હવે  
પ્રદેશી પ્રશ્ન કરે છે “કહં ણં મંતે ! વણસંઢે પુત્તિ રમણિજ્જે ભવિત્તા પચ્છા  
અરમણિજ્જે ભવઈ” હે ભદન્ત ! વનખંડ પહેલા રમણીય થઈને પછી અરમણીય કંઈ  
રીતે થઈ જાય છે ૩, ઉત્તરમા કહે છે “પણસી જહાણં વણસંઢે પત્તિ-પુત્તિ-  
ફલિ-હરિયગરેરિજ્જમાણે સિરીય અઈવ ઉવસોમેમાણે તયાણ વણ-  
સંઢે રમણિજ્જે ભવઈ” હે પ્રદેશિન્-વનખંડ ન્યારે પત્રોથી યુક્ત હોય છે, પુષ્પ  
સમ્પન્ન હોય છે, ફળ યુક્ત હોય છે હરીતિભોથી યુક્ત હોય છે તેમજ લીલા પાદ-  
અંગો વગેરેથી આ અતિશય સોહામણો હોય છે, ત્યારે તે વનખંડ પોતાની શોભાથી  
સુશોભિત થતો રમણીય હોય છે. એટલે કે આ પ્રમાણે વનખંડ રમણીય કહેવાય છે



वनपञ्चा नो पशितो नो पुष्पितो नो फलितो नो हरित नो हरित धराज्यमाना  
नो श्रिया अतीव उपश्रोममानः तिष्ठति, यदा स्तु जीर्णं धन्नः परिश्रुति पाण्डुपत्र  
शुष्कपृष्ठ इव म्लायन तिष्ठति तदा स्तु वनपञ्चा नो स्तु रमणीयो भवति ।

यदा स्तु नाट्यशालाऽपि गीयते वाद्यते नर्त्यते इत्यतः रम्यत तदा स्तु  
नाट्यशाला रमणीया भवति, यदा स्तु नाट्यशाला नो गीयते वाद्यत् न  
रम्यत तदा स्तु नाट्यशाला अरमणीया भवति ।

अर्थात्—इस प्रकार से वनपञ्च रमणीय कहा जाता है जयाय वनसङ्गे ना  
पशिए—नो पुष्पिए—नो फलिए नो हरिए—नो हरियगरेरिज्जमाण, या  
सिरीए आईव उष सोममाये चिह्नइ—परन्तु—जब वही वनपञ्च पशित (पत्रवाला) नहीं  
रहता है पुष्पित (पुष्पवाला) नहीं रहता है—फलित नहीं रहता है—हरा नहीं  
रहता है, एक-दूरे २ पत्रों आदिसे अतिशय सुहावना नहीं रहता है तब अपनी  
शोभा से रहित हो जाता है, तथा—“जयाण जुन्ने इहे पडिसडियपट्टपचे  
सुक्कज्जमे इव मिलायमाये चिह्नइ—” जब वही वन जीर्ण पत्रादिकों से रहित  
हो जाता है, पत्र आदि सब जब झग जाते हैं, विकृत पाण्डुवर्णवाले पत्र जब  
उसमें हो जाते हैं, तथा—छुपक इल की तरह जब वह म्लान हो जाता है  
“तयाण वणसङ्गे अरमणिज्जे भवइ—” तब वह वनपञ्च अरमणीय वन जाता  
है—? “जयाण णट्टसाला विगिज्जइ—वाइज्जइ—नप्पिज्जइ—इसिज्जइ—रमिज्जइ—  
तयाण णट्टसाला रमणिज्जा भवइ—” इसी तरहसे-हे प्रवेशिन् ? जब तक नाट्य  
शाला गान्धुक होती रहती है वादित्र की ध्वनि से वाद्यालित होती है,

“जयाण वणसङ्गे नो पशिए—नो पुष्पिए—नो फलिए ना हरिए—नो  
हरियगरेरिज्जमाणे, नो सिरीए आईव उषसोममाये चिह्नइ”  
पत्र तो, वनपञ्च जयाए पशित रहतो नहीं पुष्पित रहतो नहीं, फलित  
रहते नहीं, वीर्य रहते नहीं जाने वीर्य वीर्य पान्दुपत्रो नोपेशी  
अतिशय शोभायमान रहते नहीं त्वारे ते पीतानी शोभायी रहित भव जाय छ उष्य  
“जयाण जुन्ने इहे पडिसडियपट्टपच सुक्कज्जमे इव मिलायमाये चिह्नइ”  
जयाए ते वन एष पत्र ठोको सुकत भव जाय छ पान्दुपत्रो नोपेशी भयी पडे  
पडे छ, तेमा पान्दुपत्रो चिह्न तेमा पान्दुपत्राणा भव जाय छ तेमा शुष्क इधनी  
नेम जयाए ते म्लान भव जाय छ “तयाण वणसङ्गे अरमणिज्जे भवइ” त्वारे ते  
वनपञ्च अरमणीय भव जाय छ “जयाण णट्टसाला विगिज्जइ वाइज्जइ नप्पिज्जइ  
इसिज्जइ रमिज्जइ तयाण णट्टसाला रमणिज्जा भवइ” या मन्त्रके डे प्रवेशिन्  
जया नाट्यशाला सगीत आगत रहते छ, तेमा वादित्रा वाजता रहते छ तेमा  
नाय वट्ट रहते छ, पायना दास्यथा जया सुधी ते गुणारतयती रहते छ अने निवप

યદા સ્વલુ ઇશુવાટકં છિદ્યતે મિદ્યતે પીડયતે સ્વાદ્યસે પીયતે દીયતે તદા સ્વલુ ઇશુવાટકં સ્મણીયં ભવતિ, યદા સ્વલુ ઇશુવાટકં નો છિદ્યતે યાવત્ તદા ઇશુવાટકમ્ અસ્મણીયં ભવતિ ।

યદા સ્વલુ સ્વલવાટકમ્ અવશિષ્યતે મદ્યતે ઉદ્ઘાગ્યતે સ્વાદ્યતે દીયતે તદા સ્વલુ સ્વલવાટકં સ્મણીયં ભવતિ તત્ તેનાર્થેન પ્રદેશિન્ ! એવમુચ્યતે મા સ્વલુ ત્વ

અસમેં નાંચ હોતા રહતા હૈ. પાત્રોં કી હમ્સી સે જવ તક વહ સ્વિલ સ્વિલાતી રહતી હૈ, એવં વિવિધ પ્રકાર કી ક્રીડાઓં કી ક્રીડામ્બલા બની રહતી હૈ. તવ તક વહ નાટયશાલા સુહાવની લગતી હૈ. “જયાણં ણટ્ટસાલા ણા ગિજ્જહ, જાવ ણો રમિજ્જહ, તયાણં ણટ્ટસાલા અરમણિજ્જા ભવહ-૨” ઓગ-જવ વહ નાટય-શાલા ગીતોં સે રહિત હો જાતી હૈ. વાદિત્રોં કી તુમુલ ધ્વનિ સે વિઠીન હો જાતી હૈ. યાવત્-વિવિધ પ્રકાર કી ક્રાડાઓં સે વહ શૂન્ય હો જાતી હૈ, તવ વહી નાટયશાલા અસ્મણીક હો જાતી હૈ-૨ । “જયાણં ઇક્કુવાડે છિજ્જહ-મિજ્જહ-પીલિજ્જહ-સ્વજ્જહ-પિજ્જહ-દિજ્જહ. તયાણ ઇક્કુવાડે રમણિજ્જે ભવહ, જયાણ ઇક્કુવાડે ણો-છિજ્જહ-જાવ તયા ઇક્કુવાડે અરમણિજ્જે ભવહ-૩” ઇસી તાહ જવ તક હે પ્રદેશિન્ ? ઇશુ-સેલડી ક્ષેત્રમેં ઇશુ કટતે રહતે હૈં પતે આદિ અનસે દૂર કિયે જાતે રહતે હૈં અન્હેં યન્ત્રદ્વાર પીડિત કર અનકાર સ નિકાલા જાતા હતા હૈં બના હુવા ગુહ વહા ચગ્વા જાતા રહતા હૈં લોગ વહાં નિકાલે હુવે સર્વો પીતે રહતે હૈં, તથા-મિલને જુલને વાલોં કો ઇશુ દિયા જાતા રહતા હૈં. તેવ તક તો વહ ઇશુવાટ સ્મણીય બના રહતા હૈં ઓર જવ તક ઇશુ-

પ્રકારની ક્રીડાઓની તે ક્રીડા સ્થલી રહે છે ત્યા સુધી તે નાટયશાળા સોહામણી લાગે છે “જયાણં ણટ્ટસાલા ણો ગિજ્જહ, જાવ ણો રમિજ્જહ તયાણં ણટ્ટસાલા અરમણિજ્જા ભવહ ૨” અને જ્યારે નાટયશાળા ગીતરહીત થઇ જાય છે વાજિત્રોની તુમુલ તુમુલ ધ્વનિ રહિત થઇ જાય છે યાવત વિવિધ પ્રકારની ક્રીડાઓથી શૂન્ય થઇ જાય છે, ત્યારે તે જ નાટયશાળા અરમણીક થઇ જાય છે ૨ “જયાણં ઇક્કુવાડે છિજ્જહ મિજ્જહ, પીલિજ્જહ સ્વજ્જહ પિજ્જહ, દિજ્જહ, તયાણ ઇક્કુવાડે રમણિજ્જે ભવહ, જયાણં ઇક્કુવાડે ણો છિજ્જહ જાવ તયા ઇક્કુવાડે અરમણિજ્જે ભવહ ૩” આ પ્રમાણે હે પ્રદેશિન્ ! જ્યાં સુધી ઇશુ શેરડીના ખેતરમા શેરડી કપાતી રહે છે, પાદ-કાઓ વગેરેની સાફસફી થતી રહે છે, ચત્રમા નાખીને તેમાથી રસ નીકળતો રહે છે, તૈયાર થયેલ ગોળ ત્યા લોકો વડે અખાતો રહે છે, ત્યાંથી પસાર થતા લોકો શેરડી-માથી નીકળેલો રસ પીતા રહે છે, તથા મળવા માટે આવનારાઓને શેરડી અપાતી રહે છે ત્યાસુધી તો તે ઇશુવાટ સ્મણીય રહે છે અને જ્યારે તે ઇશુવાટમા પૂર્વોક્ત

પ્રદક્ષિન ! પૂર્વ રમણીયો થત્યા પમાવ્ અરમણીયો મથે યથા ધનાપ્ત્ત્વે इति वा  
યાવત્ સ્તલવાટ્ इति वा ॥૫૯॥

ટીકા—“તથા ન કંસી કુમારસમથે” इत्यादि—તત્ સ્તલ કેસી કુમારસમથઃ  
પ્રદક્ષિરામઃ યથમમાદીત—મા સ્તલ પ્રદક્ષિન ! ત્વ પૂર્વમ્—આદૌ રમણીય—ધા  
મિકા થત્યા પમાવ્ અરમણીય—અધાર્મિકો મા મથે, યથા—યન પ્રકારેન યન  
પ્ત્ત્વે इति वा નાટ્યપદ્યાલા—નાટ્યમત્તનમ્ इति वा इत्यુવાટ્કમ્—સ્તુપીલનસ્થાનમ્

વાત્તમેં ય પૂર્વોક્ત સથ કામ બન્દ કર દિય જાતે હૈ,—અર્થાત્—જન કાર્યો સે  
વહ રહિત યન જાતા હૈ તથ પહી રસુવાટ અરમણીય લગન લગતા હૈ “જયાળ  
સ્તલવાટે ઉચ્ચુમ્મહ—મલિન્નહ ઉદ્દિન્નહ સ્વજ્ઞહ દિન્નહ, તયામ સ્તલ વાટે રમણિજ્ઞે  
મવહ, જયાળ સ્તલવાટે જો ઉચ્ચુમ્મહ જાવ—અરમણિજ્ઞે મવહ ૪” इसी प्रकार स  
ह प्रदेक्षिन्—? स्वलिङ्गान अवतक घान्य क ढर लग रहते हैं दाय कण मर्दन  
हाती रहती है, उढावनी होती रहती है, वहीं पर उसकी गद्यार्थ स्थक के  
निमित्त लाया हुआ मोअन लाया जा । रह । है इसों की वही पर जब तक  
अनाज बर्ग ह दिया जाता रहता है तप्तक तो वह स्वलिङ्गान रमणीय लगता  
रहता है, और जब यह सब काम होना उममें बन्द हो जाता है तब वह  
अरमणीय लगन लगता है—४ ‘से तेणढेण पपसी? एष धुञ्चइ—मा न तुम  
पप—सी? पुण्वि रमणिज्जे भविषा पच्छ—अरणिज्जे भविज्जासि जहा वगसड वा  
जाव स्वलवाडेइ वा—” इसी लिय हे प्रदक्षिन्—? मैंने ऐसा कहा है कि—तुम  
पहले रमणीय होकर अरमणीय मत बन जावो, अस—कि वनपत्त यावत् स्तल  
वाट हो जत है—

બધી કિમ્બલ્લા બધ થઈ બધ ॥ ત્યારે તે ઇસુવાટ અરમણીય લાગવા માટે છે  
“જયાળ સ્તલવાટે ઉચ્ચુમ્મહ—મલિન્નહ, ઉદ્દિન્નહ, સ્વજ્ઞહ, દિન્નહ, તયામ સ્તલ  
વાટે રમણિજ્ઞે મવહ, જયાળ સ્તલવાટે જો ઉચ્ચુમ્મહ, જાવ—અરમણિજ્ઞ મવહ ૪”  
આ પ્રમાણે હે પ્રદેક્ષિન્ ! ખળ્યામાં જ્યાં સુધી ધાનના ઉપકારો રહે છે, ઉચ્ચુમ્મહ  
નૃદીને અનાજ ઠરાતુ રહે છે અનાજ ઉપજાતુ રહે છે ત્યાંના રમેવાળ માટે ત્યા  
પહેલાંવાટે સુ મોગ્ગન જમાતુ રહે છે બીજાઓને ત્યાં જ્યાં લગી અનાજ વગેરે અપાતાં  
રહે છે ત્યાં સુધી તે ખળુ રમણીય લાગે છે અને જ્યારે આ બધું કામ બંધ થઈ  
જાય છે ત્યારે તે અરમણીય લાગવા માટે છે ૪ “સ તમદુણ પપ્પસી ! एष  
धुञ्चइ—मा न तुम पपसी ! पुण्वि रमणिज्जे भविषा पच्छ—अरमणिज्जे भविज्जासि  
जहा वगसड वा जाव स्वलवाडेइ वा” जेरता माटे हे प्रदेक्षिन् ! मे आभ ठसुं  
० ३ तमे भरेहां रमणीय यधने पही अरमणीय बनये नहि जेनी दीते वनप द यावत

इति वा खलवाटकम् इति वा पूर्व रमणीयं भूत्वा पश्चादरमणीयं भवतीति ! तत्र प्रदेशी पृच्छति—हे भदन्त ! कथं—केन प्रकारेण वनपण्डः पूर्व रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो भवति ? । एवं नाटयशालेक्षुवाट—खलवाटविषयेऽपि प्रश्नयेजना कर्तव्या । तत्र क्रमेण तेषां रमणीयत्वारमणीयत्वे प्रदर्शयितुं केशी प्राह—‘पणसी’ इत्यादि—हे प्रदेशिन् ! यथा वनपण्डः पत्रितः—पत्रसम्पन्नः, पुष्पितः—पुष्पसम्पन्नः फलितः—फलसम्पन्नः, हरितः—हरितत्वसम्पन्नः हरितकगराज्यमानः—हरितवर्ण पत्रपल्लवादिभिरतिशयेन जीभमानः, अतएव श्रिया—शोभया, अतीव—अत्यन्तम् उपशोभमानः—शोभां प्राप्नुवन् यदा तिष्ठति—वर्तते, तदा—तस्मिन् काले च स वनपण्डो नो पत्रितः नो पुष्पितः नो फलितः नो हरितः नो हरितक । अज्यमानः अत एव नो श्रियाऽतीवोपशोभमानो भवति, यदा च जीर्णः—जीर्णपत्र पल्लवादिभिरुक्तः गन्नः—प्रपतितपत्रादिकः, अत्र गण्डो झडादेशः, परिशटितपाण्डुपत्रः—विकृतपाण्डुवर्णपत्रयुक्तः शुष्कवृक्ष इव म्लायन्—म्लानतां गच्छन् सन् तिष्ठते, तदा खलु वनपण्डो नो रमणीयो भवति ? । प्रदेशी पृच्छति—हे भदन्त ! नाटयशाला कथं रमणीया भूत्वा चारमणीया भवति ? केशी प्राह—हे प्रदेशिन् ! यदा खलु नाटयशालाऽपि गीयते—गानयुक्ता भवति वाद्यते—वाद्यवादनयुक्ता भवति नृत्यते—नृत्ययुक्ता भवति, हस्यते—हास्ययुक्ता भवति, रम्यते—क्रीडनयुक्ता भवति, तदा खलु सा रमणीया भवति, यदा खलु नो गीयते—यावत् नो वाद्यते ना नृत्यते नो हस्यते नो रम्यते, तदा खलु सा अरमणीया भवति २ ।

अभेक्षुवाटविषयकश्रुते केशी प्राह—हे प्रदेशिन् ! यदा खलु इक्षुवाटम् इक्षुक्षेत्रे इक्षुः छिद्यते—द्विधा क्रियते, भिद्यते—विदार्यते, पीड्यते—ग्रन्थेण रसो निःसार्यते, खाद्यते—गुडादिकम्, पीयते—रसः, दीयते—इक्ष्वादिकं, तदा खलु इक्षुवाटं रमणीयं भवति । यदा खलु इक्षुवाटं नो छिद्यते यावत् नो पीड्यते नो खाद्यते नो पीयते नो दीयते, तदा इक्षुवाटम् अरमणीयं भवति । ३ ।

टीकार्थ—स्पष्ट है, “झडे” यहाँपर शब्द के स्थान में झड आदेश हुआ है। संस्कृत में इस की छाया “गन्नः” ऐसी होती है । केशाने—इस सूत्र द्वारा प्रदेशी राजा को पहिले रमणीय होकर अरमणीय वन जाने वाले वनपण्ड आदि-चार को दृष्टांतरूप में रखकर यह समझाया है कि—तुम ऐसे मत वन जाना ॥१५९॥

टीकार्थ—स्पष्ट है ‘झडे’ अर्थात् ‘शब्द’ना स्थाने ‘झड’ आदेश यथेष्ट छे संस्कृत भाषेनी छाया ‘गन्नः’ डोय छे। केशीअने आ सूत्र वडे प्रदेशी राजाने पडेलो रमणीय थडने पछी अरमणीय थड जनारा वनपण्ड वगेरेने दृष्टात रूपभा आधीने आ समझववाभा आव्यु छे के तमे अेवा थशे नडि ॥सू. १५९॥

अयं स्वल्पावधिप्रकरणे केडी प्राह-हं प्रदक्षिन् । रदा स्तु स्तु १८  
 मस्यकर्मार्जनपरिष्करणस्थानम् तत्र धान्यम्-अवधिप्यत-पुत्रीक्रियत, मघत-बली  
 वशीदिमि, उद्गाप्यत-पन्ने पू त, ग्वाधत, दीयते तदा स्तु स्तुवात् रमणीय  
 मयति । रदा स्तु नो अवधिप्यत यावत् नो मघते नो उद्गाप्यत, नो स्वाधत  
 नो दीयत तदा आमणीय मयति ४ । सत् हे प्रदेक्षिन् ! तेन-वनपण्डादि  
 रप्यन्तरूपज अर्थन एवम् उच्यत-क ते-यत् हे प्रदेक्षिन् ! त्व पूर्वं रमणीया  
 भूत्वा पश्चादरमणीया मा मवे यथा वनपण्ड इति वा यावत्-नात् ज्ञालेति वा  
 इक्षुवात् इति वा स्वल्पावधि इति वा ॥५॥ १५९॥

मूलम्—तए णं पएसी कसिं कुमारसमणं एव वयासी-णो  
 स्तु भते ! अह पुंवि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणीज्जे भवि  
 स्तामि जहा वणसडेड वा जाव खलवाडेड वा, अह सेयविवा  
 नयरीपमुक्खाइ सत्त गामसहस्ताइ चत्तारि भागे करिस्तामि, एग  
 भाग धलवाहणस्स दलइस्तामि, एगं भाग कुट्टागारे नृभिस्तामि,  
 एग भाग असेउरस्स दलइस्तामि, एगेणं भागेणं महइमहालय  
 कुडागारसाल करिस्तामि, तरथ णं वहुहिं पुरिसेहिं दिन्नभइभत्त  
 वेयणेहिं विउल असणं पाणं ग्वाइम उवक्खवावेत्ता वहुणं समण  
 माहणभिवग्गुयाग पधियवहियाणं परिभाणमाणे वहुहिं सीलव्वयगुण  
 व्वयवेरमणव्वयपच्चक्खानपोसहोववामेहिं अप्पाणं भावेमाणे वि  
 हरिस्तामिति कहुं जामेव दिसं पाउब्भूय तामेव दिसं पडिगण ।  
 ॥ सु० १६० ॥

प्राया—ततः श्वत्सु प्रदक्षी कश्चिन् कुमारभ्रमणम् ण्यमषादीन्-नो श्वत्सु  
 मदन्त ! अह एव रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो भविष्यामि, यथा वनपण्ड  
 इति वा यावत् स्वल्पावधिमिति वा अह स्वत्सु श्वत्सुविषानगरी प्रमुत्थानि मज्ज  
 ग्राममहसाणि शतुरा भागान् करिष्यामि, एक भागं वसपाहनस्य दास्यामि, एक  
 भागं काष्ठागारं क्षुष्यामि, एक भागं मत्तं पुराय दास्यामि, एकं भागं महा  
 निमहालयं कृत्वा काष्ठागारां करिष्यामि, तत्र श्वत्सु वहुमि पुनै इति मतिमत्त

“तए ण पएसी के-सि” इत्यादि ॥१६० सूत्रा॥

सुत्रार्थ—‘तएण’ इसके बाद ‘पएसी’ प्रदेशी राजाने—“केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—” केसीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—“णो खलु भंते? अहं पुब्बि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविस्सामि जहा वणसंडेइ वा जाव-खलवाडेइ वा—” हे भदन्त? मैं पहले रमणीय होकर अब वनपण्ड, अथवा यावत् खलवाट सेलडीका खेत की तरह अरमणीय नहीं बन्दूंगा. “अहं सेयविया नयरी पमुक्खाइ सत्त गामसहस्साइ चत्तारिभागे करिस्सामि—” मैं श्वेताविका नगरी प्रमुख सातहजार ग्रामों को चार विभागों में विभक्त करूंगा. “एकं भागं वलवाहणस्स दल-इस्सामि—” इन में से एक भाग तो वल-और वाहन के लिये दूंगा. “एगे भागे कूडागारे छुमिस्सामि—” दूसरा भाग कूड़ागार में प्रजापालन के लिये रखूंगा. “एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि—” एक भाग को तीसरेको में अन्तःपुर रक्षा के लिये दूंगा. “एगेण-भागेणं महडमहालयं कूडागारसालं करि-स्सामि—” एक भाग से चौथे से मैं एक बहुत ही विशाल कूडागारशाला बनवाऊंगा. —“तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्नभडभत्तवेयणेहिं विउल असण पाणं खाडमं साइमं उवक्खवावेत्ता बहूणं समण-माग्गण-भिक्षुयाणं पंथिय पहियाण परिभाएमाणे—” उसमें जनेक पुरुषों को सवेतनिक रूपमें रखूंगा.

“तए ण पएसी केसि ” इत्यादि ॥१६०॥

सुत्रार्थ—‘तए ण’ त्थार पछी ‘पएसी’ प्रदेशी राजाने ‘केसिं कुमारसमणं एवं वयासी’ देशी कुमार श्रमणने आ प्रमाणे कथुं. “णो खलु भंते! अहं पुब्बि रमणिज्ज भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविस्सामि जहा वणसंडेइ वा जाव खलवाडेइ वा” हे भदन्त! हुं पहले रमणीय थधने हुवे वनपण्ड के यावत् भजानी जेम अरमणीय थधथ नडि “अहं सेयंविया नयरी पमुक्खाइ सत्तगामसह-स्साइ चत्तारि भागे करिस्सामि” हुं श्वेतविक्षा नगरी प्रमुख सात हजार गांभोने थार लागोमा विस्त्राजित करीश, “एकं भागं वलवाहणस्स दलइस्सामि” आभाधी ओक भाग जल (सेना) अने वाहन भाटे आपीश. “एगे भागे कूडागारे छुमिस्सामि” जीने भाग कूड़ागारमां प्रज्ज पालन भाटे बुद्धो राणीश. “एगं भाग अंतेउरस्स दलइस्सामि” त्रीन ओक भागने हुं अन्तःपुरनी रक्षा भाटे आपीश. “एगेणं भागेणं महडमहालयं कूडागारसालं करिस्सामि” चौथा ओक भागथी हुं ओक विशाल कूडागार थाला जनावजवीश. “तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्नभडभत्त-वेयणेहिं विउलं असणं पाणं खाडमं साइमं उवक्खवावेत्ता बहूणं समणमाग्ग-भिक्षुयाणं पंथियपहियाणं परिभाएमाणे” तेभा धण्ठा पुरिषोने हुं पणार आपीने नीभीश. तेओ त्याज्ज नभशे. ते भाणुसो पासेथी हुं विपुल मात्राभा अशन-पान-

વતન વિપુલમ્ અન્નન પાન સ્વાદિમ સ્વાદિમમ ઉપસ્કાર્યં બહુમ્ય ભમ્મણ પ્રાહ્મ-  
મિશ્નુકમ્ય પથિકપ્રાધુણેમ્ય પરિમાવયન બહુમિ શીલવ્રતગુણવ્રતધિરમ્મણવ્રત-  
પ્રત્યાર્થ્યાનપોષધોપવાસં આત્માન માનયમાનો વિહરિષ્યામિ, इति कृत्वा यामेव  
दिश प्रादुर्भूत तामेव दिश प्रतिगत ॥४॥ १६०॥

ટીકા—“તથ ણ પપ્પસી” इत्यादि—તત સ્વત્વ પ્રવેશી રાજા કશ્ચિન  
કુમારધમણમ્ एवमवार्दान्—હે મદન્ત ! અહ પૂર્વ રમણીયો ભૂત્વા પશ્ચાન્નરમણીયો  
નો મધિપ્યામિ યથા—એન પ્રકારણ વનપણ્ડા इति वा यावत् नाटयशालेति वा इक्षु  
वाटमिति वा स्वल्बान्मिति वा, वनपण्डादिषत् पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चाद्  
रमणीयो नो मधिप्यामीति, तदेव स्पष्टयति अह स्वतु श्वेताम्बिकानगरी प्रमुत्तानि  
सप्त ग्रामसहस्राणि-सप्त सहस्रपरिमितग्रामान् चतुर्गे भागान्-चतुर्धा विभक्तान्

बही वे भोजन करेंगे उनसे मैं विपुल मात्रा में अन्न-पान-स्वादिम स्वादिम रूप चारों  
प्रकारक आहार को तैयार कराऊंगा फिर—अनेक भमण माहण मिश्रकों क लिये  
तथा पथिकरूप प्राधुर्णिकों के (अर्थात् विदेशी) लिये उस आहार को दता  
हुवा, एवं—‘बहुहिं सीलव्रतगुणव्यवहारमण्यपन्चकस्तान् पोसहोवषासेहिं अप्याम  
मावेमाणे विहरिस्सामि ति कहुं जामेव दिस पाउम्मूए तामेव दिस पडिगए—’  
अनेकशील व्रतों से गुणव्रतों से प्रत्यागम्यान और-पौषधोपवासोंसे आत्मा को म बासित  
करता हुवा इस प्रकार कह कर वह प्रदेशी राजा, जिस दिशा से आया था  
उसी दिशा को चला गया

ટીકાર્થ—સ્પષ્ટ છે પ્રદેશી રાજાને જો સ્વત્વ દ્વારા અપના અભિપ્રાય  
પ્રકટિત કિયા છે તથા તેમ વનપણ્ડાદિ કોં કી તરફ પૂર્વે રમણીય હોઈ અરમ-  
ણીય નહીં હાને કી પુષ્ટિ ક નિમિત્ત પ્રગટ કિયા છે હસી વાત કી પુષ્ટિ અપન  
સાત હજાર ગ્રામોં કો ચાર ભિભાગોં મેં વિભક્ત કરને કી છે હસમેં એક-૨

પ્રાદિમ-સ્વાદિમરૂપ આદે પ્રકારના આહારો તૈયાર કરાવશ્ચીજ. પછી ઘણા ભમણ  
માહણ મિશ્રકોં માટે તેમજ પથિકરૂપ પ્રાધુર્ણિકોને તે આહાર આપતો એવ બહુઈ  
સીલવ્રતગુણવ્યવહારમણ્યપન્ચકસ્તાનપોસહોવષાસેઈ અપ્યામ માવેમાણે  
વિહરિસ્સામિ તિ કહુ જામેવ દિસ પાઉમ્મૂએ તામેવ દિસ પડિગએ” ઘણા શીલ-  
વ્રતોથી ગુણવ્રતોથી પ્રત્યાગમ્યાન અને પોષધોપવાસોથી આત્માને મુ બાસિત કરતો  
શ્ચીજ આ પ્રમાણે દેહીને પ્રદેશી રાજા ને દિશા તરફથી જાન્યો હતો તે દિશા  
જેથી જ હતો નહીં.

ટીકા—સ્પષ્ટ જ છે પ્રદેશી રાજાએ આ સુતવડે ને પોતાનો અભિપ્રાય પ્રકટ  
કયો છે તે વનપંડા જેમ પણ્ડાં રમણીય થઈને પછી અરમણીય થઈ બન છે તેમ  
તે કયો નહિ એ વાતને સ્પષ્ટ કરવામા આવી છે પોતાના સાત હજાર ગ્રામોંને ચાર  
ભાગોમાં ને રાજાએ વિભાજિત કયો છે તે પણ એ વાતને જ સ્પષ્ટ કરે છે એમાં

करिष्यामि, तत्र भागान् इत्यत्र 'भज्यन्त इति भागाः' इति कर्मव्युत्पत्तिर्विध्या,  
 भावव्युत्पत्त्या तु कर्मणि पठ्यापत्तिः स्यात् । तेषु चतुर्षु भागेषु एकं भागं  
 पादोनसहस्रद्वयरूपं बलवाहनाय-तत्र बलाय-सैन्याय-वाहनाय-हस्त्यश्वाद्यर्थं दास्यामि  
 १, एकं-द्वितीयं भागं कोष्ठागारे-प्रजापालनाय कोशे क्षेप्यामि२, मूले क्षिपे  
 श्छुभादेशः, एकं-तृतीयं भागम् अन्तः पुराय-अन्तःपुररक्षणाय दास्यामि३, चतु-  
 र्थेन भागेन महातिमहालयाम्-अतिमहतीं-परमविशालाम्, कूटाऽऽकारशालां  
 करिष्यामि, तत्र कूटाऽऽकारशालायां बहुभिः-बहुसंख्यैः पुरुषैः, कीदृशैः ? दत्त-  
 भृतिभक्तवेतनैः-दत्ताः भृतयो-जीविकाः, भक्तानि-आहाराः, वेतनानि-मासिक  
 वृत्तयश्च येभ्यस्ते दत्तभृतिभक्तवेतनास्तैः पुरुषैरिति सम्बन्धः, विपुलं-प्रचुरम् अशनं पानं  
 खादिमं स्वादिमम्' इति चतुर्विधाऽऽहारम् उपस्कार्य-सम्पादय बहुभ्यः श्रमण-  
 ब्राह्मणभिक्षुकेभ्यः, तथा-पथिकप्राघुणेभ्यः-पथिकरूपाः प्राघुणाः पथिकप्राघुणाः,  
 न तु सम्बन्धमाश्रित्य प्राघुणाः, तेभ्यः, परिभाजयन्-ददत्, बहुभिः शीलव्रत-  
 गुणव्रत-विरमणव्रत-प्रत्याख्यान पोषधोपवासैः आत्मानं भावयमानो विहरिष्यामि,  
 इति कृत्वा-इति कथयित्वा यामेव दिशं समाश्रित्य प्रादुर्भूतः तामेव दिशं  
 प्रतिगतः । ॥सू० १६०॥

भाग में पोते दो-दो हजार ग्राम आते हैं । सैन्यका नाम-बल, और हस्ती  
 अश्व आदिका नाम वाहन है । प्रजाओं की अच्छी तरह से पालन हो इस  
 अभिप्राय से उसने एक भाग कोश-भण्डार में रखदिया "छुभिस्सामि" की  
 संस्कृत छाया "क्षेप्यामि" है क्षिप् के प्राकृत में छुभादेश हुवा है, भृति  
 शब्द का अर्थ जीविका, भक्त शब्द का अर्थ आहार एव-वेतन शब्द का अर्थ  
 पगार है । पथिक प्रघूर्ण से पथिकरूप से प्राघुण लिये गये हैं नकि-सम्बन्ध  
 को आश्रित करके प्राघूर्ण लिये गये हैं ॥सू० १६०॥

दरेके दरेक विभागमा पोषा जे-जे हजार ग्राम छे सैन्यस्य नाम जल अने हाथी  
 घोडा वगेरेहु नाम वाहन छे. प्रजास्य सारी रीते पालन थछे शके तेदला माटे  
 तेले ओके भाग कोश-भण्डारमा भूक्यो छे "छुभिस्सामि" नी संस्कृत छाया  
 "क्षेप्यामि" छे. क्षिप् ने प्राकृतमा छुभादेश थयो छे भृति शब्दने अर्थ जीविका  
 भक्त शब्दने अर्थ आहार अने वेतन शब्दने अर्थ पगार छे पथिक प्राघूर्ण-  
 (अतिथिश्य भडेमान)थी पथिकश्यथी प्राघूर्ण (भडेमान) लेवामा आव्या छे सजधने  
 आश्रित करीने प्राघूर्ण लेवामा आव्या नथी ॥सू १६०॥



वतनैः विपुलम् अन्नं पानं स्वादिमं स्वादिमम् उपस्कार्य बहुम्य भ्रमणं ब्राह्मण-  
मिक्षुकम्य पथिकप्रापुषेभ्यः परिमाजयन् बहुमिः शीलव्रतगुणव्रतविरम्भव्रत  
प्रत्यागम्यानपोषधोपवासैः आत्मानं भाषयमानो विहरिष्यामि, इति कृत्वा यामेव  
दिशं प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः । अथ १६०॥

टीका—“तएव पणसी” इत्यादि—ततः स्वस्त्यु प्रवेशी राजा केशिन  
कुमारभ्रमणम् एवमवाप्सीत्—हे मदन्त ! अहं पूर्वं रमणीयो भूत्वा पद्मादरमणीयो  
नो भविष्यामि यथा—वनं प्रकारं वनपण्ड इति वा यावत् नाट्यशालेतिसिवा इक्षु  
वाटमिति वा स्वलवाटमिति वा, वनपण्डादिषु पूर्व रमणीयो भूत्वा पद्मादर  
मणीयो नो भविष्यामीति, तदेव स्पष्टयति अहं स्वस्त्यु श्वेतादिकानगरी प्रमुत्तानि  
सप्त ग्रामसहस्राणि सप्त सहस्रपरिमितग्रामान् चतुर्गे मागान्—चतुर्धा विभक्तान्

वही वे भोजन करेगे वनस में विपुल मात्रा में अन्न-पान-स्वादिस स्वादिम रूप चारों  
प्रकारक आहार को तैयार कराऊंगा फिर—अनेक भ्रमण माहण मिक्षुकों के लिये  
तथा पथिकरूप प्राधुर्गिकों के (असंख्यविशेष) लिये उस आहार को देता  
हुवा, एवं—‘बहुहिं शीलव्रतगुणव्ययवैरमणव्ययपञ्चकस्याम्यपोसहोववासेहिं अप्याम  
भावेमाप्य विहरिस्सामि चिकहुं जामेव दिस पाउष्मूय तामेव दिस पडिगम्—’  
अनेकशीलव्रतों से गुणव्रतों से प्रत्यागम्यान और-पोषधोपवासोंसे आत्मा को मैं वासित  
करता हुवा इस प्रकार कर कर वह प्रदेशी राजा, जिस दिशा से आया था  
उसी दिशा को चला गया

टीका—स्पष्ट है प्रदेशी राजाने जो इस सूत्र द्वारा अपना अभिप्राय  
प्रकटित किया है वह मैं वनपण्डादि कों की तरह पूर्वमें रमणीय होकर अगम  
णीय नहीं होने की पुष्टि के निमित्त प्रगट किया है इसी बात की पुष्टि अपन  
सात हजार ग्रामों को चार विभागों में विभक्त करने की है इसमें एक—२

आदिम—स्वादिमभ्य याए प्रहारना आहारा तेमार कशवमवीश पछी मय्या भभण  
माहण मिक्षुको मागे तेम / पथिकरूप प्राधुर्गिकोंने ते आहार आप्तो एवं बहुहिं  
शीलव्रतगुणव्ययवैरमणव्ययपञ्चकस्याम्यपोसहोववासेहिं अप्याम भावेमाप्य  
विहरिस्सामि चि कहुं जामेव दिस पाउष्मूय तामेव दिस पडिगम्” यथा शील  
व्रतेशी गुणव्रतेशी प्रत्यागम्यान अने पोषधोपवासोशी आत्माने हे वासित करतो  
हरीश आ भ्रमणो करीने प्रदेशी राजा ने दिशा तरफकी ओरों करतो ते दिशा  
ओशी ओर करतो हरीश

टीका—स्पष्ट है प्रदेशी राजाने जो सूत्रपठे ने पेटाने अभिप्राय प्रकट  
करी है ते वनपण्ड नेम पण्डो रमणीय भवने पछी अरमणीय भव अथ है तेम  
ते यही नहिं के वातने स्पष्ट करवाया आवी है पेटाना सात हजार ग्रामों या  
आजोमा ने राजाने विभाजित कवी है ते पण के वातने ओर पण्ड कर है केमां

ततः खलु स प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः अभिगत-जीवाजीवः यावद् विहरति, यत्प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः, 'तत्प्रभृति च खलु राज्य च राष्ट्रं च बल च वाहन च कोशं च कोष्ठागारं च अन्तःपुरं च जनपदं च अनाद्रि'माणश्चापि विहरति । ॥सू० १६१॥

टीका—“तए णं से पएसी” इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशी राजा कल्पं यावत् एकोनपट्यधिकैकशततम १५९ सूत्रोक्तपाठानुसारेण सूर्ये तेजसा-दीप्त्या ज्वलति—कागमाने सति श्वेतांविकाप्रमुखानि सप्त ग्रामसहस्राणि-ग्रामाणां सप्त

कूटागार गाला वनकर तैयार हो गई तब उसमें उमने अनेक पुरुषों द्वारा यावत् चारों प्रकार का अन्न-आहार निष्पन्न कराकर उससे अनेक श्रमणादि जनोको प्रतिलामित करता था याने देता था “तएण से पएसी गया समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ—” इसके बाद वह प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हो गया. जीव तत्त्वा और अजीव तत्त्व के स्वरूप का मलीमांति से ज्ञात बन गया. इत्यादि. जप्पमिडं च ण पएसी गया समणोवासए जाए तप्पमियं च णं रज्जं च रट्टं च बलं च वाहनं च कोसं च कोष्ठागारं च-पुरं च अंतेउरं च जणवयं च अणाढायमाणे यावि विहरइ—” अब वह प्रदेशी राजा जिस दिन से श्रमणोपासक बना. उसी दिन से अपने राज्य के प्रति. राष्ट्र के प्रति बल के प्रति. वाहन के प्रति, कोष के प्रति, कोष्ठागार के प्रति अन्तःपुर के प्रति और जनपद के प्रति उपेक्षाभाव धारण कर लिया. इस सूत्र का टीकार्थ—स्पष्ट है. यहां यावत्पद से—“कहलं जाव” के इस यावत् पदसे १५९ वें सूत्र है जो पाठ इसके विषय में

न्याये कूटागारशाणा तैयार थई गइ तयारे तेभा तेणु धणु पुरेपो वडे यावत् तयारे जातने अशन आइ रणनाव १०था अने तेनायी धणु श्रमणु वगेरेने प्रतिकालित कथा “तए ण से पएसी गमा समणोवासए जाव अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ” तयार पछी ते प्रदेशी राजा श्रमणोपासक थई गये. अणुवत्त्व अने अणुवत्त्वना स्वइपने सारी रीते जाता थई गये वगेरे. “जप्पमिडं च ण पएसी गया समणो-वासए जाए तप्पमियं च ण रज्जं च रट्टं च, बलं च वाहनं च, कोसं च, कोष्ठागारं च, पुरं अंतेउरं च, जणवयं च अणाढायमाणे यावि विहरइ” हवे ते प्रदेशी राजाये जे द्विवसथी श्रमणोपासक थये, तेज द्विवसथी पोताना राज्य तरइ, राष्ट्र तरइ, सेना तरइ, वाहन तरइ, ल डार (कोष) तरइ कोष्ठागार प्रति, अन्तःपुर प्रति अने जनपद प्रति उपेक्षा भाव धारण करी लींथि।

टीकार्थ—आ सूत्रने स्पष्ट ज छि. अहाँ यावत् पदथी “कहलं जाव” ना आ यावत् पदथी १५८ भा सूत्रमा जे पाठ जेना विषे गृहीत थये छि त जाणुवे।

मूलम्—तए णं से पएसी राया कछु जाव तेयसा जलते सेयावि  
पामोकखाइ सत्त गामसहस्साइ चत्तारि भाए कीरइ, एग मागं बल  
वाहणस्स दलइ जाव कूढागारसाल करइ, तत्थ ण बहु हिं पुरिसे  
हिं जाव उवक्खवावेत्ता बहूणं समणं जाव परिभाएमाणे विहरइ ।

तए णं से पएसी राया समणोवासए जाए अभिगयजीवा-  
जीवे जाव विहरइ, जप्पभिइ च णं पएसी राया समणोवासए जाए  
तप्पभिइ च णं रज्ज च रट्टु च धल च वाहणं च कोस च कोट्टा  
गार च पुर च असेउर च जणवर्यं च अणाढायमाणे यावि  
विहरइ । ॥ सु० १६१ ॥

छाया—तत्त खलु स पदेसी राजा कल्य यावत् तेजसा जलति श्वेतां  
विक्राप्रसुराणि सप्त ग्रामसहस्राणि क्षुत्तुगे मागान् करोति, एक माग बलवाहनाय  
ददाति यावत् कूटाऽऽकारशालां करोति, तत्र स्तु बहुमि पुर्यै यावत् उप  
स्कार्यं बहुमं भ्रमणं यावत् परिमाजयन् विहरति ।

“तए म पएसी राया—” इत्यादि ।

सुत्रार्थ—“तएण” इसके बाद—“पएसी” राया कल्य” प्रदेशी  
राजाने दूसर ही दिन “जाव, तेयसा जलते” यावत् तंजसे छय  
प्रकाशित होजाने पर “सेयविया पामोकखाइ सत्तगामसहस्साइ चत्तारि  
भाए कीरइ—” श्वेतविक्रा प्रसुत्त सातहजार ग्रामों के चार विभागों में  
विभाजित कर दिया “एगे मागे बलवाहणस्स दलयइ” इनमें एक माग बल  
वाहन के लिये बितरक करदिया “जाव-कूढागार साल करइ” यावत् क्षु  
भर्मा कूटागारशाला का बनवाने के निमित्त द दिया “तत्थ ण बहुहिं पुरिसे  
हिं जाव उवक्खवावेत्ता बहूण समणं जाव परिभाए माय विहरइ—” जय

‘तएण पएसी राया’ इत्यादि

सुत्रार्थ—तएण त्वाए णाड (पएसी राया कल्य) प्रदेशी राजाने भीज  
दिवसे जाव तेयसा जल तं यावत् तेजसी ल्वाये सुभ प्रकाशित भई जये त्वाए  
“सेयविया पामोकखाइ सत्तगामसहस्साइ चत्तारि भाए कीरइ” श्वेतांनिभ  
प्रभुष सात हजार गांधाने चार क्षेत्रों में बडे भी नाज्जा. “एग माग बलवाहण  
स्स दलयइ” आभा केक भाज-जल-वाहन भाए आये. “जाव कूढागारसाल  
करइ” यावत् केषां क्वाज कूटागारशाला बनाने भाए आये. नर बहुहिं  
पुरिसहिं जाव उवक्खवावेत्ता बहूण समणं जाव परिमाणमाणे विहरइ”

ततः खलु स प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः अभिगत-जीवाजीवः यावद् विहरति, यत्प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः, तत्प्रभृति च खलु राज्य च राष्ट्रं च बलं च वाहनं च कोशं च कोष्ठागारं च अन्तःपुरं च जनपदं च अनाद्रि-माणथापि विहरति । ॥सू० १६१॥

टीका—“तए णं से पएसी” इत्यादि-ततः खलु स प्रदेशी राजा कल्पं यावत् एकोनपट्यधिकैकशततम १५९ सूत्रोक्तपाठानुसारेण सूर्ये तेजसा-दीप्त्या ज्वलति-कागमाने सति श्वेतां विकाप्रमुखानि सप्त ग्रामसहस्राणि-ग्रामाणां सप्त

कृदागार शाला वनकर तैयार हो गई तब उसमे उसने अनेक पुरुषों द्वारा यावत् चारों प्रकार का अन्न-आहार निष्पन्न कराकर उससे अनेक श्रमणादि जनोको प्रतिलाभित करता था याने देता था “तएण से पएसी गया समणोवासए जाए अभिगयजी जीवे जाव विहरइ—” इसके बाद वह प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हो गया. जी० तत्त और अजी० तत्त के स्वरूप का मलीभांति से ज्ञात हुआ गया. इत्यादि. जप्पमिडं च ण पएसी गया समणोवासए जाए तप्पमियं च णं रज्जं च रट्टं च बलं च वाहनं च कोशं च कोष्ठागारं च-पुरं च अंतोउरं च जणवयं च अणाढायमाणे यावि विहरइ—” अब वह प्रदेशी राजा जिस दिन से श्रमणोपासक बना. उसी दिन से अपने राज्य के प्रति. राष्ट्र के प्रति बल के प्रति. वाहन के प्रति, कोष के प्रति, कोष्ठागार के प्रति अंतःपुर के प्रति और जनपद के प्रति उपेक्षाभाव धारण कर लिया. इस सूत्र का टीकार्थ—स्पष्ट है. यहां यावत्पद से—“कल्लं जाव” के इस यावत् पदसे १५९ वें सूत्र है जो पाठ इसके विषय में

न्याये कृदागारशाला तैयार थई गइ तयारे तेमां तेणु धणु पुशे वडे यावत् तयारे जातने अन्न आइरणताव १०था अने तेनाथी धणु श्रमणु वगेरेने प्रतिबालित कर्था “तएण से पएसी गया समणोवासए जाव अभिगयजीजीवे जाव विहरइ” तयार पछी ते प्रदेशी राजा श्रमणोपासक थई गये. जणवत्त्व अने अजणवत्त्वता स्वप्नने सारी रीते ज्ञाता थई गये वगेरे. “जप्पमिडं च ण पएसी गया समणो-वासए जाए तप्पमियं च ण रज्जं च रट्टं च, बलं च वाहनं च, कोशं च, कोष्ठागारं च, पुरं अंतोउरं च, जणवयं च अणाढायमाणे यावि विहरइ” छवे ते प्रदेशी राजा जे द्विवसथी श्रमणोपासक थये, तेज द्विवसथी पोताना राज्य तरइ, राष्ट्र तरइ, सेना तरइ, वाहन तरइ, लडार (कोष) तरइ कोष्ठागार प्रति, अंतःपुर प्रति अने जनपद प्रति उपेक्षा भाव धारण करी लीये.

टीकार्थ-आ सूत्रने स्पष्ट न छे. अही यावत् पदथी “कल्लं जाव” ना आ यावत् पदथी १५८ भा सूत्रमा जे पाठ सेना विषे गृहीत थये छे त जाणवे.

सहस्राणि चतुरो मागान्-चतुर्धा विभक्तं नि करोति, कृत्वा तेषु चतुर्षु मागेषु  
एकं-प्रथमं भागं बलवाहनाय ददाति, द्विपट्यधिकशततमस्रश्रोक्तानुसारेण कृत्वा-  
ऽऽकाशालां करोति । तत्र स्रजु बहुमि पुर्यै यावत् उपस्कार्य बहुभ्य भ्रमणं  
यावत् द्विपट्यधिकैकशततमस्रश्रोक्तानुसारं भ्रमणमाकणमिश्रकर्म्यः पथिक  
प्राचुर्येभ्यः परिमादयन् विहरति ।

ततः स्रजु स प्रदशी राज्ञा भ्रमणोपासक-भावको जात कीदृशः ?  
इत्याह-अभिगतजीवाजीवः चतुर्दशोत्तरशततमस्रश्रोक्तविश्रपजविशिष्टो भूत्वा विह-  
रति । यत्रमृति च-यद्दनादारम्य स्रजु प्रदशी राज्ञा भ्रमणोपासको जातः,  
तत्रमृति-चदिनादारम्य च स्रजु राज्य-रुद्र, बल, वाहन, कोश, कोष्ठागारम्  
पुरम् जनपद च अनाद्रिपमाणः-उपेक्षमायः चापि विहरति ॥४०॥ १६१॥

मूलम्-तए णं तीसे सुरियकताए देवीए इमेयारूवे अज्झ  
रिथए जाव समुप्पज्जित्था-जप्पभिइ च णं पणसी राया समणो  
वासए जाए तप्पभिइ च णं रज्ज च रट्ठ च जाव अते उर च मम  
च जणवय च अणाढायमाणे विहरइ, त सेय खलु मे पणसिराय  
केणवि सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा मत्तप्पओगेण वा विस-  
प्पओगेण वा उइवेत्ता सुरियकत कुमार रज्ज ठवित्ता सयमेव रज्ज  
सिरि काणेमाणीण पालेमाणीए विहरित्तएत्ति कहु एव संपेहेइ, सपे-  
हित्ता सुरियकत कुमार सहावेइ सहावित्ता एव वयासी-जप्पभिइ  
च णं पणसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइ च णं रज्ज च जाव  
अतेउर च जणवय च माणुस्सए च काम भोगे अणाढायमाणे विह

कहा गया है वह गृहीत किया गया है "जाव कूडागागमाल-" में आगत  
यावत् पन् स १६० सूत्र में जो पाठ कहा गया है यह यहां गृहीत किया  
गया है । इसी तरह स "पुरिसहि जाव-" में आगत यावत् पद स भी १६०  
य सूत्र में कथित इस विषय का पाठ ग्रहण किया गया है ॥१६१॥

'जाव कूडागागमाल' भां आवेत्त यावत् पक्षी १६२ भां सूत्रभां के पक्ष उ  
तेत्त अक्षय ३२५भां आणु ॥ भा प्रमाणे 'पुरिसहि जाव' भा आवेत्त यावत्  
पक्षी १६२भां सूत्रभां कथित भा विषय नष्ट अक्षय यत्तु ॥१६१॥

रइ त सेय खलु तव पुत्ता । एसिं रायं केणइ सत्थप्पओगे ।  
 वा जाव उद्वित्ता सयमेव रज्जसिंरि कारेमाणस्स पालेमाणस्स  
 विहरित्ते । तए णं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एव  
 वुत्ते समाणे सूरियकंताए देवीए एयमट्ठं णो आढाइ णो परियाणाइ  
 तुसिणीए संचिट्ठइ, तए णं तीए सूरियकंताए देवीए इमेयारूवे  
 अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—मा णं सूरियकंते कुमारे एसिस्स  
 रण्णो रहस्सभेयं करिस्सइत्ति कट्ठु एसिस्स रण्णो छिद्दाणि य  
 मम्मणि य रहस्साणिय य त्रिवराणिय अंतराणि य पडिजागरमाणी  
 पडिजागरमाणी विहरइ ॥ सू० १६२॥

छाया—ततः खलु तस्याः सूर्यकान्ताया देव्याः अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः  
 यावत् समुदपद्यत—पत्प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातस्तत्प्रभृति  
 च खलु राष्ट्रियं च राष्ट्रं च यावत् अन्तःपुरं च मां च जनपदं च अनाद्रियमाणो  
 विहरति, तच्छ्रेयः खलु मे प्रदेशिन राजान केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा अग्निप्रयो-

“तएणं तीसे सूरियकंताए देवीए” इत्यादि ॥

मूलार्थ—‘तए णं—’ इसके बाद ‘तीसे सूरियकंताए देवीए—’ उस  
 सूर्यकान्ता देवी को ‘इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—’ यह इस  
 प्रकार का आध्यात्मिक यावत् विचार उत्पन्न हुआ—‘जप्पमिडं च ण एसिं राया  
 समणोवासए जाए—’ जिस दिन से प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हुवे हैं ‘तप्प-  
 भियं च ण रज्जं च—’ उसी दिन से उन्होंने राज्य के प्रति, राष्ट्र के प्रति,  
 यावत् अन्तःपुर के प्रति, तथा—मेरे प्रति, और-जनपद देश के प्रति उपेक्षा

“तएण तीसे सूरियकंताए देवीए” इत्यादि ॥

मूलार्थ—“तए णं” त्थार पछी “तीसे सूरियकंताए देवीए” ते सूर्यकान्ता  
 देवीने “इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था” आ जातने आध्यात्मिक यावत्  
 विचार उत्पन्न थये। “जप्पमियं च णं एसिं राया समणोवासए जाए” जे दिवस  
 थी प्रदेशी राजा श्रमणोपासक थया छे, “तप्पभियं च णं रज्जं च” ते जे दिवस थी  
 तेमणे राज्य प्रति, राष्ट्रना प्रति, यावत् अन्तपुर प्रति तेमज्ज भास प्रति अने  
 जनपद-देशना प्रति उपेक्षा धारणु करी लीधी छे “तं सेयं खलु मे एसिं रायं

सहस्राणि चतुरो मागान्—चतुर्धा विभक्तं नि करोति, कृत्वा तपु चतुर्षु मागेषु  
पर्क-प्रथम मागं बलवाहनाय ददाति, द्विपट्यधिकशततम-चतुश्चोक्तानुसारेण कृत्वा  
५५कारशास्त्री करोति । तत्र खलु बहुमि पुर्यैः यावत् उपस्कार्य बहुभ्य भग्नाः  
यावत् द्विपट्यधिकशततमचतुश्चोक्तानुसारं भग्नाः प्राप्ताः सन्ति । पथिक  
प्राचुर्येभ्यः परिमादयन् विहरति ।

ततः खलु स प्रदक्षी राजा भ्रमणापासकः—धावको जात कीदृशः ?  
इत्याह—अभिगतवीर्यावीर्यः चतुर्दशोपशततमचतुश्चोक्तविशेषमपिशिष्टो मृत्वा विह  
रति । यत्प्रभृति च—यद्दिनादारम्य खलु प्रदक्षी राजा भ्रमणापासकः जातः,  
तत्प्रभृति—तद्दिनादारम्य च खलु राज्य—राष्ट्र, धर्म, वाहन, कोश, कोष्ठगारम्,  
पुरम् जनपदं च अनाद्वयमाणः—उपसमाप्तः चापि विहरति ॥सू० १६१॥

मूलम्—तए णं तीसे सुरियकताए देवीए इमेयारुघे अज्ज  
रिधए जाव समुप्पजित्था—जप्पभिइ च णं पएसी राया समणो  
वासए जाए तप्पभिइ च णं रज्ज च रट्टु च जाव अते उर च मम  
च जणवय च अणादायमाणे विहरइ, त सेय खलु मे पपसिराय  
केणवि सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा सत्थप्पओगेण वा विस  
प्पओगेण वा उद्वेत्ता सुरियकत कुमार रज्ज ठवित्ता सयमेव रज्ज  
सिरिं कायेमाणीए पालेमाणीए विहरित्तएत्ति कहुं यव संपेहेइ, सपे  
हित्ता सुरियकत कुमार सहावेइ सहाविता एव वयासी—जप्पभिइ  
च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइ च णं रज्ज च जाव  
अतेउर च जणवय च माणुस्सए च कामभोगे अणादायमाणे विह

कहा गया है वह गृहीत किया गया है, “जाव कृडागारसाल—” में आगत  
यावत् ए स १६० सूत्र में जो पाठ कहा गया है वह यहाँ गृहीत किया  
गया है । इसी तरह स “पुरिसेहि जाव—” में आगत यावत् ए स भी १६२  
व सूत्र में कथित इस विषय का पाठ ग्रहण किया गया है ॥१६१॥

‘जाव कृडागारसाल’ में आवेस यावत् यही १६२ भां सूत्रभा ७२ पाठ है  
तेतु अहं ३२भां भा० ५३ भां अभावे ‘पुरिसेहि जाव’ भां आवेस यावत्  
यही १६२भां सूत्रभां कथित भां विषे ना पाठ अहं ३५३ उ. ॥१६१॥

तच्छ्रेयः खलु तव पुत्र ! प्रदेशिनं राजानं केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा यावत् उप-  
 र्तुत्य स्वयमेव राज्यश्रियं कारयतः पालयतो विहर्तुम् । ततः खलु सूर्यकान्तः  
 कुमारः सूर्यकान्ताया देव्या एवमुक्तः सन् सूर्यकान्ताया देव्या एतमर्थं नो आद्रि-  
 यते नो परिजानाति तूष्णीकं संतीष्ठते । ततः खलु तस्याः सूर्यकान्तायाः  
 देव्या अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत—मा खलु सूर्यकान्तः कुमारः

सम्बन्धी कामभोग की ओर लक्ष्य देना बन्द करदिया है, अर्थात्—इन सब  
 बातों को अब वे आदर की दृष्टि से नहीं देखते हैं “तं सेयं खलु वि-  
 पुत्ता ? एसिं राय केणइ सत्थप्पओगेण वा जाव उद्वित्ता सयमेव रज्जसिरि  
 कारेमाणस्स पालेमाणस्स विहरित्ताए—” अतः—हे पुत्र—अब यही योग्य है कि  
 तुम प्रदेशी राजा को किसी भी शस्त्र के प्रयोग से अथवा अग्निप्रयोग से—यावत्  
 विषय के प्रयोग से मात्रकं स्वयं राज्यश्री का भोग करो उसका पालन करो  
 ‘तएणं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवं वुत्ते समाणे सूरियकंताए देवीए  
 एयमइं णो आढाइ, णो परियाणाइ तुसिणीए संचिद्धइ—” इस प्रकार सूर्य  
 कान्ता देवी द्वारा कहे गये सूर्यकान्तकुमारने उसकी इस बात को आदर  
 की दृष्टि से नहीं देखा. और—न तो उसकी उसने अनुमोदना ही की, किन्तु  
 इस बात को सुनकर वह केवल चुपचाप ही रहा—“तएणं तीए सूरियकंताए  
 इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—” इसके बाद उस सूर्यकान्ता देवी  
 को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ—“मा णं

ओठवे डे तेओो डवे आ णधी वस्तुओोने आहरनी दृष्टिओे ओता नथी. “तं सेयं  
 खलु वि पुत्ता ? एसिं राय केणइ सत्थप्पओगेण वा जाव उद्वित्ता सय-  
 मेव रज्जसिरि कारेमाणस्स पालेमाणस्स विहरित्ताए” ओथी डे पुत्र । डवे ओओ  
 उचित ओष्ठाय छे डे तमे प्रदेशी राजने केओ पणु शस्त्रना प्रयोगथी डे यावत् विष  
 प्रयोगथी भारी नाओे ओने ओते राज्यलक्ष्मीने उपभोग करे, तेओ रक्षणु करे.  
 “तएण सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवंवुत्ते समाणे सूरिय-  
 कंताए देवीए एयमइं णो आढाइ, णो परियाणाइ, तुसिणीए संचिद्धइ”  
 आ प्रमाणे सूर्यकान्ता देवी पडे डहेवायेल सूर्यकान्त कुमारने तेनी बात प्रत्ये आहर  
 ओताओे नडि ओने तेनी बातनी तेओे अनुमोदना पणु करी नडि पणु ते तेनी  
 सामे भूओे थडने उओे ओ रह्यो “तए ण तीए सूरियकंताए इमेयारूवे  
 अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था” त्थार पधी ते सूर्यकान्ता देवीने आ ओतने।  
 आध्यात्मिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न थयो डे “माणं सूरियकंते कुमारे-



गेम वा मत्रप्रयोगेण वा विप्रयोगेण वा उपद्रुत्य सूर्यकान्त कुमार राज्ये स्थापयित्वा स्वयमेव राज्यं प्रियं करयन्त्या पालयन्त्या विहर्तुम्, इतिकृत्वा एव संप्रेष्यत संप्रप्त्य सूर्यकान्त कुमारं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—प्रत्यमृति च श्रुत्वा प्रदक्षी राजा भ्रमणोपासका जातः, तत्प्रमृति च श्रुत्वा राज्यं च यावत् अन्तःपुरं च श्रुत्वा जनपदं च मानुष्यकांश्च काममोगान् अनाद्रियमाणो विहरति धारणं कर स्वस्माद् है “त मेव श्रुत्वा मं पश्यसि राय वेणवि सत्यप्यओगेण वा—अग्निप्यओगेण वा—मत्प्यओगेण वा दिसप्यओगेण वा—उद्देशेन धरियकृत कुमारं राज्ञे ठविता—” अतः—अब मुझे यही उचित है कि मैं प्रदक्षी राजा को किसी अस्त्र के प्रयोग से अथवा—अग्नि के प्रयोग से मारकर सूर्यकान्त पुत्र को राज्य में स्थापित करके “सयमेव राजसिंरि कारमाणीय पालेमाणीय विहरित्य चि कर्तुं एव सपेहेह—” अपने आप स्वयं ही राज्य लम्बी का भोग करती हुई, उसका पालन करती हुई, आनन्द से रहूँ—? इस प्रकार का उसने विचार किया—“सपेहिता धरियकृत कुमार सदावेह—” ऐसा विचार करके फिर उसने अपने सूर्यकान्त पुत्रको बुलाया “सदाविता एव वयासी—” बुलाकर उससे ऐसा कहा—“अप्यमि च ण पणमी राया समणोवासए जाण तप्यमि च ण राज्ञं च जाव अतउर च जणवय ण मणुस्सए च काममोग अनाद्रियमाण विहरइ—जिस दिन से प्रवेशी राजा भ्रमणोपासक बन है उस दिन से उन्होंने राय की ओर—यावत् अन्तःपुर की ओर और जनपद की ओर, पद—मनुष्य मव

केन चि सत्यप्यओगेण वा अग्निप्यओगेण वा—मत्प्यओगेण वा दिसप्यओगेण वा उद्देशेन धरियकृत कुमारं राज्ञे ठविता” जेथी भाग भाट हुवे जेथी ठविता उ उ हु प्रदक्षी राजाने ठाण श्रवणा प्रयोगधी के जग्जिना प्रयोगधी के भवना प्रयोगधी के विषया प्रयोगधी भारी नृपणीने सुखेठत पुत्रने राजपाठने जेसादीने ‘सयमेव राजसिंरि कारमाणीय पालेमाणीय विहरित्य चि कर्तुं एव सपेहइ’ येतए राज्य लम्बीने विषय करीने तेण स्थल कहता आनदपुव के समय पसार करे आ प्रभावे तेजे विचार करे. “सपेहिता धरियकृत कुमार सदावेह” आ जतने विचार करीने पछी तेजे भोताना समयत पुत्रने जेसा ये “सदाविता एव वयासी” जेतावीने तने आ प्रभावे कह “अप्यमि च ण पणमी राया समणोवासए जाण तप्यमि च ण राज्ञं च जाव अतउर च जणवय ण मणुस्सए च काममोग अनाद्रियमाण विहरइ” जे दिवसधी प्रदक्षी राज भ्रमणोपासक भया उ ते दिवसधी तेमजे राज्य तरह, यावत् अन्तःपुर तरह जनपद तरह मनुष्यमव सजधी समणोगो तरह आन आधु जेथे कयु उ

तच्छ्रेयः खलु तव पुत्र ! प्रदेगिनं राजानं केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा यावत् उप-  
 र्तुत्य स्वयमेव राज्यश्रिय कारयतः पालयतो विहर्तुम् । ततः खलु सूर्यकान्तः  
 कुमारः सूर्यकान्तया देव्या एवमुक्तः सन् सूर्यकान्ताया देव्या एतमर्थं नो आद्रि-  
 यते नो परिजानाति तूष्णीकं संतीष्ठते । ततः खलु तस्याः सूर्यकान्तायाः  
 देव्या अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत—मा खलु सूर्यकान्तः कुमारः

सम्बन्धी कामभोग की ओर लक्ष्य देना वन्द करदिया है, अर्थात्—इन सब  
 बातों को अब वे आदर की दृष्टि से नहीं देखते हैं “त सेय खलु वि  
 पुत्ता ? एसिं राय केणइ सत्थप्पओगेण वा जाव उद्वित्ता सयमेव रज्जसिरि  
 कारेमाणस्स पालेमाणस्स विहरित्ताए—” अतः—हे पुत्र—अब यही योग्य है कि  
 तुम प्रदेशी राजा को किसी भी शस्त्र के प्रयोग से अथवा अग्निप्रयोग से—यावत्  
 विषयके प्रयोग से मारकर स्वयं राज्यश्री का भोग करो उसका पालन करो  
 ‘तएणं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवं वुत्ते समाणे सूरियकंताए देवीए  
 एयमइं णो आढाइ, णो परियाणाइ तुसिणीए संचिद्धइ—” इस प्रकार सूर्य  
 कान्ता देवी द्वारा कहे गये सूर्यकान्तकुमारने उसकी इस बात को आदर  
 की दृष्टि से नहीं देखा. और—न तो उसकी उसने अनुमोदना ही की, किन्तु  
 इस बात को सुनकर वह केवल चुपचाप ही रहा—“तएणं तीए सूरियकंताए  
 इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—” इसके बाद उस सूर्यकान्ता देवी  
 को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ—“मा णं

अथेवे के तेओ उवे आ णधी वस्तुओने आदरनी दृष्टिओ जेतो नथी. “तं सेयं  
 खलु वि पुत्ता ? एसिं राय केणइ सत्थप्पओगेण वा जाव उद्वित्ता सय-  
 मेव रज्जसिरि कारेमाणस्स पालेमाणस्स विहरित्ताए” अथी हे पुत्र ! उवे ओज  
 उचित ण्णाय छे के तमे प्रदेशी राजने केछ पणु शस्त्रना प्रयोगथी के यावत् विष  
 प्रयोगथी भारी नाओने अने पोते राज्यलक्ष्मीने उपलोग करे, तेत्तु रक्षणु करे.  
 “तएणं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवं वुत्ते समाणे सूरिय-  
 कंताए देवीए एयमइं णो आढाइ, णो परियाणाइ, तुसिणीए संचिद्धइ”  
 आ प्रमाणे सूर्यकान्ता देवी वडे कडेवायेव सूर्यकान्त कुमारने तेनी बात प्रत्ये आदर  
 अताओने नहि अने तेनी बातनी तेओ अनुमोदना पणु करी नहि पणु ते तेनी  
 सामे भूगे थधने ओओ न रह्यो “तएणं तीए सूरियकंताए इमेयारूवे  
 अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था” त्यास पछी ते सूर्यकान्ता देवीने आ जेतने  
 आध्यात्मिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न थयो के “माणं सूरियकंते कुमारे-

प्रदेशिनो राज्ञ इमं रहस्यमेव करिष्यति, इति कृत्वा प्रदेशिनो राज्ञः छिन्नाणि च मर्माणि च रहस्यानि च विचाराणि च अन्तराणि च प्रतिजाप्रती प्रतिजाप्रती विहसि ॥ सू० १६२ ॥

टीका—“तय न सीसे” इत्यादि—ततः खलु तस्याः सूर्यकान्ताया इति । पटशिराजस्य पटशिराया अयमतस्तु—वक्ष्यमाणप्रकारक आध्यात्मिक—आत्मगतो विचार एव—वक्ष्यमाणदेन “चिन्तितः कल्पित प्रार्थित मनोगत संकल्पः” इति सग्राह्यम् अर्पस्तु पूर्वसूत्रे गत, समुदपघत—सजातः, तदव दर्शयति—यत्र मृते—रहिनादारम्य च खलु प्रवेष्टी राजा श्रमणोपासक—भावको ज्ञान, तत्प्रमत्त रहिनादारम्य च खलु राज्य—स्वाम्यमार—सुदृढ कोप—राष्ट्र—दुर्ग-धरियकतं कुमारे पयसि स रण्यो रहस्यमेयं करिस्स इति कुरु पयसिस्स रण्यो छिन्नाणिय-मम्माणिय-रहस्याणिय विचाराणिय—अन्तराणिय पट्टिजागरमाणी पट्टिजागर माणी विहरइ—” सूर्यकान्तकुमार प्रवेष्टी राजा क पास, अर्थात्—प्रवेष्टी राजा से मेरी इस मन्त्रणा को प्रकाशित न करदे ? अतः—वह इस विचार से प्रवेष्टी राजा क छिद्रों को, दोषों को, मर्मों को, कुक्ष्यरूप लक्षणों को—रहस्यों को एकान्तस्थान में सेवित निषिद्ध आचरणों को, विचरों को, निजन्स्थानों को, और—अवकाश लक्षणरूप अन्तरों को बड़ी सावधानी के साथ बार-बार देखने लगी—अर्थात्—न सब पर वह कभी दृष्टि रखने लगी ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है “अज्झत्थिए जाव” में आगत इस यावत् पदसे—चिन्तित कल्पित प्रार्थित मनोगत संकल्प, इन पदों का संग्रह हुआ है। इन विचार क विशेषणों का अर्थ पहले प्रकट किया जा चुका है। “रज्जं च जाव अतेउर च—” में आगत यावत् पद से “बल वाहन कोप कोप्यगार

पयसि स रण्यो रहस्यमेयं करिस्स इति कुरु पयसिस्स रण्यो छिन्नाणिय मम्म णिय रहसाणिय, विचाराणिय अन्तराणिय पट्टिजागरमाणी पट्टिजागरमाणी विहरइ” सूत्रांत कुमार प्रवेष्टी सन्ध्या नी चासे—जेटले के प्रवेष्टी राजाने भारी आ-वात कही है नकि जेभी ते प्रवेष्टी सन्ध्या छिद्रोंने दोषोंने, भ्रमोंने, कुक्ष्य लक्षणोंने रहस्योंने जेकान्त स्थानमां सेवित निषिद्ध आचरणोंने विचरोंने निजन् स्थानोंने जने अवकाश लक्षणरूप अन्तरोंने बहुत सावधानीपूर्वक बार-बार देख लायी. जेटले के जभी दृष्टिवात पर दृष्टि सज्जना भयी.

टीकार्थ—स्पष्ट है “अज्झत्थिए जाव” में आवेला यावत् पदभी “चिन्तितः, कल्पितः प्रार्थितः मनोगत संकल्पः” ज्य पदोंने संग्रह किये छे ज्य पदोंने ज्य पदोंने स्पष्ट करवाया ज्य छे. “रज्जं च जाव अतेउर च” में आवेला यावत् पदभी

बलरूपेण सप्ताङ्गम् राष्ट्रं—देशं यावत्—यावच्छब्देन “बलं—रैव्यं, वाहनं—स्थादि-  
कम्, कोषं—रत्नादिभाण्डागारम्, ‘कोष्ठागारं—घा यथापन्नगृहम्, पुरं—नगरम्”  
इति संग्राह्यम्, अन्तःपुरम्—अन्तःपुरस्थपरिवारम् च पुनः मां च—तथा  
जनपदं—विजितदेशं च अनाद्रियमाणः—तच्चिन्तामकुर्वाणा विहरन्ति—तिष्ठति, तत्  
तर्हि मे—मम श्रेय—समीचीनं खलु प्रदेशिनं राजनं केनापि शस्त्रयोगेण—खड्गा-  
दिप्रयोगेण, वा—अथवा अग्निप्रयोगेण—अग्निना दाहनरूपेण,—मन्त्रप्रयोगेण—मन्त्र-  
जापरूपेण, वा—अथवा, विप्रप्रयोगेण—विप्रप्रदानरूपेण, उपद्रुत्य—मारयि वा सूर्यकान्तं  
सूर्यकान्तनामकं, कुमारं—मम पुत्रं राज्ये स्थापयित्वा संनिवेश्य स्वयमेव—अहं स्वयं  
राज्यश्रियं—राज्यलक्ष्मीं कारयन्त्याः—बलवाहनादिभिः संर्धयन्त्याः, पालयन्त्याः—  
रक्षयन्त्याः विहर्तुं—स्थातुम् । इतिकृत्वा—इति वितर्क्य एतं—पूर्वोक्तानु-  
सारेण सप्रेक्षते—निर्धारयति, निर्धार्य सूर्यकान्तं कुमारं शब्दयति आह्वयति,  
शब्दयित्वा एवमवादीत्—य प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जात-

पुर—” इन पदों का संग्रह हुवा है । अन्तःपुर शब्द से अन्तःपुरस्थ परिवार  
का ग्रहण किया गया है । तथः—जनपद से विजित देश लिया गया है, इस  
सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि—जब सूर्यकान्ता देवीने यह जान लिया कि प्रदेशी  
राजा श्रमणोपासक बन चुका है, और—अपने बल—वाहन आदि की संभाल  
करने आदि की ओर उसका जैसा ध्यान होना चाहिये अब वैसा नहीं रहा  
है, और न वह मेरी भी अब कुछ चाहना करता है, तब उसके मनमें इस  
को दूर करने के लिये ऐसा विचार उठाकि—जैसे भी बने, चाहे—अग्नि-  
प्रयोग से हो, या शस्त्रादि से हो, अवश्य ही इस प्रदेशी राजा का विनाश  
कर देना चाहिये, तथा—सके स्थान पर सूर्यकान्त पुत्र को स्थापित कर  
देना चाहिये, इसी में अब भलाई है । ऐसा विचार कर उसने पुत्र को बुलाया

“बल वाहन कोष कोष्ठागारं पुरं” आ पदोक्तो स ग्रह्यं थये अन्तःपुर शब्दस्य  
अन्तःपुरस्थ परिवारस्य ग्रहणं थयु छि तेभ्य जनपदस्य विजित (एतेन) देशने अर्थ  
देवामा आये छि आ सूत्रने लावार्थ आ प्रमाणे छि छे ज्यारे सूर्यकाता देवीये  
आ वात लायी लीधी छे प्रदेशी राजा श्रमणोपासक थय गये छि अने पोताना बल-  
वाहन वगेरनी सलाण राणतो नथी अने भारी तरङ्ग पण तेनु ध्यान नथी त्यारे  
तेना मनमा ते कागने दूर करवाने विचार उत्पन्न थये छे जमे ते रीते अग्नि-  
प्रयोगथी, छे शस्त्रादि प्रयोगथी आ राजने भारी नाथीने नेधये तथा तेनी आली  
पडेली ज्यथापर सूर्यकात पुत्रने गादीये जेसाउये नेधये, आमा न हुवे राज्यनी  
सलाध छे, आमा विचार करीने तेले पुत्रने बोलाये, अने पोताना आ जतना

स्तमृति च स्तु राज्यं च यावत् अन्तःपुरं च जनपदं च तथा मानुष्यकान्-  
 मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान्-अनाद्विगमाश्च-अनादरदृष्ट्या पश्यन् विहरति,  
 तच्छयः स्तु तव ह पुत्र ! प्रदेशिनः रामान् केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा यावत्  
 अम्यादिप्रयोगेण वा उपद्रुत्य मारयित्वा स्वयमेव राज्यं धियः करयतः पालं तो  
 विहर्तुम् । ततः स्तु स सूर्यकान्तः कुमारः सूर्यकान्ताया देव्याः स्वमातुः एत-  
 मर्थं नो आद्रियते-कामपि स्वीकृतिचेष्टां न दर्शयति, नो परिमानाति-नातु  
 मोदति । तर्हि किं करोति ? इत्याह-तूष्णीम्-किञ्चिदप्यवदन्नेव सतिष्ठति ।  
 ततः स्तु तस्याः सूर्यकान्ताया देव्याः अयमर्क्षः वक्ष्यमाणप्रकारकः आध्या-  
 त्मिकः-आमगती विचारः यावत् चिन्तितः करिष्यतः प्रार्थितः मनोगतः सक-  
 पः समुदपद्यत-सम्राज्यम्, तदेवास्मिन्-सूर्यकान्तः स्तु कुमारः प्रदक्षिणो राज-  
 समीपं इमं मत्कथितं दृश्यमेव-गुप्तमन्त्रणाप्रकाशनं मा करिष्यति-मा कुर्यात्,  
 इति कृत्वा-इति विचार्य प्रदेशिनो राज्ञः छिद्राणि-दूषणानि, मर्माणि-कुक्ष-  
 लक्षणानि, एकान्तरथान्सेवितनिषिद्धाचरणानि, विषराणि-निर्जनस्थानरूपाणि,  
 अन्तराणि-अकाशलक्षणानि प्रतिजाग्रती प्रतिजाग्रती-अन्वेपयन्ती २ विहरति-  
 तिष्ठति ॥२०॥ १६२॥

मूमम्-तए णं सा सूरियकता देवी अन्नया क्याइ पयसिस्स  
 रण्णो अतर जाणइ असण-पाण स्वाइम-साइम-सव्ववत्थगधमल्लो  
 लकारेसु विसप्पओग पउजइ । पयसिस्स रण्णो ण्हायन्स जाव  
 सुहासणवरगयस्स ते विससजुत्ते असण पाण-स्वाइम-साइम-सव्व  
 वत्थगधमल्लो लकारे निसिरेइ । तए ण तस्स पयसिस्स रण्णो त  
 विससजुत्त असणं-पाणं-स्वाइम-साइमं आहारेमाणस्स समाणस्स

और-अपने इस प्रकार के विचारों की उसे सुनाया, पर उस विचारको पुत्रन  
 अच्छा नहीं समझा तब-सूर्यकान्ता के हृदय की उस विचारने आलोहित करदिया  
 की-कहीं पता न हो कि भर इम विचार को सूर्यकान्त, प्रदक्षी राजा स प्रक-  
 ण कर द, भक्त-वह प्रदक्षी राजा के छिद्रादिकों को दखन की ताकमें रहनेलगी ॥३६२

विचारो तेनी आमे स्पष्ट बो, पण पुने आ वातने आरी मानी नहिं त्पारे सभ  
 हान्ताना मनमां आ आतने विचार थये के आरी आ वात के प्रदेशी राजा आमे  
 प्र-हरी देखे तो शु थये ? औरता आटे ते हवे प्रदेशी राजाना छिद्रो पगेरे  
 जेवा लागी ॥२०॥ १६२॥

सरीरंसि वेयणा पाउवभूया उज्जला विउला पगाढो कक्कसा कडुया  
फरुसा निहुंरा चंडा तिठ्वा दुक्खा दुग्गा दुरहियासा पित्तज्जरपरिगय-  
सरीरे दाहवक्कते यावि विहग्ग ॥ सू० १६३ ॥

छाया—ततः खलु सा सूर्यकान्ता देवी अन्यदा कदाचित् प्रदेशिनो राज्ञः  
अन्तर जानाति अशन-पान-खादिम-स्वादिम- सर्ववस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेषु विष  
प्रयोगं प्रयुनक्ति, प्रदेशिने राज्ञे स्नाताय यावत् सुखासनवरगताय तान् विषसंयुक्तान्  
अशन-पान-खादिम-स्वादिम-सर्ववस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारान् निसृजति । ततः खलु तस्य

“तएणं सूरियकंतादेवी” इत्यादि—

मूलार्थ—‘तएणं’ इसके बाद ‘सूरियकंतादेवी’ सूर्यकान्तादेवीने ‘अन्नधा-  
कयाइ’ किसी एकदिन ‘पएसिस्स रत्तो’ प्रदेशी राजाके ‘अंतरं जाणइ’ पष्ठ-  
पारणा के अवसररूप अन्तर को जान ला और असण-पाणखाइम-साइम  
सर्ववस्त्रगन्धमल्लालंकारेसु । सप्पओगं पउज्जइ—’अशन-पान खाद्यरूप आहारों  
में, तथा—वस्त्र-गन्ध-माला अलङ्कारों में विष का संप्रयोग करदिया। पएसिस्स  
रणो ण्ह ए जाव सुहासणवरगयस्स ते विससंजुत्ते असण पाण खाइमसाइमसव्व-  
वत्थगंधमल्लालंकारेनिसिरेइ—’ प्रदेशी राजा जब स्नान करके यावत् सुखरूप  
श्रेष्ठ आसनपर आसीन था, तब उसके लिये उसने—उन विषसंप्रयुक्त अशन  
पान-खाद्य-स्वाद्यरूप आहार को परेसा, तब पहिरने के लिये वस्त्र-गन्ध-माला,  
एवं-अलङ्कारों को दिया, ‘तए ण तस्स पएसि स रणो ते विससंजुत्तं असणं-

“तएणं सूरियकंता देवी” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तएणं” त्थार पछी “सूरियकंता देवी” सूर्यकान्ता देवीअ-  
“अन्नया कयाइ” केअ ओक द्विसे “पएसिस्स रत्तो” प्रदेशी राजने “अंतरं जाणइ”  
पष्ठ पारणाने अवसर इय अंतर (तक) जाणी लीधे अने “असणपाणखाइम-  
साइमसव्ववत्थगंधमल्लालंकारेसु विसप्पओग पउज्जइ’ अशन, पान, आद्य  
अने स्वाद्यइय आहारोभा तेमज्ज वस्त्र गन्ध माला अलंकारोभा विष संप्रयोग करी दीधे।  
“पएसिस्स रणो ण्हायस्स जाव सुहासणवरगयस्स ते विमसंजुत्ते असणपाण-  
खाइमसाइमसव्ववत्थगंधमल्लालंकारे निसिरेइ” प्रदेशी राज न्यारे स्नान  
करीने यावत् सुखइय श्रेष्ठ आसन पर आसीन हुता त्थारे तेमना भाटे तेण्णु ते  
विषसंप्रयुक्त अशन, पान, आद्य, स्वाद्यइय आहार पीरस्थु, तेमज्ज पडेरवा भाटे  
वस्त्र-गन्ध-माला अने अलंकारो आभ्या “तए णं तस्स पएसिस्स रणो ते विस-

प्रदक्षिणो राम तद्विषमयुक्तम् अञ्जनं पानं स्वादिमं स्वादिमम् आहारं सत  
 शरीरं वेदना प्रादुर्भूता-उष्णता विपुला प्रगाढा ककुष्ठा कटुका पला निष्ठुरा  
 पण्डा तीव्रा दुःस्वा दुर्गा दुरध्यासा पित्तज्वरपरिणामशरीरो दाहपुच्छान्तभाषि  
 विहरति ॥ सू० १६३ ॥

पार्श्व-स्नाहम-साहम आहारमं पानं समानसं शरीरसि वेदना पाउष्णं । उज्ज्वला  
 विउल-यगाडा-ककुत्स-कटुपा-ककुत्स-निदृग्-खडा 'दन्ता दुःस्वा' दुग्ग-दु  
 द्विधासा-पित्तज्वरपरिणाम शरीर-दाह क्तं पाषि विहृ इ—” इसके बाद अ  
 प्रदेशी राजा क क्षीर में उस विषमप्रयुक्त अहार क कान से वेदना उभन  
 हो गई । यह वेदना उज्ज्वलभी दुःस्वाद होने से मुख लज्ज से रहितभी-विपु  
 लभी सकल शरीर में व्याप्त होने से विस्तीर्णभी, अण्ड गडभी, बक्य-  
 कटोर भी । जैसे-ककुत्स पाण का मधुप शरीर की सन्धिओं को तड़ देता  
 है, उसी प्रकार इसे बक्य कहा गया है अप्रीति जनक होने से यह कटुक  
 भी मन में अति क्लृप्ता की जनक होने से दुर्मेघ भी चण्ड-नौछ भी तीक्ष्ण-  
 तीक्ष्ण भी दुःस्वाद स्वरूप होने से दुःस्व भी चिकित्सा स भी दुर्गन्ध होने  
 के कारण दुर्गन्ध दुःस्वाद होने से दुर्गन्ध भी । इस प्रकार की वेदनाउत्पत्ति  
 होने के कारण यह राजा पित्तज्वर से अक्रान्त शरीर वाला हो गया और-सम-  
 स्त शरीर में उसको दाह पड़न लगी । टीका-स्पष्ट है—॥१६३॥

समुत्त अण पानं स्वाहमं साहमं आहारमाणां समानसं शरीरसि वेदना पाउष्णं ।  
 उज्ज्वला विउला पगाडा ककुत्समा- कटुपा-ककुत्स-निदृग्-खडा निवा-दुःस्वा-  
 दुग्गा-दु द्विधासा-पित्तज्वरपरिणाम शरीर दाहक क्तं पाषि विहृ इ' त्या-  
 पछी ते प्रदेशी राजाना शरीरमा ते विषम प्रयुक्त आहार ककुत्स वेदना उत्पन्न  
 शब्द जग्नं आ वेदना उज्ज्वलता होती, दुःस्वाद होता, विपुल होती, निष्ठुर होती,  
 पण्डा शरीरमा व्याप्त होता, विस्तीर्ण होती, प्रगाढ होती, ककुत्स-  
 कटोर होती केम कटोर पण्डाशरीरमा सवि भागेने तोड़ी नाथे छि तेम  
 ते वेदना पण्डा अण्ड प्रदेशीने तोड़ी होती कोषी के केम ककुत्स कटोरमा आपी  
 छि अप्रीतिजनक होताभी के कटुक होती, मनमा अति दुःस्वताजनक होताभी पण्ड  
 होती, २ निदृग् होती, अशक्य होती, अठ शरीर तीक्ष्ण तीक्ष्ण होती दुःस्वाद स्वरूप  
 होताभी दुर्गन्ध होती चिकित्साभी पण्ड दुर्गन्ध होती कोषी ते दुर्गन्ध होती, अक्रान्त  
 होताभी दुर्गन्ध होती आ अतनी वेदना उत्पन्न कर्ष होताभी ते राजा पित्तज्वर-  
 क्रान्त शरीरमा केम जग्नं केम तेना व्याप्त शरीरमा जगतस मया भादी

टीका—“तए णं सा” इत्यादि—ततः खलु सा सूर्यकान्ता देवी अन्धदा  
कदाचित्—कमिंश्चित् काले प्रदेशिनो राज्ञः अंतरम्—अवकाश—पट्टपारणावसर-  
मित्पर्यन्तः, जानाति, अशन-पान-खादिम-सर्ववस्त्र-गन्ध-माल्यालङ्कारेषु—अगनादिसर्व-  
वस्तुषु विषययोगं—विषययोगं, प्रयुनक्ति—करोति एवं कृत्वा स्नाताय—कृतस्ना-  
नाय, यावत्—सुखामनवरगताय—सुखदरूपश्रेष्ठासनोपविष्टाय प्रदेशिने राज्ञे तान्  
विषययुक्तान् अशनपान-खादिम स्वादिम-सर्ववस्त्र-गन्ध-माल्या-लङ्कारान् निस्सृ-  
जति-ददाति । ततः तदन्तरं खलु तस्य प्रदेशिनो राज्ञः तं विषययुक्तम् अशन-  
पान-खादिम स्वादिममिति चतुर्विधाऽऽहारम् आहरतः गृह्णतः सतः शरीरे वेदना  
प्रादुर्भूता—समुपपन्ना, सा कीदृशी ? इयाह—उज्ज्वला—दुःखदतया उग्रा सुखलेश-  
रहितेत्यर्थः, विपुला-सबलशरीरव्यापस्त इ विस्तीर्णा, अतएव प्रगाढा-अतिश-  
यिता, कर्कशा कठोरा, यथा कर्कशपापाणसंघर्षः शरीरसन्धींस्त्रोदयति तथैवात्म  
प्रदेशांस्त्रोदयन्ती या वेदना जायते साः कर्कशैव्युच्यते, इदुका—अप्रीतिजनिका,  
परुषा मत्तघोऽतीव रूक्षत्वोत्पादिका निष्ठुरा—अशक्याप्रतीतात्वेन दुर्मेघा, अत एव  
चण्डा—रौद्रा, तीव्रा—तीक्ष्णा दुःखा-दुःस्वदम्बरूपा, दुर्गा—चिकित्सादुर्गम्या, दुर्-  
ध्यासा—दुःमहा, एवम्भूता वेदना समुद्भूता, तेन कारणेन स राजा पित्तज्वर  
परिगतशरीरः—पित्तज्वरेण परिगतम्—आक्रान्त शरीर यस्य स तथा, अत एव  
दाहव्युत्क्रान्तः—दाहव्याप्तः सन् चापि विहसति—तिष्ठति । ॥ सू० १६३ ॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया सूरियकंताए देवीए अच्चाणं  
संपलच्छं जाणित्ता सूरियकंताए देवीए मणसावि अप्पदुस्समाणे जे-  
णेव पोसहंसाला तेणेव उवागच्छइ, पोसहसालं पमज्जेइ, उच्चार-  
पासवणभूमिं पडिलेहेइ दब्भसंधारग संधरेइ, दब्भसंधारगं दुरुहइ,  
पुरत्थाभिमुहे संपालयंकनिसन्ने करयलपरिगहियं म्मिरसावत्तं  
मत्थए अजलिं कट्टु एवं वयासी—नमोत्थुणं अरहंताणं जाव संप-  
त्ताणं नमोत्थुणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मो-  
वदेसगस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं  
तत्थगए इहगयं-त्तिकट्टु वंदइ नमसइ, पुब्बिपि णं मए केसिस्स  
कुमारसमणस्स अतिए थलपाणाइवाए पच्चक्खाए जाव थल-



प्रदक्षिणो राक्षः तद्विषययुक्तम् अञ्जनं पानं न्वादिम् स्वादिम् आहरत सतः  
शरीरे वेदना प्रादुर्भूता-उज्ज्वला विपुला प्रगाढा कर्कशा कटुका पर्या निष्ठुरा  
पण्डा तीव्रा दुःस्ता दुर्गा दुरध्यासा पित्तज्वरपरिगतशरीरगे दाहम्युत्क्रान्तमपि  
विहरति ॥ सू० १६३ ॥

पानं-स्नाहम-साहम आहारेम षणस समाणस्स सरीरसि वेदणा पाउम्भू । उज्ज्वला  
विठ्ठा-पगाढा-कक्कसा-कटुपा-कस्ता-निष्ठुरा-चडा रञ्जा दुःस्ता । दुग्गा-दु-  
हियासा-पित्तज्वरपरिग सरीरे-दाह कते पावि चिह्न इ—” इसक बह उस  
प्रदेशी राजा के शरीर में उस विषययुक्त अहार के कान से वेदना उफान  
हो गई । यह वेदना उज्ज्वलभी दुःखद ई हाने से सुख लक्ष सं हिठ्ठी-पु  
लभी सकल शरीर में व्याप्त होने से विस्तीर्ण भी, अन्ध भी, कर्कश-  
कठोर भी । जैसे-कर्कश पाण का मधुप शरीर की सन्धिओं की लह देता  
है, उसी प्रकार इसे कर्कश कहा गया है अमीति जन होने से यह कटुक  
भी मन में अति रुझान की अनक होने से दुर्मेय भी पण्ड-नैष्ठ भी तीव्र-  
तीव्र भी दुःखद स्वरूप होने से दुःख भी चिकित्सा से भी दुर्गम हान  
के कारण दुर्गम दुःख होने से दुर्गम भी । इस प्रकार की वेदना उत्पन्न  
होने के कारण वह राजा पित्तज्वर से अक्रान्त शरीर वाला हो गया और-सम-  
स्त शरीर में उसको दाह पड़ने लगी । गीकार्ष-स्पष्ट है—॥१६३॥

संयुच अण पाण स्नाहम साहम आहग्माणम्म समाणस्स सरिरसि वेदणा पाउम्भू ।  
उज्ज्वला विठ्ठा पगाढा कक्कसा- कटुपा-कस्ता-निष्ठुरा-चडा निवा-दुःस्ता  
दुग्गा-दु हियासा-पित्तज्वरपरिग सरीर दाहवकते पावि चिह्न इ—” तथा-  
पक्षी ते प्रदेशी राजाना शरीरमां ते विषययुक्त आहार कर्कशी वेदना उत्पन्न  
कतं गतं आ वेदना उज्ज्वल कती, दुःखद होवायां सुख स्थित कती, विपुल कती,  
समस्त शरीरमां व्याप्त होवायां विस्तीर्ण कती प्रगाढ कती कटु-  
कठोर कती अन्ध कठोर पित्तज्वरणी रजः शरीरमां संधि भागोने तोड़ी नाये छे, तेम  
ते वेदना पण्ड आत्म प्रदेशोने तोड़ी कती कोषी अन्धने कटु कटुवायां व्यापी  
छे अमीतिजनक होवायां को कटुक कती, अनमा अति रुझानजनक होवायां पण्ड  
कती, २ निष्ठुर कती, अशक्त कती, अन्ध रोग तीव्र कती दुःखद स्वरूप  
होवायां दुर्गम कती चिकित्साभी पण्ड दुर्गम कती कोषी ते दुर्गम कती उत्सुक  
होवायां उत्सुक कती आ अतनी वेदना उत्पन्न कतं होवायां ते राजा पित्तज्वर-  
क्रान्त शरीरवायां कतं अन्ध अन्धने तेना व्याप्त शरीरमां अणतय बना भांछी

शिर आवर्त मस्तके अजलिं कृत्वा भगवत्पादौ-नमोऽ तु खलु अर्हद्भ्यः यावत्  
संप्रतिभ्यः नमोऽतु खलु केशिने कुमारश्रमणाय मम धर्माऽऽचार्याय धर्मोपदेश-  
नाय, वन्दे खलु भगवन्तं तत्रगतम् इहगतः, पश्यतु मां भगवान् तत्रगतः इह  
गतम्' इति कृत्वा वन्दते नमस्यन्, पूर्वमपि खलु मया केशिनः कुमारश्रमण  
भ्याम्बिके शूलपाणानिपातः प्रत्याख्यातः यावत् शूलपरिग्रहः प्रत्याख्यातः,

की-“द्वभसंथारगं संथरेड-” और फिर दर्भ का संथारा बिछाया  
“द्वभसंथारगं दुरुहड-” उसे बिछा कर वह उस पर बैठ गया. “पुर-  
त्थाभिमुहे संपलियं कनिसन्ने-” वहां आरुढ़ होकर वह पूर्व दिशा की ओर  
मुह करके पर्यङ्कासन से बैठ गया. “करयलपरिग्गहिंयं सिरसावत्तं मत्थए अजलिं  
कड्डु एवं वणासी-” और दोनों हाथों की अंजली बनाकर एवं-उसे मस्तक  
पर घुमाकर इस प्रकार से कहने लगा. “नमो थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं,  
नमो थुणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्माय रिस्स धम्मोवदेसगस्स-” अर्हन्त  
भगवन्तो के लिये नमस्कार हो, मेरे धर्मोपदेशक धर्माचार्य केशीकुमार श्रमण  
के लिये नमस्कार हो, “वंदामि णं भगवन्तं तथ य इहगए-” यहां रहा हुवा  
मैं वहां पर रहे हुवे भगवान् को वन्दना करता हूं, “-पासउ मे भगवं  
तत्थगए इहगय त्ति कड्डु वंदइ नमंसड-” वहां पर रहे हुवे वे भगवान् यहां  
रहे हुवे मुझे देखे-इस प्रकार कह कर उस प्रदेशी राजाने उनकी वन्दना की  
नमस्कार किया. ‘पुत्वि पि णं मए केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए शूल-  
पाणाइवाए पच्चवखाए. जाव थूलपरिग्गहे पच्चवखाए ’ पहलेभी मैंने केशी

प्रतिवेचना करी “द्वभसंथारगं संथरेड” अने पछी दर्भ का संथारा बिछाया  
“द्वभसंथारगं दुरुहड” तेने पाथरीने ते तेना पर उलो थर गथे. “पुरत्था-  
भिमुहे संपलियं कनिसन्ने” त्या आरुढ़ थरने ते पूर्व दिशा तरइ मुण करीने  
पर्यङ्कासन थर गथे. ‘करयलपरिग्गहिंयं सिरसावत्तं मत्थए अजलिं कड्डु एवं  
वणासी’ अने गन्ने हाथोनी अजलि गणावीने अने तेने मस्तक पर इरवी ते  
आ प्रभाण्णे कहेवा लाग्थे. “नमो थुणं अरहंता णं जाव संपत्ताण नमो थुण  
केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्माय रिस्स धम्मोवदेसगस्स” अर्हन्त भग  
वतने मारा नमस्कार छे, मारा धर्मोपदेशक धर्माचार्य केशीकुमार श्रमणने मारा  
नमस्कार छे “वंदामि णं भगवन्तं तत्थगए इहगए” अर्ही रहीने हु त्या वर्तमान  
भगवानने वदन करे छुं “पासउ मे भगवं तत्थगए इहगय त्ति कड्डु वंदइ,  
नम मइ” त्या रहैता भगवान भने अर्ही बुज्जे आ प्रभाण्णे कहीने ते प्रदेशी  
राजा थे तेभने वंदन कर्या, नमस्कार कर्या “पुत्वि पि णं मए केसिस्स कुमारसम-  
णस्स अंतिए शूलपाणाइवाए पच्चवखाए, जाव थूल परिग्गहे पच्चवखाए”

परिगृहं पच्यक्त्वापि तद्द्वयानि पिणं तस्मैव भगवतो अतिष्ठ सत्त्वं  
पाण्डुराद्यं पच्यक्त्वापि जाय सत्त्वं परिगृहं पच्यक्त्वापि सत्त्वं  
कोह जाय मिच्छादसणसत्त्वे पच्यक्त्वापि अकरणिञ्च जोग पच्य  
क्त्वापि, सत्त्वं असणं० चउच्चिह पि आहार जावज्जीवापि पच्य  
क्त्वापि, जपि य मे सरीर इह जाय फुससुत्ति एवंपि यणं चरि  
मेहिं ऊसासनीसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टू आलोइयपडिक्ते सभा-  
हिपत्ते कालमासे काल किच्चा सेहम्मे कप्पे सूरियामे विमाणे  
उववायसभाप देवत्ताप उववन्ने । ॥सू० १६४॥

इति पणसिरायम वण्णम ममर्ष ।

छाया—ततः श्वेतु प्रदेक्षी राजा सूर्यकान्ताया देव्या आत्मानं सप्रलम्बं क्षात्वा  
सूर्यकान्ताया देव्या मनमाऽपि अप्रतिपन् यत्रैव पोषकशाला तत्रैव उपागच्छति  
पोषकशालां प्रमार्जयति, उच्चारयत्प्रसवणभूमिं प्रतिलेखयति, दर्मेव शतारकं ॥ त  
ण ति, दर्मेव शतारकम् दूरोदति पौरस्थाभिमुखं उपत्येहनिपण्णः कररुपरिगृहीतं

“तएवं से पयसी रागा” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तएवं” इसके बाद “से पयसी रागा” यह प्रदेक्षी राजा  
“सूरिकताए देवीए अचागं सवल्लह, जाणिता—” सूर्यक—॥ देवी की यह  
उपास (करामत) है इस प्रकार जान कर ‘मी—“सूरिकताए देवीए मणसा  
वि अप्पदुस्समाजे जेणैव पोसइसाल’ तण व उवागच्छ — उन सूर्यकान्ता देवी  
क प्रति मन्त्रे मी प्रेमभाव नहीं करता हुआ। जहाँ पोषकशाला की वहाँ पर  
गया—“पोसइसाल’ पमज्जा” वहाँ जा करके उसने पोषकशाला की प्रमार्ज की  
“उच्चारपासवणभूमि पडिलेइह—” उच्चारप्रसवण भूमि की प्रतिलेखना

“तएवं से पयसी रागा” इत्यादि—

मूलार्थ—‘तएवं’ तथा पछी ‘से पयसी रागा’ ते प्रदेक्षी राजा ‘सूरि क ताए  
देवीए अचागं सवल्लह जाणिता’ सूर्यकान्ता देवीके आ लक्ष्य हुआ कि आभ  
लाभवा छात्रने “सूरिकताए देवीए मणसा वि अप्पदुस्समाजे जेणैव पोसइ  
साला तेणेर उवागच्छ” ते सूर्य कान्ता देवी प्रत्ये मन्त्रकी पक्ष प्रेमभाव न इत्या  
न्त्या पोषकशाला की वहाँ गये (पोसइसाल ‘पमज्जा’) तहाँ जहाँने तेहे पोषक  
शालाकी प्रमार्जना करी ‘उच्चारपासवण भूमि पडिलेइह’ उच्चारप्रसवण भूमिनी



परिग्राहे पचचक्खाय त इयाणि पि णं तस्मेव भगवओ अतिप सव्व  
पाणाइवायं पचचक्खामि जाव सव्व परिग्राह पचचक्खामि सव्व  
कोह जाव मिच्छादसणसहे पचचक्खामि अकरणिज्ज जोग पचच  
क्खामि, सव्व असणं० चउव्विह पि आहार जावजीवाय पचच  
क्खामि, जपि य मे सरीर इह जाव फुसतुत्ति एवंपि यं चरि  
मेहिं उसासनीसासेहिं वोसिरामि त्ति कहू आलोइयपढिकते सभा  
हिपत्ते कालमासे काल किच्चा सेहम्मे कप्पे सूरियामे विमाणे  
उववायसभाय देवप्ताय उववन्ने । ॥सू० १६४॥

इति पण्डितरायस वण्ण समप्त ।

छमा—ततः सत्तु प्रदेशी राज्ञा सूर्यकान्ताया देव्या आत्मानं सप्रलम्बं धात्वा  
सूर्यकान्ताया देव्या मननाऽपि अप्रतिपत्तं यत्रैव पोषकशाला तत्रैव उपागच्छति  
पोषकशालां प्रमार्जयति, उच्चारयत्तत्र भूमिं प्रतिलेखयति, दर्मेन स्तारकं सः  
न ति, दर्मेन स्तारकं दग्रोहति पौनस्यामिषुस्तः सुपत्न्यङ्गनिषणः करः उपरिगृहीतं

“तण्णं से पण्णी राया” इत्यादि ।

मूलाय—“तण्णं” इसके बाद “स पण्णी राया” यह प्रवक्षी राजा  
“सूरिकताए देवीए अतायं सपत्तद, जाणिता—” सूर्यक-ता देवी की यह  
उत्पात (करामत) है इस प्रकार जान कर मी—“सूरिकताए देवीए मणसा  
वि अण्णदुस्समाणे जेणेष पोसइसाल” तब व उपागच्छः—” उभ सूर्यकान्ता देवी  
क प्रति मनसे मी डेपमाव नहीं करता हुआ जहाँ पोषकशाला की वहाँ पर  
गया—“पोसइसाल” पमज्जे” वहाँ जा करक उसन पोषकशाला की प्रमार्ज की  
“उच्चारपासवणभूमि पढिलेइ—” उच्चार प्रसवण भूमि की प्रतिलेखना

“तप ज स पण्णी राया” इत्यादि—

भूकाम ‘तण्णं’ त्वात् पठौ ‘स पण्णी रा’ ते प्रदेशी राजा ‘सूरि’क ता  
देवीए अताय सपत्तद जाणिता’ सूर्यकान्ता देवीके आ गये हुं । आभ  
अपुन उवांचे “सूरिकताए देवीए मणसा वि अण्णदुस्समाणे जणव पोसइ  
साला तप्पर उपागच्छ” ते सूर्य कान्ता देवी प्रत्ये भनधी पवु डेपमाव न करतां  
न्नां पोषकशाला वृत्ती त्वां भवे. (पोसइसालं पमज्जे) त्वां गच्छने तेजे पोषक  
शालांनी प्रमार्जना करी ‘उच्चारपासवण भूमि पढिलेइ’ उच्चार प्रसवण भूमिनी

शिर आवर्त मस्तके अञ्जलिं कृत्वा भगवत्पादौ-नमोऽ तु खलु अर्हद्भ्यः यावत्  
संप्रतिभ्यः नमोऽतु खलु केशिने कुमारश्रमणाय मम धर्माऽऽचार्याय धर्मोपदेश-  
नाय, वन्दे खलु भगवन्तं तत्रगतम् इहगतः, पश्यतु मां भगवान् तत्रगतः इह  
गतम्' इति कृत्वा वन्दते नमस्यन्, परमपि खलु मया केशिनः कुमारश्रमण  
भ्याम्भिके स्थूलपाणानिपातः पत्याख्यातः यावत् स्थूलपरिग्रहः प्रत्याख्यातः,

की-"द्वभसंथारगं संथरेइ-" और फिर दर्भ का संथारा बिछाया  
'द्वभसंथारगं दुरुहइ-" उसे बिछा कर वह उस पर बैठ गया. "पुर-  
त्थाभिमुहे संपलियं कनिसन्ने-" वहां आरूढ होकर वह पूर्व दिशा की ओर  
मुख करके पर्यङ्कासन से बैठ गया. "करयलपरिग्गहिंयं सिरसावत्तं मत्थए अजलिं  
कड्डु एवं वणासी-" और दोनों हाथों की अंजली बनाकर एवं-उसे मस्तक  
पर घुमाकर इस प्रकार से कहने लगा. "नमो थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं,  
नमो थुणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरिस्स धम्मोवदेसगस्स-" अर्हन्त  
भगवन्तों के लिये नमस्कार हो, मेरे धर्मोपदेशक धर्माचार्य केशीकुमार श्रमण  
के लिये नमस्कार हो, "वंदामि णं भगवन्तं तथ य इहगए-" यहां रहा हुवा  
मैं वहां पर रहे हुवे भगवान् को वन्दना करता हूं, "-पासउ मे भगवं  
तत्थगए इहगय त्ति कड्डु वंदइ नमंसइ-" वहां पर रहे हुवे वे भगवान् यहां  
रहे हुवे मुझे देखे-इस प्रकार कह कर उस प्रदेशी राजाने उनकी वन्दना की  
नमस्कार किया. 'पुत्वि पि ण मए केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए थूल-  
पाणाडवाए पच्चक्खाए. जाव थूलपरिग्गहे पच्चक्खाए " पहलेभी मैंने केशी

प्रतिवेचना करी "द्वभसंथा गं संथरेइ" अने पछी दर्भ छु आसन त्या पाथयुं.  
"द्वभसंथारगं दुरुहइ" तेने पाथरीने ते तेना पर उलेो थर गयेो. "पुरत्था-  
भिमुहे रंपलियं कनिस ने" त्या आइठ थरने ते पूर्व दिशा तरइ मुथ करीने  
पर्यंकासनथे पेसी गयेो 'करयलपरिग्गहिंयं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कड्डु एवं  
वणासी" अने गन्ने डाथोनी अजलि गणावीने अने तेने मस्तक पर हेरवी ते  
आ प्रभाणे कहेवा लायेो. "नमोथुणं अरहंता ण जाव संपत्ताणं नमोत्थुणं  
केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरिस्स धम्मोवदेसगस्स" अर्हंत भग  
वतने भारा नमस्कार छे, भारा धर्मोपदेशक धर्माचार्य केशीकुमार श्रमणने भारा  
नमस्कार छे "वंदामि णं भगवन्तं तत्थगए इहगए" अर्ही रडीने हु त्या वर्तमान  
भगवानने वदन करे छुं "पासउ मे भगवं तत्थगए इहगय त्ति कड्डु वंदइ,  
नम मइ" त्या रहैता भगवान भने अर्ही लुअे आ प्रभाणे कडीने ते प्रदेशी  
राजाये तेभने वंदन कर्या, नमस्कार कर्या "पुत्वि पि ण मए केसिस्स कुमारसम-  
णस्स अंतिए थूलपाणाडवाए पच्चक्खाए, जाव थूल परिग्गहे पच्चक्खाए"

तद् इदानीमपि स्तु नर्येव भगवत अन्तिक सव प्राणानिपात प्रत्यास्थामि  
यावत् सर्व परिग्रहम् प्रत्यास्थामि, सर्वं द्वाप यावत् मिथ्यादर्शनश्चन्य प्रत्यास्थामि  
अकरणीय योग प्रत्यास्थामि, सर्वम् अशन = चतुर्विधमपि आहार यावज्जीव  
प्रत्यास्थामि, यदपि च म शरीरम् इष्ट यावत् स्पृशन्तु इति एतदपि च स्तु  
वरमेः उच्छ्वासनि श्वासं श्पुत्सुज्वागम, इति कृत्वा आलोचितप्रतिक्रान्ता समाधि

कुमारधर्मण क पास स्थूल प्राणातिपातका यावत् स्थूल परिग्रह का प्रत्यास्थान  
किया है—'त इयाणि पि न तस्सेव भगवओ अतिष्ठ सव्य प्राणाश्वाय प च-  
क्त्वामि—' अब भी मैं उन्ही भगवान् क पास उसी सब प्रा तिपात का  
प्र त्यास्थान करता हूँ, "जाव सव्य परिग्रह पक्वस्त्वामि—" यावत् समस्त  
परिग्रह का प्र त्यास्थान करता हूँ। सव्य कोई जाव मिच्छादर्शनसत्त्व प च  
क्त्वामि—' समस्त क्रोध का प्र त्यास्थान करता हूँ यावत् मिथ्यादर्शन चन्य  
का प्र त्यास्थान करता हूँ। "अवरयिज्ञा ओगे पक्वस्त्वामि—" आरब्धीय योग  
(अशुभ योगका) का प्र त्यास्थान करता हूँ, "सव्य अशनं चतुर्विह वि आहारं च  
ज्जीवाय पक्वस्त्वामि—' ३६—'वान आदिरुदकारः प्रकार व आहार का यावज्जीव  
स्यागारता हूँ "अपि मे शरीर इह अब फुसतु चि एव पि य न चरिमे  
हि उसासनीसासेहि बोसिरामि चि कहूँ ' मैंने पहले जिस इष्टादि विशेषण  
विशिष्ट शरीर की रक्षा की इस अभिप्राय से कि—इसे क्षीत उच्छ्वादि परिग्रह  
तथा-सर्पादिकृत उपसर्ग आदिकी बाधा न पहुँचाये—अब मैं उसी शरीर का अन्तिम  
उच्छ्वास-निश्वासाँ तक परिया। करता हूँ इस प्रकार वि ार करके—'आलो-

पहेलां पक्ष मे देशीकुमारधर्मणनी पासे स्तु प्राणातिपातका यावत् स्थूल परिग्रह  
प्रत्यास्थान करूँ हूँ 'त इयाणि पि न तस्सेव भगवओ अतिष्ठ सव्य प्राणा  
श्वाय पक्वस्त्वामि अबे पक्ष हूँ ते न भगवाननी पासे तेन समस्त प्राणाति  
पात प्रत्यास्थान करे हूँ "जाव सव्य परिग्रह पक्वस्त्वामि" यावत् समस्त परि  
ग्रह प्रत्यास्थान करे हूँ 'सव्य व हूँ जाव मिच्छादर्शनसत्त्व पक्वस्त्वामि  
समस्त क्रोध प्रत्यास्थान करे हूँ यावत् मिथ्यादर्शन चन्य प्रत्यास्थान करे हूँ  
"अवरयिज्ञा ओगे पक्वस्त्वामि" आरब्धीय योग प्रत्यास्थान करे हूँ "सव्य  
अशनं चतुर्विह वि आहारं जावज्जीवाय पक्वस्त्वामि" अशन पात वनेष्ट ३५ आर  
प्रशस्ना आकरिनी यावत् सुभक्त त्वाग हूँ हूँ "अपि मे शरीर इह जाव  
फुसतु चि एव पि य न चरिमेहि उसासनीसासेहि बोसिरामि चि कहूँ" मे  
पहेलां के पक्ष वनेष्ट विशेषण विशिष्ट शरीरनी रक्षा करी ते न्य प्रयोगनी के  
आने क्षीतउच्छ्वास वनेष्ट परीपहेला तथा सर्पादिकृत उपसर्ग वनेष्ट आधा पहेलाके नदि  
वत् हूँ ते न शरीरने अन्तम उच्छ्वास नि श्वासे सुभी परित्वाग करे हूँ आ

प्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे सूर्याभे विमाने उपातसभायां देवतया उपपन्नः ॥ सू० १६४ ॥

इति प्रदेशिराजस्य वर्णनं समाप्तम् ।

टीका—“तए णं से पयसी” इत्यादि—ततःखलु स प्रदेशी राजा सूर्य-कान्ताया देव्या-स्वराज्या आत्मानं-म्ब संप्रलब्धं—विपप्रदानेन वञ्चितं सूर्यकान्तया मा णार्थं महाविपं दत्तमिति ज्ञात्वा सूर्यकान्ताया देव्या मनसाऽपि—मनोमात्रेणापि अप्रद्विपन्—द्वेषमकुर्वन् यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति, पौषधशालां प्रमार्जयति, उच्चारप्रस्रवणभूमिं प्रतिलेखयति, दर्भसं तारकं सस्त्रुणाति दर्भसंस्तारकं दूरोहति—अधिरोहति दर्भसंस्तारकोपर्युपविशतीत्यर्थः, पौरस्त्याभिमुखः—पूर्वदिगभि-

इ पण्डिकंते समाहिते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कल्पे सूर्याभे विमाणे उववाय भाए देवत्ताए उववन्ने—” उमने पहले गुरु को सम्मुख वरके जिन अतिचारों का प्रयाख्यान किया था अब उन्हें पुनः अकरण विषय से अतिक्रान्त वरके, अर्थात्—आलो-नापूर्वक मिथ्यादुष्कृत देवरके चित्त की समाधि प्राप्त करता हूँ. और—उसी स्थिति में वह कालमाप में काल करके सूर्याभविमान में उपात सभा में देव पर्याय से उपपन्न हो गया. ॥

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने जब जाना कि—मेरी रानी सूर्यकान्ताने ही मुझे मारने के लिये विप प्रदान कर इस स्थिति पर पहुचाने का निमित्त उपस्थित किया है तो वह इस हालत में भी उसके प्रति द्वेषभाव से रहित बना रहकर जहां पौषधशाला थी वहां पर चला गया. वहां जाकर उसने पौषधशाला की प्रमार्जना की उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की. और—दर्भ का संस्तारक विछाया. विछाकर फिर वह उसपर पूर्व दिशा की ओर मुंह वरके

प्रमाणे विचार कराने ‘आलोढपण्डिकंते समाहिते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कल्पे सूर्याभे विमाणे उववायसभाए देवत्ताए उववन्ने’ तेल्ले पडला सुइनी साभे जे अतिचारोतु प्रत्याख्यान कथुं हुतु हुवे तेभने इरी अकरणु विषयथी अतिहात करीने—अटले के ‘आलोथनापूर्वक मिथ्या दुष्कृत आपीने चित्तानी समाधि प्राप्त कइ छुं’ अने आवी स्थितिमा ते कालमासमा काल करीने सूर्याभविमानमा उपपात सभाया देव पर्यायथी जन्म पाभ्ये।

टीकार्थ—प्रदेशी राजाजो न्याये आ बात जान्नी के भारी राखी सूर्यकान्ताअने भने मारवा माटे विष आप्पु छे अने भारी आ दशा करी छे. तो ते परिस्थिति मा पणु सूर्यकान्ता प्रत्ये अद्वेषलावथी व्यवहार करीने न्यां पौषधशाला हुती त्या गये। त्या जधने तेल्ले पौषधशालानी प्रमार्जना करी उच्चारप्रस्रवण भूमिनी प्रति लेखना करी अने दर्भसंस्तारक पाथथी तारबधी ते तेनी उपर पूर्व दिशा तरक



तत् इदानीमपि स्तुतु मयि मगवत अन्तिके सव प्राणातिपात प्रत्यास्थामि  
यावत् सर्व परिग्रहम् प्रत्यास्थामि, सर्वं ज्ञाप यावत् मिथ्यादर्शनस्य प्रत्यास्थामि  
अकरणीय योग प्रत्यास्थामि, सर्वम् अशन० चतुर्विधमपि आहार यावज्जीव  
प्रत्यास्थामि, यदपि च मं शरीरम् इष्ट यावत् स्पृशन्तु इति एतदपि च स्तु  
चरमैः उर्ध्वासनिःश्वासेः व्युत्सृज्याम, इति कृत्वा आलोपितप्रतिक्रान्ता समादि

कुमारधर्म क पास स्पूल प्राणातिपातका यावत् स्पूल परिग्रह का प्रत्यास्थान  
क्रिया है—'त इयाणि पि ण तस्सिव मगवओ अतिए सव्व प्राणाइवाय प च-  
क्खामि—' अब भी मैं उन्ही मगवान् क पास उसी सब प्रा तिपात का  
प्रत्यास्थान करता ह, "जाव सव्व परिग्रह पचक्खामि—" यावत् समस्त  
परिग्रह का प्रत्यास्थान करता ह। सव्व कोह जाव मिच्छादर्शनसन्त प च  
क्खामि—" समस्त दोष का प्रत्यास्थान करता ह यावत् मिथ्यादर्शन सत्य  
का प्रत्यास्थान करता ह। "अवरणिज्ज ओगे पचक्खामि—" आरभीय योग  
(अशुभ योगका) का प्रत्यास्थान करता ह, "सव्व असण० चउत्थिह वि आहार जाव  
ज्जीवाण पचक्खामि—" ३५—पान आदिदकार। प्रकार व आहार का यावज्जीव  
स्यागारता ह "अपिय मे शरीर इह अब पुसतु ति एवं पिय न चरिम  
हि उसासनीसासेहि बोसिगमि ति कहुं ' मैने पहले जिस इष्टादि विशेषण  
विशिष्ट शरीर की रक्षा की इस अभिप्राय से कि—इस छीत उ आदि परिग्रह  
तथा-सर्पादिकृत उपसर्ग आदिकी वाधा न पहुँचाय अब मैं उसी शरीर का अन्तिम  
उर्ध्वास-निश्वासे तक परिया करता ह इस प्रकार वि तर चक्क—"आलो-

पदेहां पच मे देहीकुमारधर्मवानी २५से २६त प्राणातिपातत यावत् स्पूल परिग्रहत  
प्रत्यास्थान ३५ ३६ "त इयाणि पि ण तस्सिव मगवओ अतिए सव्व प्राणा  
इवाय पचक्खामि ३६ पच हु ते च अशाननी ३७मे तेच समस्त प्राण-पाति  
त प्रत्यास्थान ३७ ३८ "जाव सव्व परिग्रह पचक्खामि" यावत् समस्त परि  
ग्रहत प्रत्यास्थान ३९ ४० "सर्वं च इ जाव मिच्छादर्शनसन्त पचक्खामि"  
समस्त दोषत प्रत्यास्थान ४१ ४२ या त मिथ्यादर्शन शस्त्रनु प्रत्यास्थान ४३ ४४  
"अवरणिज्ज ओगे पचक्खामि" आरभीय योगत प्रत्यास्थान ४५ ४६ "सव्व  
असण० चउत्थिह वि आहार जावज्जीवाण पचक्खामि" अशन-अन चनेरे ४७ आर  
भारता आहारने यावत् स्पूल त्याग ४८ ४९ "अपिय मे शरीर इह अब  
पुसतु ति एवं पिय न चरिमहि उसासनीसासेहि बोसिगमि ति कहुं मे  
पदेहां ५० ५१ चनेरे विशेषण विशिष्ट शरीरकी रक्षा करी ते आ प्रयेज्जनी ५२  
आने शीतउष्ण चनेरे परीपदे तथा सर्पादिकृत उपसर्ग चनेरे आधा पदेमादे नदि  
दव हु ते च शरीरने आनम उन्मेषास निश्वासे सुधी चरित्याग ५३ ५४ आ

प्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे सूर्याभे विमाने उपपातसभायां देवतया उपपन्नः ॥ सू० १६४ ॥

इति प्रदेशिराजस्य वर्णनं समाप्तम् ।

टीका—“तए णं से पएसी” इत्यादि—ततःखलु स प्रदेशी राजा सूर्य-कान्ताया देव्या-स्वराज्ञ्या आत्मानं-स्व संप्रलब्धं—विषप्रदानेन वञ्चितं सूर्यकान्ताया मा णार्थं महाविषं दत्तमिति ज्ञात्वा सूर्यकान्ताया देव्या मनसाऽपि—मनोमात्रेणापि अप्रद्विषन्—द्वेषमकुर्वन् यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति, पौषधशालां प्रमार्जयति, उच्चारप्रस्रवणभूमिं प्रतिलेखयति, दर्भसं तारकं सस्तृणाति दर्भसस्तारकं दूरोहति—अधिरोहति दर्भसस्तारकोपर्युपविशतीत्यर्थः, पौरस्त्याभिमुखः—पूर्वदिगभि-

इ पडिकंते समाहिस्ते कालमासे कालं किञ्चा सोहम्मे कल्पे सूर्याभे विमाणे उववाय भाए देवत्ताए उववन्ने—” उसने पहले गुरु को सम्मुख बरके जिन अतिचारों का प्रयाख्यान किया था अब उन्हें पुनः अकरण विषय से अतिक्रान्त बरके, अर्थात्—आलो-नापूर्वक मिथ्यादुष्कृत देकरके चित्त की समाधि प्राप्त करता हूँ. और—उसी स्थिति में वह कालमाप में काल करके सूर्याभविमान में उपात सभा में देव पर्याय से उपपन्न हो गया. ॥

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने जब जाना कि मेरी रानी सूर्यकान्ताने ही मुझे मारने के लिये विष प्रदान कर इस स्थिति पर पहुचाने का निमित्त उपस्थित किया है तो वह इस हालत में भी उसके प्रति द्वेषभाव से रहित बना रहकर जहां पौषधशाला थी वहां पर चला गया. वहां जाकर उसने पौषधशाला की प्रमार्जना की उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की. और—दर्भ का संतारक बिछाया. बिछाकर फिर वह उसपर पूर्व दिशा की ओर मुंह बरके

प्रमाणे विचार करीने ‘आलोइयपडिकंते समाहिस्ते कालमासे कालं किञ्चा सोहम्मे कल्पे सूर्याभे विमाणे उववायसभाए देवत्ताए उववन्ने’ तेषु पडेला शुद्धी सामे ने अतिचारोनु प्रत्याख्यान कर्तुं हुनु हुवे तेभने इरी अकरण विषयथी अतिघात करीने—येटवे के ‘आलोचनापूर्वक मिथ्या दुष्कृत आपीने चित्तनी समाधि प्राप्त कइ छु’ अने आवी स्थितिमा ते कालमासमा काल करीने सूर्याभविमानमा उपपात सभाया देव पर्यायथी जन्म पावये।

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने न्याये आ बात जानी के भारी राखी सूर्यकान्ताअने भने मारवा भाटे विष खाण्यु छे अने भारी आ दशा करी छे तो ते परिस्थिति मा पणु सूर्यकान्ता प्रत्ये अद्वेषभावथी व्यवहार करीने न्यां पौषधशाला हुती त्या गये। त्या नधने तेषु पौषधशालानी प्रमाणना करी उच्चारप्रस्रवण भूमिनी प्रति लेखना करी अने दर्भसस्तारक पाथयो त्यावधु ते तेनी उपर पूर्व दिशा तरक

तद् इदानीमपि स्तुतु तस्यैव भगवतः अन्निकं सद्यः प्राणानिपातं प्रत्याख्यामि  
यावत् सर्वं परिग्रहम् प्रत्याख्यामि, सर्वं क्वाप यावत् मिथ्यादर्शनं हन्य प्रत्याख्यामि  
अकरणीयं योगं प्रत्याख्यामि, सर्वम् अन्नं० चतुर्विधमपि आहारं यावज्जीव  
प्रत्याख्यामि, यदपि च मे शरीरम् इष्टं यावत् स्पृशन्तु इति एतदपि च स्तुतु  
चरमे उच्छ्वासनिःश्वासे श्च्युत्सुस्मामि, इति कृत्वा आलोचितप्रतिक्रान्तः समाधि

कुमारभ्रमण के पास स्थूल प्राणातिपात का यावत् स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान  
किया है—‘त इ पाणि पि ण तस्सिव भगवज्जो अति ए सच्च पाणाइवाय प च  
क्खामि—’ अब भी मैं उन्हीं भगवान् के पास उसी सब प्राणातिपात का  
प्रत्याख्यान करता हूँ, ‘जाव सच्च परिग्गहं पच्चक्खामि—’ यावत् समस्त  
परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ। सच्च कोह जाव मिच्छादसणसन्त प च  
क्खामि—’ समस्त श्लोष का प्रत्याख्यान करता हूँ यावत् मिथ्यादर्शन हन्य  
का प्रत्याख्यान करता हूँ। ‘अजरणिज्ज जोग पच्चक्खामि—’ अकरणीय योग  
(अधुम योग का) का प्रत्याख्यान करता हूँ, ‘सच्च असण० चउप्विह वि आहार काव  
ज्जीवाण पच्चक्खामि—’ ३६—यान आदिह पकारा प्रकार के आहार का यावज्जीव  
प्रत्याख्यान करता हूँ ‘अपिय मे सरीर इदं अ च फुसतु ति एवं पिय ण चरिम  
हि उसासनीसासेहि बोसिरामि ति कहुं—’ मैंने पहले जिस इष्टादि विशेषण  
विशिष्ट शरीर की रक्षा की इस अभिप्राय से कि—इस शरीर उ आदि परिग्रह  
तथा-सर्पादिकृत उपसर्ग आदिकी वाधा न पहुँचाये—अब मैं उसी शरीर का अन्तिम  
उच्छ्वास-निश्वासां तक परि या। करता हूँ इस प्रकार विचार करके—‘आलो

पडेवां पच मे डेहीकुमारभ्रमण की पास स्थूल प्राणातिपात का यावत् स्थूल परिग्रह का  
प्रत्याख्यान करूँ ३७ ‘त इ पाणि पि ण तस्सिव भगवज्जो अति ए सच्च पाणा  
इवाय पच्चक्खामि ३८ पच मे ते च भगवतः तस्स मे सच्च प्रत्याख्यान  
त प्रत्याख्यान ३९ ३९ ‘जाव सच्च परिग्गहं पच्चक्खामि’ यावत् समस्त परि  
ग्रह का प्रत्याख्यान करूँ ४० ‘सर्वं च ह जाव मिच्छादसणसन्त पच्चक्खामि’  
समस्त श्लोष का प्रत्याख्यान करूँ ४१ यावत् मिथ्यादर्शन शन्य प्रत्याख्यान करूँ ४२  
‘अजरणिज्ज जोग पच्चक्खामि’ अकरणीय योग का प्रत्याख्यान करूँ ४३ ‘सच्च  
असण० चउप्विह वि आहार कावज्जीवाण पच्चक्खामि’ अन्न-पान वगैरे ४४ आ  
प्रकार के आहारों का यावत् जीवन त्याग करूँ ४५ ‘अपिय मे सरीर इदं अ च  
फुसतु ति एवं पिय ण चरिमहि उसासनीसासेहि बोसिरामि ति कहुं’ मैं  
पडेवां के छे छे वगैरे विशेषण विशिष्ट शरीर की रक्षा करी ते आ प्रत्याख्यान करूँ  
आने शीतल वगैरे शरीर को तथा सर्पादिकृत उपसर्ग वगैरे तथा पडेवां के नदि  
दव हूँ ते च शरीरों को आत्म उपसर्ग निश्वासे सुभी परित्याग करूँ ४६ आ

मगव :- केशिकुमारश्रमणयैव अन्तिके तदाज्ञावर्तित्वेन तस्मिन् भगव त विद्यमाने सति समीपे इव समीपे सम्प्रति सर्व प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि या-त्-याव-च्छब्देन -वं मृषावादं प्रत्याख्यामि, सर्वमदत्तादानं प्रत्याख्यामि, इति संग्राह्यम्, सर्व परिग्रहं प्रत्याख्यामि तथा क्रोधं यावत् यावच्छब्देन-मान-मायां लोभं रागं द्वेषं कलहमभ्याख्यान पैशुन्य परिवादं रत्यरती माया-मृषा ' इति संग्राह्यम्, मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि, सर्वम् अशनकिति-अशन खाद्यं वाद्यं चतुर्विध-माहारं यावज्जीवं-प्राणधारणपर्यन्तं प्रत्याख्यामि यद पि च मे शरीरम् इदं यावत् पृष्ठ तु अत्र यावच्छब्देन का तत्त्वादिविशेषणविशिष्टं शरीर शीतोष्णादयः परी पहाः सर्पादिकृता उपर्गाः कर्कशकठोरादयः स्पर्शाश्च मा रपृष्ठ तु इत्यन्तं संग्रा-

है. अब मैं उसी केशिकुमारश्रमण के पास उनकी आज्ञा के वशवर्ती होने के कारण उन्हें अपने समीप रहा हुआ जैसा मानकर सम त प्राणातिपात वा प्रत्याख्यान करता हूं. सम त मृषावाद वा प्रत्याख्यान करता हूं और सम त अदत्तादान वा प्रत्याख्यान करता हूँ और समस्त परिग्रह वा प्रत्याख्यान करता हूं । तथा क्रोधवो यावत् मान माया लोभका राग-द्वेष, कलह का प्रत्याख्यान पैशुन्य परिवाद अरति माया मृषा का, एवं-मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ। तथा-समस्त अशनका पानका खाद्यका स्वाद्यका, यावज्जीव-प्राणका ण पर्यन्त परित्याग करता हूँ, तथा-कान्त-त्वादि विशेषणों से युक्त जिस शरीर की मैंने शीतोष्ण आदिपरीपहों से सर्पादिकृत उपसर्गों से एव-कर्कश कठोर आदि स्पर्शों से ये सब इसे स्पर्श न करे इस ख्याल से रक्षा की इसका भी मैं अब अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक यावज्जीव तक परित्याग करता हूँ । तात्पर्य इसका इस प्रकार से है-मैंने इस शरीर

कुमारश्रमणनी पास तेमनी आज्ञाने वश होवाने लीधे तेओ भारी पास ज छ ओम भानीने समस्त प्राणपिततनु प्रत्याख्यान करे छु. समस्त मृषावादनु प्रत्याख्यान करे छु समस्त अदत्तादाननु प्रत्याख्यान करे छु अने समस्त परिग्रहनु प्रत्याख्यान करे छु तेमज क्रोधनु यावत् मान माया लोभ राग द्वेष कलहनु प्रत्याख्यान करे छु पैशुन्य परिवाद अरति माया मृषा अने मिथ्यादर्शनशल्यनु प्रत्याख्यान करे छु तेमज समस्त अशननु पाननु, खाद्यनु, स्वाद्यनु, यावत् जवन प्राण धारण पर्यन्त विसर्जन करे छु. तेमज कान्त ध्यादि विशेषणोथी युक्त जे शरीरनी मे शीतोष्ण वगेरे परीपहाथी सर्पादिकृत उपसर्गोथी अने कर्कश कठोर वगेरे स्पर्शोथी-ओओ आ शरीरने स्पर्श नहि ओ धरछओ रक्षा करी आनो यणु हुं हवे अतिम श्वासोच्छ्वास सुधी परित्याग करे छु तात्पर्य आ प्रमाणे छु

मुख सपरय निपाण - पर्यङ्कासनेन समुपविष्ट सन कस्तलपरिगृहीत शिरावर्त  
मन्त्रकेऽङ्गलिं कृत्वा एवमवादीत्-नमो स्तु स्तु अत्र यथा यावत् स प्राप्तेऽप्य ।  
अत्र यावद् २६ न नमोऽस्तु न" पाठः सर्वोऽपि ध्याय्यः । तथा नमोऽस्तु स्तु  
कश्चिने सुमाग्नमणाय मम र्माचार्याय र्मोपरदकाय, ६७ रत्न मगदत तत्र  
गतम् इह गत -अत्र गिषतोऽहम्, पश्यतु मे-त्रम मामित्यथ, मगवान् कश्चि  
कुमारभमणस्तत्रगत इहगतम्, इति कृत्वा कदत्तं नम यति, कथयति-ईदमपि स्थल  
मया कश्चिनाः कुमारभमण य अन्तिष्ठ-समीप भुञ्जप्राणातिपात प्रत्याख्यातः ।  
यावत्-यावच्छ्रद्धादन "स्फुल्लपावादः प्रत्याख्यातः २ धूसादत्ताऽऽदान प्रत्याख्यातम्  
३, इति स ग्राह्यम्, स्फुल्लपरिग्रह प्रत्याख्यात ४, तद् इदानीमपि स्तु तस्यैव

पश्यन्नात्मन से बैठ ग । दोनो हाथो १ जोड़ा जीर-आवर्तार इह प्रकार पहने  
लगा अर्हन्तो को नमस्कार हों यहाँ-यावत् छप्प स "नमोऽस्तु" १ पाठ  
पूरा उसमें २६ नमस्कार लेना चाहिये । इन प्रकार कहते कहते उसमें  
एक ही कहा कि-मुझे धर्म का उत्पन्न करने वाले जो सर र्माचार्य कक्षी  
कुमारभमण हैं उन्हें भी मग नमस्कार हो, वे अथपि- हाँ पर मेरे पास  
वर्तमान में नहीं हैं अतः जहाँ पर भी वे विगममान हों मैं  
यहाँ रहा हुआ उन्हें नमस्कार करता हूँ यहाँ २६ पुनः वे मगवान्  
कक्षीकुमारभमण यहाँ यह पुनः मुझ देखे इस प्रकार कहकर उसमें उन को  
वन्दना की-नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार कर फिर वह इस प्रकार से  
कहने लगा मैंने पहले भी कक्षीकुमारभमण के समीप स्फुल्ल प्राणातिपात का  
प्रत्याख्यान किया है-यावत् स्फुल्ल मृपावाद का प्रत्याख्यान किया है स्फुल्ल  
अदत्तादान का प्रत्याख्यान किया है औ-स्फुल्ल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया

मुझ करीने यह कायन्ती मुझाभी मेरी जथा त्वाव जाव तेले अन्ने दायादी अन्ने  
अनादी अने तेने अस्तक पर हेरवीने आ प्रभावे कहेवा दायादी अहं तोने नमस्कार  
छे, अहाँ बावत् पदवी "नमोऽस्तु" पूरापाठ ते गिरयो के बावत् सभकवी अहं  
आ प्रभावे कहेतां कहेतां तेले आ प्रभावे कहुं के अने धर्मोपदेश कापनार भारा  
धर्माचार्य ऐरीकुमारभमणने भारा नमस्कार छे तेजो अहाँ दुमखा वधमान  
नहीं छतां तेजोभी जथा विशकता कोय हूँ अहाँ रहीने तेमने नमस्कार कर  
छे त्वां रहेता ते भगवान् ऐरीकुमारभमण अहाँ रहेता अने जुवे. आ प्रभावे  
कहीने तेले तेमने वदन करी नमस्कार कर्ता वदन तमज नमस्कार करीने ते आभ  
कहेवा दायादी के मे पहेलां पल ऐरीकुमारभमणनी पास रक्क प्राणातिपाततु प्रत्या  
ख्यात करुं छे बावत् स्फुल्ल मृपावादतु प्रत्याख्यात करुं छे स्फुल्ल अदत्तादानतु  
प्रत्याख्यात करुं छे अने स्फुल्ल परिग्रहतु प्रत्याख्यात करुं छे कहे छे तेजो कही

भगव :- केशिकुमारश्रमणयैव अन्तिके तदाज्ञावर्तित्वेन तस्मिन् भगव त विद्यमाने सति समीपे इव समीपे सम्प्रति सर्ग प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि या-त-याव-च्छब्देन - वं मृषावादं प्रत्याख्यामि, सर्वमदत्तादानं प्रत्याख्यामि, इति सग्राह्यम्, सर्व परिग्रहं प्रत्याख्यामि तथा क्रोधं यावत् यावच्छब्देन-मान-मायां लोभं रागं द्वेषं कलहमभ्याख्यान पैशुन्य परपरिवादं स्त्यरती माया-मृषा ' इति सग्राह्यम्, मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि, सर्वम् अशनमिति-अशन खाद्यं वाद्यं चतुर्विध-माहारं यावज्जीवं-प्राणधारणपर्यन्तं प्रत्याख्यामि यदपि च मे शरीरम् इष्टं यावत् पृथु तु अत्र यावच्छब्देन का तत्त्वादिविशेषणविशिष्टं शरीर शीतोष्णादयः परीषहाः सर्पादिकृता उपर्गाः कर्कशकठोरादयः स्पर्शाश्च मा स्पृश तु इत्यन्तं संग्रा-

है, अब मैं उसी केशिकुमारश्रमण के पास उनकी आज्ञा के वशवर्ती होने के कारण उन्हें अपने समीप रहा हुआ जैसा मानकर सम त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूं. सम त मृषावाद का प्रत्याख्यान करता हूं और सम त अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूँ और समस्त परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूं । तथा क्रोधको यावत् मान माया लोभका राग-द्वेष, कलह का प्रत्याख्यान पैशून्य परिवाद अस्ति माया मृषा का, एवं-मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूं । तथा-समस्त अशनका पानका खाद्यका स्वाद्यका, याव जीव-प्राणश्च न पर्यन्त परित्याग करता हूं, तथा-का-त-त्वादि विशेषणों से युक्त जिस शरीर की मैंने शीतोष्ण आदिपरीषहों से सर्पादिकृत उपसर्गों से एवं-कर्कश कठोर आदि स्पर्शों से ये सब इसे स्पर्श न करे इस ख्याल से रक्षा की इसका भी मैं अब अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक यावज्जीव तक परित्याग करता हूँ । तात्पर्य इसका इस प्रकार से है-मैंने इस शरीर

कुमारश्रमणनी पासो तेमनी आज्ञाने वश होवाने लीधो तेज्जो भारी पासो न छि जेम भानीने समस्त प्रालुपिततनु प्रत्याख्यान करे छु. समस्त मृषावादनु प्रत्याख्यान करे छु समस्त अदत्तादाननु प्रत्याख्यान करे छि अने समस्त परिग्रहनु प्रत्याख्यान करे छु तेमज्ज कोधनु यावत् मान माया बोले राग द्वेष कलहनु प्रत्याख्यान करे छि पैशून्य परिवाद अस्ति माया मृषा अने मिथ्यादर्शनशल्यनु प्रत्याख्यान करे छि तेमज्ज समस्त अशननु पाननु, भाद्यनु, स्वाद्यनु, यावत् जवन प्राण धारण पर्यन्त विसर्जन करे छि तेमज्ज का-त-त्वादि विशेषणोत्थी युक्त जे शरीरनी मे शीतोष्ण वगेरे परीषहोत्थी सर्पादिकृत उपसर्गोत्थी अने कर्कश कठोर वगेरे स्पर्शोत्थी-ज्जेज्जो आ शरीरने स्पर्श नहि जे छुछाज्जे रक्षा करी आनो पणु हुं हवे अन्तिम श्वासोच्छ्वास सुधी परित्याग करे छि तात्पर्य आ प्रमाणे छि

हम, तथाहि—का त, प्रिय मनोह, मनआम, धय—धैर्यस्वरूप वैद्यसिक्त विद्यास योग्य, समतम, अनुमत बहुमत, माण्डकरण्डकममान, रत्नकण्डकभूतमिद शरीर मा स्तु शीत मा स्तु उष्ण, मा स्तु धुधा मा स्तु पिपासा, मा स्तु व्याला—सर्पाः, मा स्तु चोराः, मा स्तु दक्षाः, मा स्तु मक्षकाः, मा स्तु मातिकः—वातसम्ब धी रोगातङ्का एव पैत्तिकः श्लैष्मिक सान्निपातिकः इत्यादि का विविधा रोगातङ्का, तत्र रोगा—उषगदय आतङ्का—सघोषातिशूलादय, तथा परीपहाः—क्षुधादय, उपसर्गा सर्पादिकृता उपद्रवाः स्पर्शाः—कर्कशकठोरा दय मा सूत्रन्तु—मे शरीरे मा सलम्ना मव तु इति—इति बुद्ध्या सरक्षितम् एतदपि च स्तु शरीर चरमैः—अतिमैः उर्ध्वामनि धासः म्युत्सुजामि—त्यजामि,

को का त प्रिय-मनोह मन आम धैर्यस्वरूप विद्यासयोग्य, समत अनुमान, तथा—बहु मत माना एव-रत्न रत्नने के पियार क बसा बहुमूल्य माना। अतः—इस की तरह से मन समाल रखी इस छीन से बाधा न हो जावे, उष्णसे सताप न हो जावे, धुधा से कष्ट न हो जावे पिपासासे यह आकुलित न हो जावे सर्पादि कृता उपद्रवों से यह पीड़ित न हो जावे चोरों द्वारा इसे आपसि में पहना न पड़े दंष्ट्र—मक्षक इसे काट न लवे वात सम्ब धी रोगातङ्को—ज्वरादि रोगों सघोषाति शूलादिकों से यह दुःखित न हो जावे पैत्तिक—श्लैष्मिक—सान्निपातिक रोगातङ्क इसे मलिन न करद कर्कश—कठोर आदि स्पर्श करके इसके सौन्दर्य का अपहरण न करे, इस प्रकार से मैंने इसकी हरतरह क रक्षा रक्षाकीधी, परन्तु—अब मैं ऐसे प्रिय इस शरीर के साथ अपना सम्बन्ध जीवन के अन्तिमक्षण तक वाचन्शीव तक बिच्छेद

इ मे आ शरीरने अत प्रिय मनोह मन आम, धैर्यस्वरूप, विद्यास योग्य, समत-अनुमत तेमक बहुमत आवयो आने रत्न भूषणानी पीटीनी लेम बहु भूषणान मानु जेकी क आनी मे जधी रते सभाज राणी. आने उ दीधी पीडा न बाध उच्छुताधी सताप न बाध धुधाधी कष्ट न बाध, तरसधी व्याकुल न बाध सर्पादिकृत उपद्रवधी आ पीडित न बाध धासः नडे आ आहृतर्मा न क साध पडे, इश मशक आने कष्ट न आपि वात सजधी रोगातङ्का—ज्वरादि रोगों सघोषाति शूलादिकोंधी आ शरीर दुःखित न बाध, पैत्तिक श्लैष्मिक सान्निपातिक रोगातङ्क आ शरीरने मलिन न करे, ककश कठोर बजेरेना रफशधी जेना सो-इकत अपहरण न करे आ प्रगाथे मे जधी रते आ शरीरनी भूष रक्षा करी कती पणु कवे हु आ जेवा प्रिय शरीरनी साथे पीताने सजध छपनना अतिम क्षण सुधी छीये उठ ह आम विचार करीने ते प्रदेशी

इति कृत्वा-इत्यालोच्य स प्रदेशी राजा आलोचितप्रतिक्रान्तः-आलोचिताः-पूर्व  
गुरुमभिमुखीकृत्य प्रकाशिताः अतिचा १ः ते पश्चात् प्रतिक्रा ताः-पुनरकणविपयी-  
कृता येनासौ तथा-आलोचनापूर्वकप्रदत्तमिथ्यादुष्कृत इत्यर्थः समाधि-प्राप्तचित्त  
समाधिकः सन् कालमासे-कालावसरे कालं कृत्वा-मृत्युं प्राप्य सूर्यामे विमाने  
उपपातसभायां देवतया-देव वेन उपपन्नः-उत्पन्नः । ॥सू० १६४॥

इति प्रदेशिराजस्य वर्णनं प्राप्तम् ॥

अथ प्रदेशिराजजीव-य सूर्याभदेव याऽऽगामिभववर्णनमाह-

मूलम्-तए णं सूरियाभेदेवे अहुणोववन्नमए चेव समाणे पंच-  
विहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभाव गच्छइ, त जहा-आहारपज्जत्तीए सरीर-  
पज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणपाणपज्जत्तीए भासमणपज्जत्तीए, त  
एव खलु भो ! सूरियाभेणं देवेणं दिव्वा देविड्डी दिव्वा देवजुई  
दिव्वे देवाणुभावे लज्जे पत्ते अभिसमन्नागए । ॥सू० १६५॥

छ.या-ततः खलु स सूर्याभे देवः अयुन पपन्नक एव सन् पञ्चविधया पर्याप्ति  
भावं गच्छति, तद्यथा आहारपर्याप्त्या१, शरीरपर्याप्त्या२, इन्द्रियपर्याप्त्या३, आन-

कर्ता हू. इस तरह विचार कर वह प्रदेशी राजा आलोचित प्रतिक्रान्त होकर  
समाधि में तल्लीन हो गया. और-काल मास में मरण प्राप्त कर सूर्याभविमान  
में-उपपात सभा में देव पर्याप्त से उत्पन्न हो गया. ॥सू० १६४॥

( प्रदेशी राजा वर्णनसमाप्त. )

“प्रदेशी राजा के जीव-सूर्याभदेव के आगामी भवका वर्णन

“तए णं से सूरियाभे देवे अहुणोववन्नमए-” इत्यादि

मूलार्थ-“तए णं सूरियाभे देवे-” इसकेवाद नत्काल उत्पन्न हुवा ही  
वह सूर्याभदेव पांच प्रकार की पर्याप्ति से पर्याप्त हो गया. “तं जहा-आहार

राजा आलोचित प्रतिक्रान्त थाने समाधिमा तल्लीन रह गये अने काल मासमा  
भगणु याभीने सूर्याभविमानमा उपपात सभा १ देव पर्याप्ति उत्पन्न थये ॥सू १६४॥

प्रदेशी राजानुं वरुण न समाप्त

“प्रदेशी राजाना श्रव-सूर्याभदेवतुं आगामी भवतुं वरुण न”

“तए णं से सूरियाभे देवे अहुणोववन्नमए” इत्यादि.

मूलार्थ-“तए णं सूरियाभे देवे” त्पार पछी उत्पन्न थता न ते सूर्याभदेव  
पाच प्रकारनी पर्याप्तिओथी बुद्धत थध गये “तं जहा-आहारपज्जत्तीए सरीर



क्षाम, तवाहि—का त, प्रिय मनोश्च, मनआम, धय—धैर्यस्वरूप धैर्यसिकं विश्वास योग्य, समतम्, अनुमत बहुमत, माण्डकरणकममान, रत्नकरणकभूतमिदं क्षरीर मा स्तु क्षीत मा स्तु उष्ण, मा स्तु क्षुधा मा स्तु पिपासा, मा स्तु म्वाला—सर्पाः, मा स्तु घोरा, मा स्तु दशा, मा स्तु मन्त्रका, मा स्तु मातिकाः—वातसम्बधी रोगातङ्का एव पैसिकाः श्लेष्मिकाः सान्निपातिकाः इत्यादि का विविधा रोगातङ्का, तत्र रोगाः—उपगदय आतङ्काः—मधोघातिशूलादय, तथा परीपहा—क्षुधादय, उपसर्गाः सर्पादिकृता उपद्रवाः स्पर्शाः—कर्कशकठोरा दय मा स्तु न्तु—मे क्षरीरे मा सलम्ना भवतु इति—इति बुद्ध्या सरक्षितम् एतदपि च स्तु क्षरीर कर्मैः—अतिमैः उन्नीयमानि भासैः व्युत्सृजामि—स्यजामि,

की का त मिय-मनोश्च मन आम धैर्यस्वरूप विश्वासयोग्य, समत अनुमान, तथा—बहु मत माना एव रत्न रत्नने क पिणर क जसा बहुमूर्य माना। अतः—इस की तरह से मैंने समस्त रक्षी इसे क्षीन से बाधा न हो जावे, उष्णसे सताप न हो जावे, क्षुधा से कष्ट न हो जावे पिपासा से यह आकुलित न हो जावे सर्पादि कृता उच्छ्रवां से यह पीड़ित न हो जावे घोरों द्वारा इसे आपत्ति में पड़ना न पड़ दश—मन्त्रक इसे काट न लेवे वात सम्बधी रोगातङ्की—ज्वरादि रोगों मधोघाति शूलादिकों से यह दुःखित न हो जावे पैसिक—श्लेष्मिक—सान्निपातिक रोगातङ्क इस मलिन न करद कर्कश—कठोर आदि स्पष्ट करके इसके मौन्दर्य का अपहरण न करे, इस प्रकार से मन इसकी हर तरह क मूष रक्षाकीयी, परन्तु—अब मैं एस प्रिय इस क्षरीर क साथ अपना सम्बन्ध जीवन क अन्तिमक्षण तक यावन्जीव तक विच्छेद

हूँ मैं आ शरीरने कात प्रिय, मनोश्च, मन आम धैर्यस्वरूप, विश्वास योग्य समत—अनुमत तेमक बहुमत आपत्ति होने रत्न भुक्त्वानी पीटीनी नेम बहु भूष्य वान मानु क्येवी व आनी मे लपी रीते सभाज शशी. आने ठीकी पीछ न थाव उष्णतायी सताप न थाव क्षुधायी कष्ट न थाव, तरसयी व्याकुल न थाव सर्पादिकृत उपद्रवायी आ पीडित न थाव घोरः पटे आ आकृता न हूँ साधं पटे, दश भयक आने कष्ट न आपे वात सलपी रोगातङ्का—ज्वरादि रोगों मधोघाति शूलादिकेयी आ शरीर दुःखित न थाव पैसिक श्लेष्मिक सान्निपातिक रोगातङ्क आ शरीरने मलिन न करे कर्कश कठोर बगेरना उपद्रवी क्येना मौन्दर्यतु अपहरण न करे आ भयानक मे लपी रीते आ शरीरनी मूष रक्षा करी दती पण लवे दुःख आ क्येना प्रिय शरीरनी साथे पोताने सन्ध लुपनना अतिम क्षण मुधी छीटी दउ हूँ आभ विचार करीने ते प्रदेशी

इति कृत्वा—इत्यालोच्य स प्रदेशी राजा आलोचितप्रतिक्रान्तः—आलोचिताः—पूर्व  
गुरुमभिमुखीकृत्य प्रकाशिताः अतिचाः ते पश्चात् प्रतिका ताः—पुनरुक्लविषयी-  
कृता येनासौ तथा—आलोचनापूर्वकप्रदत्तमिथ्यादुष्कृत इत्यर्थः समाधि-प्राप्तचित्त  
समाधिकः सन् कालमासे—कालावसरे कालं कृत्वा—मृत्युं प्राप्य सूर्याभे विमाने  
उपपातमभार्यां देवतया—देवत्वेन उपपन्नः—उत्पन्नः । ॥सू० १६४॥

इति प्रदेशिराजस्य वर्णनं समाप्तम् ॥

अथ प्रदेशिराजजीव-य सूर्याभेदे याऽऽगामिभववर्णनमाह—

मूल—तए णं सूरियाभेदेवे अहुणोववन्नमए चेव समाणे पंच-  
विहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभाव गच्छइ, त जहा—आहारपज्जत्तीए सरीर-  
पज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणपाणपज्जत्तीए भासमणपज्जत्तीए, त  
एव खलु भो । सूरियाभेणं देवेणं दिव्वा देविड्डी दिव्वा देवजुई  
दिव्वा देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए । ॥सू० १६५॥

छाया—ततः खलु स सूर्याभे देवः अयुत पपन्नक एव सन् पञ्चविधया पर्याप्ति  
भावं गच्छति, तद्यथा आहारपर्याप्त्या१, शरीरपर्याप्त्या२, इन्द्रियपर्याप्त्या३, आन-

कृता हू. इस तरह विचार कर वह प्रदेशी राजा आलोचित प्रतिक्रान्त होकर  
समाधि में तल्लीन हो गया. और—काल मास में मरण प्राप्त कर सूर्याभविमान  
में—उपपात सभा में देव पर्याप्त से उत्पन्न हो गया. ॥सू० १६४॥

( प्रदेशी राजा वर्णनसमाप्त. )

“प्रदेशी राजा के जीव-सूर्याभ देव के आगामी भवका वर्णन

“तए णं से सूरियाभे देवे अहुणोववन्नए—” इत्यादि

मूलार्थ—“तए णं सूरियाभे देवे—” इसके बाद तत्काल उत्पन्न हुआ ही  
वह सूर्याभदेव पांच प्रकार की पर्याप्ति से पर्याप्त हो गया. “तं जहा—आहार

राज आलोचित प्रतिक्रान्त थडने समाधिमा तल्लीन दध गये। अने काल मासमा  
मरण भाभीने सूर्याभविमानमा उपपात सभा। देव पर्याप्तथी उत्पन्न थये ॥सू १६४॥  
प्रदेशी राजाजुं वणुंन समाप्त.

“प्रदेशी राजाना लव—सूर्याभदेवजुं आगामी लवजुं वणुंन ”

“तएणं से सूरियाभे देवे अहुणोववन्नए” इत्यादि.

मूलार्थ—“तएणं सूरियाभे देवे” त्पार पछी उत्पन्न थता ज ते सूर्याभदेव  
पात्र प्रकारनी पर्याप्तिआधी थकत थध गये। “तं जहा—आहारपज्जत्तीए, सरीर

सम, तथाहि—का त, प्रिय मनोस, मनआम, धर्म-धर्मस्वरूप विश्वस्तिक विभास योग्य, समतम, अनुमत बहुमत, माण्डकतण्डकसमान, रत्नकाण्डकभूतमिद क्षीर मा स्तु शीत मा स्तु उष्ण, मा स्तु क्षुधा मा स्तु पिपासा, मा स्तु म्यालाः—सर्पाः, मा स्तु घोराः, मा स्तु दक्षा, मा स्तु मशकाः, मा स्तु नातिकः—घातसम्बन्धी रोगातङ्का एव पैक्षिक श्लैष्मिकः सान्निपातिकः इत्यादि का विविधा रोगातङ्का, तत्र रोगाः—ज्वरदय आतङ्काः—मधोपातिशूलादय, तथा परीपद्वाः—क्षुधादयः, उपसर्गा सर्पादिकला उपद्रवाः, स्पर्शाः—कर्कशकटोरा दय मा स्पृशन्तु—म क्षीर मा संलम्ना भवतु इति—इति बुद्ध्या सरक्षितम् एतदपि च स्तु क्षीर चर्म—अतिमै उर्ध्वामनिःश्वारैः प्युत्सुजामि—स्यजामि,

को कान्त प्रिय-मनोस मन आम धर्मस्वरूप विश्वासयोग्य, समत-अनुमान, तथा—बहु मत माना एव—रत्न रत्न के पिण्ड क असा बहुमूल्य माना। अतः—इस की तरह से मैंने समस्त रखी इस शीत से चांचा न हो जावे, उष्णसे सताप न हो जावे, क्षुधा से कष्ट न हो जावे पिपासासे यह आकूलित न हो जावे सर्पादि कृत् उच्छ्वसों से यह पीड़ित न हो जावे चोरो द्वारा इसे आपत्ति में पड़ना न यह दंष्ट्र-मशक इसे काट न लेवे घात सम्बन्धी रोगातङ्को—ज्वरादि रोगों मधोपाति शूलादिकों से यह दुःखित न हो जावे पैक्षिक-श्लैष्मिक-सान्निपातिक रोगातङ्क इसे मलिन न करव कर्कश-कठोर आदि स्पष्ट करके इसके सौन्दर्य का अपहरण न करे, इस प्रकार से मैंने इसकी हर तरह के खूब रक्षाकीयी, परन्तु—अब मैं इस प्रिय इस क्षीर के साथ अपना सम्बन्ध जीवन के अन्तिमक्षण तक बावजुब तक बिच्छे

है मे आ शरीरने अत प्रिय मनोस मन आम धर्मस्वरूप, विश्वास योग्य समत-अनुमत तेमत्र बहुमत आयेने अने रत्न भूकान्दी पीडनी स्नेम बहु भूक्य पान मान्नु कोबी न आनी मे अधी रीते सभाण राणी आने ठीकी पीडा न थाव उष्णताथी सताप न थाव क्षुधाथी कष्ट न थाव, तरसथी आकुण न थाव सर्पादिकृत उपद्रवोथी आ पीडित न थाव श्वारै पडे आ आहतर्मा न हसाई पडे, इस मशक आने कष्ट न आपि वात स अधी शैजात है—अशक्ति शैवे। मधोपाति शूलादिकोथी आ शरीर दुर्लभित न थाव ऐतिक श्लैष्मिक, सान्निपातिक शैजातक आ शरीरने मलिन न करे, कर्कश कठोर न जेरेना रम्यथी कोना सौन्दर्य न आपकृष्य न करे न प्रभावे मे अधी रीते आ शरीरनी पूर रक्षा करी कटी पक्ष्य कवे हू आ कोना प्रिय शरीरनी साथे पेटाने। स अथ लुपनना अतिम क्षण सुधी छैती हउ छू आम विचार करीने ते प्रवेशी

मूलम्—सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता ? गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइ ठिई पणत्ता । से णं भंते ! सूरियाभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ ? कहि उववज्जिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलाणि भवन्ति तं जहा—अह्णैइ दित्ताइ विउलाइ वित्थिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइं बहुधणवहुजायरूवरययाइ आओगपओगसंपउत्ताइ विच्छड्डियपउरभत्तपाणाइं वहुदासीदासगोमहिसगवेलगणभूयाइ वहुजणस्स अपरिभूयाइ, तत्थ अन्नयरम्मि कुलम्मि पुत्तत्ताए पच्चायाइस्सइ ॥ सू० १६६ ॥

छाया—सूर्याभस्य खलु भदन्त ! देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता । स खलु भदन्त ! सूर्याभो देव तस्मादेवलोकाद् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं चयं त्यक्त्वा कुत्र

सूरियाभस्स णं भंते-? देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता—” इत्यादि

मूलार्थ—प्रश्न—“सूरियाभस्स णं भंते-? देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता—” हे भदन्त-? सूर्याभदेव की स्थिति कितनी कही गई है—३ उत्तर—“गोयमा-? चत्तारि पलिओवमाइ ठिई पणत्ता—” हे गौतम-? चार पल्योपम की सूर्याभदेव की स्थिति कही गई है । प्रश्न—“से णं भंते-? सूर्याभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ कहि उववज्जिहिइ—” हे भदन्त-? वह सूर्याभ देव उस देवलोकसे आयु क्षय-

“सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” इत्यादि.

मूलार्थ—प्रश्न “सूरियाभ स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” हे भदन्त ! सूर्याभदेवनी स्थिति डेटली कडेवाभा आवी छे ? उत्तर—“गोयमा ? चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता—” हे गौतम ! सूर्याभदेवनी स्थिति आरपट्ठे पम डेटली कडेवाभा आवी छे प्रश्न—“से णं भंते ! सूरियामे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ कहि उववज्जिहिइ—” हे भदन्त ! ते सूर्याभदेव ते देवलोकात् आयुक्षय-भवक्षय

माणपर्याप्त्या४, मापान्नन पर्याप्त्या ५, तच्च एव स्वतु मो ? सूर्यामेन दवेन दिव्या देवर्द्धिः, दिव्या देवपुति दिव्यो देवानुमाव लब्ध प्राप्त अमिस मन्वागत ॥ सू० १६५॥

टीका— 'स एण से सूरियाम दवे' इत्यादि—ततः स्वतु स सूर्यामो दप अधुनोपपन्नक एव—तत्कालात्यजक एव मनु पञ्चविधता पर्याप्त्या पर्याप्तिमात्र गच्छति पर्याप्तिपञ्चकस्याथः पूर्वं व्यशीनितमक्षेत्रे गतः । एवम् अनेन कारणेन प्रवेक्षितमव आदि कमवपूर्वकभावकधर्मापराधेन अस्तोन्तिप्रतिलोनि तसमापिमरणादिरूपेण च कारणेन मो—इ गौतम । सूर्यामदेवेन इय दिव्या देवर्द्धि—विमानादिरूपा दिव्या देवपुति—सुरीरामरणादिकान्तिः, दिव्यो देवानुमाव—देवप्रभावः, लब्धः उपार्ब्धः, प्राप्त—स्वा चीभूतः अमेसमन्वागतः—योग्यत्वेन सम् गमिमुख्यमागतः ॥ सू० १६५॥

पञ्चशीए, सरिरपञ्चशीए इदि पञ्चशीए, आण णपञ्चशीए, मासमणरञ्ज शीए—' वे पांच पर्याप्ति । इस प्र तर स है—आहारपापसि-सुरीरामरणादि-इन्द्र पर्याप्ति-आवासो-इन्द्र पर्याप्ति और-मापा मनःपर्याप्ति, 'त एव स्वतु मो ? सूरियामेन दवेन दिव्या देवर्द्धि-दिव्या देवपुति दिव्ये द एवमावे-लब्धे पते अमि-समन्वागत—' इस तरह से इस सूर्यामदेवेन प्रवेक्षी राजा क मन्वमे अन्तिम मन्वपूर्वक भावक धर्म की आराधना की थी किन्तु-आलोचन प्रतिक्रिया होकर यह समाप्त प्राप्त हुआ था इन्ही सब कारणों से इसने सूर्यामदेव क पर्याप में यहदिव्य देवर्द्धि विमानादि दिव्य देवपुति-सुरीरामरणादि कान्ति औ दिव्यदेवानुमाव-देवप्रभावः उपार्ब्ध किया प्राप्त किया है अतः अधीन किया है और उसे योग्यरूप होने क कारण अच्छी तरह से उसे भोगा है—

टीकार्थ—एण है पांच प्रकार की पर्याप्तिर्या का स्वरूप पहिले ८३ वे सूत्रमें प्रगट किया गया है ॥ सू० १६५॥

पञ्चशीए इदियपञ्चशीए, आगपाण पञ्चशीए, मासमणपञ्चशीए' ते पांच पर्याप्तिभ्यो आ प्रभावे छे—आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति छन्दस्य पर्याप्ति आसो मन्वाद्यस्य पर्याप्ति अने आधा मनः पर्याप्ति 'त एव स्वतु मो ? सूरियामेन दवेन दिव्या देवर्द्धि—दिव्या देवपुति दिव्ये द एवमावे-लब्धे पते अमि-समन्वागत—' आ प्रभावे ते सूर्यामदेवे प्रवेक्षी राजा अवर्मा आरितक भावभूत भावक धर्मना आराधना की हुती अने पक्षी आदीभित प्रतिक्रान्त अने ते समाधि प्राप्त कये हुते। आ अधा कारणेभी तेले सूर्यामदेवना पर्याप्तमा दिव्य देवर्द्धि विमानादि दिव्यदेवपुति शरीरामरणादि कान्ति अने दिव्य देवानुमाव देवप्रभाव उपार्ब्धित कर्त्त छे, भोगेभी छे स्वाधीन बनाव्वा छे अने तेने योग्यरूप होवासी सारी राते तेने उपभोग कये छे ।

टीकाय स्पष्ट ॥ पांच प्रकारकी पर्याप्तिभ्यो स्वरूप पहिले ८३ भा सूत्रमा प्रगट कइवाभा आ पु ८ ॥ १६५॥

मूलम्—सूरियाभस्स णं भंते । देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता ? गोयमा । चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता । से णं भंते । सूरियाभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ ? कहि उववज्जिहिइ ? गोयमा । महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलाणि भवंति तं जहा—अह्हाइ दित्ताइ विउलाइ वित्थिण्णविउलभवनसयणासणजाणवाहणाइं बहुधणबहुजायरूवरययाइ आओगपओगसंपउत्ताइ विच्छड्डियपउरभत्तपाणाइं बहुदासीदासगोमहिसगवेलगणभूयाइ बहुजणस्स अपरिभूयाइ, तत्थ अन्नयरम्मि कुलम्मि पुत्तत्ताए पच्चायाइस्सइ ॥ सू० १६६ ॥

छाया—सूर्याभस्य खलु भदन्त ! देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता । स खलु भदन्त ! सूर्याभो देवः तस्माद्देवलोकाद् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं चयं त्यक्त्वा कुत्र

सूरियाभस्स णं भंते-? देवस्स केव यं कालं ठिई पणत्ता—” इत्यादि

मूलार्थ—प्रश्न—“सूरियाभस्स णं भंते-? देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता—” हे भदन्त-? सूर्याभदेव की स्थिति कितनी कही गई है—३ उत्तर—“गोयमा-? चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता—” हे गौतम-? चार पल्योपम की सूर्याभदेव की स्थिति कही गई है । प्रश्न—“से णं भंते-? सूर्याभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ कहि उववज्जिहिइ—” हे भदन्त-? वह सूर्याभ देव उस देवलोकसे आयु क्षय-

“सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” इत्यादि.

मूलार्थ—प्रश्न “सूरियाभ स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” हे भदन्त ! सूर्याभदेवनी स्थिति डेटली कडेवाभा आवी छे ? उत्तर—“गोयमा ? चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता—” हे गौतम ! सूर्याभदेवनी स्थिति थारपट्ठे पम डेटली कडेवाभा आवी छे प्रश्न—“से णं भंते ! सूरियामे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ कहि उववज्जिहिइ—” हे भदन्त ! ते सूर्याभदेव ते देवलोकथी आयुक्षय-भवक्षय

प्राणपर्याप्त्या४, मापानन पर्याप्त्या५, तद् एव खलु मो ? धर्माभेन देवेन दिव्या देवर्षि, दिव्या देवपुति दिव्यो देवानुमाव लब्ध प्राणः अमिस मन्वागत ॥ सू० १६५॥

टीका— 'तए ण से धरियामे दध' इत्यादि—तत खलु स धर्माभे दध अधुनोपपन्नक एव—तत्कालोत्पन्नक एव सन पञ्चविधगा पर्याप्त्या पर्याप्तिमाव गच्छति पर्याप्तिपञ्चक—'प्राणः पूर्वं श्रयणीनितमस्यै गत' । एवम् अनेन कारणेन प्रवेशिराजमव आदि कमावपूर्वकभावकधर्मापन्नरूपेण आलोचितप्रतिलोचि त्वसमाधिमरणादिरूपेण च कारणेन मो—हे गौतम ! धर्माभेदेन इय दिव्या देवर्षि—विमानादिरूपा दिव्या देवपुति—क्षरीराभ्यादिकान्तिः, दिव्यो देवानुमाव—देवप्रभावः, लब्ध उपार्जित, प्राण—स्वाभीभूत अमिसमन्वागतः—मोग्यत्वेन सम् गमिमुत्समागत ॥ सू० १६५॥

पञ्चशील, मरीरपञ्चशील इदि पञ्चशील, आण णपञ्चशील, मासमपञ्चशील—'वे पांच पर्याप्ति । इस प्रार से है—आहारपर्याप्ति शरीरपर्याप्त—इन्द्र पर्याप्ति—वासो—हृत्प्राण पर्याप्ति और माया मन पर्याप्ति, 'त एव खलु मो ? धरियामेन देवेन दिव्या देवर्षि—दिव्या देवपुति दिव्यो देवानुमावे—सदे पते अमिसममागत—' इस तरह से इस धर्माभेदेन प्रदक्षी राजा के भवमें अन्तिम भवपूर्वक भावक धर्म की आराधना की थी फिर आलोचन प्रतिकाश होकर यह समाधि प्राप्त हुआ था इन्हीं सब कारणों से हमने धर्माभेद के पर्याप्त में यह दिव्य देवर्षि विमानादि दिव्य देवपुति—क्षरीरामरणादि कान्ति और दिव्य देवानुमाव—देवप्रभाव उपार्जित किया है प्राप्त किया है अ नर्षीन किया है और उस यागपरप हान के कारण अच्छी तरह से उस भोगा है—

टीका—'एव' है पांच प्रकार की पर्याप्तिया का स्वरूप पहिले ८३-व सूत्रमें प्रगट किया गया है ॥ सू० १६५॥

पञ्चशील इदि पञ्चशील, आगपाण पञ्चशील, मासमपञ्चशील' ते पांच पर्याप्तियों का प्रभाव है—आहार पर्याप्ति शरीर पर्याप्ति धैर्य पर्याप्ति, वासो—हृत्प्राण पर्याप्ति और माया मन पर्याप्ति 'त एव खलु मो ? धरियामेन देवेन दिव्या देवर्षि—दिव्या देवपुति दिव्य देवानुमावे—सदे पते अमिसममागत' का प्रभाव है धर्माभेद प्रदक्षी राजा का अन्तिम भावक धर्म की आराधना की होती अने पछी आलोचित प्रतिकाश करने से प्रभावि प्रस भवे कृतो का अन्तिम भावक धर्म तेजे सुखभेदेन पर्याप्तमा दिव्य देवर्षि विमानादि दिव्य देवपुति देवानुमाव कान्ति अने दिव्य देवानुमाव देवप्रभाव उपार्जित कर्त्त है भोग्या है स्वाधीन जनान्ता है अने तने आत्मज्ञान दावाधी भावी शते तने उपभोग्य कर्त्त है टीका १६५ है पांच प्रकार की पर्याप्तियों के स्वरूप पहिले ८३ मा सूत्रमा प्रगट किया गया था ॥ १६५॥

मूलम्—सूरियाभस्स णं भंते । देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता ? गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइ ठिई पणत्ता । से णं भंते । सूरियाभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ ? कहि उववज्जिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलाणि भवन्ति तं जहा—अट्ठाइं दित्ताइ विउलाइ वित्थिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइं बहुधणबहुजायरूवरययाइ आओगपओगसंपउत्ताइ विच्छड्डियपउरभत्तपाणाइं बहुदासीदासगोमहिसगवेलगणभूयाइ बहुजणस्स अपरिभूयाइ, तत्थ अन्नयरम्मि कुलम्मि पुत्तत्ताए पच्चायाइस्सइ ॥ सू० १६६ ॥

छाया—सूर्याभस्य खलु भदन्त ! देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता । स खलु भदन्त ! सूर्याभो देव तस्माद्देवलोकाद् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं चयं त्ववच्चा कुत्र

सूरियाभस्स णं भंते-? देवस्स केव यं कालं ठिई पणत्ता—” इत्यादि

मूलार्थ—प्रश्न—“सूरियाभस्स णं भंते-? देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता—” हे भदन्त-? सूर्याभदेव की स्थिति कितनी कही गई है—३ उत्तर—“गोयमा-? चत्तारि पलिओवमाइ ठिई पणत्ता—” हे गौतम-? चार पल्योपम की सूर्याभदेव की स्थिति कही गई है । प्रश्न—“से ण भंते-? सूर्याभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ कहि उ वज्जिहिइ—” हे भदन्त-? वह सूर्याभ देव उस देवलोकसे आयु क्षय-

“सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” इत्यादि.

मूलार्थ—प्रश्न “सूरियाभ स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” हे भदन्त ! सूर्याभदेवनी स्थिति डेटली कडेवाभा आवी छे ? उत्तर—“गोयमा ? चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता—” हे गौतम ! सूर्याभदेवनी स्थिति चारपल्योपम डेटली कडेवाभा आवी छे प्रश्न—“से ण भंते ! सूरियामे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ कहि उवज्जिहिइ—” हे भदन्त ! ते सूर्याभदेव ते देवलोकथी आयुक्षय-लवक्षय



प्राणपर्याप्त्या४, मापाननपर्याप्त्या५, तत् एव स्तु मो ? सूर्यामेन दवेन दिव्या दवर्द्धि, दिव्या देवपुति दिव्यो देवानुभाष लम्ब प्राण अमिम मन्वागतः ॥ सू० १६५॥

टीका—‘तए ण स सूरियामे दवे’ इत्यादि—ततः स्तु स सूर्यामो दव अधुनोपपन्नक एव—सत्कालोत्पन्नक एव मन पञ्चविधया पर्याप्त्या पर्याप्तिभाव गच्छति पर्याप्तिपञ्चकस्य १४ः पूर्वं श्रयस्तीतितमयत्रे गतः । एवम् अनेन फारपेन प्रदेष्टिराजमव आम्नि कभावपूर्वकभावकधर्मापराधनरूपेण आलोचितप्रतिलो-  
रसमाधिमग्नादिरूपेण च कारणेन यो—ह गौतम ! सूर्यामदेवेन इय दिव्या देवर्द्धि—विमानादिरूपा दिव्या देवपुति—सुरीरामणादिकान्तिः, दिव्यो देवा नुभाव—उषप्रभावः, लम्ब उपाधि, प्राप्त—स्वा चीमूतः अनेनमन्वागतः—मोग्यत्वेन सम् गमिसुखमागत ॥ सू० १६५॥

पञ्चशीण, मरीरपञ्चशीण इदि पञ्चशीण, आण णपञ्चशीण, मासमणरञ्च-  
शीण—‘य पांच पर्याप्ति । इस प्र त से है—आहारपर्याप्ति-सुरीरपर्याप्त—इन्द्र पर्याप्ति-श्वासो-  
राम पर्याप्ति और-मापा मन पर्याप्ति, ‘त एव स्तु मो ? सूरियामेन दवेन दिव्या दवर्द्धि—दिव्या दवर्द्धि दिव्ये द णुमावे-ल्लदे पचे अमि मममागत—’ इस तरह से इस सूर्यामत्त्वेन प्रदष्टी राजा के मन्त्रमें अन्तिम मन्त्रपूर्वक भावक धर्म की आराधना की थी फिर आलोचन प्रतिक्रिया होकर यह समाधि प्राप्त हुआ था इन्हीं सब कारणों से इमन सूर्यामदेव के पर्याप्त म गृहदि-दवर्द्धि-विमानादि दिव्य देवपुति सुरीरामणादि कान्ति और दिव्यप्राप्तनुभाव-क्षेपप्रमाण उपाधि ॥ किया है प्राप्त किया है अ ने अर्पित किया है और उस योग्यरूप होने के कारण अच्छी तरह से उस मोगा है—

टीका—‘एवम्’ है पांच प्रकार की पर्याप्तिया का योग्य पहिल ८३-वें सूत्रमें प्रगट किया गया है ॥ सू० १६५॥

पञ्चशीण इदिपञ्चशीण, आमपाण पञ्चशीण, मासमणपञ्चशीण’ ते पांच पर्याप्तिभ्यो आ प्रभावे छि—आहार पर्याप्ति, मरीर पर्याप्ति इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासो-  
रामपर्याप्ति अने मापा मन पर्याप्ति ‘त एव स्तु मो ? सूरियामेन दवेन दिव्या दवर्द्धि—दिव्या दवर्द्धि दिव्ये द णुमावे-ल्लदे पचे अमि मम मागत—’ आ प्रभावे ने सूर्यामदेव प्रदष्टी राजना अवभा आसितक भावपद ६ भावक धर्मों की आराधना की दनी अने पछी आशयित प्रतिक्रिया अने ते मन्त्राधि प्राप्त धर्मों आ तथा आराधनी नेधु सूर्यामदेवना पञ्चवभा दिव्य देवर्द्धि विमानादि दिव्यदेवपुति सुरीरामणादि कान्ति अने दिव्य देवानुभाव इवप्रभाव उपाधि ॥ कर्त्त छि, भेन या छि स्थापित जनाभ्या छि अने तेन पञ्चवभा द्वापाधी भावो शते तने उपपन्न भयो छि  
टीका १७० छि पांच प्रकारकी पर्याप्तियों के रूप प्रदेष्टा ८३ भा सूत्रमा १११५५॥

टीका—“सूर्याभस्य णं” इत्यादि—गौतमस्वामी पृच्छति—हे भदन्त ! सूर्याभस्य खलु देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? । भगवानाह—हे गौतम ! सूर्याभस्य देवस्य सौधर्मदेवल्लोके चत्वारि पल्योपमानि—चतुःपल्योपमपरिगता स्थितिः प्रज्ञप्ता । गौतमस्वामी प्राह—हे भदन्त ! स खलु सूर्याभो देवस्तरमाह देवलोकात् आयुःक्षयेण—देवसम्बन्ध्यायुः कर्गदलिकनिर्जरणेन, भवक्षयेण देवभवाद्यादिकर्मनिर्जरणेन स्थिति क्षयेण—सौधर्मे कल्पे सूर्याभे विमाने देवानां या दशसागरोपमस्थितिः प्रोक्ता तत्क्षयेण, अनन्तरं—त पश्चात् चयं—देवशरीरं त्यक्त्वा कुत्र कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोत्पत्स्यते ? भगवानाह—हे गौतम ! स सूर्याभदेवजीवः सौधर्मदेवल्लोकाच्च्युत्वा महाविदेहे वर्षे यानि इमानि—वक्ष्यमाणानि कुलानि भवन्ति, तद्यथा तान्येव दर्शयति आढयानि—समृद्धानि, दीप्तानि—प्रशंसनीयं वादुज्ज्व-

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रभु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त-? सूर्याभदेव की कितने काल की स्थिति कही गई है—३ इसके उत्तर में प्रभुने उन से कहा—गौतम-? सूर्याभदेवकी चा पल्योपम की स्थिति सौधर्म देवलोक में कही गई है। उसके बाद गौतमने पुनः प्रभु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त-? जब सूर्याभदेव के देव सम्बन्धी आयुर्वर्म के दलिको की निर्जरा हो जावेगी, देव भस्वरूप गत्यादि कर्म की निर्जरा हो जावेगी, तथा स्थितिक्षय-सौधर्म कल्प में सूर्याभविमान में कितनेक देवों की चार पल्योपम की स्थिति रही गई है, उनमें—सूर्याभदेव की भी चार पल्योपम की स्थिति वह भी जवक्षपित हो जावेगी तब वह देव शरीर से चक्कर कहां जावेगा—३ कहां उत्पन्न होगा—३ इसके उत्तर में प्रभुने कहा—हे गौतम ! सूर्याभदेव जीव सौधर्म देवलोक से चक्कर महाविदेह क्षेत्र में जो ये कुल हैं कि जो—आढय—समृद्ध है, दीप्त

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रभुने आगतने प्रश्न किये थे हे भदन्त ! सूर्याभदेवकी स्थिति कितना कालकी कहेवाय छे ? जेना उत्तरमा प्रभुने कहुं—गौतम ! सौधर्म देवलोकमा सूर्याभदेवकी स्थिति चार पल्योपम जेटली कहेवाया आपी छे। तारपछी गौतमे इरी प्रभुने प्रश्न किये थे हे भदन्त ! ज्यारे सूर्याभदेवना देव सम्बन्धी आयुर्वर्मना दलिकोनी निर्जरा थध जशे लवक्षय—देवलवर्ष गत्यादि कर्मनी निर्जरा थध जशे, तेमज स्थितिक्षय सौधर्म कल्पमा सूर्याभविमानमा केटलाक देवानी चारपल्योपम जेटली स्थितिमा कहेवाय छे, तेमा सूर्याभदेवकी पणु चारपल्योपम जेटली स्थिति कहेवाय छे ते पणु ज्यारे क्षपीत थध जशे, त्यारे तेदेव शरीर त्यज्जने क्या जशे ? क्या उत्पन्न थशे ? जेना जवाणमा प्रभुने कहुं छे गौतम ! सूर्याभदेवने एव सौ धर्म देव लोकथी ज्यीने महाविदेह क्षेत्रमा जे कुलो आढय—समृद्ध छे,

गमिष्यमि ? कुत्रोत्पत्स्यत ? महाविदहे वप यानि इमानि कुलानि मय न  
तथा-आइयानि दीप्तानि विपुलानि विस्तीर्णविपुलमयनवा नामनयानवाहनानि  
बहुधन-बहुजतरूपरजतानि आयोगप्रयोगस युक्तानि विच्छिद्यितभ्रुरमक्तपानानि  
महुत्सीदासगोमहिषगवत्कम्पभूतानि बहुजनस्य अपरिभूतानि तत्र अय मस्मिन्  
कुले पुत्रिया यास्यति ॥ सू० १६६ ॥

मक्षय, एव-चित्तिवृत्त क बाद अनन्तर देव शरीर को छोड़कर वहाँ जाये  
गा ३ वहाँ उत्पन्न होवेगा-१३ उत्तर-“गोयमा ? महाविदह गस जाणि इमाणि  
कुलानि मयति, न अहा-अहो दिवाह विउलाहि विरिथिन्नविउलमयनसय  
नामगजामवाहणाः बहुधनबहुजतरूपरययाः-” है गौतम-? महारि-ह  
क्षत्र में जो य कुल है, कि जो-आइय है-दीप्त है-विपुल है, विस्तीर्ण-  
विपुल मयनवाल है विस्तीर्ण विपुलमयनासन तल है विस्तीर्ण विपुल यान-  
वाहनवाल है, बहुधनवाल है बहुतग जानरप तले है बहुजतवाल है ‘अ  
ओगप्रयोगसपउत्ताह विच्छिद्यिपउरमक्त ॥’ बहु दासीदास गो महिस  
गवत्कम्पभूयाः, बहुजनस अपरिभूयाः- आयोग प्रयोग जिन स वगए  
ह त रहत है, दीनजनों के लिये वहाँ स प्रचु मात्रा में मक्तपान प्राप्त होना  
है, जिन के पास दासी-दाम अनेक सग १ में संग करन के लिये उपस्थित  
रहना है, प्रचु मात्रा में अहाँ गो-महिष, एव-अहा मय अदि बहु कायम  
धन रहत है, तथा-कोईमी उन जिनका सिस्का नहीं कर सकता है,  
‘तस्य अन्नयमि सि कुलमि पुत्ताण पन्नायाइस-’ उन कुल म से किसी  
एक कुल में पुत्ररूप से उत्पन्न होगा ॥

अने निक्षय पछी देव शरीरने त्यज्जने क्या जये ? क्या उत्पन्न थये ? उत्तर  
‘‘गोयमा ! महाविदह गस जाणि माणि कुलानि मयति, न अहा-अहो दिवाह  
विउलाहि विरिथिन्न विउलमयनसयणासणजाणवाहणाः बहुधनबहुजतरूपरययाः’’  
हे गौतम ! महाविदह शत्रुभा ने कुल छ-ने आइय छ दीप्त छ विपुल छ, विस्तीर्ण  
अवलवाण ॥ विस्तीर्ण विपुल शयनासनवाणओ छ विस्तीर्ण विपुल यान-वाहन  
वाणओ छ बहुधन मयन छ बहुतर जतरपणओ छ बहुजतवाणओ छ  
आओगप्रयोगसपउत्ताह विच्छिद्यिपउरमक्तपणाह बहुदासीदामगा  
महिसगवत्कम्पभूयाः बहुजनस अपरिभूयाः’’ तेमनाथी आयेअ अयेअ  
व्यापृत थतो रहे छ दीनजनों माटे कथायां प्रचुर मात्राभां कस्त-भन प्राप्त थता  
उत्तर ॥ १७०मी पासो दासीदास वली मन्नाभां सेवा-आकरी करवा उपस्थित रहे  
छ कथा पुत्रग मात्राभां आय मदि । अन अन्ध, भेय वजेइ पशुओ विद्यमान रहे  
is तेमज कांछ पण भाजस १७०मी अन्धइ कदी थकतो नथी. ‘‘तस्य अन्नयमि  
कुलमि पुत्ताण पन्नायाइस’’ ते कुलभांथी ते कांछण्य ओक कुलभां पुत्ररूपे उत्पन्न थये.

टीका—“सूर्याभम्म णं” इत्यादि—गौतमस्वामी पृच्छति—हे भदन्त ! सूर्याभस्य खलु देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? । भगवानाह—हे गौतम ! सूर्याभस्य देवस्य सौधर्मदेवल्लोके चत्वारि पल्योपमानि—चतुःपल्योपमपरिमिता स्थितिः प्रज्ञप्ता । गौतमस्वामी प्राह—हे भदन्त ! स खलु सूर्याभो देवस्तरमाद् देवल्लोकात् आयुःक्षयेण—देवसंघन्—आयुः कर्मदलिकनिर्जरणं, भवक्षयेण देवभग-  
ग-आदिकर्मनिर्जरणेन स्थिति क्षयेण—सौधर्मे कल्पे सूर्याभे विमाने देवानां या दश-  
सागरोपमस्थितिः प्रोक्ता तत्क्षयेण, अन्तरन्त पश्चाद् चयं—देवगरीरं त्य-  
क्त्वा कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोत्पत्स्यते ? भगवानाह—हे गौतम ! स सूर्याभदेवजीवः  
सौधर्मदेवल्लोकाच्च्युत्वा महाविदेहे वर्षे यानि इमानि-वक्ष्यमाणानि कुलानि  
भवन्ति, तद्यथा तान्येव दर्शयति आढयानि-समृद्धानि, दीप्तानि-प्रगंसनीयं वादुज्ज-

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रभु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त-? सूर्याभदेव की कितने काल की स्थिति कही गई है—३ इसके उत्तर में प्रभुने उन से कहा—गौतम-? सूर्याभदेवकी चा पल्योपम की स्थिति सौधर्म देवल्लोक में कही गई है। उसके बाद गौतमने पुनः प्रभु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त-? जब सूर्याभदेव के देव सम्बन्धी आयुर्म के दलिकों की निर्जरा हो जावेगी, देव भ-रूप गत्यादि कर्म की निर्जरा हो जावेगी, तथा स्थितिक्षय-सौधर्म कल्प में सूर्याभविमान में कितनेक देवों की चार पल्योपम की स्थिति नही गई है, उनमें—सूर्याभदेव की भी चार पल्योपम की स्थिति वह भी जब क्षपित हो जावेगी तब वह देव गरीर से चक्कर कहा जावेगा—३ कहा उत्पन्न होगा—३ इसके उत्तर में प्रभुने कहा—हे गौतम ? सूर्याभदेव जीव सौधर्म देवल्लोक से चक्कर महाविदेह क्षेत्र में जो ये कुल है कि जो—आढय—समृद्ध है, दीप्त

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रभुने आगतने प्रश्न किये के हैं लक्षित । सूर्याभ देवनी स्थिति केटला कालनी कड़ेवाय छे ? अने उत्तरमा प्रभुने कहुं—गौतम ! सौ धर्म देवल्लोकमा सूर्याभदेवनी स्थिति आर पल्योपम जेटली कड़ेवामा आवी छे, त्थारपछी गौतमे इरी प्रभुने प्रश्न किये के हैं लक्षित । ज्यारे सूर्याभदेवना देव सम्बन्धी आयुर्कर्मना दलिकोनी निर्जरा थछ जशे लवक्षय—देवलवक्षय गत्यादि कर्मनी निर्जरा थछ जशे, तेमज स्थितिक्षय सौधर्म कल्पमा सूर्याभविमानमा केटलाक देवोनी आरपल्योपम जेटली स्थितिमा कड़ेवाय छे, तेमा सूर्याभदेवनी पणु आरपल्योपम जेटली स्थिति कड़ेवाय छे ते पणु ज्यारे क्षपीत थछ जशे, त्थारे तेदेव शरीर त्थएने क्या जशे ? क्या उत्पन्न थशे ? अने जवाणमा प्रभुने कहुं छे गौतम ! सूर्याभदेवने एव सौ धर्म देव लोकथी गवीने महाविदेह क्षेत्रमा जे कुलो आढय—समृद्ध छे,

गमिष्यन्ति ? कुशोत्पत्त्यसे ? महाविन्दहे वष यानि इमानि कुलानि मय त  
तपसा-आश्रयानि वीर्यानि विपुलानि विस्तीर्णविपुलमवनश्र नामनयानवाहनानि  
बहुधन-बहुजातरूपरजतानि आयोग-योगस युक्तानि विच्छिदित-चुरमक्तपानानि  
बहुदासीनामगोमहिषगवेलक्ष्यभूतानि बहुजनस्य अपरिभूतानि तत्र अ य मस्मिन्  
कुले पुत्र-या यास्यति ॥ ४० १६६ ॥

म क्षय, एवं-विपत्तिक्षय के घात अनन्तर देव शरीर को छोड़कर कहां जावे-  
गा ३ कहां उत्पन्न होवेगा ? ३ उत्तर-“गोयमा ? महाविन्दहे वासे जाणि इमाणि  
कुलानि मवति, त जहा-अर्द्धाद्विद्वाद् विडलाहि विस्तिन्नविडलमवसय  
णामगजाणवाहणा बहुधनबहुजातरूपरययाः-” १ है गौतम-? महाविन्दहे  
धन में जो य कुल है, कि जो-आश्रय है-वीर्य है-विपुल है, विस्तीर्ण-  
विपुल मवनवाल है विस्तीर्ण विपुलअयनामन ले है विस्तीर्ण विपुल यान-  
वाहनवाल है, बहुधनवाले है बहुतर-तरुण ले है बहुजनवाले है ‘अ  
ओगपओगमपउवाह विच्छिदियपउरमस ॥’ बहु दासीदास गो महिस  
गवेलक्ष्यभूयाः, बहुजनस अपरिभूयाः- आ योग प्रयोग जिन से प्रगुण  
ह त रहत है, वीरजनों के लिये उहां से प्रचु मात्रा में भक्तपान प्राप्त होता  
ह, जिन के पास दासी-दास अनक संग ॥ में संग करने के लिये उपस्थित  
रहता है, प्रचु मात्रा में जहां गो-महिष, एवं-जरा मय अदि-पशु कायम  
वने रहत है, तथा-कोईभी जन जिनका तिरस्का नहीं कर सकता है,  
‘तत्त्व अन्नयरमि कुलमि पुससाण पन्नायाःस-’ उन कुलों में से किसी  
एक कुल में पुत्ररूप से उत्पन्न होगा ॥

अने निक्षय पछी देव शरीरने त्यलने कहा कथे ? कहा उत्पन्न कथे ? उत्तर  
‘गोयमा ! महाविन्दहे वासे जाणि इमाणि कुलानि मवति, त जहा-अर्द्धाद्विद्वाद् विडलाहि  
विस्तिन्नविडलमवसयणामगजाणवाहणा बहुधनबहुजातरूपरययाः’  
१ गौतम ! महाविन्दहे क्षेत्रमा ने कुला ३-१ आश्रय ३ वीर्य ३ विपुल ३ विस्तीर्ण  
मवनवाणा ३ विस्तीर्ण विपुल अयनामनवाणा ३ विस्तीर्ण विपुल यान-वाहन  
वाणा ३ बहुधन मवन ३ बहुतर अवरुपवाणा ३ बहुजनवाणा ३  
आओगपओगमपउवाह विच्छिदियपउरमसपाणा बहुदासीदासगा  
महिसगवेलक्ष्यभूयाः बहुजनस अपरिभूयाः’ तमनाथी अथेअ प्रयोग  
वापुत कथे ३ देव जनो आटे कथाधी प्रभु आत्राभा कथत-पान प्राप्त कना  
दे ३ नेमनी भसे कथीकस पत्नी कथाभा सेना-आकरी करवा उपस्थित ३ दे  
३ कथा पुत्राण आत्राभा गाय भक्ति जन कथ्य सेप कथे प्रभुको विवमान रहे  
३ तेमक कथ पण भावस नेमने अन्तर करी कथेतो नथी. ‘तत्त्व अन्नयरमि  
कुलमि पुससाण पन्नायाःस’ ते कुलाभां ते कथ पण कथे कुलमा पुत्ररूपे उत्पन्न कथे.

टीका—“सूर्याभस्स जं” इत्यादि—गौतमस्वामी पृच्छति—हे भदन्त ! सूर्याभस्य खलु देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? । भगवानाह—हे गौतम ! सूर्याभस्य देवस्य सौधर्मदेवल्लोके चत्वारि पल्लोपमानि—चतुःपल्लोपमपरिगिता स्थितिः प्रज्ञप्ता । गौतमस्वामी प्राह—हे भदन्त ! स खलु सूर्याभो देवस्तरमाद् देवल्लोकात् आयुःक्षयेण—देवसम्बन्ध्यायुः कर्मदलिकनिर्जरणेन, भवक्षयेण देवभग-गत्यादिकर्मनिर्जरणेन स्थिति क्षयेण—सौधर्मे कल्पे सूर्याभे विमाने देवानां यां दश-सागरोपमस्थितिः प्रोक्ता तत्क्षयेण, अनन्तरं—तपश्चात् चयं—देवशरीरं त्यक्त्वा कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोत्पत्स्यते ? भगवानाह—हे गौतम ! स सूर्याभदेवजीवः सौधर्मदेवल्लोकाच्च्युत्वा महाविदेहे वर्षे यानि इमानि-वक्ष्यमाणानि कुलानि भवन्ति, तद्यथा तान्येव दर्शयति आढ्यानि-समृद्धानि, दीप्तानि-प्रशंसनीयं वादुज्ज्व-

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रभु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त—? सूर्याभदेव की कितने काल की स्थिति कही गई है—३ इसके उत्तर में प्रभुने उन से वह—गौतम—? सूर्याभदेवकी चा पल्लोपम की स्थिति सौधर्म देवल्लोक में कही गई है । उसके बाद गौतमने पुनः प्रभु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त—? जब सूर्याभदेव के देव सम्बन्धी आयुर्कर्म के दलिकों की निर्जरा हो जावेगी, देव भस्वरूप गत्यादि कर्म की निर्जरा हो जावेगी, तथा स्थितिक्षय—सौधर्म कल्प में सूर्याभविमान में कितनेक देवों की चार पल्लोपम की स्थिति रही गई है, उनमें—सूर्याभदेव की भी चार पल्लोपम की स्थिति वह भी जब क्षयित हो जावेगी तब वह देव शरीर से चक्कर कहां जावेगा—३ कहां उत्पन्न होगा—३ इसके उत्तर में प्रभुने कहा—हे गौतम ! सूर्याभदेव जीव सौधर्म देवल्लोक से चक्कर महाविदेह क्षेत्र में जो ये कुल हैं कि जो—आढ्य—समृद्ध है, दीप्त

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रभुने पूछा जितने प्रश्न किये हैं वे सब हैं । सूर्याभदेवकी स्थिति कितना कालकी कहेवाय छ ? जेना उत्तरमा प्रभुने कहुं—गौतम ! सौधर्म देवल्लोकमा सूर्याभदेवकी स्थिति चार पल्लोपम जेटली कहेवामा आनी छ । तयारपछी गौतमने दूसरी प्रभुने प्रश्न किये हैं वे सब हैं । जयारे सूर्याभदेवना देव सम्बन्धी आयुर्कर्मना दलिकोनी निर्जरा थछ जशे लवक्षय—देवल्लोपम गत्यादि कर्मनी निर्जरा थछ जशे, तेमज स्थितिक्षय सौधर्म कल्पमा सूर्याभविमानमा केटलाक देवोनी चारपल्लोपम जेटली स्थितिमा कहेवाय छ, तेमा सूर्याभदेवकी पणु आयुर्कल्पमा जेटली स्थिति कहेवाय छ ते पणु जयारे क्षयित थछ जशे, तयारे तेदेव शरीर त्यज्जने क्या जशे ? क्या उत्पन्न थशे ? जेना जवाणमा प्रभुने कहुं हे गौतम ! सूर्याभदेवोना एव सौधर्म देव लोकाथी जयीने महाविदेह क्षेत्रमा जे कुलो आढ्य—समृद्ध छ,

તાનિ વિપુલાનિ પરિવાગદિના વિદ્યાલાનિ, તથા વિગતીર્ણવિપુલમવનશ્ચયનાઽસન  
 યાન્વાહનાનિ, તત્ર વિસ્તીર્ણાનિશ્ચેષ્ણ મહાન્તિ, વિપુલાનિ-સમ્યયા પ્રચુરાણિ  
 મધનાનિ-ગૃહાણિ શ્ચયનાનિ-શ્ચયનીયાનિ, આસનાનિ પીઠફલકાદીનિ, યાનાનિ-સ્વ  
 શ્ચક્રાદીનિ, વાહનાનિ ગચ્ચાયાદીનિ ચપુ (કુલેપુ) તાનિ, તથા મહુધનમહુજાત  
 રૂપરજ્જતાનિ-તત્ર-મહુનિ-પ્રચુરાણિ મનાનિ-ગરિમ ધરિમ-મેય-પરિચ્છેદ્યરૂપાણિ,  
 મહુનિ-પ્રચુરાણિ જ્ઞાતરૂપાણિ-સુવળાનિ રજ્જતાનિ-રૂપ્યાણિ યેષુ તાનિ, તથા-  
 આયોગપ્રયોગસપ્રયુક્તાનિ, તત્ર આયોગસ્ય-અર્થલાભ ય પ્રયોગા ઉપાયા, સપ્રુક્તા-  
 વ્યાપ્તિ યૈ સ્તાનિ, તથા-વિચ્છર્દિતપ્રચુરમક્તપાનાનિ વિચ્છર્દિ તાનિ-ઉદારપુદ્ગલા  
 મહુપાષ્ણેનાવશિષ્ટાનિ અથવા-વિ-ચ્છર્દિ-તાનિ-સ્વક્તાનિ દીનેમ્યો દક્તાનિ પ્રચુરાણિ  
 મહુનિ મક્તપાનાનિ યસ્તાનિ, તથા મહુદાર્સદાસગોમહિપમધેલકપ્રમૂ તિ-તત્ર  
 મહુવો દાસી-દામા પ્રસિદ્ધાઃ, પ્રમૂ તિ-પ્રચુરા ગોમહિપમધેલકા-તત્ર ગો-  
 મહિપઃ પ્રસિદ્ધા ગવલ્લકા-અજ્ઞા મપાષ યપા તાનિ, તથા-મહુજાત્ય અપરિમૂ  
 તાનિ-અપરિમક્તીયાનિ યનાદશાનિ તાનિ કુલાનિ સતિ તત્ર-તેષાં કુલેપુ મધ્ય

પ્રશસનીય હોને સે ઉજ્જ્વલ છે, † પુલ-પરિવાર આદિ મના કી અપેક્ષા વિદ્યાલ  
 છે, ક્ષત્ર કી અપેક્ષા વિ તીર્ણ, ણ્વ સ્વ્યા કી અપેક્ષા પ્રચુર ગૃહો થાલ છે,  
 વિસ્તીર્ણ વિપુલ જ્ઞાન શ્ચયા-સ્વ-આસના થાલે છે, પીઠ-ફલક દિાલે છે, સ્વ  
 શ્ચક્ર-આદિરૂપ યાનો થાલે છે-સ્વ-ગત્ર અશ્વાદિરૂપ વાહનો થાલે છે, તથા-પ્રચુર  
 ગરિમ ધરિમ મેય પરિચ્છેદ્યરૂપ મનથાલે છે, પ્રચુર જ્ઞાતરૂપ-સુવળથાલે છે, પ્રચુર  
 રમત-વાન્દીથાલે છે, તથા અર્થ કલામરૂપ પ્રયોગ જિનસે ક્ષાપૂત હુવે છે ઝાર  
 શુદ્ધિ સે જિનસે મહુતસા અન્નપાન મનથાયા ઝાતા છે, ઝાર-જ્ઞાને કે થાદ  
 અવશિષ્ટ થથા છે. અર્થાત્-દીનો કો દેને ક ળિયે જિનસે પ્રચુર અન્ન-પાન  
 તૈયાર ક્રિયા ઝાતા છે, જિસ મેં મહુન દાસી-ગત છે, મહુતરી ગો મહિપ ઝાર

હીસ પ્રશસનીય ક્રેવાથી ઉજ્જ્વળ છે, વિપુલ-પરિવાર વજેરના હોદ્દોની દષ્ટિએ વિદ્યાલ  
 છે. ક્ષત્રની અપેક્ષાએ વિસ્તીર્ણ છે, સમ્યાની દષ્ટિએ પ્રચુર મહોવાળા છે, વિસ્તાર  
 વિપુલ શયન શમ્યા અને આસના વાળા છે પીઠ ફલક વજેરવાળા છે અને અર્થ  
 વજેરે રૂપ થાદનો વાળા છે તેમજ પ્રચુર ગરિમ ધરિમ મેય પરિચ્છેદ્યરૂપ મનથાળા  
 છે પ્રચુર જ્ઞાતરૂપ-સુવળવાળા છે પ્રચુર રમત-વાન્દીવાળા છે, તથા અર્થલાભરૂપ  
 પ્રયોગ જેમનાથી ક્ષાપૂત થયેલા છે, ઉદાર શુદ્ધિથી જેઓ પુણ્ય અન્નપાન મનાથ  
 ઠાવે છે અને જમ્યા પછી પણ ત્યાં અવશિષ્ટ રહે છે એટલે કે અસંખ્યને  
 આપવા માટે જેઓ પ્રચુર અન્નપાન તેમજ કથાવધાવે છે જેમની થાસે ધર્મ થાસી

अन्यतममिन्-करिमंश्चिदेकस्मिन् कुले पुत्रनया-पुत्रत्वेन पुत्रो भूत्वेत्यर्थः प्रत्या  
यायति प्रत्यागमिष्यति पुनर्मानुष्य भवे जन्म ग्रहीष्यतीत्यर्थः ॥सू० १६६॥

मूलम्—तए णं तसि दारगसि गव्वमगयसि चेव समानंसि  
अम्मापिउणं धम्मसे दढा पइण्णा भविस्सइ। तए णं तस्स दारगस्स  
माया नवण्ह मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अट्ठट्ठमाणं राइंदियाणं वि-  
इकंताणं सुकुमालपाणिपाय अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लवख-  
णवज्जणगुणोववेयं माण्माणप्पमाणपाडिपुण्णसुजायस्सव्वगसुदरंगं  
ससिसोम्माकारं कत पियदंरुणं सुरूवं दारय पयाहिस ॥सू० १६७॥

छाया—ततः खलु तस्मिन् दारके गर्भगते एव सति अम्मापित्रोः धर्मे  
दढा प्रतिज्ञा भविष्यति । ततः खलु तस्य दारकस्य माता नवसु मासेषु बहुप्रति-  
पूर्णेपु अर्धाष्टमेषु रात्रिदिद्वेषु व्यतिद्रा तेषु सुकुमालपाणिपादम् अहीनप्रतिपूर्णा-  
गवेलक अजा-मेप है, एव-जो अनेक ज्जनेा द्वारा भी अपरिभूत है ऐसे कुलो  
में से किसी एक कुल में पुत्ररूप से-उ प न होगा. ॥सू० १६६॥

“तएणं तंसि दारगंसि गव्वमगयंसि चेव समानंसि” इत्यादि

मूलार्थ—“तएणं तंसि दारगंसि गव्वमगयंसि चेव समानंसि-” जब वह  
दारक गर्भ में आवेगा-तब इस को गर्भ में आते ही-“अम्मापिउण धम्मसे दढा  
पइण्णा भविस्सइ-” माता-पिताको-धर्म में दढ प्रतिज्ञा होगी “तएणं तस्स  
दारगस माया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अट्ठट्ठमाणं राइंदियाणं विइ-  
कंताणं सुकुमालपाणिपायं-” नौ मास साढे सात दिन जब पूरा हो जावेगे  
तब उस दारक की माता सुकुमार हाथ-लग वाले-“अहीणपडिपुण्णपंचिंदिय-

दासे छे, धाथी गाथे तेमज भडिप, गवेलक अन्न, मेप छे अने जे धाथु भाणुसे  
पडे पणु अपरिभूतछे जेवा कुलोभाथी ते कोछ जेक पुणभा पुत्ररूपे जन्म पावसे ॥सू० १६६॥

“त एणं तंसि दारगंसि गव्वमगयसि चेव समानंसि इत्यादि ।

मूलार्थ—“त एणं तंसि दारगंसि गव्वमगयसि चेव समानंसि” ज्यारे ते  
दारक गर्भमा आवसे-त्यारे तेने गर्भमा आवता ज “अम्मापिउणं धम्मसे दढा  
पइण्णा भाविस्सइ” मातापिताने धर्ममा दढ प्रतिज्ञा थसे “तएणं तस्स दारग-  
स माया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अट्ठट्ठमाणं राइंदियाणं विइकंताणं  
सुकुमालपाणिपायं” नव मास अने साढा सात दिवसे ज्यारे पूरा थछ जसे  
त्यारे ते दारकनी माता सुकुमार हाथपगवाणा “अहीणपडिपुण्णपंचिंदिय सरीर”



પન્ચેન્દ્રિયશરીર લક્ષણમ્બજનગુણોપવર્તે માનોન્માનપ્રમાણપ્રતિપૂર્ન સુજ્ઞાતસર્વાક્ક  
સુન્દરાક્ક શ્વિસૌમ્યાડ્ઙ્કાર કાન્તં પ્રિયદર્શનમુરુપ દારક પ્રજનિષ્પતે ॥૪૦ ૧૬૭ા

ટીકા—“તથ ણ તુસિ દારગસિ” શ્વિયાદિ-ઙ્કારુપા નિગદસિદ્ધા ॥૪ ૧૬૭

મૂલમ્—તથ ણં તસ્સ દારગસ્સ અમ્મો પિયગે પઠ્ઠમે દિવસે

ઠિદ્ધવહિય કરેહિતિ, તદ્દયદિવસે ચંદસુરદમાવણિય કરિસ્સતિ, છ દ્વે  
દિવસે જાગરિય જાગરિસ્સતિ, એકારસમં દિવસે શીઢકતે સપત્તે  
ધારસાહે દિવસે ણિલ્લિવેત્તે અસુદ્ધજાયકમ્મકરણે ચોક્કલે સમજ્ઞિઓવ  
લિત્તે વિઝલ અસણપાણમ્વાડમસાઈમ ઉવક્કલ્હાવિસ્સતિ, મિત્ત  
ણાદ્ધણિયગસયણસવધિપરિજણ આમતેત્તા તઓ પઠ્ઠા પહાયા  
કયથલિકમ્મા કયકોઉયમગલપાયચ્છિત્તા સુદ્ધપ્પાવેસાઈ મગાદ્ધાઈ  
વત્થાઈ પવરપરિહિયા અપ્પમહ્ગધાભરણાલ્લકિત્તસરોરા ભોયણમદ્ધવસિ  
સુદ્ધાસણવરગયા તેણં મિત્તણાદ્ધણિયગસયણસવધિપરિજણેણ સદ્ધિ  
વિઝલં અસણ પાણં સ્વાઈમ સાઈમ આસાપમાણા વિસાપમાણા પરિ  
ભુજેમાણા પરિભાપમાણા એવ ચેવ ણ વિહરિસ્સતિ, જિમિયમુત્તત

સરીર ' અહીન પરિપૂર્ણ પાંચો ઇન્દ્રિયો સ દુક્ત શરીર તે 'લક્ષણમ્બજન  
ગુણોપવય, માણુમામપ્પમાણપટ્ટિપુણસુજ્ઞાયસમ્બગસુદરગ સત્તિસૌમાકાર  
કત પિયદસર્ણ મુરુપ દારક પમાદિસિ-” લક્ષણમ્બજન ગુણો વાલ, માનોન્માન  
પ્રમાણ પ્રતિપૂર્ણ સુજ્ઞાત સર્વાક્ક સુન્દર શરીરમાલ્લ કન્ઢમા ફ ડંસ સૌમ્ય આગર  
વાલ, કાર દિયદર્શનપુરુષ, ણ્ય-મુરુપ સમ્પન્ન વસં, પુત્ર કો ક મ દેવી  
ટીકાય-મ્પદ હે ॥૪૦ ૧૬૭ા

અહીન પરિપૂર્ણ પાંચે ઇન્દ્રિયોથી સુદન શરીર વાળા “લક્ષણમ્બજનગુણોપવય,  
માણુમામપ્પમાણપટ્ટિપુણસુજ્ઞાયસમ્બગસુદરગ સત્તિસૌમાકાર કત  
પિયદમણ મુરુપ દારક પમાદિસિ” લક્ષણમ્બજન ગુણોવાળા, માનો માન  
પ્રમાણ પ્રતિપૂર્ણ સુજ્ઞાત સર્વાક્ક સુદર શરીરવાળા થ ડં વેવા શીઢ આકારવાળા  
કાત-પ્રિયદર્શન સુદન અને મુરુપ સમ્પન્ન વેવા પુત્રને જ મ આપશે

ટીકાય ૨૫૯ ॥ ૪૦ ૧૬૭ા

रागयावि य णं समाणा आयता चोवखा परमसुइभूयात मित्तणाइ-  
णियगसयणसंबधिपरिजणं विउलेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सका-  
रिस्संति, सम्माणिस्संति, तस्सेव मित्तणाइ णियगसयणसंबधिपरि-  
जणस्स पुरओ एव वइस्सति-जम्हा णं देवाणुप्पिया ! अम्ह इमं  
सि दारगंसि गवभगयंसि धम्मे दहा पइण्णा जाया तं होउ णं  
अम्हं एस दारए दढपइण्णे णामेणं । तए णं तस्स  
दारगस्स अम्मा पियरो नामधेज्ज करिस्संति-दढपइ-  
ण्णेति । तए णं तस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेण ठिइवडियं च १,  
चंदसूरियदंसणावणियं च २, धम्मजागरियं च ३, नामधिज्जकरणं  
च ४, परंगमणं च ५, पचंकमणं च ६, पच्चक्खाणयं च ७, जेसं-  
णगं च ८, परिवच्चावणगं च ९, पजं पावणगं च १०, कन्नवेहण  
च ११, सवच्छरपाडलेहणेगं च १२ चूडावयायणं च १३, उव्वणयणं  
च १४, अन्नाणि व वहुणि गवभाहाण जम्मणाइयाइ कोउगाइं  
। हया इहिंसकारसमुदएणं करिस्संति ॥ सू० १६८ ॥

छाया-ततः खलु तस्य दारकस्य अम्मापितरौ प्रथमे दिवसे स्थिति-  
पतितां परिष्यतः, तृतीयदिवसे चन्द्रसूर्यदर्शनां करिष्यतः, षष्ठे दिवसे

‘तएण तस्स दारगस्स अम्मापियरो-’ इत्यादि

मूलार्थ-“तएण-” इसके बाद “तस्स दारगस्स-” उस दारकके, “अम्मापियरो-”  
मातापिता-“पढमे दिवसे-” प्रथम दिवस “ठिइवडिय-” कुलपरम्परा से  
आगत पुत्र जन्मोत्सव रूप क्रिया-“करेहिंति-” करेगे-तइयदिवसे “तृतीय  
दिवस-“चंदसूर दसणावणिय करिस्संति-” चन्द्रदर्शनरूप एवं-सूर्यदर्शनरूपक्रिया

“तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो” इत्यादि ।

मूलार्थ-“तए णं” त्थार पछी “तस्स दारगस्स” ते दारकना “अम्मापियरो”  
मातापिता “पढमे दिवसे” प्रथम दिवसे “ठिइवडिय” कुल पर परागत पुत्र-  
जन्मोत्सव रूप विधिओ “करेहिंति” करथे. “तइयदिवसे” त्रीन दिवसे “चंदसूर  
दसणावणिय करिस्संति” चन्द्रदर्शन रूप अने सूर्यदर्शनरूप क्रियाओ के के

जागरिकां जागरिष्यत, एकादशे दिवसे ऽ तिथान्त, सम्राज् षादशाह दिवसे, निवृत्ते अशुचिजातकर्मकरण षोडश ममार्जितोपलिप्त (गृह) विपुलम् अन्नपान-स्वाध्यायम् उपस्कारयिष्यत, मित्रजानि-निजकरवजनसम्बन्धिपरिजनम् आमन्त्र्य

को कि-पुत्र जन्मोत्सव पर की जाती है-करेंगे, "छठ दिवसे जागरिष्य जागरि सति-" छठ दिन रात्रि जागरणरूप क्रिया करेंगे। "एकारसमे दिवसे वीरकसे सपत्ने बागसाहे दियस भिषित असुइ जायकर्मकरणे-" ग्यारहवां दिन जब व्यतीत हो जायेगा और-१२-वां दिन जब प्राग्भम होगा तब उस दिन जन्म सम्बन्धी अशुचिता की निवृत्ति हो चुकन के बाद-"बोक्से समजिज ओवलिच विउल असण पाण स्वाइम साइम उवक्कडाविस्सति-" गृह को शुद्धि द्रिया करग। पहले उस व सम्मार्जनी-बूहारी से कूड़ा-कचरा निकाल कर साफ करग और-फिर उसे गोमय-आदि स सीप-पोते करग। इस प्रकार शुद्धिद्रिया हो जान पर फिर व अन्न-पान-स्वाध्याय, एवं-स्वाध्याय चार प्रकार क आहार की पकावेगे-"मित्रजानिपियगमयणसबधिपरिजनम् आमन्त्रता, तजो पच्छा प्हाया कयसलिकम्मा कयकोउयमगतपायच्छिता-" इसके बाद वे मित्रजनों को-ज्ञाति क जनों को-मातापिता आदिकों को, अपने पुत्रादिकों को, पितृव्यादिक स्वजनो को स्वन्वशुर-पुत्रन्वशुर आदिको दासी-दास आदिरूप परिजनो को आमन्त्रित करग, फिर-स्नानकर बलिकर्म-काक आदि को अन

पुत्र व भोक्तृव समये करवाया जावे ॥ करे। "छठे दिवसे जागरिष्य जागरि सति" छठ दिवसे रात्रि जागरण करे। "एकारसमे दिवसे वीरकसे सपत्ने बागसाहे दियस भिषित असुइ जायकर्म करणे" आरंभ दिवसे ब्याह पूरा करे अने आरंभ दिवसे आरंभ करे तबरे ते दिवसे व म स लभी अशुचितानी निवृत्ति करे ते पछी "बोक्से समजिज ओवलिच विउल असण पाण स्वाइम साइम उवक्कडा विस्सति" करने शुद्ध करवाना काये करे। पहले तेको सम्मार्जनी-सावदणी-भी करे। साह करे अने पछी तने गोमय वजेरेभी लीपीने स्वच्छ बनावरे। आ प्रभावे शुद्धि क्रिया करे कथा गाइ पछी ते अन्न पान, आध्याय अने स्वाध्याय चार प्रकारना आहारने बनावरावरे। मित्रजान पियग सपत्ने सबधि परिजन आमन्त्रता, तजो पच्छा प्हाया कयसलिकम्मा कयकोउय मगत पायच्छिता" तबरे पछी तेको मित्रजनेनि ज्ञातिजनेने, मातापिता वजेरेने, पिताना पुत्रादिकोने पितृव्यादिक स्वजनोने स्वन्वशुर पुत्रन्वशुर वजेरेने, दासी दास वजेरे परिजनेने आमन्त्रित करे। पछी स्नान करीने लज्जिकम-काजडा वजेरे पक्षीकोने अन्न वजेरेने। बाज आपरे। कौतुक मजल मार्वाकरा करे। सुदृष्यावेसाह

ततः पश्चात् स्नातौ कृतबलिकर्माणौ कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तौ शुद्धप्रवेष्ट्यानि  
माङ्गल्यानि वस्त्राणि प्रवरपरिहितौ अल्पमहार्घाभरणालङ्कितशरीरौ भोजनमण्डपे  
सुखासनवर्गतौ तेन मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनेन सार्धं विपुलम्  
अशनं पानं खाद्य स्वाद्यम् आस्वादयन्तौ विस्वादयन्तौ परिभुजानौ परिभाजयन्तौ  
एवमेव खलु विहरिष्यतः । जिमितभुक्तोत्तरागतावपि च खलु सन्तौ आचान्तौ  
चोक्षौ परमशुचिभूतौ तं मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनं विपुलेन वस्त्र-  
गन्धमाल्यालङ्कारेण सत्करिष्यतः, सम्मानयिष्यतः, तस्यैव मित्रज्ञातिनिजकस्वजन-

आदिका भाग करेगे कौतुक-मङ्गलप्रायश्चित्त करेगे—“सुद्धप्पावेसाई” मंगल्लाई  
वत्थाई पवरपरिहिया अप्पमहग्घाभरणालङ्कियसरीरा भोयणमण्डवसि—” फिर  
शुद्ध माङ्गलिकवस्त्रों को जो कि—राजसभा में जानेके लिये पहिरने योग्य होते  
हैं उन्हें पहिरेगे, बाद में अल्प वजनवाले—और—विशेष मूल्यवाले ऐसे अल-  
ङ्कारों को धारण करेगे, इस तरह सब प्रकारसे सजधजकर, फिर—भोजनमण्डप  
में—भोजनशाला में—“सुहासणवरगया—” अपने-अपने श्रेष्ठ आसन पर बैठ कर—  
“तेणं मित्तणाइणियगसयणसंवंधिपरिजणेणं सद्धिं विउलं असणं पाणं खाइमं  
साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुजेमाणा परिभाए माणा एवं चेव णं विह-  
रिस्संति—” उन मित्र ज्ञाति निजक स्वजन सम्बन्धिजन एवं-परिजन के साथ  
इस विपुल अशन-पान खाद्य, एवं—स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार का पहले आस्वादन  
करेगे—फिर विशेष आस्वादन करेगे, उसे रुचिपूर्वक खायेगे, एक दूसरे को  
देगे—“जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा, परमसुइभूया  
त मित्तणाइणियगसयणसंवंधिपरिजणं विउलेणं वत्थगंधमल्लालङ्कारेणं सक्कारिस्संति,

मगल्लाई वत्थाई पवरपरिहिया अप्पमहग्घाभरणालङ्कियसरीरा भोयणमण्डवसि—  
पछी राजसभाभा जवा भाटे पड़ेखा येअय शुद्ध मांगलिक वस्त्रो धारणु करशे  
त्यार भाद अद्यखारवाणा अने विशेष डीमती जेवा अलङ्कारे धारणु करशे आ  
प्रमाणे सर्व रीते सुखेण थधने पछी तेजो लोअन भउपमा—लोअनशाणाभा-  
“सुहासणवरगया” पोतपोताना श्रेष्ठ आसनो पर जेअने “ते णं मित्तणाइ णियग-  
सयणसंवंधिपरिजणेणं सद्धिं विउल असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा  
विसाएमाणा परिभुजेमाणा परिभाएमाणा एवं चेव णं विहरिस्संति” ते मित्र,  
ज्ञाति, निजक, स्वजन संधिजनो अने परिजनोनी साथे ते विपुल अशन पान  
भाद्य अने स्वाद्यरूप चतुर्विध आहारनो पड़ेला आस्वादन करशे पछी विशेष - आ-  
स्वादन करशे तेने सुइअयणु थधने जमशे परस्पर जेकर भीअजेअने आपेअ  
जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा, परमसुइभूया तं मित्तणाइ-  
णियगसयणसंवंधि परिजणं विउलेणं वत्थगंधमल्लालङ्कारेणं सक्कारिस्संति,

जागरिका जागरिष्यत, एकादशे दिवसे ऋतिश्रान्त, मप्राप्त द्वादशाह दिवसे, निवृत्ते अशुचिघातकर्मकरणे षोष्ठे ममाश्रितोपलिप्त (गृह) विपुलम् अन्नपान स्वाद्यस्वाद्यम् उपस्कारयिष्यतः, मित्रहानिनिजकर्मजनसम्बन्धिपरिजनम् आमन्य

जो कि-पुत्र जन्मोत्सव पर की जाती है-करेंगे, “छठे दिवस जागरिष्य जागरि सति-” छठे दिन रात्रि जागरणरूप क्रिया करेंगे। “एकारसमे दिवस वीरकसे सपत्ने बागसाहे दिवस निश्चित असुह जायकर्मकरणे-” भयारहवां दिन जब व्यतीति हो जायेगा और-१२-वां दिन जब प्रारम्भ होगा तब उस दिन जन्म सम्बन्धी अशुचिता की निवृत्ति हो चुकने के बाद-“चोक्खे समज्जि ओवलित्त विउल असण पाण स्वाइम साइम उवक्खडाविस्सति-” गृह को शुद्धि क्रिया करेगा। पहले उस बे सम्मार्जनी-बुहारी से कूड़ा-कचरा निकाल कर साफ करेगा और-फिर उसे गोमय-आदि से सीप-पोत करेंगे। इस प्रकार शुद्धिक्रिया हो जाने पर फिर व अन्न-पान-स्वाद्य, एवं-स्वाद्यरूप चार प्रकार के आहार को पकावेगा-“मिषणाइयियगसयणसबधिपरिजण आमत्ता, तओ पच्छा ण्ढाया कयवलिक्कम्मा कयओउपमगतपापच्छिन्ना-” इसक बाद बे मित्रजनों को-झाति के उनों को-मातापिता आदिकों को, अपने पुत्रादिकों को, पिठव्यादिक स्वजनों को स्वश्वशुर-पुत्रश्वशुर आदिकों दासी-दास आदिरूप परिजनों को आमन्त्रित करेगा, फिर-स्नानकर बलिर्कर्म-फाक आदि को अन्न

पुत्र व भ्रातृसव अभये कल्याणों आवे ॥ करेंगे। “छठे दिवस जागरिष्य जागरि सति” छठा दिवसे रात्रि जागरण करेंगे। “एकारसमे दिवस वीरकसे सपत्ने बागसाहे दिवस निश्चित असुह जायकर्म करण” आरंभ दिवस क्यारे पूरे थये अने आरंभ दिवस प्रारंभ कये त्थारे ते दिवसे व भ स जन्धी अशुचितानी निवृत्ति थल कये ते पछी “बोवस समज्जिअवलित्त विउलममणपाणस्वाइम साइम उवक्खडा विस्सति” करने शुद्ध करणना कथी करेंगे। पढेला तेज्जे अभ्याजनी-सावराणी-शी कयेला साह करेंगे अने पछी तने गोमय बगेरणी तीथीने स्वच्छ जनावये आ प्रमाणे शुद्धि क्रिया थल कया जाह पछी ते अशन पान पाद्य अने स्वाद्यरूप चार प्रकारना आहारिने जनावरावये। मित्रकाइ पियग सयण मपधि परिजण आमत्ता, तओ पच्छा ण्ढाया क यलिकम्मा कय कोउप मगत पापच्छिन्ना’ त्थारे पछी नेज्जे मित्रजनेनि मातजनेने मातापिता बगेरने, पिताना पुत्रादिने पिठव्यादिक स्वजनने, स्वश्वशुर पुत्र श्वशुर बगेरने, दासी दास बगेरने परिजनेने आमन्त्रित करेंगे। पछी स्नान करीने जलिकम-आमका बगेरने पसीजेने अन्न बगेरने। आत्र आपये होतुं भजत प्रार्थित करेंगे। शुद्धपावनाइ

ध्वंकरणं च ४, परगमनं च (पर्यङ्गनं च) ५ प्रचक्रमणकं च ६ प्रत्याख्यानकं च ७ जेमनकं च ८ प्रतिवर्धापनकं च ९ प्रजल्पनकं च १० कर्णवेधनं च ११ संवत्सरप्रतिलेखनकं १२ चूडापनयनं च १३ उपनयनं च १४ अन्नानि च बहूनि गर्भाधानजन्मादिकानि कौतुकानि महता ऋद्धिसत्कारसमुदयेन करिष्यतः ॥ सू० १६८ ॥

टीका—“तए णं तस्स” इत्यादि—ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ प्रथमे दिवसे—जन्मदिने स्थितिपतितां—स्थित्या—कुलमर्यादया पतिता—समागता

—२ धम्मजागरियं च—३ नामधिज्जकरणं च—४ परंगमणं च—५ पचंक्रमणं च—६ पच्चक्खाणयं च—७ जेमणगं च—८ पडिबद्धावगणं च—९ पजंपावणगं च—१० कन्नवेहणं च—११ संवच्छरपडिलेहणगं च—१२ क्रमशः—जब वे स्थितिपतिज्ञ—१ चंद्रसूर्यदर्शन—२ धर्मजागरण—३ नामकरण—४ इन उत्सवों को करचुकेगे—तब इनके बाद—परंगमन—५ प्रचक्रमण—६ प्रत्याख्यान—७ अन्नप्राशन—८ प्रतिवर्धापन—९ प्रजल्पनक—१० कर्णवेधन—११ संवत्सर प्रतिलेखनक—१२ “चूडावणयणं—१३ उवणयणं च—१४ अन्नाणिय बहूणि गम्भाहाणजम्मणाइयाइ कोउगाइं महया इहिं सक्कारसमुदणं करिस्सति—” चूडानपयन, और—१४ उपनयन इन अवशिष्ट उत्सवों को करेगे. तथा—इनके अतिरिक्त और भी बहुत से गर्भाधानादि सम्बन्धी अपनी ऋद्धि के अनुरूप सत्कार करने आदिरूप से करेगे—  
टीकार्थ—उस दारक के बालक मातापिता प्रथम जन्मदिवस के समय कुल मर्यादासे चली आई, पुत्रजन्मोत्सव क्रिया करेंगे, इसी के निमित्त तीसरे दिन वे

च ३ नामधिज्जकरणं च ४, परंगमणं च ५, पचंक्रमणं च ६, पच्चक्खाणयं च ७, जेमणगं च ८, पडिबद्धावगणं च ९, पजंपावणगं च १०, कन्नवेहणं च ११, संवच्छरपडिलेहणगं च १२,” अनुक्रमेण यथारे तेभ्यो स्थिति प्रतिज्ञा १ चंद्रसूर्यदर्शन २, धर्मजागरण ३, नामकरण ४, आ उत्सवो ऽज्जवी वेशे त्थार आह परंगमन ५, प्रचक्रमण ६, प्रत्याख्यान ७, अन्न प्राशन ८, प्रतिवर्धापन ९, प्रजल्पनक १०, कर्णवेधन ११, संवत्सर प्रतिलेखनक १२, “चूडावणयणं १३, उवणयणं च १४, अन्नाणिय बहूणि गम्भाहाण जम्मणाइयाइं कोउगाइं महया इहिं सक्कारसमुदणं करिस्सति” चूडापनयन अने १४ उपनयन आ अवशिष्ट उत्सवो ऽज्जवी तेमज्जीण पणु घण्टा गर्भाधान, सम्बन्धी सत्कार करवाइय कर्यो पोतानी ऋद्धि अनुसार करेशे.

टीकार्थः—ते दारकना मातापिता जन्मने पछेले दिवसे कुलपरंपरागत पुत्र जन्मोत्सव क्रियाओ करेशे. ओ निमित्त ओ त्रीण दिवसे तेओ जन्मोत्सव करेशे.

। गम्धिपरिजनस्य पुराणं यद्यदिष्यतः—परमात्। मन्तु न्यानुप्रियाः । आशयाः  
 अग्निमन् दारकं गमयन्तं यद्य रतिं धर्मं दत्ता प्रतिष्ठा जाता। तच्च मयत्तु कृत  
 ध्याययोः यद्य दारको, दत्तप्रतिष्ठा नागना । ततः मन्तु सत्यं दारकस्य, अम्ना  
 पितरौ नामधेयं करिष्यतः दत्तप्रतिष्ठा इति । ततः मन्तु तस्य अम्नापितरौ अनु  
 पृथंनं स्थितिपतितां च १, च द्रष्टव्यनिष्ठां च २, धर्मजागरिकां च ३, नाम

समाणिर्हसति—” भोजनं कर शुक्लं क अनंतरं फिर वे अपने-अपने उपवेशन  
 (बैठन के) स्थानपर बैठ पर छुट्ट जल से आचमन कर बोले होंगे, इस तरह  
 परमशुद्धिभूत हुए वे—मित्र, धाति, निजक स्वजन, गम्धि परिजनों को विपुल  
 पत्र गन्ध मान्य अलङ्कारों से सज्जित करेगे । एवं—मानपूजक उनकी आदर  
 करेगा—“त सत् मित्राणां हि यगस्य यजमं यधिपरिजनां स पुत्रो एव वदस्सति—”  
 फिर वे : नहीं मित्र धात-निजक-स्वजन सम्बन्धी परिजनों क समक्ष इस प्रकार  
 कहेंगे “अहं न दद्याणुपिया ? अहं इमं दारगं सि गम्धगर्पसि येव समागसि  
 धम्मे दत्ता पद्व्या जाया ” ह द्यानुप्रिया ? अग्नि काग्न स ह दारक क गर्भ में  
 जात ही हम लोग की धर्म में दत्त प्रतिष्ठा हुयी, “तु होउर्य अहं एत दारग  
 दत्तपद्व्या नामग—” इस कारण यह हमारा दारक दत्तप्रतिष्ठा इस नामवाला  
 हो—“तज्जं तस्म दारगं स अम्ना पितरौ नामधेयं करिष्यंति दत्तपद्व्याति—”  
 इस तरह उन दारक क मातापिता उसका दत्त प्रतिष्ठा दत्ता नाम करेगा ।  
 “तज्जं तस्म अम्नापितरौ अनुपूज्यं दित्तिदित्यं च १ अद्वयगिर्यं दत्तावधिर्यं च

समाजिरसति” वेज्जन याद तेज्जो धातधाताना उपस्थान स्थानपर लेजीने शुद्ध  
 जलशी आचमन करीने पवित्र करे। आ प्रभावे परमशुद्धिभूत मयत्तु ते भित्त  
 शाति निजक, स्वजन, अजमेरी परिजनोंते विपुल वर्य गन्ध आत्म अलङ्काराधी  
 धातुव करे। अने सम्मानपूजक तेभने आदर करे। “तस्मात् मित्राणां हि यग  
 स्य यजमं यधिपरिजनां स पुत्रो एव वदस्मि” यही तेज्जो ते भित्त स्थिति निजक  
 स्वजन-स्वजधी परिजनोंनी साथ आ प्रभावे करे।—“अहं दद्याणुपिया !  
 अहं इमं दारगं सि गम्धगर्पसि येव समागसि धम्मे दत्ता पद्व्या जाया”  
 हे द्यानुप्रिया ! आ दारक ज्योतिषी अगारा अजमेरी आज्यो उ त्प्रापही आभारी  
 भनभां धर्म भयं दत्त प्रतिष्ठा अजी उ “त ह उ ये अहं एत दारग दत्त  
 पद्व्या नामग” आशी अभाषा आ दारक दत्त प्रतिष्ठा आ नाभवाधे साथ “तज्जं  
 तस्म दारगं स अम्नापितरौ नामधेयं करिष्यंति दत्तपद्व्याति” आ प्रभावे  
 ते दारकना मातापिता तत्त दत्तप्रतिष्ठा जेगु नाम रखे। “तज्जं तस्म अम्ना  
 पितरौ अनुपूज्यं दित्तिदित्यं च १ अद्वयगिर्यं दत्तावधिर्यं च २ धर्मजागरिय

ध्वंकरणं च ४, परगमनं च (पर्यङ्गनं च) ५ प्रचक्ष्मणं च ६ प्रत्याख्यानं च ७ जेमनं च ८ प्रतिवर्धापनं च ९ प्रजल्पनं च १० कर्णवेधनं च ११ संवत्सरप्रतिलेखनं १२ चूडापनयनं च १३ उपनयनं च १४ अन्यानि च बहूनि गर्भाधानजन्मादिकानि कौतुकानि महता ऋद्धिसत्कारसमुदयेन करिष्यन्तः ॥ सू० १६८ ॥

टीका—“तए णं तस्स” इत्यादि-ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ प्रथमे दिवसे-जन्मदिने स्थितिपतितां-स्थित्या-कुलमर्षादथा पतिता-समागता

—२ धम्मजागरियं च—३ नामधिज्जकरणं च—४ परंगमणं च—५ पचंकमणं च—६ पच्चक्खाणयं च—७ जेमणं च—८ पडिवद्धावणं च—९ पजपावणं च—१० कन्नवेहणं च—११ संवच्छरपडिलेहणं च—१२” क्रमशः—जब वे स्थितिपतिज्ञ—१चंद्रसूर्यदर्शन—२ धर्मजागरण—३ नामकरण—४ इन उत्सवों को करचुकेगे—तब इनके बाद—परमगमन—५ प्रचक्ष्मण—६ प्रत्याख्यान—७ अन्नप्राशन—८ प्रतिवर्धापन—९ प्रजल्पन—१० कर्णवेधन—११ संवत्सर प्रतिलेखन—१२ “चूडावणयणं—१३ उवणयणं च—१४ अन्नाणिय बहूणि गम्भाहाणजम्मणाइयाइ कोउगाइ महया इहिं सक्कारसमुदणं करिस्सन्ति—” चूडानपयन, और—१४ उपनयन इन अवशिष्ट उत्सवों को करेगे. तथा—इनके अतिरिक्त और भी बहुत से गर्भाधानादि सम्बन्धी अपनी ऋद्धि के अनुरूप सत्कार करने आदिरूप से करेगे—  
टीकार्थ—उस दारक के बालक मातापिता प्रथम जन्मदिवस के समय कुल मर्षादासे चली आई, पुत्रजन्मोत्सव क्रिया करेंगे, इसी के निमित्त तीसरे दिन वे

च ३ नामधिज्जकरणं च ४, परंगमणं च ५, पचंकमणं च ६, पच्चक्खाणयं च ७, जेमणं च ८, पडिवद्धावणं च ९, पजपावणं च १०, कन्नवेहणं च ११, संवच्छरपडिलेहणं च १२,” अनुक्रमेण्यारे तेनो स्थिति प्रतिज्ञ १ चन्द्रसूर्यदर्शन २, धर्मजागरण ३, नामकरण ४, आ उत्सवो उज्ज्वी देशे त्यार भाद परगमन ५, प्रचक्ष्मण ६, प्रत्याख्यान ७, अन्न प्राशन ८, प्रतिवर्धापन ९, प्रजल्पन १० कर्णवेधन ११, संवत्सर प्रतिलेखन १२, “चूडावणयणं १३, उवणयणं च १४, अन्नाणिय बहूणि गम्भाहाण जम्मणाइयाइ कोउगाइ महया इहिं सक्कारसमुदणं करिस्सन्ति” चूडापनयन अने १४ उपनयन आ अवशिष्ट उत्सवो उज्ज्वी तेमज्ज पीज्ज पणु धण्णा गर्भाधान, सम्बन्धी सत्कार करवाइय कार्यो पोतानी ऋद्धि अनुसार करेशे.

टीकार्थः—ते दारकना मातापिता जन्मने पडेले दिवसे कुलपर परागत पुत्र जन्मोत्सव क्रियाओ करेशे. ओ निमित्ते ज तीन दिवसे तेनो चन्द्र-सूर्यदर्शन करेशे.



પુત્રજન્મ સ્વરૂપા ક્રિયા, તાં કરિષ્યતઃ, તૃતીયદિવસે દન્ત્રદર્શનદર્શનિકા—ચન્દ્ર  
 દર્શન-સૂર્યદર્શનરૂપાં પુત્રમ્ મોત્સવવિશેષલક્ષણાં પ્રક્રિયાં કરિષ્યતઃ, પૃથ દિવસ  
 જાગરિકા રાત્રિજાગરણરૂપાં ક્રિયાં જાગરિષ્યત—કરિષ્યતઃ, એકાદશે દિવસે મ્ય  
 ઠિશ્ઠાન્તે—અર્તીતે સપ્રાપ્ત—સમાગત દ્વાદશાદ—દ્વાદશમ્ અહો યસ્મિન્ તત્તસ્મિન્  
 સપ્તમે દિવસે દ્વાદશાદે દિવસે इत्यर्थ, અશ્વિજાતકર્મક્રમે—અશ્વિજાત—જન્મા-  
 શ્વોચવતાં કુદુમ્ભિતાં જાનકર્મેણ—નવજાતશિશુસમ્બન્ધિસસ્કારસ્ય કરણ—વિધાન,  
 તસ્મિન્ નિશ્ચે સમાપ્તે સતિ જન્માશ્વોચનિવર્તનનન્તરમિત્યર્થઃ, શોણે-સ્વચ્છ, સમા-  
 ર્જિતોપશ્લિષ્ટે—સમાર્જિત—માઝન્યા કષ્ણવરાપનયનેન સશ્વોષિતે ઉપશ્લિષ્ટે—ગોમયા  
 દિના કૃતલેપ રુદે, વિપુલ—પ્રજુરમ્ અશ્વનપાનસ્વાદ્યસ્વાદ્યમ્ ઉપસ્કારયિષ્યત—પાક-  
 યિષ્યતઃ મિત્ર-ઘાતિ નિજજન-સ્વજન-સમ્બન્ધિ-પસ્વિન-તત્ર મિત્રાભિ—સુદ્ધ, જ્ઞાતય-  
 માતાપિતાભ્રાત્રાદય, નિજજનઃ—સ્વજનીયાઃ પુત્રાદય, સ્વજનાઃ—પિતૃ-દયઃ સમ્બ-  
 ધિન સ્વમ્બદ્ધપુત્રમ્બદ્ધાદયઃ, પરિજનો-દાસી-દાસાદિ, ણ્વેવા સમાહારે તત્  
 આમન્થ્ય, તત પશ્ચાત્ રનાતૌ-કૃતમ્નાતૌ કૃતબલિકર્માર્થી—કાકાદિભ્યઃ કૃતા-

ચન્દ્ર-સૂર્ય દર્શનરૂપ ક્રિયા કરંગ. અર્થાત્—નવ જાત શિશુ કો ચન્દ્ર-સૂર્યકા  
 દર્શન કરાવેગે—ન ત્રય મ્યારહવા દિન વ્યતીત્ત હો જાવગા, ઔર—૧૨ વારહવા  
 દિન પ્રારમ્ભ હો કાવેગા તથ વે જાતકર્મ ક્રિયા કરંગ, હસ દિયા મે—નવ  
 જાત શિશુ કે ઉત્પન્ન હો જાને સ અશ્વચિતા કુદુમ્બ ક છોગોં મેં માની જાતી  
 હૈ, અર્થાત્ જન્મ સમ્બધી અશ્વચિતા હસ દિન સમાપ્ત હો જાતી હૈ, ઘર ઘરે  
 હ કી લિપાઈ પેતાઈ કી જાતી હૈ વચ્ચોં કો પુલવાકર રચ્છ કરાયા જાતા  
 હૈ. હસ તરહ અશ્વચિ વ્યપરોપણ કરકે પિત્ર ને અશ્વન આદિરૂપનારોં પ્રકાર ક  
 આહાર કો વનવાવેગે ઔર—અપને મિત્ર—સુદ્ધજનો કો માતા-પિતા-ભાઈ આદિરૂપ  
 ઘાનિજનોં કો, પુત્રાદિકરૂપ નિજજનોં કો, પિતૃભ્ય—આદિરૂપ—સ્વજનોં કો, અપન  
 શ્વશુર એવ—પુત્ર શ્વશુર આદિ સમ્બન્ધિજનોં કો, ણ્વ—દાસીદાસ આદિ પરિચારક

એટલે કે નવજાત શિશુને ચન્દ્ર-સૂર્યના દર્શન કરાવશે. બપોરે અર્જિયારમ્બે દિવસ  
 પૂરે થશે અને બારમી દિવસ પ્રારંભ થશે ત્યારે તેઓ જાતકર્મ વિધિ કરશે. આ  
 વિધિમાં નવજાત શિશુના જ મધી કુદુમ્બના લોહોમાં જે અશ્વચિતા મનાય છે તેને  
 ગ્રાહ-સહાઈ વગેરે કરીને રૂર કરવામાં આવે છે એટલે કે જ મ સ બધી અશ્વચિતા  
 આ દિવસે મટી જાય છે ઘર વગેરે સ્ત્રીપુરુષોમાં આવે છે. વચ્ચે પાવનની સ્વચ્છ  
 કરવામાં આવે છે. આ પ્રમાણે અશ્વચિ વ્યપરોપણ કરીને પછી તેઓ અશ્વન પાન  
 વગેરે રૂપ આર પ્રકારના આહારો ખનાવડાવશે અને પેતાના મિત્ર સુદ્ધ જન ભાતા  
 પિતા ભાઈ વગેરે રૂપ ગાતિજનોને પુત્રાદિકરૂપ નિજજનોને પિતૃભ્ય વગેરે રૂપ સ્વ-  
 જનોને પેતાના શ્વશુર અને પુત્ર શ્વશુર વગેરે સ બધીજનોને અને દાસીદાસ વગેરે

त्रभागौ कृतकौतुकमङ्गलपायश्चित्तौ—कृतानि सम्पादितानि कौतुकानि—मपीतिलकादीनि मङ्गलानि-मङ्गलकराणि दुःस्वप्नादिफलनिवारणार्थं सर्पपदध्यक्षतादीनि तान्येव प्रायश्चित्तानि अवश्यकरणीयत्वात् ग्राम्यां तौ तथा, शुद्धप्रवेश्यानि-शुद्धानि पवित्राणि स्वच्छानि च प्रवेश्यानि राजसभाप्रवेशयोग्यानि, मङ्गल्यानि-मङ्गलजनकानि वस्त्राणि प्रवरपरिहितौ-सुष्ठुतथा रक्षारीति धारितवतौ, अल्पमहार्घाभरणालङ्कृतशरीरौ-तत्र अल्पानि-स्तोकभाराणि महार्घाणि-महामूल्यानि आभराणिनिभूषणानि, तैः अलङ्कृतं-भूषितं शरीरं ययोस्तौ तथा, भोजनमण्डपे-भोजनशालायां, सुखासनवरगतौ-निजनिजश्रेष्ठासने सुखरूपेण समुपविष्टौ सन्तौ तेन मित्रज्ञातिनिजकस्वजनमन्थपरिजनेन सार्धं विपुलम् अशनं पानं स्वाद्यं स्वाद्यम् आस्वादयन्तौ, परिभुजानौ-रुचिपूर्वकं भुजानौ, परिभाजयन्तौ—अन्येभ्यः प्रयच्छन्तौ एवमेव-अन्यैव रीत्या खलु विहरिष्यतः-स्थाप्यतः । जिमितभुक्तोत्तरागतावपि-जिमितौ भुक्तवतौ भुक्तोत्तर-भोजनोत्तरकालम् आगतौ-निजनिजोपवेशन थाने समागतौ

परिजने को जीमने के लिये आमन्त्रित करेगे । फिर-नान से, काकआदि को के लिये-कृतान्न विभागसे मपीतिलकादिकरूप कौतुकों से, मङ्गलकर दुःस्वप्न आदि अवाञ्छनीय फल की निवृत्ति के लिये सरसोदधि-अक्षतरूप प्रायश्चित्त से निपटकर राजसभा में प्रवेश के समय पहनने योग्य स्वच्छ-पवित्र-माङ्गलिकवस्त्रों को अच्छी तरह पहनकर, एवं-अल्पभारवाले अमोल अलङ्कारों से शरीर को सुशोभित करनेके बाद भोजनशालामें आवेगे, और-वहांपर अपने योग्य स्थापित श्रेष्ठ आसनपर बैठकर आमन्त्रित होकर आये हुवे उन मित्र-ज्ञाति-निजकस्वजनसम्बन्धीजन के साथ रुचिपूर्वक भोजन करेगे, एक दूसरे के लिये मने विनोद करते हुवे भोजन करलेने की क्रिया समाप्त हो जावेगी, तब वे हाथ मुख धोकर अपने स्थानपर आकर विराजमान हो जावेगे, वहां शुद्धोदक

परिजने ने जमवा भाटे आमन्त्रित करेगे. पछी स्नानथी, कागडा वगेरेने अन्नलाग आपवाधी मपीतिलक वगेरेइप कौतुकोथी भगल करीने दुःस्वप्न वगेरे अवाञ्छनीय इणनी निवृत्ति भाटे सरसव, दधि, अक्षतरूप प्रायश्चित्तथी निवृत्त थधने राजसलामा जवा योग्य वस्त्रो मारी रीते पछेरीने अने अल्पभारयुक्त अलङ्कारोथी शरीरने सुशोभित करीने पछी ते लोअनशाणामा जशे, अने त्या पोताने योग्य स्थापित श्रेष्ठ आसने पर ओशीने आमन्त्रित भईमानो-मित्र-ज्ञाति-निजकस्वजन-सम्बन्धीजन अने परिजनेनी साथे इच्छिपूर्वक जमशे. मनोविनोद करता ओकथीअने पीरसावशे आ प्रभाणे आनंदपूर्वक जमवातुं काम पुइं थध जशे त्थार पछी तेओ हाथ मुण धेधने पोतपोताना स्थानपर आवीने विराजमान थध जशे. त्या शुद्धोद-

પુત્રજન્મ સ્વરૂપા ક્રિયા, તાં કરિષ્યત, યતીયદિવસે ચન્દ્રસ્યદર્શનિકા—ચન્દ્ર  
 દર્શન-ચર્પદર્શનરૂપાં પુત્રજ મોત્સ્વવિશેષલક્ષણાં પ્રક્રિયાં કરિષ્યત, પપ્તે દિવસ  
 જાગરિકા રાત્રિજાગરણરૂપાં ક્રિયાં જાગરિષ્યતઃ—કરિષ્યત, ઇષાદક્ષ દિવસે પ્ય  
 તિક્રાન્તે—પ્યતીત સપ્રાપ્ત—સમાગત દ્વાદશાહ—દ્વાદશમ્ અહો યસ્મિન્ તત્તસ્મિન્  
 તાદૃશે દિવસે દ્વાદશાહે દિવસે इत्यर्थ, અશુષ્કિજ્ઞાતકર્મકારણે—અશુષ્કતા—જન્મા-  
 શ્ચૌચવતાં કુદુમ્પતાં જાનકમેષ—નવજાતશિશુસમ્બન્ધિયસ્કારસ્ય કરણં—વિધાન,  
 તસ્મિન્ નિશ્ચયે સમાપ્ત સતિ જન્માશ્ચૌચનિવર્તનાનન્તરમિત્યર્થઃ, ષોષે—સ્વષ્છ, સમા-  
 ર્જિતોપલિપ્તે—સંમાર્જિતે—માર્જન્યા કચચરાપ્તયનેન સશોષિત ઉપલિપ્તે—ગોમયા-  
 દિના મૃતલેપ શુદ્ધે, વિપુલ—પ્રચુરમ્ અહનપાનસ્વાધસ્વાધમ્ ઉપસ્કોગિષ્યતઃ—પાષ-  
 યિષ્યત મિત્ર-જ્ઞાતિ નિવજ્ઞ-સ્વજન-સમ્બન્ધિ-પરિજન-સત્ર મિત્રાભિ—સુદૃઢ, જ્ઞાતય  
 માતાપિતાભ્રાત્રાદયઃ, નિવજ્ઞાઃ—સ્વકીયા પુત્રાદયઃ, સ્વજનાઃ—પિતૃ ૧૬૧ સમ્બ  
 ધિન સ્વશ્ચરુપુત્રશ્ચરાદયઃ, પરિજનો—દાસી-દાસાદિ, एतेषા સમાહારે સ્વ  
 આમન્ય, તત્ પશાત્ પનાતૌ-કૃતસ્નાનૌ કૃતચલિકર્માર્ણૌ—કાકાદિભ્યઃ કૃતા

ચન્દ્ર—સૂર્ય દર્શનરૂપ ક્રિયા કરેગ. અર્થાત્—નવ જાત શિશુ કો ચન્દ્ર—સૂર્યકા  
 દર્શન કરાવેગે—। ૬૪ ગ્યારહથા દિન પ્યતીત હો જાવેગા, ૧૨ ચારહથા  
 દિન પ્રારંભ હો જાવેગા તથા ૬ જાતકર્મ ક્રિયા કરેગ, ૬૫ દિવસ મે—નવ  
 જાત શિશુ કે ઉત્પન્ન હો જાને સે અશુષ્કતા કુદુમ્બ ક લોંગો મે માની જાતી  
 હૈ, અર્થાત્ જન્મ સમ્બન્ધી અશુષ્કતા ૬૬ દિન સમાપ્ત હો જાતી હૈ, પર જગર  
 ૬૭ કી લિપાઈ પોતાઈ કી જાતી હૈ વસ્ત્રો કો પુલવાકર સ્વષ્છ કરાયા જાતા  
 હૈ. ૬૮ તરહ અશુષ્ક મ્યપરોપ્ત કરકે ફિર ન અહન જાદિરૂપચારો પ્રકાર ક  
 આહાર કો જનવાવેગે ૬૯—અપને મિત્ર—સુદૃઢજનો કો માતા પિતા-માઈ આદિરૂપ  
 જ્ઞાતિજનો કો, પુત્રાદિરૂપ નિવજ્ઞનો કો, પિતૃભ્ય—આદિરૂપ—સ્વજનો કો, અપને  
 શ્વશુર ઇવ—પુત્ર શ્વશુર આદિ સમ્બન્ધિજનો કો, ઇષે—દાસીદાસ આદિ પરિચારક

એટલે કે નવજાત શિશુને ચન્દ્ર-સૂર્યના ૬૪૧૧ કલાકથી જન્માદે અગિયારમી દિવસ  
 પૂરો થશે અને બારમી દિવસ પ્રારંભ થશે ત્યારે તેઓ જાતકર્મ વિધિ કરશે. આ  
 વિધિમાં નવજાત શિશુના જ મમ્મી કુદુબના લોહોમાં એ અશુષ્કતા મનાય છે તેને  
 સાફ-સફાઈ વગેરે કરીને દૂર કરવામાં આવે છે એટલે કે જ મમ્મી અશુષ્કતા  
 આ દિવસે મટી જાય છે. ૬૪ વગેરે લીપવામાં આવે છે વસ્ત્રો પાવડવી સ્વષ્છ  
 કરવામાં આવે છે આ પ્રમાણે અશુષ્ક અપશયક કરીને પછી તેઓ અહન પાન  
 વગેરે રૂપ યાદ પ્રકારના આહારો જનાવડાવશે અને પોતાના મિત્ર સુદૃઢ જન માતા  
 પિતા આઈ વગેરે રૂપ જ્ઞાતિજનોને પુત્રાદિરૂપ નિવજ્ઞોને પિતૃભ્ય વગેરે રૂપ સ્વ  
 જનોને પોતાના શ્વશુર અને પુત્ર શ્વશુર વગેરે જાતબંધીજનોને અને દાસીદાસ વગેરે

त्रभागौ कृतकौतुकमङ्गलभायश्चित्तौ—कृतानि रुम्पादितानि कौतुकानि—मपीतिलकादीनि मङ्गलानि-मङ्गलकराणि दुःस्वप्नादिफलनिवारणार्थं सर्षपदध्यक्षतादीनि तान्येव प्रायश्चित्तानि अवश्यकरणीयत्वात् ग्राम्यां तौ तथा, शुद्धप्रवेश्यानि-शुद्धानि पवित्राणि स्वच्छानि च प्रवेश्यानि राजसभाप्रवेशयोग्यानि, सङ्गज्यानि-मङ्गलजनकानि वस्त्राणि प्रवरपरिहितौ-सुष्ठुतया स्थारीति धारितवन्तौ, अल्पमहार्घाभरणालङ्कृतशरीरौ-तत्र अल्पानि-स्तोकभाराणि महार्घाणि-महामूल्यानि आभराणिनिभूषणानि, तैः अलङ्कृतं-भूषितं शरीरं ययोस्तौ तथा, भोजनमण्डपे-भोजनशालायां, सुखासनवरगतौ-निजनिजश्रेष्ठासने सुखरूपेण समुपविष्टौ सन्तौ तेन मित्रज्ञातिनिजकरवत् नमस्वन्धिपरिजनेन सार्धं विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् आस्वादयन्तौ, परिभुजानौ-रुचिपूर्वकं भुजानौ, परिभाजयन्तौ—अन्येभ्यः प्रयच्छन्तौ एवमेव-अन्यैव रीत्या खलु विहरिष्यतः-स्थाम्यतः । जिमितभुक्तोत्तरागतावपि-जिमितौ भुक्तवन्तौ भुक्तोत्तर-भोजनोत्तरकालम् आगतौ-निजनिजोपवेशन थाने समागतौ

परिजने को जीमने के लिये आमन्त्रित करेगे । फिर-नान से, काकआदि व्रों के लिये-कृतान्न विभागसे मपीतिलकादिकरूप कौतुकों से, मङ्गलकर दुःस्वप्न आदि अवाञ्छनीय फल की निवृत्ति के लिये सरसो-दधि-अक्षतरूप प्रायश्चित्त से निपटकर राजसभा में प्रवेश के समय पहनने योग्य स्वच्छ-पवित्र-माङ्गलिकवस्त्रों को अच्छी तरह पहनकर, एवं-अल्पभारवाले अमोल अलङ्कारों से शरीर को सुशोभित करनेके बाद भोजनशालामें आवेगे, और-वहांपर अपने योग्य स्थापित श्रेष्ठ आसनपर बैठकर आमन्त्रित होकर आये हुवे उन मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धीजन के साथ रुचिपूर्वक भोजन करेगे, एक दूसरे के लिये मने विनोद करते हुवे भोजन करलेने की क्रिया समाप्त हो जावेगी, तब वे हाथ मुख धोकर अपने स्थानपर आकर विराजमान हो जावेगे, वहां शुद्धोदक

परिजने ने जमवा भाटे आमन्त्रित करेगे पछी स्नानथी, कागडा वगेरेने अन्नसाग आपवाथी मपीतिलक वगेरेरूप कौतुकोथी भगल करीने दुःस्वप्न वगेरे अवाञ्छनीय कण्ठी निवृत्ति भाटे सरसव, दधि, अक्षतरूप प्रायश्चित्तथी निवृत्ति थधने राजसलामा जवा थोअ्य वस्त्रो सारी रीते पछेरीने अने अल्पभारयुक्त गहु डीभती अलङ्कारेथी शरीरने सुशोभित करीने पछी ते लोअनशाणामा जशे, अने त्या पोताने थोअ्य स्थापित श्रेष्ठ आसने पर जेसीने आमन्त्रित भडेमाने-मित्र-ज्ञाति-निजक स्वजन-सम्बन्धीजन अने परिजनेनी साथे इअिपूर्वक जमथे. मनोविनोद करता अेकपीअने पीरसावशे आ प्रमाणे आनदपूर्वक जमवातुं काम पुइं थध जशे तयार पछी तेअ्यो हाथ मुअ घेअने पोतपोताना स्थानपर आवीने विराजमान थध जशे. त्या शुद्धोद-

मन्तौ आचान्तौ शुद्धोदकयोगेन कृताऽऽचमनी चोक्षौ—लेपसिक्वाद्यपनयनेन स्वच्छौ,  
अत एव परमशुचिभूतौ अतीव पवित्रौ, त मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरि  
जन विपुलेन प्रचुरण, वस्त्रगन्धमान्यालङ्कारण—उत्र वस्त्राणि-क्षौ मङ्ग-कापोसिक  
दुकूलरूपाणि, गन्धा पुष्पनिर्यासामोदपरिमलरूपाणि सुगन्धद्रव्याणि, मान्यानि  
पुष्पमाला, अलङ्काराणि-कटककुण्डलाद्यभरणानि तेषां समाहार, तेन सत्स्वर्गिण्यत  
तत्पदानेन सत्कार करिष्यत, सम्मान यष्यत—मानपूर्वकमादरिष्येते, ततः तस्यैव  
मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनस्य पुत्रतः—अग्रे एव वक्ष्यमाणप्रका  
रेण वदिष्यतः—कथं एतत्, तदेवाह—हे देवानुप्रिया ! मित्रादय ! यस्मात्  
यत्तु कारणात् अस्मिन् नवजाते दारके शिशौ गर्भगते एव सति—गर्भगत सति  
आवया धर्म-जिनप्ररूपित धर्म प्रतिष्ठा-मति दृढा-निश्चला जाता, तद्—उस्मात्  
कारणात् आवयो एव दारको नाम्ना दृढप्रतिष्ठा भवतु । तत्—तदन्तरं यत्तु तस्य  
दृढप्रतिष्ठा य दारकस्य अम्मा पितरौ अनुपूषण-अनुक्रमेण स्थितिपतिताः, चन्द्र

स आचमन कर परमशुचि बन हुवे वे अपने मित्रजनों का, ज्ञातिजनों का,  
निजकजनों का, स्वजनों का, सम्बन्धिजनों का, और परिजनों का विपुल  
प्रचुर वस्त्रसे, रेशमी-एव-सूतीवस्त्रोंसे गन्धस, पुष्परस के आमोद परिमल से,  
पुष्पमालाओं से, कटककुण्डल आदिरूप अलङ्कारों से सत्स्वर्गकरमे एव मान  
पूर्वक उनका आदर करेगे । फिर वे—उहीं मित्र-ज्ञाति निजक-स्वजन-सम्बन्धी  
परिजनों के समक्ष ऐसा कहेंगे—हे देवानुप्रिय ! मित्रादिको ? जिस कारण से  
यह दारक जब गर्भ में आया था तब से हमलोगों की धर्ममें-जिन प्ररूपित  
मार्ग में मैं म दृढ-निश्चल हो गई थी, इस कारण हमलोगों का यह-पुत्र नाम  
से दृढतम हो गया कहकर वह उसका “दृढ प्रतिष्ठा-” नाम रखेगा  
उस दृढप्रतिष्ठा बालक के मातापिता क्रमशः—स्थिति पतिता—? चन्द्र मूय

कधी आचमन करीने परमशुचि बनेला तेजो पाताना मित्रजनाने, (निजकजनाने।  
स्वजनाने, सवंधीजनाने) जेने पविजनाने। विपुल प्रचुर वस्त्रोभी देशभी जेने  
सती वस्त्रोभी पुष्परसना आभेस पवित्रोभी पुष्पमालाजोभी कटक कुण्डल आदि  
आभेसो सत्स्वर्ग करी। जेने त मानपूषण तेजने आदर करी। कधी तेजो पाताना  
मित्र ज्ञाति निजक स्वजन सवंधी पविजनानी साथी आ प्रभाळे कधी के देवात  
प्रिये । मित्रवरे । ज्या को आ दारक जन्मा आत्मे छे त्याकधी जमारी धर्ममा  
जिन प्ररूपित मार्गमा मति दृढ निश्चल यथ अर्थ छे आधी जमाथे आ पुत्र दृढ  
प्राप्त नामभी सजोयित याव, जाम कधीने तेवाहे। दृढप्रतिष्ठा जे प्रभाळे तेतु नाम  
राखी। त दृढ प्रतिष्ठापणेना भावापता अनुक्रमे स्थिति पतिता, चन्द्रसुख दश। नमो २

सूर्यदर्शनिकां२, धर्मजागरिकां३, नामधेयकरणं४, 'परंगमणं' इत्यस्य परगमनं पर्यङ्गनं चेत्तच्छाया, तत्र परगमनं-वगृहाद् बहिर्गमनम्, पर्यङ्गनम्-अंशुलिग्रहणपूर्वकं भवनाङ्गणे आमणं ५, प्रचङ्क्रमणं-स्वतोभ्रमणम् ६, प्रत्याख्यानकम्-आगेग्याद्यर्थं व्रतादिवरणम् ७, जेमनकम्-अन्नप्राशनम्८, प्रतिवर्धापनकम्-आशीर्वाद-दायकेभ्यो द्रव्यादिदानम्९ प्रजल्पनकं-'माता, पिता' इत्यादिशब्दपाठनम्१०; कर्णवेधनम्११, संवत्सरप्रतिलेखनकम्-जन्मदिनोत्सवम्१२, चूडापनयनं-मुण्डनोत्सवम्१३, उपनयनम्-अध्ययनार्थं कलाचार्यमपीपे नयनम्१४, एताश्चतुर्दशोत्सवान् करिष्यतः अन्यानि च बहूनि गर्भाधानजन्मादिवानि गर्भाधानादिसम्बन्धीनि कौतुकानि-उत्सवजातानि महता ऋद्धिसत्कारसमुदायेन-ऋद्धिः वस्त्रसुवर्णादिसम्पत् त । सत्कारः-जनसत्कार करणं, तस्य समुदायः-समूहः, तेन करिष्यतः । सू० १६८।

मूलम्--तए पां से दढपड़णे - दारगे पंचधाईपरिक्खित्ते, तं जहा खीरधारईए१, मज्जणधाईए२, सडणधाईए३, अकधाईए४, किला-

दर्शनिका-२ धर्म जागरिका-३ नामकरण-४ परंगमण-५ परगृहगमन-अने घरसे बाहर निकलने रूप परगमन, अथवा-अंशुलिग्रहणपूर्वक भवनाङ्गणमें फिरने रूप पर्यङ्गमन, प्रचंक्रमण-स्वतोभ्रमण-६ प्रत्याख्यान-आगेग्य आदिके लिये व्रतादिकरण-७ जेमनक-अन्नप्राशन-८ प्रतिवर्धापनक-आशीर्वाददायका के लिये द्रव्यादि देना-९ प्रजल्पनक-मातापिता-इत्यादि शब्दों का उच्चारण कराना-१० कर्णवेधन-११ संवत्सर प्रतिलेखनक-जन्म दिनोत्सव-वर्षगांठ, १२ चूडा पनयन-मुण्डनोत्सव-१३ और-उपनयन अध्ययनार्थ कलाचार्य के पास ले जाना १४ इन चौदह प्रकारके उत्सवों को, तथा-इनसेभिन्न और भी अनेक गर्भाधानादि सम्बन्धी कौतुकों को-उत्सवों को, ऋद्धि सत्कार समुदायसे करेगे । सू० १६८।

धर्मजागरिका ३, नामकरण ४, परंगमण ५, परगमन-पर्यङ्गमन-पोताना धरथी भील घेर जवु ते परगमन, अथवा अंशुलि ग्रहणपूर्वक भवना गणभा ज दंजु ते पर्यङ्गमन, प्रचंक्रमण-स्वतोभ्रमण ६, प्रत्याख्यान आदेश्य वगेरे माटे व्रतादिकरण ७, जेमनक अन्नप्राशन ८, प्रतिवर्धापनक आशीर्वाद आपनाराओने दूथ वगेरे आपवुं ९, प्रजल्पनक-मातापिता वगेरे शब्दोछु इत्यारण करवुं. १०, कर्णवेधन ११, संवत्सर प्रतिलेखनक जन्म दिपोत्सव-वर्षगांठ चूडापनयन, मुण्डनोत्सव १३ अने उपनयन अध्ययन कलाचार्य-पासे लध जवुं ते १४, आ चौदह प्रकारना उत्सवोने तेमज ओभनाथी सिन्न भील पणु धणु गलाधान संधी कौतुकोने उत्सवोने ऋद्धि सत्कार समुदायपूर्वक करे. ॥ सू० १६८॥

वणधाईं ५, अन्नाहि य वट्टहि खुज्जाहि चिलाइयाहि वामणियाहि १,  
 वढमियाहि २, वव्वरिहि ३, घाउसियाहि ४, जोण्हियाहि ५, पल्हवियाहि  
 ६, ईसिणियाहि ७, वासिणियाहि ८, लासियाहि ९, लउसियाहि १०,  
 दविढीहि ११, सिंहलीहि १२, आरवीहि १३, पक्कणीहि १४, वहलीहि  
 १५, मुरुढीहि १६, सब्बरीहि १७, पारसीहि १८, णाणावेसीहि विदे  
 सपरिमडियाहि सदेसनेवरथगहियवेसाहि इगियचितियपरिथयविया  
 णियाहि निउणकसलाहि विणीयाहि चेडियाचक्कवालतरुणीवदपरि  
 यालपरिवुडे वरिसधरकचुइज्जमहत्तरगवदपरिक्खित्ते हत्थाओ हत्थ  
 साहरिज्जमाणे २ अकाओ अक परिभुजमाणे २ उवनच्चिज्जमाणे २  
 उवगाइज्जमाणे २ उवलालिज्जमाणे २ उवगूहिज्जमाणे २ अवयासिज्ज  
 माणे २ परियट्ठिज्जमाणे २ परिचुडिज्जमाणे २ रस्सेसु मणिकुट्टिमतलेसु  
 परंगिज्जमाणे २ गिरिकदरमल्लीणेषिव चंपगवरपायवे निव्वाधायसि  
 सुहसुहेणं वरिवट्ठिस्सइ ॥ सु० १६९॥

छा० — उत स्कु स दहप्रसिद्धो दारकः पञ्चपात्रिभिः परिषिप्तः, तपसा-  
 क्षीरपात्र्या १ मज्जनपात्र्या २, मज्जनपात्र्या ३ अङ्गपात्र्या ४ क्षीरनपात्र्या ५.

“तए ण से दहपइण्णे दाग्गे—इत्यादि—

मूलाय—“तए ण—” इसक बाद—“से दहपइण्ण—” दहप्रसिद्ध बालक-  
 पत्र्याई परिषिप्त” इन पात्र्या पात्र्यामाताओं से युक्त—“त अहा—क्षीरपात्र्या—मज्ज  
 नपात्र्या—मज्जनपात्र्या—अङ्गपात्र्या—क्षीरनपात्र्या—” ऐसे—क्षीरपात्र्यामाता से,  
 दूध पिलानेवाली उप माता से, मज्जनपात्र्यामाता से, स्नान करानेवाली उप

“तए ण स दहपइण्ण दाग्गे” इत्यादि ।

मूलाय—“तए ण” तथा ५वी “म दहपइण्ण” ते दहप्रसिद्ध बालक “पत्र्या  
 पात्र्या परिषिप्त” आ पात्र्या पात्र्यामाताओं “त अहा—क्षीरपात्र्या—मज्जनपात्र्या—  
 मज्जनपात्र्या—अङ्गपात्र्या—क्षीरनपात्र्या—” ऐसे क्षीरपात्र्या माताओं मज्जनपात्र्या  
 उपमाताओं मज्जनपात्र्या माताओं स्नान करानेवाली उपमाताओं मज्जनपात्र्यामाताओं

अन्यामिथ बहुभिः कुञ्जाभिश्चिलातिकाभिः वामनिकाभिः १, वटमिकाभिः २, चर्वरीभिः ३, वकुशिकाभिः ४, यौनिकाभिः ५, पल्हविकाभिः ६, इसिनिकाभिः ७, वासिनिकाभिः ८, लासिकाभिः ९, लकुशिकाभिः १०, द्राविडीभिः ११, सिंहलीभिः १२, आरवीभिः १३, पक्कणीभिः १४, वहलीभिः १५, मुरुण्डीभिः १६, शर्वरीभिः १७, पारसीभिः १८, नाणादेशीयाभिः विदेशपरिमण्डिताभिः स्वदेशनेपथ्यगृहीतवेपाभिः इज्जितचिन्तितप्रार्थित विज्ञागिवाभिः

मातासे, मण्डन धाय माता से—मपीतिलक आदि द्वारा मण्डन 'अलङ्कृत' करानेवाली उपमाता से अङ्गधात्री माता से—उत्सङ्ग—गोद में लेकर खिलाने वाली—उप—माता से, क्रीडनधात्री माता से—विविध प्रकार की क्रीडाएं करानेवाली उपमाता से. इन पांच प्रकार की धात्रियों से युक्त हुवा—“अन्नाहिय बहहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं वामणियाहिं वडभियाहिं चव्वराहिं वाउसियाहिं जोण्हियाहिं पल्हवियाहिं इसिणियाहिं वासिणियाहिं लासियाहिं—” तथा—इन से अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार की वक्रपृष्ठवाली—एवं अनार्यदेशोत्पन्न टुमकी—हम्बरी—शरीरवाली—१ वटमिका—२ हीन एकपार्श्व भागवाली चर्वरी—३ चर्वरीदेशोत्पन्ना वकुशिका—४ यौनिका—५ पल्हविका—६ इसिनिका—७ वासिनिका—८ लासिका—९ “लउसियाहिं” लकुशिका १० “दविडीहिं—” द्राविडी—११ “सिंहलीहिं आरवीहिं—पक्कणीहिं—वहलीहिं—मुरुडीहिं—सव्वरीहिं—” पारसीहिं सिंहली—१३ आरवी, पक्कणी—१४ वहली—१५ मुरुण्डी—१६ शर्वरी—१७ पारसी—१८ “णाणादेसीहिं—” अपने—अपने नामानुरूप देशों में उत्पन्न हुवी—तथा—“विदेसपरिमंडियाहिं—”

मपीतिलक वगेरे द्वारा मण्डन करानेवाली उपमाताथी, अङ्गधात्री माताथी, उत्सङ्ग ओणाभा ओसाडीने रमाडेनार उपमाताथी युक्त थथेवी “अन्नाहिय बहहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं वामणियाहिं वडभियाहिं चव्वराहिं वाउसियाहिं जोण्हियाहिं पल्हवियाहिं इसिणियाहिं वासिणियाहिं लासियाहिं” तेभन्नी १७ पण्य अनेक प्रकारनी वक्रपृष्ठवाणी अने अनार्यदेशोत्पन्न टुंगणी १, वटमिका २, हीन ओका पार्श्वभागवाणी, णवरा ३ अण्वरदेशोत्पन्ना, वकुशिका ४ यौनिका ५, पल्हविका ६, इसिनिका ७, वासिनिका ८, लासिका ९ “लउसियाहिं” लकुशिका १०, “दविडीहिं” द्राविडी ११, “सिंहलीहिं आरवीहिं पक्कणीहिं वहलीहिं मुरुडीहिं सव्वरीहिं पारसीहिं” सिंहली १३ आरवी, पक्कणी १४ वहली १५ मुरुण्डी १६ शर्वरी १७ पारसी १८ “णाणादेसीहिं” पोतपोताना देशोभा उत्पन्न थथेवी तथा “विदेसपरिमंडियाहिं” विदेशी वेशभूषाभा सुसज्ज “सदेसनेवत्यगहियवेसाहिं, इंगियचितियपत्थियविगणियाहिं, निउणकुमलाहिं,



निपुणकुशलाभिः विनीताभिः। चेटिकाचक्रवालतरुणीहृन्दपरिवार—रिक्तः वर्ष  
 भः कञ्चुकिमहत्ताकहृन्दपरिषिप्तः। हस्तावृ हस्तं सङ्ग्रह्यमाणा २ अङ्गावृ अङ्ग  
 परिमोज्यमानः २ उपनृत्यमाना २ उपगीयमाना २ उपलान्यमाना २ उपगूयमाना  
 २ स्निप्यमाणा २ परिक्रम्यमाना ३ परिचुम्ब्यमाना २ रम्येषु मणिकुङ्किततलेषु  
 पर्यङ्गयमाणाः २ गिरिकन्दरालीन इव चम्पकचरपादय निष्पन्नाभाते सुस्तमुलेन  
 परिबर्षिष्यत ॥ छ० १६९ ॥

विदेश के वष से सजी हुयी, 'सदेसनेब'थगहियवेसाहि, इगिय  
 चितियपथिपविगियाहि निउमकुसलाहि, रिणीयाहि—' और अपने देश  
 में बस्त्राभूषणों को जिस तरह से पहिग आता है, उस तरह से वेष को  
 धारण करनेवाली, तथा—इङ्कित—चिन्तित—मार्फित—को अच्छी तरह से समझ  
 लेने वाली, नारियों के बीच कुशल, विनय सम्पन्न, स्त्रियों से, तथा 'चिटिया  
 चक्रवालतरुणीवदपरियालपरिपुडे, बरिसचरकनुहज्जमहत्तरगवदपरिभित्त-  
 त—' और मी दासियों के समूह से एव युवतियों के समूह से परिवेष्टित  
 हुवा, तथा बाँधर, कठचुकी, और महत्तरक इन के समूह से, परिवेष्टित हुवा,  
 एवम्—'इथाओ इत्य साहरिजमाण्य-२ उपसालिज्जमाणे-२-उवगूहिज्जमाण्य-२  
 अबपासिज्जमाणे-परियदिज्जमाणे २ परिचुबिज्जमाणे-२ रम्मेसु मणिकुङ्किततलेसु  
 परगिज्जमाण्य २" एक हाथ से दूसर हाथों में बारबार आता हुवा, एक  
 गोदी से दूसरी गोदी में बारबार नृत्य क्रिया दिखाने, स सतुष्ट किया गया  
 बारबार-मधुर वचनादि द्वारा लाठ लड़ाया गया, बारबार-२ दृष्टि-दोष को दूर  
 करने के लिय बस्त्रादिकों द्वारा ढाँका गया, बारबार हृदय से लगाकर आलि

विणीयाहि' अने पातपोत्तान्य देशभा वस्त्राभूषणो ने शीते फलेशाव से ते शीते  
 वषधारण करती तथा धर्मित चितित अने आधित ने साथी शीते अङ्गनादी-रुनी  
 वजभा कुशल विनय सम्पन्न स्त्रीजोषी तेमन् 'चिटियाचक्रवालतरुणीवद  
 परियालपरिपुडे, बरिसचरकनुहज्जमहत्तरगवदपरिभित्त' नील पञ्च दासी  
 जोना समूहशी अने मुनगीजोना समूहशी परिवेष्टित बसेली अन् वषधर कमुडी  
 अने मकुत्ताश जोमना समूहशी परिवेष्टित बसेली अने "इथाओ-इत्य साहरि  
 ज्जमाणे २ उपसालिज्जमाण २, उवगूहिज्जमाण २, अबपासिज्जमाणे २, परि  
 यदिज्जमाण २ परिचुबिज्जमाण्य -२, रम्मेसु मणिकुङ्किततलेसु परगिज्जमाण्य २"  
 जोके दासी नील हाथभा बारबार अतो जोकनी जोनामधोनानीना । न नाभा  
 बारबार लठ चनातो बारबार नृत्य क्रिया अतापीने सतुष्ट करायेली, ना बार मधुर  
 वचनो बटे लाठ करीने, बारबार दृष्टि दोषने दूर करवा आटे वस्त्रादिदोषी बाँडेली

टीका:—“तए णं से दृढपडणे” इत्यादि—ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारकः पञ्चधात्रीभिः—बालरूप स्तन्यपानादिकारिकाभिः पञ्चभिर्धात्रीभिः रिक्षितः—परिवृतः, मूले “पञ्चधाईपरिविखत्ते” इत्यत्र ‘पञ्चधाई’ इति लुप्ततृतीयांतं पठं, तेन ‘पञ्चधात्रीभिः’ इतिच्छाया, तद्यथा—क्षीरधात्र्या—स्तन्यपायिकया १, मज्जनधात्र्या—स्तन्यपनकारिकया २, मण्डनधात्र्या—मपीतिलकादिभिर्मण्डनकारिकया ३, अङ्गधात्र्या उत्सङ्गस्थापिकया ४, क्रीडनधात्र्या—क्रीडनकारिकया ५।

एवं प्रकाराभिः पञ्चभिर्धात्रीभिः परिवृतः—युक्तः। तथा—अन्याभिः—तदतिरिक्ताभिरपि बहुभिः—बहुप्रकाराभिः, कुञ्जाभिः—वक्रवृष्ठाभिः, चिलातिभिः—अनार्यदेशोत्पन्नाभिः, कामभिः ? इत्याह—वामनिकाभिः—ह्रस्वकायाभिः १, वटभिकाभिः—मडहकोष्ठाभिः—हीनैव पार्श्वभागाभिरित्यर्थः २, वर्वरीभिः—वर्वदेशोद्भवाभिः ३, वकुशिकाभिः ४, यौनिकाभिः ५, पल्लविकाभिः ६, इसिनिकाभिः ७, वासिनिकाभिः ८, लासिकाभिः ९, लकुशिकाभिः १०, द्राविडीभिः ११, सिहिलीभिः १२, आरवीभिः १३, पक्कीभिः १४, बहलीभिः १५, मुग्गडीभिः १६, शवरीभिः १७, पारसीभिः १८, एवमेताभिः तत्तन्नामानुरूपनानादेशीयाभिः—अनेकदेशोद्भवाभिः विदेशपरिमण्डित-

इन किया गया। “चिरकाल तक जीवित रहो—” इस तरह के शुभाशीर्वादों से वधाया गया, बारबार चुम्बन किया गया—“रमेसु मणिकुट्टिमतलेसु परंगिज्जमाणे-२ गिरिकंदरमल्लीणे विव चपगवरपायवे निव्वाधायंसि, सुहं सुहेणं परिविद्धिंस्तइ—” तथा रम्य—रमणीय मणिकुट्टिमतलों में रत्न जडित-अङ्गणों में बार-बार चलता-हुवा, गिरिगुहा में स्थित चपकवृक्ष की तरह निरावाध स्थान में सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त करेगा।

टीकार्थ—मूलार्थ जैसा ही है, पन्तु फिर भी जो विशेषता है वह ऐसी है—“पञ्चधाई परिविखत्ते” यहाँ-पञ्चधाई, पठ लुप्त तृतीयाविभक्ति वाला है, अतः—इसकी छाया-पञ्च धात्रीभिः ऐसी करनी चाहिये। “विदेशपरिमण्डित-

बार-बार हृदयने आंपीने आलिङ्गन करेवो “धल्लु लुयो” आगतना शुभाशीर्वादोद्दीधौ पधामल्लो आयेवो बार-बार युजित करेवो, “रमेसु मणिकुट्टिमतलेसु परंगिज्जमाणे २ गिरिकंदरमल्लीणे विव चपगवरपायवे निव्वाधायंसि सुहंसुहेणं परिविद्धिंस्तइ” तेमज्ज रम्य-रमणीय मणिकुट्टिमतलोभा, रत्नजडित आगल्लायोभा बार-बार आलनो, गिरिगुहाभा स्थित चपक वृक्षनी नेम सुखपूर्वक मोटो थतो गये।

टीकार्थ—मूलार्थ प्रमाणे न छे पल्लु छताये ने विशेषता नल्लाय छ ते आ प्रमाणे छे “पञ्चधाई परिविखत्ते” अडो “पञ्चधाई” पठ लुप्ततृतीया विभक्तियुक्त छे, अथी “पञ्चधात्रीभिः” अवी छाया करवी नेछये. “विदेशपरिमण्डिताभिः”

निष्पुणकुसलाभिः विनीताभिः शटिकाचक्रवालतरुणीवृक्षदपरिवारं—रिक्तं य  
 च फण्डुकिमदृष्टाफण्डुपरिक्षिप्तः हस्ताद् दृष्टं सङ्क्षिप्तमाणाः २ अद्वाद् अद्  
 परिमोज्जमानः २ उपनृयमानः २ उपगीयमानः २ उपलान्यमानः २ उपगम्यमानः  
 २ सिष्यमाणाः २ परियन्धमानः २ परिचुम्ब्यमानः २ रम्भेषु मणिकुट्टिमतलपु  
 पयङ्गयमाण २ गिरिकन्दरासीन इव चम्पकवरपादपः निर्व्यापात मुक्त्रमुक्त्र  
 परिष्विष्यत ॥ सू० १६९ ॥

विदुषः क वष स सजी हूषी, 'सदेसनवधगहियवेसाहि, इ गिप  
 विनियपधियविगणियाहि निउणकुसलाहि, विनीयाहि—' और अपन दध  
 मं पस्त्राभूषणा को जिस तरह से पहिना जाता है, उस तरह स वष को  
 पागण बगनवाली, तथा—इक्षित-चिन्तित-प्रापित का अच्छी तरह से समझ  
 लन वाली, नारियों क बीच कुञ्जल, विनय सम्पन्न, स्त्रियों स, तथा 'विडिया  
 नवधवालतरुणीवृक्षदपरियालपरिषुडे, परिसधरकचुइज्जमहसरगवदपरिविस्से-  
 त—' और भी दासियों क समूह से वष, युवतियाँ क समूह स परिवेष्टित  
 हुवा, तथा वाधर, वरुणुकी, और महत्तरक इन क समूह स, परिवेष्टित हुवा,  
 एवम्—' इत्थाओ इमं साहरिज्जमाण-२ उपलालिज्जमाणे-२ उपगृहिज्जमाण २  
 अवपासिज्जमाण-परियदिज्जमाण २ परिचुविज्जमाण-२ रम्भेषु मणिकुट्टिमतलपु  
 परगिज्जमाण २" एक हाथ स दूसर हाथ में—बार बार जाता हुवा, एक  
 गोदी से दूसरी गोदी में बारबार नृत्य क्रिया दिखाने, से सतृप्त किया गया  
 बारबार-भयुर वचनादि द्वारा लाड लडाया गया, बारबार २ छुट्टि दोष को दूर  
 करने क लिय वस्त्रादिकोंद्वारा बाँका गया, बारबार हृदय से लगाकर आति

विनीयाहि' अने पातपाताना देशमा वस्त्राभूषणेषु ते रीते पदेनान्ते ते रीते  
 वषधारण्यं कस्यचिद्वा तथा धजितं चितितं अने प्रापितं ने सारी रीते अङ्गनारी २ श्री  
 वज्रभा कुशल विनय स पन्न २ श्रीजोषी तेभव 'शटिकाचक्रवालतरुणीवृक्ष  
 परियालपरिषुडे, परिसधरकचुइज्जमहसरगवदपरिविस्से' नील पञ्च द्रव्यी  
 जोना समुद्रधी अने मुवातीजोना समुद्रधी परिवेष्टित अपेक्षा भव परधर क मुनी  
 अने भद्रतरक जोमना अमुदोषी परिवेष्टित अपेक्षा अने "इत्थाओ इत्य साहरि  
 ज्जमाणे २ उपलालिज्जमाण २, उपगृहिज्जमाण २, अवपासिज्जमाण २, परि  
 यदिज्जमाण २ परिचुविज्जमाण २, रम्भेषु मणिकुट्टिमतलपु परगिज्जमाण २"  
 जोह हाथेभी नीला हाथमा बारबार चेतो, जोमना जोमनाभी २ नीला १ जोनामा  
 बारबार लप चेतो बारबार नृत्य क्रिया जतानीने सतृप्त करिनेछो, वा बार भयुर  
 वचना बटे लाड करिने, बारबार छुट्टि दोषने दूर करवा आटे वस्त्रादिकोभी बाँकेछो,

रमणियेषु मणिकुट्टीमनलेषु रत्नजटिताङ्गणेषु पद्ममाणः २=पुनः पुनश्चक्रम्यमाणः,  
सन् गिरीन्दालीनः गिरिगुहस्थितः चम्पववरदप इव श्रेष्ठ चम्पकवृक्ष इव  
नीव्याधाते नीरावाये स्थाने सुखपूर्वकं पविर्धिष्यते वृद्धिं प्राप्स्यति ॥सू० १६९॥

मूलम्—तए णं त दढपइणं दारगं अम्मपियरो साइरेण अट्ट-  
वासिजोयगं जाणिता सोभणंसि तिहिकरणणक्खत्तमुहुत्तंसि णहाय  
कयबलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्त सव्वालकारविभूसियं करेत्ता  
महया इहिंस्कारसमुदणं कलायरियस्स उवणेहिति । तए णं से  
कलायरिए तं दढपणं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-  
रुपपज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गंथओ  
यकरणओ य सिक्खावेहिइ य, सेहावेहिइ य तं जहा—लेहं १ गणियं २  
रुवं ३ नट्ट ४ गीय ५ वाइय ६ सरगय ७ पुक्खरगयं ८ समतालं ९ जूयं  
१० जणवाय ११ पासग १२ अट्टा यं १३ पोरेवच्च १४ दगमट्टियं  
१५ अन्नविहिं १६ पाणविहिं १७ वत्थविहिं १८ विलेवणविहिं १९  
सयणविहिं २० अज्ज २१ पहेलियं २२ मागहियं २३ णिडाइयं २४  
गाहं २५ गीइय २६ मिलोग २७ हिरणजुत्ति २८ सुवणजुत्ति २९  
आभरणविहिं ३० तरुणीपडिकम्म ३१ इत्थिलक्खणं ३२ पुरिसल-  
क्खण ३३ हयलक्खणं ३४ गयलक्खणं ३५ कुडलक्खणं ३६ छत्त-  
लक्खणं ३७ त्चक्रलक्खणं ३८ डलक्खणं ३९ असिलक्खणं ४०  
मणिलक्खणं ४१ कोणिलक्खणं ४२ वत्थुविज्जं ४३ णगरमाणं ४४

कहलाते हैं, अनः-पुर में क्या क्या कार्य होता है, इत्यादिको चिन्तन करने  
वाले होते हैं-वे-महत्तरक है ॥सू० १६९॥

छडेवाय छे. अंत-पुरभा शुं शुं अभि एवातु छे, तेनी विचारणा करनास भइतरइ  
छडेवाय छे ॥ सू० १६८ ॥

तामिः—विदेश इति 'विदेशेष्वेव', तेन 'परिमण्डितामिः' निर्भूयितामिः, 'स्वदेशे  
 नपुम्यगृहीतवेपामि'—वदेशे निजदेशे यन्नपुम्यस्योऽप्युपमाना परिधानादिरचना  
 तद्वद् गृहीतो वेपो यामिस्तामिः, तामिः इति चिन्तितप्रार्थितविशेषार्थिकामिः  
 तत्र इक्षितं निपुणमतिगम्य अमिप्रायत्प प्रवृत्तिनिष्ठचित्तवक्त्रमीपवत्प्रशिर कम्पादिकं,  
 चिन्तितेन्द्रियगत, प्रार्थितम्-अमिलपितं च विज्ञानन्ति शास्त्रार्थं तामिः, निपुण  
 कृशतामि निपुणानी चतुरनारीणां मध्ये या कृशला-वधारितामि, विनीतामि-विनय  
 ममन्तामि परिशिष्ट इति पूर्वोक्तसम्बन्धः । पुनश्च चेष्टिहाषकालितरुणीवृन्द  
 परिवारपरिहृतः चेष्टिहाषकालितरुणीवृन्द 'दासीनमृह', कृष्णीवृन्द 'पुषति मृह', तभ्य  
 परिवारेण परिहृतः 'परिवेष्टित', पुनश्च वपधरकञ्चुकिमहत्काञ्चुकिपरिशिष्ट, तत्र  
 वपधरा अन्तःपुरकार्यकारिणो नपुंसका, कञ्चुकिन अन्तःपुरप्रयोजननिवेदकाः  
 अन्तःपुरप्रतीहाया वा, महेश्वरः अन्तःपुरकार्यचिन्तका, तयो वृन्देन-समूहेन  
 परिशिष्ट परिहृत स हे तावद् इत्यम् एक इस्ताव् अन्यहस्त सहाय्यमाण रेण्वार  
 वार नीयमान अत्र विप्लवायां द्वित्वम्, एवमग्रेऽपि एवम् अङ्गाव् अङ्गम् एतया  
 उत्सङ्गाद् अन्य या उत्सङ्ग परिमोज्यमानः-धान्यमानः, उपनृत्यमानः, मर्तन  
 दर्शनेन पणितोप्यमानः उपगीयमानः, गानं श्राव्यमानः, उल्लास्यमानः स्तुतित  
 मधुरवचनादिना श्राव्यमान उगृह्यमान इष्टिदोषादिनिवारणार्थं वस्त्रादिभिरा  
 ष्टमानः, सिन्धुमान इन्द्रयसलगेन आलङ्कृतमानः परिवेश्यमानः 'चिर  
 जीव्याव' इत्याद्यादीर्घचनैः स्तूपमानः, परस्मैपुष्प्यमानः परिपुष्प्यमानः रम्भे  
 तामि' में जो विदेश छन्द आया है वह "विदेशेष्वेव" अर्थ में है, इक्षित वह,  
 चेष्टा विशेष है जो निपुणमतिद्वारा ही जाना जाता है, यह प्रशंसि निर्दिष्ट  
 का सूचक होता है, तथा इस में घोड़े से-वपधर-शिरकम्पाना द किया जाता  
 है । इन्द्रयस अमिप्राय का नाम चिन्तित है, तथा-अमिलपित का नाम  
 प्रार्थित है । अन्तःपुर में जो कार्य करने के लिये निपुण किये जाते हैं, एव-  
 जो नपुंसक होते हैं-इनका नाम वपधर है । अन्तःपुर सम्बन्धी प्रयोजनों का  
 निवेदक होते हैं, अथवा-अन्तःपुर में जो प्रतिहारका काम करते हैं वे-कञ्चुकी

मां ने विदेश शब्द आये है ते 'विदेश वेव' कृष्णीवृन्द, उ कृष्णवृन्द,  
 ते कृष्ण विशेष है जो निपुणमति द्वाटे के आधी शक्त है, आर प्रवृत्ति ( )  
 सुख है। तथा जोमा भीमभीमि शिरकम्पनादि करवाओ आवे है, एवमग्रे  
 अमिप्राय ने चिन्तित है उ तथा अमिलपितने प्रार्थित है उ अतःपुरमां ने  
 काम है उ अने के नपुंसक होय है ते वपधर है अन्तःपुर सम्बन्धी प्रयोजनों  
 ने ने निवेदक होय है अथवा अन्तःपुरमां ने प्रतिहार काम करे है त कञ्चुकी

रमणियेषु मणिकुट्टीमनलेषु रत्नजटिताङ्गणेषु पथङ्गमाणः २=पुनः पुनश्चङ्कभ्यमाणः,  
सन् गिरीन्दलीनः गिरिगुहास्थितः चम्पवर इव श्रेष्ठ चम्पकवृक्ष इव  
जीव्याधाते नीरावावे स्थाने सुखपूर्वकं पविर्धिष्यते वृद्धिं प्राप्स्यति ॥सू० १६९॥

मूलम्—तए णं ते दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो साइरेगं अट्ट-  
वासंजोयगे जाणित्ता सोभणंसि तिहिकरणणंक्खत्तमुहुत्तसि गहायं  
कयंबलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्तं सव्वालकारविभूसियं करेत्ता  
महया इहिसुक्कारसमुदएणं कलायरियस्स उवणेहिति । तए णं से  
कलायरिए तं दढपण्णं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-  
रुपपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गंथओ  
यकरणओ य सिक्खावेहिइ य, सेहावेहिइ य तं जहा—लेहं १ गणियं २  
रुवं ३ नट्ट ४ गीय ५ वाइय ६ सरगयं ७ पुक्खरगयं ८ समतालं ९ जूयं  
१० जणवाय ११ पासग १२ अट्टा यं १३ पोरेवच्च १४ दगमट्टियं  
१५ अन्नविहिं १६ पाणविहिं १७ वत्थविहिं १८ विलेक्खणविहिं १९  
सयणविहिं २० अज्जं २१ पहेलियं २२ मागहियं २३ णिद्वाइयं २४  
गाहं २५ भीइय २६ सिलोग २७ हिरण्णजुत्तिं २८ सुवण्णजुत्तिं २९  
आभरणविहिं ३० तरुणीपडिकम्म ३१ इत्थिलक्खणं ३२ पुरिसल-  
क्खण ३३ हयलक्खणं ३४ गयलक्खणं ३५ कुडलक्खणं ३६ छत्त-  
लक्खणं ३७ त्वक्कलक्खणं ३८ डलक्खणं ३९ असिलक्खणं ४०  
मणिलक्खणं ४१ कोगणिलक्खणं ४२ वत्थुविज्जं ४३ णगरमाणं ४४

कहलाते हैं, अनः-पुर मे क्या क्या कार्य होता है, इत्यादिको चिन्तन करने  
वाले होते हैं- वे-महत्तरक हैं ॥सू० १६९॥

कहेवाय छे, अंतः-पुरमा शुं शुं ओम धवातु छे, तेनी विचारणा करनाशे महत्तरक  
कहेवाय छे ॥ सू० १६९ ॥



रमणियेषु मणिकुट्टीमनलेषु रत्नजटिताङ्गणेषु पर्यङ्गमाणः २=पुनः पुनश्चङ्कभ्यमाणः,  
सन् गिरीन्दालीनः गिरिगुहास्थितः चम्पववर इव इव श्रेष्ठ चम्पकवृक्ष इव  
नीर्व्याधाते नीरावावे स्थाने सुखपूर्वकं पविर्धिष्यते वृद्धिं प्राप्स्यति ॥सू० १६९॥

मूलम्—तए णं त दढपइणं दारगं अम्मपियरो साइरेग अट्ट-  
वासंजायगं जाणित्ता सोभणंसि तिहिकरणणं कखत्तमुहुत्तंसि गहाय  
कयंबलिकम्म कयकोउयमंगलपायच्छित्त सव्वालकारविभूसियं करेत्ता  
महया इड्डिस्कारसमुदणं कलायरियस्स उवणेहिति । तए णं से  
कलायरिए तं दढपणं दारग लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-  
स्यपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गंथओ  
यकरणओ य सिक्खावेहिइ य, सेहावेहिइ य तं जहा—लेहं १ गणियं २  
रुवं ३ नट्ट ४ गीय ५ वाइय ६ सरगसं ७ पुक्खरगयं ८ समतालं ९ जूयं  
१० जणवाय ११ पासग १२ अट्टा यं १३ पोरेवच्च १४ दगमट्टियं  
१५ अन्नविहिं १६ पाणविहिं १७ वत्थविहिं १८ विलेवणविहिं १९  
सयणविहिं २० अज्ज २१ पहेलियं २२ मागहियं २३ णिदाइयं २४  
गाहं २५ भीइय २६ मिलोगं २७ हिरणजुत्ति २८ सुवणजुत्ति २९  
आभरणविहिं ३० तरुणीपडिकम्म ३१ इत्थिलक्खणं ३२ पुरसल-  
क्खण ३३ हयलक्खणं ३४ गयलक्खणं ३५ कुडलक्खणं ३६ छत्त-  
लक्खणं ३७ त्वक्कलक्खणं ३८ डलक्खणं ३९ असिलक्खणं ४०  
मणिलक्खणं ४१ कागणिलक्खणं ४२ वत्थुविज्जं ४३ णगरमाणं ४४

कहलाते है, अनः-पुर में क्या क्या कार्य होता है, इत्यादिको चिन्तन करने  
वाले होते हैं-वे-महत्तरक है ॥सू० १६९॥

कहेवाय छे. अंतःपुरमा शुं शुं कामं वातुं छे, तेनी विचारणा करत्तास भइत्तरक  
कहेवाय छे ॥ सू० १६९ ॥



स्वधावारमाणं ४५ चार ४६ पट्टिचार ४७ वूह ४८ चक्रवूह ४९  
 गरुत्वूह ५० सगडवूह ५१ जुद्ध ५२ नियुद्ध ५३ जुद्धजुद्ध ५४  
 अट्टिजुद्ध ५५ मुट्टिजुद्ध ५६ वाहुजुद्ध ५७ लयाजुद्ध ५८ ईसत्थ  
 ५९ छरुप्पवाय ६० धणुवेय ६१ हिरण्णपाग ६२ सुवण्णपाग ६३  
 मणिपागं ६४ धाउपाग ६५ सुत्तखेड ६६ चद्रखेड ६७ णालियाखेड  
 ६८ पत्तच्छेज्ज ६९ कट्ठगच्छेज्ज ७० सज्जीवनिज्जीव ७१ सउणरुय  
 ७२ इति । ॥सू० १७० ॥

छाया—तत स्तुत त दृढप्रतिष्ठां वारकम् अम्मापियरो सातिर एवंप्रजातक  
 ज्ञात्वा सोमन तिथिहरणनक्षत्रसुहृत् स्नात कृतबलिकर्मणि कृतकौतुहमसप्राप्त  
 भित्त सर्वालङ्कारविभूषित कृत्वा महता श्रद्धिसरकारममुदयेन कलाचार्यस्य उप

“तए ज त दृढप्रतिष्ठां” इत्यादि

मूलार्थ—“तए ज” इसके बाद—“दृढप्रतिष्ठां”— दृढ प्रतिष्ठा “वारकं” वारक  
 बालक को—“अम्मापियरो” मातापिता “साहरगअट्ठवासबायग जाणिता—  
 आठ वर्ष से कुछ अधिक का हुआ जानकर—“सोमनमि तिहिकरणकवत्त  
 मुहुचसि णाय” सोमनतिथि नक्षत्र सुहृत् में उसे स्नान कराकर ‘कृतबलिकर्म  
 कर्मकोउपमगलपायच्छित्त, सत्पालकारविभूषित्य करेता—” उससे बलिकर्म  
 कर्मजादि का अन्नादि का माग ठकर, कौतुहमइसरूप प्रावधित्त का तर,  
 एव—उसे समस्त अलङ्कारों से विभूषितकर—“महता ई ईसकारसमुदयेन कला  
 परियस्म उपणेहिदि—” अपनी विशाल श्रद्धि क अनुरूप मरतापूर्वक कला-

“तए ज त दृढप्रतिष्ठां” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए ज” त्था १५० “दृढप्रतिष्ठां” दृढप्रतिष्ठा “वारकं” वारक बालक को  
 ‘अम्मा पियरो’ मातापिताओं के “साहरगअट्ठवासबायग जाणिता” आठ वर्ष  
 कलां याये याये केवेळ जण्णीने “सोमनमि तिहिकरणकवत्तमुहुचसि णाय”  
 सोमनतिथि नक्षत्र सुहृत् में तेने स्नान करवये, ‘कृतबलिकर्म, कर्मकोउपमगल  
 पायच्छित्त, सत्पालकारविभूषित्य करेता’ तेना नडे जलिकर्म—अन्नादि नजेरेने  
 अन्ना नजेरेने जाल अण्णवज्जणीने कौतुह मगलरूप प्रावधित्त कलांनीने अने तेने  
 समस्त अलङ्कारों से विभूषित करीने “महता ई ईसकारसमुदयेन कलापरियस्म  
 उपणेहिदि” पालांनी विशाल श्रद्धिना अनुरूप मरतापूर्वक कलाचार्यनी पसे याकरो.

नः । तः खद्य स कलाऽऽचाः तं ददप्रतिज्ञ द्वाकं लेखादिका गणि-  
प्रधानाः शकुनरतपर्ययानाः द्वाप्तति कलाः सूत्रतश्च अर्थतश्च कणतश्च शिक्ष-  
यिष्यति च साधयिष्यति च, तद्यथा—लेखं १, गणितं २ रूपं ३ नाट्यं ४,  
गीतं ५, वादितं ६, स्वरगतं ७ पुष्करगतं ८, समतालं ९, द्यूत १०, जनवादं  
११, पाशकम् १२, अष्टापदं १३, पौरकृत्य १४, दकमृत्तिकाम् १५, अन्न-  
विधिं १६, पानविधिं १७, वस्त्रविधिं १८ विलेपनविधिं १९, शयनविधिम्  
२०, आर्या २१, ग्रहेलिका २२, मागधिकां २३, निद्रायिका २४, गाथां २५,

चार्य के पास भेजेगे। “तए ण से कलायिए तं ददपडणं दारग लेहाइयाओ  
गणि .५ हाणाओ सउणरुप ज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओय अत्थओय  
गथओय वणओय सिक्खावेहि डय सेहावेहि डय—” वह कलाचार्य उस  
ददप्रतिज्ञ दा क को लेखादिका गणिन प्रधा कलासे लेकर शकुनरु। तफ  
की ७२ कलाओ १० सूत्र-अर्थ और—दुभय, एवं-तणरुप सिक्खावेगा, एवं  
उन्हे सिद्ध भी करावेगा, “तं जहा—लेहं १ गणि २ वं ३ नट्ट ४ गीय-  
५-वाययं-६ सरगयं-७ पुष्करगयं-८ समतारं-९—” वे वहत्त कला इस प्रकार  
से हैं लेखन-१ गणित-२ रूप-३ नाट्य-४ गीत-५ वादित्र-६ स्वरगत-७  
पुष्करगत-८ समताल-९ “ज्यं—” द्यूत-१० “जणवाय-” जनवाद-११  
“पासगं” पायक-“अट्टावय-” अष्टापद-“पोरेकच्चं-” पौरकृत्य-“दगमट्टियं-”  
दकमृत्तिका-“अन्नविहिं” अन्नविधि-पाणविहिं-पानविधि-वस्त्रविहिं वस्त्रविधि  
‘विलेपणविहिं-’ विलेपनविधि-‘सय विहिं-’ शयनविधि-‘अज्जं-’ आर्या-‘पहेलिसं-’  
ग्रहेलिका-‘मागहियं-’ मागधिका-‘णिदाइय-’ निद्रायिका-‘गाहं-’ गाथा-‘गीडियं-’

‘तए ण से कलायिए तं ददपडणं दा ग लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-  
रुपज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओय अत्थओय गथओय वणओय  
सिक्खावेहइय सेहावेहिइय’ ते कलाथार्य ते ददप्रतिज्ञारकने लेखादिक गणित  
प्रधा कलाधी भाडीने शकुनरत सुधीनी ७२ कलाओने सूत्र अर्थ अने तदुल्लेख अने  
शकुनरूपथी शीभवशे अने अनेने सिद्ध पणु करावशे त जहा लेहं १, गणिय  
२, रूपं ३, नट्ट ४ गीय ५, वादय ६, सरगय ७, पुष्करगय ८, समताल ९,  
ते ७२ कलाओ आ प्रमाणे छि-लेखन १, गणित २, रूप ३, नाट्य ४, गीत ५,  
वादित्र ६, स्वरगत ७, पुष्करगत ८, समताल ९, ‘ज्यं’ द्यूत १० ‘जणवाय’  
जनवाद ११, ‘पाशक’ पाशक, ‘अट्टावय’ अष्टापद ‘पोरेकच्चं’ पौरकृत्य ‘दगमट्टियं’  
दकमृत्तिका, ‘अन्नविहिं’ अन्नविधि, ‘पाणविहिं’ पानविधि ‘वस्त्रविहिं’ वस्त्रविधि,  
‘विलेपणविहिं’ विलेपनविधि, ‘सयणविहिं’ शयनविधि, ‘अज्जं’ आर्या, ‘पहेलियं’  
ग्रहेलिका, ‘मागहियं’ मागधिका, ‘णिदाइय’ निद्रायिका, ‘गाहं’ गाथा, ‘गीडियं’ गीतिका

गीतिका २६, श्लोक २७, हिष्णयुक्ति २८, सुवर्णयुक्ति २९, आमरणविधि  
३०, तरुणीप्रतिकर्म ३१, स्त्रीलक्षण ३२, पुरुषलक्षण ३३, इयलक्षण ३४, गज-  
लक्षण ३५, कुङ्कुललक्षण ३६, छत्रलक्षण ३७, चक्रलक्षण ३८, दण्डलक्षण ३९,  
असिलक्षण ४०, मणिलक्षण ४१, काकिणीलक्षण ४२, वास्तुविद्या ४३, नगर-  
मान ४४, स्कन्धाधारमान ४५, धार ४६, प्रतिधार ४७, व्यूह ४८, चक्रव्यूह  
४९, गरुडव्यूह ५०, शक्रव्यूह ५१, युद्ध ५२, निपुद्ध ५३, युद्धयुद्धम् ५४,  
अस्थियुद्ध ५५, मुष्टियुद्ध ५६, बाहुयुद्ध ५७, रथायुद्धम् ५८, इषल ५९,  
स्तरुणवाद ६०, धनुर्वेद ६१, हिष्णपाक ६२, सुवर्णपाक ६३, मणिपाक—६४,—

गीतिपा 'सिलोग' श्लोक-हिरण्यजुति-हिरण्ययुक्ति-सुवर्णजुति-सुवर्णयुक्ति  
'आमरणविधि' 'आमरणविधि'-'तरुणीपटिकम्' तरुणीप्रति-म-इच्छितलक्षण  
'स्त्रीलक्षण' 'पुरुषलक्षण' 'इयलक्षण' 'इयलक्षण' 'गयलक्षण' 'गज-  
लक्षण' 'कुङ्कुललक्षण' 'कुङ्कुललक्षण' 'छत्रलक्षण' 'छत्रलक्षण' 'चक्रलक्षण'  
'चक्रलक्षण' 'दण्डलक्षण' 'दण्डलक्षण' 'असिलक्षण' 'असिलक्षण' 'मणिलक्षण'  
'मणिलक्षण'-'काकिणीलक्षण' 'काकिणीलक्षण' 'वास्तुविद्या' 'नगर-  
मान'-'नगरमान'-'स्कन्धाधारमान'-'धार'-'प्रतिधार'-'व्यूह'-'चक्रव्यूह'  
'धार'-'प्रतिधार'-'व्यूह'-'चक्रव्यूह', 'गरुडव्यूह'-'सगरुडव्यूह'-'युद्ध'-'निपुद्ध'-'युद्धयुद्ध'-'अस्थि-  
युद्ध'-'मुष्टियुद्ध'-'बाहुयुद्ध'-'रथायुद्ध'-'इषल'-'स्तरुणवाद', 'हिष्णयुक्ति'-'हिष्णपाक'-'सुवर्णपाक'  
'मणिपाक'-'वाउपाक'-'मुष्टियुद्ध'-'वाउपाक'-'आतिपाके'-'पल्लो'-'धनुर्वेद'-'हिरण्यपाक'

'सिलोग' २६३ हिरण्यजुति-हिरण्ययुक्ति-सुवर्णजुति-सुवर्णयुक्ति-आमरण-  
विधि-आमरणविधि-तरुणीपटिकम्-तरुणीप्रति-म-इच्छितलक्षण-स्त्रीलक्षण  
'पुरुषलक्षण' 'पुरुषलक्षण' 'इयलक्षण' 'इयलक्षण' 'गयलक्षण' 'गज-  
'कुङ्कुललक्षण' 'कुङ्कुललक्षण' 'छत्रलक्षण' 'छत्रलक्षण' 'चक्रलक्षण'  
'दण्डलक्षण' 'दण्डलक्षण' 'असिलक्षण' 'असिलक्षण' 'मणिलक्षण'  
'मणिलक्षण'-'काकिणीलक्षण' 'काकिणीलक्षण' 'वास्तुविद्या' 'नगरमान'  
'नगरमान'-'स्कन्धाधारमान'-'धार'-'प्रतिधार'-'व्यूह'-'चक्रव्यूह'  
'धार'-'प्रतिधार'-'व्यूह'-'चक्रव्यूह', 'गरुडव्यूह'-'सगरुडव्यूह'-'युद्ध'-'निपुद्ध'-'युद्धयुद्ध'-'अस्थि-  
'युद्ध'-'मुष्टियुद्ध'-'बाहुयुद्ध'-'रथायुद्ध'-'इषल'-'स्तरुणवाद', 'हिष्णयुक्ति'-'हिष्णपाक'-'सुवर्णपाक'  
'मणिपाक'-'वाउपाक'-'मुष्टियुद्ध'-'वाउपाक'-'आतिपाके'-'पल्लो'-'धनुर्वेद'-'हिरण्यपाक'

धातुपाकं ६५ सूत्रखेलं ६६ वर्तखेलं ६७ नालिकाखेलं ६८ पत्रच्छेद्य ६९,  
कटकच्छेद्यं ७० सजीवनिर्जीव ७१ शकुनस्तम् ७२, इति ॥ सू० १७० ॥

टीका—‘तए णं त दहपडण्णं’ इत्यादि—ततः खलु तं  
दहप्रतिज्ञ दारकम् अम्बा-पितरौ-तन्माता-पितरौ, मातिरेऽष्टवर्षजातक-  
संजातकिञ्चिदधिऽष्टवर्षक जा वा-परिभाष्य गोमने तिथिकरण-  
नक्षत्रमुहूर्ते—तिथिश्च करणं च नक्षत्रं च मुहूर्तं चेत्येतेषां समाहारः तिथिकरण-  
नक्षत्रमुहूर्त, तत्र गोमनशब्दस्य सर्वत्र सम्यग्यात् गोमनायां तिथौ—नन्दा जया  
पूर्णरूपायां, गोमने करणे—स्थिरसंज्ञके, गोमने नक्षत्रे—विद्याऽध्ययनयोग्ये ज्ञान-  
वृद्धिकारके मृगशीर्षाऽऽर्द्राऽपुष्यः—अलेपा-मूल, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद,  
हस्त-चित्रा-रूपे नक्षत्रदशकेऽन्यतमे-गोमने मुहूर्ते-शुभायां वेलायां स्नातं—कृत  
स्नानं कृतवलिकर्मणं—काकादिभ्यः कृतान्नभागं कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तं—कृता-  
नि—स्पादितानि कौतुकानि—मपीतिलकादीनि मङ्गलानि—मङ्गलविधायकानि दध्य-  
क्षतादीनि नान्येव प्रायश्चित्तानि—दुःस्वप्नादि विधातार्थमवश्यकरणीयत्वात् प्रा-

सुवर्णपाक-मणिपाक-धातुपाक-सूत्रखेल-वर्तखेल-नालिकाखेल-पत्रच्छेद्य. ‘कडग  
च्छेज्जं-सजीवनिर्जीवं-सउणरुयं-७२-त्ति’ कटकच्छेद्य सजीवनिर्जीव-और शकुनस्त. ७२।

टीकार्थ—जब दहप्रतिज्ञ दारक आठ वर्ष से अधिक वय का हो  
जावेगा—तब उसके मातापिता उसे शुभ तिथि में—नन्दा—जया—पूर्णरूप तिथि  
में, शुभकरण में—स्थिरनामके शुभकरण में, तथा—विद्याध्ययनयोग्य—ज्ञानवृद्धिकारक  
मृगशीर्षा—आर्द्रा—पुष्य-अलेपा-मूल-फाल्गुनी-पूर्वाषाढा-पूर्वाभाद्रपद-हस्त-और चित्रा  
रूप नक्षत्र दशकमें, और शुभवेलामें कलाचार्य के पास ले जावेगे।  
इसके पहले वे उस बालक को स्नान करावेंगे, बायस—काक आदिकों को देने  
के लिये उससे अन्न का विभाग कराकर वितरित करावेगे. वह मपी तिलक  
आदि रूप कौतुक को तथा—दुःस्वप्न आदिरूप अमंगल के विधातक—होने से  
अवश्य करणीय ऐसे दध्यक्षतादिरूप प्रायश्चित्तको करेगा. और फिर वह समस्त

प्रेम नासिका जेव पत्रच्छेद्य “कडगच्छेज्जं सजीवनिर्जीवं सउणरुयं ७२ ति  
कटकच्छेद्य. सजीवनिर्जीवं अने शकुन इति ७२

टीकार्थ—जब दहप्रतिज्ञ दारक आठ वर्ष करता मोठो थछ जशे त्याने तेना  
मातापिता तेने शुभतिथिमा नदा जया पूर्णरूप तिथिमा, शुभकरणमा, स्थिर नामना  
शुभकरणमा, तथा विद्याध्ययन योग्य ज्ञानवृद्धिकारक मृगशीर्षा आर्द्रा पुष्य अश्वोढा  
मूल-पूर्वाषाढा-पूर्वाभाद्रपद इति अने चित्रा अने नक्षत्रदशकमा अने  
शुभवेलामा कलाचार्यनी पासे लई जशे. अने पडेला तेओ ते पाणकने  
स्नान करावशे, बायस वगेरेने आपवा मोठे तेनी पासेथी अन्नविलाग करावीने  
वितरित करशे ते मपीतिलक वगेरे इप कौतुकने तेमज उ अस्वप्न वगेरे इप अम-  
गलना विधातक होवाथी अवश्यकरणीय ओवा दध्यक्षतादि इप प्रायश्चित्तने करशे अने



ऽऽचार्यः शिक्षयिष्यतीति सम्बन्धः एवमग्रेऽपि संयोजना कर्तव्या । लेखो लिपि विषयभेदाद् द्विविधः तत्र लिपिः ब्रा-म्यादिभेदेनाष्टादशविधा. सा च समवायाङ्गसूत्रगताऽष्टादशसमवायोक्ता बोध्या । अथवा लाटादिदेशभेदतोऽनेकविधा भवति । पुनश्च बल्लकल-काष्ठदन्तलोहताम्ररजतपापाणाद्याधारेषु लेखनोत्तिरणस्युत-व्यूतच्छिन्नभिन्नदग्धसंक्रान्तितोऽक्षरविन्यासरूपा लिपिरनेकविधा भवति । विषय-माश्रित्य स्वामिभृत्यपितापुत्र-मलत्रपतिगुरुशिष्यशत्रुमित्रादिविषया कार्यं स्थौल्य-भैषम्यपरिक्लृप्तकल्पपदच्छेदादिभेदभिन्ना चानेकविधा भवति १. गणितम्-पट्टिकादि प्रसिद्धमेकद्वयादि संकलनगुणभागादिरूपम् २. रूपम् लेप्यशिला-सुवर्णरजतमणिवस्त्रचित्रादिलक्षणम् ३ । नाट्यम्-साभिनयनिरभिनयभेदभिन्नं

जो विज्ञान हो जाता है वह भी लेख ही है, इस लेख में अक्षरादिके लिखने में निपुण हो जाना यह-लेखकला है, यह लेख-लिपि, एवं-विषय भेदसे दो प्रकार का है. इनमें-ब्राह्मी आदि के भेद से लिपि १८-प्रकार की है. यह-विषय "समवायाङ्गसूत्र में १८-वें समवान में कहा गया है । अथवा-लाटादि के भेद से लिपि अनेक प्रकार भी होती है, पुनः-बल्लकल-काष्ठदन्त-लोह-ताम्र-रजत-पापाण-आदि आधारों के ऊपर अक्षरों का लिखना, उन पर अक्षरों का टांकी आदि से अङ्कित-(उकेरना) इत्यादिरूप से अक्षरविन्यासरूप लिपि अनेक प्रकार की है । विषय की अपेक्षा भी स्वामी-भृत्य-पिता-पुत्र-मलत्र-पति-गुरु-शिष्य-शत्रु और-मित्रादि को विशय करने वाली जो लिपि है वहभी कृशता स्थूलता आदिरूप से विन्यास की अपेक्षा अनेक प्रकार होती है १ । गणितरूप कला गुणा-भाग, बीजगणित-रेखागणित आदि होती है २ । रूप-कला-लेख्य, शिला, सुवर्ण, रजत-आदि के ऊपर चित्र को उतारनेरूप या-

वामा कुशणता भेगववी ते वेणकला छे आ वेण-लिपि अने विषयलेखी जे प्रका-रने छे आमा ब्राह्मी वगेरेना लेखी १८ प्रकारनी लिपि छे आ विषय 'समवायाङ्ग' सूत्रमा १८ मा समवायमा आवेल छे अथवा लाटादिना लेखी लिपिना घण्टा प्रकारे छे. अने बल्लकल, काष्ठ, दन्त, लोह, ताम्र, रजत, पापाण वगेरे आधारे पर अक्षरे लखवा, तेमनी ऊपर टांकलुथी टांकवु वगेरे रूपमा अक्षर विन्यास लिपि घण्टा प्रका-रनी छे विषयनी अपेक्षाअे पण स्वामी, भृत्य, पिता, पुत्र, मलत्र, पति, गुरु, शिष्य, शत्रु अने मित्र वगेरेने विशय करनारी जे लिपि छे ते पण कृशता स्थूलता वगेरे रूपथी विन्यासनी अपेक्षाअे अनेक प्रकारनी होय छे १. गणितकला गुणा-भाग-बीज गणित, रेखा गणित वगेरे प्रकारनी होय छे. २. रूपकला-लेख्य, शिला, सुवर्ण, रजत, वगेरेनी ऊपर चित्रने उतारवा रूप छे वेणन रूप होय छे. ३ नाट्यकला अभिनय सहित, वगर

ભિન્નરૂપાણિ યન સ તમ્, સવાલકારાધિભૂપિત-પરિષ્કૃતક-કુણ્ડલાધામમ્  
 સવે-મમસ્તાઃ હસ્તચ/બકળાન્નિવમ્સાધયયયોગ્યા અલકાગઃ-વસ્ટ્રામગમ્સપાઃ  
 તે વિભૂર્પિત સન્નિત પરિહિતશુદ્ધપ્રવચ્યવત્સ પરિષ્કૃતક-કુણ્ડલાધામરણ વ,  
 ગ્તાપ્ત મુન્નિત દદ્વતિત દારક કૃત્વા મહતા ઋદ્ધિસત્તારાસુદપન-ઋદ્ધિઃ  
 મહામુવર્ણાદિમમ્પત્ સથા સત્કારઃ મન્નાયુક્તઃ સમુદ્યયઃ-સમાગતજનમ્સુદાયો યથ  
 મ તેગ-મહોત્સવપૂર્વકમિત્યર્થઃ કલાચાર્યસ્-કલાશિક્ષકમ્પ સમીપ ઉપનમ્પતઃ । તત  
 સ્તુ મ કલાડ્ડચાય ત દદ્વપ્રતિમ્ દારક લેસ્વાદિકા ગણિતપ્રધાનાઃ ધ્રુવનન્ત  
 પર્યયમાનાઃ દ્રામપ્તતિ કળા સુવ્રતઃ-મૂલતઃ અર્વતઃ-અર્થોપદદ્ધનત પ્રચ્ચતઃ-  
 પ્રચ્ચરુપણ તાસાં સ્વચ્ચતઃ કરચત-પ્રયોગતમ્ શિષ્યવિપ્ચતે-અગ્નિપવિત્યતિ  
 સાધવિપ્ચતિ માધ્યાઃ કાર્યવિપ્ચતિઃ । તથા-તાઃ વસા વથા-લ્લમ્ સ્ત્વઃ પ્રવ્ર  
 વિન્ધ્યાસઃ તદ્વિપયા કલાશિક્ષાન લ્લમ્પ્ચોચ્યત ત સ્ત્વમ્-લ્લમ્પિમાનમ્ કલા

અલકાગે સ ક-કુણ્ડલાદિરૂપ આમર્ગાં સ અપન કો મુનિજિત કરગા ક્  
 પમાત્-મહ સમા મેં પ્રવેશ યોગ્ય છુદ્ વર્ણો કો ધારણ કરગા હમ પ્રકાર સે મુનિજિત હુવે  
 ઉસ દદ્વપ્રતિમ્ કુમાર કો વ માતાપિતા અપની ઋદ્ધિ કે અનુસાર વત્ત મુવર્ણાદિ  
 સમ્પત્તિ ક અનુમ્પ સમાગત જન-સમુદાય ક સાથ મત્કારપૂર્વક-મહોત્સવ પૂર્વક  
 ઉસ કલાચાય ક પાસ લે જાવેંગે । તથ વદ-કલાશિક્ષક ઉસ દદ્વપ્રતિમ્ દારક  
 કો ગણિતપ્રધાન લ્લમ્પાદિક વસ્ટ્રાદિ કો ધ્રુવનિસ્તાન્ત (પશ્ચિમ દુક્કન  
 ઢલ્લન વકરી) કલાત્ક મથાયત્ સિલાપેગા ચે સથ વસાવે ૭૦-ફોટી હે ।  
 યથ સ તથા અર્થોપદદ્ધન સ, પ્પ સદૃમય સે-અર્થાત્ યથ ઔર અર્થ દોનોં  
 પ્રકાર સે ઔર-પ્રયોગરૂપ મ વદ હન સથ કલાઓં ક । ઉસ વડાવેગા  
 વડાફર વદ હન કલાઓં મેં ક્રિયામકરૂપ સે ઉસ નિપુન મી કરગા । ઉન  
 ૭૨ કલાઓં ક નામ હમ પ્રકાર સે હે-લ્લમ્ અવગપિન્ધ્યાન, હમ વિપય કા

પછી તે સગસ્ત અલકાશી કટક કુ શાદિ રૂપ આવારજોખી પોતાના શરીરને મુઝ  
 બિન્ધત કરચે ત્યાર પછી તે શુદ્ધ વસ્ત્રો ધારણ કરચે । આ પ્રમાણે શુભાશિષ્યત મથેલા  
 તે દદ્વપ્રતિમ કુમારને તેના માતાપિતા પોતાની ઋદ્ધિ મુજબ વસ્ત્રમુખ્ય વધેર  
 સ પત્તિના અવરૂપ આપલ તનમુદાવની શામે સત્કારપૂર્વક મહોત્સવપૂર્વક તેને કલા  
 ચાય ખાસે લઈ લેચે ત્યારે તે કલાશિક્ષક તે દદ્વપ્રતિમકારને જલ્પિત પ્રધાન લેખા  
 દિક કલાઓશીઁ યુનિનિજાત મુખીની સમસ્ત કલાઓને વર્ણવત શીખવા ચે । આ જખી  
 કલાઓ ૭૨ છે ૧૮૪૨ અર્થોપદદ્ધનરૂપ અ-અરૂપ અને પ્રયોગરૂપ તે કલાચાય તેને  
 સમસ્ત કલાઓને આવાશ કરાવચે । અગ્ન્યાસ કરાવીને તે તેને હિવાત્મક રૂપમાં પજ  
 નિપુન બનાવચે । તે ૭૨ કલાઓના નામ આ પ્રમાણે છે લેખ-અલકાશિન્ધ્ય શ આ  
 વિપચત ૭૨ વિશાલ દોમ છે તે પજ લેખ ૭૨ આ લેખમાં અલકા વચે લખ

ऽऽचार्यः शिक्षयिष्यतीति सम्बन्धः एवमग्रेऽपि संयोजना कर्तव्या । लेखो लिपि विषयभेदाद् द्विविधः तत्र लिपिः ब्रा-म्यादिभेदेनाष्टादशविधा. सा च समवा-याङ्गसूत्रगताऽष्टादशसमवायोक्ता बोध्या । अथवा लाटादिदेशभेदतोऽनेकविधा भवति । पुनश्च वल्कलकाष्ठदन्तलोहताम्ररजतपाषाणाद्याधारेषु लेखनोक्तिरुपस्यूत-व्यूतच्छिन्नभिन्नदग्धसंक्रान्तितोऽक्षरविन्यासरूपा लिपिरनेकविधा भवति । विषय-माश्रित्य स्वामिभृत्यपितापुत्रऋतृपतिगुरुशिष्यशत्रुमित्रादिविषया कार्यं स्थौल्यं-भैषम्यपिङ्गवक्रत्वपदच्छेदादिभेदभिन्ना चानेकविधा भवति १. गणितम्-पट्टिकादि प्रसिद्धमेकद्वयादि संमलनगुणभागादिरूपम् २. रूपम् लेप्यशिला-सुवर्णरजतमणिवस्त्रचित्रादिलक्षणम् ३ । नाट्यम्-साभिनयनिरभिनयभेदभिन्नं

जो विज्ञान हो जाता है वह भी लेख ही है, इस लेख में अक्षरादिके लिखने में निपुण हो जाना यह-लेखकला है, यह लेख-लिपि, एवं-विषय भेदसे दो प्रकार का है. इनमें-ब्राह्मी आदि के भेद से लिपि १८-प्रकार की है. यह-विषय "समवायाङ्गसूत्र में १८-वें समवान में कहा गया है । अथवा-लाटादि के भेद से लिपि अनेक प्रकार भी होती है, पुनः-वल्कल-काष्ठदन्त-लोह-ताम्र-रजत-पाषाण-आदि आधारों के ऊपर अक्षरों का लिखना, उन पर अक्षरों का टांकी आदि से अङ्कित-(उकेरना) इत्यादिरूप से अक्षरविन्यास-रूप लिपि अनेक प्रकार की है । विषय की अपेक्षा भी स्वामी-भृत्य-पिता-पुत्र-ऋतृ-पति-गुरु-शिष्य-शत्रु और-मित्रादि को विषय बरने वाली जो लिपि है वहभी कृशता स्थूलता आदिरूप से विन्यास की अपेक्षा अनेक प्रकार होती है १ । गणितरूप कला गुणा-भाग, बीजगणित-रेखागणित आदि होती है २ । रूप-कला-लेख्य, शिला, सुवर्ण, रजत-आदि के ऊपर चित्र को उतारनेरूप या-

वामा कुशलता भेजवती ते लेखकला छे. आ लेख-लिपि अने विषयभेदथी जे प्रका-रनी छे आमा ब्राह्मी वगेरेना लेखथी १८ प्रकारनी लिपि छे आ विषय 'समवायाङ्ग' सूत्रमा १८ मा समवायमा आवेल छे अथवा लाटादिना लेखथी लिपिना घण्टा प्रकारे छे अने वल्कल, काष्ठ, दन्त, लोह, ताम्र, रजत, पाषाण वगेरे आधारे पर अक्षरे लखवा, तेमनी उपर टाकणथी टाकवु वगेरे रूपमा अक्षर विन्यास लिपि घण्टा प्रका-रनी छे विषयनी अपेक्षाथे पण स्वामी, भृत्य, पिता, पुत्र, ऋतृ, पति, गुरु, शिष्य, शत्रु अने मित्र वगेरेने विषय बनारी जे लिपि छे ते पण कृशता स्थूलता वगेरे रूपथी विन्यासनी अपेक्षाथे अनेक प्रकारनी होय छे १, गणितकला गुणा-भाग-बीज गणित, रेखा गणित वगेरे प्रकारनी होय छे. २, रूपकला-लेख्य, शिला, सुवर्ण, रजत, वगेरेनी उपर चित्रने उतारना रूप छे लेखकला आ लिपि अने विषयभेदथी वगेरे



चित्कृपाणि येन स तम, सर्वालङ्कारविभूषित-परिभूतकङ्कडुण्डलाद्यामरणम्  
मर्धे-ममस्ता हस्तचणकपुष्पादिपद्म-तावयवयोग्या अलङ्कारा-वस्त्रामरणरूपाः  
तैः विभूषित-सञ्चित परिहितशुद्धप्रवेश्यवस्त्र परिभूतकङ्कडुण्डलाद्यामरण च,  
एतादृश सुमञ्चित दृढप्रतिष्ठ दारक कृत्वा महता श्रुतिसत्कारसमुद्भवेन-श्रद्धि  
वस्त्रसुवर्णादिसम्पत् तथा सत्कार सत्प्राप्त्युक्तः समुद्भयः-समागतजनसमुदायो यत्र  
स तेन-महोत्सवपूर्वकमित्यर्थ कलाचार्यस्य-कलाशिक्षकस्य समीपे उपनेष्यतः । ततः  
स्नानं स कलाऽऽचार्यः स दृढप्रतिष्ठ दारक लेखादिका गणितप्रधाना शृङ्गनल  
पर्यवसाना द्वासप्तति कला सत्रत-मूलतः अर्थत-अर्थोपदर्शनत प्रभवत-  
प्रत्यक्षरूपेण तासां लेखनत करणत-प्रयोगतश्च शिक्षयिष्यते-अद्यापयिष्यति  
साभयिष्यति साध्याः कारयिष्यतिश्च । तद्यथा-साः कला यथा-लेखम् लेख अक्षर  
विन्यास तद्विषया कलाविज्ञान लेखप्रबोध्यते स लेखम्-लेखविज्ञानम् कला-

अलङ्कारों से कटक-कुण्डलादिरूप आभरणों से अपने को सुसज्जित करेगा एवं  
पश्चात्-वह समा में प्रवेश योग्य शुद्ध वस्त्रों को धारण करेगा इस प्रकार से सुसज्जित हुए  
उस दृढप्रतिष्ठ कुमार को वे मातापिता अपनी श्रद्धा के अनुसार वस्त्र सुवर्णादि  
सम्पत्ति के अनुरूप समागत जन-समुदाय के साथ सत्कारपूर्वक-महोत्सव पूर्वक  
उसे कलाचार्य के पास ले आवेंगे । तब वह-कलाशिक्षक उस दृढप्रतिष्ठ दारक  
को गणितप्रधान लेखादिक कलाओं की शृङ्गनलान्त (पक्षिक शृङ्गन  
देखने तककी) कलातक यथावत् सिखावेगा ये सब कलाएँ ७२-होती हैं ।  
सत्र से तथा अर्थोपदर्शन से, एवं तदुभय से-अर्थात् सत्र और अर्थ दोनों  
प्रकार से और-प्रयोगरूप से वह इन सब कलाओं के । उसे पढ़ावेगा  
पढ़ाकर वह इन कलाओं में क्रियात्मकरूप से उस निपुण भी करेगा । उन  
७२ कलाओं के नाम इस प्रकार हैं-लेख अक्षरविन्यास, इस विषय का

पक्षी ते समस्त कलाशिक्षां कटक कुण्डलादि इव आभारजोषी पोताना शरीरने सुस  
ज्जित करे तो तब पक्षी ते शुद्ध वस्त्रो धारण करे तो आ प्रभावे सुराभिजित यथेष्ट  
ते दृढप्रतिष्ठ कुमारने तेना मातापिता पोतानी श्रद्धा सुज्ज वस्त्रसुवर्ण वने  
स पतिना अनुरूप आवे वनसमुदायनी साथ सत्कारपूर्वक महोत्सवपूर्वक तेने कला  
चार्य प्रसे लक्ष करे तो तब कलाशिक्षक ते दृढप्रतिष्ठदारकने गणित प्रधान लेखा-  
दिक कलाजोषीशृङ्गनलान्त सुधीनी समस्त कलाजोने यथावत् शिक्षवाये तो भी  
कलाजो ७२ के सुत्ररूपे अर्थोपदर्शनरूपे, प्रत्यक्षरूपे अने प्रयोगरूपे ते कलाचार्य तेने  
समस्त कलाजोने अभ्यास करावये, अभ्यास करानीने ते तेने विद्यार्थक इवार्थ पक्ष  
निपुण बनावये, ते ७२ कलाजोना नाम आ प्रभावे ७२ लेख-अक्षरविन्यास आ  
विषयत ने विज्ञान दोष ७२ ते अर्थ लेख व लेख आ 'लेख'मा अक्षर वने लक्ष

पूर्विका त पृथक्करणकलाऽप्युपचाराद् दकमृत्तिका ताम् १५ । अन्नविधिम्-अन्न  
पाककलाम् १६ । पानविधि-जलोत्पादनकलां तत्संशोधनकलां वा १७ । वस्त्र-  
विधिम्-वस्त्रोत्पादनकलां तद्धारणकलां वा १८ । विलेपनविधि-शरीरोपरिचन्दना-  
दिलेपकलां यत्कर्दमादिलेप परिज्ञानम् १९ । शयनविधिम् शयन-शय्या पल्यङ्गादि-  
तद्विषया कला ताम् २० । आर्याम्-मात्राच्छन्दो विशेषनिर्माणकलाम् २१ ।  
प्रहेलिका-गूढाशयपदरूपाम् २२ । मागधिकाम्-भाषाच्छन्दोविशेषाम् २३ ।

है. १४। उदक में मिली हुई मिट्टी को दूर करनेवाले द्रव्य का ज्ञान होना, और-  
उसका सम्बन्ध कराकर पानी और मिट्टी को दूर कर देना यह-दकमृत्तिका  
कला है जैसे-निर्मली-फिटकिडी डाककर गन्दे पानी को निर्मल कर दिया  
जाता है. १५। भोजन बनाने की चतुराई का नाम अन्नविधि कला है, १६। भूमि का  
देखकर यहां जल निकलेगा इस प्रकारके विज्ञान का नाम पानविधि कला है. १७।  
वस्त्रों का निर्माण करने की चतुराई का नाम, या-वस्त्रों को सुन्दर ढंग से  
पहनने की चतुराई का नाम वस्त्रविधि कला है. १८। शरीर के ऊपर चन्दनादि  
का लेप करने की चतुराई का नाम-विलेपनविधि है, १९। पल्यङ्ग आदि विषयक  
ज्ञान होना-अर्थात् इस प्रकारका पल्यङ्ग शुभ होता है-इस प्रकार का पल्यङ्ग  
शुभ नहीं होता है, ऐसा ज्ञान होना इसका नाम-शयनविधि कला है २०।  
मात्रावाले छन्दों का निर्माण करना. यह-आर्या कला हैं, २१। गूढ आशयवाले  
पद्यों की निर्माणकला प्रहेलिका कला है. २२। भाषाछन्द विशेष का नाम-मागधिका  
है, इसके निर्माण की चतुराई का नाम मागधिकाकला है, २३। निद्रा लाने की विद्या

द्रव्यथी जुद्धी पाडी शक्य तेनुं ज्ञान थवु अने तेने संध करवीने पाणी अने  
भाटीने जुद्धा जुद्धा करवा आ दकमृत्तिका कला छे जेमके निर्मली-फिटकिडी नाभीने  
गदा पाणीने साक्ष करवाभा आवे छे १५ बोजन तोयार करवानी कुशणतातु नाम अन्न-  
विधि कला छे १६ जमीनने जेधने आहुथी पाणी नीकणशे आ जतना विज्ञानतुं नाम  
'पानविधि कला' छे १७ वस्त्रोना निर्माणनी कुशणतातु नाम अथवा तो वस्त्रोने सुहर  
ढंगथी पहरेवानी कणातु नाम वस्त्रविधि कला छे १८ शरीरनी उपर अन्दन वगेरेने लेप  
करवानी कुशणतातुं नाम विलेपनविधि छे १९ पल्यङ्गादि विषयकज्ञान थवु ओटखे छे  
आ जतना पल्यङ्ग शुभ होय छे, आ जतना पल्यङ्ग शुभ नथी होतो आवु ज्ञान  
थवुं, आतु नाम शयनविधि कला छे २० मात्रावाणा छे होतु निर्माण करवुं ते आयांकला छे २१  
गूढ आशययुक्त पद्योनी निर्माणकला 'प्रहेलिका-कला' छे. २२ भाषा छन्द विशेषतुं नाम  
मागधिका छे. ओनी निर्माण कुशणत

नर्तनम् ४ । गीतम्—गन्धर्वकलाज्ञानविज्ञानरूपम् ५ । वादितम्—सतविस्तारि  
मेदमिन्न वाद्यम् ६ । स्वरगतम्—यद्वज्रश्रपमादिस्वरज्ञानम् ७ । पुष्करगतम्—मृद  
इन्द्रजालादिमेदयुक्त विज्ञानम् अस्य वाद्यान्तर्गतत्वंऽपि यत्पुष्करम् तत् परम-  
सङ्गीताङ्ग-स्याप-ार्यम् ८ । समतालम्—सम-अन्यूनाधिकमात्रः ताल-गीतादि  
मानकालो यत्र तत् समतालविज्ञानमित्यर्थः ९ । घृत-प्रसिद्धम् १० । अन-  
याद-यद्विज्ञाप ११ । पाशो-पाशैः खेलारूपं घृतम् १२ । अप्यापदम्-सारि-  
फलघृतमव १३ । पौरकृत्यम्-पुराय कालः-निर्माणं तद्विषयं विज्ञानं पौरकृत्यं  
पुरनिर्माणं इत्यर्थः तत् अत्र भिषिचः पाठ उपपन्न्यते तथाहि-पौरकृत्यं 'पौरकृत्यं'  
'पौरकृत्य' इति । प्रत्ययस्य छायापि तदनुसारेणैव भवति—'पौरकृत्यम्' पौरपत्यम्  
'पुर काव्यम्' इति । तत्र पौरकृत्यं इत्यस्य व्याख्यानं कृत्वा 'पौरकृत्यं' पौरपत्यम्—  
नगररमणकला, 'पौरकृत्यं' पुर काव्यम्—पुरतः पुरतः काव्यं पवाणी निरूपण  
शीघ्रकथित्वमित्यर्थः १४ । दक्षमृत्तिकम्-उदसयुक्तमृत्तिका विवेकद्वयप्रयोग-

लिखने रूप होती है ३ । नाट्यकला-अभिनयसहित, बिना अभिनय क मेद से  
दो प्रकार की होती है ४ । गीतकला-गान आदि में निपुणता प्राप्त करनेरूप  
होती है ५ । वादिकला-सत विनत आदिरूप वादियों क बजाने रूप होती है ६ ।  
स्वरकला-यद्वज्र, श्रपम-आदि के ध्वन करनेरूप होती है ७ । पुष्करगतकला-मृद  
मुरज आदि क बजानेरूप होती है । यद्यपि—यह कला वादिकला में अन्तर्भूत हो  
जाती है, फिर भी—इस जो स्वतन्त्ररूप से अलग कला कही गई है सो—यह सङ्गीतकला  
में उसका उत्कृष्ट अङ्ग है इस बात को प्रकट करने क लिय कहा गया है ८ ।  
गीतादिकों का मान पात्र अहाँ होता है, उसको नाम ताल है, इस ताल  
का जो विज्ञान है यह समताल विज्ञान है ९ । जूआ खेलने की कतराई का नाम  
घृतकला है १० । अनयाद-यह भी एक प्रकार का विज्ञाप जूआ है, ११ । पाशों से घट  
खेलने की विज्ञान निपुणता का नाम पाशकला है १२ । सारिकल घृतरूप अष्ट  
पद कला होती है १३ । नगर क निर्माण करने की कला का नाम पौरकृत्यकला

अभिनय नाम के प्रकारनी दोष है गीतकला-सङ्गीत वनेशमां निपुणता प्राप्त  
होती है ४ । वादिकला तत् विनत वनेश वाजिज्ञाने वजाकला ते ६ । स्वर-कला-यद्वज्र,  
श्रपम वनेशतः सान भोजयतु ते ७ । पुष्करगत कला मृदज, मुरज वनेशतः ते ८,  
नो के आ कला वाजिप्रकलानी अन्तर्भूत यथ आद्य ९ । यत् घृतकला नाम के स्वतन्त्र  
रूपका लुट्टी कला गज्जी ९ । तत् तालकला नाम ९ । के आ कलातः सङ्गीत कला मां अतीव  
महत्त्वपूर्ण स्थान ९ । गीत वनेशने के आनन्दाल दोष ९ । तेन नाम ता ९ । आ  
तालतः के विमान ९ । तेसमताल विज्ञान ९ । पुष्कररमणानी पुष्करताल विज्ञान  
कला ९ । अनयाद यत् के आने विज्ञेय लुआर ९ । पाशकला लुआर रमणमां  
विज्ञेय निपुणता भोजयतु नाम वाद्यकला ९ । सारिकल घृतरूप अष्टपदकला  
कला ९ । नगरनी निर्माणकला पौरकृत्यकला ९ । १४ । (पाठ्य) भां भोजनीय आदीने के

પૂર્વિકા ત પૃથક્કરણકલાઽપ્યુપચારાદ્ દકમૃત્તિકા તામ્ ૧૫ । અન્નવિધિમ્-અન્ન  
પાકકલામ્ ૧૬ । પાનવિધિ-જલોત્પાદનકલાં તત્સંશોધનકલાં વા ૧૭ । વસ્ત્ર-  
વિધિમ્-વસ્ત્રોત્પાદનકલાં તદ્ધારણકલાં વા ૧૮ । વિલેપનવિધિ-શરીરોપરિચન્દના-  
દિલેપકલાં યજ્ઞકર્દમાદિલેપ પરિજ્ઞાનમ્ ૧૯ । શયનવિધિમ્ શયન-શય્યા પલ્યકાદિ.  
તદ્વિપયા કલા તામ્ ૨૦ । આર્યામ્-માત્રાચ્છન્દો વિશેષનિર્માણકલામ્ ૨૧ ।  
પ્રહેલિકામ્-ગૂઢાશયપદ્યરૂપામ્ ૨૨ । માગધિકામ્-ભાષાચ્છન્દોવિશેષામ્ ૨૩ ।

હૈ. ૧૪ । ઉદક મેં મિલી હુઈ મિટ્ટીં કો દૂર કરનેવાલે દ્રવ્ય કા જ્ઞાન હોના, ઔર-  
ઉસકા સમ્બન્ધ કરાકર પાની ઔર મિટ્ટી કો દૂર કર દેના યહ-દકમૃત્તિકા  
કલા હૈ જૈસે-નિર્મલી-ફિટકિડી ડાઝકર ગન્દે પાની કો નિર્મલ કરદિયા  
જાતા હૈ. ૧૫ । ભોજન વનાને કી ચતુરાઈ કા નામ અન્નવિધિ કલા હૈ, ૧૬ । ભૂમિ કા  
દેખકર યહાં જલનિકલેગા ઇસ પ્રકારકે વિજ્ઞાન કા નામ પાનવિધિ કલા હૈ. ૧૭ ।  
વસ્ત્રોં કા નિર્માણ કરને કી ચતુરાઈ કા નામ, યા-વસ્ત્રોં કો સુન્દર ઢગ સે  
પહનને કી ચતુરાઈ કા નામ વસ્ત્રવિધિ કલા હૈ. ૧૮ । શરીર કે ઉપર ચન્દનાદિ  
કા લેપ કરને કી ચતુરાઈ કા નામ-વિલેપનવિધિ હૈ, ૧૯ । પલ્યકાદિ વિપયક  
જ્ઞાન હોના-અર્થાત્ ઇસ પ્રકારકા પલ્યક શુભ હોતા હૈ-ઇસ પ્રકાર કા પલ્યક  
શુભ નહીં હોતા હૈ, એસા જ્ઞાન હોના ઇસકા નામ-શયનવિધિ કલા હૈ ૨૦ ।  
માત્રાવાલે છન્દોં કા નિર્માણ કરના. યહ-આર્યા કલાં હૈ, ૨૧ । ગૂઢ આશયવાલે  
પદ્યોં કી નિર્માણકલા પ્રહેલિકા કલા હૈ. ૨૨ । ભાષાચ્છન્દ વિશેષ કા નામ-માગધિકા  
હૈ, ઇસકે નિર્માણ કી ચતુરાઈ કા નામ માગધિકાકલા હૈ, ૨૩ । નિદ્રા ભાને કી વિદ્યા

દ્રવ્યથી જુદી પાડી શકાય તેવું જ્ઞાન થયું અને તેનો સંબંધ કરાવીને પાણી અને  
માટીને જુદા જુદા કરવા આ દકમૃત્તિકા કલા છે જેમકે નિર્મલી-ફટકડી નાખીને  
ગદા પાણીને સાફ કરવામાં આવે છે ૧૫ લોજન તૈયાર કરવાની કુશળતાનું નામ અન્ન-  
વિધિ કલા છે ૧૬ જમીનને જોઈને અહીંથી પાણી નીકળશે આ જાતના વિજ્ઞાનનું નામ  
'પાનવિધિ કલા' છે ૧૭ વસ્ત્રોના નિર્માણની કુશળતાનું નામ અથવા તો વસ્ત્રોને સુદર  
ઢગથી પહેરવાની કળાનું નામ વસ્ત્રવિધિ કળા છે ૧૮ શરીરની ઉપર ચન્દન વગેરેને લેપ  
કરવાની કુશળતાનું નામ વિલેપનવિધિ છે ૧૯ પલ્યકાદિ વિષયકજ્ઞાન થયું એટલે કે  
આ જાતનો પલ્યક શુભ હોય છે, આ જાતનો પલ્યક શુભ નથી હોતો આવું જ્ઞાન  
થયું, આનું નામ શયનવિધિ કલા છે ૨૦ માત્રાવાળા છદ્દોનું નિર્માણ કરવું તે આર્યાકલા છે ૨૧  
ગૂઢ આશયયુક્ત પદ્યોની નિર્માણકળા પ્રહેલિકા-કલા' છે ૨૨ ભાષાચ્છન્દ વિશેષનું નામ  
માગધિકા છે. એની નિર્માણ કુશળતા માગધિકા કલા છે ૨૩ નિદ્રા આવવાની વિદ્યાનું

निद्राधिकाम्—अवस्थापनी विद्यासर्पा कलाम् २४ । गाथागीतिका पति कलाद्वय  
 मापांमेदरूपाम् २५ २६ । श्लोकम्—श्लोकरचनाकलाम् कवित्वकलामित् यः २७ ।  
 हिरण्ययुक्तिम्—हिरण्यस्य—रजसस्य युक्तिः—निर्माणविधिगताम् २८ । सुवर्ण  
 युक्तिम् सुवर्णस्य युक्तिः—निर्माणविधिस्ताम् २९ । आमरणविधिम्—  
 भूषणनिर्माणकलाम् ३० । तरुणीपरिकर्म—स्त्रीणां वर्णादिद्वित्वरूपाम् ३१ । स्त्री  
 लक्षणम्, पुरुषलक्षणम्, एतद्वयं सामुद्रिकशास्त्रप्रसिद्धं विज्ञानम् ३२—३३ । इय-  
 गज-कुङ्कुट-चक्र-दण्डानां प्रसिद्धानां सप्तानां तत्तल्लक्षणज्ञानकला ३४—४० ।  
 मणिलक्षणम्—रत्नादि—परीक्षणम् ४१ । काकिणीलक्षणम्—काकिणी—चक्रवर्तिनो

का ज्ञान होना उसका नाम—निद्राधिका कला है, इस कलावाला दूसरे का  
 इस कला के प्रमाण से निद्रा में मग्न कर देता है २४ । गाथा और गीतिका  
 ये दोनों कलाएँ आर्या का ही मेदबध होती हैं, २५—२६ श्लोकरचना करने की  
 चतुर्धाई का नाम—लावकला है, इसका दूसरा नाम—कवित्वकला भी है २७ । हिरण्य  
 युक्ति—चन्द्री बनाने की कला २८ सुवर्णयुक्ति—सोना बनाने की कला २९ भूषणों के  
 निर्माण की विधि का जानना आमरणविधि कला है ३० । स्त्रियों के वर्णादिकमें  
 विधान का जानना तरुणीपरिकर्मकला है ३१ । स्त्रियों के छुमाऽश्रुम लक्षणों के  
 जानना स्त्रीलक्षणकला है ३२ । पुरुषलक्षणों का जानना यह पुरुष लक्षणकला  
 है ३३ । दोनों कलाएँ सामुद्रिकशास्त्र से सम्बन्धित हैं । घोडा—हाथी—कुङ्कुट—चक्र—  
 चक्र-दण्ड धारि (तक्षार) इन सातों के छुमाऽश्रुम लक्षणों का जानना इसका  
 नाम उस उस नाम की कला है ३४—४० । रत्नादिकों की परीक्षा करना इसका नाम  
 मणिलक्षण कला है ४१ । काकिनी कला में—चक्रवर्ती के रत्न विशेष की परीक्षा

ज्ञान यद्यु ते निद्राधिका कला ॥ आ कलाने आवुनारने जीजने आ कलाना प्रमाण  
 भी निद्रामग्न करे छे २४ आका जने अतिहा आ जने कलाको आर्षानाक लेखपमां  
 छे २५—२६ श्लोक रचनामां कुशलतात् नाम श्लोक कला छे आद्य भीषु नाम  
 कवित्वकला यद्यु ॥ २७ द्विरय्य युक्ति आर्षानावपानी कला २८ सुवर्णने युक्ति—सोद्य  
 जनावपानी कला २९ आकरयुविधि—आभूषणने जनावपानी विधीने आवुनी  
 ते आकरयुविधि कला ॥ ३० स्त्रीकोना वर्णविक्रमां वृद्धिविधान आवुते  
 तक्षणी परिकर्म कला छे ३१ स्त्रीकोना शुभाशुभ लक्षणो आवुर्षां ते स्त्रीलक्षण कला छे ३२ । पुत्र  
 लक्षणो आवुना जे पुत्र लक्षण कला छे ३३ जे जने कलाको सामुद्रिकशास्त्रनी साथे  
 सजध सजे छे घोडा—हाथी—कुङ्कुट—चक्र चक्र—दण्ड—आसि—(तक्षार) को कवित्वना शुभा  
 शुभ लक्षणो आवुषा तेना नामो ते ते कला विधिष्ट समकथा ३४—४० रत्नादिकानी परीक्षा ते  
 मणिलक्षण कला छे ४१ काकिणी कलामां—चक्रवर्तीना रत्नविशेषनी परीक्षा तेना लक्षणोना

रत्नविशेषस्तस्य लक्षणम् ४२ । वास्तुविद्या—गृहभूमेर्गुणदोषज्ञानरूपाम् ४३ ।  
नगरमानन्द—नगरस्य दश योजनाऽऽयाम-नवयोजनव्यासादि-प्रमाणज्ञानम् ४४ ।  
स्कन्धाधारमानपु-सेनानिवेशप्रमाणज्ञानम् ४५ । चारु-चारो-ज्योतिश्चारः, तद्वि-  
ज्ञानम् ४६ । प्रतिचारम्—प्रतिचरण प्रतिचारः—रोगिणः प्रतीकारकरणं, तद्विषयक-  
ज्ञानम् ४७ । व्यूहम्—सामान्यतः सैन्यरचनं, तद्विषयज्ञानम् ४८ । चक्रव्यूहम्—चक्रा-  
ऽऽकृतिकसैन्यरचनाम् ४९ । गरुडव्यूहम्—गरुडाऽऽकृतिकसैन्यरचनाम् ५० । शकट-  
व्यूहम्—शकटाऽऽकृतिकसैन्यरचनाम् ५१ । युद्धम्—युद्धकलाम् ५२ । नियुद्धम्—  
मल्लयुद्धकरणकलाम् ५३ । युद्धयुद्धम्—खड्गादिप्रक्षेपणपूर्वकमहायुद्धकलाम् ५४ ।  
अस्थियुद्धम्—अस्थिभिः—कूर्परादिभिः प्रहरणं, तत्कलाम् । यद्वा 'दृष्टियुद्धम्' इति

करने के लक्षणों को जानना ४२ । गृहभूमि के गुण दोषों का ज्ञान होना  
इसका नाम वास्तु विद्या कला है, ४३ नगरकी दशयोजन लम्बाई और नौ योजन  
चौड़ाई आदि प्रमाण का ज्ञान होना यह नगरमान कला है ४४ । सेनानिवेश  
के प्रमाण का होना—स्कन्धावार मानकला है ४५ । नक्षत्रादिक ज्योतिष्कों की  
चाल का ज्ञान होना चारककला है, ४६ । रोगों के प्रतिकार करने के उपायों का  
ज्ञान होना प्रतिचारकला है, ४७ । सामान्यरूप में सैन्यरचना का ज्ञान होना, यह  
व्यूह कला है, ४८ । चक्राकाररूप में सैन्य की रचना करना चक्रव्यूहकला है, ४९ ।  
गरुड के आकार में सैन्य की रचना करना यह गरुड व्यूहकला है, ५० । शकट  
के रूप में सैन्य की रचना करने का ज्ञान होना यह शकटव्यूहकला है ५१ । युद्ध  
करने का ज्ञान होना यह युद्धकला है, ५२ । मल्लयुद्ध करने का ज्ञान होता यह  
मल्लयुद्ध या नियुद्धकला है ५३ । तलवार आदि चलाते हुवे घमासान युद्ध करना  
यह युद्धयुद्धकला है, ५४ । अस्थि—टोहनी आदि से प्रहार करने की चतुराई का

आधारे करवाभा आवे छे ४२ गृहभूमिना गुणदोषोक्तुं ज्ञानं यत् ते वास्तुविद्याकला छे ४३  
नगरेनी दश योजना लणाई अने नवयोजना पछाणाई विगेरे प्रमाणोक्तुं ज्ञानं यत् ते  
'नगरमान कला' छे, ४४ सेनानिवेशना प्रमाणोक्तुं ज्ञानं यत् ते स्कन्धावारमान कला छे, ४५  
नक्षत्रादिक ज्योतिष्केानी गतिहु ज्ञानं यत् ते चार कला छे ४६ रोगोने मटाडवाना  
पियायोहु ज्ञान ते प्रतिचार कला छे ४७ सामान्य रूपथी सैन्यरचनाहु ज्ञानं यत् ते व्यूह  
कला छे ४८ चक्राकाररूपमा सैन्यरचना करवी चक्रव्यूह कला छे ४९ गरुडना  
आधारथी सैन्यनी रचना करवी तेहु नाम गरुडव्यूह कला छे, ५० शकटना रूपमा  
सैन्यनी रचना करवाहु ज्ञानं यत् ते शकटव्यूह कला छे ५१ युद्ध करवाहु ज्ञानं यत्  
ते युद्ध कला छे ५२ मल्लयुद्ध करवाहु ज्ञानं यत् ते मल्लयुद्ध के नियुद्धकला छे ५३  
तलवार वगेरे हेरवता लय कर युद्ध करेहु ते युद्ध युद्ध कला छे ५४ अस्थि—टोहनी वगेरेथी  
प्रहार करवानी कुशलाहु नाम अस्थियुद्ध कला छे अथवा 'दृष्टि युद्ध' आ ५४मा

निद्रायिकाम्—अवस्थापनी विद्यारूपां कलाम् २४ । गाथागीतिका चेति कलाद्वय-  
मायामेदरूपाम् २५ २६ । श्लोकम्—श्लोकरचनाकलाम् कवित्वकलामित्यर्थः २७ ।  
हिरण्ययुक्तिम्—हिरण्यस्य—रजतस्य युक्ति—निर्माणविधिस्ताम् २८ । सुवर्ण-  
युक्तिम् सुवर्णस्य युक्तिः—निर्माणविधिस्ताम् २९ । आमरणविधिम्—  
भूषणनिर्माणकलाम् ३० । तरुणीपरिकर्म—स्त्रीणां वर्णादिद्वन्द्विरूपाम् ३१ । स्त्री-  
लक्षणम्, पुरुषलक्षणम्, यतद्वय सामुद्रिकश्लाघप्रसिद्ध विज्ञानम् ३२—३३ । इष-  
गज—कुट्ट—स्त्र—चक्र—दण्डानां प्रसिद्धानां सप्तानां तत्त्वलक्षणज्ञानकला ३४—४० ।  
मभिलक्षणम्—रत्नादि—परीक्षणम् ४१ । काकिणीलक्षणम्—काकिणी—चक्रवर्तिनी

का ज्ञान होना उसका नाम—निद्रायिका कला है, इस कलावामा दूसरे को  
इस कलाक प्रमाण से निद्रा में मग्न कर देता है २४ । गाथा—और गीतिका  
ये दोनों कलाएँ आर्या का ही मेदरूप होती है, २५ २६ श्लोकरचना करने की  
घतराई का नाम—श्लोककला है, इसका दूसरा नाम—कवित्वकला भी है २७ । हिरण्य  
युक्ति—चान्दी बनाने की कला २८ सुवर्णयुक्ति—सोना बनाने की कला २९ भूषणों के  
निर्माण की विधि का जानना आमरणविधि कला है ३० । स्त्रियों के कर्मादिकमें  
विधान का जानना तरुणीपरिकर्मकला है ३१ । स्त्रियों के भ्रूमाञ्जुल लक्षणों का  
जानना स्त्रीलक्षणकला है ३२ । पुरुषलक्षणों का जानना यह पुरुष लक्षणकला  
है ३३ । दोनों कलाएँ सामुद्रिकश्लाघ से सम्बन्धित हैं । घोड़ा—हाथी—कुट्ट—स्त्र—  
चक्र—दण्ड असि (तखवार) इन सातों के भ्रूमाञ्जुल लक्षणों का जानना इसका  
नाम उस उस नाम की कला है ३४—४० । रत्नादिकों की परीक्षा करना इसका नाम  
मभिलक्षण कला है ४१ । काकिनी कला में—चक्रवर्ती के रत्न विशेष की परीक्षा

ज्ञान यत्तु ते निद्रायिका कला इति व्याख्या कलाने लक्षणाने स्त्रीलक्षणे व्याख्याना प्रकरण-  
धी नि । अत्र ३१ ३२४ व्याख्या अने अतिशय व्याख्याने कलाको व्याख्याना लक्षणधर्म  
३ २५—२६ श्लोक रचनामा कुशलतात् नाम श्लोक कला ३ व्याख्या नीलु नाम  
कवित्वकला पद्य ३ २७ हिरण्य युक्ति चान्दी बनाने वाली कला २८ सुवर्णने युक्ति—सोना  
बनाने वाली कला २९ आमरणविधि—आभूषणों के बनाने वाली विधिने आभूषण  
ते आमरणविधि कला ३ ३ स्त्रियोंना वर्णादिकमा वृद्धिनिधान लक्षणु ते  
तरुणी परिकर्म कला ३३ स्त्रियोंना भ्रूमाञ्जुल लक्षणु ते स्त्रीलक्षण कला ३३२ । पुंष  
लक्षणु लक्षणु को पुंष लक्षण कला ३३३ । को लक्षणे कलाको सामुद्रिकश्लाघनी साथे  
सम्बन्ध राखे ३ घोड़ा—हाथी—कुट्ट—स्त्र चक्र—दण्ड—असि—(तखवार) को लक्षणु शुभा  
शुभ लक्षणु लक्षणु तेना नामो ते ते कला विशिष्ट सम्बन्ध ३४—४० रत्नादिकोनी परीक्षा ते  
मभिलक्षण कला ३४१ । काकिणी कलामा—चक्रवर्तीना रत्नविशेषनी परीक्षा तेना लक्षणु

च्छेद्यम् शत्रुसैन्येषु विवक्षित शत्रुहननम् ७० सजीवनिर्जीवं-सजीव' मृतधात्वादीनां मजीवकरणं सहजस्वरूपापादनम्, निर्जीवम् सुवर्णादिधातूनां प्रयोगविशेषेण मारणम्, पारदभ्य मूर्च्छांप्रापणं वा ७१ । शकुनस्तम-पक्षिशब्दम्ः, पक्षिश-दज्ञानम्, यद्वा 'शकुनस्त'-शब्देन शकुनशास्त्रं गृह्यते, तेन वसन्तराजादिशकुनशास्त्रोक्तसर्वशकुन-ज्ञानं वा ७२ । इति आसा द्वासप्ततिकलानां क्रमन्यासः, कुत्रचिन्नामनिर्देशोऽपि च संग्रहसमयविपर्यासेन पृथक् पृथगुपलभ्यतेऽतो यत्र यद्रूपः पाठो लभ्यते तत्र

करना यह—मातृपाक कला है, ६५ । नटों की तरह सूत्रपर—वर्चपर, और—नालिका पर चढ़ कर खेलना—ये तत्—तत् नामवाली कलाएं हैं ६६-६८ । अनेकपत्रों में से किसी विवक्षित पत्र का छेदन करना पत्रच्छेद्य कला है. ६९ । शत्रु की सेना में रह कर फिर विवक्षित शत्रु को मार देना यह कटकच्छेद्य कला है. ७० । भस्मसात् किये गये सुवर्णादि धातुओं को निरुत्थ भस्म होने से पहले तक प्रयोजन विशेष के आजाने पर उस भस्म को पुनः सुवर्ण कर देना, तथा—एक राज्य से दूसरे राज्य में सुवर्ण को ले जाने का राजकीय प्रतिवन्ध रहने पर उन वाञ्छनीय सुवर्णादिधातुओं को प्रयोगविशेष से मारना, अथवा—पारे को मूर्च्छित करना—अर्थात्—अजीर्णत्व—नपुंसकत्व आदि अट्टारह दोषों को पारों से निकाल देना यह सजीव निर्जीव कला है. ७१ । पक्षियों की बोली को पहिचान लेना. अर्थात्—वसन्त राज आदि कृत शकुनशास्त्रदृष्टि से सब पक्षियों का ज्ञान होना यह—शकुनस्त कला है ७२ । इन बहत्तर कलाओं का क्रम और वहीं कहीं उनका नाम निर्देश भी संग्रह समय की भिन्नसा से पृथक् पृथक् रूपसे उपलब्ध—प्राप्त

वर्चपर अने नासीकापर यहीने रमयु अे तत्-तत् नामवाणी कलाओ छे. ६६-६८ अनेक पत्रोमाथी डोछ भास पत्रय छेदन करयु पत्रच्छेद्यकला छे. ६९ शत्रुनी सेनाभारहीने पछी डोछ विशेष शत्रुने न मारयु कटकच्छेद्य कलाछे ७० लस्मभूषमा परिणत थयेला सुवर्णुद्ध धातुओने निरुत्थ लस्म होवाथी पड़ेला प्रयोजन विशेषने लीधे इरी लस्म ने सुवर्णु वगेरे जनावयु तेमज अेक राज्यमाथी जीज राज्यमा सुवर्णुने लछ जवाने। राज्य प्रतियध होवा छता अे ते वाछनीय सुवर्णादि धातुओने प्रयोग विषयथी मारवी के पाराने मूर्च्छित करवे। अेटवे के अष्टर्णुत्व वगेरे अट्टार होषाने पारामाथी काढवा आ सल्लव निर्णवकला छे ७१ पक्षीओनी ओलीने सभल लेवी अेटवे के वस तराज वगेरे कृत शकुनशास्त्रनी दृष्टिअे जधा पक्षीओनी ओलीने सभजवी शुभाशुल जालुयु ते शकुनस्त कला छे ७२ आ ओतेर कलाओने। क्रम अने तेना नाम निर्देश



पाठ प्रतिद्वन्द्विनोभक्षुपो निर्निमेपावस्थान, तत्कलाम् ५५। मृष्टियुद्धम्—मृष्टिमिः  
 प्रहरणम् ५६। बाहुयुद्धम्—बाहुमि प्रहरणम् ५७। लतायुद्धम्—लताव्रसमिषं क्षु  
 गाव परिवेष्य प्रहरणम् ५८। इष्वस्रम् नागवाणादिदिव्यास्त्रप्रक्षपणम् ५९।  
 त्सरुवाद्—त्सरु—स्त्रमुष्टिः, अवयवे समुदायोपचारात् त्सरुशब्दनात्र त्ज्ञो  
 गृह्यते, तस्य प्रवादो यत्र शास्त्रं सत् त्सरुप्रवाद-स्वशिक्षिणाशास्त्रमित्यर्थः ६०। धनुषे  
 वम धनु क्षिप्त-शास्त्रम् ६१। हिरण्यपाक-सुवर्णपाकौ—रजत-सुवर्णयो रसायन क्रिया  
 व द्वयपक्षलाद्वयम् ६२-६३। मणिपाकम्—मणिनिर्माणकलाम् ६४। घातुपाकम्—  
 रजत ताम्रादिधातुनिर्माणकलाम् ६५। सूत्रखेल-वर्चखेल-नालिकाखेला लोकाः प्रत्येक-  
 व्या ६६—६८। पत्रच्छेदम् अनेकपत्रेषु। बध्नात् पत्रच्छेदकलाम् ६९। कटक-

नाम अस्त्रियुद्धकला है। अथवा 'मृष्टियुद्ध' इस पाठ में प्रतिस्पर्धी की आँखों  
 का अपनी चितवन से निमेषरहित कर देना सो मृष्टियुद्ध है ५५। मृष्टियों से प्रहार  
 करना इसका नाम मृष्टियुद्धकला है ५६। बाहुओं से प्रहार करना इसका नाम-बाहु  
 युद्धकला है ५७। लता जैसे वृक्षा का सपेट लेती है इसी प्रकार से क्षत्रु का घेरे  
 में डालते हुवे गाढरूप से लपेटकर फिर उस पर प्रहार करना लतायुद्ध है ५८।  
 नागवाण आदि दिव्यस्त्रों का प्रक्षेपण करना, इसका नाम-इष्वस्रकला है ५९।  
 त्सरुशब्द का अर्थ तम्बूबार की मूठ है यहाँ अवयव में समुदाय के उपचार से  
 त्सरुशब्द से त्ज्ञो का ग्रहण किया गया है—इस त्ज्ञो—तम्बूबार को चलाने में  
 निपुण होना इसका नाम—त्सरु प्रवाद है ६०। धनुष चलाने की क्रिया में  
 निपुणता प्राप्त करना यह—धनुषेद कला है, ६१। रजत-और सोना को रसायन क्रिया  
 जानना वह हिरण्यरूप, सुवर्ण पाक कला है ६२-६३। मणियों का निर्माण बिघान का  
 जानना मणि निर्माण कला है, ६४ अथवा—रजत ताम्रादि धातुओं का निर्माण

शत्रुनी आंघोने घातानी दृष्टिमी निमेष रहित करवी तेह ट्युद्ध छे ५५। मुष्टिआंघोमी  
 प्रहार करीने लक्ष्य ते मुष्टि युद्ध कला छे ५६। बाहुआंघोमी लक्ष्य ते बाहु युद्ध कला छे ५७  
 लता जेम वृक्षाने परिवेष्टित की ते छे तेम / शत्रुने आरे तरहे घेरीने आबद्धपथी  
 तेने वृक्षे लघने तेनापर हुमखी करवे ते लतायुद्ध छे ५८। नागवाण वजेरे दिव्यस्त्रोना  
 प्रक्षेपण करीने तेनु नाम इष्वस्रकला छे ५९। त्सरु शब्दना अर्थ तम्बूबारनी मूठ छे  
 अर्द्धी अन्वयवमां समुदायना उपचारथी त्सरु शब्दमी अज्ञात अवयव ६० छे अज्ञाने  
 अज्ञानवामा कुशलता भोजनवी तेतु नाम त्सरुप्रवाद छे ६०। धनुष अज्ञानवामा निपुणता  
 भोजनवी ते धनुषेद कला छे ६१। रजत अने सुवर्णना रसायनवी क्रियाआळीने रत्न अने  
 अज्ञानपाठ कला छे ६२-६३। मणिजेना निर्माणवी कला आबवी ते मणि निर्माणकला छे ६४। अथवा  
 रजत ताम्र वजेरे धातुजोत निर्माण करीने आ धातुपाककला छे ६५। नटोनीजेम शत्रुपर-

ચ્છેદ્યમ્ શત્રુસૈન્યેષુ વિવક્ષિત શત્રુહનનમ્ ૭૦ સજીવનિર્જીવ-સજીવ' મૃતધાત્વાદીનાં સજીવકરણ સહજસ્વરૂપાપાદનમ્, નિર્જીવમ્ સુવર્ણાદિધાતુનાં પ્રયોગવિશેષેણ મારણમ્, પારદમ્ય મૂર્છાપ્રાપ્તિ વા ૭૧ । શકુનસ્તમ-પક્ષિશબ્દમ્; પક્ષિશ-દજ્ઞાનમ, યદ્વા 'શકુનસ્ત' શબ્દેન શકુનશાસ્ત્રં ગૃહ્યતે, તેન વસન્તરાજાદિશકુનશાસ્ત્રોક્તસર્વશકુન-જ્ઞાનં વા ૭૨ । इति आसां द्वासप्ततिकलानां क्रमन्यासः, कुत्रचिन्नामनिर्देशोऽपि च संग्रहसमयविपर्यासेन पृथक् पृथगुपलभ्यतेऽतो यत्र यद्रूपः पाठो लभ्यते तत्र

કરના યહ-ગાતુપાક કલા હૈ, ૬૫ । તટોં કી તરહ સૂત્રપર-ચર્ચપર, ઔર-નાલિકા પર ચઢ કર खेलना-ये तत्-तत् नामवाली कलाएं हैं ६६-६८ । अनेकपत्रों में से किसी विवक्षित पत्र का छेदन करना पत्रच्छेद्य कला है. ६९ । शत्रु की सेना में रह कर फिर विवक्षित शत्रु को मार देना यह कटकच्छेद्य कला है. ७० । भस्मसात् किये गये सुवर्णादि धातुओं को निरुत्थ भस्म होने से पहले तक प्रयोजन विशेष के आजाने पर उस भस्म को पुनः सुवर्ण कर देना, तथा-एक राज्य से दूसरे राज्य में सुवर्ण को ले जाने का राजकीय प्रतिवन् रहने पर उन वाञ्छनीय सुवर्णादिधातुओं को प्रयोगविशेष से मारना, अथवा-पारे को मूर्च्छित करना-अर्थात्-अजीर्णत्व-नपुंसकत्व आदि अट्टारह दोषों को पारों से निकाल देना यह सजीव निर्जीव कला है. ७१ । पक्षियों की बोली को पहिचान लेना. अर्थात्-वसन्त राज आदि कृत शकुनशास्त्रदृष्टि से सब पक्षियों का ज्ञान होना यह-शकुनस्त वला हैं ७२ । इन वहत्तर कलाओं का क्रम और वहीं कहीं उनका नाम निर्देश भी संग्रह समय की भिन्नता से पृथक् पृथक् रूपसे उपलब्ध-प्राप्त

વર્તપર અને નાસીકાપર ચઢીને રમવું એ તત્-તત્ નામવાળી કલાઓ છે. ૬૬-૬૮ અનેક પત્રોમાથી કોઇ ખાસ પત્રનું છેદન કરવું પત્રછેદકલા છે ૬૯ શત્રુની સેનામા રહીને પછી કોઇ વિશેષ શત્રુને જ મારવું કટકચ્છેદ્ય કલા છે ૭૦ ભસ્મરૂપમા પરિણત થયેલા સુવર્ણાદિ ધાતુઓને નિરુત્થ ભસ્મ હોવાથી પહેલા પ્રયોગના વિશેષને લીધે ફરી ભસ્મ ને સુવર્ણ વગેરે બનાવવું તેમજ એક રાજ્યમાથી બીજા રાજ્યમા સુવર્ણને લઈ જવાનો રાજ-કીય પ્રતિબંધ હોવા છતાં એ તે વાછનીય સુવર્ણાદિ ધાતુઓને પ્રયોગ વિષયથી મારવી કે પારાને મૂર્છિત કરવો એટલે કે અશર્ણુત્વ વગેરે અઢાર દોષોને પારામાથી કાઢવા આ સજીવ નિર્જીવકલા છે ૭૧ પક્ષીઓની બોલીને સમજ લેવી એટલે કે વસ તરાજ વગેરે કૃત શકુનશાસ્ત્રની દૃષ્ટિએ બધા પક્ષીઓની બોલીને સમજવી શુભાશુભ જાણવું તે શકુનસ્ત કલા છે. ૭૨ આ બોતેર કલાઓનો ક્રમ અને તેના નામ નિર્દેશ

पाठ प्रतिद्वन्द्विनोऽध्वर्युः निर्निमेपावस्थान, सत्कलाम् ५५ । मृष्टियुद्धम्—मृष्टिभिः  
प्रहरणम् ५६ । बाहुयुद्धम्—बाहुभिः प्रहरणम् ५७ । लतायुद्धम्—लतात्रसमिव शृङ्ग  
गारं परिवेष्य प्रहरणम् ५८ । श्वश्रुम् नागवाणादिदिव्यास्त्रप्रक्षेपणम् ५९ ।  
त्सरुषादम्—त्सरु—जङ्घामुष्टि, ध्वजये समुदायोपचारात् त्सरुष्वेदनात्र स्वज्ञो  
गृह्यते, तस्य प्रवादो यत्र श्लाघे तत् त्सरुष्वार्द-स्वशिशुशास्त्रमित्यर्थः ६० । धनुर्वे  
दम् धनुःशिक्षणशालाम् ६१ । हिरण्यपाक-सुवर्णपाकी—रत्न-सुवर्णयो रसायन क्रिया  
त इत्ययं कलालम् ६२-६३ । मणिपाकम्—मणिनिर्माणकलाम् ६४ । वातुपाकम्—  
स्वतः ताम्रादिधातुनिर्माणकलाम् ६५ । घृत्तखेल-वर्तखेल-नालिकखेल लोकोक्तः प्रयेत-  
व्याः ६६-६८ । पत्रच्छेदम् अनेकपत्रेषु । बद्धाश्चित् पत्रच्छेदकलाम् ६९ । कटक-

नाम अस्थियुद्धकला है। अथवा 'हृष्टियुद्ध' इस पाठ में प्रतिस्पर्धी की आँखों के अपनी चितवन से निमेषरहित कर देना सो हृष्टियुद्ध है ५५। मुष्टियों से प्रहार करना इसका नाम हृष्टियुद्धकला है ५६। बाहुओं से प्रहार करना इसका नाम-बाहु युद्धकला है ५७। अथवा जैसे वृद्धा को लपेट लेती है इसी प्रकार से शत्रु को घेरे में डालते हुवे गाढरूप से लपेटकर फिर उस पर प्रहार करना लप्तायुद्ध है ५८। नागबाण आदि दिव्यरत्नों का प्रक्षेपण करना, इसका नाम-हृष्टवल्लकला है ५९। त्सरुशब्द का अर्थ तलवार की मूठ है यहाँ अवयव में समुदाय के उपचार से त्सरुशब्द से त्सर्ज का ग्रहण किया गया है—इस त्सर्ज—तलवार को चलाने में निष्ठ होना इसका नाम—त्सरु प्रवाद है ६०। घनुष चलाने की क्रिया में निष्ठता प्राप्त करना यह—घनुषेद कला है, ६१। रजत और सोना को रसायन क्रिया जानना वह हिरण्यरूप, सुवर्ण पाक कला है ६२-६३। मणियों का निर्माण विधान को जानना मणि निर्माण कला है, ६४ अथवा—रजत चाँदादि पातुओं का निर्माण

શત્રુની આંખોને પોતાની દીર્ઘી નિમિષ રહિત કરવી તે હું ટપુદ છે પણ સુટિકાઓથી પ્રદાર કરીને લઠગુ તે સુટિકા ચુંદકલા છે પદ બાદુઓથી લઠગુ તે બાદુ પુદકલા છે પણ લવા જેમ વૃક્ષોને પરિવેદિત કરી લે છે તેમજ શત્રુને બારે તરફ ઘેરીને આક્રમણથી તેને વચ્ચે લઇને તેના પર હુમલો કરવો તે લવાયુદ્ધ છે પદ નામબાણ વગેરે દિવ્યસ્ત્રોત્ત પ્રણેયજી કરવું તેનું નામ ઇન્ધ્રસ્ત્રકલા છે પદ ત્સર શબ્દનો અર્થ તરવારની મૂઠ છે. અહીં અવશ્યમાં સમુદાયના ઉપચારથી ત્સર શબ્દથી અર્જુન અલ્પ કરુ છે અર્જુને બલાવવામાં કુશળતા મેળવવી તેનું નામ ત્સરપ્રવાહ છે ૬૦ ધતુષ બલાવવામાં નિપુણતા મેળવવી તે ધતુવેદ કલા છે ૬૧ સ્મૃત અને સુવચ્ચ ના રસાયણની ક્રિયાબળીને સ્મૃત અને સ્વપ્ન પાક કલા છે ૬૨ ૬૩. મણિઓના નિર્માણની કલા બાણની તે મણિ નિર્માણકલા છે ૬૪ અથવા સ્મૃત તામ્ર વગેરે ધતુઓનું નિર્માણ કરવું આ ધતુપાકકલા છે ૬૫ નટોની જેમ સમપર-

च्छेद्यम शत्रुसैन्येषु विवक्षित शत्रुहननम् ७० सजीवनिर्जीव-सजीव मृतधात्वादीनां सजीवकरणं सहजस्वरूपापादनम्, निर्जीवम् सुवर्णादिधातूनां प्रयोगविशेषेण मारणम्, पारदस्य मूर्च्छापापणं वा ७१ । शकुनस्तम्-पक्षिशब्दम्, पक्षिशब्दज्ञानम्, यद्वा 'शकुनस्त'-शब्देन शकुनशास्त्रं गृह्यते, तेन वसन्तराजादिशकुनशास्त्रोक्तसर्वशकुन-ज्ञानं वा ७२ । इति आसां द्वासप्ततिकलानां क्रमन्यासः, कुत्रचिन्नामनिर्देशोऽपि च संग्रहसमयविपर्यासेन पृथक् पृथगुपलभ्यतेऽतो यत्र यद्रूपः पाठो लभ्यते तत्र

करना यह-धातुपाक कला है, ६५। नटों की तरह सूत्रपर-वर्चपर, और-नालिका पर चढ़ कर खेलना-ये तत्-तत् नामवाली कलाएँ हैं ६६-६८। अनेकपत्रों में से किसी विवक्षित पत्र का छेदन करना पत्रच्छेद्य कला है, ६९। शत्रु की सेना में रह कर फिर विवक्षित शत्रु को मार देना यह कटकच्छेद्य कला है, ७०। भस्मसात् किये गये सुवर्णादि धातुओं को निरुत्थ भस्म होने से पहले तक प्रयोजन विशेष के आजाने पर उस भस्म को पुनः सुवर्ण कर देना, तथा-एक राज्य से दूसरे राज्य में सुवर्ण को ले जाने का राजकीय प्रतिबन्ध रहने पर उन वाञ्छनीय सुवर्णादिधातुओं को प्रयोगविशेष से मारना, अथवा-पारे को मूर्च्छित करना-अर्थात्-अजीर्णत्व-नपुंसकत्व आदि अट्टारह दोषों को पारों से निकाल देना यह सजीव निर्जीव कला है, ७१। पक्षियों की बोली को पहिचान लेना, अर्थात्-वसन्त राज आदि कृत शकुनशास्त्रदृष्टि से सब पक्षियों का ज्ञान होना यह-शकुनस्त वला है ७२। इन बहत्तर कलाओं का क्रम और वही वही उनका नाम निर्देश भी संग्रह समय की भिन्नसा से पृथक् पृथक् उपलब्ध-प्राप्त के

वर्चपर अने नासीकापर यदीने रभषु ये तत्-तत् नामवाली कलाएँ हैं ६६-६८। अनेकपत्रों में से किसी विवक्षित पत्र का छेदन करना पत्रच्छेद्य कला है, ६९। शत्रु की सेना में रह कर फिर विवक्षित शत्रु को मार देना यह कटकच्छेद्य कला है, ७०। भस्मसात् किये गये सुवर्णादि धातुओं को निरुत्थ भस्म होना होने से पहले तक प्रयोजन विशेष के आजाने पर उस भस्म को पुनः सुवर्ण कर देना, तथा-एक राज्य से दूसरे राज्य में सुवर्ण को ले जाने का राजकीय प्रतिबन्ध रहने पर उन वाञ्छनीय सुवर्णादिधातुओं को प्रयोगविशेष से मारना, अथवा-पारे को मूर्च्छित करना-अर्थात्-अजीर्णत्व-नपुंसकत्व आदि अट्टारह दोषों को पारों से निकाल देना यह सजीव निर्जीव कला है, ७१। पक्षियों की बोली को पहिचान लेना, अर्थात्-वसन्त राज आदि कृत शकुनशास्त्रदृष्टि से सब पक्षियों का ज्ञान होना यह-शकुनस्त वला है ७२। इन बहत्तर कलाओं का क्रम और वही वही उनका नाम निर्देश भी संग्रह समय की भिन्नसा से पृथक् पृथक् उपलब्ध-प्राप्त के

तद्वपम व्याख्या विधेयति तच्चम् । पूर्वोक्तप्रकारा द्वास्त्यतिकला बलाचारो  
दृष्टिश्च शिष्ययिष्यतीति भावः । ॥ सू० १७० ॥

मूलम्—तए ण मे कलायरिणं त दृष्टपहणं दारगं लेहाइयाओ  
गणियप्पहाणाओ सउणरूपपञ्चसणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ  
य अस्थओ य गंधओ य करणओ य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मा  
पिऊण उवणेहिइ । तए ण तस्स दृष्टपहणं दारयस्स अम्मापि  
यरो तं कलायरिणं विउलेणं असणपाणस्वाइमसाइमेणं वत्थगीधु  
मल्लालकारेण सकारिस्सति, सम्भाणिस्सति, विउल जीवियाहिइ  
पीइदाणं दलइस्सति, दलइत्ता पडिविज्जेहिइति ॥ सू० १७१ ॥

छाया—ततः स्तुतः कलाचार्यस्तः दृष्टपहणं दारकं लेखादिकाः गणित  
प्रधाना शकुनरूपपर्यसानाः द्वास्त्यतिकला बलाचारो दृष्टपहणं दारयस्स अम्मापि  
यरो तं कलायरिणं विउलेणं असणपाणस्वाइमसाइमेणं वत्थगीधु  
मल्लालकारेण सकारिस्सति, सम्भाणिस्सति, विउल जीवियाहिइति । ततः स्तुतः नरूप दृष्टपहणं

होता है इसलिये जहाँ जहाँ जिस जिस रूप से पाठ मिले वहाँ । उस उस रूप से  
व्याख्या समझनी चाहिए ॥ सू० १७० ॥

‘तए ण से दृष्टपहणे—’ दारण इत्यादि—

मूलार्थ—‘तए ण’ इसके बाद ‘कलायरिणं—’ कलाचार्य ने ‘तं दृष्टपहणं—’  
उस दृष्टपहणकुमार को लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ—’ गणित प्रधान लेखा  
दिक कलाए—‘सउणरूपपञ्चसणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ अस्थओ गंधओ  
य करणओ य—सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊण उवणेहिइ—’ पहली लेख कला  
से लेकर अन्तिम शकुनरूप कलातक जिन की संख्या ७२—अंग की बाबूरी है

पक्ष संज्ञा समवना शिन्नापण्णो बुद्धाबुद्धि मास भास ३ केथी न्यां न्यां के  
के इपथी पाठ भजेत् ३ त्यां त्यां ते ते इपथी तेनी व्याख्या समवन्ती ॥ सू० १७० ॥

‘तए ण से कलायरिणं—’ इत्यादि ।

भूषणम्—‘तए ण’ त्वात् पथी ‘कलायरिणं’ कलाचार्ये ‘तं दृष्टपहणं’ ते दृष्ट  
प्रतिशब्द भूषणने ‘लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ’ गणित प्रधान लेखादिक कलाओ  
‘सउणरूपपञ्चसणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ अस्थओ गंधओ य करणओ  
य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊण उवणेहिइ’ अन्तिम शकुनरूप कला सुधीनी  
समस्त ७२ कलाओने सीधे पहली सूत्र इपथी त्वात्पथी अथ इपथी अथ इपथी

दारकस्य अम्बा-पित्रोः उपनेष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य दारकस्य अम्बापितरौ तं कलाचार्यं विपुलेन अशनपानखादिमस्वादिमेन वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण सत्कारयिष्यतः, सम्मानयिष्यतः, विपुलं जीवितार्हं प्रीतिदानं दास्यतः दत्त्वा प्रतिविसर्जयिष्यतः ॥ सू० १७१ ॥

टीका—‘तए णं’ इत्यादि—ततः खलु स कलाचार्यः तं दृढप्रतिज्ञं दारकं लेखादिकाः—लेखः—अक्षरविन्यासः आदौ—प्राथम्येत्यासां ताः—लेखप्रथमा इत्यर्थः, तथा—गणिः—प्रधानाः—गणितं प्रधानं यासु ता—गणितमुख्या इत्यर्थः, तथा शकुन-रूपव्यवसानाः—शकुनरूपं—पक्षिशब्दः पर्यवसाने—अन्ते यासां तास्तथा—पक्षिशब्द-परिज्ञानान्ताः, द्वासप्तति—द्वापञ्चतीसंख्यकाः पूर्वोक्ताः कला सूत्रं शब्दनश्च, अर्थनश्च ग्रन्थः ग्रन्थरूपेण तासां लेखनश्च, करणतः प्रयोगनश्च शिक्षयित्वा-अध्याप्य, साधयित्वा साध्याः कारयित्वा तस्य दृढप्रतिज्ञस्य, अम्बापित्रोरन्तिके उपनेष्यति प्रापयिष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य दारकस्य अम्बापितरौ तं कलाचार्यं विपुलेन प्रचुरेण अशनपानखादिमस्वादिमेन वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण च सत्कारयिष्यतः सम्मानयिष्यतः, विपुलं प्रचुरं जीवितार्हं यावज्जीवं जीवितयोग्यं प्रीतिदानम् उपहारं, दास्यतः, दत्त्वा प्रतिविसर्जयिष्यतः ॥ सू. १७१ ॥

प्रथमतः सूत्र रूप से—वाद में अर्थ रूप से—ग्रन्थरूप से, एवं—तदुभय-सूत्र और अर्थ दोनों रूप से सिखलाकर, एवं—उन्हें पहले उन्हीं के हाथ से सिद्ध कराकर उसके मातापिता के पास उसको ले आवेगा—‘तए णं तरस दढपइण्णस्स दारयस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थ-गंध-मल्लाल कारेणं सत्कारिस्संति—’ तब उस दृढप्रतिज्ञ कुमार के मातापिता उस कलाचार्य का विपुल अशन-पान-खादिम, एवं—स्वादिमरूप चार प्रकार के आहार से, तथा—वस्त्र-गन्ध-माला और—अलङ्कारों से सत्कार करेंगे—‘सम्माणे-स्संति—’ विउलं जीवियारिहं, पीइयाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसिज्जेहिंति—’

अने करणइयमा प्रयोगइयमा शीघवी अने ते कलाचार्येने पड़ेला तेना न हाथवडे प्रयोगइयमा सिद्ध करावीने पछी तेने तेना मातापितानी पासो लव नशे ‘तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारयस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाण-खाइमसाइमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सत्कारिस्संति’ त्थारणाइ ते दृढप्रतिज्ञ कुमारना मातापिता ते कलाचार्यने विपुल अशन-पान-खादिम-अने स्वादिमइय थार प्रकारना आधारथी तेमन वस्त्र गन्ध माला अने अलङ्कारेथी सत्कृत करथे “सम्माणे-स्संति विउलं जीवियारिहं, पीइयाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसिज्जेहिंति”

मूलम—तए णं से ददपइण्णे दारए उम्मुक्कवालभावे विण्णा  
यपरिणयमित्तं ज्जो वणगमणुपत्ते थावत्तरिक्कलापडिणं णवगमुत्तपडि  
घोहए अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए गायरई गधवणएकुकुल्ले  
सिगारागारचारुत्तेसे सगयगयहसियभणियचेट्टियविलासमलावुद्धाव  
निउणजुत्तोवयारकुकुल्ले हयजोही गयजोही रहजोही धाहुजोही माहु  
प्पमइी अलभोगसमत्थे साहस्सिगं त्रियालयारी यात्रिं भविस्सइ।सू १७५।

छाया—तत स्वतु स दृष्टप्रतिग्रो दारक उन्मुक्तबालभावा विघातपरिणत  
मात्रो यत्पनकमनुप्राप्तो द्वासप्ततिक्कलापण्डितो नयाद्भुसुमप्रतिवाचक अपादय  
सत्सम्मान करेगे, फिर-विपुल प्रीतिदान जा हि-उनकी जीवनमर क लिप  
जीपिका का योग्य हो सकगा-देग, यह सब कुछ परक, फिर व उम कला  
भाव को मिमजित कर देग, । टीकाथ— पट्ट हैं ॥ गू० १७१ ॥

“तए णं स ददपइण्ण दारए-इत्यादि—

मूलाव - “तए णं स ददपइण्ण” इसक बाद यह दृष्टप्रतिग्र कुमार जिनका  
“उम्मुक्कवालभावे विण्णायपरिणयमित्तं—” बालभाव व्यर्तित हो चला है, और  
—विघ्नान जिनका क्षीणता का परिपक्व अवस्था में पहुँच गया है “जोवण  
गमणुपत्तं” यौवनावस्थाप्राप्ति हुआ “वावत्तरि कलापडिणं-वर्गगमुत्तपडिबोहए—  
अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए—” ७२-कलाओं में विद्वत्पक्षसे  
निष्णात हुआ सुम अपन नवाझों को दो कान-दो नय-दो नासिकाछिद्र—एक जीम  
सम्भ्रान्त ३२३३ पछी तेमनी लुकिता भागे प्यास भाव तेदहु प्रीतिदान तेमने  
आपछी, आ मधु ३२३३ने पछी तेमो तेमने निश्चित ३२३३।

टीकाथ ३२३३ ॥ १७१॥

“तए णं स ददपइण्ण दारए” इत्यादि ।

मूलाव—तए णं स ददपइण्ण” त्वाए पछी ते दृष्टप्रतिग्र कुमार-के नेमत  
“उम्मुक्कवालभावे विण्णायपरिणयमित्तं” भाणपण पसार मध मधु ३२३३ने नेमत  
निज्ञान ज्येष्ठम परिपक्ववस्था मधी पदोपनी मधु ३२३३ “जोवणगमणुपत्तं” युवावस्था  
सफल भये, “वावत्तरि कलापडिणं वर्गगमुत्तपडिबोहए—अट्टारसविहदेसिप्प-  
गारभासाविसारए” ७२ कलाओं में विशेषज्ञी निष्णात बनेवा ते धिताना सुम  
नवाझीने-जे कान, जे नेत्र, जे नासिकाछिद्र, जेक लला, जेक स्थान धि ३२३३, जेने

विभदेशीप्रकारभाषाविशारदो गीतरतिः गान्धर्वनाटयकुशलः शृङ्गारागारचारुवेषः  
संगतगतहसितभणितचेष्टितविलाससंलापोल्लापनिपुणयुक्तोपचारकुशलो हययोधी रथयोधी  
बाहुयोधी बाहुप्रमर्दी अलंभोगसमर्थः साहसिको विकालचारी चापि भविष्यति । सू० १७२

एक रर्षन, एवं-एक मन-उनको व्यक्त-जागृत करता हुवा, अट्टारह प्रकारकी  
भाषाओं में विशारद हुवा. "गीयरई-गंधव्वणट्टकुसले-सिंगारागारचारुवेसे-  
संगयगयहसियभणियचेष्टियविलाससंलावुल्लावनिउणजुत्तोवयारकुसले-" गीत-  
एवं-रति में अनुरागयुक्त हुवा, गान्धर्व गान में-एवं नाटय क्रिया में  
पारंगत हुवा, तथा-शृङ्गारके गृह की तरह सुन्दर वेष से युक्त हुवा, समुचित गम-  
नमें-समुचितहास में-समुचित बोलने में-वातचीत करने में-समुचित चेष्टा में  
समुचित विनास में-नेत्र जनिन विकार में-समुचित संलाप में-एवं समुचित  
काकुभाषण में-दक्ष हुवा, तथा-समुचित व्यवहारों में कुशल हुवा, तथा-"हय  
जोही गयजोही-रहजोही-बाहुजोही-बाहुपमदी-अलं भोगसमर्थे-साहसिए-विनास-  
यारी यावि भविसइ-" हययुद्ध करने में कुशल हुवा गजयुद्ध करने में कुशल  
हुवा, रथयोधी हुवा, बाहुप्रयोधी हुवा, बाहुप्रमर्दी हुवा, बाहु से कठिन भी  
वस्तु को चूर-र करने में समर्थ हुवा, भोग में समर्थ हुवा. । अकेलाही  
सहस्र संख्यक भटों के साथ युद्ध करने में समर्थ हुवा, । अथवा-साहसिक-  
अधिक साहस से युक्त हुवा, मध्यरात्रि में भी विचरण करनेवाला होगा. ।

अेकभत-व्यक्तत जागृत करतो अट्टार प्रकारनी देशीय भाषाओंमां विशारद थये.  
"गीयरई-गंधव्वणट्टकुसले सिंगारागारचारुवेसे संगयगयहसियभणियचेष्टिय  
विलाससंलावुल्लावनिउणजुत्तोवयारकुसले" गीत अने रतिमा अनुरागयुक्त थयेले,  
गान्धर्वगानमा अने नाटयक्रियामा पारंगत थयेले तेमज शृंगार गृहनी  
जेम सुंदर वेषथी सुसज्ज थयेले ते दृढप्रतिज्ञ समुचित गमनमा, समुचित हासमा  
समुचित गोलवामा वातचीत करवामा, समुचित चेष्टामा, समुचित विलासमां-नेत्र-  
जनितविकारमा, समुचित संलापमा अने समुचित काकु-भाषणमा पणु दक्ष थछ जये  
आ प्रमाणे ते समुचित व्यवहारमा कुशल थये. तेमज "हयजोही-गयजोही-रह-  
जोही-बाहुजोही बाहुपमदी-अलंभोगसमर्थे-साहसिए विनासयारी यावि भवि-  
सइ" हययुद्ध करवामा गज युद्ध करवामा कुशल थये. ते रथयोधी थये, बाहुयोधी  
थये, बाहुमर्दी थये, बाहुथी अति कठोर वस्तुने दूरुं विचूरुं करवामा समर्थ थये  
लोगमां समर्थ थये अेकले ज ते सहस्र सज्जक लठोनी साथे युद्ध करवामा  
समर्थ थये अथवा साहसिक-अधिक साहसयुक्त थये. आम ते मध्यरात्रिमा पणु  
विचरण करनार थये.





तेषु निपुणः—दक्षः, तथा-युक्त पचारकुशलः—युक्तेषु-समुचितेषु उपचारेषु-व्यवहारेषु कुशलः—चतुरः, पदद्वय-य कर्मधारयः, तथा-हययोधी-हयेन युध्यते इत्येवंशीलः-हययुद्धकलाकुशल इत्यर्थः, एवं गजयोधी-स्थयोधी बाहुयोधी-इतिपदत्रयमुन्नेयम्, तथा-बाहुप्रमर्दी—बाहुभ्यां प्रमर्दतीत्येवंशीलः—बाह्याघातेन कठिनस्यापि वस्तुन श्वर्णीकरणशील इत्यर्थः, तथा-अन्नभोगसमर्थः—अत्यर्थ भोगानुभवस्मर्थः साहसिक-सहस्रेण युध्यते इति-सहस्रसंख्यकभटैः सह एकाकथेव युद्धकर्ता, 'साहसिकः इतिच्छायापक्षेतु, अतिसाहसयुक्तः, तथा-विकाटचारी-विकालेऽपि मध्यरात्रेऽपि चरतीत्येवं शीलः अतिसाहसवत्त्वाद् मध्यरात्रेऽपि विचरणशीलश्चापि भविष्यतीति । सू० १७२ ।

मूलम्—तए णं तं ददपइणं दारगं अम्मापियरो उम्मुक्क-वालभावं जाव वियालचारिं च वियाणित्ता विउलेहिं अन्नभोगेहि य पाणभोगेहि य लयणभोगेहि य वत्थभोगेहि य सयणभोगेहि य उव-निमंतिहिंति । ॥ सू० १७३ ॥

छाया—ततः खलु तं ददप्रतिज्ञां दारकम् अम्मापितरौ उन्मुक्तवालभावं यावद् विकालचारिणं च विज्ञाय विपुलैः अन्नभोगैश्च पानभोगैश्च लयनभोगैश्च वत्थभोगैश्च शयनभोगैश्च उपनिमन्त्रयिष्यतः । ॥ सू० १७३ ॥

सारगर्भित व्यङ्ग्यवचन को कहते हैं, या-बच्चों के द्वार का-का, क-कु आदि तोतली बेली को भी काक भाषण कहते हैं । ॥ सू० १७२ ॥

“तए णं ददपइणं दारगं—” इत्यादि—

मूलार्थ—“तए णं—” इसके बाद “तं ददपइणं दारगं—” उस दृढ प्रतिज्ञा दारक को “अम्मापियरो—” मातापिता “उम्मुक्कवालभावं जाव वियालचारिं च वियाणित्ता—” उन्मुक्तवालभाववाला यावत्-विकालचारी जानकर—“विउलेहिं अन्नभोगेहिं य-पाणभोगेहिं—” विपुल अन्न भोगों से विपुल पानभोगों से—“लयणभोगेहिं य वत्थभोगेहिं य सयणभोगेहिं य उवनिमंतिहिंति—” विपुल लयन-

छे अथवा गोलको वडे का-का-कु कु- वगेरे ने तोतडी गोलीने पथु काकु लापथु कहे छे सू ॥ १७२ ॥

“तए णं ददपइणं दारगं” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए णं” त्वार पछी “तं ददपइणं दारगं” ते ददप्रतिज्ञा दारकने “अम्मापियरो” माता पिता “उम्मुक्कवालभावं जाव वियालचारिं च वियाणित्ता” उन्मुक्तवालभाव युक्त यावत् विकालचारी जान्ने “विउलेहिं अन्नभोगेहिं य पाणभोगेहिं

नीका—“तण् ष” इत्यादि—ततः स्तु त दृष्टप्रतिष्ठ दारक अन्नापितरौ माला-  
पितरौ उन्मुक्तमालमावध्यतिक्रान्तधात्यावस्थ यावत्—यावत्पदन ‘विज्ञातपरिणत-  
मात्र यौवनकमनुप्राप्त द्वादशप्रतिकलापण्डित—नवाङ्गुष्ठप्रतिषोषम् अष्टादशविंश-  
दशीप्रकारमापाविशारः गीतरति गान्धर्वनान्धकुञ्जल धृङ्गारागारचारुदेष सङ्गत-  
हसितमणितयेष्टविलासकलापोष्ठापनिपुणयुक्तोपचारकुञ्जल हययोचिन गजयोचिन  
शययोचिन बाहुयोचिन बाहुप्रमर्दिनम् अलम्भोगसमर्थम् साहसिकम्’ इत्येतानि पदा-  
नि सग्राह्याणि तथा विकालभारिण च विज्ञाय विपुलैः—प्रचुरैः अन्नमोग प्रन्न-  
रूपमोग्यपदार्थैः पानमोगैः—पेयरूपमोग्यपदार्थैः, लयनमोगैः—प्रासादरूपमोग्य-  
पदार्थैः, वस्त्रमोगैः—वस्त्ररूपमोग्यपदार्थैः क्षयनमोगैः—क्षयनरूपमोग्यपदार्थैः च उप-  
निमन्त्रयिष्यत इति । दृष्टप्रतिष्ठ दारक यौवनोन्मुख दृष्टा तन्मातापितरौ अन्ना-  
दिमोगानुमोक्तुप्रयिष्यत इति चत्वारोऽय इति । ॥५०॥ १७३॥

तनुमोगो से विपुलवस्त्ररूप मोग्य पदार्थों से उपनिमन्त्रित करेंगे । अर्थात्  
उसे अब अन्नादि मोग्य विषय क लिये स्थान्त्रता देग ।

टीका—१५८ है “उन्मुक्तमालमाव जाव—” मं तो यह यावत् पद  
आया है, उससे—“विज्ञातपरिणतमात्र, यौवनकमनुप्राप्तम्, द्वादश प्रतिकला-  
पण्डितम्, नवाङ्गुष्ठप्रतिषोषम्, अष्टादशविंशदशी प्रकार मापाविशार-  
गीतरति, गान्धर्वनान्ध कुञ्जलम् धृङ्गारागारचारुदेष, सङ्गतहसितमणित-  
येष्टविलासमलापोष्ठाप निपुण युक्तोपचारकुञ्जल, हययोचिनम्, गजयोचिनम्  
शययोचिन बाहुयोचिन, बाहुप्रमर्दिनम् अलमोगसमर्थम्, साहसिकम् साह-  
सिकम् इन पीछे क पाठों का ग्रहण हुआ है ॥ ५०॥ १७३ ॥

विपुल अन्न भोज्याधी विपुल पान भोज्याधी ‘लयनमोगहिं य पयमागहिं य  
मयणमागहिं य उपनिमन्त्रिहिं’ विपुल वस्त्रन तनुभोज्याधी, विपुल वस्त्ररूप भोज्य  
पदार्थेष्ठी उपनिमन्त्रित करे भोज्य के तेने अन्न वस्त्र भोज्य विषय पदार्थेने  
भोगवबानी ५ व्यापरे

टीका १५८ है “उन्मुक्तमालमाव जाव” मं तो यावत् पद आये ॥ तेथी  
“विज्ञातपरिणतमात्र, यौवनकमनुप्राप्तम्, द्वादशप्रतिकलापण्डितम् नवाङ्गुष्ठ-  
प्रतिषोषम्, अष्टादशविंशदशी प्रकार मापा विशार, गीतरति, गान्धर्व-  
नान्ध कुञ्जलम् धृङ्गारागारचारुदेष, सङ्गतहसितमणितयेष्टविलासमलापोष्ठाप-  
निपुण युक्तोपचारकुञ्जल, हययोचिनम्, गजयोचिनम् शययोचिनम् बाहुयोचिनम्  
बाहुप्रमर्दिनम् अलमोगसमर्थम्, साहसिकम् साहसिकम् आ पाठानु म-  
यम् ॥ ५०॥ १७३ ॥

मूलम्—तए णं दृढपइण्णे दारए तेहि विउलेहिं अन्नभोएहिं  
जाव सयणभोएहिं णो सज्जिहिइ णो गिज्झिहिइ णो मुच्छिहिइ णो  
अज्झोववज्जिहिइ । से जहा णामए पउमुप्पलेइ वा पउमेइ वा जाव  
सयसहस्सपत्तेइ वा पके जाए जले संवुड्ढे णोवलिप्पइ पंकरएणं, णो-  
वलिप्पइ जलरएणं, एवामेव दृढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाए  
भोगेहि संवुड्ढे णोवलिप्पिहिइ कामरएणं, णोवलिप्पिहिइ भोग-  
रएणं, णोवलिप्पिहिइ मित्तणाइणियगसयणसंवधिपरिजणेणं । से  
णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए केवल वोहिं बुज्झिहिइ, मुंडे भवित्ता  
अगाराओ अणगारियं पवइस्सइ । से णं अणगारे भविस्सइ-ईरिया  
समिए जाव सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलते । तस्स णं भगवओ  
अणुत्तरेणं णाणेणं, एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्ज-  
वेणं मइवेणं लाघवेणं खंतीए गुत्तीए अणुत्तरेणं सव्वसंजमसुचरिय  
तवफलणिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते अणुत्तरे कसिणे  
पडिपुण्णे निरावरणे णिव्वाघाए, केवलवरनाणदंसणे समुप्पज्जिहिइ ।  
तए णं से भगवं अरहा जिणे केवली भविस्सइ, सदेवमणुयासुरस्स  
लोगस्स परियायं जाणिहिइ, तं जहा—आगइं गइं ठिइ चवणं उव-  
वायं तक्कं कड मणोमाणसिय खइयं भुत्तं पडिसेविय आवीकम्मं  
रहोकम्मं अरहा अरहस्सभागी तं तं कालं मणवयकायजोगे वट्टमा-  
णाणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे  
विहरिस्सइ । ॥ सू० १७४ ॥

टीका—“तप ण” इत्यादि—ततः स्तु त इदप्रतिष टारक अस्या पितरौ-माता-  
पितरौ उमुक्तपालमाय-व्यतिक्रान्तपाल्यावस्थ यावत्—यावत्पदन ‘विज्ञातपरिणत-  
मात्र यौवनकमनुप्राप्त दासपतिफलपण्डित—नवाङ्गमुत्प्रतिषोषरम् अष्टादशविर  
दशीप्रकारमापाविद्यारः गीतरति गा-ध्वनान्धकुञ्जल धृङ्गागगारधारुदप सङ्गतगत-  
इतितमणितचेष्टितविलासमलापोल्लापनिपुणयुक्तोपचारकुञ्जल इययोचिन गजयोचिन  
रथयोचिन बाहुयोचिन बाहुप्रमर्दिनम् अलम्भोगममथ माहसिकम्’ इत्यतानि पदा  
नि मग्राद्याणि तथा विकालवारिण च विद्याय विपुलै—प्रबुधे अन्नमोग अन्न-  
रूपमोग्यपदार्थ पानमोग—वेयरूपमोग्यपदार्थ, इयनमोग—प्रासादरूपमोग्य  
पदार्थ, यस्त्रमोग—वसनरूपमोग्यपदार्थ अयनमोग—ध्यानरूपमोग्यपदार्थ च उप  
निम्नप्रयिष्यत इति । इदप्रतिष टारक यौवनोन्मुख इष्टा तन्मातापितरौ अन्न-  
निमोगानुमोक्तप्रयिष्यत इति सूत्राश्रय इति । ॥ सू० १७३ ॥

तनुमोगां स विपुलवस्त्ररूप मोग्य पदार्थां स उपनिमन्त्रित करेंगे । अर्थात्  
उस अथ अन्नानि मोग्य विषय क लिय स्वान्विता देंगे ।

टीका—‘तप हं “उमुक्तपालमाय जाव—” में जो यह यावत् पद  
आया है, उससे—“विज्ञातपरिणतमात्र, यौवनकमनुप्राप्तम्, दादष्ट प्रतिषमा  
पण्डितम्, नवाङ्गमुत्प्रतिषोषरम्, अष्टादशविषदशी प्रकार मापाविद्याम्  
गीतरति, गन्धवनान्ध कुञ्जलम् धृङ्गागगारधारुदप, सङ्गतगतइतितमणित  
चेष्टितविलासमलापोल्लाप निपुण युक्तोपचार कुञ्जल, इययोचिनम्, गजयोचिनम्  
रथयोचिन, बाहुयोचिन, बाहुप्रमर्दिनम् अलमोगममथम्, साहसिकम् साह  
सिकम्, इन पीछ क पाठों का ग्रहण हुआ है ॥ सू० १७३ ॥

विपुल अन्न कोजेधी, विपुल पान कोजेधी ‘रूपमोगादि य सत्यमागादि य  
मयममोगादि य उचनिमतिर्दिति’ विपुल वसन वतुकोजेधी विपुल ध्यान कोजे  
पद्यकोधी उपनिमन्त्रित करे कोजे के तेने अन्न वसे कोजे विपुल पद्यकोजे  
कोजेवनानी ७२ आयी.

टीका—‘तप हं “उमुक्तपालमाय जाव” में जो यावत् पद आये है उ तेधी  
“विज्ञातपरिणतमात्र, यौवनकमनुप्राप्तम्, दादष्टप्रतिषलापण्डितम् नवाङ्गमुत्  
प्रतिषोषरम्, अष्टादशविष दशी प्रकार मापा विद्यारः गीतरति, गन्ध  
वनान्ध कुञ्जलम् धृङ्गागगारधारुदप, सङ्गतगतइतितमणित चेष्टित विज्ञास सङ्गापेनलाप  
निपुण युक्तोपचार कुञ्जल इययोचिनम् अरथोचिनम् रथोचिनम्, बाहुयोचिनम्  
बाहुप्रमर्दिनम्, अलमोगममथम्, साहसिकम् आ साङ्गत ७२  
यपु ७ ॥ १७३ ॥

स खलु तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिके केवलां वोधि भेत्यते, मुण्डो भूत्वा आगारात् अगारितां प्रव्रजिष्यति । स खलु अनगारो भविष्यति ईर्या समिता यावत् सुहुतहुताशन इव तेजसा ज्वलन् । तस्य खलु भगवतोऽनुत्तरेण ज्ञानेन, एवं दर्शनेन चरित्रेण आलयेन विहारेण, आर्जवेन मार्दवेन लाघवेन क्षान्त्या गुप्त्या मुक्त्या अनुत्तरेण सर्वं संयमसुचरिततपः फल निर्वाणमार्गेण आत्मानं भाव-

से उत्पन्न होगा—भोगों से वर्धित होगा, फिर भी वह काम से लिप्त नहीं होगा, भोगों से लिप्त नहीं होगा, मित्र-ज्ञाति-निजक-सम्बन्धि जन, और-परि-जनों में लिप्त नहीं होगा । “से णं तहारूपाणं थेराणं अंतिए केवल वोहिं बुज्झिहिइ मुंडे भवित्ता अगा ओ अणगारियं पच्चइस्सइ-” वह तो केवल तथारूपवाले स्थविरों के पास केवल वोधि को प्राप्त होगा “से णं अणगारे भविस्सइ ईरियासमिए जाव सुहुय हुयासणो इव तेयसा जलंते-” इस अगारावस्था में वह ईर्यासमिति आदि पांच समिति का पालन करेगा, यावत् अच्छीतरह जलती हुयी अग्नि की तरह वह अपने तेज से चमकेगा “तस्स णं भगवओ अनुत्तरेण णाणेण एवं दंसणेण चरित्तेण आलएणं विहारेणं अज्जवेणं महवेणं लाघवेणं खंतीए गुत्तीए मुत्तीए अनुत्तरेणं सव्वसंजम सुचरियतवफलणिग्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स—” अनुत्तरज्ञान से-अनुत्तरदर्शन से-अनुत्तरचारित्र से-अप्रतिबद्ध विहार से-आर्जवसे-मार्दव से-लाघव से-क्षमा से-गुप्ति से-त्यागसे-अनुत्तर सर्वसंयम से-सुचरित्र से-तप से-फल से-एवं निर्वाण मार्ग से आत्मा को

उत्पन्न थये, लोगथी वर्द्धित थये, छता ये कामथी लिप्त थये नहि, लोगोथी लिप्त थये नहि, मित्र ज्ञाति, निजक संगंधिजन अने परिजनोभां लिप्त थये नहि” “से ण तहारूपाणं थेराणं अंतिए-केवल वोहिं बुज्झिहिइ-मुंडे भवित्ता अगारा-ओ अणगारियं पच्चइस्सइ” ते तो इकत तथाइप स्थाविशेनी पासे केवल बोधिने प्राप्त करशे मुडित थये ओटले के अगारावस्थाभाथी अनगारावस्था प्राप्त करशे से णं अणगारे भविस्सइ ईरिया समिए जाव सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते” आ अणुगारावस्थाभा ते धर्यासमिति वगेरे पाय समितितुं पालन करशे यावत् सारी रीते प्रवृत्तित अग्निनी जेम ते पोताना तेजथी अभकशे. “तस्स णं भगव-ओ-अनुत्तरेणं णाणेणं एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्जवेणं महवेणं लाघ-वेण खंतीए गुत्तीए मुत्तीए अनुत्तरेणं सव्वसंजमसुचरिय तव फल णिग्वाण-मग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स” अनुत्तर ज्ञानथी, अनुत्तर दर्शनथी, अनुत्तर चारित्रथी, अप्रतिबद्ध विहारथी, आर्जवथी, मार्दवथी, लाघवथी, क्षमाथी, गुप्तिथी त्यागथी, अनुत्तर सर्व संयमथी, सुचरित्रथी, तपथी, इणथी, अने निर्माण मार्गथी

छाया—तत स्तु स दृष्टप्रतिष्ठो दारक स्तु विपुलपु अन्नमोगपु यावच्छ-  
यनमोगेषु नो सङ्गम्यति, नो गर्विष्यति, नो मूर्च्छिष्यति, ना अङ्गुपपन्म्यत ।  
तथधानाम-पयोत्पलमिति वा पद्ममिति वा यावत् क्षतसहस्रपत्रमिति वा पद्म  
जात वक्षे इदं नोपलिप्यत पङ्कजवत्सा, नापलिप्यत बलवत्सा, एवमत्र रत्न  
प्रतिष्ठोऽपि दारक कामैर्जातो मोगैः सञ्चिता नोपलेप्यत कामरत्ना, ना  
पलप्यत मोगरत्ना, नोपलेप्यत प्रियव्याप्तिनिजक वज्रनसम्बन्धिपरिवनन ।

“तए न दृष्टप्रतिष्ठो दारक—” इत्यादि—

मूलार्थ—‘तए न’ उसक बाद— दृष्टप्रतिष्ठ दारक तहिं बिउलहिं अन्नमोगहिं जाव  
सयणमोगेहि—’ यह दृष्टप्रतिष्ठ दारक उन विपुल अन्नरूप मोग्य पदार्थों  
में यावत्-क्षयरूप मोग्य पदार्थों में—“जो सञ्चिहि, जो गिञ्चिहि, जो  
मुच्छिहि, जो अज्जोषवन्निहि—” आसक्ति नहीं करगा, मूर्च्छिमावको प्राप्त  
नहीं होगा, मूर्च्छाभाव को प्राप्त नहीं होगा, उनमें—एक मनवाला नहीं बनेगा ।  
‘से अहाणामण पठमुप्यलेइ वा, पठमेइ वा, जाय सयसहस्सपणेइ वा पके जाय  
बले सधुई गोवलिप्यइ पङ्करणेण गोवलिप्यइ बलरण—” जैसे-पद्म, अथवा—  
उत्पल, यावत्-क्षत सहस्रपत्रोंवाला कमल पद्म में पैदा होता है, जल में बढ़ता  
है, परन्तु—वह कीचड़ से जरा भी अन्न में लिप्त नहीं होता है, पानीसे लिप्त  
नहीं होता है, “एवामेव दृष्टप्रतिष्ठो वि दारक कामेहिं जाय मोगेहिं सधुई, गो-  
वलिप्यिहि—कामरणेण गोवलिप्यिहि मागरणेण, गोवलिप्यिहि मिचणाइ  
प्रियगमयणसम्बन्धिपरिवरणे—” इसी तरह से यह दृष्टप्रतिष्ठ दारक भी काम

“तए न दृष्टप्रतिष्ठो दारक—” इत्यादि ।

मूलार्थ—‘तए न’ यह “दृष्टप्रतिष्ठो दारक तहिं बिउलहिं अन्नमोगहिं जाव  
सयणमोगेहि” ते दृष्टप्रतिष्ठ दारक ते विपुल अन्नरूप मोग्य पदार्थोंमें यावत् यय  
नइय वेअअ पदार्थोंमें “जो सञ्चिहि, जो गिञ्चिहि, जो मुच्छिहि, जो अज्जोष-  
वन्निहि—” आसक्ति उत्पन्न नहीं मूर्च्छावाप प्राप्त करे नहीं, मूर्च्छावाप प्राप्त  
करे नहीं, तेमा ववलीन यरे नहिं ‘से अहाणामण पठमुप्यलेइया, पठमेइवा  
जाय सयसहस्सपणेइवा पके जाय बले सधुई गोवलिप्यइ पङ्करणेण गोवलिप्यइ  
बलरण” जैसे पद्म है उत्पल, यावत् यत सद्धअपत्र कमल पद्म (दारक)में उत्पन्न  
होय छ, पाछीमा वृद्धि प्राप्त कर छ यह ते सदेव पद्म दारकमें  
विस धतु नही “एवामेव दृष्टप्रतिष्ठो वि दारक कामेहिं जाय मोगेहिं  
सधुई, गोवलिप्यिहि कामरणेण, गोवलिप्यिहि मागरणेण गोवलिप्यिहि, मिच  
णाइ—प्रियगमयणसम्बन्धिपरिवरणे—” अ— प्रभावे ते दृष्टप्रतिष्ठ दारकपद्म कामभी

स खलु तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिके केवलां बोधिं संत्स्यते, मुण्डो भूत्वा आगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यति । स खलु अनगारो भविष्यति ईर्या समितो यावत् सुहृतद्रुताग्नं इव तेजसा ज्वलन् । तस्य खलु भगवतोऽनुत्तरेण ज्ञानेन, एवं दर्शनेन चरित्रेण आलयेन विहारेण, आर्जवेन मार्दवेन लाघवेन क्षान्त्या गुप्त्या मुक्त्या अनुत्तरेण सर्वं संयमसुचरिततपः फल निर्वाणमार्गेण आत्मानं भाव-

से उत्पन्न होगा—भोगों से वर्धित होगा, फिर भी वह काम से लिप्त नहीं होगा, भोगों से लिप्त नहीं होगा, मित्र-ज्ञाति-निजक-सम्बन्धि जन, और-परिजनो में लिप्त नहीं होगा । “से णं तहारूपाणं थेराणं अंतिए केवलं बोहिं वुज्झिहिइ मुंडे भवित्ता अण ओ अणगारियं पव्वइस्सइ-” वह तो केवल तथारूपवाले स्थविरों के पास केवल बोधि को प्राप्त होगा “से णं अणगारे भविस्सइ ईरियासमिए जाव सुहुय हुयासणो इव तेयसा जलंते-” इम अगारावस्था में वह ईर्यासमिति आदि पांच समिति का पालन करेगा, यावत् अच्छी तरह जलती हुयी अग्नि की तरह वह अपने तेज से चमकेगा “तस्स णं भगवओ अणुत्तरेण णाणेणं एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं खंतीए गुत्तीए मुत्तीए अणुत्तरेणं सव्वसंजम सुचरियतवफलणिव्वाण-मग्गेण अप्पाजं भावेमाणस्स—” अनुत्तरज्ञान से-अनुत्तरदर्शन से-अनुत्तरचारित्र से-अप्रतिवद्ध विहार से-आजं वसे—मार्दव से-लाघव से-क्षमा से-गुप्ति से-त्यागसे-अनुत्तर सर्वसयम से सुचरित्र से-तप से फल से-एवं निर्वाण मार्ग से आत्मा को

उत्पन्न थये, लोग्गथी वर्द्धित थये, छता ये काम्थी लिप्त थये नहि, लोग्गथी लिप्त थये नहि, मित्र ज्ञाति, निजक संबंधिजन अने परिजनोभां लिप्त थये नहि” “से णं तहारूपाणं थेराणं अंतिए—केवल बोहिं वुज्झिहिइ—मुंडे भवित्ता अगारा-ओ अणगारियं पव्वइस्सइ” ते तो इक्षत तथाइप स्थाविशनी पासे केवल बोधिने प्राप्त करथे. सुडित थये ओटले के अगारावस्थाभाथी अनगारावस्था प्राप्त करथे से णं अणगारे भविस्सइ ईरिया समिए जाव सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते” आ अणुगारावस्थाभा ते ईर्यासमिति वगेरे पाय समितिनुं पालन करथे यावत् सारी रीते प्रववदित अग्निनी जेम ते पोताना तेज्जथी यमकथे. “तस्स णं भगव-ओ—अणुत्तरेणं णाणेणं एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्जवेणं मद्दवेणं लाघ-वेण खंतीए गुत्तीए मुत्तीए अणुत्तरेणं सव्वसंजमसुचरिय तव फल णिव्वाण-मग्गेण अप्पाण भावेमाणस्स” अनुत्तर ज्ञानथी, अनुत्तर दर्शनथी, अनुत्तर चारित्रथी, अप्रतिवद्ध विहारथी, आर्जवथी, मार्दवथी, लाघवथी, क्षमाथी, गुप्तिथी त्यागथी, अनुत्तर सर्व सयमथी, सुचरित्रथी, तपथी, इणथी, अने निर्माणु भागथी



यमानस्य अन्तम अनुत्तर कृत्स्न प्रतिपूज निरावरण निर्व्याधात फलवरणान  
दृश्यन समुत्पत्त्यते । तत स्वलु म मगवान अहन् जिनः क्वली भविष्यति,  
मदयमनुज्ञा-सुरस्य लोकस्य प र्वाय आरयति, सद्यथा आगति गति स्थिति च्यवनम्  
उपपात तर्क कृत मनामानसिक स्वादित मुक्त प्रतिसहितम् आविष्कर्म गृह क्रम  
अग्रा अग्रहस्य मागी तस्मिन्मित्र काले मनोराकायभाग वर्तमानानां बलोक  
मधनीवानां सूर्यमावान् जानन पश्यन् विहरिष्यति । ॥५० ॥ ७४॥

भावित कृत इव उस मगवान् दृष्टुमार क-“अगत अणुत्तर कसिण पडिपुण्य  
निरावरणे निष्वाद्याय फलवरणापदसणन समुत्पत्तिहि—’ अनत् अनुत्तर-कृत्स्न  
प्रतिपूर्ण-निरावरण निर्व्याधात ऐमे कथल ज्ञान, और कथलार्थन उत्तरा होंगे ‘तए न  
से मगव अग्रा जिण क्वली भविष्य” तव स-दृष्टुमार मगवान् अहन् जिन  
क्वली हा आवेंगे । “सदबमाणुयासुरस लागस्स परिणाय आगिहि, तजहा  
आगह, गह ठि, चरण उचचार्य, तक्क, कड मणामाणसिय स्वाइय मुत्त-पडि  
सविय—’ मनुज-द्व अमुर सहित लोक की पर्याय को जान लेंगे, जैसे—आगतिक  
का-गति के स्थिति को-च्यवन का-उपाय का-तर्क को-कुनको मनोमा सिक  
को-स्वादित को-मुक्त को-प्रतिसेवित का प्रत्यक्ष में कुन का एहाउ में कुन  
को, इस तरह से मनुज देव, अमुर सहित लोक की पर्याय को ब जानेंगे ।  
“अग्रा अग्रहस्स मागी त त काल मणवयणायजोगे बुद्धमाण्य सव्व  
लोए सव्वजीवाण सव्वमाव जाणमाण पासमाण विहरिस्स” इस तरह व  
अनगार कि जिन का अग्रपक्ष कार्य भी बस्तु नहीं रहगी सावधाचार स

आत्माने आवित कृता ते कजवान् दृष्टुमारने “अगत अणुत्तर कसिण पडिपुण्य  
निरावरणे निष्वाद्याय फलवरणापदसणन समुत्पत्तिहि—’ अनत् अनुत्तर  
कृत्स्न प्रतिपूज निरावरण निर्व्याधात ऐमे कथल ज्ञान के केवणज्ञान उपपन्न भये  
‘तए न से मगव अग्रा जिण क्वली भविष्य” त्वारे ते दृष्टुमार कजवान् अहन्  
जिन केवली कथ भये सदबमाणुयासुरस लागस्स परिणाय आगिहि, तजहा  
आगह, गह, ठि, चरण उचचार्य, तक्क, कड, मणामाणसिय स्वाइय  
मुत्त पडिसेविय” मनुज देव अमुर सहित लोक की पर्यायने आवी देखे के-स  
के आगतिने जतिने, स्थितिने च्यवनने उपपातने तर्कने, कुतने, मनोमानसिकने  
आदितने बुद्धने, प्रतिसेवितने प्रत्यक्षमा कुतने, कोकन्तकुतने आभ ते मनुज  
देव अमुर सहित लोक की पर्यायने आवी देखे “अग्रा अग्रहस्स मागी त त काल  
मणवयणायजोगे बुद्धमाण्य सव्वलोए सव्वजीवाण सव्वमाव जाणमाण  
पासमाण विहरिस्स” यह प्रमाणों ते अनगार के केमना भये प्रत्यक्ष केवी केध

टीका-नए णं से” इत्यादि-ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारकः तेषु पूर्वोक्तेषु विपु-  
लेषु-प्रचुरेषु अन्नभोगेषु ‘यावत्’-यावत्पदेन-पानभोगेषु लयनभोगेषु वस्त्रभोगेषु”  
इति सङ्गृह्यते, तथा-शयनभोगेषु च नो मूर्च्छाया-आसक्तिं न करिष्यति नो  
गर्धिष्यति-गृद्धिमानं न मविष्यति, नोमूर्च्छिष्यति-मूर्च्छाभावं नो करिष्यति नां  
अध्युपपत्त्यते-तदेकमना नो मविष्यति । अमुमेवार्थं स दृष्टान् माह-“से जहा  
णामए” इत्यादि-यथा-येन प्रकारेण उत्पलं लोहप्रसिद्धं ‘नामकं’ इति वाक्शाल-  
ङ्कारे, पद्मोत्पलमिति वा, पद्ममिति वा-‘यावत्’-यावत्पदेन-‘कुसुममिति वा  
नलिनमिति वा सुभगमिति वा सुगन्धमिति वा पुण्डरीकमिति वा महापुण्डरीक-  
मिति वा शतपत्रमिति वा सहस्रपत्रमिति वा’ इति सङ्गृह्यते, तथा-श सहस्र-  
मिति वा-अत्र इतिशब्दः स्वरूपनिर्देशे, वा शाब्दो विकल्पे, पङ्के-कर्म जातं-

वर्जित होने के कारण सुस्पष्ट सकल अचारवाले होते हुवे उस उस काल  
में मन-वचन-काय-योग में वर्तमान इस लोक के समस्त जीवों के समस्त  
भावों को जानते हुवे, और-देखते हुवे भ्रमण्डल में विहा करेगे ।

टीकार्थ-स्पष्ट है, परन्तु-इस में जो विशेषता है, वह इस प्रकार से  
है-वे दृढप्रतिज्ञदारक उन पूर्वोक्त विपुल अन्नभोगों में यावत्-पानभोगों  
में, तथा-लयनयोगों में वस्त्रभोगों में आसक्ति नहीं करेगे, गृद्धियुक्त नहीं  
बनेगे, मूर्च्छाभाव को नहीं धारण करेंगे, और-न उन में तल्लीन मन  
वाले होंगे, इस बात को दृष्टान्त द्वारा यों समझाया गया है-जैसे-पद्मोत्पल  
अथवा-पद्म, यावत् कुसुम, अथवा-नलिन या-सुभग, या-सुगन्ध, या-पुण्डरीक, या  
-महापुण्डरीक, या-शतपत्र, या-सहस्रपत्र, ये सब कमलजानि के भेदरूप कमल

वस्तु पात्री रङ्गेशे नहि सावद्यथागथी वर्जित होवा जहल सुस्पष्ट मन्त्र आचार्यणा  
यद्यने ते ते कालमा मनवयन, काय, योगमा वर्तमान आ लोकना अभस्त एवोने  
समस्त लावोने लक्षता अने जेतां लूभंडलमा विहार करेये

टीकार्थ स्पष्ट छे पणु आमा जे विशेषता छे ते आ प्रमाणे छे ते दृढप्रतिज्ञ  
दाङ्क ते विपुल अन्नलोगोमा यावत् पानलोगोमा, लयलोगोमा, वस्त्रलोगोमा तेमन्त्र  
शयनलोगोमा आसक्त थशे नहि गृद्धियुक्त अनशे नहि, मूर्च्छालावयुक्त थशे नहि  
अने तेमा तल्लीन पणु थशे नहि, ओ-वातने दृष्टात वडे आ प्रमाणे अभल-  
ववामा आवी छे छे जेस पद्मोत्पल अथवा पद्म यावत् कुसुम, अथवा नलिन छे  
सुभग, छे सुगन्ध, छे पुण्डरीक, छे महापुण्डरीक, छे शतपत्र, छे सहस्रपत्र आ अधा  
अभल जतिना अभणे कर्म (कादव)मा उत्पन्न होय छे, पाणीमा गृद्धि पासे छे

यमानस्य अनन्तम् अनुत्तर कृत्स्न प्रतिपूर्व निरावरण निर्व्याघात कवलस्वरज्ञान  
दक्षन ममुत्पत्स्यते । ततः खलु ग भगवान् अहन् जिनः कयली भविष्यति,  
मन्यमनुजा-गुणस्य लोकस्य पर्याय धारयति, सद्यथा आगतिं गतिं विषतिं प्यवनम्  
उपपात तर्कं कृत मनोमानसिक स्वादितं युक्त प्रतियोगितम् आविष्कारं रद्द कम  
अरहा अरहस्य भागी तस्मिन्स्मिन् काले मनोशक्यपयाग वर्धमानानां बलोक  
सधजीवानां सर्वभाषान् जानन पश्यन् विहरिष्यति । ॥५० ॥ ७४॥

भावित कृत हुवे उस भगवान् दूरकुमार क-“अत्रत अनुत्तर कसिण पडिपुण्य  
निरावरणे निर्व्याघाण कवलस्वरनाणदसणेन समुत्पत्तिहि—’ अनन्त अनुत्तर-कृत्स्न-  
प्रतिपूर्व निरावरण निर्व्याघात ऐसे कवल ज्ञान, और कवलसद्वर्धन उत्पन्न होंगे ‘तण न  
से भगव अरहा जिणे कयली भविस्सइ” तब य दूरकुमार भगवान् अहन्त जिन  
कयली हा जायेंगे । “सदवमाणुपासुरस लोगस्स परिणाय आगिहिइ, तज्झा  
आगइ, गइ, ठिइ धवण, उववाय, तर्क, कळ मण्णामाणसिय स्वाइय मुत्त-पडि  
सविंय—’ मनुज दय असुर सद्धित लोक की पर्याय को जान लेंगे, जैसे—आगतिक  
का-गति को विषति को-प्यवन को उपाव को तर्क को-कुण को मनोमा सिक  
को-स्वादित को युक्त का प्रतियोगित का प्रत्यक्ष में कृत क्षेत्रकान्त में कृत  
को, इस तरह से मनुज देव, असुर सद्धित लोक की पर्याय को ये जानेंगे ।  
“अरहा अरहस्स भागी त त काल मणवयणायजागे बद्धमाणाण सम्म  
लोण सम्मजीवाण सम्मभाव जाणमाण पासमाण विहरिस्सइ” इस तरह वे  
अनगार कि जिन का अप्रत्यक्ष कार्य भी परतु नहीं रहगी सावधानार स

आत्माने भावित कृतों वे भगवान् दूरकुमारने “अत्रत अनुत्तर कसिण पडिपुण्य  
निरावरण निर्व्याघाण कवलस्वरनाणदसण्य समुत्पत्तिहि—’ अनन्त अनुत्तर  
कृत्स्न प्रतिपूर्व निरावरण निर्व्याघात जैसे कवल ज्ञान जने कवलसद्वर्धन उत्पन्न करेंगे  
‘तण न से भगव अरहा जिण कयली भविस्सइ” तब ये दूरकुमार भगवान् अहन्त  
जिन कयली तर्क करेंगे । “सदवमाणुपासुरस लोगस्स परिणाय आगिहिइ, तज्झा  
आगइ, गइ, ठिइ, कारण उववाय, तर्क, कळ, मण्णामाणसिय स्वाइय  
मुत्त पडिसेविय” मनुज देव असुर सद्धित लोक की पर्यायने जानेंगे जैसे  
के आश्रितने अतिने, स्थितिने, प्यवनने उपपातने तर्कने, कृतने मनोभनशिकने  
आश्रितने मुक्तने प्रतियोगितने प्रत्यक्ष में कृतने, क्षेत्रकान्तकृतने, आश्रितने मनुज  
देव असुर सद्धित लोक की पर्यायने जानेंगे । “अरहा अरहस्स भागी त त काल  
मणवयणायजागे बद्धमाणाण सम्मलोण सम्मजीवाण सम्मभाव जाणमाण  
पासमाणे विहरिस्सइ” आ प्रभावे ते अनगार के जेगना भावे प्रत्यक्ष जेवी कृत

छिण्णसोऽए निरुवलेवे कंसप ईव मुक्तोऽए संखे इव निरंजणे जीवे विव अप्पडि-  
हपगई जच्चाणग विव जायस्सवे आदरिसफलगे इव पगडभावे कुम्मे इव  
गुत्तिदिऽए, पुक्खवरपत्तं व निरुवलेवे, गगणमिव णिरालंबणे, अणिला इव निरालए,  
चंदोइव सोमलेसे, सूरु इव दित्तेए, सागरो इव गभीरे, विहग इव व्वआ  
विप्पमुक्के, मंदरो इव अप्पकंपे, सारगमलिलं इव सुद्धहियए, खग्गिविसागं इव  
एगजाए, भारंडपक्खीव अप्पमत्ते, कुंजरो इव सोऽडीरो, वसभो इव जायत्थामे, सीहो  
इव दुद्धरिसे, वसुन्धरा इव सच्चफासविसहे' इति संग्राह्यम् । एतच्छाया च—भाषा-  
समित एषणासमित आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमितः उच्चारप्रस्रवणखेल-  
शिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनिकासमितो मनोगुप्तो वचोगुप्तः कायगुप्तो गुप्तो गुप्ते-  
न्द्रियो गुप्तब्रह्मचारी अममः अकिञ्चनः, छिन्नग्रन्थः, छिन्नस्रोताः, निरुपलेपः,  
कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः, शङ्ख इव निरञ्जनः, जीव इव अप्रतिहतगतिः, जात-  
कनकमिव जातरूपः, आदर्शफलक इव प्रकटभावः, कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः पुष्कर-  
पत्रमिव निरुपलेपः गगनमिव निरालम्बनः अनिल इव निरालयः, चन्द्र इव सोम-  
लेख्यः, सूर इव दीप्ततेजाः, सागर इव गम्भीरः, विहग इव सर्वतो विप्रमुक्तः,  
मन्दर इव अप्रकम्पः शारदसलिलमिव शुद्धहृदयः, खड्गविषाणमिव एकजातः,  
भारण्डपक्षीव अप्रमत्तः, कुंजर इव शोऽडीरः, वृषभ इव जातरथामा, सिंह इव  
दुर्द्धर्षः, वसुन्धरेव स्वस्पर्शविषहः-इति । तत्र भाषासमित—भाषासमितियुक्तः,  
एषणासमितः—एषणायाम्—भक्ताद्येषणायाम् उद्गमादिदोषवर्जनपूर्वकं समितः—समिति  
युक्तः, विशुद्धाहारादिग्रहणान्वेषणोपयोगयुक्त इत्यर्थः । तथा आदानभाण्डमात्रनिक्षे-  
पणासमितः—आदाने ग्रहणे—अस्य भाण्डामात्रयोरित्यनेन सम्बन्धः, प्रत्यासत्तिन्या-  
यात् साहचर्यात् देहली दीपन्यायाद् वा, भाण्डस्य—पात्रस्य मात्रस्य—वस्त्राद्युप-  
करणस्य च निक्षेपणायाम्—अवस्थापने समितः—प्रतिलेखनप्रमार्जनपूर्वकं प्रवृत्ति-

समिति से युक्त होना इसका नाम भाषासमिति युक्त है । भक्त आदिकी  
एषणा में उद्गमादि दोषवर्जनपूर्वक जो समित हेन । इसका नाम एषणा-  
समिति है, अर्थात् विशुद्ध आहार आदि का ग्रहण करने और अन्वेषण करने में  
उपयोगयुक्त होना उसका नाम—एषणासमित है । भाण्ड—पात्र—मात्र वस्त्रादि  
उपकरण का निक्षेपण रखने में एवं—अवस्थापन में समित होना, इसका

भक्त वगैरेणी ओषणाभा उद्गमादि दोषवर्जनपूर्वक समित थसे तेनु नाम ओषणा  
समिति छ ओटवे के विशुद्ध आहार वगैरे अहुणु करवा अने अन्वेषणु करवाभा  
उपयोग युक्त थवुं तेनु नाम ओषणा समिति छ, लाउ-पात्र-मात्र-वस्त्रादि उपकरणना  
निक्षेपणभा अने अवस्थानभा समितियुक्त थवु तेनु नाम आदानलाउमात्र निक्षेपण

समुत्पन्न, बड़े सगढ़ बुद्धि गतमपि नोपलिप्यते—नोपलिप्त भवति, पञ्जरजसा, नोपलिप्यत प्लवजसा, इत्येष्टासमुक्त्वा दाष्टान्तिकमाह—‘एवमथ’ इत्यादि । एवमथ अनेन प्रसारणं च दृष्टप्रतिज्ञोऽपि तारक कामे आतात्रपि भागे सहृदो बुद्धि गताऽपि कामरजसा नोपलिप्यत-उपलिप्ता न भविष्यति, भोगरजसा नाप्येष त उ लिप्ता न भविष्यति, तथा मित्रज्ञातिनिजसम्बन्धनसम्बन्धि परि जनेन—तत्र मि णि-सुहृद्, शातय माता-पिता-भ्रात्राद निजका-स्वकीया पुत्रादयः स्वजनाः पितृव्यादयः सम्बन्धि—स्वसुरपुत्रसुरादयः, परिजनाः तर्मादामात्रं एतयां समाहास्यतेन सह नोपलिप्यत-उपलिप्ता ना भविष्यति । अभितु म मन्तु इत्यादि अनगारा भविष्यति, कीदृशोऽनगारा भविष्यति? इरियाभिमि इत्यादि । इर्याभिमि इर्याभिमि न युक्त, ‘यावन् यावत्पदन मामाभिमि एवमाभिमि आयाममडमभिमिस्वेवगाममि उच्चारपासवणसेलसिञ्चणञ्छुपरिहाराणि गाममि मागुष वयगुत कागुत गुण गुणिदिगु गुतव मयारी अममे अकिष्य छिप्यगधि यद्यपि-कीचड म उत्पन्न हात हैं, टल में हृदिपात हैं, परन्तु फिर भी कीचड गजस लिप्य नहीं होत हैं । अलग्ज म सम्बन्धि नहीं हात हैं, इसी प्रकार से दृष्टप्रतिज्ञ भी तारक काम से उत्पन्न हुवा है भोगों से भविष्य हुवा है, फिर भी वह काम ज स उल्लिख नहीं बनगा, मित्रजनो से ज्ञातिजनो स माता पिता भ्राता आदि वा स निजजनो स पुत्रादिको से स्वजनो से पितृव्यादि को स सम्बन्धि जनो से मन्तु पुत्रसुर आदि स, एव परिजनो स तर्मादाम आदि को स सम्बन्ध नहीं हागा । किन्तु वह दृष्टप्रतिज्ञ अनगारा होगा । इर्याभिमि का पालन करगा, यावन् यावत् समिति का उपपा ममिति का अदानमप्यमात्र निक्षपमसमिति का उच्चरपसवण सेल सिञ्चण बल्ल परिच्छपनिजा समिति का पावन करगा, मनोगुणि का वचन गुणि का कापगुणिका पालन करगा यहाँ गुण समतना आदिय । दिन मित्रप्रिय वचन बोचना इसका नाम मापाममिति है । इस

पक्ष उवा के आदये विम वता नही आमत ते दृष्टप्रतिज्ञ दारक पक्ष आभयो उपपन्न गये आनया मवदिन यथे उवाके ते आभरकथी उपपत्ति नहि यथे मित्रजनोभी पुत्रादिकोभी स्वजनोभी पितृव्यादिकोभी सज्जोभीजनोभी मन्तुर पुत्रसुरा वनेदोभी अने भवेकनाथी दाम्नीयस वनेदोभी सगलक यथे नहि पक्ष ते दृष्टप्रतिज्ञ अनगार यथे उपपत्तिमिति उवाकन उरये आगत आया समितितु कोषतु समितितु आदान एव मात्र निमेषमसमिति उवाकन प्रमण-जेत, सिद्धाव वरत-चरस्थपनिजा ममिति उवाकन उरये प्रमोक्षमिति वयाधुमिति उवाकन उरये । आग अदी अभवपु के के दित-भित प्रियवचन के तपु तेत नाम आभ ममिति उ

छिण्णसे। निरुवलेवे कंसप ईव मुक्तो। मंखे इव निरंजणे जीवे विव अप्पडि-  
हपगई न्चणाणां विव जायस्वे आदरिसकलगे इव पगडभावे कुम्मे इव  
गुत्तिदिण, पुक्खरपत्तं व निरुवलेवे, गणमिव गिरालेवणे, अणिलो इव निगलए,  
चंदोइव सोमलेसे, मूगे इव दित्तेए, सागगे इव गंभीरे, विहग इव व्वआ  
विष्णुके, मंदरो इव अप्पकंप, मारगगलिलं इव मुद्धहियण, खग्गिविमाण इव  
एगजाए. भारण्डपक्षीव अप्पमत्ते, कुंजरो इव मंडीगे, वयमो इव जायत्थामे, सीहो  
इव दुद्धरिसे, वसुन्धरा इव मच्चफासविसहं' इति मंग्राह्यम् । एतच्छाया च—भापा-  
समित एण्णाममित आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणाममितः उच्चारप्रसवणखेल-  
गिह्वाणजलपरिष्ठापनिकासमितो मनोगुप्तो वचोगुप्तः कायगुप्तो गुप्तो गुप्ते-  
न्द्रियो गुप्तत्रयचारी अममः अकिञ्चनः, छिन्नग्रन्थः, छिन्नस्रोताः, निरुपलेपः,  
कास्थपात्रीव मुक्तोद्यः, शङ्ख इव निरञ्जनः, जीव इव अप्रतिहतगतिः, जात-  
कनकमिव जातरूपः, आदर्शकलक इव प्रकटभावः, कर्म इव गुप्तेन्द्रियः पुष्कर-  
पत्रमिव निरुपलेपः गगनमिव निरालम्बनः अनिल इव निरालयः, चन्द्र इव सोम-  
लेख्यः, सूर इव दीप्ततेजाः, सागर इव गम्भीरः, विहग इव स्वर्गतो विप्रमुक्तः,  
मन्दर इव अप्रकम्पः शारदसलिलमिव शुद्धहृदयः, खड्गविषाणमिव एकजातः,  
भारण्डपक्षीव अप्रमत्तः, कुञ्जर इव शोण्डीर, वृषभ इव जातरथामा, सिंह इव  
दुर्द्धर्षः, वसुन्धरेव स्वम्पर्शविपहः इति । तत्र भापाममित—भापाममितियुक्तः,  
एण्णाममितः—एण्णायाम्—भक्ताद्येपणायाम् उद्गमादिदोषवर्जनपूर्वकं समितः—समिति  
युक्तः, विशुद्धाहारादिग्रहणान्वेषणोपयोगयुक्त इत्यर्थः । तथा आदानभाण्डमात्रनिक्षे-  
पणाममितः—आदाने ग्रहणे—अस्य भाण्डामात्रयोरित्यनेन सम्बन्धः, प्रत्यसत्तिन्या-  
यात् साहचर्यात् देहली दीपन्यायाद् वा, भाण्डस्य—पात्रस्य मात्रस्य—वस्त्राद्युप-  
करणस्य च निक्षेपणायाम्—अवस्थापने समितः—प्रतिलेखनप्रमार्जनपूर्वकं प्रवृत्ति-

समिति से युक्त होना इसका नाम भापामिति युक्त है । भक्त आदि की  
एण्णामें उद्गमादि दोषवर्जनपूर्वक जो समित है न. इसका नाम एण्णा-  
समिति है, अर्थात् विशुद्ध आहार आदि का ग्रहण करने और अन्वेषण करने में  
उपयोगयुक्त होना उसका नाम—एण्णाममित है । भाण्ड—पात्र—मात्र वस्त्रादि  
उपकरण का निक्षेपण रखने में एवं—अवस्थापन में समित होना. इसका

भक्त वगैरेनी ओषण्णामा उद्गमादि दोषवर्जनपूर्वक समित थसे, तेनु नाम ओषण्ण  
समिति छे ओटवे छे विशुद्ध आहार वगैरे अडण्ण करवा अने अन्वेषण करवाभा  
उपयोग युक्त थवु तेनु नाम ओषण्ण समिति छे. भाण्ड-पात्र-मात्र-वस्त्रादि उपकरणुना  
निक्षेपणुमा अने अवस्थानमा समितियुक्त थवु तेनु नाम आदानभाण्डमात्र निक्षेपणुमा

युक्त इत्थं, तथा—उच्चारप्रसङ्गमलशिक्षणबद्धपरिष्ठापनिकामिति—इत्थं  
उच्चार—शुद्धि, प्रसङ्ग—मूल, मल—शल्पा—उपलक्षणत्वान्निष्ठापनस्यापि  
भूयदिति भाषाप्रसङ्गमपि ग्रहणम् शिक्षण नासिकामल, जड—पदजमलम्,  
एतत् परिष्ठापनिका, परिष्ठापना-परित्याग, सर्व परिष्ठापनिका, तस्या  
ममित—मन् गुपयन्ति, तथा—मनोगुप्ति—मनागुप्तिस्त्रया—तत्र आगत  
स्यानानुषङ्गि कल्पनाजालवियोगरूपा प्रथमा १, शास्त्रानुसारिणी पर  
लक्षणाधिका धर्मशानानुषङ्गिणी माध्यम्यपरिणतिद्वितीया २, मनोगुप्तिनिगुप्त  
योगनिर्गोचरम्यामापिनी आत्ममयरूपा तृतीया ३, तदुक्तं यागशास्त्र—

“विमुक्तकल्पनाजाल समत्वं गुप्तिरिति ।

आत्मागम मनसज्ज मनागुप्तिरुदात्ता ११” इति ।

नाम आत्मानमात्रमात्रनिश्चयणाममिति है, अर्थात् प्रतिलिखन, प्रमाजनपूर्वक  
प्रवृत्ति र युक्त होना इसका नाम आदानभाण्डमात्रनिश्चयणा समिति है।  
उच्चार नाम-शुद्धि का है, प्रसङ्ग नाम-मूल का है, मल नाम शल्पा का है,  
उपलक्षण स धूक का भी यही ग्रहण किया गया है । शिक्षणनाम स यही  
नासिका का मल गृहीत होता है, (नासामल तु सिषाण  
इति प्रम) । स्वच्छ मल का नाम—शल्पा है इनकी परिष्ठापनिका में  
त्यागमं ममित होना, तमका नाम—उच्चारप्रसङ्गमलशिक्षणबद्धपरि  
ष्ठापनसमिति है । मनोगुप्ति—तीन प्रकार की है, इनमें आर्त रौद्र प्यानानु  
षङ्गी कल्पनाजाल का परित्याग करना इसका नाम प्रथम मनोगुप्ति है—१  
शास्त्रानुसारिणी-परलोच साधिका-धर्मशानानुषङ्गिणी एवं माध्यम्य परिणतिरूप  
द्वितीय मनोगुप्ति है—२ मनोगुप्ति क निर्गोचर योग निरोधकरनवाली मापिनी  
जो आत्ममयरूप गुप्ति है यह तृतीय मनोगुप्ति है । योगशास्त्र में कहा है—

समिति है कोहो है प्रतिलिखन, अभाजनपूर्वक अवृत्तिपूर्वक यत्न ते आदान भा-  
मात्र निश्चयणा समिति है शुद्धि का नाम उच्चार मूल नाम प्रसङ्ग शल्पा  
नाम जल है उपलक्षणरूपी जड यत्न अर्थात् अलक्ष्य करणार्थ आनुष्ठ है सिषाण  
नाम अर्थात् नासिका मल को उपलक्ष्य यत्न है (सिषाण काशपात्र व साह  
नासिकय मल इति मेदिनी कोषः) स्वेदकमल नाम जल है जेभनी परीक्षा  
पनिक्षमां त्यागमां समित यत्न तेत्त नाम उच्चार प्रसङ्ग जेत्त सिषाण जल  
परिष्ठापन समित है मनोगुप्ति यत्न प्रकाशनी है आर्त रौद्र प्यानानुषङ्गी  
कल्पनाजालो परित्याग करणे ते प्रथम मनोगुप्ति है शास्त्रानुसारिणी परलोच साधिका  
धर्म शानानुषङ्गिणी जेने माध्यम्य परिणतिरूप द्वितीय मनोगुप्ति है २, मनोगुप्ति  
ना निराभावस्थासापिनी जे आत्ममयरूप गुप्ति है ते तृतीय मनोगुप्ति है योगशास्त्रमां

एवंविधया त्रिविधयाऽपि मनोगुप्त्या युक्त इत्यर्थः, तथा-वचोगुप्तः=वचन-  
गुप्तियुक्तः, वचनगुप्तिश्चतुर्विधा तथाहि- सत्या १, मृषा २, सत्यामृषा ३,  
असत्यामृषा चेति। उक्तं च-

‘सच्चा तहेव मोसा य, सच्चा-मोसा तहे य।

चउत्थी असच्चमोसाय वयगुत्ती चउव्विहा । (उत्त० २४ २२ गा०) इति,

છાયા-“મત્યા તથેવ મૃષા ચ, સત્યામૃષા તથેવ ચ ।

ચતુર્થ્યસત્યમૃષા ચ, વચોગુપ્તિશ્ચતુર્વિધા । ઇતિ ।

तथा-कायगुप्तः कायगुप्तियुक्तः, कायगुप्तिस्तु गमनागमनप्रचलनादि  
क्रियाणां गोपनम्, सा द्विविधा- चेष्टानिवृत्तिरूपं १, यथागमं

जिसमें-रूपना जाल विमुक्त हों, और-समन्व में जो सुप्रतिष्ठित हो-ऐसा  
मन आत्माराम है-आत्मारूपी उद्यान (बाग) है. इसमें-रमण करना मनोगुप्ति  
है. । इस प्रकार की तीन गुप्तियों से मनका युक्त होना इसका-नाम  
मनोगुप्ति से गुप्त होना है. । इसी प्रकार से वचनगुप्ति से युक्त  
होना सो-वचनगुप्ति से गुप्त होना है, वचनगुप्ति चार प्रकार की है,-सत्या-  
वचोगुप्ति-१ मृषावचोगुप्ति-२ सत्यामृषावचोगुप्ति-३ और-असत्यामृषावचो-  
गुप्ति है-४ उक्तञ्च-“सच्चा तहेव मोसाय सच्चा-मोसा तहेवय. ।

ચउત્થી અસચ્ચ મોસા-ય વયગુત્તી ચઉવ્વિહા-૥૧૧॥

(उत्त० २४-२२ गाथा-) कायगुप्ति से युक्त होना इसका नाम-काय गुप्त है-१  
गमनाऽऽगमनादिरूप प्रचलनादि क्रियाओं का गोपन करना कायगुप्ति है-२  
यह कायगुप्ति चेष्टानिवृत्तिरूप. एवं-यथागम चेष्टा नियमनरूप से दो प्रकार की

કલ્પુ છે કે જેમા કલ્પનાજાલ વિમુક્ત હોય અને સમન્વમા જે સુપ્રતિષ્ઠિત હોય એવુ  
મન આત્મારામ છે આત્મારૂપી ઉદ્યાન છે આમા રમણ કરવું તે મનોગુપ્તિ છે.

“વિમુક્તારૂપનાજાલ સમન્વે સુપ્રતિષ્ઠિતમ્ । આત્માગમે મનસ્તર્જ્જર્મનેગુપ્તિ-  
રુદાહતા ॥૧૧॥ આ બીજી ત્રણ ગુપ્તિઓથી મનયુક્ત થવું તેનું નામ મનોગુપ્તિથી  
ગુપ્ત થવું છે આ પ્રમાણે વચનગુપ્તિથી યુક્ત થવું તે વચનગુપ્તિથી ગુપ્ત થવું છે.  
વચનગુપ્તિ ચાર પ્રકારની છે સત્યામનો ગુપ્તિ ૧, મૃષા મનોગુપ્તિ ૨, સત્યામૃષામનો-  
ગુપ્તિ ૩, અને અસત્યામૃષામનો ગુપ્તિ ૪

કલ્પુ છે,-“સચ્ચા તહેવ મોસાય સચ્ચ-મોસા તહેવ ય ।

ચउत्थी अमच्चमोसाय वय गुत्तीचउव्विहा ॥११॥

(ઉત્ત० ૨૪-૨૨ ગાથા) કાયગુપ્તિથી યુક્ત થવું તેનું નામ કાયગુપ્ત છે. ૧, ગમના-  
ગમન-વગેરે રૂપ પ્રચલન વિગેરે ક્રિયાઓનું ગોપન કરવું કાયગુપ્તિ છે. ૨. આ  
કાય-ગુપ્તિ એટલા નિવૃત્તિરૂપ અને યથાગમ એટલા નિયમનરૂપથી બે પ્રકારની હોય છે.



युक्त इत्यर्थः, तथा—उच्चारप्रवृत्तयस्तेलशिङ्खणजलपरिष्ठापनिकामपि—तत्र  
उच्चार—पुरीष, प्रवृत्तय—मूत्र, तेल—श्लेष्मा—उपलवणत्याग्निपीवनस्यापि  
भूक इति भाषाप्रसिद्धस्यापि ग्रहणम् शिङ्खण नासिकामल, जलः—स्वेदजलम्,  
पतपः परिष्ठापनिका, परिष्ठापना-परित्यागः सर्व परिष्ठापनिका, तस्या  
ममित—मम गुणयुक्त, तथा—मनोगुप्तिः—मनोगुप्तिस्त्रिधा—तत्र आतरोष्ठ  
प्यानानुषाग्निः कल्पनाजालवियोगरूपा प्रथमा १, छास्त्रानुसारिणी पर  
लोकमाधिका धर्मप्यानानुषाग्निनी माप्यस्य परिणतिर्द्वितीया २, मनोवृत्तिनिरोधन  
योगनिरोधायस्यामाधिनी आत्मरक्षणरूपा तृतीया ३, तदुक्त योगशास्त्रे—

“विमुक्तकल्पनाजाल समत्वं सुप्रतिष्ठितम् ।

आत्माराम मनसश्च र्मेनागुप्तिरुदाहृता । १ ।” इति ।

नाम-आदानमाष्टमात्रनिश्चयणासमिति हे, अर्थात् प्रसिलस्वन, प्रमाजनपूर्वक  
प्रवृत्ति से युक्त होना इसका नाम आदानमाष्टमात्रनिश्चयणा समिति है।  
उच्चार नाम-पुरीषका है, प्रसवण नाम-मूत्र का है, तेल नाम श्लेष्मा का है,  
उपलवण स भूक का भी यहाँ ग्रहण किया गया है। शिङ्खणनाम स यहाँ  
नासिका का मल गृहीत होना है, (नासामल तु शिङ्खण  
इति अमर)। स्वेदजल मल का नाम—जल है इनकी परिष्ठापनिका म  
त्यागमें समित होना, उसका नाम—उच्चारप्रवृत्तयस्तेलशिङ्खणजलपरि  
ष्ठापनसमिति है। मनोगुप्ति-तीन प्रकार की है, इनमें-आतरोष्ठ प्यानानु  
षाग्नी कल्पनाजाल का परित्याग करना इसका नाम प्रथम मनोगुप्ति है—१  
छास्त्रानुसारिणी-परलोक माधिका धर्मप्यानानुषाग्निनी एष माप्यस्य परिणतिरूप  
द्वितीय मनोगुप्ति है—२ मनोवृत्ति के निरोध स योग निरोधकरनवाली माधिनी  
जो आत्मरक्षणरूप गुप्ति है वह तृतीय मनोगुप्ति है। योगशास्त्र में कहा है—

समिति ॥ जेटवे के प्रतिवेजन, प्रमाजनपूर्वक प्रवृत्तियुक्त यद्यु ते आदान कांड  
मात्र निक्षेपका समिति ॥ पुरीषत नाम उच्चार भूतत नाम प्रसवण, स्वेदमातु  
नाम जेल ॥ उपलवणवर्षी भूतत पण अर्द्धी भूकस्य कस्याभी आठु ॥ शिङ्खण  
नाम अर्द्धी नासिका मल भाटे प्रवृत्त यजेत ॥ (शिङ्खण कायपाम य स्त्राह  
नासिकये मळे इति मेदिनी कोषः) स्वेदजलमलतु नाम जल ॥ जेमनी परिष्ठा  
पनिकाभा-त्यागभां समित यद्यु तेतु नाम उच्चार प्रसवण जेल शिङ्खण जल  
परिष्ठापन समित ॥ मनोगुप्ति त्रय प्रकारणी ॥ आभा आतरोष्ठप्यानानुषाग्नी  
हृदप्याग्निना परित्याग करवा ते प्रथम मनोगुप्ति ॥ छास्त्रानुसारिणी परलोक माधिका  
धर्मप्यानानुषाग्निनी अने माप्यस्य परिणतिरूप द्वितीय मनोगुप्ति ॥ २, मनोवृत्ति  
ना निरोधायस्यामाधिनी के आत्मरक्षणरूप गुप्ति ॥ ते तृतीय मनोगुप्ति ॥ योगशास्त्रभा

एवंविधया त्रिविधयाऽपि मनोगुप्त्या युक्त इत्यर्थः, तथा—वचोगुप्तः=वचन-  
गुप्तियुक्तः, वचनगुप्तिश्चतुर्विधा तथाहि— सत्या १, मृषा २, सत्यामृषा ३,  
असत्यामृषा चेति। उक्तं च—

‘सच्चा तहेव मोसाय, सच्चा-मोसा तहेव य।

चउत्थी असच्चमोसाय वयगुत्ती चउच्चिहा। (उत्त० २४ २२ गा०) इति,

छाया—“मन्या तथैव मृषा च, सत्यामृषा तथैव च।

चतुर्थ्यसत्यमृषा च, वचोगुप्तिश्चतुर्विधा। इति।

तथा-कायगुप्तः कायगुप्तियुक्तः, कायगुप्तिस्तु गमनागमनप्रचलनादि  
क्रियाणां गोपनम्, मा द्विविधा— चेष्टानिश्चितिरूपं १, यथागमं

जिसमें—रूपना जाल विमुक्त हो, और—समन्व में जो सुप्रतिष्ठित हो—पेसा  
मन आत्माराम है—आत्मारूपी उद्यान (बाग) है. इसमें—रमण करना मनोगुप्ति  
है.। इस प्रकार की तीन गुप्तियों से मनका युक्त होना इसका नाम  
मनोगुप्ति से गुप्त होना है.। इसी प्रकार से वचनगुप्ति से युक्त  
होना सो—वचनगुप्ति से गुप्त होना है, वचनगुप्ति चार प्रकार की है,—सत्या-  
वचोगुप्ति—१ मृषावचोगुप्ति—२ सत्यामृषावचोगुप्ति—३ और—असत्यामृषावचो-  
गुप्ति है—४ उक्तञ्च—“सच्चा तहेव मोसाय सच्चा-मोसा तहेवय.।

चउत्थी असच्च मोसाय वयगुत्ती चउच्चिहा—॥१॥

(उत्त० २४—२२ गाथा—) कायगुप्ति से युक्त होना इसका नाम—काय गुप्त है—१  
गमनाऽऽगमनादिरूप प्रचलनादि क्रियाओं का गोपन करना कायगुप्ति है—२  
यह कायगुप्ति चेष्टानिश्चितिरूप. एवं—यथागम चेष्टा नियमनरूप से दो प्रकार की

કહ્યું છે કે જેમા ક્રિયનાજાલ વિમુક્ત હોય અને સમત્વમા જે સુપ્રતિષ્ઠિત હોય એવું  
મન આત્માગમ છે આત્મારૂપી ઉદ્યાન છે. આમા રમણ કરવું તે મનોગુપ્તિ છે.

“વિમુક્તરૂપનાજાલ સમત્વે સુપ્રતિષ્ઠિતમ્। આત્માગમં મનસ્સ્તર્જનમ્ ગુપ્તિ-  
રુદાહતા ॥૧॥ આ બાતની ત્રણ ગુપ્તિઓથી મનયુક્ત થવું તેનું નામ મનોગુપ્તિથી  
ગુપ્ત થવું છે આ પ્રમાણે વચનગુપ્તિથી યુક્ત થવું તે વચનગુપ્તિથી ગુપ્ત થવું છે.  
વચનગુપ્તિ ચાર પ્રકારની છે સત્યામનો ગુપ્તિ ૧, મૃષા મનોગુપ્તિ ૨, સત્યામૃષામનો-  
ગુપ્તિ ૩, અને અસત્યામૃષામનો ગુપ્તિ ૪

કહ્યું છે,—“સच्चा तहेव मोसाय सच्चा-मोसा तहेव य।

चउत्थी असच्चमोसाय वय गुत्तीचउच्चिहा ॥१॥

युक्त इति य, तथा—उच्चारप्रसवणस्वेलशिक्षाणञ्छपरिष्ठापनिकाममि।—तत्र  
उच्चार—पुरीष, प्रसवण—मूत्र, खेल—श्लप्मा—उपलक्षणत्वान्निष्ठीषनस्यापि  
धृक्इति मायाप्रमिदस्यापि ग्रहणम् शिक्षाण नासिकामल, जल—भेदसमलम्,  
पन्था परिष्ठापनिका, परिष्ठापना-परित्यागः, सैष परिष्ठापनिका, तस्या  
ममित—मन् गुपयुक्त, तथा—मनोगुप्त—मनोगुप्तस्वभा—तत्र आतर्गत  
ध्यानानुबन्धि कल्पनाजालवियोगरूपा प्रथमा १, शास्त्रानुसारिणी एष  
लोकसाधिका प्रथम नानुबन्धिनी माध्यस्थ्यपरिणतिर्द्वितीया २, मनोवृत्तिनिरोधन  
योगनिरोधव्यामाचिनी आत्मगमनरूपा तृती ३, तदुक्त योगशास्त्र—

“विमुक्तकल्पनाजाल समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।

आत्माराम मनस्तज्ज मनोगुप्तिरुद्धता ॥” इति ।

नाम-आत्मानमात्रमात्रनिष्पणाममिति है, अर्थात् प्रकृतिलम्बन, प्रमाजन्तृक  
प्रवृत्ति स युक्त होना इसका नाम आत्मानमात्रमात्रनिष्पणा समिति है ।  
उच्चार नाम-पुरीषका है, प्रसवण नाम-मूत्र का है, खेल नाम श्लप्मा का है,  
उपलक्षण स धृक् का भी यहाँ ग्रहण किया गया है । शिक्षाणनाम स यहाँ  
नासिका का मल गृहीत होना है, (नासामल तु सिंघाण  
इति अमर) । म्यंजज मल का नाम—जल है इनकी परिष्ठापनिका में  
त्यागमें समित होना, उसका नाम—उच्चारप्रसवणस्वेलशिक्षाणञ्छपरि  
ष्ठापनसमिति है । मनोगुप्ति-तर्जिन प्रकार की है, इनमें आत रौद्र ध्यानानु  
बन्धी कल्पनाजाल का परित्याग करना इसका नाम प्रथम मनोगुप्ति है—१  
शास्त्रानुसारिणी-परलोक साधिका-धर्मध्यानानुबन्धिनी एष माध्यस्थ्य परिणतिरूप  
द्वितीय मनोगुप्ति है—२ मनोवृत्ति क निरोध स योग निरोधकरनेवाली भाविनी  
जो आत्मगमनरूप गुप्ति है वह तृतीय मनोगुप्ति है । योगशास्त्र में कहा है—

समिति छ कोटले छ प्रतिबोधन, प्रमाजन्तृक प्रवृत्तिभूत यत्ते आत्मान-काठ  
मात्र निष्पणाय समिति छ। पुरीषतु नाम उच्चार भूततु नाम प्रसवण श्लेशमात्र  
नाम खेल छ उपलक्षणधृक् भूततु पण्य अर्द्धी अर्द्धतु कल्याण आठतु छ शिक्षाण  
नाम अर्द्धी नासिका मल आटे प्रवृत्त यथेष्ट छ (शिक्षाण काषपात्र य छाह  
नासिकय ममे इति माहिनी कोप) स्वेदजमलतु नाम कलस छ जेमनी परिष्ठा  
पनिकामा-त्यागमा समित यत्ते तु नाम उच्चार प्रसवण खेल शिक्षाण कलस  
परिक्षपन समित छ मनोवृत्ति प्रवृत्त प्रकारनी छ आर्था आतर्रौद्रध्यानानुबन्धी  
कल्पनाजालो परित्याग करवो ते प्रथम मनोवृत्ति छ शास्त्रानुसारिणी परलोक साधिका  
धर्मध्यानानुबन्धिनी कने माध्यस्थ्य परित्युक्तिरूप द्वितीय मनोवृत्ति छ २ मनोवृत्ति  
ना निरोधवस्थाभाविनी के आत्मगमनरूप गुप्ति छ ते तृतीय मनोवृत्ति छ. श्लेशमात्रमा

तथा—गुप्तः—अशुभयोगनिग्रहरूपगुप्त्या युक्तः, गुप्तब्रह्मचारी—गुप्तं नवभिर्ब्रह्म-  
चर्यगुप्तिभी रक्षितं ब्रह्म=मैथुनविरमणं चरति तच्छीलः, अममः—ममत्वरहितः,  
अकिञ्चनः—धर्मोपकरणातिरिक्तवस्तुरहितः, छिन्नग्रन्थः—ग्रन्थाति—वध्नाति आत्मानं  
कर्मणेति ग्रन्थः, स द्विविधो द्रव्यभावमेदात् द्रव्यतो—हिरण्यादि, भावतो मिथ्या-  
त्वादिः, स द्विविधो ग्रन्थश्छिन्नो येन स तथा, छिन्नस्रोताः—छिन्नसंसार-  
प्रवाहः, निरुपलेपः—कर्मबन्धहेतुरुपलेपो रागादिस्तेन रहितः. निरुपलेपत्वमेव  
सदृष्टान्तमाह—कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः—मुक्तं—त्यक्त तोयमिव तोयं संसारबन्ध-

शयनासन इत्यादि—शयन में, आसन में, लेने में रखने में, चलने में

काय को यतना पूर्वक रखना यह कायगुप्ति है

इस प्रकार से वे दृढप्रतिज्ञ अनगार इन पूर्वोक्त समितियों का तथा—गुप्तियों  
का पालन करनेवाले होंगे। तथा—वे गुप्त होंगे, अशुभ योगनिग्रहरूप गुप्ति  
से युक्त बनेंगे, गुप्तब्रह्मचारी होंगे, नौ वाटिका (वाड) द्वारा मैथुन विरमणरूप  
ब्रह्म की रक्षा करेगे उत्तम-ममत्व रहित होंगे, वे-अकिञ्चन होंगे, धर्मोपकरण से  
अतिरिक्त अन्य वस्तुओं से विहीन होंगे। जो आत्मा को कर्म के साथ  
बान्धता है, वह ग्रन्थ है, यह—ग्रन्थ द्रव्य-ग्रन्थ, और-भावग्रन्थ के भेद से दो  
प्रकार का है। हिरण्य-सुवर्ण आदि बाह्यग्रन्थ है, एवं-मिथ्यात्व आदि भावग्रन्थ  
है, इन दोनों प्रकार के ग्रन्थ से वे रहित होंगे। संसारप्रवाह जिनका नष्ट  
हो चुका है, ऐसे होंगे, निरुपलेप होंगे, कर्मबन्धन का हेतु जो रागादिक  
उपलेप हैं उससे रहित होंगे। इसी बात को सूत्रकार दृष्टान्तद्वारा पुष्ट करते

शयनासननिक्षेपादाऽऽनमकर्मणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टा नियमः कायगुप्तिस्तु सऽपरा ॥२॥

आ प्रमाणे ते दृढप्रतिज्ञ अनगार आ पूर्वोक्त समित्योऽन तथा गुप्तिभ्योऽन  
पालन करे। तेभ्य तेभ्यो गुप्त यथे. अशुभयोग निग्रहइय गुप्तिथी युक्त अनशे.  
गुप्त ब्रह्मचारी यथे, नव वाटिकाद्वारा मैथुन विरमणइय ब्रह्मनी रक्षा क शे उत्तम  
ममत्वरहित यथे, ते अकिञ्चन इशे. धर्मोपकरणातिरिक्त वस्तुभ्योऽथी रहित यथे जे  
आत्माने कर्मनी साथे भांघे छे ते ग्रन्थ छे. आ अथ द्रव्यग्रन्थ अने भावग्रन्थना  
इयमा जे प्रकारना छे हिरण्य-सुवर्ण वगैरे भाह्य ग्रन्थ छे अने मिथ्यात्व वगैरे  
भावग्रन्थ छे. आ अने प्रकारना अथोऽथी ते रहित यथे जेभनो संसारप्रवाह  
नाश पाये छे ओवा तेभ्यो यथे. निरुपलेप यथे. कर्मबन्धनना हेतुइय रागादिक  
उपलेपोऽथी तेभ्यो रहित यथे जेवा ताते सूत्रकार दृष्टान्त द्वारा पुष्ट करे छे छे

चेष्टानियमरूपा च २ । तत्र परीपहोपमर्गादि समवेऽपि यत्कायोत्सर्गादि  
कृष्णादिना कायस्य निश्चलताकृष्णम् सर्वयोगनिरोधावस्थायां वा सपथा यत्  
कायध्वजानिगधन सा प्रथमा । गुरुमापृच्छय धरीसस्तारकभूम्यादिप्रतिष्ठेत्सना  
प्रमाज्जनात्मिमयोक्तक्रियाकलापपुरस्सरक्षयनासनादिविधेयम्, ततः क्षयनासन  
निक्षपानादिषु चक्षुष्या चक्षुपरिहारण नियता—शास्त्रनियमानुसारिणी या  
काययेष्टा सा द्वितीयति । उक्त च—

‘‘उपसर्गप्रमद्वेऽपि कायोत्सर्गजुषो धृतेः ।

स्थिरीभाषः धरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यत ॥ १ ॥

क्षयनाऽऽसननिक्षपाऽऽजानमर्हन्मणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टानियमः कायगुप्तिस्तु ता परा । २ । इति,

होती है । इनमें परीपह-और उपसर्ग क आन पर भी कायोत्सर्गकृष्णरूप  
क्रिया स धरीर को निश्चल कर देना होता है, अथवा-सर्वयोग निरोधावस्था में  
सर्वथा जो काय की चष्टा का निराध किया जाता है वह चेष्टा निवृत्तिरूप  
प्रथम कायगुप्ति है । गुरु को पूछ कर धरीर सस्तारक, भूमि आदि की  
प्रतिस्तरना प्रमाज्जना आदि क समय में उक्त क्रियाकलाप पुरस्सर जो-क्षयन  
आसन आदि करना होत है—मो उन क्षयनासनादिकों क निक्षपन रखने में, एवं-  
आज्ञान आदि का में अपनी इच्छा स चेष्टा क परिहार स नियत(रत्न में) अर्थात्  
गुरु को पूछकर क क्षयनआदि करना—शास्त्रनियमानुसारिणी जो काय चेष्टा है  
वह—यथागमचेष्टा नियमनरूप द्वितीयकायगुप्ति है । २

उक्त भी है—‘‘उपसर्गप्रमद्वेऽपि’’ इत्यादि

अर्थात्—‘‘उपसर्ग आन पर कायोत्सर्ग में मनको

स्थिर रखना यह कायगुप्ति है । तथा

आर्मां परीष्टं अने उपसर्ग नी स्थितिमां भव्य भायोत्सर्गकृष्णरूप क्रियाधी धरीरने  
निश्चल करवामां आवे ॥ अथवा सर्वयोग निरोधावस्थामां ने सर्वथा कायचेष्टाने  
निरोध करवामां आवे ॥ अथवा सर्वयोग निरोधावस्थामां ने सर्वथा कायचेष्टाने  
निरोध करवामां आवे ॥ ते चेष्टा निवृत्तिरूप प्रथम कायगुप्ति ॥ १ अतएव आर्मां  
भेदनीने धरीर सस्तारक भूमि वजेरनी प्रतिष्ठेत्सना, प्रमाज्जना वजेरना समये  
उपमुक्त क्रियाकलाप पुरस्सर ने क्षयन आसन वजेर निषेध देव ॥ तो ते यथ  
नामुद्देशानां निरोधमां अने आज्ञान आदेशमां पातानी छेष्टाधी चेष्टानां परिहारणी  
नितरां शास्त्रनियमानुसारिणी ने कायचेष्टा ॥ ते द्वितीय वधाजम चेष्टा नियमनरूप  
द्वितीय कायगुप्ति ॥ २

१५ ॥—उपसर्ग प्रमद्वेऽपि कायोत्सर्गजुषो धृतेः ।

स्थिरीभाषः धरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यत ॥१॥

तथा-गुप्तः-अशुभयोगनिग्रहरूपगुप्त्या युक्तः, गुप्तब्रह्मचारी-गुप्तं नवभिर्ब्रह्म-  
चर्यगुप्तिभी रक्षितं ब्रह्म-मैथुनविरमणं चरति तच्छीलः, अममः-ममत्वरहितः,  
अकिञ्चनः-धर्मोपकरणतिरिक्तवस्तुरहितः, छिन्नग्रन्थः-ग्रन्थाति-वध्नाति आत्मानं  
कर्मणेति ग्रन्थः, स द्विविधो द्रव्यभावभेदात् द्रव्यतो-हिरण्यवादि, भावतो मिथ्या-  
त्वादिः, स द्विविधो ग्रन्थश्छिन्नो येन स तथा, छिन्नस्रोताः-छिन्नसंसार-  
प्रवाहः, निरुपलेपः-कर्मबन्धहेतुरुपलेपो रागादिस्तेन रहितः. निरुपलेपत्वमेव  
सदृष्टान्तमाह-कांस्थपात्रीव मुक्ततोयः-मुक्तं-त्यक्त तोयमिव तोयं संमारबन्ध-

शयनासन इत्यादि-शयन में, आसन में, लेने में रखने में, चलने में

काय को यतना पूर्वक रखना यह कायगुप्ति है

इस प्रकार से वे दृढप्रतिज्ञ अनगार इन पूर्वोक्त समितियों का तथा-गुप्तियों  
का पालन करनेवाले होंगे। तथा-वे गुप्त होंगे, अशुभ योगनिग्रहरूप गुप्ति  
से युक्त बनेंगे, गुप्तब्रह्मचारी होंगे, नौ वाटिका (वाड) द्वारा मैथुन विरमणरूप  
ब्रह्म की रक्षा करेंगे उत्तम-ममत्व रहित होंगे, वे-अकिञ्चन होंगे, धर्मोपकरण से  
अतिरिक्त अन्य वस्तुओं से विहीन होंगे। जो आत्मा को कर्म के साथ  
बान्धता है. वह ग्रन्थ है, यह-ग्रन्थ द्रव्य-ग्रन्थ, और-भावग्रन्थ के भेद से दो  
प्रकार का है। हिरण्य-सुवर्ण आदि बाह्यग्रन्थ है, एवं-मिथ्यात्व आदि भावग्रन्थ  
है. इन दोनों प्रकार के ग्रन्थ से वे रहित होंगे। संसारप्रवाह जिनका नष्ट  
हो चुका है. ऐसे होंगे, निरुपलेप होंगे, कर्मबन्धन का हेतु जो रागादिक  
उपलेप हैं उससे रहित होंगे। इसी बात को सूत्रकार दृष्टान्तद्वारा पुष्ट करते

शयनासननिक्षेपादाऽऽनभर्कृमणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टा नियमः कायगुप्तिस्तु सऽपरा ॥२॥

आ प्रभावे ते दृढप्रतिज्ञ अनगार आ पूर्वोक्त समित्योऽन तथा गुप्तिभ्योऽन  
पालन करे. तेभ्य तेभ्यो गुप्त भवे. अशुभयोग नियमइय गुप्तिथी युक्त अनशे.  
गुप्त ब्रह्मचारी भवे, नव वाटिकाद्वारा मैथुन विरमणइय ब्रह्मनी रक्षा क.शे उत्तम  
ममत्वरहित भवे, ते अकिञ्चन भवे. धर्मोपकरणतिरिक्त वस्तुभ्योऽथी रहित भवे जे  
आत्माने कर्मनी साथे पाधे छे ते ग्रन्थ छे आ अथ द्रव्यग्रन्थ अने भावग्रन्थना  
इयभा जे प्रकारनो छे हिरण्य-सुवर्ण वगेरे बाह्य ग्रन्थ छे अने मिथ्यात्व वगेरे  
भावग्रन्थ छे. आ अने प्रकारना अथोथी ते रहित भवे जेभनो संसारप्रवाह  
नाश पारये छे ओवा तेभ्यो भवे निरुपलेप भवे कर्मबन्धनना हेतुइय रागादिक  
उपलेशोथी तेभ्यो रहित भवे जेन बातने सूत्रकार दृष्टान्त द्वारा पुष्ट करे छे छे

चेष्टानियमरूपा च २ । तत्र परीपहोपगर्गादि ममवेऽपि परापोत्सर्गादि  
करणादिना फायस्य निश्चलताकाण्यं सर्वयोगनिरोधावस्थायां वा तद्यथा यत्  
कायचेष्टानिराधन सा प्रथमा । गुरुमापृच्छथ क्षरीरगन्तारकभूम्यादिप्रतिष्ठसना  
प्रमाजनादिमयोक्तप्रियाकलापपुरस्सरक्षयनासनादिविधयम्, ततः क्षयनासन  
निक्षेपादानादिषु चञ्चला चञ्चपरिहारण नियता—शास्त्रनियमानुसारिणी वा  
कायचेष्टा सा द्वितीयति । उक्त च—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि कापोत्सर्गजुपो मूनः ।

स्थिरीमायः क्षरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यत ॥ १ ॥

क्षयनाऽऽसननिक्षेपाऽऽदानतर्कमण्य च ।

स्थानेषु चेष्टानियमः कायगुप्तिस्तु ता परा । २ । इति,

होती है । इनमें परीपह—और उपसर्ग क आन पर भी कायोत्सर्गकरणरूप  
क्रिया से क्षरीर को निश्चल कर देना होता है, अथवा—सर्वयोग निरोधावस्था में  
सर्वथा जो काय की चलाका निराध किया जाता है वह चेष्टा निवृत्तिरूप  
प्रथम कायगुप्ति है । गुरु को पूछ कर क्षरीर सस्तारक, भूमि आदि की  
प्रतिष्ठप्रना प्रमाजना आदि क समय में उक्त क्रियाकलाप पुरस्सर जो—क्षयन  
आसन आदि करना हात है—तो उन क्षयनासनादिकों के निक्षेपन करने में, एवं—  
आदान आदि का मैं अपनी इच्छा से चलाक परिहारण नियत(रखने में) अर्थात्  
गुरु को पूछकर क क्षयनआदि करना—शास्त्रनियमानुसारिणी जो काय चला है  
यह—यथागमचेष्टा नियमनरूप द्वितीयकायगुप्ति है । २

उक्त भी है—“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि” इत्यादि

अर्थात्—“उपसर्ग आन पर कापोत्सर्ग में मनको

स्थिर रखना यह कायगुप्ति है । तथा

आमां परीपह आने उपसर्गानी स्थितिमां पञ्च मायोत्सर्गकरणरूप क्रियाभी क्षरीरने  
निश्चल करवाया आवे । अथवा सर्व योग निरोधावस्थायां के सर्वथा कायचेष्टानो  
निरोध करवाया आवे । अथवा सर्व योग निरोधावस्थायां के सर्वथा कायचेष्टानो  
निरोध करवाया आवे । ते चेष्टा निवृत्तिरूप प्रथम कायगुप्ति । १, जुलनी आमां  
भेजनीने क्षरीर सस्तारक भूमि वगैरणी प्रतिष्ठप्रना, प्रमाजना वगैरना समये  
उपसर्गप्रसङ्गे क्रियाकलाप पुरस्सर के समय आसन वगैर विधिय होय । तो ते सर्व  
नासनादाना निरोधमां आने आदान आदिकोमां धोता । छत्रभी चेष्टाना परिहारणी  
नियता-शास्त्रनियमानुसारिणी के कायचेष्टा । ते द्वितीय यथागम चेष्टा नियमनरूप  
द्वितीय कायगुप्ति । २

इति ।—उपसर्ग प्रसङ्गेऽपि कापोत्सर्गजुपोमूनः ।

स्थिरीमायः क्षरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यत ॥१॥

तथा—गुप्तः—अशुभयोगनिग्रहरूपगुप्त्या युक्तः, गुप्तब्रह्मचारी—गुप्तं नवभिर्ब्रह्म-  
चर्यगुप्तिभी रक्षितं ब्रह्म—मैथुनविरमणं चरति तच्छीलः, अममः—ममत्वरहितः,  
अकिञ्चनः—धर्मोपकरणतिरिक्तवस्तुरहितः, छिन्नग्रन्थः—ग्रन्थाति—वध्नाति आत्मानं  
कर्मणेति ग्रन्थः, स द्विविधो द्रव्यभावभेदात् द्रव्यतो—हिरण्यादि, भावतो मिथ्या-  
त्वादिः, स द्विविधो ग्रन्थश्छिन्नो येन स तथा, छिन्नस्रोताः—छिन्नसंसार-  
प्रवाहः, निरुपलेपः—कर्मवन्धहेतुरुपलेपो रागादिस्तेन रहितः. निरुपलेपत्वमेव  
सदृष्टान्तमाह—कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः—मुक्त—त्यक्त तोयमिव तोयं संसारवन्ध-

शयनासन इत्यादि—शयन में, आसन में, लेने में रखने में, चलने में

काय को यतना पूर्वक रखना यह कायगुप्ति है

इस प्रकार से वे दृढप्रतिज्ञ अनगार इन पूर्वोक्त समितियों का तथा—गुप्तियों  
का पालन करनेवाले होंगे। तथा—वे गुप्त होंगे, अशुभ योगनिग्रहरूप गुप्ति  
से युक्त बनेंगे, गुप्तब्रह्मचारी होंगे, नौ वाटिका (वाड) द्वारा मैथुन विरमणरूप  
ब्रह्म की रक्षा करेगे उत्तम-ममत्व रहित होंगे, वे-अकिञ्चन होंगे, धर्मोपकरण से  
अतिरिक्त अन्य वस्तुओं से विहीन होंगे। जो आत्मा को कर्म के साथ  
बान्धता है, वह ग्रन्थ है, यह—ग्रन्थ द्रव्य-ग्रन्थ, और-भावग्रन्थ के भेद से दो  
प्रकार का है। हिरण्य-सुवर्ण आदि ब्राह्मग्रन्थ है, एवं-मिथ्यात्व आदि भावग्रन्थ  
है, इन दोनों प्रकार के ग्रन्थ से वे रहित होंगे। संसारप्रवाह जिनका नष्ट  
हो चुका है, ऐसे होंगे, निरुपलेप होंगे, कर्मवन्धन का हेंतु जो रागादिक  
उपलेप हैं उससे रहित होंगे। इसी बात को सूत्रकार दृष्टान्तद्वारा पुष्ट करते

शयनासननिक्षेपादाऽऽनमकर्मणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टा नियमः कायगुप्तिस्तु सऽपरा ॥२॥

आ प्रमाणे ते दृढप्रतिज्ञ अनगार आ पूर्वोक्त समित्योऽपि तथा गुप्तिभ्योऽपि  
पालन करे। तेभ्यः तेभ्यो शुभ अशे. अशुभयोग निग्रहइय गुप्तिभी युक्त अनशे.  
शुभ ब्रह्मचारी अशे, नव वाटिकाद्वारा मैथुन विरमणइय ब्रह्मनी रक्षा कःशे उत्तम  
ममत्वरहित अशे, ते अकिञ्चन इशे. धर्मोपकरणतिरिक्त वस्तुभ्योऽपि रहित अशे. जे  
आत्माने कर्मनी साथे गांधे छे ते ग्रन्थ छे. आ अथ द्रव्यग्रन्थ अने भावग्रन्थना  
इपभा जे प्रकारना छे. हिरण्य-सुवर्ण वगेरे गाह्य ग्रन्थ छे अने मिथ्यात्व वगेरे  
भावग्रन्थ छे. आ अने प्रकारना अथोऽपि ते रहित अशे. जेभनो संसारप्रवाह  
नाश पाब्यो छे ओवा तेभ्यो अशे. निरुपलेप अशे. कर्मवन्धनना हेतुइय रागादिक  
उपलेपोऽपि तेभ्यो रहित अशे ओज वातने सूत्रकार दृष्टान्त द्वारा गाह्य अने छे



इतुत्वात् स्नहा यन स तथा । यथा-कांस्यपात्र्यां पतितमपि जल लिप्तं न भवति  
 तथा ससारमभ्यस्तस्मिन्नुपलिप्ता न भविष्यतीत्यर्थः, यस्तु इव निरञ्जन-  
 अभ्यजनमिवाभ्यजन-द्वेषादिकं तस्माभिर्गतं-तद्गदितं, यथा-श्लेष्मि किमपि कज्जला-  
 दिद्रव्यं स्थिति न समत तथैव तस्मिन्ननगारं द्रवादि न तथा यतीत्यर्थः,  
 जीव इ। अप्रतिहतगतिः-जीवो यथा अभ्याहतगत्या सर्वत्र याति, तथाऽसौ  
 चैश्वर्यनगरादिषु अप्रतिघातविहासित्वेन वादादिषु कुर्त्ताधिकमतनिराकरणसामर्थ्या  
 पतत्वेन च अस्त्वलितगतिर्भविष्यतीति । जात्यफनकमिव जातिरूपः-तप सयमादि  
 समुत्पन्नैर्नैकैः यथा घोषितं सुवर्णं निर्मलं भवति सर्वदासौ रागादिरहितत्वेन  
 निर्मलो भविष्यतीति आदर्शरूप इव प्रकटमात्र-आदर्शफलका यथा  
 प्रतिबिम्बितान् मुखाद्यवयवान् यथाऽवस्थितं प्रकटी करोति, तथा तत्कृतवमदङ्ग-

हे-‘कांस्यपात्रीयं मुक्ततोयम्-’ कांसं क पात्रं यं पडा हुआ पानी जिस प्रकार  
 पात्र में लिप्त नहीं होता है-उसी प्रकार से ससार बन्धन का हेतु राग-द्वेष  
 इनमें-उपलिप्त नहीं होंगे । श्लेष्म की तरह वे निरञ्जन होंगे, जैसे-श्लेष्म  
 कज्जलादि द्रव्य छूट नहीं सकता है, उसी प्रकार से इनमें राग द्रवादि नहीं छूटेंगे  
 जीव की तरह ये अप्रतिहतगतिवाले होंगे, जीव जिस प्रकार अपनी अभ्या-  
 हतगतिद्वारा सर्वत्र चला जाता है, उसी प्रकार से-दृष्ट नगरादिकों में अप्रति-  
 घातविहारी होने से, एव-वादादिकों में कुर्त्ताधिक मत निराकरण करने की  
 सामर्थ्य से मुक्त होने से अस्त्वलित गतिवाले होंगे । वे जातिमान् फनक के  
 प्रकार होंगे, जिस प्रकार जात्यफनक-ग्रेष्ठ सुवर्ण निर्मल होता है-उसी प्रकार  
 से ये तपः सयमादि से समुत्पन्न निर्मलतावाले होंगे, । आदर्श-दर्पण जिस  
 प्रकार अपने में प्रतिबिम्बित हुये मुख्यादि अवयवों को यथाऽवस्थित प्रकट करता

‘कांस्यपात्रीयं मुक्ततोयम्’ कांसानां घनभां यदेतु पात्रीयेभ तेभां लिप्ता वतु नवी-  
 तेभञ्च ससारं बन्धनं हेतुं शत्रुद्वेषभां तेभ्यो उपलिप्तं यत्वा नवी शत्रुद्वेषभां तेभ्यो  
 निरञ्जनं यद्ये तेभ्यो शत्रुद्वेषभां कज्जलं वज्जले द्रव्ये स्थिरं भवति नवी तेभ्यो तेभ्योभां  
 शत्रुद्वेषादिकं स्थिरं यद्ये नदी लुपन्ती तेभ्यो अभ्यहितं जतिवाणा वरी लुपन्तेभ्यो  
 पोतानी अभ्यहितं जतिवाणा सर्वत्र जतिशीलं ज्ञेयं छ तेभ्यो देशान्तरादिकेभां अभ्य-  
 प्रतिघातं विहारी होवासी जने वादादिकेभां कुर्त्ताधिकमतं निराकरणं सामर्थ्यं मुक्तं  
 होवासी तेभ्यो अस्त्वलितं जतिवाणा वरी तेभ्यो जात्यफनकानी जेभ्यो वरी जेभ्यो अत्य-  
 क्त-ग्रेष्ठ सुवर्णं निर्मलं ज्ञेयं छ तेभ्यो तपः सयमं वज्जलेषी समुत्पन्नं निर्मल-  
 तावुक्तं वरी आदर्श-दर्पणं जेभ्यो स्वप्रतिबिम्बितं मुख्यादि अवयवो ते यथाऽवस्थितं  
 प्रकटं करे छ तेभ्यो तेभ्योभां यद्गोदशयवी भवत्यभिप्रायं द्रव्यं द्रव्यं लुपन्तीति

नया जनानां चित्तदर्पणे जीवाजीवादिसकलपदार्थाः प्रकाशिष्यन्ते, इत्यर्थः, कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः—कूर्मः—कच्छपः. यथा कूर्मो भयकारणे समुपपागते संवृतसर्वेन्द्रियो भवति, तथैवासौ संसारभ्रमणभयाद् विषयकपायसंरक्षितसकलेन्द्रियो भविष्यतीति । पुष्करपत्रमिव निरुपलेपः—यथा कमलपत्रं जलसंयोगेऽपि जलेन लिप्तं न भवति, तथैवासौ जलतुल्यस्वजनविषये वसन्नपि तत्सम्बन्धरहितो भविष्यतीति, गगनमिव निरालम्बनः—यथाऽऽकाशो निरवलम्बस्तिष्ठति तथैवासौ कुलग्रामनगराद्यालम्बनवर्जितो भविष्यतीति, अनिल इव निरालयः पवन-इव गृहरहितः, अप्रतिबन्धविहारित्वात्, चन्द्र इव सौम्यलेश्यः—अनुपतापपरिणामसम्पन्नः, सूर इव दीप्ततेजः द्रव्यतः शरीरदीप्त्या, भावतस्तपःप्रभृतिना देदीप्यमानः, सागर इव गम्भीरः—

है. उसी प्रकार उनकी धर्मदेशना से मनुष्यों के चित्तरूप दर्पण में जीवाजीवादिरूप सकलपदार्थ प्रकाशित होंगे, । कूर्म-कच्छप जिस प्रकार भयकारणों के उपस्थित होने पर अपनी इन्द्रियों के गुप्त कर लेता है, उसी प्रकार से यह भी संसारपरिभ्रमणभयसे—विषय तापो से अपनी इन्द्रियों की रक्षा करने वाले होंगे. । जैसे-कमलपत्र जल के संयोग में भी उस से लिप्त नहीं होता है. उसी प्रकार से ये जल तुल्य स्वजनों के बीच में रहते हुवे भी उनके विषय में सम्बन्ध विहीन होंगे. । गगन की तरह ये निरालम्ब होंगे. । अनिल-वायु की तरह ये निरालय होंगे, अनिल को जैसे कोई गृह नहीं होता है, उसी प्रकार से अप्रतिबन्धविहारी होंगे. । चन्द्र के समान ये सौम्यलेश्यावाले होंगे सूर्य की तरह दीप्ततेज होंगे तेज द्रव्य-और भाव की अपेक्षा दो प्रकार का कहा गया है. इनमें शरीरादि की दीप्तिरूप द्रव्य तेज. और तप-आदि से होनेवाला तेज भावतेज है. । सागर की तरह ये गम्भीर होंगे, हर्ष-शोक

इस सकल पदार्थ प्रकाशित थये कूर्म-कच्छप जेम लय उपस्थित थाय त्याहे पोताना अंगोने स डेयी दे छ तेम तेओ पणु ससार-परिभ्रमणु भयधी विषयतापोधी पोतानी छन्द्रिये नी रक्षा करनार थये जेम कमलपत्र पाणीनी संयोगावस्थाभा पणु तेधी लिप्त थतु नथी तेम तेओ पाणीनी जेम स्वजनोनी वच्यै रहवा छताओ तेमना विषयभा सणध विडीन थये गगननी जेम तेओ निरालय थये आकाश जेम अवलणन वगर छ तेम तेओ कुल, ग्राम नगर वगेरे अवलणथी रहित थये. अनिलवायुनी जेम तेओ निरालय थये अनिलने जेम दृष्ट धर नथी तेम तेओ पणु अप्रतिबन्ध विहारी थये चन्द्रनी जेम तेओ सौम्य लेश्यायुक्त थये सूर्यनी जेम तेओ दीप्त तेजवाणा थये तेज द्रव्य अने भावनी अपेक्षाओ जे प्रकारनु छ आभा शरीरादिनी दीप्तिइय द्रव्यतेज अने तप प्रभृतिथी जयमान तेज भावतेज छ

हेतुत्वात् स्तहा यन स तथा । यथा-कां(यथा)यां पतितमपि अल लिप्त न भवति  
 तथा ससारव-हेतुस्तस्मिन्नुपलिप्ता न भविष्यतीत्यर्थे, शृङ्ग इव निरञ्जन-  
 अञ्जनमिषाञ्जन-द्वेपादिक तन्माभिर्गत-तद्रहितः, यथा-शृङ्गे किमपि कञ्चला  
 दिद्रव्य स्थिति न समत तथैव तस्मिन्ननगार द्वापादिक न तथा यतीत्यर्थे,  
 जीव इा अप्रतिहतगति-जीवो यथा अभ्याहतगत्या सर्वत्र याति, तथाऽसौ  
 देशनगरादिषु अप्रतिष-षादित्वेन वादादिषु कृतीर्थिकमतनिराकरणसामर्थ्या  
 पतत्येन च अस्वलितगतिम विष्यतीति । आत्यक्नकमिव जातरूप-तप सयमादि  
 समुद्भूतनर्मस्य यथा शोषित सुवर्ण निर्मल भवति तथैवासौ रगादिरहितत्वेन  
 निर्मलो भविष्यतीति आदर्शफलक इव प्रकटमात्र-आदर्शफलका यथा  
 प्रतिबिम्बितान् सुखाद्यवयवान् यथाऽवस्थित प्रकटी करोति, तथा तत्कृतधर्म-  
 है-

है- 'कांस्यपात्रीव मुक्ततोय -' कांस क पात्र म पडा हुआ पानी जिस प्रकार  
 पात्र में लिप्त नहीं होता है-उसी प्रकार से ससार बन्धन का हेतु राग-इव  
 इनमें-उपलिप्त नहीं होंगे । शृङ्ग की तरह वे निरञ्जन होंगे, जैसे-शृङ्गमें  
 कञ्चलादि द्रव्य छहर नहीं सकता है, उसी प्रकार से इनमें राग द्वापादिक नहीं छरेंगे  
 जीव की तरह म अप्रतिहतगतिवाले होंगे, जीव जिस प्रकार अपनी अभ्या-  
 हतगतिद्वारा सर्वत्र चला जाता है, उसी प्रकार से-देश नगरादिकों में अप्रति-  
 बन्धविहारी होने से, एव-वादादिकों में कृतीर्थिक मत निराकरण करने की  
 सामर्थ्य से युक्त होने से अस्वलित गतिवाले होंगे । वे जातिमात्र फनक क  
 प्रकार होंगे, जिस प्रकार आत्यक्नक-गेठ सुवर्ण निर्मल होता है-उसी प्रकार  
 से वे तप सयमादि से समुत्पन्न निमलतावाले होंगे, । आदर्श-दर्पण जिस  
 प्रकार अपने में प्रतिबिम्बित हुये सुखादि अवयवों को यथाऽवस्थित प्रकट करता

"कांस्यपात्रीव मुक्तताया" कांसाना पात्रमा यदेषु चाक्षीक्येन तेभ्य लिप्तं यत् नथी  
 तेभ्य ससार बंधन हेतु रागद्वेषमा तेभ्य उपलिप्तं यत् नथी चाक्षीक्येन तेभ्य  
 निरञ्जनं यथा केन यथाभावात् नवोदये द्रव्यो स्थिर वर्ता नथी तेभ्य तेभ्यमा  
 राग द्वेपादिक स्थिर यथा नकि, एवमपि केन तेभ्य अप्रतिहत गतिवाणा यथे, एव केन  
 पोतानी अन्याद्वत् गतिद्वारा सर्वत्र गतिशीलं होय छ तेभ्य देशनगरादिकेभ्य अप्रति-  
 बन्ध विहारी होवासी अने वादादिकेभ्य कृतीर्थिकमत निराकरणमा सामर्थ्ययुक्त  
 होवासी तेभ्य अस्वलित गतिवाणा यथे, तेभ्य आत्यक्नकानी केन यथे केन आत्य  
 हनक-मठ सुवर्ण निर्मल होय छ, तेभ्य तेभ्य तप सयम नवोदये समुत्पन्न निर्मल-  
 तायुक्त यथे आदर्श-इव केन स्वप्रतिबिम्बित युगादि अवयवो ते यथावस्थित  
 प्रकट करे छ तेभ्य तेभ्योक्षीनी प्रथम देशनाथी भूतत्वमित्यत्र इव यथा एवमेवादि

नया जनानां चित्तदर्पणे जीवाजीवादिसकलपदार्थाः प्रकाशिष्यन्ते, इत्यर्थः, कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः—कूर्मः—कच्छपः. यथा कूर्मो भयकारणे समुपपागते संवृतसर्वेन्द्रियो भवति, तथैवासौ संसारभ्रमणभयाद् विषयकपायसंरक्षितसकलेन्द्रियो भविष्यतीति । पुष्करपत्रमिव निरुपलेपः—यथा कमलपत्रं जलसंयोगेऽपि जलेन लिप्तं न भवति, तथैवासौ जलतुल्यस्वजनविषये वसन्नपि तत्सम्बन्धरहितो भविष्यतीति, गगनमिव निरालम्बनः—यथाऽऽकाशो निरवलम्बस्तिष्ठति तथैवासौ कुलग्रामनगराद्यालम्बनवर्जितो भविष्यतीति, अनिल इव निरालयः पवन-इव गृहरहितः, अप्रतिबन्धविहारित्वात्, चन्द्र इव सौम्यलेख्यः—अनुपतापपरिणामसम्पन्नः, सूर इव दीप्ततेजः द्रव्यतः शरीरदीप्त्या, भावतस्तपःप्रभृतिना देदीप्यमानः, सागर इव गम्भीरः—

है. उसी प्रकार उनकी धर्मदेशना से मनुष्यों के चित्तरूप दर्पण में जीवा जीवादिरूप सकलपदार्थ प्रकाशित होंगे, । कूर्म-कच्छप जिस प्रकार भयकारणों के उपस्थित होने पर अपनी इन्द्रियों को गुप्त कर लेता है, उसी प्रकार से यह भी संसारपरिभ्रमणभयसे—विषय तापों से अपनी इन्द्रियों की रक्षा करने वाले होंगे. । जैसे—कमलपत्र जल के संयोग में भी उस से लिप्त नहीं होता है. उसी प्रकार से ये जल तुल्य स्वजनों के बीच में रहते हुवे भी उनके विषय में सम्बन्ध विहीन होंगे. । गगन की तरह ये निरालम्ब होंगे. । अनिल-वायु की तरह ये निरालय होंगे, अनिल को जैसे कोई गृह नहीं होता है, उसी प्रकार से अप्रतिबन्धविहारी होंगे. । चन्द्र के समान ये सौम्यलेख्यावाले होंगे सूर्य की तरह दीप्ततेज होंगे तेज द्रव्य-और भाव की अपेक्षा दो प्रकार का कहा गया है. इनमें शरीरादि की दीप्तिरूप द्रव्य तेज. और तप-आदि से होनेवाला तेज भावतेज है. । सागर की तरह ये गम्भीर होंगे, हर्ष-शोक

इय सकल पदार्थ प्रकाशित थशे. कूर्म-कच्छप जेम लय उपस्थित थाय तयारे पोताना अंगोने सङ्कोची दे छ तेम तेञ्चो पणु ससार-परिभ्रमणु भयथी विषयतापोधी पोतानी छिन्द्रिये नी रक्षा करनार थशे जेम कमलपत्र पाणीनी सयोगावस्थामा पणु तेथी लिप्त थतु नथी तेम तेञ्चो पाणीनी जेम स्वजनोनी वञ्चे रहवे छताये तेमना विषयमा सणध विहीन थशे गगननी जेम तेञ्चो निरालय थशे आकाश जेम अवलणन वगळ छ तेम तेञ्चो कुल, ग्राम नगर वगेरे अवलणथी रहित थशे. अनिलवायुनी जेम तेञ्चो निरालय थशे अनिलने जेम हे छ घर नथी तेम तेञ्चो पणु अप्रतिबन्ध विहारी थशे चन्द्रनी जेम तेञ्चो सौम्य लेख्यायुक्त थशे सूर्यनी जेम तेञ्चो दीप्त तेजवाणा थशे तेज द्रव्य अने लावनी अपेक्षाये जे प्रकारनु छ आमा शरीरादिनी दीप्तिरूप द्रव्यतेज अने तप प्रभृतिथी जयमान तेज लावतेज छ.

हेतुत्वात् स्नेहो येन स तथा । यथा-कांस्यपात्र्या पतितमपि जल लिप्त न भवति  
 तथा ससारमभहतुस्तस्मिन्नुपलिप्तो न भविष्यतीत्यर्थः, यत्न इव निरञ्जन-  
 अञ्जनमिषाञ्जन-द्रोपादिक सस्माच्चिगत-तद्रहित, यथा-शुद्धे किमपि कज्जला  
 दिद्रव्य स्थिति न लभते तथैव तस्मिन्ननगारे द्रोपादिक न स्था यतीत्यर्थः,  
 जीव इति अप्रतिहतगति-जीवो यथा अ-पाहतगत्या सर्वत्र याति, तथाऽसौ  
 देशनगरादिषु अप्रतिबन्धविहारित्वेन वादादिषु कुतार्थिकमतनिराकरणसामर्थ्यो  
 पेतत्वेन च अस्त्वलितगतिर्भविष्यतीति । जात्यकनकमिव जातरूप-तपःसपमादि  
 समुद्भूतनैर्मन्यः यथा शोषित सुवर्ण निर्मल भवति तथैवासौ रागादिरहितत्वेन  
 निर्मलो भविष्यतीति आदर्शफलक इत्य प्रकटमा-आदर्शफलके । यथा  
 प्रतिबिम्बितान् मृतावयवयान् यथाज्यस्थित पकटी करोति, तथा तत्कृतधर्मदर्श-

है- 'कांस्यपात्रीषु मुक्तताय -' कांसे के पात्र में पड़ा हुआ पानी जिस प्रकार  
 पात्र में लिप्त नहीं होता है-उसी प्रकार से ससार धन्यन का हेतु राग-द्रोप  
 इनमें-उपलिप्त नहीं होंगे । यत्न की तरह ये निरञ्जन होंगे, जैसे-यत्नमें  
 कज्जलादि द्रव्य छहर नहीं सकता है, उसी प्रकार से इनमें राग द्रोपादिक नहीं छहरेंगे  
 जीव की तरह ये अप्रतिहतगतिवाले होंगे, जीव जिस प्रकार अपनी अन्या-  
 हतगतिद्वारा सर्वत्र चला जाता है, उसी प्रकार से-दश नगरादिकों में अप्रति-  
 बन्धविहारी होने से, एव-वादादिकों में कुतार्थिक मत निराकरण करने की  
 सामर्थ्य से युक्त होने से अस्त्वलित गतिवाले होंगे । ये जातिमान् फनक के  
 प्रकार होंगे, जिस प्रकार जात्यकनक-ग्रेष्ठ सुवर्ण निर्मल होता है-उसी प्रकार  
 से ये तप सपमादि से समुत्पन्न निर्मलतावाले होंगे, । आदर्श-दर्पण जिस  
 प्रकार अपन में प्रतिबिम्बित हुये मृतादि अवयवों को यथाऽस्तिप्रवृत्त प्रकट करता

“कांस्यपात्रीषु मुक्तताय ” वाक्यानां धारणा यदेष पात्रीनेभ तेभ लिप्त यत् नथी  
 तेभ ससार धन्यन हेतु समवेपभां तेभो उपलिप्त यत् नथी यत् नथी नेभ तेभो  
 निरञ्जन यथे नेभ यत् नथी वाक्य नयेरे द्रव्यो स्थिर यतां नथी तेभ तेभोभां  
 शत द्रोपादिक स्थिर यथे नकि एवनी नेभ तेभो अप्रतिहत गतिराजा यथे एव नेभ  
 पीतानी अन्यान्त गतिद्वारा सवन गतिरील टोय छ तेभ देशनगरादिठोभां अ  
 प्रतिबन्ध निहारी होवाथी अने वादादिठोभा कुतार्थिकमत निराकरणभां सामर्थ्यमुक्त  
 हेतवाथी तेभो अस्त्वलित गतिराजा यथे तेभो जात्यकनकी नेभ यथे नेभ जात्य  
 इन-न-सुवर्ण निर्मल होय छ, तेभ तेभो तप सपम यथेदशी समुत्पन्न निर्मल  
 तामुक्त यथे आदर्श-दर्पण नेभ एवप्रतिबिम्बित मुक्तादि अवयवो ते यथास्थित  
 प्रकट कर छ तेभ तेभोदशीनी धम देशनथी मनुष्यजिनश्च इषणभा एवएवादि

અપ્રમત્તઃ-તપઃસંયમાદિધર્મરક્ષણે પ્રમાદરહિતઃ । કુઞ્જર ઇવ ગૌઙ્ડીરઃ-હસ્તીવ  
શૂરઃ-વપાયાદિરિપુમ્બજનશીલઃ । વૃષભ ઇવ જાતસ્થામા-વૃષભવત્ સંજાતપરાક્રમઃ ।  
સિંહ ઇવ દુર્ધર્ષઃ-સિંહવત્ પરીપહાદિ મૃગૈર્દુરતિક્રમઃ । વસુન્ધરેવ સર્વસ્પર્શવિપદઃ-  
વસુન્ધરા-પૃથ્વી યથા સર્વ સહ્યમસહ્ય વા સ્પર્શ સહતે તથૈવાન્મ અનુકૂલપ્રતિ-  
કૂલપરીપહોપસર્ગસહનશીલઃ । તથા-સુહૃતહુતાશન ઇવ તેજસા જ્વલન્-યથા  
ઘૃતાઘાહુતિભિર્ગ્નિઃ પ્રદીપ્તો ભવતિ તથૈવાન્મપિ તપઃસંયમતેજસા જ્વલન્-દીપ્ય-  
માનોઽનગારો ભવિષ્યતીતિ પૂર્વેણ સમ્બન્ધ , તસ્ય-પૂર્વોક્તવિશેષણવિશિષ્ટમ્ ચલુ  
ભગવતોઽનગારમ્ અનુત્તરેણ-સર્વોત્ક્રુષ્ટેન જ્ઞાનેન, એવમ્-અનેન પ્રકારેણ-અનુત્તર-  
ત્રવિશિષ્ટેન દર્શનેન 'અનુત્તર' શબ્દસ્ય ચારિત્રાદૌ પ્રત્યેકત્ર સમ્બન્ધઃ, તતશ્ચ અનુ-

પ્રકાર યે મી તપસંયમ આદિકે સંરક્ષણ મેં પ્રમાદ રહિત હેંગે । કુઞ્જર-હાથી  
કે સમાન યે શૂર હેંગે, અર્થાત્-ઈપ આદિ રિપુપુજો કા મજન શીલ હોંગે ।  
વૃષભ કી તરહ યે જાત સ્થામા હેંગે-ઉત્પન્ન પરાક્રમવાલે હેંગે, સિંહ કી  
તરહ દુર્ધર્ષ પરીપહાદિમૃગો દ્વારા દુર્ધર્ષ હેંગે, પૃથ્વી વીં તરહ સર્વ સ્પર્શ  
સહ હેંગે-પૃથ્વી જિસ પ્રકાર સર્વસહા એવં-અસહ્ય સ્પર્શ કો મી સહન  
કરતી હૈ-ઉસી પ્રકાર સે અનુકૂલ-પ્રતિકૂલ પરીપહ એવં-ઉપસર્ગ કા યે સહન  
કર્તા હેંગે । સુહૃત હુતાશન કી તરહ યે તેજ સે સદા જાજ્વલ્યમાન રહેંગે ।  
જિસ પ્રકાર ઘૃતાદિક ઓહુતિ સે અગ્નિ અધિકાધિક પ્રજ્વલિત હો જાતી હૈ.  
ઉસી પ્રકાર યે મી તપ-સંયમ કે તેજ સે દેદીપ્યમાન અનગાર હેંગે, ઇસ  
પ્રકાર સે ઇન પૂર્વોક્ત વિશેષણોં મે વિશિષ્ટ હુવે ઊનઅનગાર ભગવાન્ દૃઢપ્રતિજ્ઞ  
કે સર્વોત્ક્રુષ્ટ જ્ઞાનસે-સર્વોત્ક્રુષ્ટ દર્શન સે સર્વોત્ક્રુષ્ટ ચારિત્ર સે-સર્વોત્ક્રુષ્ટ

આ અપ્રમત્ત થઇને વિચરણશીલ હોય છે. તેમ તેઓ પણ તપ સંયમ વગેરેનું રક્ષણ  
કરવામા પ્રમાદ રહિત થશે, કુઞ્જર-હાથી ની જેમ તેઓ શૂર હશે. એટલે કે  
કધાય વગેરે રિપુઓને નષ્ટ કરવામા સમર્થ થશે. વૃષભની  
જેમ તેઓ જાતસ્થામા થશે ઉત્પન્ન પરાક્રમવાળા થશે.  
સિંહની જેમ દુર્ધર્ષ-પરીપહાદિમૃગો વડે દુર્ધર્ષ હશે વસુન્ધરાની જેમ સર્વસ્પર્શ  
સહ થશે, પૃથ્વી જેમ સર્વે સહ-અસહ્ય સ્પર્શને પણ સહન કરે છે તેમ અનુકૂલ-  
પ્રતિકૂલ પરીપહ અને ઉપસર્ગને તેઓ સહન કરતા થશે સુહૃત હુતાશનની જેમ તેઓ  
તેજથી સદા જાજ્વલ્યમાન રહેશે જેમ ઘૃત વગેરેની આહુતિથી અગ્નિ વધારે અને  
વધારે પ્રજ્વલિત થઇ જાય છે તેમ તેઓ પણ તપ સંયમના તેજથી દેદીપ્યમાન  
અનગાર થશે આ પ્રમાણે આ પૂર્વોક્ત વિશેષણોથી વિશિષ્ટ થયેલા તે ભગવાન અન-  
ગાર દૃઢપ્રતિજ્ઞ સર્વોત્ક્રુષ્ટ જ્ઞાનથી, સર્વોત્ક્રુષ્ટ દર્શનથી, સર્વોત્ક્રુષ્ટ ચારિત્રથી સર્વોત્ક્રુષ્ટ

इषं श्लोकादिकारणसयोगेऽपि निर्विकारचित्तः, विद्वद् इव सर्वतो विप्रमुक्तः—  
 पक्षिणस्तत्पररहितः, परिभारपरित्यागात् नियतवासरहितत्वाच्च, मन्दर इव अप्र-  
 कम्पः—मल्लवत् परिपहोपसर्गपवनैरद्विचलितः, धारदसलिलमिव शुद्धहृदय—यथा  
 क्षरतुल्यो जल निर्मल भवति तथा रागद्वेषरहितस्थान्निर्मलचित्तो भविष्यतीति,  
 स्वर्गविषाणमिव एकजातः स्वहृत्—आरभ्यजीव तस्य विषाण—मृग तद्वत्  
 एकजात—एकाकी रागादिसहायरहितः । तथा—मारण्डपक्षी—मारण्डभासौ  
 पक्षी च मारण्डपक्षी, अथ द्विजीवकस्त्रिचरणवान् द्वाभ्यां ग्रीवाभ्यां द्वाभ्यां मुला-  
 भ्यां च युक्तः, द्वयोर्द्विचरोरेकमेवोदर भवति, स चाग्रमच एव चिहरति, तद्वत्

आदि कारणों के मिलने पर भी इनके चित्त में कोई खोम उत्पन्न नहीं हो  
 सकेगा निर्विकार चित्तवाले होंगे । पक्षी की तरह सर्वतोः विप्रमुक्त होंगे,  
 सर्वसङ्ग से रहित रहेंगे, परिभार आदि के परित्याग से और—नियत आवास  
 से रहित होने से इनका ममत्वरूप सम्बन्ध किसी के साथ नहीं रहेगा ।  
 मेरु—मन्दर की तरह ये अप्रकम्प होंगे, अर्थात् परीण्ड उपसर्गरूप पवन इन्हें  
 विचलित नहीं कर सकेगा, धारद सलिल की तरह शुद्ध होंगे—जिस प्रकार  
 धारदश्रुत में जल निर्मल रहता है उसी प्रकार राग-द्वेष रहित से ये निर्मल  
 चित्त रहेंगे स्वर्गी विषाण—गंडोकाजुह की समान ये एकजात होंगे रागादिवत्  
 सहायकों से रहित होने के कारण एकाकी रहेंगे, । तथा—मारण्ड पक्षी की  
 तरह अप्रमत्त होंगे, मारण्डपक्षी दो जीववाला होता है, इसके चरण तीन  
 होते हैं—दो ग्रीवाओं से—दो मुखों से यह युक्त होता है, इन दो  
 जीवों का पेट एक होता है यह अप्रमत्त होकर विचरनशील होता है, इसी

साजसनी नेम तेजो अजीर भये इषं श्लो वनेर क्षय्यो होवा छत्ता ने तेमना  
 चित्तमां डेठपखु अवतना विहार उपन्न भये नहि, तेजो निर्विकार चित्तवाणा भये,  
 विद्वज्जनी नेम तेजो सवता विप्रमुक्त भये, तेजो सर्वसङ्गधी रहित भये, परिभार  
 वनेरेना त्याज्यी अने नियत आवासधी रहित होवाभी तेजो ममत्वरूप ॥ अथ  
 डेठनी साधे लाधये नहि मेरु—मन्दरनी नेम तेजो अप्रकम्प भये, जेटले के परी  
 पद उपसर्ग रूप पवन तेमने विचलित करी शक्ये नहि धारद सलिलानी नेम तेजो शुद्ध  
 भये, नेम शरदश्रुतमां पाखी निर्मल रहे छ तेम तेजो पखु सङ्गद्वेष रहित होवाभी  
 निमल चित्तवाणा भये अजुी विषाण—गंडोकाजुह शीतलानी नेम तेजो जेक अत  
 भये, रागादिवत् सहायकोधी रहित होवा अद्वैत जेकानी रह्ये, तेमन मारण्ड पक्षीनी  
 नेम अप्रमत्त भये, मारण्डपक्षी जे लज्जमुक्त होय छ, तने पखु पत्र होय छ भी  
 ग्रीवाजो, जे मुखोधी ते युक्त होय छ आ अन्ने एवोठ पेट जेकन होय छ,

અપ્રમત્ત:-તપ:સંયમાદિધર્મરક્ષણે પ્રમાદરહિત: । કુઞ્જર ઇવ શૌણ્ડીર:-હસ્તીવ શૂર:-વપાયાદિરિપુમઞ્જનશીલ: । વૃષભ ઇવ જાતસ્થામા-વૃષભવત્ સંજાતપરાક્રમ: । સિંહ ઇવ દુર્ધર્ષ:-સિંહવત્ પરીપહાદિ મૃગૈર્દુરતિક્રમ: । વસુન્ધરેવ સર્વસ્પર્શવિપહ:-વસુન્ધરા-પૃથ્વી યથા સર્વ સહ્યમસહ્યં વા સ્પર્શ સહતે તથૈવાયમ્ અનુકૂલપ્રતિ-કૂલપરીપહોપસર્ગસહનશીલ: । તથા-સુહૃતહુતાગ્ન ઇવ તેજસા જ્વલન્-યથા ઘૃતાઘાહુતિભિર્ગ્ન: પ્રદીપ્તો ભર્વાતિ તથૈવાયમપિ તપ:સંયમતેજસા જ્વલન્-દીપ્યમાનોઽનગારો ભવિષ્યતીતિ પૂર્વેણ સમ્બન્ધ, તસ્ય-પૂર્વોક્તવિશેષણવિશિષ્ટમ્ ચલુ ભગવતોઽનગારમ્ય અનુત્તરેણ-સર્વોત્કૃષ્ટેન જ્ઞાનેન, એવમ્-અનેન પ્રકારેણ-અનુત્તર-ત્વવિશિષ્ટેન દર્શનેન 'અનુત્તર' શબ્દસ્ય ચારિત્રાદૌ પ્રત્યેકત્ર સમ્બન્ધ:, તતશ્ચ અનુ-

પ્રકાર યે મી તપસંયમ આદિકે સંરક્ષણ મેં પ્રમાદ રહિત હેંગે । કુઞ્જર-હાથી કે સમાન યે શૂર હેંગે, અર્થાત્-રૂપ આદિ રિપુપુજો કા મજન શીલ હેંગે । વૃષભ કી તરહ યે જાત સ્થામા હેંગે-ઉપન પરાક્રમવાલે હેંગે, સિંહ કી તરહ દુર્ધર્ષ પરીપહાદિમૃગો દ્વારા દુર્ધર્ષ હેંગે, પૃથ્વી વી તરહ સર્વ સ્પર્શ સહ હેંગે-પૃથ્વી જિસ પ્રકાર સર્વસહા એવં-અસહ્ય સ્પર્શ કો મી સહન કરતી હૈ-ઉસી પ્રકાર સે અનુકૂલ-પ્રતિકૂલ પરીપહ એવં-ઉપસર્ગ કા યે સહન કર્તા હેંગે । સુહૃત હુતાગ્ન કી તરહ યે તેજ સે સદા જાજ્વલ્યમાન રહેંગે । જિસ પ્રકાર ઘૃતાદિક ઘાહુતિ સે અગ્નિ અધિકાધિક પ્રજ્વલિત હો જાતી હૈ. ઉસી પ્રકાર યે મી તપ-સંયમ કે તેજ સે દેદીપ્યમાન અનગાર હેંગે, ઇસ પ્રકાર સે ઇન પૂર્વોક્ત વિશેષણોં સે વિશિષ્ટ હુવે ઉનઅનગાર ભગવાન્ દૃઢપ્રતિજ્ઞ કે સર્વોત્કૃષ્ટ જ્ઞાનસે-સર્વોત્કૃષ્ટ દર્શન સે સર્વોત્કૃષ્ટ ચારિત્ર સે-સર્વોત્કૃષ્ટ

આ અપ્રમત્ત થઇને વિચરણશીલ હોય છે તેમ તેઓ પણ તપ સંયમ વગેરેનું રક્ષણ કરવામા પ્રમાદ રહિત થશે, કુઞ્જર-હાથી ની જેમ તેઓ શૂર હશે. એટલે કે કથાય વગેરે રિપુઓને નષ્ટ કરવામા સમર્થ થશે. વૃષભની જેમ તેઓ જાતસ્થામા થશે ઉત્પન્ન પરાક્રમવાળા થશે. સિંહની જેમ દુર્ધર્ષ-પરીપહાદિરૂપ મૃગો વડે દુર્ધર્ષ હશે વસુન્ધરાની જેમ સર્વસ્પર્શ સહ થશે, પૃથ્વી જેમ સર્વે સહા-અસહ્ય સ્પર્શને પણ સહન કરે છે તેમ અનુકૂલ-પ્રતિકૂલ પરીપહ અને ઉપસર્ગને તેઓ સહન કરતા થશે સુહૃત હુતાગ્નની જેમ તેઓ તેજથી સદા જાજ્વલ્યમાન રહેશે જેમ ઘૃત વગેરેની ઘાહુતિથી અગ્નિ વધારે અને વધારે પ્રજ્વલિત થઇ જાય છે તેમ તેઓ પણ તપ સંયમના તેજથી દૈદીપ્યમાન અનગાર થશે આ પ્રમાણે આ પૂર્વોક્ત વિશેષણોથી વિશિષ્ટ થયેલા તે ભગવાન અનગાર દૃઢપ્રતિજ્ઞ સર્વોત્કૃષ્ટ જ્ઞાનથી, સર્વોત્કૃષ્ટ દર્શનથી, સર્વોત્કૃષ્ટ ચારિત્રથી અને...



तरेण चारित्र्येण अनुचरेण आलयेन-स्त्रीपुत्रपण्डकादिरहितव्रतसेवनेन, अनु-  
 तरेण विहारण-विचरणेन, अनुचरण आर्जवेन-सात्वत्येन, अनुसारेण मार्गधन-शुद्ध-  
 त्वेन, अनुचरण-लाभवेन द्रव्यगोष्ठ्योपकरणरूपेण, भाषणः-स्वायत्तनुत्वरूपेण,  
 अनुचरया सान्त्या-क्षमागुणेन, अनुचरया गुप्त्या-मनोवाकापगुप्त्या अनुचरया  
 मुक्तः । निर्लोभताया, अनुचरेण सर्वसयममुचरिततप फलनिर्वाणमार्गेण-सर्वसयम-  
 स्य सर्वथा मनोवाकायानां निरोधस्य, तथा सुचरितस्य-आश्रसादिदोषरहितस्य  
 तपसो यत्फलं निर्वाण-निर्वाणरूप फलं तस्य मार्गेण आत्मानं भाषयमानस्य  
 अनन्तम्-निरवसानम् अनुचरम्-सर्वोत्कृष्ट कुरान-सकल, प्रतिपूर्ण-निश्चय, निरा-  
 चरणम्-आचरणवर्जितम् निम्योद्यानम्-अवगाह्यम् कवलज्ज्ञानदर्शन-कवल-सर्वो-  
 त्कृष्टत्वात् सहायवर्जितम् अणववर-भष्टयत् ज्ञानदर्शनं तत्-केवलज्ञान केवल  
 दर्शनं च समुपलस्यति । तत् सत्त्वसंभवात् अहंजिन केवली भविष्यति, तथा सोऽ-  
 नगारं सदधमनुजामुरस्य लोकस्य पर्यायं ज्ञाम्यति, तथा आगति-द्वल्लोका

नित्यं स्थानं से-पशु पण्डकादि वर्जितवर्माणि क सेधन से-अनुचर विहार स  
 अनुचर आर्जव स-संगतता से-अनुचर अल्पापकरणरूप द्रव्य से, एव-स्वाय-  
 तनूपकरणरूप भाव से-अनुचरमागुण से अनुचरगुणि से  
 अनुचर निर्लोभतास्य मुक्ति से अनुचर तपसयम क-मन वचन काय के-  
 चिराय क तथा-सुचरित-आश्रसादि दोष रहित तप के निर्वाणरूप फलक  
 मार्ग से आत्मा को भाषित करने से अनन्त निर्जरा स उभयलोक की भाषना  
 रहित मोक्षामाग से आत्मा को भाषित करने से अनुचर, सर्वाङ्कृत,  
 कुरान-सकल परिपूर्ण, आचरण वर्जित और-अवगाहन एसा सर्वाङ्कृत  
 होने से सहायवर्जित, अणव-भष्ट कवलज्ञान और-कवलदर्शन को प्राप्त करेंगे,  
 तब-वे भगवान् अहं जिन केवली हो जावेग, तथा सदैव मनुजामुर लोक की  
 पर्याय वा ज्ञाता हो जावेगे, तथा वे आगति को-द्वल्लोकादि स मनुष्य गति

आद्यापभी पशुपण्डकादि वर्जित वस्तुविज्ञाना सेवनभी, अनुचर विहारभी, अनुचर  
 आर्जवभी से जाताथी। अनुचर अल्पोपकरणरूप द्रव्यभी अने कषाय तनूपकरणरूप  
 भावभी अनुचर क्षमागुणभी अनुचर शुचिभी अनुचर निर्लोभतास्य मुक्तिभी अनुचर  
 सय सयमभी। मन वचन कायना विराधना तेम / मुचरित आश्रसादि दोषरहित  
 तेमना निर्वाणरूप ज्ञाना भागभी आत्माने जाति कषायभी अनन्त निरवसान,  
 अनुचर सर्वाङ्कृत कुरान सकल प्रतिपूर्ण आचरण वर्जित अने अवगाहन केवा  
 सर्वाङ्कृत केवाभी सहाय वर्जित कीधो के क केवलज्ञान अने केवलदर्शनने प्राप्त  
 करेंगे। तब-वे भगवान् अहं जिन केवली हो जावेगे। तथा सदैव मनुजामुरलोकनी

दिश्यो मनुजगतावागमनं, गतिं-मनुष्यलोकाद् देवादिगतिषु गमनम्, स्थितिं-  
देवलोकादिष्ववस्थितिम्, च्यवनं-देवलोकादायुःक्षयेण पतनम्, उपपातं-देवनार-  
कयोर्जन्म, तर्क-विचारम्, कृतं विहितं, मनोमानसिकम्-मनस्येव व्यवस्थितं  
मानसिकं-मनोगतं विचारं, क्षयितं-क्षयं प्राप्तं, भुक्तं-खादितं, प्रतिसेवितं-  
भोग्यवस्तुजातसेवनम्, आविष्कर्म-प्रत्यक्षे कृतम्, रहःकर्म-एकान्ते कृतम् । एवं  
स सदेवासुरमनुजस्य सर्वान् पर्यायान् ज्ञास्यतीति । अत एव सोऽनगारः अरहा-  
नास्ति रहः-अप्रत्यक्षं किमपि यस्य स तथा-सर्वज्ञः, तथा अरहस्यभागी-सा-  
वद्याचरणवर्जितत्वेन न रहस्यम्-एकान्तं भजते यः स तथा=सुस्पष्टसकलाचारश्च  
सन् तस्मिन् तस्मिन् काले मनोवाक्यायोगवर्तमानानां सर्वलोके स्थितानां सर्व  
जीवानां सर्वभावान्-समस्तान् भावान् जानन् पश्यंश्च विहरिष्यति-विहारं  
करिष्यतीति । ॥सू० १७४॥

में आगमन को, गति को-मनुष्य लोक से देवादिगतियों में गमन को, स्थिति  
को-देवलोकादिकां में अवस्थिति को च्यवन को-देवलोक से आयुःक्षय के  
बाद चवन को, उपपात को-देवनारकों के जन्म को, तर्क को-विचार को कृत-  
किये हुवे को, मनोमानसिक को, मन में व्यवस्थित विचारधारा को, क्षयित को  
क्षयप्राप्त को, भुक्त को-खादित को, प्रतिसेवित को-भोग्यवस्तु जात के सेवन  
को, आविष्कर्म को-प्रत्यक्ष में किये हुवे को, रहःकर्म को-एकान्त में किये गये  
को-इस तरह से वे देव-मनुजाऽसुर सहित लोक की सब पर्यायों को जाने गे ।  
अतएव-वे अनगार अरहाजिन की दृष्टि में अप्रत्यक्ष कुछ भी नहीं रहेगा,  
सर्वज्ञ अरहस्यभागी-सावद्याचरणवर्जित होने के कारण सुस्पष्ट सकलाचार के  
पालक बने हुवे, उस उप काल में मनोवाक्या योग में वर्तमान इसलोक  
सम्बन्धी सर्वजनों के सर्व भावों को जानते हुवे और-देखते हुवे विहार करेंगे।सू० १७४॥

पर्यायानां ज्ञाता यश्चेत्यादि ते आगतिने-देव लोकादिषु मनुष्य गतिमा आगमनने  
मनुष्य लोकाभाषी देवदि गतिभ्यामां गमनने स्थितिने-देवलोकादिदेवमा अवस्थितिने  
व्यवनने देवलोकाधी आयुक्षय पछी पतनने उपपातने-देवनारकोना जन्मने-तर्कने-  
विचारने कृत- कहेलाओने, मनोमानसिकने मनमां व्यवस्थित विचारधाराने  
क्षयितने-क्षय प्राप्तने भुक्तने-खादितने प्रतिसेवितने-भोग्यवस्तु ज्ञातना  
सेवनने आविष्कर्मने-प्रत्यक्षमा करेला कर्मेने, रहःकर्मने, एकान्तमा आचरेला  
कर्मेने आ प्रमाणे ते देव मनुज असुर सहित लोकनी सर्व पर्यायों ते ज्ञाप्यते  
तेषां ते अनगार अरहाजिननी दृष्टिमा अप्रत्यक्ष ओवु कछ रहेशे नहि  
तेभने सर्व-प्रत्यक्ष थछ जशे सर्वज्ञ अरहस्यभागी सावद्याचरण वर्जित होवाधी  
सुस्पष्ट सकलाचाराना पालक थयेला कारणमा मनोवाक्या योगमा वर्तमान छहुँलोका  
सम्बन्धी सर्वजनोना सर्वभावोने ज्ञाप्यतां अने जेतां विहार करेशे ॥१७४॥

मूलम्—तए णं दहपइन्ने केवली एयारुवेण विहारेणं विहर  
माणे बहूइ घासाइ केवलिपरियाय पाउणिता अप्पणो आउसेस  
आमोएत्ता बहूइ भत्ताइ पच्चक्खाइस्सइ, बहूइ भत्ताइ अणसणाए  
छेइस्सइ—जस्सट्ठाए कीरइ णग्गमावेकेसलोए धमचेरवाने अण्हाणग  
अदतवण अणुवहाणग भूमिमेज्जाओ फलहसेज्जाओ परघरपवेसो  
लद्धावलद्धाइ माणावमाणाइ परेसिं हीलणाओ निंदणाओ खिस  
णाओ तज्जणाओ ताइणाओ गरहणाओ उच्चावया विरूवरूवा वावी-  
सपरीमहा उवसग्गा गामकटगा अहियासिज्जति तमट्ठ आराहिस्सइ,  
चरिमेहिं ऊसासनीसासेहिं सिज्झहिइ, बुज्झहिइ, मुच्चिहिइ परि  
निब्बाहिइ सव्वदुक्खणमत करेहिइ । ॥ सू० १७५ ॥

छाया—ततः खलु दहप्रतिष्ठाः केवली एतूपेण विहारेण विहरन् बहूनि  
वर्षाणि केवलिपर्यायं पालयित्वा आत्मन आयुश्चेष्टम् आहूयन् बहूनि मत्तानि  
प्रत्यास्याम्यति बहूनि मत्तानि अनघनेन छेत्स्यति याथार्थाय क्रियते नन

“तए ण दहपइन्ने केवली—” इत्यादि—

मूलार्थ—“तए ण” इसके बाद—“दहपइन्ने केवली—” ये दहप्रतिष्ठा केवली—  
“एयारुवेण विहारेणं विहरमाणे—” इस प्रकार के विहार से विहार करत हुये—  
“बहूइ घासाइ केवलिपरियाय—” अनेक वर्षों तक केवलीपर्याय को—  
“पाउणिता—” पालकर के—“अप्पणो आउसेस आमोएत्ता—” जब अपने आयु  
के अन्त को ध्यान करके—“बहूइ भत्ताइ पच्चक्खाइस्सइ—” अपने अनेक मत्तों  
का प्रत्यास्थान करेंगे—“बहूइ भत्ताइ अणसणाए छेइस्सइ—” अनेक मत्तो

“तए णं दहपइन्ने केवली” इत्यादि ।

मूलाध—“तएण” तथा पछी “दहपइन्ने केवली” ते दहप्रतिष्ठा केवली  
“एयारुवेण विहारेण विहरमाणे” आ आभावे विहार करता “बहूइ घासाइ केवलि  
परियाय” यन्त्र वर्षों सुधी केवली पर्यायत “पाउणिता” पालन करते. “अप्पणो  
आउसेस आमोएत्ता” जाने पीताना आयुष्मन्ना अत राभवने आग्नेने “बहूइ  
भत्ताइ पच्चक्खाइस्सइ” पीताना यन्त्र आतेयत प्रत्यास्थानकरे बहूइ भत्ताइ अण

भावः केशलोचो ब्रह्मचर्यवासः अस्नानकृत् अदन्तर्णः अनुपानत्कम् भूमिशय्याः फलकशय्याः परगृहप्रवेशः लब्धोपलब्धानि मानापमानाः परेषां हीलनाः निन्दनाः खिसना तजनाः ताडनाः गर्हणाः उच्चावचाः विरूपरूपाः द्वाविंशतिः परीपहा उपसर्गाः ग्रामकण्टकाः अधिसहन्ते, तमर्थम् आराधयिष्यति, चरमैरुच्छ्वासनिःश्वासैः सेत्स्यति भोतायते मोक्षयते परिनिर्वास्यति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति। सू. १७५।

का अनशन द्वारा छेदन करेंगे—अर्थात् सथारा करेंगे “जसट्टाए कीरइ, गगभावे केसलोए वंभचेरवासे—” इस प्रकार भक्तों का प्रत्याख्यान करके, और—अनशन द्वारा उनका छेदन करके वे दृढप्रतिज्ञ केवली जिस अर्थ को सिद्ध करने के लिये साधुजनों द्वारा नग्नभाव—अचेलत्व—परिमित—वस्त्रधारणत्व—केशलुञ्चन ब्रह्मचर्य—वास—” “अण्हाणगं, अदंतवणं—अणुवहाणगं, भूमिसेज्जाओ, फलहसेज्जाओ, परघरपवेसो, लद्धावलद्धाइ, माणावमाणाइ—” स्नान नहीं करना—दन्तधावन करने का त्याग करना—पग में पगरखां मोझा आदि को नहीं पहनना—भूमिपर शयन करना—पस गवश पाट पर सोना—भिक्षादिके निमित्त पर घर में प्रवेश करना—लामाऽलाम—मानाऽपमान—“परेसिंहीलणाओ—निंदणाओ—खिसणाओ—तज्जणाओ—ताडणाओ—गरहणाओ—उच्चावचा—विरूपरूपा—” दूसरोंद्वाराकृत हीलना—निन्दना—खिसना—तजना—ताडना—गर्हणा—अनुकूल प्रतिकूल नाना प्रकार के—“वावीसपरीसहा उवसग्गा गामकंटगा अहिया सिज्जंति—” वाइस परीपह, तथा—उपसर्ग एवं—इन्द्रियों के प्रतिकूल कटक के समान शब्दादिक सहन किये जाते हैं—” तमट्ट आराहिस्सइ, चरमेहिं ऊसासनीसासेहिं

सणाए छेइस्सइ” धृष्टा लक्षितोऽनु अनशनो वडे छेदन करेये. “जस्सट्टाए कीरइ गगभावे केसलोए, वेयचेरवासे” आ प्रभावे लक्षितोऽनु प्रत्याख्यान करीने अने अनशन द्वारा तेमट्ट छेदन करीने ते दृढप्रतिज्ञ केवली जे अर्थनी सिद्धि माटे साधुजनों वडे नग्नभाव अचेलत्व परिमित वस्त्र धारत्व, केशलुञ्चन, ब्रह्मचर्यवास, “अण्हाणगं अदंतवणं अणुवहाणगं, भूमिसेज्जाओ फलहसेज्जाओ, परघरपवेसो. लद्धावलद्धाइ, माणावमाणाइ—” स्नान रहित रहैयु, दन्तधावननो त्याग करवो, पगरभायो पहरेवा नहि, भूमिपर शयन करवु इलक पर सुवुं भिक्षादि माटे पर घरमा जवु लाल अलाल, मान अपमान—“परेसिं हीलणाओ निंदणाओ खिसणाओ तज्जणाओ ताडणाओ गरहणाओ उच्चावचा विरूपरूपा” भीनयो वडे करायेल हीलना—निन्दना, खिसना, तजना, ताडना गर्हणा अनुकूल प्रतिकूल अनेक जातनी “वावीसपरीसहा उवसग्गा गामकंटगा अहियासिज्जंति” वावीस परीपहो तेमट्ट उपसर्ग अने इन्द्रियोना प्रतिकूल शब्द वगेरे सहन करवामा आवे छे, ‘तमट्ट आराहिस्सइ, चरमेहिं ऊसासनीसासेहिं सिज्जिंति’ अल्पिजिह प्रनिजिह

टीका—“तए ण” इत्यादि-तत स्तु वृद्धप्रतिष्ठ केवली एतद्रूपेण-  
पूर्वोक्तविधेन विहारेण विहरन्-विचरन् बहूनि वर्षाणि केवलपयाय पालयित्वा  
आमन-स्वाय, आयुश्चेष्टम्-आयुषोर वसानम् आयुज्य-परिहाय बहूनि मत्कामि  
प्रत्यास्यास्यति, ततो बहूनि मत्कानि अनश्नेन छेदस्यति । इत्थ मत्कानि  
प्रत्यास्याय अनश्नेन छित्त्वा च स वृद्धप्रतिष्ठः केवली, यस्यार्थाय-पन्मोक्ष-  
निमित्तं क्रियते साधुमि-नग्नमाष-अचेलत्वं-परिमितवस्त्रधारित्वं केवलौघ-  
स्पर्शहन्तेन केवलोत्पादन, ब्रह्मवर्षवासः-ब्रह्मवर्षधारित्वम्, अन्नानाम्-भानानाम्-  
अदन्तवर्षः-दन्तोज्ज्वलीकृतनामावः, अनुपानारम्भ-उशनस्परिधानामावः,

सिन्धुहिह, बुज्जिहिह, सुप्पिहिह, परिनिष्वाहिह, सव्यदुक्खाणमत करेहिह-” उस  
मोक्षरूपी अर्थ की आराधना करेगे और-आराधना करके अन्तिमश्वासोच्छ्वास से  
सिद्ध हो जावेंगे, बुद्ध हो जावेंगे, मुक्त हो जावेंगे, परिनिर्वात सिद्धिलीभूत हो  
जावेंगे, एक-समस्त दुःखों का अन्त करेंगे ।

टीका-इस प्रकार के विहार से विचरते हुवे वे वृद्धप्रतिष्ठ केवली अनेक  
वर्षों तक केवली पर्याय में विराजमान रहेंगे । अब-उनके आयुर्कर्मका पूर्ण  
रूप से अन्त होने का समय आ जावेगा, तब-वे इस बात को जानकर  
अनेक मत्कों का प्रत्यास्मान करवेंगे, अनश्नन द्वारा अनेक मत्कों का छेदन  
क देगे । इस प्रकार मत्क प्रत्यास्मान करके-पक्ष-अनश्नन द्वारा उसका छेदन  
करके, वे वृद्धप्रतिष्ठ केवली जिसके छिये साधुजन नग्नमाष धारण करते हैं ।  
अर्थात्-परिमित वस्त्रों को रखते हैं-अपने हाथों से कपड़ों का छेदन करते हैं  
पूर्णरूप से ब्रह्मवर्षावस्था में रहते हैं मनवचनकाम से स्नान करने का परि-  
त्याग करते हैं-दन्तधावन का सर्वथा परिहार करते हैं, पगरखे-मोजा का पहिरना

परिनिष्वाहिह सव्यदुक्खाणमत करेहिह’ ते अर्थ की आराधना करीने अन्तिम  
श्वासोच्छ्वास की सिद्ध अर्थ करेगे, बुद्ध अर्थ करेगे, मुक्त अर्थ करेगे, परिनिर्वात अर्थ करेगे  
भूत अर्थ करेगे, अनेक समस्तदुःखों का अन्त करेगे.

टीका-आ प्रभावे किहस्ता वृद्धप्रतिष्ठ केवली धर्मा वर्षों सुभी केवली पर्यायमा  
विश्रामान रहेगी, अर्थात् तेमना आयुष्यनी समाप्तिने-समय जावयेत्यर्थ तन्ने आ  
बात जानीने अनेक अकृतोनु प्रत्यास्मान करेगी अनश्नन पटे धरु। अकृतोनु छेदन  
करेगी, आ प्रभावे अकृतप्रत्यास्मान करीने अनेक अनश्नन पटे तेमथ छेदन करीने  
ते वृद्धप्रतिष्ठ केवली केना भाटे साधुजन नग्नमाष धारण करे छे अकृतोने के परिमित  
वस्त्रों शब्दे छे धारणा दायी पटे छेदस्तु अर्थ करे छे पूज्यवर्षी ब्रह्मवर्षावस्थाभा  
रहे छे मन वचन धारणी स्नान करानी परीत्याग करे छे इत्याचनने। सच था

उपलक्षणात् शकटाश्वादि वाहनराहित्यम्, भूमिशय्याः—भूमौ शयनानि, फलकशय्याः—फलकेषु शयनानि, आहाराद्यर्थं परगृहप्रवेशश्च । ‘भूमिशय्याः—फलकशय्याः’ इति पदद्वये ‘क्रियते’ इति बहुत्वेन विपरिणमय्य समन्वेतव्यमिति । तथा—तैः साधुभिः लब्धापलब्धानि-लाभालाभाः, मानापमानाः—स्मान्तिरस्काराः, तथा-परेषाम्-अन्येषाम्-परकृता इत्यर्थः, हीलनाः—मर्मोद्घाटनानि, निन्दनाः—निन्दाः—जुगुप्साभाषण-रूपाः, खिसना—धिकं त्वां मुण्ड !’ इत्यादिरूपाः, तर्जनाः—अङ्गुलि-प्रदर्शन-पूर्वकं ‘ज्ञायसि रे जाल्म !’ इत्यादिवचनरूपाः, गर्हणाः—‘चौरोऽयं लम्पटो-ऽयम्’ इत्यादिवचनरूपाः—तथा—उच्चावचा—अनुकूलप्रतिकूलाः, विरूपरूपाः—नाना प्रकाराः, द्वाविंशतिः—द्वाविंशतिसंख्यकाः परीपहाः—क्षुधादिरूपाः, उपसर्गाः—

छोड़ देते हैं । उपलक्षण से गाड़ी की सवारी करना, घोड़े आदि वाहन पर बैठना आदि-आदि को छोड़ देते हैं, भूमि पर शयन करते हैं, अथवा काठ के पट्टियो-तकथा आदिपर शयन करते हैं, आहार आदि प्रयोजन से परघर प्रवेश करते हैं, लाभालाभ में जो समान भाव रखते हैं, मानाऽपमान की जो थोड़ी सी भी अपेक्षा नहीं रखते हैं । तथा दूसरो छाग कृत हीलनाओ को—मर्मोद्घाटन वचनों को—निन्दाओ को जुगुप्सा भाषणरूप वचनों को—खिसनाओ को—“हे मुण्ड-? तुझे धिक्कार” इत्यादिरूप वचनों को तर्जनाओं को, अङ्गुली प्रदर्शनपूर्वक “हे जाल्म ? तुझे खबर पड़ेगी—” इत्यादि रूप वचनों को—गर्हणाओं को, “यह चोर है, यह—लम्पट है—” इत्यादिरूप वचनों को तथा—अनुकूल प्रतिकूल नाना प्रकार के क्षुधादिरूप २२ वाईस—परीपहों को, तथा देवादिकृत उपसर्गों को, एवं-ग्रामकण्टकों को—ग्रामों को—इन्द्रिय समूह

त्याग करे छे पगरभा भोजन पहेरता नथी उपलक्षणी गाडीनी सवारी करनी घोडा वगेरे वाहन पर भेसवु वगेरेने त्यल दे छे. भूमि पर शयन करे छे लाकडाना पाटिया वगेरे पर सूवे छे आहार आदि प्रयोजनाने लीधे ज परघरभा प्रवेश करे छे. लाभ अलाभभा. समानभाव राखे छे मान अपमाननी जे लागीरे दरकार राखता नथी. तेमज पीनज्यो द्वारा करायेल हीलनाज्योने. मर्मोद्घाटक वचनाने. निहाज्योने जुगुप्सा भाषणरूप वचनाने खिसनाज्योने हे मुण्ड तने धिक्कार छे ।” वगेरे इय वचनाने तर्जनाज्योने अङ्गुली प्रदर्शनपूर्वक हे जाल्म ! पछी तने अथर अथर पडशे” वगेरे इय वचनाने. गर्हणाज्योने. “आ चोर छे आ लम्पट छे” इत्यादिइय वचनाने तेमज अनुकूल प्रतिकूल नाना प्रकारनी क्षुधादिइय २२ प्रकारना परि-पहोने तथा देवादिकृत उपसर्गाने अने आमकटकाने आभोने इन्द्रियसमूहने हु भोत्पादक

न्वादिभूताग्रया, ग्रामकण्टका—ग्राम इन्द्रियसमूहस्य कण्टका इव कण्टका  
 इन्द्रियप्रतिबलप्रणादय, दृष्ट्वात्पादकत्वाभूक्तिमात्रं विग्रहतत्वादर्पा कण्टकत्वम्  
 भुजजनस्तान्माया मा रम्य कृत अभिप्रहृत, त-मोसरूपम् अर्थम् आराधयि-  
 त्यति, आगप्य चर्म अर्चितम् उन्नीमनिर्भातः सत्स्यति, मयसकायकारितया  
 सिद्धो मयप्यति, मोन्त्यत-विमलकषण्डाऽऽश्लोकन सकलश्रीलोक प्राप्ति  
 मोक्षत-पदार्थमो सुको मयिप्यति-परिनिर्वाति समस्तमर्कतार्थकारित्वेन  
 स्वस्यो मयिप्यति सर्वदुःखानां-द्वीगमन सम्पन्नममरतकलेष्टानाम् अन्त नाश  
 करिप्यति-अव्यापारसमुच्चयान् मयिप्यतीत्यर्थः । ॥४०॥ १७५॥

श्राद्धसुपमं ह्यनं श्राद्ध-

मूलम्—सेव भते ! सेव भते ! भगव गोपमे समण भगव  
 महावीर घटइ नमसइ, वटित्ता नमसित्ता सजमेण तपसा अप्पाण  
 भावेमाणे विहरइ । ॥सू० १७६॥

छाया-भगव मदन्त ! तद्व मदना ! इति भगवान् गौतम धम्म भगवन्त  
 महावीरं पन्दत नमस्सति, वटिवा नमस्सित्ता सयमन तपसा आमान  
 माययमाना विहरति ॥सू० १७६॥

का दृष्ट्वात्पादक हान स ग्व-भूक्तिमार्गं मं विग्र व हेतुभूत हेनेस कण्टक  
 रूप प्रतिबल प्रणाटिका का, अमया-सुष्ठुजा क रुपात्पा का, जिसके  
 निमित्त महत है उस मोक्षरूप अर्थ की आराधना काक फिर व अन्तिम  
 शास्त्रार्थस स मफल काय का कर पुनन त-कृतकृत्य हा जान स सिद्ध  
 हा जावग, विमल कषण्ड ज्ञानालार से मफल लोहालाक का हावा धन  
 जावगे, समस्त कर्मी स सुट जावग, मय्य हा जावगे, और-द्वीगसम्पर्क  
 णव मन सम्पन्नी ममगत कलेष्टा वा नाश करग, अर्थात्—अव्यापारसमुच्चय का  
 मान्का वनग ॥ सू० १७५ ॥

देवाधी अने भुक्तिमात्र भा निजना हेतुभूत देवाधी अने कटकट प्रतिकूल शक्ती  
 विहाने अथवा सुदुर्लभाता इस आवाधाने जेना आटे नदन करे छ त आवाध  
 अथवा आराधना करी. आराधना करीने पछी नेजा अन्तिम शास्त्रार्थसधी सफल  
 हाप्तिने करी देवाधी कृतकृत्य हा जेनाधी सिद्ध हा अये. विमल कषण्डज्ञानादेवाधी  
 अथवा आवाधाने हावा हा अये ममगत कर्माधी भुक्ति हा अये स्वयं हा अये  
 अने शरीर सजधी अने मनसजधी समस्त कलेष्टाने नाश करी अटले के तेजो  
 अथवा अथ कोटवा हा अये ॥सू० १७५॥

પુરે વી. મગામેઽસ્મિન્ સહ્યાર્થં નયા વ્યધામ્ ।  
 રાજપ્રશ્નીયસૂત્રસ્ય ટીકામેનાં સુવોધિનીમ્ ॥ ૩ ॥  
 વૈશાખસ્ય સિતે પક્ષે તૃતીયાયાં ગુરોર્દિને ।  
 ત્રયોદશાધિકે વર્ષે દ્વિસહસ્રે ચ વૈક્રમે ॥ ૪ ॥  
 અત્રત્યઃ સ્વયો મિલત્સમુદયઃ શ્રી જૈનમહ્નો મિથઃ-  
 પ્રેમાઽભક્તહૃદઃ સ્વદા નિજકૃતૌ ધર્મે ચ વદ્ધાઽઽદરઃ ॥  
 શુદ્ધસ્થાનકવાસિધર્મમહિમપ્રોદ્ધાવકઃ શ્રાવકા-  
 ઽઽચારૈઃ રુચ્યાતિમુપાગતો રિજયતે સમ્યક્ત્વસંશોભિતઃ ॥૫॥

### “ પ્રશસ્તિ કા અર્થ ”

ગુજરાત પ્રાત મેં વીરમગામ નામકા શહેર હૈ, યહાં કે માંગ દુકાનો  
 એવં શ્રાવકજનોં કે સુન્દર-સુન્દર ઘરોં સે યુક્ત હૈં । એક ગામ સે દુસરે ગામ  
 મેં વિહાર કરતે હુવે છહ મુનિયોં કે સાથ-યહાં સંયમ યાત્રા કા નિર્વાહ કરને  
 કે લિયે ગતવર્ષ કે વૈશાખ માસ મેં અર્થાત્ વિ. સવત્ ૨૦૧૨ કે વૈશાખમેં આયે । યહાં કે  
 શ્રીસંઘ કી યહીં પર વિરાજને કી વિનન્તી સે યહાં મૈને રાજપ્રશ્નીય સૂત્ર કી હસ  
 સુવોધિની ટીકા કો સમ્પૂર્ણ કિયા. । યહ સમય વૈશાખ શુક્લ અક્ષય તૃતીયા  
 ગુરુવાર વિક્રમ સંવત્ ૨૦૧૩ કા થા. । યહાં કા જૈન શ્રીસંઘ શુદ્ધ સ્થાનકવાસી ધર્મ  
 મેં તત્પર હૈ, ધર્મ કે પ્રતિ હસકે હૃદય સે વહુત અધિક આદરમાવ હૈ, ઔ-  
 યહ શ્રી રંધ પ્રેમાલુ હૈ, તથા શુદ્ધ સ્થાનકવાસી ધર્મ કાં દિપાને વાલા હૈ. હૃદય  
 મેં હસકે અતિ અધિક દયામાવ વના રહતા હૈ । શ્રાવક સમ્બન્ધી આચાર  
 વિવાર સે યહ પ્રસિદ્ધિ કો પ્રાપ્ત કર લિયા હૈ, જૈનધર્મ કે પ્રતિ અધિક

### પ્રશસ્તિનો અર્થઃ—

ગુજરાત પ્રાતમા વીરમગામ નામક એક નગર છે આ નગરની શેરીઓ અને દુકાનો  
 શ્રાવકજનોના લવ્ય મકાનોથી યુક્ત છે એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરતા કરતા છ  
 મુનિઓની સાથે વૈશાખ માસમા અહીં સયમયાત્રાના નિર્વાહ માટે આવ્યા અહીં-  
 ના “શ્રીસંઘ” આપશ્રીને અહીંજ બિરાજવાની વિનંતી કરી તો તે સ્વમયમા જ  
 મેં ત્યા રહીને રાજપ્રશ્નીય સૂત્રની આ સુવોધિની ટીકા સંપૂર્ણ કરી આ સમય  
 શાખ શુક્લ અક્ષય તૃતીયા ત્રિકમ સવત ૨૦૧૩ ગુરુવારના હતો અહીંના જૈન  
 ‘સંઘ’ શુદ્ધ સ્થાનકવાસી છે, ધર્મ પ્રત્યે એના હૃદયમા ખૂબજ આદરભાવ છે  
 આ શ્રીસંઘ પ્રેમળ છે તેમજ શુદ્ધ સ્થાનકવાસી ધર્મને દીપાવનાર છે એના હૃદય  
 મા અત્યધિક દયાભાવ નિવાસ કરે છે શ્રાવક સંબંધી આચારવિચારોથી અ જગત્માં  
 પ્રસિદ્ધ છે જૈનધર્મ પ્રત્યે અધિપ્રાધિક અનગણી હોવા બદલ અમુક વધી સુશોભિત



टीका—“सेव मत” इत्यादि—हे मदनन्त । यद् भवन्निरुक्तं तत् एवम्  
इत्यम्, धार्मिकमिति दास्यत, इदं भदन्त ? इति शिष्या भगवद्वचने भद्रा-  
तिशय प्रकटयति, इति—अनेन प्रकारेण उक्त्वा भगवान् गौतम भ्रमण  
भगवन्त महावीर वन्दत नम यति, यदिथा नमस्तिष्ठा सयमेन तपसा  
आत्मान भावयमानो विहरतीति ॥१७६॥

भी

अथ राक्षप्रभीयस्य य मक्षस्तिः—

गुजराभिषदशेऽस्मिन् पुरं वीरमगामकम् ।

आरण-भावः श्रेणिसौधमण्डिषीयिकम् ॥ १ ॥

ग्रामाद् ग्रामात्तर पत्तिः साधुभिर्बिहरन्निह ।

निर्वोदु सांख्यी यथा परुषास्त आगमम् ॥ २ ॥

‘सर्व मत-? सेव मत-?’ भगव योगमे—“इत्यादि—

मूलार्थ— सेव मते ? सेव मत-? ’ हे मदनन्त-? ऐसा आपने कहा है  
वह वैसा ही है, अर्थात्—आपने जो अपनी दिव्यध्वनि द्वारा प्रकट किया  
है वह वास्तविक ही है सच वा सत्य ही है । इस प्रकार कहकर—“भगव  
योगमे—” भगवान् गौतमने ‘समम भगव वदइ नमसइ—’ भक्त भगवान्  
को वन्दना की गुणस्तुति की, और—उन्हें नमस्कार किया—“यदिथा नमसिणा  
सजमेन तपसा अप्याण भावेमाये विहरइ—” वन्दना समस्कार कर फिर—वे  
सयम से और—तप से आत्मा को भावित करत हुवे अपने स्थान पर  
विराजमान हो गए ।

टीकार्थ—स्पष्ट है—‘सेव मते ? सेव मते ?’ ऐसा जो दो बार कहा  
गया है वह भगवद्वचन में भद्रातिशय प्रकट करने के लिय कहा गया है ॥१७६॥

सर्व मते ? सव मत ? भगव योगमे इत्यादि ।

मूलार्थ—“सर्व मते ? सेव मते ?” हे मदनन्त । प्रभावे आपसीके कर्त  
उ ते तेभज उ ओटवे हे आपसीके पालानी दिव्यध्वनिद्वारा ने कर्त कर्त उ ते  
वास्तविक उ सर्वथा सत्य उ प्रभावे कहीने “भगव योगमे” भगवान् गौतम  
समम भगव वदइ नमसइ’ भक्त भगवान् ने वन्दना करी, गुण स्तुति करी अने  
तेभने नमस्कार कर्त “यदिथा नमसिणा संजमेण तपसा अप्याण भावेमाये विहरइ”  
वन्दना तेभज नमस्कार करीने तेभने सयम अने तपसी आत्माने भावित करत  
पालानी स्थाने विराजमान कर्त अथा

टीकाय स्पष्ट उ “सर्व मते ? सेव मते ?” आभ न के पणत कहेनामा  
आ०३ उ ते भगवद वचनमां अति अन्ता प्रकट कर्त माटे उ ॥ १७६ ॥

देवाधिदेवे भुवनैकनाथे तीर्थङ्करे तत्कथिते च धर्मे ।

श्रद्धां दधानं प्रतिवेष्टम भाति सुश्राविकाश्रावकवृन्दमत्र ॥६॥

आचारपूताः समदृष्टिभूता जैनागमाऽऽचारनिदर्शकपाः ॥

अस्मिन् पुरे सन्ति मृदुस्वाभावा जैनाः समस्ता गुरुभक्तिभाजः ॥७॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-

कलापालाप-प्रविशुद्भगव्ययनैकग्रन्थ-निर्माप-वादिमानमर्द-श्री शाह

छत्रपति-कोल्हापुरराजपदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुर-

राजगुरु - बालब्रह्मचारि - जैनशास्त्राचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-

घासीलालव्रतिविरचितायां सुबोधिनीख्यायां व्याख्यायां

“राजप्रश्नीयसूत्रम्” सम्पूर्णम्

अनुरागी होने के कारण यह सम्पत्तत्त्व से सुशोभित है । भुवनैकनाथ देवाधि-  
देव तीर्थकर के ऊपर, एवं-तीर्थङ्कर प्रतिपादिन धर्म के ऊपर श्रद्धाशील श्रावक-  
एवं-श्राविकाएं हा एक घर में यहां हैं । इन सबों का आचार-विचार जैन-  
मर्यादा के अनुरूप है दूसरों के लिये ये-इस विषय में सर्वथा अनुकरणीय हैं ।  
इनका स्वभाव मृदु है, यहां के श्रावको काचित्त गुरु की धर्मभक्ति में सदा  
प्रेमयुक्त बना रहता है, इन्ही सब कारणों से ये समदृष्टि हैं ॥

श्री जैनचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराजकृत  
राजप्रश्नीयसूत्र की 'सुबोधिनी' व्याख्या समाप्त ॥

॥ राजप्रश्नीयसूत्र समाप्त ॥

छे भुवनैकनाथ-देवाधिदेव तीर्थङ्कर पर अने तीर्थङ्कर प्रतिपादित धर्म पर श्रद्धाशील  
श्रावक अने श्राविकाओ अही दरेकदरेक घरमा निवास करे छे आ सर्वना आचार-  
विचारो जैन मर्यादाअनुष छे भीलओना माटे ओओ आ भागतमा स पूर्णपणे अनु-  
करणीय छे ओमनो स्वभाव मृदु छे अहीना श्रावकोनु चित्त गुडनी धर्मलक्षितमा  
सदा प्रेमयुक्त बनी रहे छे आ गधा कारणोथी ओ गधा समदृष्टि छे ”

श्री जैनचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलालजी महाराजकृत  
राजप्रश्नीयसूत्रनी सुबोधिनी व्याख्या समाप्त

परुद्धेशाखो इति गतवर्षवैशाखे इत्यर्थः



